विकसित उत्तराखण्ड

राज्यपाल के पंच स्वप्न और संदृष्टि



	Theme	Name of the authors	Department	Topic
1.	**Reverse Migration**	डॉ० धनश्याम जोशी	राजनीति विज्ञान	रिवर्स माइग्रेशन और स्थानीय शासन की बदलती भूमिकाः उत्तराखंड में विकासात्मक प्रशासन का अध्ययन
2.		डॉ० नमिता वर्मा	अर्थशास्त्र	पलायन से प्रभावित उत्तराखंड के ग्रामीण इलाकों में डिजिटल समावेशन और महिलाओं का सशक्तिकरण
3.		डॉ० गीतांजलि भट्ट शर्मा	वाणिज्य	उत्तराखंड में प्रतिलोम प्रवासनः प्रवृत्तियाँ, कारण, प्रभाव एवं ग्रामीण पुनर्जीवन की संभावनाएँ
4.		डॉ० शालिनी चौधरी	अर्थशास्त्र	उत्तराखंड में प्रतिलोम प्रवासन से ग्रामीण पुनरोद्धारगृह आवास, ग्रामीण उद्यमिता एवं आजीविका को सतत एवं मजबूत करने में मुक्त और दूरस्थ शिक्षा (ओडीएल) की परिवर्तनकारी भूमिका
5.		स्वाति उपाध्याय और अंशु जोशी		प्रतिगामी प्रवासन और सामाजिक सुरक्षा लौटने वाले प्रवासी श्रमिकों के अधिकारों का आकलन
6.	**Women Empowerment and Girl Child Education**	डॉ० दीपिका वर्मा	गृह विज्ञान	पलायन से प्रभावित उत्तराखंड के ग्रामीण इलाकों में डिजिटल समावेशन एवं महिला सशक्तिकरण
7.		डॉ० लता जोशी	राजनीति विज्ञान	उत्तराखंड में महिलाओं का राजनीतिक सशक्तिकरण : एक दृष्टि, पत्र
8.		श्री दिग्विजय सिंह पथनी **Author** डॉ० नियति रावत **Co-author**	राजनीति विज्ञान राजनीति विज्ञान	सतत विकास और महिला नेतृत्व : उत्तराखण्ड की वन पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी एवं भूमिका का अध्ययन
9.		डॉ० शुभंकर शुक्ला	राजनीति विज्ञान	बालिका शिक्षा, स्वयं सहायता समूहों की सदस्यता एवं पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारीरू उत्तराखण्ड का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन
10.		डॉ. प्रिया महाजन	वाणिज्य विभाग	महिला सशक्तीकरण में लघु वित्त की भूमिकाः समावेशी विकास की दिशा में एक मार्ग
11.		सुश्री कुमकुम पाण्डेय	व्यावसासिक अध्ययन – प्रबंध	उत्तराखंड के विशेष संदर्भ में महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने में वित्तीय साक्षरता और सरकारी पहलों की भूमिका ।
12.		डॉ. ममता कुमारी	शिक्षाशास्त्र	उत्तराखण्ड में बालिका शिक्षा : पर्वतीय सन्दर्भ , चुनौतियाँ एवं भविष्य की संभावनाएं
13.		डॉ० मनीषा पंत डॉ० दिनेश काण्डपाल	शिक्षाशास्त्र	शिक्षा के विभिन्न स्तरों में बालिका शिक्षा की वर्तमान स्थिति : उत्तराखण्ड राज्य के विशेष संदर्भ में
14.		सुश्री कृतिका त्रिवेदी	व्यावसासिक अध्ययन – अंग्रेजी	परंपरा और पूँजी : उत्तराखंड में महिला उद्यमिता और सांस्कृतिक सशक्तिकरण
15.		श्रीमती कुशा सिंह	समाज कार्य विभाग	उत्तराखंड में महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया में गैर–सरकारी संगठनों की भूमिका
16.		डॉ. ज्योति जोशी	गृह विज्ञान	हस्तशिल्प : महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण का साधन
17.		डॉ० प्रीति बोरा	गृह विज्ञान	पलायन से प्रभावित उत्तराखंड के ग्रामीण इलाकों में डिजिटल समावेशन और महिलाओं

				का सशक्ति करण
18.		श्रीमती मोनिका द्विवेदी	गृह विज्ञान	रजोनिवृत्ति एवं स्वस्थ वृद्धावस्था
19.	**Technology and AI**	डॉ० ललिता बिष्ट डॉ० नीलिमा बुधानी	एम०सी०ए०	डिजिटल देवभूमि : कृत्रिम बुद्धिमत्ता से सशक्त उत्तराखण्ड की परिकल्पना
20.		सुश्री हर्षिता मेहता	पत्रकारिता एंव मीडिया अध्ययन	पहाड़ों से पढ़ाई की वातारूं उत्तराखंड में भाषा, AI और सहभागी विकास
21.		डॉ. राकेश कुमार शर्मा	शिक्षाशास्त्र	21वीं सदी की चुनौतियाँ : डिजिटल युग में समावेशी शिक्षा की सामाजिक एवं संवेगात्मक बाधाएँ और उपाय
22.	**Organic and Natural Farming**	डॉ. वीरेंद्र कुमार	कृषि एवं विकास अध्ययन विद्याशाखा	जैविक और प्राकृतिक खेती का परिचय
23.		डॉ. कृष्ण कुमार टमटा	पर्यावरण विज्ञान	जैविक मूल्य श्रृंखलाओं द्वारा स्थानीय अर्थव्यवस्था का सशक्तीकरण
24.		डॉ० कीर्तिका पडेलिया	वनस्पति विज्ञान	जैविक राज्य के रूप में उत्तराखण्ड : संभावनाएँ और चुनौतियाँ
25.		डॉ. बीना तिवारी फुलेरा	पर्यावरण विज्ञान	(प्राकृतिक और जैविक खेती : हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र के संरक्षण का एक समाधान)
26.		डॉ. पूजा जुयाल	वनस्पति विज्ञान	बाजरा (मंडवा और झंगोरा) :उत्तराखंड की जैविक विरासत
27.		डॉ. प्रभा बी. ढौंडियाल	वनस्पति विज्ञान	प्राकृतिक एवं जैविक कृषि : सुरक्षित और पौष्टिक भोजन की आधारशिला
28.	**Wellness and Tourism**	सुश्री प्रिया बोरा	पर्यटन	हिमालयी क्षेत्रों में सामुदायिक–आधारित पर्यटन : संभावनाएँ, बाधाएँ एवं संधारणीय भविष्य की रणनीति
29.		डॉ. मनोज कुमार पाण्डे	पर्यटन	सतत विकास में वैलनेस पर्यटन की भूमिका
30.		डॉ. दीपक कुमार	योग	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समग्र स्वास्थ्य हेतु योग की भूमिका
31.		सुश्री कृतिका त्रिवेदी	व्यावसासिक अध्ययन – अंग्रेजी संप्रेषण	लोकज्ञान की पगडंडी पर चलता सतत पर्यटन : लोककथाओं से पर्यटन नीति और सुशासन तक
32.		डॉ. सीता निधि चन्द्रा	मनोविज्ञान विभाग	उत्तराखण्ड में मानसिक स्वास्थ्य एवं कल्याण रू स्थिति, चुनौती एवं समाधान

विकसित उत्तराखण्ड: राज्यपाल के पंच स्वप्न और संदृष्टि

राज्य के समग्र एवं संतुलित विकास हेतु एक बहुआयामी अकादमिक अध्ययन

संपादक

डॉ. मंजरी अग्रवाल

डॉ. गगन सिंह

डॉ. राजेन्द्र कैडा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

कुलपति संदेश (Vice-Chancellor's Message)

ज्ञान और दूरदर्शी नेतृत्व किसी भी राज्य के समग्र विकास की आधारशिला होते हैं। उत्तराखण्ड, अपनी प्राकृतिक सम्पदा, सांस्कृतिक समृद्धि तथा जनशक्ति के के रहते हुए भी, पर्वतीय क्षेत्रों से पलायन, संसाधनों की असमान पहुँच तथा सीमित तकनीकी अवसंरचना जैसी चुनौतियों का सामना करता रहा है। ऐसे समय में जब राज्य अपने विकास पथ पर निरंतर अग्रसर है, नेतृत्व की स्पष्ट दृष्टि और दूरगामी सोच निर्णायक भूमिका निभाती है।

मुझे यह जानकर विशेष प्रसन्नता हो रही है कि "विकसित उत्तराखंड : माननीय राज्यपाल के पंच स्वप्न और संदृष्टि" शीर्षक से प्रकाशित हो रही यह पुस्तक माननीय राज्यपाल महोदय, उत्तराखण्ड तथा कुलाधिपति, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय-हल्द्वानी, लेफ्टिनेंट जनरल (सेवानिवृत्त) गुरमीत सिंह जी की राज्य विकास संबंधी संदृष्टि का व्यवस्थित एवं अकादमिक प्रलेखन प्रस्तुत करती है। पुस्तक में सम्मिलित पाँच मिशन—पलायन रोकथाम एवं रिवर्स माइग्रेशन, महिला सशक्तीकरण एवं बालिका शिक्षा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं प्रौद्योगिकी, जैविक एवं प्राकृतिक कृषि, तथा स्वास्थ्य एवं वेलनेस—राज्य के समग्र एवं संतुलित विकास के महत्वपूर्ण आयामों को रेखांकित करते हैं।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय सदैव ज्ञान के लोकतंत्रीकरण, समाजोपयोगी शोध तथा नीति-प्रासंगिक अकादमिक गतिविधियों को प्रोत्साहित करने के लिए प्रतिबद्ध रहा है। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक शोधार्थियों, नीति-निर्माताओं तथा प्रशासनिक अधिकारियों के लिए एक महत्वपूर्ण संदर्भ सामग्री सिद्ध होगी और राज्य के विकास विमर्श को नई दिशा प्रदान करेगी।

मैं इस पुस्तक के संपादक डॉ. गगन सिंह तथा डॉ. मंजरी अग्रवाल एवं समस्त योगदानकर्ता लेखकों को उनके शैक्षणिक परिश्रम तथा उत्कृष्ट संपादकीय प्रयास के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह कृति माननीय राज्यपाल महोदय की संदृष्टि को व्यापक जनमानस तक पहुँचाने तथा विकसित उत्तराखण्ड के संकल्प को साकार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

मैं इस महत्वपूर्ण प्रकाशन की सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

प्रो. नवीन चन्द्र लोहनी
कुलपति
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

आभार ज्ञापन (Acknowledgement)

किसी भी अकादमिक पुस्तक का प्रकाशन केवल संपादकीय प्रयास का परिणाम नहीं होता, बल्कि यह अनेक व्यक्तित्वों की प्रेरणा, संस्थागत सहयोग तथा सामूहिक परिश्रम का प्रतिफल होता है। प्रस्तुत पुस्तक "विकसित उत्तराखंड : माननीय राज्यपाल के पंच स्वप्न और संदृष्टि" भी इसी सामूहिक चिंतन एवं शैक्षणिक प्रतिबद्धता का साकार स्वरूप है।

सर्वप्रथम, हम माननीय राज्यपाल, उत्तराखण्ड तथा कुलाधिपति, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय-हल्द्वानी, लेफ्टिनेंट जनरल (सेवानिवृत्त) गुरमीत सिंह महोदय के प्रति अपनी विनम्र कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। राज्य के समग्र एवं संतुलित विकास के प्रति उनकी प्रतिबद्धता तथा दूरदर्शी संदृष्टि ही इस पुस्तक की मूल प्रेरणा है; उनकी पंच मिशनों की परिकल्पना के बिना यह प्रयास संभव नहीं हो सकता था।

हम उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी के माननीय कुलपति प्रोफेसर नवीन चन्द्र लोहनी जी के प्रति अपनी विशेष कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। उनके दूरदर्शी नेतृत्व, विद्वत्तापूर्ण मार्गदर्शन तथा अनुसंधानोन्मुख अकादमिक वातावरण के सृजन ने इस पुस्तक की संकल्पना को साकार रूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

हम इस पुस्तक के सभी योगदानकर्ता लेखकों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करते हैं, जिन्होंने अपने-अपने विषय क्षेत्रों में गहन अध्ययन, मौलिक चिंतन तथा अनुसंधानपरक दृष्टिकोण के आधार पर उत्कृष्ट अध्याय प्रस्तुत किए हैं। हम उन सभी शिक्षकों, विद्वानों, सहकर्मियों, शोधार्थियों तथा विश्वविद्यालय परिवार के सदस्यों के प्रति भी अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं, जिनके विश्वास, सुझाव, नैतिक समर्थन एवं सद्भावना ने इस कार्य को निरंतर ऊर्जा और प्रेरणा प्रदान की है।

अंततः, हम ज्ञान की अधिष्ठात्री माँ शारदा के प्रति कृतज्ञ हैं, जिनकी असीम कृपा, शक्ति एवं अनुकम्पा से यह कार्य पूर्ण हो पाया है। हमारी हार्दिक कामना है कि यह पुस्तक "विकसित उत्तराखंड" के संकल्प को समझने, उस पर गंभीर अकादमिक विमर्श को समृद्ध करने तथा राज्य के समग्र एवं संतुलित विकास की दिशा में सार्थक बौद्धिक योगदान देने में उपयोगी सिद्ध होगी।

डॉ. मंजरी अग्रवाल
संपादक
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय-हल्द्वानी

डॉ. गगन सिंह
संपादक
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय-हल्द्वानी

डॉ. राजेन्द्र कैडा
संपादक
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय-हल्द्वानी

भूमिका (Introduction)

उत्तराखण्ड, अपने प्राकृतिक सौंदर्य, सांस्कृतिक वैभव तथा आध्यात्मिक विरासत के लिए सुविख्यात, भारत के उन राज्यों में सम्मिलित है जिनकी विकास-यात्रा अनेक भौगोलिक एवं सामाजिक चुनौतियों से होकर गुजरती है। पर्वतीय भूभाग की दुर्गमता, ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों की ओर सतत पलायन, सीमित आर्थिक अवसर तथा असमान अवसंरचनात्मक विकास ने राज्य के समक्ष विशिष्ट चुनौतियाँ प्रस्तुत की हैं। साथ ही, राज्य अपनी जैव विविधता, जल संसाधन, कृषि परंपरा तथा जनशक्ति के बल पर आत्मनिर्भर एवं समावेशी विकास की दिशा में निरंतर अग्रसर भी है।

माननीय राज्यपाल महोदय की राज्य विकास संबंधी संदृष्टि ने इसी संदर्भ में एक स्पष्ट एवं व्यावहारिक दिशा प्रदान की है। उनकी अपेक्षाओं के केंद्र में राज्य का समग्र एवं संतुलित विकास है, जो पलायन की समस्या के समाधान से लेकर महिलाओं एवं बालिकाओं के सशक्तीकरण, आधुनिक तकनीक के उपयोग, प्राकृतिक कृषि पद्धतियों के संवर्धन तथा नागरिकों के स्वास्थ्य एवं समग्र वेलनेस तक विस्तृत है। यह दृष्टि केवल नीतिगत वक्तव्य नहीं, बल्कि राज्य के दीर्घकालिक विकास हेतु एक व्यावहारिक रूपरेखा प्रस्तुत करती है।

प्रस्तुत पुस्तक इसी संदृष्टि को अकादमिक विमर्श के स्तर पर व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने का एक विनम्र प्रयास है। पुस्तक को पाँच प्रमुख मिशनों में विभाजित किया गया है, और प्रत्येक मिशन के अंतर्गत संबंधित विषयों, वर्तमान चुनौतियों, प्रमुख पहलों तथा भावी संभावनाओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। यह बहुविषयक दृष्टिकोण पुस्तक को केवल विवरणात्मक दस्तावेज़ न बनाकर एक विश्लेषणात्मक एवं नीति-प्रासंगिक कृति का स्वरूप प्रदान करता है।

आशा है कि यह पुस्तक विद्यार्थियों, शोधार्थियों, नीति-निर्माताओं, प्रशासनिक अधिकारियों तथा राज्य के विकास विमर्श में रुचि रखने वाले सभी पाठकों के लिए एक उपयोगी संदर्भ ग्रंथ सिद्ध होगी।

प्राक्कथन (Preface)

माननीय राज्यपाल महोदय की अपेक्षाओं एवं राज्य के विकास के प्रति उनकी दूरदर्शी सोच को ध्यान में रखते हुए पुस्तक के लेखन एवं विकास का कार्य प्रारंभ कर दिया गया है। माननीय राज्यपाल महोदय सदैव राज्य के समग्र एवं संतुलित विकास तथा विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति के लिए प्रतिबद्ध रहे हैं। उनकी इसी संदृष्टि एवं विकासात्मक सोच को आधार बनाते हुए पुस्तक को पाँच प्रमुख मिशनों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक मिशन राज्य के विकास के एक महत्वपूर्ण आयाम को समर्पित है तथा इसके अंतर्गत संबंधित विषयों, प्रमुख पहलों एवं विकास की संभावनाओं को समाहित किया जा रहा है।

पुस्तक के पाँच प्रमुख विषयगत क्षेत्र इस प्रकार हैं—पलायन रोकथाम एवं रिवर्स माइग्रेशन, महिला सशक्तीकरण एवं बालिका शिक्षा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) एवं प्रौद्योगिकी, जैविक एवं प्राकृतिक कृषि तथा स्वास्थ्य एवं वेलनेस। यह पाँच मिशन पुस्तक की संपूर्ण संरचना का आधार बनते हैं तथा प्रत्येक मिशन के अंतर्गत संकलित अध्याय संबंधित विषय क्षेत्र का गहन एवं बहुआयामी विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं।

यह पुस्तक किसी एक अनुशासन तक सीमित न रहकर लोक प्रशासन, समाजशास्त्र, शिक्षा, प्रौद्योगिकी, कृषि विज्ञान तथा स्वास्थ्य विज्ञान जैसे विविध ज्ञान-क्षेत्रों के मध्य अंतःविषयक संवाद स्थापित करने का प्रयास करती है। इसका उद्देश्य केवल उपलब्धियों का संकलन प्रस्तुत करना नहीं, बल्कि विकसित उत्तराखण्ड की अवधारणा के विविध आयामों का अकादमिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन उपलब्ध कराना है।

पुस्तक के पाँच मिशनों की संक्षिप्त रूपरेखा निम्नवत् है:

मिशन 1 **पलायन रोकथाम एवं रिवर्स माइग्रेशन :** पर्वतीय क्षेत्रों से जनसंख्या के सतत पलायन ने राज्य के अनेक गाँवों को जनविहीन कर दिया है। यह मिशन पलायन के मूल कारणों, ग्रामीण रोजगार सृजन, स्थानीय संसाधनों पर आधारित आजीविका मॉडल तथा प्रवासी जनसंख्या की वापसी को प्रोत्साहित करने वाली नीतियों एवं पहलों का विश्लेषण करता है।

मिशन 2 **महिला सशक्तीकरण एवं बालिका शिक्षा:** महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक भागीदारी तथा बालिकाओं की शिक्षा राज्य के समावेशी विकास की आधारशिला हैं। यह मिशन महिला उद्यमिता, स्वयं सहायता समूहों, शैक्षणिक अवसरों की समानता तथा नेतृत्वकारी भूमिकाओं में महिलाओं की सहभागिता से जुड़े विषयों को समाहित करता है।

मिशन 3 **कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) एवं प्रौद्योगिकी:** डिजिटल एवं तकनीकी नवाचार राज्य की प्रशासनिक दक्षता, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा तथा कृषि क्षेत्र में परिवर्तनकारी भूमिका निभा सकते हैं। यह मिशन कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल अवसंरचना तथा तकनीकी कौशल विकास के माध्यम से राज्य को भविष्य के लिए तैयार करने की संभावनाओं का अन्वेषण करता है।

मिशन 4 **जैविक एवं प्राकृतिक कृषि:** उत्तराखण्ड की पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ तथा हिमालयी पारिस्थितिकी जैविक एवं प्राकृतिक कृषि के विस्तार हेतु अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करती हैं। यह मिशन जैविक खेती, किसानों की आय वृद्धि, बाजार संपर्क तथा पर्यावरण-अनुकूल कृषि पद्धतियों को प्रोत्साहित करने की रणनीतियों पर केंद्रित है।

मिशन 5 **स्वास्थ्य एवं वेलनेस:** गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच तथा राज्य की समृद्ध वेलनेस एवं योग परंपरा राज्य के समग्र विकास का अभिन्न अंग हैं। यह मिशन स्वास्थ्य अवसंरचना के सुदृढ़ीकरण, आयुष एवं योग आधारित वेलनेस पर्यटन तथा नागरिकों के समग्र स्वास्थ्य कल्याण से संबंधित विषयों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

हमें आशा है कि इस पुस्तक में प्रस्तुत विचार भविष्य के शोधार्थियों, नीति-निर्माताओं तथा युवा विद्वानों के लिए नवीन अनुसंधान की दिशाएँ उद्घाटित करेंगे तथा विकसित उत्तराखण्ड से संबंधित अकादमिक साहित्य को और अधिक समृद्ध करेंगे।

संपादकीय (Editorial)

ज्ञान का वास्तविक उद्देश्य केवल तथ्यों का संचयन नहीं, बल्कि विचारों का परिष्कार, विमर्श का विस्तार तथा समाज एवं राज्य के समक्ष उपस्थित जटिल प्रश्नों के प्रति बौद्धिक उत्तरदायित्व का निर्वहन है। "विकसित उत्तराखंड : माननीय राज्यपाल के पंच स्वप्न और संदृष्टि" इसी बौद्धिक उत्तरदायित्व की भावना से प्रेरित एक सामूहिक शैक्षणिक प्रयास है।

इस पुस्तक के संपादन के दौरान हमारा उद्देश्य किसी एक अनुशासन अथवा क्षेत्रीय दृष्टिकोण तक सीमित रहना नहीं था। इसके विपरीत, हमने यह प्रयास किया कि माननीय राज्यपाल महोदय की संदृष्टि को उन विविध ज्ञान-परंपराओं एवं समकालीन विमर्शों के माध्यम से समझा जाए, जिनके बिना राज्य की विकास-यात्रा का समग्र मूल्यांकन संभव नहीं है। इसी दृष्टि से इस पुस्तक में लोक प्रशासन, समाजशास्त्र, शिक्षा, प्रौद्योगिकी, कृषि विज्ञान तथा स्वास्थ्य विज्ञान जैसे विविध विषयों के विशेषज्ञों को एक साझा बौद्धिक मंच पर आमंत्रित किया गया है। इस बहुविषयक सहभागिता ने इस पुस्तक को केवल लेखों के संकलन तक सीमित न रखकर एक संवादात्मक अकादमिक कृति का स्वरूप प्रदान किया है।

यह पुस्तक किसी विमर्श का अंतिम निष्कर्ष प्रस्तुत करने का दावा नहीं करती है। इसके विपरीत, हमारा उद्देश्य नए प्रश्नों को जन्म देना, नए अनुसंधानों को प्रेरित करना तथा नीति, प्रशासन एवं समाज के मध्य एक रचनात्मक संवाद को प्रोत्साहित करना है। हमें आशा है कि इस पुस्तक में प्रस्तुत विचार पाँचों मिशनों से संबंधित भावी नीति-निर्माण एवं अकादमिक अनुसंधान की दिशाएँ उद्घाटित करेंगे।

हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक विद्यार्थियों, शोधार्थियों, शिक्षकों, लोक-प्रशासकों, नीति-निर्माताओं तथा राज्य के विकास विमर्श में रुचि रखने वाले सभी पाठकों के लिए एक महत्वपूर्ण संदर्भ पुस्तक सिद्ध होगी। यदि यह कृति माननीय राज्यपाल महोदय की संदृष्टि को समझने, उस पर सार्थक अकादमिक विमर्श को प्रोत्साहित करने तथा विकसित उत्तराखण्ड के संकल्प की दिशा में विचारोत्तेजक संवाद स्थापित करने में अपना विनम्र योगदान दे सके, तो यही इसके प्रकाशन का वास्तविक उद्देश्य और सबसे बड़ी सार्थकता होगी।

डॉ. मंजरी अग्रवाल
संपादक
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय-हल्द्वानी

डॉ. गगन सिंह
संपादक
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय-हल्द्वानी

डॉ. राजेन्द्र कैडा
संपादक
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय-हल्द्वानी

प्रतिलोम प्रवासन (Reverse Migration) और स्थानीय शासन की बदलती भूमिका: उत्तराखंड में विकासात्मक प्रशासन का अध्ययन

डॉ0 घनश्याम जोशी
लोक प्रशासन विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

सारांश

उत्तराखंड में प्रतिलोम प्रवासन (रिवर्स माइग्रेशन) ने विकास, प्रशासन तथा स्थानीय शासन से जुड़े विमर्श को नई दिशा प्रदान की है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य प्रतिलोम प्रवासन को केवल एक नीतिगत विषय के रूप में नहीं, बल्कि विकासात्मक प्रशासन एवं विकेन्द्रीकृत शासन की प्रभावशीलता के संदर्भ में विश्लेषित करना है। अध्ययन में यह प्रतिपादित किया गया है कि कोविड- 19 के पश्चात उत्पन्न परिस्थितियों ने ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय संसाधनों, उद्यमिता, सामुदायिक सहभागिता तथा ग्राम-स्तरीय संस्थाओं की भूमिका को पुनर्परिभाषित किया है। शोध में ग्राम पंचायतों, पंचायती राज संस्थाओं, स्वयं सहायता समूहों तथा सरकारी विकास पहलों के माध्यम से ग्रामीण पुनर्जीवन की संभावनाओं का विश्लेषण किया गया है। साथ ही, पलायन निवारण आयोग, वाइब्रेंट विलेज कार्यक्रम, स्वरोजगार योजनाओं, डिजिटल सुशासन तथा ग्राम-केंद्रित विकास मॉडल के संदर्भ में विकासात्मक प्रशासन की बदलती प्रकृति का मूल्यांकन किया गया है। अध्ययन का निष्कर्ष

है कि प्रभावी स्थानीय शासन, सुशासन आधारित प्रशासनिक सुधार तथा जनभागीदारी पर आधारित 'विकास रणनीति' प्रतिलोम प्रवासन को "विकसित उत्तराखंड 2047" की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण विकासात्मक अवसर में परिवर्तित कर सकती है।

कुंजी शब्द(Key Word): प्रतिलोम प्रवासन, विकासात्मक प्रशासन, स्थानीय शासन, पंचायती राज, सुशासन, ग्रामीण विकास, उत्तराखंड, विकसित उत्तराखंड 2047

प्रस्तावना

उत्तराखण्ड के सन्दर्भ में विकास-विमर्श लंबे समय तक पर्वतीय क्षेत्रों से मैदानी नगरों की ओर होने वाले निरंतर प्रवासन के इर्द-गिर्द केंद्रित रहा है। राज्य गठन के पश्चात यह अपेक्षा की गई थी कि पृथक राज्य बनने से स्थानीय आकांक्षाओं के अनुरूप विकास होगा तथा रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं आधारभूत सुविधाओं के विस्तार के माध्यम से पर्वतीय क्षेत्रों से होने वाले पलायन की गति धीमी पड़ेगी। किंतु पिछले दो दशकों के अनुभव यह संकेत करते हैं कि राज्य निर्माण के बावजूद पर्वतीय जिलों में आर्थिक अवसरों की सीमित उपलब्धता, कृषि की घटती उत्पादकता, आधारभूत सेवाओं की असमान पहुँच तथा क्षेत्रीय विकास में विद्यमान विषमताओं ने प्रवासन की प्रवृत्ति को पूरी तरह समाप्त नहीं होने दिया। परिणामस्वरूप अनेक गाँव जनसंख्या क्षरण, श्रमशक्ति के अभाव तथा सामाजिक-आर्थिक निष्क्रियता

जैसी चुनौतियों का सामना करने लगे (जोशी, 2018; ममगई एवं रेड्डी, 2017)।

हालाँकि हाल के वर्षों में इस विमर्श में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई देता है। अब चर्चा का केंद्र केवल प्रवासन (Out-Migration) नहीं, बल्कि प्रतिलोम प्रवासन (Reverse Migration) भी बन चुका है। विशेष रूप से कोविड-19 महामारी के दौरान बड़ी संख्या में प्रवासी उत्तराखंड वापस लौटे, जिससे नीति-निर्माताओं, प्रशासन तथा स्थानीय स्वशासी संस्थाओं के समक्ष एक नया प्रश्न उपस्थित हुआ कि लौटने वाले मानव संसाधन को स्थानीय अर्थव्यवस्था से किस प्रकार जोड़ा जाए। इसने यह स्पष्ट किया कि प्रतिलोम प्रवासन को केवल अस्थायी सामाजिक घटना के रूप में नहीं देखा जा सकता, बल्कि इसे ग्रामीण पुनर्जीवन, स्थानीय आर्थिक पुनर्संरचना तथा समावेशी विकास के अवसर के रूप में भी समझना आवश्यक है। इस प्रकार प्रतिलोम प्रवासन ने विकास संबंधी विमर्श को जनसंख्या परिवर्तन के अध्ययन से आगे बढ़ाकर प्रशासनिक नवाचार, संस्थागत समन्वय तथा स्थानीय विकास रणनीतियों के प्रश्नों से जोड़ दिया।

विकासात्मक प्रशासन की अवधारणा इसी संदर्भ में विशेष महत्व ग्रहण करती है। पारंपरिक प्रशासन जहाँ मुख्यतः कानून-व्यवस्था, राजस्व एवं नियमित प्रशासनिक कार्यों तक सीमित था, वहीं विकासात्मक प्रशासन का उद्देश्य सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन को योजनाबद्ध ढंग से गति प्रदान करना है। इसका मूल आधार केवल योजनाओं का क्रियान्वयन नहीं, बल्कि

स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप संसाधनों का समन्वय, जनसहभागिता, संस्थागत उत्तरदायित्व तथा परिणामोन्मुख प्रशासनिक व्यवस्था का निर्माण है। विशेषतः पर्वतीय राज्यों में विकासात्मक प्रशासन का स्वरूप अधिक जटिल हो जाता है, क्योंकि यहाँ भौगोलिक विषमता, सीमित संसाधन, प्राकृतिक आपदाओं की संवेदनशीलता तथा अवसंरचनात्मक चुनौतियाँ विकास प्रक्रिया को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं। अतः उत्तराखंड में प्रतिलोम प्रवासन की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि प्रशासन स्थानीय स्तर पर आजीविका, आधारभूत सेवाओं तथा आर्थिक अवसरों का कितना प्रभावी विस्तार कर पाता है।

इसी कारण स्थानीय शासन की भूमिका पहले की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक एवं रणनीतिक हो गई है। ग्राम पंचायतें/ग्राम सभाएँ, स्वयं सहायता समूह, महिला मंगल दल, सहकारी संस्थाएँ तथा अन्य सामुदायिक संगठन अब केवल स्थानीय प्रशासनिक इकाइयाँ नहीं रह गए हैं, बल्कि ग्रामीण विकास, सामाजिक पूंजी निर्माण तथा स्थानीय आर्थिक गतिविधियों के संवाहक के रूप में उभर रहे हैं। विकेन्द्रीकृत शासन व्यवस्था स्थानीय आवश्यकताओं को बेहतर ढंग से पहचानने, सामुदायिक सहभागिता को प्रोत्साहित करने तथा योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यही कारण है कि प्रतिलोम प्रवासन के संदर्भ में स्थानीय शासन का मूल्यांकन केवल प्रशासनिक दक्षता के आधार पर नहीं, बल्कि ग्रामीण पुनर्जीवन की क्षमता के आधार पर भी किया जाने लगा है।

वास्तव में प्रतिलोम प्रवासन को केवल जनसंख्या की वापसी के रूप में देखना इस जटिल प्रक्रिया का अत्यधिक सरलीकरण होगा। यदि लौटने वाले व्यक्तियों को पर्याप्त रोजगार, बाजार, कौशल विकास, उद्यमिता सहायता, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाएँ तथा डिजिटल अवसंरचना उपलब्ध नहीं होती, तो उनका पुनः पलायन लगभग निश्चित हो जाता है, इसलिए प्रतिलोम प्रवासन मूलतः विकासात्मक प्रशासन की क्षमता, संस्थागत समन्वय तथा स्थानीय शासन की प्रभावशीलता की परीक्षा है। यह प्रशासन के लिए केवल पुनर्वास का प्रश्न नहीं, बल्कि ऐसी ग्रामीण अर्थव्यवस्था के निर्माण का दायित्व है जो स्थानीय युवाओं को सम्मानजनक आजीविका प्रदान कर सके तथा प्रवासन को विवशता के बजाय विकल्प में परिवर्तित कर दे (बुटोला, 2020; ममगई एवं रेड्डी, 2017)।

कोविड-19 महामारी ने इस विमर्श को और अधिक व्यापक बना दिया है। महामारी के दौरान हुए बड़े पैमाने पर प्रतिलोम प्रवासन ने यह स्पष्ट किया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय संसाधनों, कृषि, पर्यटन, कुटीर उद्योग, डिजिटल सेवाओं तथा उद्यमिता की अपार संभावनाएँ विद्यमान हैं, किन्तु इनके समुचित दोहन हेतु सक्षम प्रशासनिक ढाँचे एवं संस्थागत सहयोग की आवश्यकता है। महामारी के पश्चात राज्य सरकारों तथा स्थानीय निकायों ने भी यह अनुभव किया कि केवल राहत एवं पुनर्वास पर्याप्त नहीं हैं; बल्कि दीर्घकालिक ग्रामीण विकास, रोजगार सृजन तथा स्थानीय आर्थिक परिसंपत्तियों के सुदृढ़ीकरण के बिना प्रतिलोम प्रवासन को स्थायी रूप नहीं

दिया जा सकता। इस दृष्टि से महामारी ने विकासात्मक प्रशासन की प्राथमिकताओं को पुनर्परिभाषित करने का कार्य किया है।

वर्तमान परिदृश्य में उत्तराखंड की विकास रणनीति को 'विकसित उत्तराखंड 2047' तथा 'विकसित भारत 2047' की राष्ट्रीय विकास दृष्टि से पृथक करके नहीं देखा जा सकता है। आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था, सुशासन, जनभागीदारी, उद्यमिता, डिजिटल समावेशन, सतत पर्यटन, कृषि विविधीकरण तथा स्थानीय संसाधनों के मूल्य संवर्धन जैसे तत्व इसी व्यापक विकास दृष्टि के अभिन्न अंग हैं। यदि विकासात्मक प्रशासन स्थानीय शासन संस्थाओं के साथ प्रभावी समन्वय स्थापित करते हुए इन लक्ष्यों को धरातल पर क्रियान्वित करने में सफल होता है, तो प्रतिलोम प्रवासन केवल जनसंख्या की वापसी तक सीमित नहीं रहेगा, बल्कि उत्तराखंड के संतुलित, समावेशी एवं आत्मनिर्भर ग्रामीण विकास का आधार भी बन सकता है। यही इस अध्ययन का मूल वैचारिक आधार है।

उत्तराखंड में प्रतिलोम प्रवासन की पृष्ठभूमि एवं विकासात्मक प्रशासन की चुनौतियाँ

उत्तराखंड में प्रतिलोम प्रवासन को समझने के लिए केवल प्रवासन के कारणों का विश्लेषण पर्याप्त नहीं है। वस्तुतः यह विषय विकासात्मक प्रशासन की प्रभावशीलता, संस्थागत उत्तरदायित्व तथा क्षेत्रीय विकास की प्रकृति से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। पर्वतीय क्षेत्रों से होने वाला दीर्घकालिक पलायन

केवल आर्थिक अवसरों की कमी का परिणाम नहीं रहा, बल्कि यह विभिन्न प्रशासनिक, संस्थागत तथा विकासात्मक असंतुलनों का संचयी प्रभाव है। इसलिए प्रतिलोम प्रवासन की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि राज्य की विकास व्यवस्था इन संरचनात्मक चुनौतियों को किस सीमा तक दूर कर पाती है। इस संदर्भ में प्रशासनिक दृष्टिकोण समस्या के कारणों से अधिक उन संस्थागत व्यवस्थाओं पर बल देता है, जो ग्रामीण क्षेत्रों को पुनः जीवंत बनाने की क्षमता रखती हैं।

उत्तराखंड के पर्वतीय एवं मैदानी क्षेत्रों के मध्य विद्यमान क्षेत्रीय आर्थिक असमानता विकासात्मक प्रशासन के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती के रूप में उभरती है। राज्य के अधिकांश औद्योगिक निवेश, सेवा क्षेत्र का विस्तार तथा शहरी आर्थिक गतिविधियाँ मुख्यतः देहरादून, हरिद्वार, ऊधम सिंह नगर, काशीपुर तथा पंतनगर/रुद्रपुर जैसे मैदानी क्षेत्रों तक सीमित रही हैं। इसके विपरीत पर्वतीय जिलों की अर्थव्यवस्था आज भी सीमित कृषि, मौसमी पर्यटन तथा सरकारी रोजगार पर अत्यधिक निर्भर है। परिणामस्वरूप विकास के अवसरों का असमान वितरण निरंतर बना रहा है। यह स्थिति केवल आय की विषमता तक सीमित नहीं है, बल्कि सार्वजनिक निवेश, बाजार तक पहुँच तथा निजी उद्यमिता के अवसरों में भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। विकासात्मक प्रशासन के लिए यह एक ऐसी चुनौती है जिसमें संसाधनों का न्यायसंगत क्षेत्रीय वितरण तथा संतुलित आर्थिक नियोजन अनिवार्य हो जाता है (अवस्थी, 2017; तरागी एवं चन्द, 2017)।

इसी प्रकार कृषि क्षेत्र का संकट भी प्रशासनिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। उत्तराखंड की पर्वतीय कृषि छोटे एवं बिखरे हुए जोतों, वर्षा आधारित खेती, सीमित सिंचाई सुविधाओं तथा यंत्रीकरण के अभाव से प्रभावित रही है। बदलती जलवायु परिस्थितियों तथा उत्पादन लागत में वृद्धि ने पारंपरिक कृषि को अपेक्षाकृत कम लाभकारी बना दिया है। फलस्वरूप कृषि धीरे-धीरे जीविकोपार्जन का स्थायी आधार बनने के बजाय पूरक गतिविधि के रूप में सीमित होती गई है। यहाँ यह समझना आवश्यक है कि कृषि संकट केवल उत्पादन का संकट नहीं है, बल्कि ग्रामीण विकास प्रशासन की योजना निर्माण, कृषि विस्तार सेवाओं, विपणन अवसंरचना तथा मूल्य संवर्धन तंत्र की सीमाओं का भी संकेतक है। यदि स्थानीय स्तर पर कृषि, बागवानी, औषधीय पौधों, जैविक खेती तथा कृषि-आधारित सूक्ष्म उद्योगों को एकीकृत विकास रणनीति का हिस्सा बनाया जाए, तो प्रतिलोम प्रवासन को स्थायी आधार प्रदान किया जा सकता है (खान एवं अन्य, 2016; तरागी एवं चन्द, 2017)।

रोजगार के प्रश्न को भी केवल बेरोजगारी की समस्या के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। विकासात्मक प्रशासन के परिप्रेक्ष्य में यह स्थानीय अर्थव्यवस्था की उत्पादक क्षमता, उद्यमिता के वातावरण तथा कौशल आधारित विकास मॉडल से जुड़ा विषय है। उत्तराखंड के अनेक पर्वतीय क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों का अभाव युवाओं को बाह्य क्षेत्रों की ओर आकर्षित करता रहा है। दूसरी ओर, कोविड-19 के बाद लौटे अनेक प्रवासी विविध प्रकार के कौशल एवं अनुभव के साथ अपने गाँव वापस आए। यह स्थिति प्रशासन के

लिए चुनौती के साथ-साथ अवसर भी लेकर आई है। यदि प्रशासन इन कौशलों को स्थानीय उत्पादन, पर्यटन, डिजिटल सेवाओं, हस्तशिल्प, खाद्य प्रसंस्करण तथा स्वरोजगार योजनाओं से प्रभावी रूप से जोड़ने में सफल होता है, तो प्रतिलोम प्रवासन ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन का माध्यम बन सकता है। इसके विपरीत यदि लौटे हुए मानव संसाधन का समुचित उपयोग नहीं हो पाया, तो पुनः बाह्य प्रवासन की प्रवृत्ति मजबूत होना स्वाभाविक होगा (खान एवं अन्य, 2016)।

विकासात्मक प्रशासन की चुनौतियाँ शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता से भी गहराई से जुड़ी हुई हैं। उत्तराखंड के अनेक पर्वतीय क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण विद्यालयी शिक्षा, उच्च शिक्षा संस्थान, व्यावसायिक प्रशिक्षण केंद्र तथा आधुनिक स्वास्थ्य सुविधाओं की सीमित उपलब्धता लंबे समय से चिंता का विषय रही हैं। परिणामस्वरूप अनेक परिवार अपने बच्चों की शिक्षा अथवा बेहतर चिकित्सा सेवाओं के उद्देश्य से स्थायी रूप से मैदानी क्षेत्रों में बसने लगे। इस प्रकार शिक्षा एवं स्वास्थ्य केवल सामाजिक क्षेत्र की सेवाएँ नहीं रह जातीं, बल्कि वे जनसंख्या वितरण तथा क्षेत्रीय विकास को प्रभावित करने वाले प्रशासनिक कारक बन जाती हैं। विकासात्मक प्रशासन की सफलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि वह स्थानीय स्तर पर गुणवत्तापूर्ण सार्वजनिक सेवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित कर सके, जिससे नागरिकों को मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु स्थायी रूप से स्थानांतरित होने की आवश्यकता न पड़े (अवस्थी, 2017; यादव एवं अन्य, 2018)।

उत्तराखंड की विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियाँ विकास प्रशासन को अन्य राज्यों की तुलना में अधिक जटिल बनाती हैं। भूस्खलन, बादल फटना, हिमनदीय झीलों से उत्पन्न जोखिम, अतिवृष्टि तथा भूकम्प जैसी प्राकृतिक आपदाएँ केवल मानवीय क्षति ही नहीं पहुँचती, बल्कि सड़क, संचार, पेयजल, विद्युत तथा कृषि अवसंरचना को भी गंभीर रूप से प्रभावित करती हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण इन घटनाओं की तीव्रता एवं आवृत्ति में वृद्धि ने प्रशासनिक क्षमता की नई परीक्षा प्रस्तुत की है। इसलिए प्रतिलोम प्रवासन को स्थायी बनाने के लिए केवल रोजगार योजनाएँ पर्याप्त नहीं हैं; इसके लिए आपदा-रोधी अवसंरचना, जलवायु अनुकूल विकास, जोखिम प्रबंधन तथा त्वरित पुनर्वास तंत्र को विकास प्रशासन का अभिन्न अंग बनाना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, उत्तराखंड में विकासात्मक प्रशासन को 'सतत विकास' और 'आपदा प्रत्यास्थता' (Disaster Resilience) को साथ लेकर चलना होगा।

एक अन्य गंभीर चुनौती सीमांत एवं अंतरराष्ट्रीय सीमा से लगे क्षेत्रों के निरंतर जनसंख्या क्षरण की है। चमोली, पिथौरागढ़ तथा उत्तरकाशी जैसे सीमावर्ती जिलों के अनेक गाँवों में घटती जनसंख्या केवल विकास का प्रश्न नहीं, बल्कि सामरिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। सीमांत क्षेत्रों में स्थायी आबादी का बने रहना स्थानीय अर्थव्यवस्था, सांस्कृतिक निरंतरता तथा राष्ट्रीय सुरक्षा तीनों के लिए आवश्यक है। इस संदर्भ में विकासात्मक प्रशासन की भूमिका पारंपरिक सेवा प्रदाता से आगे बढ़कर सीमा क्षेत्रों में आर्थिक गतिविधियों, पर्यटन, स्थानीय उद्यमिता तथा आधारभूत अवसंरचना के

समन्वित विकास की हो जाती है। इस प्रकार प्रतिलोम प्रवासन का प्रश्न ग्रामीण विकास के साथ-साथ सामरिक प्रशासन (Strategic Administration) के विमर्श से भी जुड़ जाता है।

इसी क्रम में 'घोस्ट विलेज' (Ghost Villages) उत्तराखंड की विकास प्रक्रिया के समक्ष एक गंभीर संकेतक के रूप में उभरते हैं। अनेक गाँवों में जनसंख्या का लगातार कम होना, कृषि भूमि का परित्यक्त होना, सामाजिक संस्थाओं का निष्क्रिय होना तथा स्थानीय अर्थव्यवस्था का कमजोर पड़ना केवल जनसांख्यिकीय परिवर्तन नहीं दर्शाता, बल्कि यह ग्रामीण विकासतंत्र की सीमाओं को भी उजागर करता है। यदि किसी गाँव में विद्यालय, स्वास्थ्य केन्द्र, सड़क, पेयजल, बाजार तथा रोजगार के अवसर क्रमशः समाप्त होते जाते हैं, तो वहाँ जनसंख्या का बने रहना स्वाभाविक रूप से कठिन हो जाता है। इसलिए 'घोस्ट विलेज' की समस्या को केवल प्रवासन के परिणाम के रूप में नहीं, बल्कि विकासात्मक प्रशासन (Developmental Administration) के लिए एक चेतावनी के रूप में देखा जाना चाहिए कि योजनाओं का वास्तविक उद्देश्य ग्रामीण जीवन की दीर्घकालिक स्थिरता होना चाहिए (हॉफमैन एवं अन्य, 2019)।

इन समस्त परिस्थितियों का समेकित विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि उत्तराखंड की चुनौती केवल प्रशासन की पूर्ण विफलता अर्थात् गवर्नेंस फेलियर (Governance Failure) नहीं है। वस्तुतः इसे अधिक उपयुक्त रूप से गवर्नेंस गैप (Governance Gap) कहा जा सकता है। राज्य में अनेक कल्याणकारी

योजनाएँ, ग्रामीण विकास कार्यक्रम, अवसंरचनात्मक परियोजनाएँ तथा आजीविका संवर्धन संबंधी पहलें संचालित हैं, किन्तु विभिन्न विभागों के मध्य समन्वय, स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप योजना निर्माण, प्रभावी क्रियान्वयन, सतत निगरानी तथा संस्थागत अभिसरण में अभी भी पर्याप्त सुधार की आवश्यकता है। विकासात्मक प्रशासन की वास्तविक सफलता तभी सुनिश्चित होगी जब नीतियों, स्थानीय शासन संस्थाओं, सामुदायिक सहभागिता तथा क्षेत्रीय संसाधनों के मध्य एक समेकित विकास ढाँचा स्थापित किया जा सके। इस दृष्टि से प्रतिलोम प्रवासन किसी एक विभाग का विषय नहीं, बल्कि बहु-क्षेत्रीय, बहु-स्तरीय तथा सहभागी विकास प्रशासन की व्यापक परीक्षा है। इसलिए उत्तराखंड में ग्रामीण पुनर्जीवन का भविष्य केवल लोगों की वापसी पर निर्भर नहीं करेगा, बल्कि इस बात पर निर्भर करेगा कि विकासात्मक प्रशासन लौटे हुए मानव संसाधन को अवसर, सुरक्षा, सम्मानजनक आजीविका तथा दीर्घकालिक विकास की संरचना किस सीमा तक उपलब्ध करा पाता है।

प्रतिलोम प्रवासन के संदर्भ में स्थानीय शासन की बदलती भूमिका

प्रतिलोम प्रवासन को दीर्घकालिक रूप से सफल बनाने में स्थानीय शासन की भूमिका केवल योजनाओं के क्रियान्वयन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह ग्रामीण विकास की संपूर्ण प्रशासनिक संरचना का आधार बन चुकी है। यदि विकासात्मक प्रशासन का उद्देश्य स्थानीय संसाधनों का अधिकतम उपयोग, सामाजिक न्याय, आर्थिक सशक्तीकरण तथा सहभागी विकास

सुनिश्चित करना है, तो उसकी वास्तविक सफलता स्थानीय शासन संस्थाओं की सक्रियता पर निर्भर करती है। उत्तराखंड जैसे पर्वतीय राज्य में, जहाँ प्रत्येक क्षेत्र की भौगोलिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ भिन्न हैं, वहाँ एक समान प्रशासनिक मॉडल अपेक्षित परिणाम नहीं दे सकता। ऐसी स्थिति में ग्राम स्तर पर निर्णय लेने वाली संस्थाओं को पर्याप्त अधिकार, संसाधन एवं प्रशासनिक क्षमता प्रदान करना विकासात्मक प्रशासन की अनिवार्य शर्त बन जाता है। इसी कारण प्रतिलोम प्रवासन का प्रश्न अब केवल राज्य सरकार की नीतियों तक सीमित न रहकर ग्राम पंचायतों, ग्राम सभाओं, स्वयं सहायता समूहों तथा सामुदायिक संगठनों की प्रभावशीलता से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ गया है (आइ०आइ०पी०ए०, 2021; कांडपाल, 2024)।

विकेन्द्रीकृत शासन की मूल भावना यह है कि स्थानीय समस्याओं का समाधान स्थानीय समुदाय की भागीदारी से अधिक प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में आजीविका, कृषि, पर्यटन, जल प्रबंधन, वन संसाधन तथा ग्रामीण आधारभूत संरचना की आवश्यकताएँ प्रत्येक क्षेत्र में अलग-अलग हैं। इसलिए योजनाओं का निर्माण केवल शीर्ष स्तर पर नहीं, बल्कि स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप होना चाहिए। इस संदर्भ में विकासात्मक प्रशासन की भूमिका आदेशात्मक प्रशासन (Command Administration) से आगे बढ़कर सहयोगात्मक एवं सहभागी प्रशासन (Collaborative Governance) की हो जाती है। स्थानीय शासन संस्थाएँ प्रशासन और नागरिकों के मध्य सेतु का कार्य करते हुए योजनाओं को

स्थानीय आवश्यकताओं से जोड़ती हैं तथा प्रतिलोम प्रवासन को स्थायी ग्रामीण पुनर्विकास की प्रक्रिया में परिवर्तित करने की क्षमता रखती हैं।

इस पूरी प्रक्रिया में ग्राम पंचायत स्थानीय विकास प्रशासन की सबसे महत्वपूर्ण इकाई के रूप में उभरती है। पंचायत अब केवल नागरिक सुविधाओं के प्रबंधन तक सीमित संस्था नहीं रही है, बल्कि ग्रामीण आर्थिक नियोजन, स्थानीय संसाधनों के उपयोग, रोजगार सृजन तथा सरकारी योजनाओं के अभिसरण की प्रमुख संस्था बनती जा रही है। प्रतिलोम प्रवासन के संदर्भ में ग्राम पंचायतों की भूमिका और अधिक व्यापक हो जाती है, क्योंकि लौटे हुए प्रवासियों के कौशल, अनुभव एवं उद्यमशीलता को स्थानीय विकास से जोड़ने का कार्य सर्वप्रथम पंचायत स्तर पर ही संभव है। यदि पंचायतें स्थानीय संसाधनों का वैज्ञानिक मानचित्रण, ग्राम स्तरीय रोजगार योजनाओं का निर्माण तथा कृषि, पर्यटन, हस्तशिल्प एवं ग्रामीण उद्यमिता के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करें, तो प्रतिलोम प्रवासन ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पुनर्जीवन का प्रभावी माध्यम बन सकता है। इस प्रकार ग्राम पंचायत विकासात्मक प्रशासन की स्थानीय प्रयोगशाला के रूप में कार्य करती है।

इसी प्रकार ग्राम सभा लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का वास्तविक आधार है। ग्राम सभा स्थानीय नागरिकों को नीति निर्माण, प्राथमिकताओं के निर्धारण तथा योजनाओं की सामाजिक निगरानी में प्रत्यक्ष भागीदारी प्रदान करती है। प्रतिलोम प्रवासन की परिस्थितियों में ग्राम सभा केवल अनुमोदन की संस्था नहीं, बल्कि स्थानीय विकास की सामूहिक दृष्टि निर्मित करने वाला मंच बन

सकती है। लौटे हुए युवाओं के कौशल का उपयोग, स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, आजीविका के नए क्षेत्रों की पहचान तथा सामुदायिक आवश्यकताओं के अनुरूप विकास योजनाओं का निर्माण ग्राम सभा की सक्रिय भागीदारी से अधिक प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। इससे विकासात्मक प्रशासन की पारदर्शिता, उत्तरदायित्व एवं सामाजिक वैधता भी सुदृढ़ होती है।

पंचायती राज संस्थाएँ (PRIs) उत्तराखण्ड में विकासात्मक प्रशासन के बहुस्तरीय ढाँचे को सुदृढ़ करने का महत्वपूर्ण माध्यम हैं। त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से ग्राम, क्षेत्र तथा जिला स्तर पर योजनाओं का समन्वय संभव होता है। प्रतिलोम प्रवासन की चुनौती भी बहुआयामी है, इसलिए इसका समाधान केवल किसी एक विभाग अथवा योजना से संभव नहीं है। कृषि, ग्रामीण विकास, पर्यटन, कौशल विकास, पशुपालन, महिला सशक्तीकरण तथा आधारभूत अवसंरचना जैसे विभिन्न क्षेत्रों के मध्य समन्वय स्थापित करने में पंचायती राज संस्थाएँ केन्द्रीय भूमिका निभा सकती हैं। इस प्रकार विकासात्मक प्रशासन का स्थानीयकरण (Localization of Development Administration) वास्तव में पंचायती राज संस्थाओं की प्रशासनिक क्षमता पर निर्भर करता है।

ग्रामीण विकास के वर्तमान परिदृश्य में स्वयं सहायता समूह (Self-Help Groups) केवल वित्तीय समावेशन के साधन नहीं रहे, बल्कि स्थानीय आर्थिक परिवर्तन के प्रमुख वाहक बन चुके हैं। विशेष रूप से महिलाओं के स्वयं सहायता समूहों ने बचत, ऋण, सूक्ष्म उद्यम, खाद्य प्रसंस्करण, जैविक कृषि,

हस्तशिल्प तथा स्थानीय उत्पादों के विपणन में उल्लेखनीय योगदान दिया है। प्रतिलोम प्रवासन के पश्चात लौटे हुए परिवारों को स्थानीय आर्थिक गतिविधियों से जोड़ने में स्वयं सहायता समूहों (SHGs) की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो सकती है। इनके माध्यम से सामूहिक उद्यमिता, स्थानीय उत्पादन तथा बाजार तक पहुँच का विस्तार संभव होता है, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था अधिक आत्मनिर्भर बनती है। यही विकासात्मक प्रशासन का उद्देश्य भी है कि राज्य की योजनाएँ समुदाय आधारित आर्थिक संस्थाओं के माध्यम से स्थानीय स्तर पर स्थायी परिणाम उत्पन्न करें (आइ०आइ०पी०ए०, 2021)।

उत्तराखण्ड की विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना में महिला मंगल दल जैसी संस्थाओं का विशेष महत्व है। जल संरक्षण, वन प्रबंधन, स्वच्छता, सामुदायिक श्रमदान तथा सामाजिक जागरूकता जैसे क्षेत्रों में इन संगठनों ने लंबे समय से सक्रिय भूमिका निभाई है। आज प्रतिलोम प्रवासन के संदर्भ में इनकी भूमिका और अधिक व्यापक हो सकती है। लौटे हुए परिवारों के सामाजिक पुनर्समायोजन, स्थानीय उत्पादों के प्रोत्साहन, महिला उद्यमिता तथा सामुदायिक सहयोग की भावना को मजबूत करने में महिला मंगल दल महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। विकासात्मक प्रशासन के दृष्टिकोण से यह संस्थाएँ सामाजिक पूँजी (Social Capital) का निर्माण करती हैं, जो किसी भी ग्रामीण विकास मॉडल की दीर्घकालिक सफलता का आधार होती है।

इसी प्रकार सहकारी संस्थाएँ (Cooperatives) स्थानीय अर्थव्यवस्था को संगठित एवं प्रतिस्पर्धी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। दुग्ध उत्पादन, बागवानी, औषधीय पौधों, जैविक उत्पादों तथा स्थानीय हस्तशिल्प के क्षेत्र में सहकारिता आधारित मॉडल छोटे उत्पादकों को सामूहिक विपणन, प्रसंस्करण तथा मूल्य संवर्धन के अवसर उपलब्ध करा सकता है। प्रतिलोम प्रवासन के पश्चात यदि लौटे हुए युवाओं को सहकारी संस्थाओं से जोड़ा जाए, तो व्यक्तिगत रोजगार की अपेक्षा सामुदायिक आर्थिक विकास की दिशा में अधिक स्थायी परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। इस प्रकार सहकारिता विकासात्मक प्रशासन के आर्थिक आयाम को स्थानीय स्तर पर मजबूत करती है।

प्रतिलोम प्रवासन की सफलता का सबसे महत्वपूर्ण आधार जनभागीदारी (Public Participation) है। किसी भी सरकारी योजना की प्रभावशीलता केवल उसके बजटीय आकार से निर्धारित नहीं होती, बल्कि इस बात से निर्धारित होती है कि स्थानीय समुदाय उसे कितना अपना मानता है। जब ग्रामीण नागरिक स्वयं योजना निर्माण, संसाधन प्रबंधन, सामाजिक अंकेक्षण तथा निगरानी की प्रक्रिया में भाग लेते हैं, तब विकास कार्यक्रम अधिक उत्तरदायी एवं परिणामोन्मुख बनते हैं। उत्तराखंड जैसे राज्य में, जहाँ सामुदायिक परंपराएँ और सामाजिक सहयोग की समृद्ध विरासत विद्यमान है, वहाँ जनभागीदारी विकासात्मक प्रशासन को अधिक प्रभावी बनाने का स्वाभाविक माध्यम बन सकती है (कांडपाल, 2024)।

विकेन्द्रीकृत शासन की सफलता केवल प्रशासनिक अधिकारों के हस्तांतरण से संभव नहीं होती; इसके लिए राजकोषीय विकेन्द्रीकरण (Fiscal Decentralization) भी समान रूप से आवश्यक है। यदि ग्राम पंचायतों को पर्याप्त वित्तीय संसाधन, व्यय की स्वायत्तता तथा स्थानीय प्राथमिकताओं के अनुसार योजना निर्माण की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होगी, तो वे केवल उच्च स्तर से प्राप्त निर्देशों का पालन करने वाली संस्थाएँ बनकर रह जाएँगी। प्रतिलोम प्रवासन जैसी जटिल चुनौती के समाधान के लिए स्थानीय निकायों को परिस्थिति के अनुसार संसाधनों का उपयोग करने की क्षमता प्रदान करना अनिवार्य है। वित्तीय सशक्तीकरण के बिना स्थानीय शासन की उत्तरदायित्वपूर्ण भूमिका सीमित रह जाती है, जबकि पर्याप्त वित्तीय स्वायत्तता विकासात्मक प्रशासन को अधिक लचीला एवं स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप बनाती है।

इसी संदर्भ में स्थानीय विकास नियोजन (Local Development Planning) का महत्व बढ़ जाता है। प्रत्येक ग्राम पंचायत की भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक संसाधन, जनसंख्या संरचना तथा आर्थिक संभावनाएँ भिन्न होती हैं। इसलिए प्रतिलोम प्रवासन के लिए एक समान नीति सभी क्षेत्रों में समान परिणाम नहीं दे सकती। स्थानीय संसाधनों का वैज्ञानिक आकलन, मानव संसाधन का कौशल मानचित्रण तथा ग्राम-विशिष्ट विकास योजनाओं का निर्माण ही दीर्घकालिक समाधान प्रस्तुत कर सकता है। विकासात्मक प्रशासन का आधुनिक दृष्टिकोण भी इसी बात पर बल देता है कि योजनाएँ ऊपर से

नीचे (Top-down) नहीं, बल्कि नीचे से ऊपर (Bottom-up) की प्रक्रिया के माध्यम से निर्मित हों।

अंततः यह स्पष्ट होता है कि उत्तराखण्ड में प्रतिलोम प्रवासन की सफलता किसी एक योजना अथवा विभाग की उपलब्धि नहीं होगी। इसके लिए विकासात्मक प्रशासन, पंचायती राज संस्थाएँ, ग्राम सभाएँ, स्वयं सहायता समूह, महिला मंगल दल, सहकारी संस्थाएँ तथा स्थानीय समुदायों के मध्य सशक्त समन्वय आवश्यक है। जब विकेन्द्रीकृत शासन, वित्तीय सशक्तीकरण, स्थानीय नियोजन तथा जनभागीदारी एकीकृत रूप से कार्य करेंगे, तभी प्रतिलोम प्रवासन ग्रामीण पुनर्जीवन की स्थायी प्रक्रिया में परिवर्तित होगा। इस प्रकार स्थानीय शासन केवल प्रशासनिक ढाँचा नहीं, बल्कि विकसित, आत्मनिर्भर एवं समावेशी उत्तराखंड के निर्माण का केंद्रीय आधार बनकर उभरता है (आइ०आइ०पी०ए०, 2021; कांडपाल, 2024).

उत्तराखंड में विकासात्मक प्रशासन, सुशासन एवं सरकारी नीतियों की भूमिका: प्रतिलोम प्रवासन की नई संभावनाएँ

उत्तराखण्ड में प्रतिलोम प्रवासन की सफलता केवल सामाजिक या आर्थिक कारकों पर निर्भर नहीं करती, बल्कि यह राज्य की विकास नीतियों, प्रशासनिक नवाचारों तथा सुशासन आधारित संस्थागत क्षमता का भी प्रतिफल है। पिछले कुछ वर्षों में राज्य सरकार द्वारा ग्रामीण अर्थव्यवस्था, सीमांत क्षेत्रों के विकास, उद्यमिता संवर्द्धन (Entrepreneurship Promotion)

तथा आधारभूत अवसंरचना (Basic infrastructure) के विस्तार के लिए अनेक ऐसी पहलें की गई हैं, जिन्होंने प्रतिलोम प्रवासन को केवल पुनर्वास की प्रक्रिया न मानकर ग्रामीण पुनर्निर्माण के अवसर के रूप में देखने की दिशा प्रदान की है। इस दृष्टि से उत्तराखंड का विकासात्मक प्रशासन धीरे-धीरे पारंपरिक कल्याणकारी प्रशासन से आगे बढ़कर परिणामोन्मुख, नवाचार आधारित तथा सहभागी प्रशासनिक मॉडल की ओर अग्रसर दिखाई देता है। यह परिवर्तन सुशासन (Good Governance) की उस अवधारणा से भी जुड़ा है, जिसमें पारदर्शिता, उत्तरदायित्व, दक्षता, जनसहभागिता तथा तकनीक आधारित सेवा वितरण को विकास का आधार माना गया है।

प्रतिलोम प्रवासन की चुनौती को संस्थागत रूप से संबोधित करने के उद्देश्य से राज्य सरकार द्वारा 'उत्तराखण्ड ग्रामीण विकास एवं पलायन निवारण आयोग' (Uttarakhand Rural Development and Migration Prevention Commission) की स्थापना एक महत्वपूर्ण प्रशासनिक पहल रही है। यह आयोग केवल पलायन के कारणों का अध्ययन करने तक सीमित नहीं है, बल्कि ग्रामीण विकास, स्थानीय आजीविका, विभागीय समन्वय तथा नीति सुधार के लिए सुझाव प्रस्तुत करने वाली एक विशिष्ट संस्थागत व्यवस्था के रूप में कार्य करता है। आयोग की विभिन्न रिपोर्टों ने यह स्पष्ट किया है कि प्रतिलोम प्रवासन की स्थिरता केवल रोजगार उपलब्ध कराने से संभव नहीं होगी, बल्कि इसके लिए ग्राम स्तर पर बहु-क्षेत्रीय विकास, स्थानीय उद्यमिता तथा प्रशासनिक समन्वय आवश्यक है। इस प्रकार आयोग ने पलायन को एक

पृथक सामाजिक समस्या के बजाय विकास प्रशासन के समेकित विषय के रूप में स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

उत्तराखंड के सीमावर्ती क्षेत्रों के संदर्भ में 'वाइब्रेंट विलेज प्रोग्राम' (Vibrant Village Programme) विशेष महत्व रखता है। लंबे समय तक सीमा से लगे अनेक गाँव आधारभूत सुविधाओं की कमी तथा सीमित आर्थिक अवसरों के कारण जनसंख्या क्षरण का सामना करते रहे। वर्तमान नीति दृष्टिकोण में इन गाँवों को केवल सुरक्षा की दृष्टि से नहीं, बल्कि आर्थिक एवं सामाजिक विकास के केंद्रों के रूप में विकसित करने का प्रयास किया जा रहा है। सड़क, दूरसंचार, पर्यटन, आजीविका तथा सामुदायिक अवसंरचना का एकीकृत विकास सीमांत क्षेत्रों में स्थायी आबादी को बनाए रखने तथा प्रतिलोम प्रवासन को प्रोत्साहित करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। यह दृष्टिकोण स्पष्ट करता है कि राष्ट्रीय सुरक्षा और ग्रामीण विकास परस्पर पूरक अवधारणाएँ हैं, न कि पृथक नीति क्षेत्र।

ग्रामीण अवसंरचना का सुदृढ़ीकरण विकासात्मक प्रशासन का आधार है। प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (PMGSY) तथा राज्य सरकार की ग्रामीण सड़क परियोजनाओं ने दूरस्थ गाँवों को जिला मुख्यालयों एवं स्थानीय बाजारों से जोड़ने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। बेहतर सड़क संपर्क केवल आवागमन को सुगम नहीं बनाता, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि विपणन, पर्यटन तथा निवेश के अवसरों का भी विस्तार करता है। इसी क्रम में 'चारधाम ऑल-वैदर सड़क परियोजना' (Char Dham All Weather Connectivity Project)

ने पर्वतीय क्षेत्रों की कनेक्टिविटी को नई गति प्रदान की है। यद्यपि इस परियोजना पर पर्यावरणीय विमर्श भी समानांतर रूप से चलता रहा है, तथापि विकासात्मक प्रशासन के दृष्टिकोण से इसने धार्मिक पर्यटन, स्थानीय व्यापार, सेवा क्षेत्र तथा रोजगार सृजन की संभावनाओं में उल्लेखनीय वृद्धि की है। प्रतिलोम प्रवासन के संदर्भ में बेहतर संपर्क व्यवस्था स्थानीय अर्थव्यवस्था को राष्ट्रीय बाजार से जोड़ने वाला महत्वपूर्ण माध्यम सिद्ध हो सकती है।

उत्तराखण्ड सरकार ने ग्रामीण उद्यमिता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से अनेक स्वरोजगार आधारित योजनाएँ प्रारम्भ की हैं। पंडित दीनदयाल उपाध्याय होमस्टे योजना तथा पर्यटन आधारित होमस्टे मॉडल ने पर्वतीय क्षेत्रों में स्थानीय परिवारों के लिए आय का एक नया स्रोत विकसित किया है। इसके साथ ही मुख्यमंत्री स्वरोजगार योजना ने युवाओं, महिलाओं तथा लौटे हुए प्रवासियों को स्थानीय स्तर पर स्वरोजगार स्थापित करने हेतु वित्तीय सहायता एवं संस्थागत सहयोग उपलब्ध कराया है। इन योजनाओं की विशेषता यह है कि वे रोजगार उपलब्ध कराने की पारंपरिक अवधारणा से आगे बढ़कर उद्यमिता आधारित विकास मॉडल को प्रोत्साहित करती हैं। इससे स्थानीय मानव संसाधन को अपने ही क्षेत्र में आर्थिक अवसर प्राप्त होते हैं तथा प्रतिलोम प्रवासन अधिक टिकाऊ स्वरूप ग्रहण करता है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विविधीकरण की दिशा में **'मुख्यमंत्री सौर स्वरोजगार योजना'** (Chief Minister's Solar Self Employment Scheme) **भी**

उल्लेखनीय पहल है। उत्तराखण्ड की भौगोलिक परिस्थितियाँ सौर ऊर्जा उत्पादन की पर्याप्त संभावनाएँ प्रदान करती हैं। इस योजना के माध्यम से स्थानीय नागरिकों को ऊर्जा उत्पादन को आय के स्रोत में परिवर्तित करने का अवसर उपलब्ध कराया गया है। विकासात्मक प्रशासन की दृष्टि से यह योजना पर्यावरणीय स्थिरता, हरित ऊर्जा तथा स्थानीय आर्थिक सशक्तीकरण के बीच समन्वय स्थापित करती है। यदि ऊर्जा आधारित स्थानीय उद्यमों का विस्तार होता है, तो यह ग्रामीण क्षेत्रों में वैकल्पिक रोजगार सृजन तथा प्रतिलोम प्रवासन की स्थिरता दोनों को प्रोत्साहित करेगा।

स्थानीय उत्पादों को राष्ट्रीय एवं वैश्विक बाजार से जोड़ने के लिए राज्य सरकार द्वारा प्रारम्भ किए गए 'वन डिस्ट्रिक्ट टू प्रोडक्ट' (ODTP) कार्यक्रम तथा 'हाउस ऑफ हिमालयाज' (House of Himalayas) ब्रांडिंग पहल विकासात्मक प्रशासन के नवाचारपूर्ण उदाहरण हैं। उत्तराखंड के पारंपरिक कृषि उत्पाद, जैविक अनाज, मसाले, शहद, हस्तशिल्प, हथकरघा उत्पाद तथा स्थानीय कला को संगठित विपणन मंच उपलब्ध कराने से ग्रामीण उत्पादकों की आय में वृद्धि की संभावना बढ़ी है। विशेष रूप से महिलाओं एवं स्वयं सहायता समूहों को स्थानीय उत्पादों के मूल्य संवर्धन तथा विपणन से जोड़ने का प्रयास ग्रामीण अर्थव्यवस्था को अधिक समावेशी बनाता है। प्रतिलोम प्रवासन के संदर्भ में यह पहल अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह स्थानीय संसाधनों पर आधारित रोजगार सृजन को प्रोत्साहित करती है तथा ग्रामीण क्षेत्रों से होने वाले आर्थिक बहिर्गमन को कम करने में सहायक हो सकती है।

वर्तमान समय में विकासात्मक प्रशासन का एक प्रमुख आयाम 'डिजिटल सुशासन' (Digital Governance) भी है। डिजिटल सेवा वितरण, ऑनलाइन अनुमतियाँ, प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (Direct Benefit Transfer), डिजिटल भुगतान प्रणाली तथा ई-गवर्नेंस आधारित प्रशासनिक प्रक्रियाओं ने शासन की पारदर्शिता एवं दक्षता को सुदृढ़ किया है। उत्तराखंड में डिजिटल अवसंरचना का विस्तार ग्रामीण नागरिकों, उद्यमियों तथा स्वयं सहायता समूहों को सरकारी योजनाओं एवं वित्तीय सेवाओं से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। प्रतिलोम प्रवासन के पश्चात लौटे हुए युवाओं के लिए डिजिटल प्लेटफॉर्म आधारित उद्यमिता, ऑनलाइन विपणन तथा डिजिटल सेवाओं के क्षेत्र में नए अवसर भी विकसित हुए हैं। इससे प्रशासनिक सेवाओं की पहुँच बढ़ने के साथ-साथ स्थानीय आर्थिक गतिविधियों का दायरा भी विस्तृत हुआ है।

राज्य सरकार द्वारा स्टार्टअप नीति, निवेश अनुकूल वातावरण तथा इन्वेस्टर्स समिट जैसी पहलों के माध्यम से उत्तराखण्ड में निवेश आकर्षित करने का प्रयास किया गया है। विशेष रूप से निवेश प्रक्रियाओं का सरलीकरण, औद्योगिक नीतियों में सुधार तथा 'रोजगार करने में आसानी' (Ease of Doing Business) पर बल देने से राज्य में निजी निवेश एवं उद्यमिता को प्रोत्साहन मिला है। यद्यपि पर्वतीय क्षेत्रों में निवेश आकर्षित करना अभी भी एक चुनौती बना हुआ है, तथापि नई नीतिगत पहलें यह संकेत देती हैं कि राज्य सरकार विकास को केवल सार्वजनिक व्यय पर आधारित मॉडल तक

सीमित नहीं रखना चाहती, बल्कि सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र की साझेदारी के माध्यम से ग्रामीण एवं पर्वतीय अर्थव्यवस्था को नई गति प्रदान करने का प्रयास कर रही है। यदि निवेश का लाभ स्थानीय रोजगार एवं कौशल विकास से प्रभावी रूप से जोड़ा जाता है, तो प्रतिलोम प्रवासन की प्रक्रिया को दीर्घकालिक आधार प्राप्त हो सकता है।

उत्तराखण्ड में नीति निर्माण को अधिक शोध-आधारित एवं परिणामोन्मुख बनाने की दिशा में 'Centre for Public Policy and Good Governance' (CPPGG) तथा 'State Institute for Empowering and Transforming Uttarakhand' (SETU) जैसी संस्थाओं की भूमिका भी उल्लेखनीय है। ये संस्थाएँ नीति विश्लेषण, प्रशासनिक सुधार, डेटा आधारित निर्णय प्रक्रिया तथा दीर्घकालिक विकास रणनीतियों के निर्माण में सरकार को बौद्धिक सहयोग प्रदान करती हैं। विकासात्मक प्रशासन के आधुनिक दृष्टिकोण में ऐसे नीति संस्थानों का महत्व लगातार बढ़ रहा है, क्योंकि जटिल विकासात्मक चुनौतियों का समाधान केवल प्रशासनिक अनुभव से नहीं, बल्कि साक्ष्य-आधारित नीति निर्माण से भी जुड़ा होता है।

इन समस्त पहलों के केंद्र में सुशासन की वह अवधारणा विद्यमान है, जिसे "न्यूनतम सरकार, अधिकतम शासन (Minimum Government, Maximum Governance)" के सिद्धांत के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। इसका उद्देश्य सरकार की भूमिका को सीमित करना नहीं, बल्कि प्रशासन को अधिक दक्ष, पारदर्शी, उत्तरदायी एवं नागरिक-केंद्रित बनाना है। उत्तराखंड

के संदर्भ में यह सिद्धांत विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि पर्वतीय क्षेत्रों की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति केवल केंद्रीकृत प्रशासनिक नियंत्रण से संभव नहीं है। इसके लिए स्थानीय शासन संस्थाओं का सशक्तीकरण, डिजिटल प्रशासन, जनभागीदारी, संस्थागत समन्वय तथा नीति नवाचार समान रूप से आवश्यक हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि उत्तराखंड में प्रतिलोम प्रवासन की नई संभावनाएँ केवल योजनाओं की संख्या पर निर्भर नहीं करतीं, बल्कि इस बात पर निर्भर करती हैं कि विकासात्मक प्रशासन सुशासन के सिद्धान्तों के अनुरूप स्थानीय संसाधनों, मानव पूंजी तथा सामुदायिक सहभागिता को किस सीमा तक एकीकृत कर पाता है। यही समेकित दृष्टिकोण भविष्य में विकसित, आत्मनिर्भर एवं संतुलित उत्तराखंड की आधारशिला सिद्ध हो सकता है।

निष्कर्ष

उत्तराखण्ड में प्रतिलोम प्रवासन का प्रश्न केवल जनसंख्या की वापसी का विषय नहीं है, बल्कि यह राज्य की विकास-दृष्टि, प्रशासनिक क्षमता तथा स्थानीय शासन की प्रभावशीलता की व्यापक परीक्षा भी है। पिछले दो दशकों के अनुभव यह स्पष्ट करते हैं कि पलायन को केवल आर्थिक समस्या मानकर तैयार की गई नीतियाँ अपेक्षित परिणाम नहीं दे सकीं। इसके विपरीत, वर्तमान परिस्थितियाँ यह संकेत देती हैं कि यदि प्रतिलोम प्रवासन को विकासात्मक प्रशासन, विकेन्द्रीकृत शासन तथा स्थानीय आर्थिक पुनरुत्थान के समन्वित दृष्टिकोण से देखा जाए, तो यही चुनौती उत्तराखण्ड के संतुलित एवं समावेशी

विकास का आधार बन सकती है। अतः आवश्यकता इस बात की नहीं है कि लोगों को केवल अपने गाँव लौटने के लिए प्रेरित किया जाए, बल्कि ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित की जाएँ जिनमें गाँव स्वयं अवसर, नवाचार और सम्मानजनक आजीविका के केन्द्र बन जाएँ।

भविष्य का विकासात्मक प्रशासन पारंपरिक योजनामुखी प्रशासन से भिन्न होगा। इसकी सफलता केवल योजनाओं की संख्या अथवा व्यय की मात्रा से नहीं, बल्कि स्थानीय स्तर पर उत्पन्न होने वाले वास्तविक सामाजिक एवं आर्थिक परिणामों से निर्धारित होगी। उत्तराखण्ड जैसे पर्वतीय राज्य में प्रशासन को भौगोलिक विषमताओं, प्राकृतिक संसाधनों, सांस्कृतिक विशिष्टताओं तथा स्थानीय आकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए क्षेत्र-विशिष्ट विकास मॉडल विकसित करने होंगे। विकासात्मक प्रशासन का आगामी चरण **सहभागी** (Participatory), **प्रौद्योगिकी-सक्षम** (Technology-enabled), **विकेन्द्रीकृत** (Decentralized) **तथा परिणामोन्मुख** (Outcome-oriented) **होना** चाहिए, जहाँ प्रत्येक नीति का मूल्यांकन इस आधार पर किया जाए कि उसने ग्रामीण समाज की जीवन गुणवत्ता, स्थानीय रोजगार तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता में कितना वास्तविक परिवर्तन उत्पन्न किया।

इसी संदर्भ में **ग्राम-केन्द्रित शासन** (Village-centric Governance) उत्तराखण्ड की विकास रणनीति का मूल आधार बन सकता है। लंबे समय तक विकास का प्रवाह नगरों की ओर केन्द्रित रहा, जिसके कारण पर्वतीय गाँवों की उत्पादन क्षमता, मानव संसाधन तथा सामाजिक संरचना क्रमशः कमजोर

होती गई। अब आवश्यकता विकास की दिशा को पुनः गाँवों की ओर मोड़ने की है। ग्राम पंचायतों को केवल योजनाओं के क्रियान्वयन की एजेंसी के रूप में नहीं, बल्कि स्थानीय विकास के रणनीतिक संस्थान के रूप में विकसित करना होगा। ग्राम सभाओं को वास्तविक निर्णय प्रक्रिया में सशक्त भागीदारी, स्थानीय वित्तीय संसाधनों पर अधिक अधिकार तथा ग्राम-विशिष्ट विकास योजनाओं के निर्माण में स्वायत्तता प्रदान करना भविष्य के विकासात्मक प्रशासन की अनिवार्य शर्त होगी।

प्रतिलोम प्रवासन को भी केवल सामाजिक पुनर्वास की प्रक्रिया के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। वास्तव में यह राज्य के लिए एक विकासात्मक अवसर (Development Opportunity) है। वर्षों तक बाहरी राज्यों एवं महानगरों में कार्य कर चुके प्रवासी अपने साथ अनुभव, कौशल, तकनीकी ज्ञान, उद्यमशीलता तथा सामाजिक पूँजी लेकर लौटते हैं। यदि इन क्षमताओं को कृषि विविधीकरण, ग्रामीण पर्यटन, स्थानीय उद्योग, डिजिटल सेवाओं, जैविक उत्पादन, स्टार्टअप संस्कृति तथा सूक्ष्म उद्यमों से प्रभावी रूप से जोड़ा जाए, तो प्रतिलोम प्रवासन उत्तराखण्ड की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में नई गतिशीलता ला सकता है। इस दृष्टि से लौटा हुआ प्रवासी केवल लाभार्थी नहीं, बल्कि ग्रामीण विकास का साझेदार एवं परिवर्तन का वाहक है।

उत्तराखंड की विशिष्ट भौगोलिक स्थिति प्रतिलोम प्रवासन को राष्ट्रीय सुरक्षा के व्यापक परिप्रेक्ष्य से भी जोड़ती है। सीमावर्ती जिलों में घटती जनसंख्या केवल विकासात्मक असंतुलन का संकेत नहीं है, बल्कि यह सीमांत

क्षेत्रों की सामाजिक एवं सामरिक सुदृढ़ता को भी प्रभावित करती है। जीवंत गाँव किसी भी सीमा क्षेत्र की प्रथम सामाजिक सुरक्षा रेखा होते हैं। अतः सीमांत क्षेत्रों में आधारभूत अवसंरचना, आजीविका, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा डिजिटल संपर्क का विस्तार केवल ग्रामीण विकास का कार्यक्रम नहीं, बल्कि दीर्घकालिक राष्ट्रीय हितों से जुड़ा रणनीतिक निवेश भी है। इस दृष्टि से प्रतिलोम प्रवासन सीमांत क्षेत्रों को पुनर्जीवित करने तथा स्थानीय समुदायों को राष्ट्रीय विकास प्रक्रिया में अधिक सशक्त रूप से जोड़ने का माध्यम बन सकता है।

भविष्य की ग्रामीण अर्थव्यवस्था (Rural Economy) का आधार सतत विकास (Sustainable Development) होना चाहिए। उत्तराखण्ड के प्राकृतिक संसाधन, जैव विविधता, जैविक कृषि, बागवानी, औषधीय एवं सुगंधित पौंधे, स्थानीय हस्तशिल्प, धार्मिक एवं पारिस्थितिक पर्यटन, नवीकरणीय ऊर्जा तथा पारंपरिक ज्ञान प्रणाली राज्य को विशिष्ट प्रतिस्पर्धात्मक लाभ प्रदान करते हैं। यदि विकासात्मक प्रशासन इन संसाधनों का संरक्षण करते हुए मूल्य संवर्धन, स्थानीय प्रसंस्करण, डिजिटल विपणन तथा वैश्विक बाजारों से जोड़ने की रणनीति अपनाता है, तो ग्रामीण अर्थव्यवस्था रोजगार सृजन एवं आय वृद्धि का स्थायी आधार बन सकती है। ऐसी अर्थव्यवस्था ही प्रतिलोम प्रवासन को दीर्घकालिक स्थिरता प्रदान करेगी।

'विकसित उत्तराखंड 2047' का लक्ष्य केवल आर्थिक प्रगति का सूचक नहीं होना चाहिए, बल्कि वह क्षेत्रीय संतुलन, सामाजिक समावेशन,

पर्यावरणीय संवेदनशीलता तथा सुशासन पर आधारित विकास मॉडल का प्रतीक बनना चाहिए। इसके लिए राज्य को ऐसे विकास प्रतिमान की आवश्यकता होगी जिसमें स्थानीय शासन, आधुनिक प्रौद्योगिकी, नीति नवाचार तथा जनभागीदारी एक-दूसरे के पूरक बनें। विकास का वास्तविक मापदंड तब होगा जब पर्वतीय क्षेत्रों का युवा अपने गाँव में रहकर सम्मानजनक आजीविका अर्जित कर सके, स्थानीय संसाधनों का वैज्ञानिक उपयोग हो तथा ग्रामीण समाज विकास की मुख्यधारा का सक्रिय भागीदार बने।

इसी दिशा में "Panchayat to Policy" दृष्टिकोण विशेष रूप से प्रासंगिक प्रतीत होता है। अब समय आ गया है कि विकास नीतियाँ केवल सचिवालयों और विभागीय कार्यालयों तक सीमित न रहें, बल्कि ग्राम पंचायतों और ग्राम सभाओं से प्राप्त अनुभव, आवश्यकताओं तथा स्थानीय नवाचारों के आधार पर निर्मित हों। नीति निर्माण की यह निम्न स्तर से उच्च स्तर तक शासन पद्धति (Bottom-up Governance) विकासात्मक प्रशासन को अधिक उत्तरदायी, लचीला तथा प्रभावी बनाएगी। साथ ही विभागीय समन्वय, वित्तीय विकेन्द्रीकरण, डिजिटल प्रशासन, सामाजिक अंकेक्षण, डेटा-आधारित निर्णय प्रक्रिया तथा स्थानीय संस्थाओं के क्षमता निर्माण जैसे शासन सुधार (Governance Reforms) आने वाले वर्षों में उत्तराखंड के विकास मॉडल की केन्द्रीय आवश्यकता होंगे।

अंततः यह कहा जा सकता है कि उत्तराखण्ड का भविष्य केवल पलायन रोकने में नहीं, बल्कि ऐसे समृद्ध, आत्मनिर्भर और अवसर-संपन्न ग्रामीण समाज के निर्माण में निहित है,जहाँ प्रवासन विवशता नहीं, बल्कि व्यक्तिगत विकल्प बन जाए। यदि विकासात्मक प्रशासन सुशासन, स्थानीय शासन संस्थाओं की सुदृढ़ भूमिका, सामुदायिक सहभागिता तथा नवाचार आधारित नीति-निर्माण के साथ आगे बढ़ता है, तो प्रतिलोम प्रवासन निश्चित रूप से उत्तराखण्ड के पुनर्जागरण का आधार बन सकता है। यही वह मार्ग है जो विकसित उत्तराखंड 2047 की परिकल्पना को वास्तविक अर्थों में साकार करते हुए हिमालयी विकास के एक ऐसे मॉडल का निर्माण करेगा, जो समावेशी, सतत, सुरक्षित तथा भविष्य उन्मुख होने के साथ-साथ भारत के अन्य पर्वतीय राज्यों के लिए भी प्रेरणास्रोत सिद्ध हो सकता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ (References)

Awasthi, I. C. (2017). Migration Patterns in Hill Economy of Uttarakhand: Evidence from Field Enquiry. *The Indian Economic Journal*, *57*(4). https://journals.sagepub.com/doi/abs/10.1177/0019466220100406

Butola, B.S (2020). *Money, migration and missing capital: aspects of inclusive exclusion and exclusive inclusion in development*. IMPRI Impact and Policy Research Institute.

https://www.impriindia.com/event-report/inclusive-exclusion-exclusive-inclusion-in-uttarakhand/

Hoffmann, E. M., Konerding, V., Nautiyal, S., & Buerkert, A. (2019). Is the push-pull paradigm useful to explain rural-urban migration? A case study in Uttarakhand, India. *PLoS ONE*, *14*(4), e0214511. https://doi.org/10.1371/journal.pone.0214511

IIPA. (2021, April). *Policy Concerns of 'reverse migration' in Uttarakhand during COVID-19*. https://www.iipa.org.in. https://www.iipa.org.in/cms/public/uploads/152631635499239.pdf

Joshi, B. (2018). Recent trends of rural out-migration and its socio-economic and environmental impacts in Uttarakhand Himalaya. Journal of Urban and Regional Studies on Contemporary India, 4(2). https://core.ac.uk/download/pdf/197310111.pdf

Kandpal, P. C. (2024). Responding to Covid-19 Pandemic: Policy and Governance Perspective to Reverse Migration in Uttarakhand. *INDIAN JOURNAL OF PUBLIC ADMINISTRATION*, *70*(4).

https://journals.sagepub.com/doi/full/10.1177/001955612412483
00#core-collateral-purchase-access

Khan, A. H., Arya, D., & Kumar, R. (2016). Major Causes of Migration from Hills to Plain: A Case Study of Almora District, Kumaun Himalaya. *INTERNATIONAL JOURNAL FOR INNOVATIVE RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY FIELD*, *2*(9). https://shorturl.at/MQ1Id

Mamgain, R. P., & Reddy, D. N. (2017). Out-migration from the Hill Region of Uttarakhand: Magnitude, Challenges, and Policy Options. *Springer Nature*, 209–235. https://link.springer.com/chapter/10.1007/978-981-10-5628-4_10#citeas

Taragi, R. C. S., & Chand, R. (2017). Regional Pattern of Migration Flows in Uttarakhand, India. *Springer Nature*. https://link.springer.com/chapter/10.1007/978-3-319-50998-3_16#citeas

Yadav, A., Sharma, G., & Gangwar, R. (2018). DETERMINING FACTORS FOR MIGRATION IN UTTARAKHAND. *International Journal of*

Agricultural Science and Research, *8*(1), 85–90.

https://papers.ssrn.com/sol3/papers.cfm?abstract_id=3172063

उत्तराखंड में प्रतिलोम प्रवासन: प्रवृत्तियाँ, कारण, प्रभाव एवं ग्रामीण पुनर्जीवन की संभावनाएँ

सार

उत्तराखंड में प्रवासन राज्य की सामाजिक संरचना, आर्थिक गतिविधियों और क्षेत्रीय विकास को लंबे समय से प्रभावित करता रहा है। पर्वतीय क्षेत्रों में रोजगार के सीमित अवसर, अपेक्षाकृत कम आय, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी तथा बेहतर जीवन की आकांक्षा ने लोगों को मैदानी शहरों और देश के प्रमुख महानगरों की ओर जाने के लिए प्रेरित किया। वर्ष 2020 में कोविड–19 महामारी और लॉकडाउन के कारण इस प्रवासन की दिशा में अचानक बदलाव आया और बड़ी संख्या में प्रवासी अपने मूल स्थानों पर वापस लौटे। सितंबर 2020 तक लगभग 3,57,536 प्रवासियों की वापसी दर्ज की गई। हालांकि, यह वापसी स्थायी रूप से नहीं हुई और लगभग 29 प्रतिशत प्रवासी बाद में पुनः बाहर चले गए। इससे स्पष्ट होता है कि महामारी के दौरान हुई घर वापसी को स्थायी प्रतिलोम प्रवासन के बजाय वापसी, पुनःप्रवासन और स्थानीय आजीविका के पुनर्गठन से जुड़ी प्रक्रिया के रूप में देखना अधिक उपयुक्त है। लौटने वालों में युवा उद्यमियों, डिजिटल एवं कॉर्पोरेट क्षेत्र के पेशेवरों, सेवा क्षेत्र के कुशल व्यक्तियों और सेवानिवृत्त लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इनके अनुभव और कौशल का स्थानीय स्तर पर कृषि, बागवानी, पर्यटन, होमस्टे, स्थानीय उत्पादों के विपणन तथा डिजिटल कार्यों में उपयोग किया जा सकता है। इस दृष्टि से प्रतिलोम प्रवासन उत्तराखंड में मानव पूंजी के पुनर्निवेश, रोजगार सृजन और संतुलित क्षेत्रीय विकास की नई संभावनाएँ प्रस्तुत करता है।

कुंजी शब्द:- मानव पूंजी, प्रतिलोम प्रवासन, सतत विकास, पर्वतीय विकास, ग्रामीण अर्थव्यवस्था

1. प्रस्तावना

उत्तराखंड के सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक ताने–बाने को समझने में यह कहावत बहुत मदद करती है। "पहाड़ का पानी और उसकी जवानी पहाड़ के काम नहीं आती"। दशकों से यह यह तथ्य स्थापित है कि हिमालय की गोद से बहने वाली नदियाँ नीचे बह कर मैदानों को सींचने के काम आती हैं। ठीक ऐसे ही इन दुर्गम पहाड़ों में पलने वाली युवा प्रतिभा और श्रमशक्ति (मनुष्य बल) भी अपने जीविकोपार्जन के लिए मैदानी नगरों की ओर पलायन कर जाती है। उत्तराखंड की भौगोलिक परिस्थितियां जितनी सुंदर हैं, यहाँ का दैनिक जीवन उतना ही कठिन है। इस कठिन जीवन, रोजगार के अभाव, चिकित्सा और शिक्षा सुविधाओं की कमी के कारण प्रवासन होता रहा है। वर्ष 2000 में राज्य के गठन के बावजूद भी प्रवासन (Migration) की दर थमने के बजाय और बढ़ गई। परिणाम स्वरूप उत्तराखंड के बहुत से गाँव जनशून्य हो गए, जिन्हें आज "घोस्ट विलेजेस" या भूतहा ग्रामों के नाम से जाना जाता है।

जैसा कि हम सब जानते हैं परिवर्तन प्रकृति का नियम है। हाल के वर्षों में, ख़ास तौर पर वर्ष 2020 में फ़ैली वैश्विक कोविड महामारी के बाद से, उत्तराखंड की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में एक तेज़ बदलाव देखा गया है। इस बदलाव को समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र की भाषा में "रिवर्स माइग्रेशन" (Reverse Migration) या "प्रतिलोम प्रवासन" कहा जाता है। सरल शब्दों में इसे घर वापसी भी कहा जा सकता है। महानगरों (जैसे दिल्ली–राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, मुंबई, बंगलुरु, अहमदाबाद) की चकाचौंध, भीड़भाड़ और प्रदूषण भरे मजबूरी के जीवन को छोड़कर उत्तराखंड के लोगों का पुनः अपने पैतृक पहाड़ी गाँवों की ओर लौटना घर वापसी ही तो है। जो पैर कभी मजबूरी में अपने गाँव की सीमा लांघकर परदेस गए थे, वो अब आत्मनिर्भरता के संकल्प के साथ अपने गाँवों की ओर वापस मुड़ रहे हैं। अपने प्रवास के दौरान जो कुछ उन्होंने सीखा–जाना उसका उपयोग वो लोग अपने छोटे–छोटे उद्यमों को चलाने के लिए कर रहे हैं।

यह तो कहा जा सकता है कि कोविड महामारी ने इसे बल दिया लेकिन यह श्प्रतिलोम प्रवासनश केवल एक अस्थायी घटना या केवल महामारी के डर से उपजी श्घर वापसीश मात्र नहीं है। इसके पीछे एक गहरी मानसिकता और बदलाव का संकल्प काम कर रहा है। आज का युवा शहरों की कम आय वाली मुश्किल नौकरी के स्थान पर स्वरोजगार को वरीयता देना चाहता है। इन शहरों का वातावरण उसके अनुकूल कभी भी नहीं रहा। वह तो पहाड़ों की शुद्ध हवा–पानी और शांत जीवन का आदि रहा है। अब वह अपनी जड़ों से जुड़ाव को अधिक प्राथमिकता दे रहा है। जो युवा व्हाईट कॉलर जॉब (कार्यालयी रोज़गार) में है उसे "वर्क फ्रॉम होम" जैसी आधुनिक कार्य संस्कृति ने अपने घर पर रहकर ही काम करने की स्वतन्त्रता दी है। डिजिटल क्रांति (गाँवों तक पहुँचते हाई–स्पीड इंटरनेट) ने इस काम को और अधिक व्यावहारिक और आसान बना दिया है। अब वह अपने गाँव के आंगन में बैठकर, अपना काम देश–विदेश की किसी भी कंपनी के लिए कर सकता है। जब एक प्रवासी घर वापस लौटता है, तो वह अपने साथ वर्षों का नगरीय अनुभव, तकनीक, ज्ञान, प्रबंधन का कौशल और एक नवीन दृष्टिकोण लेकर आता है। उसके खाली समय में अब उसका गाँव भी उसके ज्ञान और प्रतिभा का लाभ ले सकता है।

इस लौटे हुए मानव संसाधन ने उत्तराखंड के परित्यक्त और बंजर खेतों को फिर से हरियाली दिखानी शुरू कर दी है। पारंपरिक पहाड़ी अनाज जैसे मंडुआ, झंगोरा इत्यादि की जैविक खेती (Organic Farming), होम–स्टे (Home&stay), पर्यटन और बागवानी (Horticulture) आदि के माध्यम से ग्रामीण अर्थव्यवस्था को एक नई जीवन–वायु मिल रही है।

इस अध्याय का उद्देश्य उत्तराखंड में सतत चल रहे इस "रिवर्स माइग्रेशन" का एक अध्ययन और तत्पश्चात बहुआयामी विश्लेषण करना है। इस अध्ययन के माध्यम से हम यह समझ पाएंगे कि इस प्रतिलोम प्रवासन के मुख्य कारण क्या हैं, लौटने वाले प्रवासियों की जनसांख्यिकी (Demographic) कैसी है और इस बदलाव ने राज्य की अर्थव्यवस्था व समाज पर क्या प्रभाव डाला है। यह अध्याय कुछ गंभीर समस्याओं पर भी प्रकाश डालेगा, जैसे स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार की आवश्यकता, भौगोलिक विषमताएं इत्यादि। यह लेख

एक कार्ययोजना तैयार करने में सहायक होगा। इस लेख से प्राप्त जानकारियाँ सरकार, समाज और युवाओं को इस ऐतिहासिक अवसर को उत्तराखंड के स्थायी और संधारणीय (Sustainable) विकास में बदल देने में सहायक होंगी।

2. उत्तराखंड में प्रवासन की ऐतिहासिक एवं भौगोलिक पृष्ठभूमि

उत्तराखंड जैसे पर्वतीय अंचल वाले राज्य में प्रवासन की समस्या न तो नई घटना है और न ही अतार्किक है। हिमालयी क्षेत्र की भौगोलिक विषमताओं, कठिन आवागमन, कृषि योग्य भूमि की अल्प उपलब्धता, मौसमी बरसात पर अवलंब, रोजगार के सीमित अवसर तथा उच्च शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी मूलभूत सुविधाओं की कमी के चलते यहाँ के मूल निवासियों को बेहतर जीवन की तलाश में मैदानी क्षेत्रों और बड़े शहरों की ओर जाने के लिए विवश होना पड़ा है।

2.1 राज्य गठन और प्रवासन की चुनौती

वर्ष 2000 में उत्तराखंड को राज्य का दर्जा मिला. क्षेत्रीय आकांक्षाओं के परिणामस्वरूप उपजे एक लंबे जनआंदोलन के बाद राज्य का गठन हुआ। अलग राज्य की मांग जिन प्रमुख अपेक्षाओं के कारण उपजी उन में पर्वतीय क्षेत्रों का संतुलित और संधारणीय विकास, स्थानीय स्तर पर रोजगार का सृजन, शिक्षा एवं मूलभूत स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार तथा मूल निवासियों के पलायन को रोकना इत्यादि शामिल था। उत्तराखंड के पहाडी क्षेत्रों में रहने वाले निवासियों को आशा थी कि पूर्ण राज्य बनने के बाद नीतियाँ और योजनाएँ पहाड़ी क्षेत्रों की विशिष्ट आवश्यकताओं को केंद्र में रख कर ही बनेंगी।

अपेक्षा अनुरूप राज्य गठन के बाद भी पर्वतीय क्षेत्रों से पलायन की समस्या पूरी तरह समाप्त नहीं हो सकी। कई दुर्गम गाँवों में आज भी उच्च शिक्षा, आवश्यक एवं गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाओं, उपज का बाजार, सहज आवागमन हेतु परिवहन और नियमित रोजगार के पर्याप्त अवसर उपलब्ध नहीं हो पाए। सीमित कृषि आय और खेती में नित नए रूप में बढ़ती चुनौतियों ने ग्रामीण परिवारों को आजीविका की तलाश में घर से बाहर निकलने के लिए प्रेरित किया। परिणामस्वरूप अनेक परिवारों ने स्थायी अथवा अस्थायी रूप से हल्द्वानी, देहरादून, हरिद्वार रुद्रपुर, जैसे शहरों तथा दिल्ली–एनसीआर, चंडीगढ़, मुंबई और अन्य महानगरीय क्षेत्रों और औद्योगिक शहरों की ओर पलायन करने का निर्णय किया।

2.2 'घोस्ट विलेज' का संकट

लगातार हो रहे पलायन का सबसे गंभीर प्रभाव उत्तराखंड के ग्रामीण सामाजिक समीकरण पर पड़ा। अनेक गाँवों में घर तो यथास्थित रहे लेकिन रहने वाले लोगों की संख्या निरंतर घटती गई। परिणामस्वरूप कुछ गाँवों में आबादी इतनी कम हो गई कि वे लगभग निर्जन हो गए। ऐसे गाँवों को आम बोलचाल में 'भूतहा गाँव' या 'घोस्ट विलेज' कहा जाने लगा।

पलायन पर किए गए अध्ययनों और ग्रामीण विकास एवं पलायन निवारण आयोग की रिपोर्टों ने इस समस्या की गंभीरता को उजागर किया। इन अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकलता है

कि पलायन को केवल भौगोलिक स्थान परिवर्तन के रूप में नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया के रूप में समझना आवश्यक है। इसका प्रभाव पारंपरिक खेती, स्थानीय अर्थव्यवस्था, संस्कृति, सामुदायिक जीवन शैली और ग्रामीण सामाजिक संस्थाओं पर भी पड़ा है। खेतों के बंजर होने, पारंपरिक व्यवसायों के कमजोर पड़ने और गाँवों में बुजुर्गों तथा महिलाओं की अपेक्षाकृत अधिक आबादी रह जाने से पर्वतीय समाज की संरचना में भी परिवर्तन आया।

3. कोविड–19 एवं उत्तराखंड में प्रतिलोम प्रवासन

वर्ष 2020 में कोविड–19 महामारी और उसे फैलने से रोकने के कारण लगाई गयी सम्पूर्ण बन्दी (लॉकडाउन) ने प्रवासन की इस लंबे समय से चली आ रही प्रक्रिया को अचानक प्रभावित किया और उसकी दिशा पलट दी। महानगरों और औद्योगिक क्षेत्रों में रोजगार तथा व्यवसाय बंद होने के कारण बड़ी संख्या में उत्तराखंड के मूल के प्रवासी अपने गाँवों की ओर लौटने लगे। इस वापसी का बड़ा कारण भले ही आर्थिक मजबूरी रही हो पर इसने लोगों को अपने गाँव, परिवार, भूमि और स्थानीय संसाधनों के साथ पुनः जुड़ने का अवसर भी दिया।

लॉकडाउन के दौरान हुई घर वापस लौटने की प्रक्रिया ने इतना बड़ा रूप ले लिया कि 'रिवर्स माइग्रेशन' या 'प्रतिलोम प्रवासन' को एक महत्वपूर्ण सामाजिक–आर्थिक अध्ययन का विषय बना दिया। अनेक लौटे हुए युवाओं ने अपने अनुभव, कौशल और बचत का उपयोग स्थानीय स्तर पर स्वरोजगार, कृषि, बागवानी, पशुपालन, पर्यटन तथा छोटे उद्यमों में करने की संभावनाएँ खोजनी शुरू कीं।

इस प्रकार कोविड–19 उत्तराखंड के प्रवासन इतिहास में एक महत्वपूर्ण परिवर्तनकारी बिंदु (टर्निंग पॉइंट) सिद्ध हुआ। यह सच है कि सभी प्रवासी स्थायी रूप से गाँवों में नहीं लौटे और महामारी के बाद एक बड़ा वर्ग पुनः शहरों की ओर चला गया। बावजूद इस के इस दौर ने यह महत्वपूर्ण संभावना सामने रखी कि यदि पहाड़ में रोजगार, बुनियादी सुविधाएँ और उद्यमिता के अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराया जाए, तो प्रवासन की एकतरफा धारा को एक बड़े अंश में उलटकर स्थानीय विकास और आत्मनिर्भरता की दिशा में बदला जा सकता है।

3.1 कोविड–19 के दौरान प्रतिलोम प्रवासनरू परिमाण और जिलावार स्वरूप

तालिका 1.1: समय–क्रम के आधार पर लौटने वाले प्रवासियों की संख्या

अवधि / तिथि	उत्तराखंड लौटे प्रवासी	महत्वपूर्ण टिप्पणी
23 अप्रैल 2020	59,360 10	पर्वतीय जिलों में लौटे प्रवासी

21 जून 2020	2,15,875	मुख्य लॉकडाउन अवधि के दौरान लौटे प्रवासी
सितंबर 2020	3,57,536	महामारी की शुरुआत से कुल संचयी वापसी
1 अप्रैल5 मई 2021	53,092	दूसरी कोविड लहर के दौरान अतिरिक्त वापसी

स्रोत: उत्तराखंड ग्रामीण विकास एवं पलायन आयोग (Rural Development & Migration Commission), उपलब्ध रिपोर्ट/आंकड़े।

उत्तराखंड ग्रामीण विकास एवं पलायन आयोग के उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार, कोविड–19 महामारी के दौरान उत्तराखंड में प्रतिलोम प्रवासन की प्रक्रिया तीव्र रूप से चली। 23 अप्रैल 2020 तक 10 पर्वतीय जिलों में 59,360 प्रवासी वापस लौट चुके थे। लॉकडाउन के दौरान यह संख्या तेजी से बढ़ी और 21 जून 2020 तक कुल 2,15,875 प्रवासियों की वापसी के आंकड़े नोट किये गए। इसके बाद भी वापसी का यह क्रम थमा नहीं और सितंबर 2020 तक महामारी की शुरुआत से उत्तराखंड लौटने वाले प्रवासियों की कुल संख्या 3,57,536 तक पहुँच गई। दूसरी कोविड लहर के दौरान भी लोगों की वापसी हुई तथा 1 अप्रैल से 5 मई 2021 के बीच 53,092 और प्रवासी अपने गृह राज्य उत्तराखंड लौटे। इस प्रकार कोविड–19 ने राज्य में लंबे समय से चली आ रही प्रवासन की तार्किक मानी जाने वाली प्रवृत्ति को कुछ समय के लिए उलटते हुए बड़े पैमाने पर घर वापसी को जन्म दिया। हालांकि, यह वापसी पूरी तरह स्थायी नहीं रही। सितंबर 2020 तक लौटे हुए कुल 3,57,536 प्रवासियों में से 1,04,849 (लगभग 29 प्रतिशत) पुनः मैदानों को लौट चुके थे, जबकि लगभग 2,52,687 (71 प्रतिशत) प्रवासी उत्तराखंड में ही ठहरे हुए थे। इससे स्पष्ट होता है कि कोविड–19 के दौरान उत्पन्न प्रतिलोम प्रवासन एक ओर तत्कालीन आर्थिक एवं सामाजिक संकट के कारण हुई बड़े पैमाने की वापसी थी, वहीं दूसरी ओर इसका एक महत्वपूर्ण हिस्सा स्थानीय स्तर पर रोजगार एवं आजीविका के अवसरों की उपलब्धता पर निर्भर था।

तालिका 1.2: कोविड–19 लॉकडाउन के दौरान उत्तराखंड में जिला–वार प्रतिलोम प्रवासन (जून 2020)

क्रमांक ज़िला लौटने वालों की संख्या

क्रमांक	ज़िला	लौटने वालों की संख्या
1	पौड़ी गढ़वाल	60,440
2	अल्मोड़ा	43,784
3	ऊधम सिंह नगर	21,958

4	उत्तरकाशी	19,405
5	टेहरी गढ़वाल	19,242
6	चम्पावत	15,097
7	नैनीताल	9,650
8	रुद्रप्रयाग	7,656
9	चमोली	5,877
10	पिथौरागढ	5,451
11	हरिद्वार	3,136
12	देहरादून	2,254
13	बागेश्वर	1,925
कुल		215,875

स्रोत: कोविड–19 लॉकडाउन के दौरान लौटे प्रवासियों का जिला–वार आँकड़ा, जून 2020, उत्तराखंड ग्रामीण विकास एवं पलायन आयोग।

इनमें पौड़ी गढ़वाल में सर्वाधिक 60,440 प्रवासियों की वापसी दर्ज की गई, जबकि अल्मोड़ा में 43,784 प्रवासी लौटे। इसके बाद ऊधम सिंह नगर में 21,958, उत्तरकाशी में 19,405, टिहरी गढ़वाल में 19,242 तथा चम्पावत में 15,097 प्रवासियों की वापसी हुई। इसी प्रकार नैनीताल में 9,650, रुद्रप्रयाग में 7,656, चमोली में 5,877 और पिथौरागढ़ में 5,451 प्रवासी वापस लौटे। अपेक्षाकृत कम संख्या हरिद्वार में 3,136, देहरादून में 2,254 तथा बागेश्वर में 1,925 रही। इन आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि लॉकडाउन के दौरान प्रतिलोम प्रवासन का प्रभाव विशेष रूप से पौड़ी गढ़वाल और अल्मोड़ा जैसे पर्वतीय जिलों में अधिक रहा। इन दोनों जिलों से लौटने वाले प्रवासियों की संयुक्त संख्या 1,04,224 थी, जो कुल 2,15,875 लौटने वाले प्रवासियों का लगभग 48.3 प्रतिशत है। यह स्थिति उत्तराखंड के पर्वतीय जिलों में लंबे समय से जारी बाह्य प्रवासन की तीव्रता को भी इंगित करती है, जहाँ से बड़ी संख्या में लोग आजीविका के लिए राज्य से बाहर गए थे।

21 जून 2020 तक उत्तराखंड लौटे 2,15,875 प्रवासियों के उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार, इनमें लगभग 80.66 प्रतिशत प्रवासी अन्य राज्यों से, 18.11 प्रतिशत उत्तराखंड के अन्य जिलों से, 0.92 प्रतिशत जिले के अंतर्गत ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर, तथा 0.29 प्रतिशत विदेशों से लौटे थे। इससे यह दृष्टिगोचर होता है कि कोविड–19 के दौरान उत्तराखंड में हुआ प्रतिलोम प्रवासन प्रमुखतः देश के अन्य राज्यों से उत्तराखंड की ओर होने वाला प्रतिलोम प्रवासन था, जबकि राज्य के भीतर, जिलों के मध्य अथवा जिले के भीतर होने वाली आवाजाही का हिस्सा इसकी अपेक्षा बहुत कम रहा।

4. उत्तराखंड में प्रतिलोम प्रवासन के महत्वपूर्ण कारण

कोविड महामारी जैसे वैश्विक संकटों, तकनीकी विकास, संसाधनों की उपलब्धता और जीवन के प्रति बदलते दृष्टिकोण के चलते उत्तराखंड में "रिवर्स माइग्रेशन" (प्रतिलोम प्रवासन) की एक नई हवा चली है। बागेश्वर, पौड़ी, अल्मोड़ा, पिथौरागढ़ और चमोली जैसे दूरस्थ जिलों के युवा अब महानगरों की तेज़ भागती ज़िंदगी छोड़ वापस अपने पहाड़ों की ओर लौट रहे हैं।

उत्तराखंड के विशेष संदर्भ में प्रतिलोम प्रवासन की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले बहुत से सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी कारक हैं। जहाँ कोविड–19 महामारी ने इस प्रक्रिया को विशेष रूप से उत्प्रेरित किया, वहीं महानगरीय जीवन की तुलनात्मक असुरक्षा, डिजिटल तकनीक का तीव्र विस्तार, स्वच्छ एवं प्रदूषण रहित जीवन–शैली की चाह तथा स्थानीय स्वरोजगार और पर्यटन के कारोबार से जुडी संभावनाओं ने भी लोगों को अपने मूल स्थानों की ओर लौटने के लिए प्रेरित किया। इन कारकों को निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है।

4.1 महानगरों की असुरक्षा और प्रतिलोम प्रवासन की विवशता

उत्तराखंड और अन्य पहाडी राज्यों के युवाओं के लिए लंबे समय से औद्योगिक महानगर आजीविका के प्रमुख केंद्र रहे हैं। दिल्ली, गुरुग्राम, मुंबई, अहमदाबाद और अन्य महानगरीय क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों की तलाश में बड़ी संख्या में लोग राज्य से बाहर प्रवास करते रहे हैं। हालांकि, कोविड–19 महामारी और उसके कारण लागू बन्दी ने महानगरीय रोजगार व्यवस्था की अस्थिरता को स्पष्ट किया। अनेक प्रवासियों को रोजगार छिन जाने, आय में कमी और आर्थिक अनिश्चितता जैसी स्थितियों का सामना करना पड़ा। हॉस्पिटैलिटी,कॉर्पोरेट, निर्माण तथा अन्य सेवा क्षेत्रों में कार्यरत लोगों की आजीविका विशेष रूप से प्रभावित हुई। रोजगार समाप्त होने या आय में कमी होने के साथ महानगरों में आवासीय किराया, बिजली–पानी तथा अन्य दैनिक आवश्यकताओं पर होने वाला खर्च उठाना उनके लिए बहुत बोझिल हो गया। ऐसी स्थितियों में अनेक प्रवासियों के लिए शहरों में बने रहना आर्थिक रूप से कठिन हो गया और वे अपने गाँवों की ओर लौटने के लिए मजबूर हुए। महामारी के दौरान स्वास्थ्य सेवाओं पर तेज़ी सेबढ़ते दबाव और सामाजिक सुरक्षा की चिन्ताओं ने भी इस वापसी को प्रभावित किया। इसके उलट, गाँवों में अपना घर, परिवार, सामाजिक सहयोग और स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों ने लोगों को अपेक्षाकृत सुरक्षित और स्थिर वातावरण प्रदान किया। इस प्रकार कोविड–19 ने महानगरीय रोजगार की अस्थिरता को उजागर करते हुए उत्तराखंड में प्रतिलोम प्रवासन को तीव्र गति प्रदान की।

4.2 डिजिटल क्रांति: 'वर्क फ्रॉम होम'

इंटरनेट के विस्तार ने उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में रोजगार की भौगोलिक सीमाओं को छोटा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कोविड–19 के दौरान सामने आई 'वर्क फ्रॉम होम' की कार्य–संस्कृति के विस्तार ने बहुत से ऐसे पेशेवरों को अपने घर या मूल स्थान पर रह कर ही कार्य करने का अवसर दिया जिन्हें पहले रोजगार के लिए महानगरों में रहना आवश्यक था। इंटरनेट और डिजिटल कनेक्टिविटी के विस्तार के साथ सूचना प्रौद्योगिकी, ऑनलाइन शिक्षण, ग्राफिक डिजाइनिंग, सॉफ्टवेयर विकास, कंटेंट निर्माण तथा अन्य डिजिटल

सेवाओं से जुड़े लोग घर से भी अपने कार्यों को सुचारू रखने में सक्षम हुए। इसी संदर्भ में 'वर्क फ्रॉम माउंटेन्स' की एक अद्भुत अवधारणा भी जन्मी। इसमें लोग पर्यावरणीय रूप से अपेक्षाकृत स्वच्छ पर्वतीय क्षेत्रों में रहते हुए अपने पेशेवर कार्य करते हैं। इससे महानगरों में रहने पर होने वाले बड़े खर्च को कम करने के साथ–साथ लोगों को अपेक्षाकृत शांत और प्राकृतिक वातावरण में रहने का अवसर मिला। इसके अलावा डिजिटल तकनीक ने लौटे हुए स्थानीय युवाओं को स्थानीय उत्पादों की कृषि–तकनीक आधारित उद्यमों के माध्यम से ऑनलाइन ब्रांडिंग, डिजिटल मार्केटिंग इत्यादि कर ई–कॉमर्स के माध्यम से स्थानीय स्वरोजगार विकसित करने की संभावनाएँ भी प्रदान की हैं। इस तरह डिजिटल क्रांति ने उत्तराखंड में प्रतिलोम प्रवासन को केवल घर वापसी नहीं वरन स्थानीय आर्थिक गतिविधियों और नए प्रकार के रोजगारों से जोड़ने में सहायता की है।

4.3 प्रदूषण रहित जीवन–शैली और मानसिक शांति

प्रतिलोम प्रवासन के पीछे मात्र आर्थिक कारण ही नहीं बल्कि बेहतर जीवन–शैली, स्वास्थ्य अनुकूल स्वच्छ पर्यावरण और मानसिक शांति की इच्छाओं ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। महानगरों में नित प्रायःबढ़ता प्रदूषण, यातायात की ऊहापोह, रोज़ बढ़ती जीवन–यापन की लागत और अतिव्यस्त कार्य–संस्कृति ने बहुत से लोगों को अपने जीवन की प्राथमिकताओं पर पुनः विचार करने के लिए प्रेरित किया। इसके विपरीत, पर्वतीय राज्य उत्तराखंड का प्राकृतिक वातावरण, शांत जीवन, सौहार्द्रपूर्ण सामुदायिक संबंध और अपनी जड़ों से के प्रति झुकाव ने लोगों को आकर्षित किया। विशेष रूप से कोविड–19 महामारी के बाद स्वास्थ्य, परिवार और जीवन की गुणवत्ता को लेकर लोगों की प्राथमिकताओं में अभूतपूर्व परिवर्तन देखा गया, जिसने अपने मूल स्थानों की ओर लौटने की इच्छा को बल दिया। इसी क्रम में होमस्टे योजनाऔर ग्रामीण पर्यटन से जुडी योजनाएं भी लौटे हुए युवाओं के लिए आकर्षक स्थानीय आर्थिक विकल्प के रूप में उभरीं। अनेक युवाओं ने अपने पैत्रिक घरों और अन्य उपलब्ध स्थानीय संसाधनों का उपयोग होमस्टे, पर्यटन, स्थानीय भोजन तथा सांस्कृतिक अनुभवों से जुड़े व्यवसायों के लिए करना शुरू किया । इससे उन्हें स्थानीय स्तर पर आय के साथ–साथ अपनी संस्कृति से जुड़े रहने का अवसर मिला। इस तरह बेहतर जीवन–शैली, पर्यावरणीय गुणवत्ता, पारिवारिक एवं सामाजिक जुड़ाव तथा स्थानीय उद्यम की संभावनाएँ भी उत्तराखंड में प्रतिलोम प्रवासन को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण गैर–आर्थिक कारकों के रूप में सामने आती हैं।

उत्तराखंड के संदर्भ में प्रतिलोम प्रवासन मात्र एक आर्थिक या सामाजिक बदलाव नहीं है बल्कि यह पहाड़ों के पुनर्जीवन की कहानी है। जिन गाँवों को कभी निर्जन घोषित कर दिया गया था, वहाँ अब दोबारा चहल पहल और रौनक लौटने लगी है। हालांकि, इस रिवर्स माइग्रेशन को स्थायी बनाए रखने और इसकी गति तेज़ करने के लिए उत्तराखंड सरकार को पहाड़ी क्षेत्रों में सड़कों, उच्च शिक्षा, बिजली और विशेषकर स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता को सुदृढ़ करना होगा। यदि बुनियादी तंत्र मजबूत रहता है तो रिवर्स माइग्रेशन उत्तराखंड के सतत विकास (Sustainable Development) और आत्मनिर्भर पहाड़ी अर्थव्यवस्था के निर्माण के लिए बहुत महत्वपूर्ण साबित होगा।

5. प्रतिलोम प्रवासन की नई तस्वीर: लौटती प्रतिभाएँ और पर्वतीय विकास

आज प्रतिभाएं एक नई सोच, अनुभव और हुनर लेकर अपने पहाड़ों की ओर लौट रही हैं। पहाड़ों में वापस आने वाले इन प्रवासियों की आवश्यकताएं, काम करने की शैलियाँ और उद्देश्य भिन्न–भिन्न हैं। यदि हम उत्तराखंड को केंद्र में रखकर इन प्रवासियों का विश्लेषण करें तो इन्हें प्रमुख रूप से चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

5.1 वापसी करने वाले युवा प्रवासी एवं उनकी उद्यमशील संभावनाएँ

युवा एवं उद्यमी वर्ग प्रतिलोम प्रवासन के माध्यम से स्थानीय अर्थव्यवस्था में नई ऊर्जा का संचार करने वाला महत्वपूर्ण समूह है। इनमें ऐसे युवा शामिल हैं जिन्होंने महानगरों में रोजगार या व्यवसाय का अनुभव प्राप्त किया। वापसी के बाद इन्होने स्थानीय संसाधनों तथा अपने कौशल का उपयोग स्वयं का लघु उद्यम स्थापित करने की दिशा में कार्य किया। इस वर्ग की विशेषता यह है कि ये मात्र पारंपरिक रोजगार की तलाश तक सीमित नहीं। ये वर्ग स्वरोजगार, उद्यमिता और स्थानीय संसाधन–आधारित व्यवसाय को विकास के माध्यम के रूप में देखता है।

कृषि–बागवानी के क्षेत्र में ऐसे युवाओं द्वारा आधुनिक तकनीक अपना कर नए उद्यम की स्थापना की संभावनाएँ बढ़ी हैं। इन युवाओं का मानना है कि विभिन्न प्रकार के मशरूम उत्पादन, कीवी, स्ट्रॉबेरी एवं सेब की आधुनिक खेती तथा औषधीय गुण वाले अथवा सुगंधित पौधों की खेती के माध्यम से पारंपरिक कृषि को अधिक व्यावसायिक स्वरूप दिया जा सकता है। इसी प्रकार इनके द्वारा मंडुआ, झंगोरा, पहाड़ी दालों, जैविक शहद और अन्य स्थानीय उत्पादों की आकर्षक पैकेजिंग, ब्रांडिंग तथा डिजिटल विपणन के माध्यम से स्थानीय उत्पादों को व्यापक बाजारों से जोड़ा जा रहा है। कुछ युवा ग्रामीण पर्यटन, कैफे, होमस्टे और सांस्कृतिक पर्यटन जैसी गतिविधियों को भी उद्यमिता के नए अवसरों के रूप में अपना रहे हैं। यह वर्ग स्थानीय, प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक संसाधनों को आर्थिक अवसरों में परिवर्तित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इनके प्रोत्साहन के लिए योजनाएं इन उद्यमों को तीव्र गति प्रदान करने में सहायक होंगी।

5.2 डिजिटल एवं सूचना–प्रौद्योगिकी आधारित कार्यों से जुड़े प्रवासी पेशेवर

प्रतिलोम प्रवासन का एक अपेक्षाकृत नवीन रूप उन पेशेवरों से जुड़ा है जिनका रोजगार भौगोलिक रूप से किसी एक स्थान में प्रवास हेतु बाध्य नहीं करता। सूचना प्रौद्योगिकी, सॉफ्टवेयर विकास, ग्राफिक डिजाइनिंग, कंटेंट राइटिंग, डेटा एनालिटिक्स, ऑनलाइन शिक्षा और अन्य डिजिटल सेवाओं से जुड़े पेशेवर इस वर्ग में का हिस्सा हैं। कोविड–19 के दौरान विकसित हुई 'वर्क फ्रॉम होम' यथा दूरस्थ कार्य की संस्कृति ने ऐसे पेशेवरों के लिए अपने मूल स्थानों में ही रह कर कार्य करने की संभावनाएँ बढ़ाई हैं।

निर्बाध डिजिटल कनेक्टिविटी उपलब्ध होने पर ये पेशेवर पर्वतीय क्षेत्रों में रहते हुए ही राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संस्थानों के लिए कार्य कर सकते हैं। उन्हें तब महानगरों की अपेक्षाकृत

अधिक जीवन–यापन लागत से बचने तथा अपने परिवार और स्थानीय समुदाय के मध्य रह कर अपना कार्य करने का अवसर मिल सकेगा। साथ ही, उनकी आय का एक हिस्सा स्थानीय बाजार में व्यय होने के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था में मांग और क्रय–शक्ति को बढ़ावा मिल सकता है। इससे अधिक महत्वपूर्ण उनके ज्ञान और तकनीकी कौशल का स्थानीय प्रसार है। डिजिटल रूप से सक्षम युवाओं की गाँवों में उपस्थिति स्थानीय विद्यार्थियों और अन्य युवाओं को ऑनलाइन शिक्षा, डिजिटल सेवाओं, नए रोजगार विकल्पों और आधुनिक व्यवसायिक अवसरों का लाभ लेने के लिए प्रेरित कर सकती है। इस प्रकार डिजिटल पेशेवर प्रतिलोम प्रवासन को सिर्फ पारंपरिक "घर वापसी" न रख कर ज्ञान के प्रसार पर आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था की दिशा में ले जाने की क्षमता रखते हैं।

5.3 सेवा, पर्यटन एवं तकनीकी कौशल वाले पेशेवर

उत्तराखंड से बाहर होटल, पर्यटन, आतिथ्य, निर्माण तथा अन्य सेवा क्षेत्रों में कार्य करने वाले प्रवासियों का एक वर्ग भी प्रतिलोम प्रवासन के दौरान वापस लौटा। इन लोगों के पास अपने पूर्व कार्यक्षेत्र का व्यावहारिक अनुभव और विशिष्ट कौशल होता है, जिसका उपयोग वे स्थानीय स्तर पर नई आर्थिक गतिविधियाँ विकसित करने में कर सकते हैं। विशेष रूप से पर्यटन और आतिथ्य क्षेत्र में अर्जित अनुभव उत्तराखंड जैसे पर्यटन–प्रधान राज्य के लिए महत्वपूर्ण मानव पूंजी का रूप ले सकता है।

होटल प्रबंधन, पाक–कला और आतिथ्य क्षेत्र से जुड़े लौटे हुए लोग अपने पारंपरिक घरों को होमस्टे अथवा छोटे पर्यटन–आवासों में परिवर्तित कर स्थानीय पर्यटन को बढ़ावा दे सकते हैं। इसी प्रकार पर्वतारोहण, ट्रैकिंग, राफ्टिंग और अन्य साहसिक पर्यटन गतिविधियों का अनुभव रखने वाले लोग स्थानीय स्तर पर पर्यटन सेवाएँ, मार्गदर्शन और साहसिक पर्यटन गतिविधियाँ विकसित कर सकते हैं। निर्माण एवं इंटीरियर डिजाइनिंग से जुड़े पेशेवर आधुनिक तकनीक को स्थानीय वास्तुकला और पर्वतीय परिस्थितियों के साथ जोड़ने में योगदान दे सकते हैं। इस प्रकार इस वर्ग की वापसी से केवल रोजगार का पुनर्सृजन ही नहीं, बल्कि कौशल का स्थानीयकरण और सेवा क्षेत्र का व्यावसायिक विकास भी संभव है।

5.4 सेवानिवृत्त नागरिक और अनुभवी मानव संसाधन

प्रतिलोम प्रवासन का एक अन्य महत्वपूर्ण वर्ग सेवानिवृत्त नागरिकों का है, जो अपने कार्यजीवन के बाद अपने मूल गाँव या पैतृक क्षेत्र में वापस आना पसंद करते हैं। इनमें सेना, अर्धसैनिक बलों, केंद्रीय एवं राज्य सेवाओं, शिक्षा तथा अन्य क्षेत्रों से सेवानिवृत्त व्यक्ति शामिल हो सकते हैं। इनकी वापसी का प्रमुख उद्देश्य नियमित रोजगार प्राप्त करना नहीं, बल्कि अपने मूल स्थान से पुनः जुड़ना, शांत एवं प्राकृतिक वातावरण में जीवन बिताना तथा अपनी पारिवारिक और सांस्कृतिक जड़ों के साथ संबंध मजबूत करना हो सकता है।

सेवानिवृत्त नागरिकों के पास लंबे कार्यजीवन से अर्जित प्रशासनिक, तकनीकी और सामाजिक अनुभव होता है। वे अपने संसाधनों का उपयोग पुश्तैनी घरों के पुनरुद्धार, भूमि के पुनः उपयोग तथा स्थानीय संपत्तियों के संरक्षण में कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, वे स्थानीय सामाजिक संस्थाओं, ग्राम पंचायतों और सामुदायिक संगठनों के साथ जुड़कर विकास संबंधी

गतिविधियों में मार्गदर्शन प्रदान कर सकते हैं। स्थानीय परंपराओं, त्योहारों, लोक संस्कृति और सामाजिक मूल्यों के संरक्षण में भी उनका योगदान महत्वपूर्ण हो सकता है। इस प्रकार सेवानिवृत्त प्रवासी केवल वापस लौटने वाले नागरिक नहीं हैं, बल्कि वे अनुभव, सामाजिक पूंजी और सांस्कृतिक विरासत के वाहक के रूप में पर्वतीय समाज के पुनर्संयोजन में योगदान दे सकते हैं।

इन चारों वर्गों को समग्र रूप से देखें तो स्पष्ट होता है कि प्रतिलोम प्रवासन का महत्व केवल लौटने वाले लोगों की संख्या में नहीं, बल्कि उनके साथ वापस आने वाली मानव पूंजी की गुणवत्ता और विविधता में भी निहित है। युवा उद्यमी स्थानीय व्यवसाय और रोजगार के नए अवसर पैदा कर सकते हैं, डिजिटल पेशेवर ज्ञान–आधारित गतिविधियों को बढ़ावा दे सकते हैं, सेवा क्षेत्र के कुशल पेशेवर पर्यटन एवं अन्य स्थानीय सेवाओं को सुदृढ़ कर सकते हैं, जबकि सेवानिवृत्त नागरिक अपने अनुभव और सामाजिक–सांस्कृतिक पूंजी के माध्यम से ग्रामीण समुदायों को मजबूत कर सकते हैं। यदि इन लौटे प्रवासियों को उपयुक्त आधारभूत सुविधाएँ, वित्तीय सहायता, बाजार, डिजिटल कनेक्टिविटी, कौशल समर्थन और संस्थागत सहयोग उपलब्ध कराया जाए, तो प्रतिलोम प्रवासन उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में मानव पूंजी के पुनर्निवेश, स्थानीय रोजगार सृजन और सतत आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण माध्यम बन सकता है।

6. निष्कर्ष

उत्तराखंड में प्रतिलोम प्रवासन राज्य की पारंपरिक प्रवासन व्यवस्था में आए एक महत्वपूर्ण बदलाव को दर्शाता है। पर्वतीय क्षेत्रों में रोजगार एवं आय के सीमित साधनों, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा बेहतर जीवन–स्थितियों की तलाश में लंबे समय से लोगों का बाहरी क्षेत्रों की ओर जाना जारी रहा है। कोविड–19 महामारी और लॉकडाउन के दौरान रोजगार एवं आजीविका के संकट ने इस प्रवृत्ति को उलट दिया और बड़ी संख्या में प्रवासी अपने गृह क्षेत्रों में वापस लौटे। इस घटनाक्रम ने पर्वतीय क्षेत्रों में उपलब्ध मानव संसाधन और स्थानीय विकास की संभावनाओं को पुनः चर्चा के केंद्र में ला दिया।

हालाँकि, उपलब्ध आँकड़े यह संकेत देते हैं कि महामारी के दौरान हुई वापसी को पूर्णतः स्थायी प्रतिलोम प्रवासन नहीं माना जा सकता। सितंबर 2020 तक लगभग 3,57,536 प्रवासियों की वापसी हुई, लेकिन इनमें से लगभग 29 प्रतिशत बाद में पुनः बाहरी क्षेत्रों की ओर चले गए। इससे स्पष्ट होता है कि रोजगार और आजीविका की स्थिर व्यवस्था के अभाव में घर वापसी लंबे समय तक टिकाऊ नहीं रह सकी। इसलिए प्रतिलोम प्रवासन को एक ऐसी गतिशील प्रक्रिया के रूप में देखना आवश्यक है, जिसमें वापसी, पुनःप्रवासन और स्थानीय स्तर पर रोजगार की तलाश एक–दूसरे से जुड़ी हुई हैं।

सामाजिक दृष्टि से प्रवासियों की वापसी ने परिवारों, समुदायों और स्थानीय संस्थाओं के साथ उनके संबंधों को पुनः सक्रिय करने का अवसर प्रदान किया। वहीं, प्रवासियों के साथ लौटे शहरी अनुभव, तकनीकी दक्षता और आधुनिक कार्य–पद्धतियाँ ग्रामीण समाज में नए विचारों

और गतिविधियों को बढ़ावा दे सकती हैं। विशेष रूप से युवा प्रवासियों में उद्यमिता, स्वरोजगार और डिजिटल माध्यमों के प्रयोग की संभावनाएँ दिखाई देती हैं।

आर्थिक स्तर पर लौटे प्रवासी केवल श्रमशक्ति नहीं, बल्कि कौशल, अनुभव, ज्ञान और कार्य–संपर्कों से युक्त मानव पूंजी के रूप में महत्वपूर्ण हैं। यदि इस मानव पूंजी को स्थानीय संसाधनों के साथ जोड़ा जाए, तो कृषि एवं बागवानी, पर्यटन एवं होमस्टे, स्थानीय उत्पादों के प्रसंस्करण और विपणन, हस्तशिल्प, स्वरोजगार तथा डिजिटल सेवाओं जैसे क्षेत्रों में नई आर्थिक गतिविधियाँ विकसित की जा सकती हैं। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन और आय के वैकल्पिक स्रोतों का विस्तार संभव है।

प्रतिलोम प्रवासन की संभावनाओं को स्थायी विकास में परिवर्तित करने के लिए केवल प्रवासियों की वापसी पर्याप्त नहीं है। स्थानीय स्तर पर रोजगार के अवसर, कौशल के अनुरूप कार्य, वित्तीय सहायता, बाजार से जुड़ाव, परिवहन एवं डिजिटल अवसंरचना तथा प्रभावी संस्थागत सहयोग की आवश्यकता होगी। इन सुविधाओं के अभाव में लौटे प्रवासियों का पुनः बाहरी क्षेत्रों की ओर जाना जारी रह सकता है।

इस प्रकार, उत्तराखंड में प्रतिलोम प्रवासन को केवल कोविड–19 से उत्पन्न अस्थायी संकट की प्रतिक्रिया के रूप में देखना सीमित दृष्टिकोण होगा। यह प्रक्रिया राज्य के पर्वतीय क्षेत्रों में मानव पूंजी के पुनर्स्थापन, स्थानीय अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन, सामाजिक पुनर्संयोजन तथा ग्रामीण पुनर्जीवन की संभावनाओं को सामने लाती है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रवासियों के कौशल और अनुभव को स्थानीय संसाधनों, उद्यमिता तथा बाजार व्यवस्था से जोड़ा जाए। ऐसी समन्वित रणनीति के माध्यम से प्रतिलोम प्रवासन को उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में स्थायी आजीविका, संतुलित क्षेत्रीय विकास और सतत ग्रामीण विकास के अवसर में बदला जा सकता है।

7. संदर्भ सूची

•उत्तराखंड सरकार, ग्रामीण विकास एवं पलायन आयोग। (2018), उत्तराखंड की ग्राम पंचायतों में पलायन की स्थिति पर अंतरिम रिपोर्ट।

•उत्तराखंड सरकार, ग्रामीण विकास एवं पलायन आयोग। (2020), कोविड–19 लॉकडाउन के दौरान प्रवासन एवं प्रतिलोम प्रवासन पर अंतरिम रिपोर्ट।

•उत्तराखंड सरकार, ग्रामीण विकास एवं पलायन आयोग। (2021), कोविड–19 महामारी के दौरान उत्तराखंड में प्रवासन एवं प्रतिलोम प्रवासन पर रिपोर्ट।

•उत्तराखंड सरकार, ग्रामीण विकास विभाग। (2020), मुख्यमंत्री पलायन रोकथाम योजना (डच्ल्)।

•उत्तराखंड सरकार। (2020), कोविड–19 महामारी एवं प्रतिलोम प्रवासनरू राज्य–स्तरीय रिपोर्ट एवं आँकड़े। उत्तराखंड सरकार।

•उत्तराखंड सरकार, (2021), ग्रामीण विकास एवं प्रवासनरू नीतिगत पहल एवं कार्यक्रम। उत्तराखंड सरकार।

•भारत सरकार, ग्रामीण विकास मंत्रालय। (2020), कोविड–19 एवं ग्रामीण आजीविकारू चुनौतियाँ एवं प्रतिक्रियाएँ, ग्रामीण विकास मंत्रालय।

8.सहायक संदर्भ सूची

•बिएला, एम., सती, वी. पी., एवं कुमार, पी. (2021), उत्तराखंड हिमालय में बाह्य प्रवासनरू इसके प्रकार, कारण एवं परिणाम। माइग्रेशन लेटर्स, 18(3), 283दृ296।

•उपाध्याय, वी., एवं अन्य। (2021), पर्वतीय क्षेत्रों से विवश बाह्य प्रवासन और महामारी के दौरान वापसी प्रवासनरू उत्तराखंड से प्रमाण। इंडियन जर्नल ऑफ लेबर इकोनॉमिक्स।

•नागालिया, एस. (2017), उत्तराखंड की पहाड़ियों से बाह्य प्रवासनरू परिमाण एवं कारण। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इनोवेटिव सोशल साइंस एंड ह्यूमैनिटीज रिसर्च, 4(2), 23दृ32।

•सती, वी. पी. (2021), उत्तराखंड हिमालय में बाह्य प्रवासनरू इसके प्रकार, कारण एवं परिणाम, माइग्रेशन लेटर्स।

उत्तराखंड में प्रतिगामी प्रवासन के संदर्भ में होमस्टे एवं ग्रामीण उद्यमों का विकास

डॉ. गीतांजलि भट्ट
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

सारांश

उत्तराखंड की पहाड़ी अर्थव्यवस्था लंबे समय से ग्रामीण इलाकों से शहरों की ओर पलायन की चुनौती का सामना कर रही है। इसके मुख्य कारणों में रोजगार के सीमित अवसर, भौगोलिक रूप से दुर्गम इलाके, अपर्याप्त बुनियादी ढांचा और आजीविका के सीमित विकल्प शामिल हैं। हालाँकि, हाल के वर्षों में, विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और बाहरी परिस्थितियों के कारण, कुछ प्रवासी अपने मूल गांवों में लौट आए हैं। इस प्रक्रिया को 'रिवर्स माइग्रेशन' (वापसी पलायन) कहा जाता है। रिवर्स माइग्रेशन को केवल लोगों की भौगोलिक वापसी के रूप में देखने के बजाय, इसे ग्रामीण अर्थव्यवस्था को फिर से व्यवस्थित करने और स्थानीय उद्यमिता को बढ़ावा देने के एक अवसर के रूप में समझना महत्वपूर्ण है। लौटने वाले प्रवासियों के पास शहरों में हासिल किए गए कौशल, अनुभव, सामाजिक नेटवर्क और पूंजी होती है, जिनका उपयोग ग्रामीण क्षेत्रों में नए आर्थिक अवसर पैदा करने के लिए किया जा सकता है।

इस संदर्भ में, उत्तराखंड के पहाड़ी क्षेत्रों में रोजगार और आय पैदा करने के लिए होमस्टे और ग्रामीण उद्यम सबसे प्रभावी साधनों में से एक हो सकते हैं। उत्तराखंड सरकार की होमस्टे नीतियों का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में पर्यटन सुविधाओं का विस्तार करना और साथ ही स्थानीय लोगों के लिए स्वरोजगार और अतिरिक्त आय के अवसर पैदा करना है। होमस्टे के माध्यम से स्थानीय आवास, भोजन, संस्कृति, हस्तशिल्प, कृषि उत्पादों और प्राकृतिक संसाधनों को पर्यटन बाजार से जोड़ा जा सकता है। इसी तरह, कृषि, बागवानी, पशुपालन, मधुमक्खी पालन, हस्तशिल्प, खाद्य प्रसंस्करण और ग्रामीण पर्यटन पर आधारित उद्यम स्थानीय अर्थव्यवस्था में विविधता ला सकते हैं। यह अध्याय रिवर्स माइग्रेशन, होमस्टे और ग्रामीण उद्यमिता के बीच आपसी संबंधों का विश्लेषण करता है और रोजगार सृजन, महिलाओं और युवाओं की भागीदारी, स्थानीय संसाधनों के संरक्षण, पर्यटन विकास और ग्रामीण पुनरुद्धार की संभावनाओं पर भी प्रकाश डालता है। यह बुनियादी ढांचे, वित्त, कौशल, विपणन, डिजिटल कनेक्टिविटी और संस्थागत समन्वय जैसी चुनौतियों का भी वर्णन करता है और अर्थव्यवस्था के लिए एक समावेशी और टिकाऊ ग्रामीण उद्यमिता मॉडल प्रस्तुत करता है।

कीवर्ड: रिवर्स माइग्रेशन, होमस्टे, ग्रामीण उद्यमिता, ग्रामीण विकास, टिकाऊ पर्यटन, रोजगार सृजन

1. परिचय

उत्तराखंड राज्य की पहचान हिमालयी भौगोलिक स्थितियों, भरपूर प्राकृतिक संसाधनों, विविध सांस्कृतिक परंपराओं और एक खास ग्रामीण जीवनशैली से होती है। राज्य की अर्थव्यवस्था में खेती, पशुपालन, पर्यटन, वानिकी और छोटे व ग्रामीण उद्योगों की बहुत अहम भूमिका है। इसके बावजूद, पहाड़ी इलाकों में रोजगार के पर्याप्त मौकों की कमी, खेती लायक ज़मीन की सीमित उपलब्धता, बाज़ारों से ज़्यादा दूरी, परिवहन की मुश्किलों और शिक्षा व चिकित्सा जैसी बुनियादी सुविधाओं तक सीमित पहुँच के कारण ग्रामीण इलाकों से पलायन बढ़ा है।

पलायन की वजह से कई पहाड़ी गाँवों में कई समस्याएँ पैदा हुई हैं, जैसे आबादी में असंतुलन, खेती की ज़मीन का पूरा इस्तेमाल न हो पाना, पारंपरिक व्यवसायों का कमज़ोर पड़ना और सामाजिक ढांचे में बदलाव। ऐसे माहौल में, 'रिवर्स माइग्रेशन' (वापसी पलायन) एक नए मौके के तौर पर उभरा है। जब कोई व्यक्ति या परिवार नौकरी, कारोबार या किसी और वजह से शहर या दूसरे राज्य जाने के बाद अपने मूल गाँव या इलाके में लौटता है, तो इस प्रक्रिया को 'रिवर्स माइग्रेशन' कहा जाता है।

रिवर्स माइग्रेशन इसलिए भी बहुत अहम है क्योंकि लौटने वाले लोग न सिर्फ़ अपनी मेहनत, बल्कि हुनर, अनुभव, तकनीकी जानकारी, कारोबार की समझ और बाहरी बाज़ारों का अनुभव भी साथ लाते हैं। अगर इन क्षमताओं को स्थानीय प्राकृतिक और सांस्कृतिक संसाधनों से जोड़ा जाए, तो ग्रामीण अर्थव्यवस्था को फिर से मज़बूत करने की संभावनाएँ बढ़ सकती हैं।

उत्तराखंड में इस संदर्भ में होमस्टे खास तौर पर अहम हैं। उत्तराखंड के पर्यटन विभाग के अनुसार, होमस्टे योजनाओं का मकसद स्थानीय लोगों को उनके घरों का इस्तेमाल पर्यटकों के ठहरने की जगह के तौर पर करके अतिरिक्त कमाई और स्थानीय स्तर पर रोज़गार के मौके देना है। मौजूदा पर्यटन व्यवस्था ग्रामीण इलाकों और स्थानीय समुदायों को पर्यटन की वैल्यू चेन से जोड़ने पर भी ज़ोर देती है।

इसलिए, होमस्टे को सिर्फ़ पर्यटकों के ठहरने की जगह के तौर पर नहीं, बल्कि ऐसे व्यापक ग्रामीण उद्यमों के तौर पर देखा जाना चाहिए जो भोजन, स्थानीय परिवहन, कृषि उत्पादों, हस्तशिल्प, सांस्कृतिक गतिविधियों और स्थानीय अनुभवों को एक साथ जोड़ सकें।

2. रिवर्स माइग्रेशन (वापसी प्रवास) की अवधारणा

रिवर्स माइग्रेशन का मतलब आम तौर पर उन लोगों का अपनी मूल जगह पर वापस आना है जो पहले नौकरी, पढ़ाई, व्यापार या किसी और वजह से कहीं और चले गए थे। यह वापसी हमेशा के लिए या कुछ समय के लिए हो सकती है। ग्रामीण इलाकों में रिवर्स माइग्रेशन तब और भी महत्वपूर्ण हो जाता है जब वापस आने वाले लोग स्थानीय स्तर पर अपनी आजीविका विकसित करने की कोशिश करते हैं।

पारंपरिक माइग्रेशन मॉडल में, ग्रामीण इलाकों से शहरी इलाकों की ओर मजदूरों का जाना ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए मानव संसाधनों का नुकसान माना जाता है। इसके उलट, रिवर्स माइग्रेशन मानव संसाधनों को वापस ग्रामीण इलाकों में लाता है। अगर इन मानव संसाधनों को स्थानीय अवसरों से जोड़ा जाए, तो वे ग्रामीण विकास का जरिया बन सकते हैं।

उत्तराखंड के संदर्भ में यह बात खास तौर पर महत्वपूर्ण है क्योंकि ग्रामीण इलाकों में प्राकृतिक और सांस्कृतिक संसाधनों की काफी विविधता है। पहाड़ी खेती, फलों का उत्पादन, औषधीय जड़ी-बूटियाँ, स्थानीय खाद्य उत्पाद, ऊनी उत्पाद, हस्तशिल्प, लोक कला, पारंपरिक वास्तुकला और प्रकृति-आधारित पर्यटन ग्रामीण उद्यमिता के लिए आधार प्रदान कर सकते हैं।

उत्तराखंड सरकार के ग्रामीण विकास विभाग की 'मुख्यमंत्री पलायन रोकथाम योजना', पलायन से प्रभावित गांवों में परिवारों, बेरोजगार युवाओं और रिवर्स माइग्रेशन करने वालों के लिए स्वरोजगार के अवसरों पर जोर देती है। यह योजना कृषि, बागवानी और पशुपालन से जुड़े स्वरोजगार और कौशल विकास को प्राथमिकता देती है।

इससे पता चलता है कि रिवर्स माइग्रेशन को ग्रामीण आजीविका के अवसरों से जोड़ने के लिए संस्थागत प्रयासों की भी आवश्यकता है।

3. उत्तराखंड में रिवर्स माइग्रेशन (वापसी प्रवास) के मुख्य कारण

उत्तराखंड में रिवर्स माइग्रेशन के पीछे कई सामाजिक और आर्थिक कारण हो सकते हैं। इनमें से कुछ मुख्य कारण इस प्रकार हैं:

3.1 शहरी इलाकों में रोज़गार की अनिश्चितता

शहरी इलाकों में काम करने वाले ज़्यादातर लोग रोज़गार की अनिश्चितता, रहने-सहने के बढ़ते खर्च और अपर्याप्त सामाजिक सुरक्षा के कारण अपने गाँव वापस लौटने का फ़ैसला कर सकते हैं। शहरों में मौजूद समस्याओं के कारण वे अपने गृहनगर या गाँव लौटना ज़्यादा पसंद करते हैं।

3.2 पारिवारिक और सामाजिक कारण

प्रवास का एक और कारण है - बुज़ुर्ग माता-पिता की देखभाल, परिवार से जुड़ाव, बच्चों की बढ़ती ज़िम्मेदारियाँ और अपने मूल समुदाय से गहरे संबंध; ये बातें प्रवासियों को अपनी जड़ों की ओर लौटने के लिए प्रेरित कर सकती हैं।

3.3 कोविड-19 के बाद बदली हुई परिस्थितियाँ

महामारी के दौरान, बड़ी संख्या में लोगों को बड़े शहरों और शहरी इलाकों से अपने गाँव लौटने के लिए मजबूर होना पड़ा था। इस अनुभव ने कुछ लोगों को ग्रामीण इलाकों में आजीविका के वैकल्पिक साधन विकसित करने के बारे में सोचने के लिए प्रेरित किया है।

3.4 स्थानीय संसाधनों की आर्थिक क्षमता

ग्रामीण इलाकों में ज़मीन, इमारतों, प्राकृतिक संसाधनों, खेती, पशुपालन और पर्यटन के मौकों की उपलब्धता, वापस लौटने वाले प्रवासियों को स्टार्टअप या कोई स्थानीय कारोबार शुरू करने के लिए प्रेरित कर सकती है।

3.5 ग्रामीण इलाकों में स्वरोज़गार की संभावनाएँ

सरकारी योजनाओं, लोन, सब्सिडी और कौशल विकास कार्यक्रमों के ज़रिए स्वरोज़गार के मौके बढ़ने पर ग्रामीण इलाकों में रहने और कारोबार शुरू करने का आकर्षण बढ़ सकता है।

4. रिवर्स माइग्रेशन (वापसी प्रवास) और ग्रामीण उद्यमिता

रिवर्स माइग्रेशन का ग्रामीण उद्यमिता से गहरा संबंध है और यह ग्रामीण विकास का एक असरदार ज़रिया तभी बन सकता है जब वापस लौटने वाले प्रवासियों को उद्यमिता के मौके मिलें। ग्रामीण उद्यमिता का मतलब सिर्फ़ खेती-बाड़ी से जुड़े कारोबार नहीं हैं, बल्कि इसमें ग्रामीण इलाकों में उपलब्ध संसाधनों पर आधारित कई तरह की आर्थिक गतिविधियाँ भी शामिल हैं।

वापस लौटने वाले प्रवासी अपने साथ शहरी इलाकों में सीखी गई क्षमताएँ जैसे मार्केटिंग, मैनेजमेंट, डिजिटल टेक्नोलॉजी, कस्टमर सर्विस, फाइनेंशियल मैनेजमेंट और बिज़नेस ऑपरेशन लेकर आते हैं। इन क्षमताओं को स्थानीय संसाधनों से जोड़कर नए कारोबार शुरू किए जा सकते हैं।

उदाहरण के लिए, अगर हम इसे असल ज़िंदगी के एक उदाहरण से समझें, तो वापस लौटने वाला प्रवासी अपने पुश्तैनी घर को कारोबार के मकसद से होमस्टे में बदल सकता है। होमस्टे में स्थानीय खाना दिया जा सकता है, पर्यटकों को खेती-बाड़ी की स्थानीय गतिविधियों से परिचित कराया जा सकता है, और स्थानीय हस्तशिल्प व उत्पाद बेचे जा सकते हैं। इस तरह, एक छोटा सा होमस्टे कई स्थानीय आर्थिक गतिविधियों को जोड़ने का आकर्षण का केंद्र बन सकता है।

5. होमस्टे का कॉन्सेप्ट और उत्तराखंड में इसकी अहमियत

होमस्टे टूरिज़्म का एक ऐसा तरीका है जिसमें पर्यटक स्थानीय परिवारों के घरों में रहते हैं और वहाँ के जीवन, खाने-पीने, संस्कृति और प्रकृति के करीब रहने का अनुभव करते हैं। होटलों की तुलना में, होमस्टे की सबसे बड़ी खासियत स्थानीय परिवारों से सीधे जुड़ना और उस इलाके के लोगों के खान-पान और जीवनशैली का असली अनुभव लेना है। उत्तराखंड टूरिज़्म डिपार्टमेंट का ऑफिशियल होमस्टे प्लेटफ़ॉर्म होमस्टे को स्थानीय परिवारों, स्थानीय खाने और स्थानीय अनुभवों से जोड़ता है।

उत्तराखंड के लिए होमस्टे कई तरह से अहम हैं। पहला, इनसे पहले से मौजूद घरों का आर्थिक रूप से सही इस्तेमाल होता है। दूसरा, इनसे परिवारों को अतिरिक्त कमाई हो सकती है। तीसरा, पर्यटकों की मांग से स्थानीय खाने-पीने की चीज़ों, हस्तशिल्प, खेती-बाड़ी के उत्पादों और ट्रांसपोर्ट जैसी दूसरी गतिविधियों को भी बढ़ावा मिल सकता है। चौथा, ये स्थानीय संस्कृति और पारंपरिक वास्तुकला को बचाने में मदद कर सकते हैं। राज्य की टूरिज़्म पॉलिसी में ग्रामीण इलाकों में स्थानीय लोगों के लिए होमस्टे यूनिट्स के विकास और स्थानीय आवासीय संसाधनों के सही इस्तेमाल को बढ़ावा देने के लिए इंसेंटिव्स (प्रोत्साहन) का भी ज़िक्र है।

6. होमस्टे और रिवर्स माइग्रेशन (वापसी प्रवास) के बीच संबंध

होमस्टे रिवर्स माइग्रेंट्स (वापस लौटने वाले प्रवासियों) के लिए खास तौर पर फायदेमंद हो सकते हैं, क्योंकि इनके लिए हमेशा बहुत ज़्यादा नई ज़मीन या भारी औद्योगिक निवेश की ज़रूरत नहीं होती। वापस लौटने वाले प्रवासी अपने पुश्तैनी घरों को ठीक-ठाक करके उन्हें कमाई का ज़रिया बना सकते हैं।

इसे एक संभावित मॉडल के ज़रिए समझा जा सकता है:



चित्र 1.1 होमस्टे आधारित रिवर्स माइग्रेशन मॉडल

इस प्रक्रिया में, न केवल होमस्टे चलाने वाले परिवार को, बल्कि आस-पास के अन्य परिवारों को भी फ़ायदा हो सकता है। उदाहरण के लिए, होमस्टे चलाने वाला व्यक्ति स्थानीय किसानों से सब्ज़ियाँ, स्थानीय महिला समूहों या SHG की महिलाओं से अचार, दालें या मसाले ख़रीद सकता है और ट्रांसपोर्ट सर्विस के लिए स्थानीय युवाओं को काम पर रख सकता है। इस तरह, होमस्टे का आर्थिक असर सिर्फ़ उसे चलाने वाले परिवार तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि इससे स्थानीय अर्थव्यवस्था में भी आय का प्रवाह बनता है।

7. ग्रामीण उद्यमों के मुख्य क्षेत्र

उत्तराखंड में वापस लौटे प्रवासियों के लिए स्थानीय संसाधनों, पारंपरिक कौशल और पर्यटन की संभावनाओं का इस्तेमाल करके कई ग्रामीण उद्यम विकसित किए जा सकते हैं। मुख्य क्षेत्रों में कृषि और बागवानी, फ़ूड प्रोसेसिंग, डेयरी और पशुपालन, मधुमक्खी पालन, हस्तशिल्प, होमस्टे, ग्रामीण और इको-टूरिज़्म, स्थानीय ट्रांसपोर्ट और डिजिटल मार्केटिंग शामिल हैं। वापस लौटे प्रवासी अपने शहरी कौशल, अनुभव और पूँजी का इस्तेमाल करके प्रोसेसिंग, पैकेजिंग, ब्रांडिंग और ऑनलाइन मार्केटिंग के ज़रिए स्थानीय उत्पादों की वैल्यू बढ़ा सकते हैं। इसी तरह, होमस्टे पर्यटकों को स्थानीय भोजन, हस्तशिल्प उत्पादों, कृषि गतिविधियों, सांस्कृतिक अनुभवों और प्रकृति-आधारित पर्यटन से और बेहतर ढंग से जोड़ सकते हैं। महिलाओं के स्वयं-सहायता समूह और स्थानीय युवा

इन गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग ले सकते हैं। ऐसे आपस में जुड़े ग्रामीण उद्यम रोज़गार पैदा कर सकते हैं, आय बढ़ा सकते हैं, स्थानीय बाज़ारों को मज़बूत कर सकते हैं, टिकाऊ ग्रामीण विकास में योगदान दे सकते हैं और पलायन की संख्या को कम कर सकते हैं। कुछ विशेष क्षेत्र इस प्रकार हैं:

7.1 कृषि और बागवानी पर आधारित उद्यम

हिमालयी क्षेत्रों में दालों, फलों, सब्जियों, मसालों और अन्य स्थानीय कृषि उत्पादों को बाजारों से जोड़ा जा सकता है। केवल कच्चे उत्पाद बेचने के बजाय, प्रोसेसिंग, पैकेजिंग और ब्रांडिंग भी ऐसी प्रक्रियाएं हैं जिनसे अधिक आय हो सकती है।

7.2 खाद्य प्रसंस्करण

स्थानीय अनाज, दालों, मसालों, अचार, जैम, मुरब्बे, मंडुआ, झंगोरा और अन्य पारंपरिक खाद्य उत्पादों की प्रोसेसिंग ग्रामीण उद्यमिता का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र हो सकता है। उदाहरण के लिए: अल्मोड़ा अपनी 'बाल मिठाई' के लिए मशहूर है। बढ़ती मांग के कारण यह मिठाई विदेशों में भी लोकप्रिय है, क्योंकि उत्तराखंड आने वाले प्रवासी भारतीय अपने साथियों और दोस्तों के लिए यह मिठाई खरीदते हैं।

7.3 पशुपालन और डेयरी उत्पाद

ग्रामीण इलाकों में दूध उत्पादन, स्थानीय पशुपालन, मधुमक्खी पालन और मुर्गी पालन का बहुत महत्व है। गाय जैसे पशु पालने वाले ग्रामीण बड़े पैमाने पर दूध बेचकर पशुपालन का व्यवसाय कर रहे हैं। कई स्थानीय उत्पादों की भारी मांग है क्योंकि लोग उन्हें पसंद करते हैं; इन स्थानीय उत्पादों का स्वाद असली और खास होता है।

7.4 मधुमक्खी पालन

आजकल, मधुमक्खी पालन एक ऐसा काम है जिसे कम ज़मीन पर शुरू किया जा सकता है और इसे खेती और बागवानी के साथ भी जोड़ा जा सकता है। शहद का इस्तेमाल कई तरह से होता है, इसलिए शहरों और बड़े कस्बों में यह सबसे महंगे बिकने वाले उत्पादों में से एक है; हालांकि, असली शहद हर जगह नहीं मिलता और इसकी उपलब्धता भी सीमित है। फिर भी, अगर मधुमक्खी पालन को बड़े पैमाने पर किया जाए, तो यह उन बेरोजगार लोगों के लिए आय का ज़रिया बन सकता है जो अपने गृहनगर लौटना चाहते हैं।

7.5 हस्तशिल्प और स्थानीय उत्पाद

ऊन, लकड़ी, प्राकृतिक रेशों, चीड़ के पेड़ों की पत्तियों, पाइन कोन और अन्य स्थानीय सामग्रियों से बने उत्पादों को पहाड़ी इलाकों में आने वाले पर्यटकों के बीच बेचा जा सकता है और ऑनलाइन मार्केट चैनलों के ज़रिए भी इनकी बिक्री की जा सकती है।

7.6 ग्रामीण पर्यटन

प्रकृति या गाँव की सैर, स्थानीय भोजन, पारंपरिक खेती, लोक संस्कृति, गाँव की जीवनशैली और स्थानीय त्योहारों को पर्यटन के अनुभवों के तौर पर विकसित किया जा सकता है।

8.होमस्टे-आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एकीकृत मॉडल

उत्तराखंड के लिए सिर्फ़ होमस्टे विकसित करना ही काफ़ी नहीं है। होमस्टे को स्थानीय अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों से जोड़ना भी ज़रूरी है। इस मॉडल के तहत, होमस्टे पर्यटन का मुख्य केंद्र बन सकता है। स्थानीय किसान होमस्टे को खाने-पीने का सामान सप्लाई कर सकते हैं, स्वयं-सहायता समूह स्थानीय उत्पाद तैयार कर सकते हैं, युवा ट्रांसपोर्ट और डिजिटल सेवाएँ दे सकते हैं, और स्थानीय कलाकार सांस्कृतिक अनुभव प्रदान कर सकते हैं। इस तरह, पर्यटन से होने वाली आय का एक बड़ा हिस्सा स्थानीय क्षेत्र में ही बना रह सकता है।



चित्र 1.2: होमस्टे-आधारित ग्रामीण विकास का एकीकृत मॉडल

9. महिलाओं की भूमिका

ग्रामीण उद्यमिता और होमस्टे के विकास में महिलाओं की भूमिका बहुत अहम है। पहाड़ी इलाकों में महिलाएँ पारंपरिक रूप से खेती, पशुपालन, फ़ूड प्रोसेसिंग और घर के कामों में शामिल रही हैं। होमस्टे उन्हें इन पारंपरिक कौशलों को आर्थिक गतिविधियों में बदलने का मौका देते हैं। महिलाएँ स्थानीय खाना बनाने, मेहमानों की सेवा, हाउसकीपिंग, हस्तशिल्प, जैम, मसाले और अचार बनाने,

मसालों की प्रोसेसिंग और स्थानीय उत्पादों की मार्केटिंग में अहम भूमिका निभा सकती हैं। स्वयं-सहायता समूहों के ज़रिए, महिलाएँ मिलकर सामान बना सकती हैं और उन्हें होमस्टे और पर्यटन बाज़ारों से जोड़ सकती हैं। इससे महिलाओं की आय के साथ-साथ उनके फ़ैसले लेने की क्षमता भी बढ़ सकती है। पर्यटन विकास कार्यक्रम महिलाओं की भागीदारी और सामुदायिक स्वामित्व को टिकाऊ पर्यटन के अहम तत्वों के तौर पर मान्यता देते हैं। उत्तराखंड का पर्यटन मास्टर प्लान भी होमस्टे विकसित करने के साथ-साथ सामुदायिक क्षमता निर्माण और महिलाओं की भागीदारी पर ज़ोर देता है।

10. युवाओं की भूमिका

उत्तराखंड के ग्रामीण इलाकों में 'रिवर्स माइग्रेशन' (वापसी प्रवास) को सफल बनाने के लिए युवाओं को स्थानीय अर्थव्यवस्था से जोड़ना ज़रूरी है। युवा डिजिटल टेक्नोलॉजी, सोशल मीडिया, ऑनलाइन बुकिंग, फ़ोटोग्राफ़ी, वीडियो प्रोडक्शन और डिजिटल पेमेंट जैसी चीज़ों का इस्तेमाल कर सकते हैं।

गाँव का कोई युवा किसी स्थानीय होमस्टे के लिए वेबसाइट या सोशल मीडिया पेज चला सकता है। वे पर्यटकों के लिए स्थानीय टूर पैकेज तैयार कर सकते हैं और ऑनलाइन पेमेंट व बुकिंग की सुविधाएँ दे सकते हैं।

इस तरह, युवाओं की तकनीकी जानकारी और पुरानी पीढ़ी के स्थानीय ज्ञान को मिलाकर ग्रामीण उद्यमिता को ज़्यादा असरदार बनाया जा सकता है।

11. होमस्टे के ज़रिए रोज़गार पैदा करना

होमस्टे से सीधे और अप्रत्यक्ष, दोनों तरह के रोज़गार पैदा हो सकते हैं।सीधे रोज़गार में ये शामिल हैं:मेहमानों की सेवा,खाने-पीने का इंतज़ाम,हाउसकीपिंग (साफ़-सफ़ाई और देख-रेख)मैनेजमेंट (प्रबंधन),बुकिंग,लोकल गाइड की सेवाएँ,अप्रत्यक्ष रोज़गार में ये शामिल हैं:खेती-बाड़ी के उत्पादों की सप्लाई,स्थानीय ट्रांसपोर्ट,हस्तशिल्प (हाथ से बनी चीज़ें),फ़ूड प्रोसेसिंग (खाद्य प्रसंस्करण),सांस्कृतिक कार्यक्रम,निर्माण और मरम्मत की सेवाएँ इस तरह, एक सफल होमस्टे मॉडल स्थानीय आर्थिक गतिविधियों का एक छोटा लेकिन अहम केंद्र बन सकता है।

12. स्थानीय संस्कृति और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण

उत्तराखंड की सांस्कृतिक विविधता पर्यटन के लिए एक महत्वपूर्ण आधार है। पारंपरिक घर, स्थानीय भोजन, लोक गीत, लोक नृत्य, धार्मिक परंपराएं, हस्तशिल्प और स्थानीय जीवनशैली पर्यटकों के लिए आकर्षण का केंद्र बन सकते हैं। यदि पर्यटन को स्थानीय संस्कृति के संरक्षण से जोड़ा जाए, तो ग्रामीण समुदाय अपनी परंपराओं से आर्थिक लाभ कमा सकते हैं। उदाहरण के लिए, होमस्टे के मेनू में पारंपरिक भोजन को शामिल करना, स्थानीय हस्तशिल्प का प्रदर्शन करना और स्थानीय त्योहारों को सांस्कृतिक पर्यटन गतिविधियों से जोड़ना इसके प्रभावी उदाहरण हैं। हालाँकि, पर्यटन विकास के साथ-साथ पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखना भी

आवश्यक है। पर्यटकों की अत्यधिक संख्या से कचरा उत्पादन, पानी की मांग और प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ सकता है। इसलिए, टिकाऊ पर्यटन के सिद्धांतों को व्यापक रूप से अपनाया जाना चाहिए।

13. डिजिटल तकनीक और ग्रामीण उद्यमिता

डिजिटल तकनीक ग्रामीण उद्यमों के लिए बाजार की सीमाओं को कम कर सकती है। पहले, स्थानीय उत्पाद मुख्य रूप से स्थानीय बाजारों में बेचे जाते थे, लेकिन आज डिजिटल प्लेटफॉर्म उन्हें व्यापक बाजारों तक पहुँचने में सक्षम बना सकते हैं।

होमस्टे के लिए डिजिटल तकनीक के प्रमुख उपयोगों में शामिल हैं:

a. ऑनलाइन बुकिंग

b. डिजिटल भुगतान

c. सोशल मीडिया पर प्रचार

d. ऑनलाइन ग्राहक समीक्षाएं

e. डिजिटल मैप और लोकेशन की जानकारी

f. स्थानीय उत्पादों की ऑनलाइन बिक्री

g. वीडियो-आधारित पर्यटन प्रचार

उत्तराखंड पर्यटन विभाग का आधिकारिक होमस्टे प्लेटफॉर्म पंजीकृत होमस्टे के लिए दृश्यता और प्रचार के अवसर प्रदान करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आज की बढ़ती जरूरतों के अनुसार ग्रामीण पर्यटन उद्यमों की प्रतिस्पर्धात्मकता में डिजिटल उपस्थिति एक महत्वपूर्ण घटक हो सकती है।

14. रिवर्स माइग्रेशन और लोकल वैल्यू चेन

ग्रामीण उद्यमों की सफलता के लिए लोकल वैल्यू चेन बनाना ज़रूरी है। अगर पर्यटक होमस्टे में रहते हैं लेकिन अपना ज़्यादातर पैसा गाँव के बाहर खाने-पीने, ट्रांसपोर्ट और दूसरी सेवाओं पर खर्च करते हैं, तो लोकल इकॉनमी को होने वाला फ़ायदा सीमित रह जाता है। इसके उलट, अगर वैल्यू चेन में होमस्टे के काम से जुड़े लोकल किसान शामिल हों - जिससे लोकल खाने की माँग बढ़े और पर्यटक आकर्षित हों - और लोकल महिला समूह हस्तशिल्प, अचार, मसाले बनाने में शामिल होकर पर्यटकों को होमस्टे तक लाएँ, तो टूरिज़्म से होने वाली कमाई का एक बड़ा हिस्सा लोकल इकॉनमी में ही बना रह सकता है। इसलिए, ग्रामीण उद्यमिता का मकसद सिर्फ़ बिज़नेस शुरू करना नहीं, बल्कि लोकल इकॉनमिक नेटवर्क बनाना होना चाहिए।

15. सरकारी योजनाओं और संस्थागत सहयोग की भूमिका

ग्रामीण उद्यमिता की सफलता के लिए सरकारी संस्थाओं, लोकल निकायों, वित्तीय संस्थाओं, स्वयं-सहायता समूहों और समुदायों के बीच तालमेल ज़रूरी है। उत्तराखंड में मुख्यमंत्री की 'माइग्रेशन प्रिवेंशन स्कीम' (प्रवास रोकथाम योजना) का मकसद उन गाँवों में परिवारों, बेरोज़गार युवाओं और रिवर्स माइग्रेंट्स (वापस लौटे प्रवासियों) को स्वरोज़गार के मौके देना है जो पलायन से प्रभावित हैं। यह योजना खेती, बागवानी और पशुपालन जैसे क्षेत्रों में स्वरोज़गार और कौशल विकास को प्राथमिकता देती है। इसी तरह, टूरिज़्म डिपार्टमेंट की नीतियाँ होमस्टे और ग्रामीण टूरिज़्म के ज़रिए लोकल लोगों के लिए स्वरोज़गार और अतिरिक्त कमाई के मौकों को बढ़ावा देती हैं। इसलिए, अलग-अलग योजनाओं के बीच तालमेल ज़रूरी है। उदाहरण के लिए, होमस्टे को सिर्फ़ टूरिज़्म डिपार्टमेंट की पहल के तौर पर नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि इसे खेती, ग्रामीण विकास, कौशल विकास, महिला सशक्तिकरण और डिजिटल उद्यमिता से जोड़ा जाना चाहिए।

16. मुख्य चुनौतियाँ

हालांकि होमस्टे और ग्रामीण उद्यमों में काफी संभावनाएँ हैं, फिर भी कई चुनौतियाँ मौजूद हैं।

16.1 बुनियादी सुविधाओं की कमी

कई पहाड़ी गाँवों में सड़कें, पीने का पानी, बिजली, इंटरनेट कनेक्टिविटी, स्वास्थ्य सेवाएँ और अन्य सुविधाएँ उद्यमिता लाने में बाधा बन सकती हैं।

16.2 वित्तीय बाधाएँ

वापस लौटने वाले प्रवासियों के पास हमेशा पर्याप्त पूँजी नहीं होती है। बैंक लोन लेने की प्रक्रिया, गिरवी रखने के लिए संपत्ति की ज़रूरत और वित्तीय जानकारी की कमी बाधाएँ पैदा कर सकती है।

16.3 कौशल की कमी

मेहमानों के प्रबंधन, डिजिटल मार्केटिंग, खाद्य सुरक्षा, अकाउंटिंग और ग्राहक सेवा में कौशल की आवश्यकता होती है।

16.4 मार्केटिंग की समस्याएँ

अच्छी गुणवत्ता वाले उत्पादों के बावजूद, ग्रामीण उद्यमों को सही बाज़ार नहीं मिल पाते हैं। ब्रांडिंग और पैकेजिंग की कमी भी प्रतिस्पर्धात्मकता पर असर डाल सकती है।

16.5 पर्यटन का मौसमी स्वरूप

कई इलाकों में पहाड़ी पर्यटन मौसमी होता है। चूँकि ऑफ-सीज़न के दौरान आय कम हो सकती है, इसलिए होमस्टे संचालकों को आय के वैकल्पिक स्रोतों की ज़रूरत होती है।

16.6 ग्रामीण उद्यमिता के अवसर और संभावनाएं

उत्तराखंड में ग्रामीण उद्यमिता के लिए कई नए अवसर मौजूद हैं। राज्य की प्राकृतिक सुंदरता, हिमालयी संस्कृति और स्थानीय उत्पाद पर्यटन-आधारित उद्यमों के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करते हैं।

17. ग्रामीण पर्यटन

ग्रामीण जीवनशैली को पर्यटन के अनुभवों के रूप में पेश किया जा सकता है। देश-विदेश के पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों को पर्यटन क्षेत्र के लिए विकसित किया जा सकता है।

17.1 कृषि-पर्यटन

पर्यटकों को स्थानीय कृषि, बागवानी और पशुपालन गतिविधियों से जोड़ा जा सकता है, जिससे कृषि-पर्यटन को मजबूती मिलेगी। यह तरीका बड़ी संख्या में पर्यटकों को ग्रामीण इलाकों की ओर आकर्षित करने के लिए एक नया और अनोखा प्रयास होगा।

17.2 जैविक और प्राकृतिक उत्पाद

स्थानीय कृषि उत्पादों की गुणवत्ता, विशिष्टता और मौलिकता के आधार पर उनकी ब्रांडिंग की जा सकती है और उन्हें बाजारों से जोड़ा जा सकता है।

17.3 साहसिक पर्यटन

ट्रेकिंग, नेचर वॉक और अन्य गतिविधियों को होमस्टे के साथ जोड़ा जा सकता है। ग्रामीण इलाकों में आने वाले पर्यटक गांव की सैर और ध्यान (मेडिटेशन) जैसी गतिविधियों में काफी रुचि और उत्साह दिखाते हैं।

17.4 सांस्कृतिक पर्यटन

सांस्कृतिक पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए लोक कला, लोक संगीत, पारंपरिक भोजन, स्थानीय त्योहारों और स्थानीय उत्पादों को पर्यटन उत्पादों के रूप में विकसित किया जा सकता है।

17.5 महिला उद्यमिता

महिलाओं के स्वयं-सहायता समूह स्थानीय उत्पादों और खाद्य प्रसंस्करण गतिविधियों को व्यावसायिक उद्यमों में बदल सकते हैं। स्वयं-सहायता समूह विभिन्न स्थानीय व्यवसायों में शामिल रहे हैं और नए व्यवसाय व स्टार्टअप शुरू कर रहे हैं।

18. नीतिगत सुझाव

रिवर्स माइग्रेशन को टिकाऊ ग्रामीण विकास में बदलने के लिए निम्नलिखित उपाय महत्वपूर्ण हो सकते हैं:

18.1 रिवर्स माइग्रेंट उद्यमिता केंद्र

विकास-खंड स्तर पर ऐसे सहायता केंद्र विकसित किए जा सकते हैं जहाँ वापस लौटने वाले प्रवासियों को एक ही जगह पर बिज़नेस प्लानिंग, रजिस्ट्रेशन, फाइनेंस, युवाओं (खासकर महिलाओं) के लिए प्रशिक्षण और मार्केटिंग से जुड़ी जानकारी और सहायता मिल सके।

18.2 होमस्टे को स्थानीय वैल्यू चेन से जोड़ना

हर होमस्टे को स्थानीय किसानों, महिला समूहों, हस्तशिल्प उत्पादकों और परिवहन सेवा प्रदाताओं से जोड़ा जाना चाहिए ताकि स्थानीय उत्पादों की मार्केटिंग हो सके और वे पर्यटकों तक पहुँच सकें।

18.3 कौशल विकास

होमस्टे प्रबंधन, डिजिटल मार्केटिंग, हॉस्पिटैलिटी, स्थानीय खान-पान, प्राथमिक चिकित्सा, वित्तीय प्रबंधन और भाषा कौशल में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

18.4 आसान वित्तीय सहायता

वापस लौटने वाले प्रवासियों के लिए कम ब्याज वाले लोन, क्रेडिट गारंटी और उद्यम स्थापित करने में सहायता तक पहुँच को आसान बनाया जाना चाहिए।

18.5 महिला-केंद्रित उद्यमिता

महिलाओं के स्वयं-सहायता समूहों को होमस्टे, फ़ूड प्रोसेसिंग, हस्तशिल्प और स्थानीय उत्पादों की आपूर्ति से जोड़ा जाना चाहिए।

18.6 डिजिटल मार्केटिंग नेटवर्क

ज़िला या ब्लॉक स्तर पर साझा डिजिटल पोर्टल विकसित किए जा सकते हैं जहाँ होमस्टे और स्थानीय उत्पादों के बारे में जानकारी उपलब्ध हो।

18.7 स्थानीय ब्रांडिंग

हर इलाके के खास उत्पादों को उनकी भौगोलिक और सांस्कृतिक पहचान के आधार पर ब्रांड किया जा सकता है।

18.8 नियमित प्रभाव का आकलन

सरकारी योजनाओं के तहत शुरू किए गए होमस्टे और उद्यमों की नियमित निगरानी की जानी चाहिए ताकि नौकरियों की असल संख्या और होने वाली आय का पता चल सके।

19. कुल मिलाकर आकलन और भविष्य की संभावनाएं

उत्तराखंड में रिवर्स माइग्रेशन (प्रवासियों की वापसी) को सिर्फ़ प्रवासियों के अपने मूल स्थानों पर लौटने के तौर पर नहीं देखा जाना चाहिए; बल्कि, इसे ग्रामीण अर्थव्यवस्था को फिर से बनाने और स्थानीय विकास को बढ़ावा देने के एक मौके के तौर पर समझना ज़्यादा फायदेमंद है। लौटने वाले प्रवासियों के पास कई तरह के कौशल, काम का अनुभव, व्यापार की जानकारी और नए विचार होते हैं। अगर इन क्षमताओं को स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों, पारंपरिक ज्ञान और उपलब्ध आर्थिक अवसरों के साथ मिलाया जाए, तो ग्रामीण इलाकों में नए उद्यमों के विकास की काफी संभावनाएं पैदा हो सकती हैं।

इस संदर्भ में, होमस्टे ग्रामीण इलाकों में नई जान फूंकने का एक असरदार ज़रिया बन सकते हैं। उत्तराखंड के पहाड़ी इलाकों में पारंपरिक घर, प्राकृतिक नज़ारे, स्थानीय खान-पान, लोक संस्कृति और पारंपरिक जीवनशैली पर्यटन के नज़रिए से मुख्य आकर्षण बन सकते हैं। लौटने वाले प्रवासी अपने पुश्तैनी घरों को होमस्टे में बदलकर अपने लिए आय का ज़रिया बना सकते हैं। साथ ही, होमस्टे स्थानीय किसानों, महिलाओं के स्वयं-सहायता समूहों, हस्तशिल्प बनाने वालों, युवाओं और परिवहन सेवा देने वालों को आर्थिक गतिविधियों से जोड़ सकते हैं।

भविष्य में, होमस्टे को सिर्फ़ रहने की जगह के तौर पर नहीं, बल्कि एक मिले-जुले ग्रामीण पर्यटन मॉडल के तौर पर विकसित करने की ज़रूरत है। इस मॉडल के तहत, होमस्टे को स्थानीय खेती, ऑर्गेनिक उत्पादों, फ़ूड प्रोसेसिंग, हस्तशिल्प, सांस्कृतिक गतिविधियों, एडवेंचर टूरिज़्म और प्रकृति-आधारित पर्यटन से जोड़ा जा सकता है। इससे पर्यटकों के लिए ज़्यादा आकर्षक अनुभव बन सकते हैं और यह पक्का किया जा सकता है कि पर्यटन से होने वाली कमाई का एक बड़ा हिस्सा स्थानीय समुदाय तक पहुँचे।

इस सेक्टर के विकास में डिजिटल टेक्नोलॉजी भी अहम भूमिका निभा सकती है। सोशल मीडिया, ऑनलाइन बुकिंग, डिजिटल पेमेंट, ऑनलाइन मार्केटिंग और ई-कॉमर्स के ज़रिए ग्रामीण उद्यम अपने उत्पादों और सेवाओं को स्थानीय बाज़ारों से आगे राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों तक पहुँचा सकते हैं। खासकर युवा डिजिटल टेक्नोलॉजी के ज़रिए होमस्टे और स्थानीय उत्पादों की ब्रांडिंग और प्रमोशन में अहम भूमिका निभा सकते हैं।

महिलाओं की भागीदारी बढ़ाना भविष्य की एक और बड़ी ज़रूरत है। स्थानीय भोजन, अचार, मसाले, हस्तशिल्प, ऊनी उत्पादों और अन्य पारंपरिक सामानों के उत्पादन और मार्केटिंग में महिलाओं के अनुभव का इस्तेमाल किया जा सकता है। स्वयं-सहायता समूहों को होमस्टे और ग्रामीण पर्यटन से जोड़ने से महिलाओं के लिए अतिरिक्त आय और स्वरोज़गार के अवसर पैदा हो सकते हैं।

हालाँकि, इन संभावनाओं को असल विकास में बदलने के लिए सड़कों, इंटरनेट कनेक्टिविटी, पीने के पानी, बिजली, वित्तीय सहायता, ट्रेनिंग, मार्केटिंग और संस्थागत सहयोग जैसी बुनियादी सुविधाओं को मज़बूत करने की ज़रूरत है। साथ ही, बिना योजना के पर्यटन के विस्तार से पर्यावरण पर पड़ने वाले दबाव को नियंत्रित करना भी ज़रूरी है। इसलिए, भविष्य की विकास रणनीतियाँ आर्थिक विकास, सामाजिक समावेश और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन पर आधारित होनी चाहिए।

इस प्रकार, उत्तराखंड में रिवर्स माइग्रेशन (वापसी प्रवास) को ग्रामीण पुनरुद्धार के अवसर में बदलने के लिए मॉडल विकसित किया जा सकता है, जिसकी अपनी खास विशेषताएँ हों। ऐसा मॉडल न केवल लौटने वाले प्रवासियों को स्थानीय स्तर पर सम्मानजनक आजीविका प्रदान कर सकता है, बल्कि पहाड़ी क्षेत्रों में ग्रामीण रोज़गार, स्थानीय संस्कृति के संरक्षण, महिलाओं और युवाओं के सशक्तिकरण और टिकाऊ व समावेशी विकास को भी बढ़ावा दे सकता है।

20. निष्कर्ष

उत्तराखंड में रिवर्स माइग्रेशन (वापसी प्रवास) ग्रामीण विकास के लिए एक बड़ा मौका देता है। वापस लौटने वाले प्रवासी अपने साथ हुनर, अनुभव और उद्यमिता की जानकारी लाते हैं, जो स्थानीय संसाधनों के साथ मिलकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बना सकते हैं। होमस्टे स्थानीय संस्कृति, खान-पान, प्राकृतिक संसाधनों और पारंपरिक जीवनशैली को पर्यटन से जोड़कर अहम भूमिका निभा सकते हैं। इन्हें खेती, बागवानी, पशुपालन, फूड प्रोसेसिंग, हस्तशिल्प, महिलाओं के स्वयं-सहायता समूहों और डिजिटल उद्यमिता से जोड़ने पर रोजगार और आय के कई तरह के मौके बन सकते हैं।ग्रामीण इलाकों के टिकाऊ पुनरुद्धार के लिए, रिवर्स माइग्रेशन को एक एकीकृत विकास रणनीति के तौर पर देखा जाना चाहिए। वापस लौटने वाले प्रवासियों को पर्याप्त आर्थिक मदद, कौशल विकास, डिजिटल तकनीक, बाजार तक पहुंच और संस्थागत सहायता की जरूरत है, जिसमें महिलाएं और युवा सक्रिय रूप से शामिल हों।आखिरकार, स्थानीय मानव संसाधनों, प्राकृतिक संपदा और सामुदायिक भागीदारी का सही इस्तेमाल उत्तराखंड के पहाड़ी गांवों में टिकाऊ विकास को बढ़ावा दे सकता है। सही नीति और संस्थागत सहयोग से, होमस्टे और ग्रामीण उद्यम रोजगार पैदा कर सकते हैं, आजीविका के साधन बढ़ा सकते हैं, स्थानीय संस्कृति को बचा सकते हैं, पर्यटन को बढ़ावा दे सकते हैं और पलायन को कम कर सकते हैं, जिससे रिवर्स माइग्रेशन नए सिरे से ग्रामीण विकास का आधार बन सकता है।

21.संदर्भ

1.उत्तराखंड पर्यटन विकास बोर्ड. (2018). *उत्तराखंड पर्यटन नीति 2018*. उत्तराखंड सरकार.

2.मुखड़ा, आर. (2020). कोविड-19 सेट्स ऑफ मास माइग्रेशन इन इंडिया. *आर्काइव्स ऑफ मेडिकल रिसर्च*, 51(7), 736–738.

3.रोलैंड, एस. (2020). कोविड-19 पेंडमिक: अप्लाइंग ए मल्टीसिस्टमिक लेंस. *फैमिली प्रोसेस*, 59(3), 922–936.

4.समद्दार, आर. (2020). बॉर्डर्स ऑफ एन एपिडेमिक: कोविड-19 एंड माइग्रेंट वर्कर्स. द *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कम्युनिटी एंड सोशल डेवलपमेंट*, 2(2), 286–287.

5.ग्रामीण विकास विभाग, उत्तराखंड सरकार। (2020) *मुख्यमंत्री प्रवासन रोकथाम योजना*। उत्तराखंड सरकार।

6.उत्तराखंड पर्यटन विकास बोर्ड। (2026) *होमस्टे पंजीकरण एवं होमस्टे दिशानिर्देश*। उत्तराखंड सरकार।

7. उत्तराखंड पर्यटन विकास बोर्ड। (2026) *नीतियाँ एवं दिशानिर्देश*। उत्तराखंड सरकार।

8. उत्तराखंड पर्यटन विकास बोर्ड। (2026) *उत्तराखंड में होमस्टे एवं पर्यटन संबंधी जानकारी*।

9.उत्तराखंड पर्यटन विकास बोर्ड। (2025) *उत्तराखंड की समग्र पर्यटन विकास योजना*। उत्तराखंड सरकार।

उत्तराखंड में प्रतिलोम प्रवासन से ग्रामीण पुनरोद्धारःगृह आवास, ग्रामीण उद्यमिता एवं आजीविका को सतत एवं मजबूत करने में मुक्त और दूरस्थ शिक्षा (ओडीएल) की परिवर्तनकारी भूमिका

डॉ. शालिनी चौधरी

परिचय

उत्तराखंड, मुख्य रूप से हिमालयी राज्य , के पास असाधारण पारिस्थितिक , सांस्कृतिक और सामाजिक-आर्थिक संसाधन हैं जो सतत ग्रामीण विकास के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करते हैं। साथ ही , सीमित आजीविका के अवसरों, अपर्याप्त बुनियादी ढांचे , कृषि व्यवहार्यता में गिरावट , शैक्षिक और रोजगार बाधाओं और बुनियादी सेवाओं तक असमान पहुंच के कारण राज्य ने अपने पहाड़ी जिलों से लगातार पलायन का अनुभव किया है। उत्तराखंड के ग्रामीण विकास और पलायन रोकथाम आयोग ने दीर्घकालिक पलायन के जनसांख्यिकीय परिणामों पर प्रकाश डाला है , जिसमें कई पर्वतीय जिलों में जनसंख्या में गिरावट और कम आबादी वाले गांवों का उदय शामिल है। परिणामस्वरूप, प्रवासन ना केवल एक जनसांख्यिकीय घटना के रूप में बल्कि ग्रामीण आजीविका , सामुदायिक संस्थानों, स्थानीय पारंपरिक ज्ञान और स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं की वहनीयता के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती के रूप में उभरा है।

कोविड-19 महामारी ने उत्तराखंड में प्रतिलोम प्रवासन का एक महत्वपूर्ण , हालांकि जटिल, चरण उत्पन्न किया, क्योंकि शहरी रोजगार में व्यवधान के बाद श्रमिक और परिवार अपने मूल गांवों में लौट आए। हाल के शोध से पता चलता है कि प्रतिलोम प्रवासन ने खासकर उद्यमिता , पर्यटन, जैविक कृषि और अन्य स्थानीय रूप से निहित आर्थिक गतिविधियों के माध्यम से ग्रामीण परिवर्तन के लिए चुनौतियां और अवसर दोनों पैदा किए हैं , (पंत, 2026)। हालांकि, प्रवासियों की वापसी से ग्रामीण क्षेत्रों का सतत पुनरुद्धार स्वत: ही सुनिश्चित नहीं हो जाता। बल्कि उचित कौशल, उद्यमशीलता क्षमताओं, बाजार संबंधों, डिजिटल दक्षताओं, वित्तीय साक्षरता और संस्थागत समर्थन के अभाव में वापस लौटने वाले प्रवासी असुरक्षित आजीविका के कारण बार-बार और लगातार पलायन के प्रति संवेदनशील हो सकते हैं। इस संदर्भ में, स्थानीय आवासीय संपत्तियों, सांस्कृतिक संसाधनों एवं आतिथ्य परंपराओं को गृह आवास के रूप में सतत आजीविका के अवसरों में परिवर्तित करने का एक महत्वपूर्ण तरीका है।

उत्तराखंड में प्रतिलोम प्रवासन का बदलता परिदृश्य

उत्तराखंड में प्रवासन लंबे समय से सामाजिक , आर्थिक और जनसांख्यिकीय परिवर्तन का प्रमुख निर्धारक रहा है। विशेषकर पर्वतीय क्षेत्रों से रोजगार , शिक्षा, स्वास्थ्य तथा बेहतर जीवन-स्तर की तलाश में मैदानी क्षेत्रों और महानगरों की ओर होने वाला बहिर्प्रवासन राज्य के ग्रामीण समाज की संरचना को प्रभावित करता रहा है। वर्ष 2011 की जनगणना में पर्वतीय जिलों की जनसंख्या वृद्धि मैदानी जिलों की तुलना में काफी कम रही थी; पर्वतीय जिलों में जनसंख्या वृद्धि लगभग 0.7 प्रतिशत ही थी, जबकि मैदानी जिलों में जनसंख्या वृद्धि लगभग 2.8 प्रतिशत गई थी। यह अंतर ग्रामीण-शहरी और पर्वतीय-मैदानी क्षेत्रों में निरंतर प्रवास की ओर संकेत करता है। उत्तराखंड में प्रवासन का पारंपरिक स्वरूप मुख्यत : स्थायी अथवा दीर्घकालिक बहिर्प्रवासन का रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में सीमित रोजगार अवसर, कृषि की कम उत्पादकता, छोटी एवं बिखरी जोतें, सिंचाई की कमी, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं की सीमित उपलब्धता तथा कठिन भौगोलिक परिस्थितियाँ इसके प्रमुख कारण रहे हैं। ग्रामीण विकास एवं पलायन आयोग ने भी पर्वतीय क्षेत्रों के अनेक गाँवों की जनसंख्या में कमी तथा कुछ गाँवों के अत्यधिक विरलीकरण को गंभीर चुनौती के रूप में रेखांकित किया है। हालाँकि, COVID-19 महामारी के बाद प्रवासन परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण और सकारात्मक बदलाव देखा गया , जिसे 'प्रतिलोम प्रवासन' (reverse migration) के रूप में देखा गया। लॉकडाउन और शहरी अर्थव्यवस्था में रोजगार संकट के कारण बड़ी संख्या में प्रवासी श्रमिक अपने पैतृक गाँवों की ओर लौटे। यह वापसी केवल अस्थायी संकट-प्रेरित प्रतिक्रिया नहीं थी ; इसने ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सतत आजीविका, स्वरोजगार और उद्यमिता की संभावनाओं को पुन : चर्चा के केंद्र में ला दिया। उपलब्ध अध्ययनों में

महामारी के बाद उत्तराखंड में लगभग 2.16 लाख लोगों के वापस लौटने का उल्लेख मिलता है , यद्यपि विभिन्न सर्वेक्षणों और समय-अवधियों के कारण आंकड़ों में अंतर पाया जाता है (Pant, 2026)। महत्वपूर्ण रूप से, प्रतिलोम प्रवासन को केवल 'शहर से गाँव वापसी' के रूप में समझना पर्याप्त नहीं है। यह ग्रामीण संसाधनों , सामाजिक पूँजी, कौशल और पारिवारिक संपत्तियों के पुन : स क्रियण की प्रक्रिया भी है। लौटे हुए प्रवासियों में निर्माण , आतिथ्य, परिवहन, डिजिटल सेवाओं, पर्यटन, कृषि-प्रसंस्करण तथा लघु व्यवसायों से संबंधित कौशल मौजूद हैं। यदि इन कौशलों को स्थानीय संसाधनों और बाजारों से जोड़ा जाए तो प्रतिलोम प्रवासन ग्रामीण पुनर्जीवन (rural revitalization) का माध्यम बन सकता है। इसी संदर्भ में गृह आवास को विशेष महत्व प्राप्त करता है। उत्तराखंड सरकार ने ग्रामीण पर्यटन को बढ़ावा देने तथा स्थानीय स्तर पर स्वरोजगार और अतिरिक्त आय के अवसर पैदा करने के लिए दीनदयाल उपाध्याय गृह आवास/होमस्टे योजनाओं को प्रोत्साहित किया है। वर्तमान पर्यटन व्यवस्था में ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय निवासियों द्वारा संचालित होमस्टे को पर्यटन , स्थानीय उत्पादों और सामुदायिक उद्यमिता से जोड़ने पर बल दिया जा रहा है। हालिया शोध भी संकेत करता है कि होमस्टे केवल आवासीय सुविधा नहीं, बल्कि आय-विविधीकरण, स्थानीय रोजगार, कौशल विकास और स्थानीय व्यावसायिक संबंधों को मजबूत करने वाला ग्रामीण उद्यम बन सकता है। Lakhera et al. (2025) के अध्ययन में होमस्टे गतिविधियों और आय-सृजन , आय-विविधीकरण, स्थानीय व्यवसायिक जुड़ाव तथा रोजगार संभावनाओं के बीच सकारात्मक संबंध रेखांकित किया गया है। इस प्रकार लौटे हुए प्रवासी अपने घरों, स्थानीय संस्कृति, कृषि उत्पादों, पारंपरिक भोजन और प्राकृतिक संसाधनों को पर्यटन-आधारित उद्यमों में परिवर्तित कर सकते हैं। फिर भी प्रतिलोम प्रवासन को स्वतः स्थायी ग्रामीण विकास में परिवर्तित मानना उचित नहीं होगा। लौटे प्रवासियों को पूँजी, बाजार, डिजिटल विपणन, पर्यटन प्रबंधन, आतिथ्य कौशल, वित्तीय साक्षरता और तकनीकी प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। यहीं मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा (ODL) महत्वपूर्ण हस्तक्षेप के रूप में उभरती है।

ODL ग्रामीण युवाओं और लौटे प्रवासियों को गाँव छोड़े बिना उद्यमिता , डिजिटल मार्केटिंग, होमस्टे प्रबंधन, लेखांकन, संचार-कौशल, स्थानीय उत्पादों के मूल्यवर्धन तथा सतत पर्यटन से संबंधित ज्ञान और कौशल उपलब्ध करा सकती है। इस प्रकार ODL प्रतिलोम प्रवासन को केवल जनसांख्यिकीय वापसी न रहने देकर उसे ज्ञान-आधारित ग्रामीण उद्यमिता और आजीविका निरंतरता में बदलने का माध्यम बन सकती है। अतः उत्तराखंड में बदलता प्रतिलोम प्रवासन परिदृश्य एक महत्वपूर्ण विकासात्मक अवसर प्रस्तुत करता है। यदि लौटे प्रवासियों की मानव पूँजी को होमस्टे पर्यटन, ग्रामीण उद्यमिता, स्थानीय कृषि एवं हस्तशिल्प तथा ODL-आधारित कौशल विकास से जोड़ा जाए, तो यह प्रक्रिया 'पलायन रोकने' से आगे बढ़कर गाँवों के पुनर्जीवन, स्थानीय रोजगार सृजन, सांस्कृतिक संरक्षण और सतत आजीविका निर्माण की दिशा में परिवर्तनकारी भूमिका निभा सकती है।

आजीविका निरंतरता और ग्रामीण आर्थिक पुनर्जीवन

उत्तराखंड के पर्वतीय ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका निरंतरता (livelihood continuity) केवल नियमित आय की उपलब्धता तक सीमित अवधारणा नहीं है , बल्कि यह स्थानीय संसाधनों , कौशल, सामाजिक पूंजी, उद्यमिता और संस्थागत सहयोग के माध्यम से परिवारों की दीर्घकालिक आर्थिक सुरक्षा को सुनिश्चित करने की प्रक्रिया है। पर्वतीय क्षेत्रों में कृषि की सीमित उत्पादकता , रोजगार के अवसरों की कमी , बाजार से दूरी , आधारभूत सुविधाओं की विषमता तथा बेहतर आय की आकांक्षा ने लंबे समय से ग्रामीण-शहरी प्रवासन को बढ़ावा दिया है। परिणामस्वरूप अनेक गांवों में श्रमशक्ति की कमी, कृषि भूमि का परित्याग, स्थानीय बाजारों का संकुचन और सामुदायिक जीवन में परिवर्तन जैसी समस्याएं उभरी हैं। ऐसे परिदृश्य में प्रतिलोम प्रवासन (reverse migration) ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन और स्थानीय आजीविका के पुनर्निर्माण का महत्वपूर्ण अवसर प्रस्तुत करता है।

ग्रामीण आर्थिक पुनर्जीवन का आधार स्थानीय संसाधनों को स्थानीय उद्यमों से जोड़ना है। उत्तराखंड में प्राकृतिक सौंदर्य , जैव-विविधता, पारंपरिक वास्तुकला , लोक-संस्कृति, स्थानीय भोजन , हस्तशिल्प, कृषि एवं

बागवानी संसाधन पर्यटन-आधारित आजीविका के लिए महत्वपूर्ण परिसंपत्तियां हैं। इसी संदर्भ में होमस्टे पर्यटन एक ऐसी विकेंद्रीकृत आर्थिक गतिविधि के रूप में उभरता है जो ग्रामीण परिवारों को अपने मौजूदा आवास, स्थानीय ज्ञान और सांस्कृतिक पूंजी को आय-सृजन में परिवर्तित करने का अवसर देता है। उत्तराखंड की पर्यटन नीति भी होमस्टे को ग्रामीण जीवन, संस्कृति और भोजन के अनुभव से जोड़ते हुए इसे वैकल्पिक आजीविका तथा अतिरिक्त आय का माध्यम मानती है। नीति में युवाओं को कहानी-वाचन, हस्तशिल्प एवं पर्यटक सेवाओं से संबंधित प्रशिक्षण देने पर भी बल दिया गया है। होमस्टे का आर्थिक प्रभाव केवल कमरे किराये पर देने तक सीमित नहीं रहता। इसके साथ स्थानीय आपूर्ति शृंखला (local supply chain) विकसित हो सकती है , जिसमें स्थानीय किसान , दुग्ध उत्पादक, कारीगर, वाहन चालक, गाइड, खाद्य प्रसंस्करणकर्ता और महिला स्वयं सहायता समूह शामिल होते हैं। इस प्रकार पर्यटन आय का एक हिस्सा गांव के भीतर ही परिसंचारित होता है और स्थानीय आर्थिक गुणक (local economic multiplier) उत्पन्न करता है। हालिया शोध से भी संकेत मिलता है कि उत्तराखंड में होमस्टे आय-सृजन , आय-विविधीकरण, स्थानीय व्यवसायों से जुड़ाव, कौशल विकास और रोजगार के अवसरों को बढ़ावा दे सकते हैं।

आजीविका निरंतरता की दृष्टि से आय के विविध स्रोत विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। पर्वतीय अर्थव्यवस्था मौसमी और जलवायु-संवेदनशील होने के कारण केवल कृषि अथवा केवल पर्यटन पर निर्भरता जोखिमपूर्ण हो सकती है। इसलिए होमस्टे को कृषि-पर्यटन, स्थानीय खाद्य प्रसंस्करण, जैविक उत्पाद, औषधीय एवं सुगंधित पौधों, हस्तशिल्प, ट्रेकिंग, प्रकृति-आधारित पर्यटन और सांस्कृतिक अनुभवों के साथ जोड़ना आवश्यक है। इस प्रकार एक बहु-स्रोत ग्रामीण आजीविका मॉडल विकसित किया जा सकता है , जिसमें परिवार विभिन्न आर्थिक गतिविधियों के माध्यम से पूरे वर्ष आय अर्जित कर सके। उत्तराखंड के पर्यटन मास्टर प्लान में भी होमस्टे के माध्यम से प्रवासन का सामना करने के लिए ग्रामीण आजीविका के अवसरों तथा स्थानीय समुदाय के कौशल-विकास को महत्वपूर्ण माना गया है। इसी बिंदु पर मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा (ODL) ग्रामीण आर्थिक पुनर्जीवन का महत्वपूर्ण संस्थागत माध्यम बन सकती है। प्रतिलोम प्रवासियों और ग्रामीण युवाओं के लिए नियमित विश्वविद्यालयी शिक्षा में प्रवेश हमेशा संभव नहीं होता। ODL उन्हें रोजगार अथवा उद्यम जारी रखते हुए व्यवसाय प्रबंधन , डिजिटल मार्केटिंग, लेखांकन, पर्यटन प्रबंधन, आतिथ्य, ई-कॉमर्स, संचार कौशल तथा स्थानीय उद्यमिता जैसे क्षेत्रों में लचीला कौशल-विकास अवसर प्रदान कर सकती है। विशेष रूप से डिजिटल माध्यमों द्वारा उपलब्ध प्रशिक्षण होमस्टे संचालकों को ऑनलाइन बुकिंग , सोशल मीडिया प्रचार, ग्राहक संबंध प्रबंधन और डिजिटल भुगतान जैसी आधुनिक व्यावसायिक क्षमताओं से जोड़ सकता है।

इस प्रकार ODL को केवल शिक्षा प्रदान करने वाली व्यवस्था के रूप में नहीं , बल्कि “learning-to-livelihood” और “learning-to-enterprise” ecosystem के रूप में देखा जाना चाहिए। यदि लौटे हुए प्रवासियों के पूर्व अनुभवों और स्थानीय संसाधनों को ODL आधारित कौशल, प्रमाणन और उद्यमिता प्रशिक्षण से जोड़ा जाए , तो वे नौकरी खोजने वालों के बजाय स्थानीय रोजगार एवं उद्यम सृजक बन सकते हैं। यह प्रक्रिया ग्रामीण मानव पूंजी को मजबूत करते हुए स्थानीय आर्थिक पुनर्जीवन को गति दे सकती है। अतः उत्तराखंड में आजीविका निरंतरता और ग्रामीण आर्थिक पुनर्जीवन के लिए प्रतिलोम प्रवासन + ODL+सतत होमस्टे+ग्रामीण उद्यमिता+स्थानीय मूल्य शृंखला का एकीकृत मॉडल अधिक प्रभावी हो सकता है। इसका उद्देश्य केवल प्रवासन को रोकना नहीं , बल्कि ऐसे सक्षम ग्रामीण समुदायों का निर्माण करना है जहां स्थानीय संसाधन , ज्ञान और कौशल सम्मानजनक तथा टिकाऊ आय में परिवर्तित हों। इस दृष्टि से होमस्टे पर्यटन ग्रामीण अर्थव्यवस्था का प्रवेश-बिंदु , उद्यमिता उसका विस्तार और ODL उसकी ज्ञान एवं कौशल-आधारित आधारभूत संरचना बन सकता है।

सतत होमस्टे पर्यटन एवं ग्रामीण उद्यमिता

उत्तराखंड जैसे हिमालयी राज्य में पर्यटन केवल आर्थिक गतिविधि नहीं, बल्कि ग्रामीण आजीविका, स्थानीय संस्कृति, प्राकृतिक संसाधनों तथा सामाजिक संरचना से गहराई से जुड़ी हुई प्रक्रिया है। पर्वतीय क्षेत्रों में रोजगार के सीमित अवसर, कृषि की घटती उत्पादकता , आधारभूत सुविधाओं की कमी तथा युवाओं के पलायन ने अनेक गांवों की

सामाजिक-आर्थिक जीवन्तता को प्रभावित किया है। इस संदर्भ में **सतत होमस्टे पर्यटन** ग्रामीण पुनर्जीवन और स्थानीय उद्यमिता का एक महत्वपूर्ण माध्यम बनकर उभर रहा है। होमस्टे मॉडल में स्थानीय परिवार अपने आवास के एक हिस्से को पर्यटकों के लिए उपलब्ध कराते हैं तथा उन्हें स्थानीय भोजन, संस्कृति, परंपराओं और जीवन-पद्धति का अनुभव प्रदान करते हैं। उत्तराखंड पर्यटन विभाग भी होमस्टे को स्थानीय स्तर पर स्वरोजगार , अतिरिक्त आय तथा दूरस्थ ग्रामीण पर्यटन क्षेत्रों के विकास से जोड़ता है। सतत होमस्टे पर्यटन की विशेषता यह है कि इसका उद्देश्य केवल पर्यटकों की संख्या बढ़ाना नहीं , बल्कि आर्थिक, सामाजिक-सांस्कृतिक और पर्यावरणीय स्थिरता के बीच संतुलन स्थापित करना है। आर्थिक दृष्टि से होमस्टे परिवारों को अतिरिक्त आय , स्थानीय रोजगार और उद्यमिता के अवसर प्रदान करता है। इससे पर्यटन से होने वाली आय गांव के भीतर ही रहती है और कृषि , हस्तशिल्प, स्थानीय खाद्य पदार्थ, परिवहन, गाइड सेवा तथा सांस्कृतिक गतिविधियों जैसे सहायक व्यवसायों को भी प्रोत्साहन मिलता है। कुमाऊँ क्षेत्र पर किए गए एक अध्ययन में पाया गया कि होमस्टे ग्रामीण परिवारों की आय में पूरक भूमिका निभा सकते हैं और युवाओं के शहरों की ओर पलायन को कम करने में योगदान दे सकते हैं (Singh & Kamruddin, 2024)।

ग्रामीण उद्यमिता के संदर्भ में होमस्टे विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें बड़े पूंजी निवेश की अपेक्षा स्थानीय संसाधनों, पारिवारिक श्रम, पारंपरिक ज्ञान और मौजूदा आवासीय परिसंपत्तियों का उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार ग्रामीण परिवार केवल पर्यटन के उपभोक्ता नहीं रहते , बल्कि स्थानीय पर्यटन उद्यमी बनते हैं। उत्तराखंड की पर्यटन नीतियों में भी होमस्टे को स्थानीय लोगों के लिए स्वरोजगार और ग्रामीण पर्यटन विकास के साधन के रूप में प्रोत्साहित किया गया है।

सततता की दूसरी महत्वपूर्ण dimension सामाजिक एवं सांस्कृतिक संरक्षण है। होमस्टे पर्यटकों और स्थानीय समुदाय के बीच प्रत्यक्ष सांस्कृतिक संवाद स्थापित करता है। स्थानीय भोजन , लोककला, संगीत, वास्तुकला, कृषि पद्धतियां, त्योहार और पारंपरिक जीवन-शैली पर्यटन अनुभव का हिस्सा बन सकती हैं। इससे स्थानीय संस्कृति का आर्थिक मूल्य बढ़ता है और युवा पीढ़ी में अपनी सांस्कृतिक विरासत के प्रति रुचि विकसित हो सकती है। हालांकि , अत्यधिक व्यावसायीकरण से संस्कृति के बाजारीकरण तथा स्थानीय जीवन-शैली पर दबाव जैसी चुनौतियां भी उत्पन्न हो सकती हैं। इसलिए सतत होमस्टे विकास में स्थानीय समुदाय की भागीदारी और निर्णय-निर्माण आवश्यक है। हालिया शोध भी संकेत करता है कि ग्रामीण होमस्टे आर्थिक स्थिरता को मजबूत कर सकते हैं , लेकिन पर्यटन की बढ़ती मांग के साथ सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिरता को समान रूप से सुनिश्चित करना आवश्यक है।

पर्यावरणीय दृष्टि से छोटे पैमाने के होमस्टे बड़े होटल एवं रिसॉर्ट आधारित पर्यटन की तुलना में स्थानीय संसाधनों पर अपेक्षाकृत कम दबाव डालने की क्षमता रखते हैं। वर्षा जल संचयन , सौर ऊर्जा, स्थानीय निर्माण सामग्री, जैविक कचरा प्रबंधन, स्थानीय खाद्य पदार्थों का उपयोग तथा प्लास्टिक-मुक्त पर्यटन जैसी गतिविधियां होमस्टे को अधिक पर्यावरण-अनुकूल बना सकती हैं। इसके साथ ही पर्यटन गतिविधियों की वहन-क्षमता , जल संसाधनों और जैव-विविधता के संरक्षण को ध्यान में रखना आवश्यक है।

इस संदर्भ में ग्रामीण उद्यमिता और ODL (Open and Distance Learning) का संयोजन प्रस्तावित शोध की विशिष्टता को मजबूत करता है। दूरस्थ एवं मुक्त शिक्षा के माध्यम से होमस्टे संचालकों और संभावित ग्रामीण उद्यमियों को डिजिटल मार्केटिंग , ऑनलाइन बुकिंग, आतिथ्य प्रबंधन, वित्तीय साक्षरता, उद्यमिता, भाषा-कौशल, खाद्य सुरक्षा, पर्यावरण प्रबंधन तथा ग्राहक सेवा जैसी क्षमताओं में प्रशिक्षित किया जा सकता है। इससे भौगोलिक दूरी और सीमित प्रशिक्षण संस्थानों की समस्या को कम किया जा सकता है। विशेष रूप से उत्तराखंड के दूरस्थ पर्वतीय गांवों में ODL“knowledge access” से “enterprise empowerment” की दिशा में महत्वपूर्ण सेतु बन सकता है।

इस प्रकार सतत होमस्टे पर्यटन को केवल पर्यटन-आधारित आय का साधन न मानकर ग्रामीण पुनर्जीवन, स्थानीय उद्यमिता, आजीविका निरंतरता और प्रतिलोम प्रवासन के एकीकृत मॉडल के रूप में देखा जा सकता है। हालिया

उत्तराखंड-आधारित शोध भी होमस्टे सहभागिता , आजीविका धारणा और सामुदायिक कल्याण के बीच संबंध तथा पलायन-निरोध की संभावनाओं को रेखांकित करता है। अतः प्रस्तावित अध्ययन में ODL को ग्रामीण उद्यमियों की क्षमता-वृद्धि के साधन के रूप में जोड़ना उत्तराखंड में पर्यटन को अधिक समावेशी, स्थानीय-आधारित, टिकाऊ और आजीविका-केंद्रित बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण हस्तक्षेप हो सकता है।

ODL की परिवर्तनकारी भूमिका

उत्तराखंड जैसे पर्वतीय राज्य में प्रतिलोम प्रवासन को केवल लोगों की भौगोलिक वापसी के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है; इसे ग्रामीण अर्थव्यवस्था, स्थानीय उद्यमिता, सामाजिक पुनर्संरचना तथा आजीविका के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया के रूप में समझना आवश्यक है। इस संदर्भ में मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा (Open and Distance Learning) एक महत्वपूर्ण परिवर्तनकारी माध्यम के रूप में उभरती है। ODL शिक्षा को व्यक्ति के निवास , कार्य और स्थानीय परिस्थितियों से जोड़ते हुए उन ग्रामीण युवाओं , महिलाओं तथा प्रवास से लौटे व्यक्तियों तक पहुँच बना सकती है , जिनके लिए पारंपरिक उच्च शिक्षा एवं कौशल प्रशिक्षण संस्थानों तक नियमित पहुँच कठिन होती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 भी ODL को उच्च शिक्षा की पहुँच बढ़ाने, सकल नामांकन अनुपात में वृद्धि करने तथा आजीवन अधिगम के अवसर उपलब्ध कराने का महत्वपूर्ण साधन मानती है (Ministry of Education, 2020)।

उत्तराखंड में होमस्टे पर्यटन को ग्रामीण रोजगार और स्थानीय आय-सृजन से जोड़ने के लिए सरकारी स्तर पर भी विशेष प्रयास किए गए हैं। राज्य की होमस्टे नीति का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में पर्यटकों के लिए आवासीय सुविधाएँ विकसित करने के साथ-साथ स्थानीय स्तर पर स्वरोजगार और अतिरिक्त आय के अवसर पैदा करना है। वर्तमान प्रावधानों में ग्रामीण क्षेत्रों और स्थानीय निवासियों की भूमिका पर विशेष बल दिया गया है , जिससे होमस्टे को स्थानीय अर्थव्यवस्था तथा ग्रामीण आजीविका से जोड़ने की संभावनाएँ और महत्वपूर्ण हो जाती हैं। ऐसी परिस्थिति में ODL को केवल डिग्री प्रदान करने की व्यवस्था के बजाय "learning for livelihood" अर्थात् आजीविका-केंद्रित अधिगम के रूप में पुनर्संगठित किया जा सकता है।

ODL के माध्यम से लौटे हुए प्रवासियों को होमस्टे प्रबंधन , आतिथ्य एवं ग्राहक सेवा, डिजिटल मार्केटिंग, ऑनलाइन बुकिंग, लेखांकन, वित्तीय साक्षरता, उद्यमिता, स्थानीय खाद्य प्रसंस्करण, हस्तशिल्प विपणन, साहसिक एवं प्रकृति-आधारित पर्यटन तथा सतत पर्यटन प्रबंधन जैसे क्षेत्रों में अल्पकालिक प्रमाणपत्र , डिप्लोमा एवं मॉड्यूलर प्रशिक्षण उपलब्ध कराया जा सकता है। Moore और Kearsley (2012) के अनुसार दूरस्थ शिक्षा की प्रमुख शक्ति यह है कि शिक्षण-अधिगम को समय और स्थान की पारंपरिक सीमाओं से अपेक्षाकृत मुक्त किया जा सकता है। उत्तराखंड के दुर्गम पर्वतीय क्षेत्रों में यह विशेष रूप से उपयोगी है , जहाँ भौगोलिक दूरी , परिवहन की सीमाएँ और मौसमी परिस्थितियाँ नियमित संस्थागत शिक्षा में बाधा उत्पन्न कर सकती हैं।

ODL की परिवर्तनकारी क्षमता स्थानीय ज्ञान और आधुनिक ज्ञान के एकीकरण में भी निहित है। उत्तराखंड के ग्रामीण समुदायों में पारंपरिक भोजन, कृषि, लोक-संस्कृति, वास्तुकला, औषधीय एवं सुगंधित पौधों, लोककला तथा प्राकृतिक संसाधनों से संबंधित व्यापक स्थानीय ज्ञान उपलब्ध है। ODL इन ज्ञान-संसाधनों को उद्यमिता प्रशिक्षण से जोड़कर स्थानीय उत्पादों और अनुभवों को पर्यटन बाजार के लिए तैयार करने में सहायता कर सकता है। उदाहरणतः स्थानीय व्यंजन, जैविक कृषि, पारंपरिक हस्तशिल्प, लोक-संगीत, प्रकृति भ्रमण और सांस्कृतिक अनुभवों को होमस्टे पैकेज में परिवर्तित करने के लिए डिजिटल पाठ्यक्रम और स्थानीय प्रशिक्षण मॉडल विकसित किए जा सकते हैं।

इसी प्रकार, ODL महिलाओं और युवाओं के आर्थिक सशक्तीकरण का प्रभावी माध्यम बन सकता है। ग्रामीण महिलाएँ भोजन, आतिथ्य, हस्तशिल्प, स्थानीय उत्पाद निर्माण तथा सांस्कृतिक गतिविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, परंतु औपचारिक प्रशिक्षण एवं बाजार तक उनकी पहुँच सीमित हो सकती है। लचीली ODL व्यवस्था उन्हें घरेलू एवं आर्थिक जिम्मेदारियों के साथ कौशल अर्जित करने का अवसर प्रदान कर सकती है। Digital India और ऑनलाइन शिक्षा के विस्तार के साथ मोबाइल-आधारित सामग्री , वीडियो व्याख्यान, स्थानीय भाषा में ई-

सामग्री तथा blended learning मॉडल इस प्रक्रिया को और प्रभावी बना सकते हैं। UGC के ODL ढाँचे में गुणवत्ता, learner support और विनियमित संस्थागत व्यवस्था पर भी जोर दिया गया है।

इस प्रकार ODL को प्रतिलोम प्रवासन→ कौशल विकास→ उद्यमिता→ होमस्टे पर्यटन→ आय-सृजन→ आजीविका निरंतरता→ ग्रामीण पुनर्जीवन की एकीकृत श्रृंखला के रूप में देखा जा सकता है। इसकी वास्तविक परिवर्तनकारी भूमिका तभी संभव होगी जब पाठ्यक्रम स्थानीय आर्थिक आवश्यकताओं , पर्यटन बाजार , डिजिटल तकनीक , पर्यावरणीय स्थिरता और स्थानीय संस्कृति से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हो। इसलिए प्रस्तावित अध्ययन में ODL को केवल शिक्षा की वैकल्पिक पद्धति नहीं, बल्कि मानव पूंजी निर्माण, ग्रामीण उद्यमिता संवर्धन और सतत आजीविका निर्माण का रणनीतिक उपकरण मानना अधिक उपयुक्त होगा। इस दृष्टिकोण से ODL उत्तराखंड में लौटे प्रवासियों की उपलब्ध मानव पूंजी को स्थानीय आर्थिक अवसरों में परिवर्तित करने तथा ग्रामीण क्षेत्रों को "प्रवास-निर्भर" से "उद्यमिता-आधारित" अर्थव्यवस्था की ओर ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

Conceptual Framework / Proposed Model

प्रस्तावित शोध का वैचारिक मॉडल इस केंद्रीय तर्क पर आधारित है कि प्रतिलोम प्रवासन (Reverse Migration) तभी ग्रामीण पुनर्जीवन (Rural Revitalization) में परिवर्तित हो सकता है , जब लौटने वाली मानव पूंजी को स्थानीय अवसरों, ज्ञान, कौशल, संस्थागत समर्थन और बाजार से प्रभावी रूप से जोड़ा जाए। केवल प्रवासियों की भौतिक वापसी ग्रामीण अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। यदि लौटे हुए प्रवासियों को रोजगार, उद्यमिता, डिजिटल बाजार, वित्तीय संसाधन और व्यावसायिक कौशल उपलब्ध नहीं होते, तो पुनः प्रवासन की संभावना बनी रहती है। इसी संदर्भ में मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा (Open and Distance Learning—ODL) प्रस्तावित मॉडल में एक महत्वपूर्ण परिवर्तनकारी तंत्र (Transformative Mechanism) के रूप में स्थापित की गई है। ODL शिक्षा को व्यक्ति के निवास-स्थान से जोड़ते हुए सीखने की निरंतरता , कौशल उन्नयन और डिजिटल सशक्तीकरण का अवसर प्रदान कर सकता है। इस प्रकार यह मॉडल "Migration→ Education→ Skills→Enterprise→Sustainable Tourism→ Livelihood Security→ Rural Revitalization" की अंतर्संबंधित प्रक्रिया को स्पष्ट करता है।

प्रतिलोम प्रवासन: समस्या से अवसर की ओर

पर्वतीय उत्तराखंड में लंबे समय से रोजगार , शिक्षा, स्वास्थ्य और बेहतर जीवन-अवसरों के लिए बाह्य प्रवासन की प्रवृत्ति रही है। प्रतिलोम प्रवासन की स्थिति में जब व्यक्ति या परिवार वापस अपने मूल गाँव में लौटता है , तो उसके साथ केवल श्रमशक्ति ही नहीं बल्कि शहरी अनुभव, कार्य-कौशल, सामाजिक नेटवर्क, डिजिटल परिचय, पूंजी और नई आकांक्षाएँ भी लौट सकती हैं। उदाहरण के लिए, यदि देहरादून, दिल्ली या हल्द्वानी में होटल, बैंकिंग, IT, प्रबंधन या सेवा क्षेत्र में काम करने वाला व्यक्ति अपने पैतृक गाँव लौटता है, तो उसके पास स्थानीय कृषि भूमि अथवा पारंपरिक मकान के साथ-साथ ग्राहक सेवा , डिजिटल भुगतान, सोशल मीडिया या प्रबंधन का अनुभव हो सकता है। यदि इन क्षमताओं को स्थानीय पर्यटन से जोड़ा जाए, तो वह अपने पारंपरिक मकान को होमस्टे, स्थानीय भोजन केंद्र, प्रकृति-पर्यटन सेवा या ग्रामीण अनुभव केंद्र में बदल सकता है। अतः प्रस्तावित मॉडल प्रतिलोम प्रवासन को केवल "लोगों की वापसी" नहीं बल्कि "मानव पूंजी की वापसी" (Return of Human Capital) के रूप में देखता है।

ODL: प्रतिलोम प्रवासन और ग्रामीण उद्यमिता के बीच सेतु

प्रस्तावित मॉडल का सबसे महत्वपूर्ण घटक ODL है। ODL को यहाँ केवल डिग्री या प्रमाण-पत्र प्राप्त करने का माध्यम नहीं माना गया है , बल्कि इसे Lifelong Learning, Skill Development और Entrepreneurial

Capacity Building के मंच के रूप में देखा गया है। ODL के माध्यम से ग्रामीण और लौटे हुए प्रवासियों को निम्न क्षेत्रों में प्रशिक्षण दिया जा सकता है:

- होमस्टे प्रबंधन एवं आतिथ्य सेवा
- डिजिटल मार्केटिंग एवं सोशल मीडिया प्रचार
- ऑनलाइन बुकिंग एवं डिजिटल भुगतान
- स्थानीय भोजन एवं खाद्य-प्रसंस्करण
- पर्यटन गाइडिंग एवं स्थानीय व्याख्या
- वित्तीय एवं उद्यम प्रबंधन
- ई-कॉमर्स एवं स्थानीय उत्पादों की बिक्री
- भाषा एवं संचार कौशल
- पर्यावरणीय एवं अपशिष्ट प्रबंधन
- योग, वेलनेस एवं प्रकृति-आधारित पर्यटन
- स्थानीय संस्कृति एवं विरासत का संरक्षण

उदाहरण:किसी पर्वतीय गाँव का लौटकर आया युवा ODL के माध्यम से डिजिटल मार्केटिंग और पर्यटन प्रबंधन सीखता है। इसके बाद वह अपने परिवार के घर को होमस्टे में परिवर्तित करता है , Google/online platforms तथा social media के माध्यम से पर्यटकों तक पहुँच बनाता है और स्थानीय महिला समूह से पारंपरिक भोजन उपलब्ध कराता है। इस स्थिति में ODL प्रत्यक्ष रूप से रोजगार नहीं देता , बल्कि ज्ञान→ कौशल→ आत्मविश्वास → उद्यम→ आय की श्रृंखला को सक्रिय करता है।

कौशल-विकास और मानव पूंजी: परिवर्तन की मध्यवर्ती कड़ी

प्रस्तावित मॉडल में Skills and Human Capital को ODL और ग्रामीण उद्यमिता के बीच मध्यस्थ चर (Mediating Variable) माना गया है। Chambers and Conway (1992) तथा Scoones (1998) के sustainable livelihoods दृष्टिकोण के अनुसार आजीविका केवल आय का साधन नहीं है , बल्कि मानव , सामाजिक, भौतिक, वित्तीय और प्राकृतिक संसाधनों के समुचित उपयोग की प्रक्रिया है। इसी आधार पर यह शोध मानता है कि ODL से प्राप्त ज्ञान तभी आर्थिक परिणाम उत्पन्न करेगा जब वह व्यक्ति की मानव पूंजी को मजबूत करेगा। उदाहरण के लिए, एक ग्रामीण महिला को यदि ODL के माध्यम से food hygiene, packaging, costing और digital marketing का प्रशिक्षण मिलता है , तो वह केवल पारंपरिक भोजन बनाने वाली महिला न रहकर rural food entrepreneur बन सकती है। वह होमस्टे के लिए स्थानीय भोजन उपलब्ध कराने के साथ-साथ मंडुवा, झंगोरा, गहत, भट्ट आदि से बने उत्पादों का मूल्यवर्धन और विपणन भी कर सकती है।

ग्रामीण उद्यमिता: शिक्षा का आर्थिक रूपांतरण

मॉडल में अगला चरण Rural Entrepreneurship है। इसका अर्थ केवल नया व्यवसाय शुरू करना नहीं , बल्कि स्थानीय संसाधनों, पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक बाजार के बीच नए आर्थिक संबंध स्थापित करना है। उत्तराखंड में ग्रामीण उद्यमिता के संभावित क्षेत्र हैं:

स्थानीय संसाधन	**उद्यम अवसर**
पारंपरिक मकान	होमस्टे
स्थानीय खाद्य पदार्थ	Food Processing
वन एवं प्राकृतिक परिवेश	Nature/Eco-tourism
लोक-संस्कृति	Cultural Tourism
स्थानीय हस्तशिल्प	Craft Entrepreneurship
कृषि उत्पाद	Farm-based Tourism
जड़ी-बूटी/औषधीय पौधे	Wellness & Herbal Enterprise
पर्वतीय जीवनशैली	Rural Experience

	Tourism

इस प्रकार ODL ग्रामीण व्यक्ति को "resource owner" से "opportunity-oriented entrepreneur" में परिवर्तित करने में सहायक हो सकता है।

सतत होमस्टे पर्यटन: स्थानीय अर्थव्यवस्था का एंकर

प्रस्तावित मॉडल में Sustainable Homestay Tourism को ग्रामीण उद्यमिता और आजीविका निरंतरता के बीच एक प्रमुख connecting mechanism माना गया है। होमस्टे का महत्व इसलिए अधिक है क्योंकि इसमें बड़े पैमाने के बाहरी निवेश की अपेक्षा अपेक्षाकृत कम हो सकती है और स्थानीय परिवार अपनी संपत्ति , भोजन, संस्कृति और ज्ञान को आर्थिक संसाधन में बदल सकता है। उदाहरण के लिए, किसी गाँव में एक परिवार केवल कमरे किराये पर देने के बजाय पर्यटक को: ठहरना+स्थानीय भोजन+गाँव की सैर+कृषि अनुभव+लोक-संस्कृति+ प्रकृति भ्रमण का संयुक्त अनुभव प्रदान कर सकता है। इससे पर्यटन से होने वाली आय केवल मकान-मालिक तक सीमित न रहकर किसान, महिला समूह, स्थानीय गाइड, टैक्सी चालक, हस्तशिल्पकार और स्थानीय दुकानदार तक पहुँच सकती है। यही Tourism Multiplier Effect ग्रामीण अर्थव्यवस्था को व्यापक बनाता है।

आजीविका विविधीकरण और निरंतरता

मॉडल का केंद्रीय outcome Livelihood Continuity है। इसका अर्थ केवल आय प्राप्त करना नहीं बल्कि ऐसी आजीविका प्रणाली विकसित करना है जो मौसमी उतार-चढ़ाव , आर्थिक संकट और रोजगार-अनिश्चितता के बावजूद अपेक्षाकृत स्थिर बनी रह सके। यदि किसी परिवार की आय केवल कृषि पर निर्भर है , तो जोखिम अधिक हो सकता है। लेकिन यदि वही परिवार: कृषि+होमस्टे+स्थानीय भोजन+हस्तशिल्प+डिजिटल बिक्री+पर्यटन गाइडिंग जैसी गतिविधियों को जोड़ता है , तो उसकी livelihood portfolio अधिक diversified हो जाती है। यहाँ ODL का अप्रत्यक्ष प्रभाव महत्वपूर्ण है—ODL विविध व्यवसायों को संचालित करने के लिए आवश्यक knowledge, digital competency, financial literacy और entrepreneurial confidence विकसित कर सकता है।

सामाजिक एवं पर्यावरणीय सततता

प्रस्तावित मॉडल केवल आर्थिक विकास तक सीमित नहीं है। Sustainable Tourism की अवधारणा के अनुसार आर्थिक लाभ के साथ सामाजिक-सांस्कृतिक संरक्षण और पर्यावरणीय स्थिरता भी आवश्यक है। उत्तराखंड के संदर्भ में इसका अर्थ है:

- स्थानीय वास्तुकला का संरक्षण
- पारंपरिक भोजन और संस्कृति का संरक्षण
- स्थानीय रोजगार का सृजन
- महिलाओं और युवाओं की भागीदारी
- जल एवं ऊर्जा का विवेकपूर्ण उपयोग
- ठोस अपशिष्ट का प्रबंधन
- carrying capacity का ध्यान
- प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण

इस प्रकार प्रस्तावित मॉडल "more tourists" की बजाय "better-managed, locally beneficial and environmentally responsible tourism" पर बल देता है।

मॉडरेटिंग कारक: सभी क्षेत्रों में ODL का प्रभाव समान नहीं होगा मॉडल यह भी प्रस्तावित करता है कि ODL का प्रभाव स्वतः समान नहीं होगा। कुछ Moderating/Contextual Variables इसके प्रभाव को बढ़ा या घटा सकते हैं। प्रमुख moderating factors हैं:

- Digital Literacy
- Internet Connectivity
- Access to Finance
- Tourism Infrastructure
- Market Accessibility
- Institutional Support
- Social Capital
- Family Support

- ❖ Gender
- ❖ Geographical Accessibility

उदाहरण के लिए , यदि किसी दूरस्थ गाँव में ODL के माध्यम से digital marketing का प्रशिक्षण उपलब्ध है लेकिन इंटरनेट कनेक्टिविटी अत्यंत कमजोर है , तो प्रशिक्षण का व्यावसायिक प्रभाव सीमित रह सकता है। इसी प्रकार प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति के पास उद्यम शुरू करने के लिए वित्तीय संसाधन नहीं हैं , तो skill acquisition उद्यमिता में परिवर्तित नहीं हो पाएगा।

प्रस्तावित समेकित मॉडल: प्रस्तावित वैचारिक मॉडल को निम्न रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है:



References

- ❖ Adhikari, A. (2023). An analysis of the potential of homestay tourism in Uttarakhand. *NOLEGEIN Journal of Entrepreneurship Planning, Development and Management*.

- Bates, A. W. (2019). *Teaching in a digital age: Guidelines for designing teaching and learning* (2nd ed.). Tony Bates Associates Ltd.
- Chambers, R., & Conway, G. R. (1992). *Sustainable Rural Livelihoods: Practical Concepts for the 21st Century*. IDS Discussion Paper 296. Institute of Development Studies, University of Sussex.
- Government Of Uttarakhand. (2018). *Uttarakhand tourism policy 2018*. Uttarakhand Tourism Development Board. https://uttarakhandtourism.gov.in/sites/default/files/document/type/Tourism-Policy
- Government of Uttarakhand. (2023). *Uttarakhand Tourism Policy 2023*. Department of Tourism, Government of Uttarakhand.
- Holmberg, B. (2005). *The evolution, principles and practices of distance education*. Bibliotheks- und Informationssystem der Universität Oldenburg.
- Kandpal, P. C. (2024). Responding to Covid-19 pandemic: Policy and governance perspective to reverse migration in Uttarakhand. *Indian Journal of Public Administration, 70*(4). https://doi.org/10.1177/00195561241248300
- Lakhera, K., Kumar, S., & Tripathy, R. (2025). Analysis of government guidelines on homestays for rural economic development in the Himalayan state of Uttarakhand, India. *Discover Sustainability, 6*, 956. https://doi.org/10.1007/s43621-025-00988-2
- Ministry of Education, Government of India. (2020). *National Education Policy 2020*. Government of India. https://www.pib.gov.in/newsite/PrintRelease.aspx?lang=2&reg=48&relid=210301
- Ministry of Tourism, Government of India. (2025). *Encouragement of homestay facilities*. Press Information Bureau. https://www.pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2146395&lang=2&reg=48
- Moore, M. G., & Kearsley, G. (2012). *Distance education: A systems view of online learning* (3rd ed.). Wadsworth Cengage Learning.
- NITI Aayog. (2025). *Rethinking homestays: Navigating policy pathways*. Government of India. https://www.niti.gov.in/node
- Office of the Registrar General & Census Commissioner, India. (2011). *Population Census 2011: D-03—Migrants by place of last residence, duration of residence and reasons for migration, Uttarakhand*. Government of India.
- Pant, P. D. (2026). Sustainable rural development through reverse migration in Uttarakhand. *Journal of Social Review and Development, 5*(Special Issue 1), 124–128. https://doi.org/10.64171/JSRD.5.S1.124-128
- Pant, S., & Yadav, A. S. (2025). COVID induced reverse migration in Uttarakhand, India: Issues and opportunities. *Archives of Current Research International, 25*(8), 738–748. https://doi.org/10.9734/acri/2025/v25i81455
- Rural Development and Migration Commission, Uttarakhand. (2018). *Interim report on status of migration*. Government of Uttarakhand. https://www.uttarakhandpalayanayog.com/pdf

- Scheyvens, R. (1999). Ecotourism and the empowerment of local communities. *Tourism Management, 20*(2), 245–249.
- Scoones, I. (1998). *Sustainable Rural Livelihoods: A Framework for Analysis*. IDS Working Paper 72. Institute of Development Studies, University of Sussex.
- Singh, S., & Kamruddin. (2024). A study on rural homestays in Kumaon region of Uttarakhand (India): An alternative tourism product for sustainable rural development in hills. *International Journal of Agriculture Extension and Social Development, 7*(2), 524–528. https://doi.org/10.33545/26180723.2024.v7.i2g.381
- UNESCO. (2022). *Making Lifelong Learning a Reality: A Handbook*. Paris: UNESCO.
- UNESCO. (2023). *Learning for all: Guidelines on the inclusion of learners with disabilities in open and distance learning*. UNESCO. https://www.unesco.org/en/communication-information/odl-guidelines/about?hub=789
- University Grants Commission (UGC). (2020). *UGC (Open and Distance Learning Programmes and Online Programmes) Regulations, 2020*. New Delhi: UGC.
- Uttarakhand Tourism Development Board. (2018). *Uttarakhand Tourism Policy 2018*. Government of Uttarakhand.
- Uttarakhand Tourism Development Board. (2024). *Holistic development tourism master plan, Uttarakhand*. Government of Uttarakhand. https://uttarakhandtourism.gov.in/assets/pdf/Final_Master%20Plan_Report.pdf
- Uttarakhand Tourism Development Board. (2025). *Holistic development tourism master plan, Uttarakhand*. Government of Uttarakhand. https://uttarakhandtourism.gov.in/assets/pdf/Final_Master%20Plan_Report.pdf
- Uttarakhand Tourism Development Board. (2026). *Homestay policy and guidelines*. Government of Uttarakhand. https://homestay.uttarakhandtourism.gov.in/homestay-policy
- Uttarakhand Tourism Development Board. (n.d.). *Homestay policy and guidelines*. Government of Uttarakhand. https://homestay.uttarakhandtourism.gov.in/homestay-policy
- Uttarakhand Tourism Development Board. (n.d.). *Homestay policy: Deen Dayal Upadhyaya Grah Aawas Vikas Yojna and Atithi Uttarakhand Grah Awas Yojana*. Government of Uttarakhand. https://homestay.uttarakhandtourism.gov.in/homestay-policy
- Uttarakhand Tourism Development Board. (n.d.). *Uttarakhand Tourism Policy 2018*. Government of Uttarakhand. https://uttarakhandtourism.gov.in/sites/default/files/document/type/Tourism-Policy

प्रतिगामी प्रवासन और सामाजिक सुरक्षा लौटने वाले प्रवासी श्रमिकों के अधिकारों का आकलन

स्वाति उपाध्याय एवं अंशु जोशी

सहायक प्राध्यापक (ए.सी.), उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

1.परिचय

विश्व की सबसे बड़ी आंतरिक श्रम–प्रवासी आबादियों में से एक भारत में निवास करती है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुमानों के अनुसार, देश में 4.6 करोड़ आंतरिक प्रवासी श्रमिक थे, जो उस समय कुल आबादी का लगभग 3.8 प्रतिशत थे। हालांकि, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण तथा महामारी के बाद के श्रमबल संबंधी अनुमानों पर आधारित अधिक हालिया आकलन आंतरिक प्रवासियों की संख्या 10 करोड़ से अधिक बताते हैं। इनमें से अधिकांश विनिर्माण, निर्माण, घरेलू कार्य तथा शहरी अनौपचारिक अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में दैनिक मजदूरी पर कार्यरत थे। इस श्रमबल का एक बड़ा भाग अनिश्चित, मौसमी रूप से बाधित और प्रायः दस्तावेजहीन रोजगार की तलाश में राज्यों के बीच आवागमन करता है तथा औपचारिक श्रम कानूनों के संरक्षण से बाहर रहता है।

"प्रवासन" शब्द सामान्यतः अवसरों की तलाश में किसी गरीब क्षेत्र से समृद्ध क्षेत्र अथवा गांव से शहर की ओर जाने वाले लोगों की छवि प्रस्तुत करता है। इसके विपरीत, "प्रतिगामी प्रवासन" अथवा "वापसी प्रवासन" से आशय रोजगार समाप्त होने, स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं, पारिवारिक दायित्वों अथवा शहरी जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण अपने मूल स्थान पर लौटने की प्रक्रिया से है। भारत में प्रतिगामी प्रवासन कोई नई घटना नहीं है; मौसमी और चक्रीय वापसी सदैव देश की श्रम–गतिशीलता का हिस्सा रही है। किंतु वर्ष 2020 में इसके पैमाने, आकस्मिकता और दृश्यता में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया।

कोविड–19 का प्रसार रोकने के लिए भारत सरकार द्वारा 25 मार्च 2020 को देशव्यापी लॉकडाउन लागू किए जाने पर शहरों की अर्थव्यवस्था जिन लाखों श्रमिकों पर निर्भर थी, वे भोजन, आवास और मजदूरी से वंचित हो गए। घर लौटने वाले श्रमिकों की संख्या के अनुमान, स्रोत और विचाराधीन अवधि के अनुसार अत्यधिक भिन्न हैं। लॉकडाउन के प्रथम चरण के दौरान यह संख्या लगभग एक करोड़ से चार करोड़ से अधिक तक बताई गई, जबकि पहली लहर की व्यापक अवधि में अंतरराज्यीय प्रवासियों की संख्या चार करोड़ से अधिक होने का अनुमान लगाया गया।

अतः कोविड–19 महामारी प्रतिगामी प्रवासन का मूल कारण कम और उसे जनता एवं नीति–निर्माताओं के ध्यान में लाने वाला उत्प्रेरक अधिक थी। असंगठित श्रमिकों के विश्वसनीय राष्ट्रीय डेटाबेस का अभाव, राज्यों के बीच सामाजिक–सुरक्षा लाभों की लगभग पूर्ण गैर–पोर्टेबिलिटी, शहरी नियोजन एवं कल्याणकारी संरचना में प्रवासी श्रम की अदृश्यता तथा अनौपचारिक, दस्तावेजहीन और प्रायः मौखिक अनुबंधों पर आधारित आजीविकाओं की अस्थिरता जैसी कमजोरियां पहले से विद्यमान थीं।

प्रवासी श्रमिकों का संघर्ष घर लौटने के साथ समाप्त नहीं हुआ। अनेक श्रमिकों के लिए यह एक अलग और कई दृष्टियों से अधिक दीर्घकालिक संघर्ष की शुरुआत थी। इनमें मूल क्षेत्र में बेरोजगारी अथवा अल्परोजगार, संचित बचत का समाप्त होना, स्वास्थ्य सेवाओं तक सीमित

पहुंच, खाद्य असुरक्षा तथा पुनःप्रवासन या पुनर्समेकन की धीमी और अनिश्चित प्रक्रिया शामिल थी।

यह अध्याय इस मान्यता पर आधारित है कि मूल स्थान पर वापस लौटना प्रवासी श्रमिक की कमजोरियों को स्वतः समाप्त नहीं करता; बल्कि यह प्रायः नई कमजोरियां उत्पन्न करता है। पुनर्समेकन की प्रक्रिया रोजगार, आय–सुरक्षा, स्वास्थ्य सेवा, आवास, खाद्य सुरक्षा और कल्याणकारी अधिकारों की पोर्टेबिलिटी से संबंधित नए प्रश्न उत्पन्न करती है, जिन्हें केवल आर्थिक अथवा प्रशासनिक दृष्टिकोण प्रायः पर्याप्त महत्व नहीं देता। इसलिए यह अध्याय प्रतिगामी प्रवासन का अधिकार–आधारित दृष्टिकोण से परीक्षण करता है। इसमें सामाजिक सुरक्षा को राज्य के विवेक या कल्याणकारी उदारता का विषय न मानकर गरिमापूर्ण जीवन की संवैधानिक गारंटी तथा भारत की व्यापक मानवाधिकार प्रतिबद्धताओं से उत्पन्न अधिकार माना गया है।

इस अध्याय का केंद्रीय शोध प्रश्न है:

भारत में वर्तमान सामाजिक–सुरक्षा तंत्र लौटने वाले प्रवासी श्रमिकों के अधिकारों की प्रभावी प्राप्ति किस सीमा तक सुनिश्चित करते हैं?

लौटने वाले प्रवासियों की प्रमुख सामाजिक–सुरक्षा संबंधी कमजोरियां क्या हैं? उनकी सुरक्षा के लिए कौन–से संवैधानिक, विधायी और नीतिगत प्रावधान उपलब्ध हैं? वर्तमान योजनाएं कितनी सुलभ, पर्याप्त और पोर्टेबल हैं? अधिकारों की औपचारिक मान्यता और उनके व्यावहारिक उपभोग के बीच सबसे महत्वपूर्ण अंतराल कहां हैं?

इस आबादी के सामाजिक और आर्थिक पुनर्समेकन को मजबूत बनाने के लिए कौन–से अधिकार–आधारित सुधार आवश्यक हैं?

2. प्रतिगामी प्रवासन और सामाजिक सुरक्षा की अवधारणा

2.1 प्रतिगामी प्रवासन का अर्थ और प्रकृति

किसी व्यक्ति का अपने रोजगार–स्थल से वापस अपने मूल स्थान, प्रायः अपने पैतृक गांव या नगर, की ओर जाना प्रतिगामी प्रवासन कहलाता है (ठींहंज मज ंस., 2020)। इसे कई आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है।यह अस्थायी हो सकता है, जिसमें परिस्थितियों के सुधरने पर श्रमिक दोबारा प्रवास करने की योजना बनाता है, अथवा स्थायी, जिसमें श्रमिक गंतव्य–आधारित रोजगार पूरी तरह छोड़ देता है। यह अपनी इच्छा या पारिवारिक एवं व्यक्तिगत निर्णय के कारण हो सकता है, या छंटनी, बीमारी, सार्वजनिक स्वास्थ्य संकट अथवा लॉकडाउन जैसे बाहरी आघात से उत्पन्न संकट के कारण हो सकता है। प्रतिगामी प्रवासन किसी अकेले प्रवासी अथवा पूरे परिवार के स्तर पर भी हो सकता है। इसके प्रभाव इस आधार पर भिन्न होते हैं कि पूरा परिवार एक साथ वापस लौटा है, केवल कमाने वाला सदस्य लौटा है और आश्रित गंतव्य स्थान पर रह गए हैं, अथवा इसका उलटा हुआ है। ये अंतर इसलिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि अपनी बचत सुरक्षित रखते हुए स्वेच्छा से लौटने वाले

श्रमिक के लिए उपयुक्त नीतिगत प्रतिक्रिया, संकटग्रस्त, ऋणग्रस्त और किसी अन्य विकल्प के अभाव में लौटने वाले श्रमिक की आवश्यकताओं से पूरी तरह भिन्न होगी।

2.2 लौटने वाले प्रवासी श्रमिक कौन हैं?

भारत में लौटने वाले प्रवासी श्रमिक एक विविध एवं बहुआयामी श्रमिक समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें वे श्रमिक सम्मिलित हैं जो रोजगार, आजीविका अथवा अन्य आर्थिक अवसरों की तलाश में अपने मूल निवास–स्थान से किसी अन्य राज्य अथवा क्षेत्र में प्रवास करने के पश्चात विभिन्न परिस्थितियों के कारण पुनः अपने मूल स्थान पर लौटते हैं। उनका लौटना स्वैच्छिक, परिस्थितिजन्य अथवा संकट–प्रेरित हो सकता है। अतः लौटने वाले प्रवासी श्रमिकों को एक समान सामाजिक–आर्थिक श्रेणी के रूप में देखना उचित नहीं होगा।

इस व्यापक श्रेणी में निम्नलिखित प्रमुख समूह सम्मिलित किए जा सकते हैं

विनिर्माण एवं प्रसंस्करण इकाइयों के श्रमिक विशेष रूप से वस्त्र, ईंट–भट्ठा, खाद्य–प्रसंस्करण तथा अन्य श्रम–प्रधान उद्योगों में कार्यरत श्रमिक, जिनका रोजगार प्रायः अस्थायी अथवा अनौपचारिक प्रकृति का होता है।

मौसमी अथवा चक्रीय प्रवासी श्रमिक वे श्रमिक जो मूल एवं गंतव्य दोनों स्थानों की कृषि ऋतुओं अथवा रोजगार की उपलब्धता के अनुरूप नियमित रूप से एक स्थान से दूसरे स्थान पर आवागमन करते हैं। इनके लिए प्रवासन स्थायी स्थानांतरण के बजाय आजीविका की एक चक्रीय रणनीति होता है।

शहरी घरेलू एवं देखभाल कार्यों में संलग्न श्रमिक इनमें घरेलू कार्य, सफाई, खाना पकाने, देखभाल तथा अन्य सेवा–आधारित कार्यों में नियोजित श्रमिक सम्मिलित हैं। इस वर्ग में महिला श्रमिकों की उल्लेखनीय भागीदारी देखी जाती है।

अवसंरचना एवं निर्माण परियोजनाओं से जुड़े श्रमिक सड़क, भवन, पुल, विद्युत, खनन तथा अन्य अवसंरचनात्मक परियोजनाओं में कार्य करने वाले वे श्रमिक जो परियोजना की समाप्ति, रोजगार की अनिश्चितता अथवा प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण अपने मूल राज्यों में वापस लौटते हैं।

अन्य असंगठित क्षेत्र के श्रमिक रिक्शा एवं परिवहन सेवाओं, छोटे व्यापार, होटल एवं रेस्तराँ, सुरक्षा सेवाओं तथा अन्य अनौपचारिक रोजगारों में कार्यरत श्रमिक भी इस श्रेणी का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं।

इन श्रमिकों की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इनमें से बड़ी संख्या असंगठित क्षेत्र में कार्यरत होती है, जिसके कारण उनके पास औपचारिक पंजीकरण, लिखित रोजगार अनुबंध, नियमित आय तथा सामाजिक सुरक्षा योजनाओं की निरंतर सदस्यता का अभाव हो

सकता है। प्रवासन के दौरान उनका सामाजिक सुरक्षा कवरेज अक्सर उनके रोजगार–स्थान, निवास–स्थान और पहचान संबंधी दस्तावेजों से जुड़ा रहता है। परिणामस्वरूप, मूल स्थान पर लौटने के बाद भी उन्हें उपलब्ध कल्याणकारी योजनाओं एवं अधिकारों तक पुनः पहुँच स्थापित करने में अनेक संस्थागत एवं प्रशासनिक बाधाओं का सामना करना पड़ सकता है।

लौटने की प्रक्रिया भी सभी प्रवासी श्रमिकों के लिए समान नहीं होती। कुछ श्रमिक रोजगार समाप्त होने, आय में कमी, कार्यस्थल की असुरक्षित परिस्थितियों या आर्थिक संकट के कारण लौटते हैं, जबकि कुछ श्रमिक पारिवारिक दायित्वों, मौसमी रोजगार चक्र अथवा बेहतर आजीविका के विकल्पों के अभाव में वापस आते हैं। इस प्रकार, उनकी वापसी को केवल भौगोलिक पुनर्स्थापन की प्रक्रिया न मानकर आजीविका, सामाजिक सुरक्षा और मानवाधिकारों से जुड़ी पुनर्स्थापन एवं पुनर्समावेशन की प्रक्रिया के रूप में समझना आवश्यक है।

अतः लौटने वाले प्रवासी श्रमिकों की पहचान करते समय केवल उनके प्रवासन और वापसी की स्थिति को आधार बनाना पर्याप्त नहीं है। उनके रोजगार की प्रकृति, प्रवासन की अवधि, कौशल, आय, सामाजिक सुरक्षा तक पहुँच, पारिवारिक दायित्व तथा वापसी के कारणों को भी विश्लेषण में सम्मिलित किया जाना चाहिए। यही व्यापक दृष्टिकोण लौटने वाले प्रवासी श्रमिकों की वास्तविक सामाजिक–आर्थिक स्थिति तथा उनकी सामाजिक सुरक्षा संबंधी आवश्यकताओं को समझने के लिए अधिक उपयुक्त आधार प्रदान करता है।

2.3 सामाजिक सुरक्षा अधिकार, संरक्षण और सामाजिक न्याय का आधार

सामाजिक सुरक्षा आधुनिक कल्याणकारी राज्य की एक महत्वपूर्ण संस्थागत व्यवस्था है, जिसका मूल उद्देश्य व्यक्तियों एवं परिवारों को जीवन में उत्पन्न होने वाले विभिन्न सामाजिक तथा आर्थिक जोखिमों से संरक्षण प्रदान करना है। यह व्यवस्था केवल आर्थिक सहायता अथवा कल्याणकारी लाभों के वितरण तक सीमित नहीं है, बल्कि मानव गरिमा, सामाजिक न्याय, समानता और सुरक्षित जीवन के अधिकार को वास्तविक रूप प्रदान करने का महत्वपूर्ण माध्यम है। विशेष रूप से श्रमिकों के संदर्भ में सामाजिक सुरक्षा का महत्व इसलिए बढ़ जाता है क्योंकि उनकी आजीविका प्रत्यक्ष रूप से रोजगार की उपलब्धता, आय की निरंतरता और कार्य करने की क्षमता पर निर्भर करती है।

परंपरागत दृष्टिकोण में सामाजिक सुरक्षा को मुख्यतः भविष्य निधि, पेंशन, बीमा अथवा आर्थिक सहायता जैसी व्यवस्थाओं से जोड़ा जाता रहा है। किंतु समकालीन परिप्रेक्ष्य में इसकी अवधारणा अधिक व्यापक है। बीमारी, दुर्घटना, बेरोजगारी, वृद्धावस्था, मातृत्व, विकलांगता, कार्य–अक्षमता, आय में आकस्मिक कमी तथा अन्य सामाजिक–आर्थिक संकटों की स्थिति में व्यक्ति और उसके परिवार को संरक्षण प्रदान करना सामाजिक सुरक्षा के व्यापक दायरे में आता है। इस प्रकार सामाजिक सुरक्षा का उद्देश्य केवल संकट के समय राहत देना नहीं, बल्कि व्यक्ति को ऐसी परिस्थितियाँ उपलब्ध कराना है जिनमें वह सम्मान और गरिमा के साथ जीवनयापन कर सके।

2.3.1 सामाजिक सुरक्षा का अधिकार–आधारित परिप्रेक्ष्य

मानवाधिकार के दृष्टिकोण से सामाजिक सुरक्षा को राज्य द्वारा प्रदान की जाने वाली महज कल्याणकारी सुविधा के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है। यह व्यक्ति की सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा तथा मानवीय गरिमा से जुड़ा हुआ अधिकार है। किसी व्यक्ति को बीमारी, बेरोजगारी, वृद्धावस्था या आकस्मिक आर्थिक संकट के कारण जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित न होना पड़ेकृसामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था इसी व्यापक उद्देश्य को पूरा करती है।

इसलिए सामाजिक सुरक्षा का अधिकार–आधारित दृष्टिकोण राज्य की भूमिका को केवल सहायता प्रदान करने वाले निकाय के रूप में नहीं, बल्कि अधिकारों की रक्षा एवं उनकी प्रभावी प्राप्ति सुनिश्चित करने वाले उत्तरदायी संस्थान के रूप में स्थापित करता है। इस दृष्टिकोण में लाभार्थी केवल सरकारी सहायता प्राप्त करने वाला व्यक्ति नहीं, बल्कि अधिकारों का धारक होता है। इसी कारण सामाजिक सुरक्षा योजनाओं की उपलब्धता के साथ–साथ उनकी सुलभता, समानता, पारदर्शिता, गैर–भेदभाव और प्रभावी क्रियान्वयन भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

2.3.2 सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक न्याय

सामाजिक सुरक्षा का संबंध सामाजिक न्याय की अवधारणा से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। समाज में आर्थिक संसाधनों, रोजगार के अवसरों और सामाजिक संरक्षण तक पहुँच समान रूप से वितरित नहीं होती। असंगठित एवं निम्न–आय वर्ग के श्रमिक विशेष रूप से आर्थिक असुरक्षा के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। ऐसी परिस्थितियों में सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था सामाजिक एवं आर्थिक असमानताओं के प्रभाव को कम करने तथा कमजोर वर्गों को न्यूनतम संरक्षण उपलब्ध कराने का कार्य करती है।

इस दृष्टि से सामाजिक सुरक्षा कल्याण और अधिकार के बीच एक महत्वपूर्ण सेतु का निर्माण करती है। इसका उद्देश्य केवल वंचित व्यक्ति को सहायता देना नहीं, बल्कि ऐसी संरचनात्मक परिस्थितियों का निर्माण करना है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा और सम्मानजनक जीवन के लिए आवश्यक अवसर प्राप्त हो सकें।

2.4 प्रतिगामी प्रवासन से संबंधित सामाजिक–सुरक्षा चिंताएं

भारत में प्रतिगामी प्रवासन और सामाजिक सुरक्षा के बीच सीधा किंतु संरचनात्मक रूप से कमजोर संबंध है। सामाजिक–सुरक्षा अधिकार ऐतिहासिक रूप से औपचारिक और स्थायी रोजगार अथवा निश्चित निवास से जुड़े रहे हैं। उदाहरण के लिए, राशन कार्ड किसी गृह–जिले से, स्वास्थ्य बीमा किसी नियोक्ता से और पेंशन अंशदान किसी एक रोजगार

अभिलेख से जुड़ा हो सकता है।
इस कारण किसी श्रमिक का राज्य या जिला सीमा पार करना अक्सर उसके लाभों को साथ ले जाने के बजाय उनसे उसका संबंध तोड़ देता है। श्रमिक के अभिलेख, पंजीकरण और दस्तावेज उसके साथ स्थानांतरित नहीं होते। परिणामस्वरूप, प्रतिगामी प्रवासन नए प्रकार के बहिष्करण को जन्म देता है, जिसमें मूल अथवा गंतव्य राज्य में उपलब्ध बताए गए अधिकार व्यवहार में अप्राप्य सिद्ध होते हैं।
इस अध्याय का विश्लेषण प्रतिगामी प्रवासन को केवल जनसांख्यिकीय या आर्थिक विषय के बजाय सामाजिक–सुरक्षा संबंधी प्रश्न मानते हुए वर्णन से आगे ब

3. भारत में प्रतिगामी प्रवासन का संदर्भ

3.1 भारत में आंतरिक प्रवासन की प्रवृत्तियां और स्वरूप

भारत में आंतरिक प्रवासन ने परंपरागत रूप से तीन प्रमुख रूप धारण किए हैं:
• उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, ओडिशा और पश्चिम बंगाल जैसे अपेक्षाकृत निर्धन पूर्वी एवं मध्य राज्यों से महाराष्ट्र, गुजरात, दिल्ली तथा दक्षिणी राज्यों जैसे अधिक औद्योगीकृत क्षेत्रों की ओर अंतरराज्यीय प्रवासन;

• कृषि चक्रों, ईंट–भट्ठों और निर्माण ऋतुओं से संबद्ध मौसमी अथवा चक्रीय प्रवासन; और
• औद्योगिक तथा सेवा–क्षेत्र के रोजगार की तलाश में ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर प्रवासन ।

वर्ष 2020 से पहले भी मूल राज्यों में कृषि संकट तथा रोजगार और आय के क्षेत्रीय अंतर के कारण ये प्रवृत्तियां दशकों से तीव्र होती जा रही थीं।

3.2 प्रतिगामी प्रवासन के प्रमुख कारण

प्रतिगामी प्रवासन गंतव्य और मूल स्थान पर एक साथ कार्य करने वाले प्रतिकर्षण और आकर्षण कारकों के संयुक्त प्रभाव से उत्पन्न होता है। प्रमुख कारण हैं:
• गंतव्य स्थान पर रोजगार समाप्त होना अथवा मजदूरी में कटौती;
• व्यक्तिगत स्वास्थ्य संकट या संपूर्ण शहर को प्रभावित करने वाला सार्वजनिक स्वास्थ्य संकट;

• किसी उद्योग या प्रतिष्ठान के बंद होने जैसे आर्थिक आघात;
• वृद्ध माता–पिता अथवा बच्चों की देखभाल जैसे पारिवारिक दायित्व;
• गंतव्य स्थान पर खराब और प्रायः असुरक्षित आवासीय एवं कार्य–परिस्थितियां; और
• रोजगार–स्थल पर आघातों को सहन करने में सक्षम सामाजिक–सुरक्षा व्यवस्था का लगभग पूर्ण अभाव।

ये सभी कारक भारत के अनौपचारिक क्षेत्र में प्रवासी रोजगार की अस्थिर और असुरक्षित प्रकृति को विभिन्न रूपों में प्रकट करते हैं।

3.3 कोविड–19 के दौरान प्रतिगामी प्रवासन

प्रतिगामी प्रवासन पहले एक दीर्घकालिक किंतु कम चर्चित समस्या थी। कोविड–19 लॉकडाउन ने इसे गंभीर राष्ट्रीय आपातस्थिति में बदल दिया। उद्योगों के बंद होने और सार्वजनिक परिवहन स्थगित किए जाने के कारण प्रवासी श्रमिकों को रोजगार एवं मजदूरी की अचानक हानि, आवास और भोजन का गंभीर संकट तथा परिवहन के अभाव में सैकड़ों किलोमीटर पैदल अपने घरों की ओर जाने की विवशता का सामना करना पड़ा।

उत्तर–पश्चिम भारत में किए गए एक बहु–केंद्रीय अध्ययन के अनुसार, सर्वेक्षण में शामिल लगभग पांचवें हिस्से के प्रतिगामी प्रवासियों ने बताया कि उनके पास रहने के लिए स्थान नहीं था। लगभग इतने ही लोगों ने संक्रमण के भय को वापस लौटने का कारण बताया। अनेक श्रमिकों ने रोजगार खोने, परिवार की ओर से वापस लौटने के दबाव और शहर में जीवित रहने के लिए बचत के पूर्ण अभाव का अनुभव किया। घर की ओर पैदल जाते प्रवासियों की स्थिति से संबंधित जनहित याचिकाओं पर विलंब से प्रतिक्रिया देने के कारण भारत के सर्वोच्च न्यायालय की आलोचना हुई। न्यायालय ने निरंतर जन और नागरिक समाज के दबाव के लगभग दो महीने बाद मामले का स्वतः संज्ञान लिया।

वापस लौटने वाले लोगों की वास्तविक संख्या चाहे जो रही हो, इस घटना का पैमाना महामारी के दौरान विश्व में आंतरिक विस्थापन की सबसे बड़ी घटनाओं में से एक था। विचाराधीन अवधि और गणना–पद्धति के आधार पर इसका अनुमान लगभग एक करोड़ से चार करोड़ से अधिक तक लगाया गया।

3.4 महामारी के बाद का परिदृश्य

महामारी के तीव्र चरण के बाद के वर्षों का परिदृश्य जटिल और परिवर्तनशील रहा। सर्वेक्षण संबंधी आंकड़ों के अनुसार, अधिकांश प्रवासी श्रमिक अंततः शहरी क्षेत्रों में लौट गए। प्रारंभिक लॉकडाउन के लगभग एक वर्ष के भीतर आधे से कुछ अधिक पुरुष श्रमिक और आधे से कुछ कम महिला श्रमिक अपने प्रवासी रोजगार में वापस आ गए थे। फिर भी पुनःस्थानांतरण ने महामारी–पूर्व परिस्थितियों को बहाल नहीं किया। अनेक श्रमिकों ने पाया कि उनके पुराने नियोक्ता प्रतिष्ठान बंद हो चुके थे या उनकी भुगतान व्यवस्था निश्चित दैनिक या मासिक भुगतान से बदलकर ''टुकड़ा–दर भुगतान में बदल गई थी।

इस प्रकार, महामारी के बाद का दौर इस अध्याय के मुख्य बिंदुओं में से एक का उदाहरण प्रस्तुत करता हैः ''वापसी प्रवासन कमजोरियों को समाप्त नहीं करता; बल्कि उन्हें स्थानांतरित करता है'', अक्सर ऐसे वातावरण में जहां संस्थागत संरक्षण और भी कम होता है।

4. वापस लौटने वाले प्रवासी श्रमिकों के मानवाधिकार और सामाजिक सुरक्षा

यह भाग लौटने वाले प्रवासियों की सामाजिक सुरक्षा को केवल कल्याणकारी नीति का विषय मानने के बजाय ''परस्पर जुड़े और परस्पर निर्भर मानवाधिकारों'' के

4.1 मानव गरिमा और जीवन का अधिकार

अधिकार आधारित परीक्षण इस समझ से शुरू होता है कि ''जीवन के अधिकार'' की संवैधानिक अवधारणा केवल शारीरिक अस्तित्व के आश्वासन तक सीमित नहीं है।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय की पांच न्यायाधीशों की पीठ ने ऐतिहासिक मामले में निर्णय दिया कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत जीवन का अधिकार ''आजीविका के अधिकार'' तक विस्तृत है। न्यायालय ने यह तर्क दिया कि किसी व्यक्ति को जीवन निर्वाह के साधन से वंचित करना, अनेक लोगों के लिए, स्वयं जीवन से वंचित करने के समान होगा।

इस अंतर्निहित सिद्धांत को बाद की न्यायिक व्याख्याओं में रोजगार और आजीविका के मामलों में निष्पक्ष प्रक्रिया से संबंधित रूप में लागू और पुनःपुष्ट किया गया है। यह सामाजिक सुरक्षा को दान के रूप में नहीं, बल्कि ''गरिमापूर्ण जीवन के अधिकार से उत्पन्न अधिकार'' के रूप में मानने का संवैधानिक आधार प्रदान करता है, भले ही वह मामला मुंबई के फुटपाथ पर रहने वालों से संबंधित था, जिनमें से अनेक स्वयं ग्रामीण क्षेत्रों से आए प्रवासी थे।

4.2 काम और आजीविका का अधिकार

लौटने वाले प्रवासी श्रमिकों के लिए आजीविका का अधिकार वापसी के बाद रोजगार के अवसर, कमजोर श्रम बाजार वाले मूल क्षेत्रों में बेरोजगारी और अल्परोजगार तथा गंतव्य स्थान पर अर्जित कौशल की मान्यता से संबंधित विशेष प्रश्न उठाता है। शहरी औद्योगिक परिवेश में विकसित कौशल रखने वाला निर्माण श्रमिक अथवा मशीन ऑपरेटर कृषि प्रधान ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अक्सर यह पाता है कि उसके कौशल की स्थानीय मांग नहीं है। इन कौशलों को प्रमाणित करने अथवा स्थानीय रोजगार और उद्यमिता के अवसरों में स्थानांतरित करने की भी कोई सुव्यवस्थित औपचारिक व्यवस्था नहीं होती।

4.3 स्वास्थ्य का अधिकार

अधिकार–आधारित

न तो शहरी और न ही ग्रामीण स्वास्थ्य संरचना अचानक बेरोजगारी, ऋण और पारिवारिक दबाव के मनोवैज्ञानिक प्रभावों को व्यवस्थित रूप से संबोधित करती है, जबकि महामारी के बाद प्रवासी आबादी पर हुए अनेक अध्ययनों में ये प्रभाव सामने आए हैं।

4.4 भोजन और मूलभूत आवश्यकताओं का अधिकार

गतिशील आबादी की खाद्य सुरक्षा सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत अधिकारों की पोर्टेबिलिटी पर निर्भर करती है। जब श्रमिक का राशन कार्ड मूल राज्य की किसी एक उचित मूल्य की दुकान से जुड़ा होता है, तब काम के लिए दूसरे राज्य में प्रवास अथवा कार्ड जारी करने वाले राज्य से अलग स्थान पर वापसी के कारण वह उस समय सब्सिडी वाले खाद्यान्न से वंचित हो सकता है जब उसे इस सहायता की सबसे अधिक आवश्यकता होती है।

4.5 सामाजिक सुरक्षा का अधिकार

इसमें सामाजिक सहायता, बीमा, पेंशन, मातृत्व लाभ तथा दिव्यांगता से संबंधित सहायता के पारंपरिक घटक शामिल हैं। लौटने वाले प्रवासियों के लिए केंद्रीय प्रश्न यह नहीं है कि ये योजनाएं कागज पर मौजूद हैं या नहीं, क्योंकि अधिकांश मामलों में वे मौजूद हैं। वास्तविक प्रश्न यह है कि क्या गंतव्य स्थान पर अर्जित अधिकार बिना किसी हानि के वापसी के स्थान तक ले जाए जा सकते हैं और क्या पंजीकरण तथा नामांकन प्रक्रियाएं सीमित दस्तावेज, साक्षरता और डिजिटल पहुंच वाली आबादी के लिए वास्तव में सुलभ हैं।

4.6 समानता और गैर–भेदभाव का अधिकार

अधिकार आधारित परीक्षण में यह देखना भी आवश्यक है कि क्या प्रवासी श्रमिकों के साथ सामाजिक पृष्ठभूमि, लिंग, आर्थिक स्थिति, मूल स्थान अथवा व्यवसाय के आधार पर भेदभाव किया जाता है। महामारी के दौरान उपलब्ध साक्ष्य बताते हैं कि गंतव्य और मूल स्थान के अधिकारियों ने प्रवासी श्रमिकों को समान व्यवहार और संरक्षण के अधिकारी व्यक्तियों के बजाय प्रायः अवशिष्ट और कम प्राथमिकता वाली आबादी के रूप में देखा।

गांव लौटने पर उन्हें संक्रमण के वाहक के रूप में कलंकित किया गया और कई स्थानों पर ऐसी अनौपचारिक पृथक्करण व्यवस्थाओं के अधीन किया गया जो सामाजिक बहिष्कार के निकट थीं।

5. भारत में प्रवासी श्रमिकों के लिए सामाजिक–सुरक्षा ढांचा

5.1 संवैधानिक प्रावधान

भारत के संविधान के अनेक प्रावधान प्रवासी और लौटने वाले श्रमिकों के अधिकारों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हैं:

अनुच्छेद संवैधानिक संरक्षण

अनुच्छेद 14 विधि के समक्ष समानता की गारंटी देता है।

अनुच्छेद 15 जन्म–स्थान सहित निर्दिष्ट आधारों पर भेदभाव को निषिद्ध करता है।

अनुच्छेद 19(1)(म) सभी नागरिकों को भारत के किसी भी भाग में निवास करने और बसने का अधिकार देता है।

अनुच्छेद 21 जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार देता है, जिसकी न्यायिक व्याख्या में आजीविका का अधिकार सम्मिलित है।

अनुच्छेद 23 मानव तस्करी और बलात् श्रम को निषिद्ध करता है।

अनुच्छेद 23 बंधुआ और शोषणकारी श्रम व्यवस्थाओं में फंसे प्रवासी श्रमिकों के संदर्भ में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। राज्य के नीति–निदेशक तत्व, यद्यपि न्यायालय द्वारा प्रत्यक्ष रूप से प्रवर्तनीय नहीं हैं, राज्य को पर्याप्त आजीविका, मानवीय कार्य–परिस्थितियां और जीवन स्तर में सुधार सुनिश्चित करने के लिए प्रतिबद्ध करते हैं। ये सामाजिक सुरक्षा कानूनों और योजनाओं के मूल्यांकन की मानक पृष्ठभूमि प्रदान करते हैं।

5.2 विधायी ढांचा

प्रवासी श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा से संबंधित प्रमुख विधायी सुधार सामाजिक सुरक्षा संहिता, 2020 है। इसे 28 सितंबर 2020 को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिली। यह भविष्य निधि, कर्मचारी राज्य बीमा, उपदान, मातृत्व लाभ और कर्मचारी क्षतिपूर्ति सहित नौ पूर्ववर्ती केंद्रीय सामाजिक–सुरक्षा कानूनों को 14 अध्यायों और 164 धाराओं वाले एक पूर्ववर्ती अंतरराज्यीय प्रवासी कर्मकार (रोजगार का विनियमन और सेवा–शर्तें) अधिनियम, 1979 से संबंधित प्रावधान नए श्रम संहिता संहिता में एक राष्ट्रीय पोर्टल–आधारित पंजीकरण प्रणाली की परिकल्पना की गई है, जिसके अंतर्गत अंतरराज्यीय प्रवासी श्रमिक स्व–घोषणा और आधार प्रमाणीकरण के आधार पर पंजीकरण कर सकता है। इसमें असंगठित, गिग और प्लेटफॉर्म श्रमिकों के लिए कल्याणकारी उपायों के वित्तपोषण हेतु सामाजिक सुरक्षा कोष की भी व्यवस्था है । हालांकि, वर्ष 2019 के प्रारूप विधेयक में भर्ती के समय ठेकेदारों द्वारा मासिक मजदूरी के 50 प्रतिशत के बराबर विस्थापन भत्ता देने का प्रावधान था, जिसे 2020 की संहिता से हटा दिया गया। यह प्रवासी श्रमिकों को लक्षित विशिष्ट संरक्षण को कमजोर करता है। समीक्षाधीन अवधि तक संहिता के अधिकांश प्रावधान राज्य स्तरीय अधिसूचना की चरणबद्ध प्रक्रिया में

रहे। फलस्वरूप, इसकी पोर्टेबिलिटी संबंधी क्षमता अभी भी काफी हद तक कागजी संरचना है, पूर्णतः क्रियाशील अधिकार नहीं।

5.3 सरकारी योजनाएं और सामाजिक संरक्षण तंत्र

लौटने वाले प्रवासी श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी अनेक केंद्र प्रायोजित योजनाएं हैं। इनका आकलन केवल इनके अस्तित्व के आधार पर नहीं, बल्कि इनकी सुलभता और व्यावहारिक प्रभावशीलता के आधार पर किया जाना चाहिए।

5.3.1 मनरेगा

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, 2005 प्रत्येक ग्रामीण परिवार को प्रतिवर्ष 100 दिनों के अकुशल शारीरिक श्रम की गारंटी देता है। महामारी के दौरान इसने लौटने वाले प्रवासियों के लिए प्रमुख रोजगार सुरक्षा कवच का कार्य किया।

हालांकि, योजना की संरचना अचानक बड़ी संख्या में लौटने वाले श्रमिकों को समाहित करने के बजाय सामान्य ग्रामीण मांग पर आधारित है। इसलिए वह 2020 के पलायन के बाद उत्पन्न मांग को पूरी तरह समायोजित नहीं कर सकी। अधिकांश राज्यों में मनरेगा की मजदूरी दरें तुलनीय कार्य के लिए प्रचलित बाजार मजदूरी से भी काफी कम हैं ।

5.3.2 एक राष्ट्र, एक राशन कार्ड

वर्ष 2019 में आरंभ और 2020–2022 के दौरान सभी राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों तक विस्तारित एक राष्ट्र, एक राशन कार्ड योजना राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013 के लाभार्थियों को आधार संबद्ध बायोमेट्रिक प्रमाणीकरण के माध्यम से देश की किसी भी इलेक्ट्रॉनिक बिक्री बिंदु युक्त उचित मूल्य की दुकान से सब्सिडी वाले खाद्यान्न प्राप्त करने की अनुमति देती है ।

इस योजना को न्यायिक समर्थन तब मिला जब सर्वोच्च न्यायालय ने प्रवासियों की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के संदर्भ में सभी राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों को 31 जुलाई 2021 तक इसे लागू करने का निर्देश दिया ।

इस संरचना के बावजूद प्रवासी श्रमिकों द्वारा इसका उपयोग अत्यंत कम है। अंतरराज्यीय पोर्टेबिलिटी लेन–देन योजना के कुल लेन–देन का एक प्रतिशत से भी कम आंका गया है। इसके पीछे विक्रेताओं की अनिच्छा, जागरूकता की कमी और वर्षों के शारीरिक श्रम के कारण घिसे हुए अंगुलियों के निशानों से उत्पन्न बायोमेट्रिक प्रमाणीकरण विफलताएं प्रमुख हैं।

एक अन्य आकलन में पाया गया कि राशन कार्ड से वंचित अधिकांश निम्न–आय परिवार नामांकन चाहते थे, किंतु दस्तावेजों की कमी या आधार प्रमाणीकरण की कठिनाइयों के कारण ऐसा नहीं कर सके। अलग रह रही अथवा विधवा महिलाओं को पात्रता सिद्ध करने में विशेष कठिनाई हुई।

5.3.3 ई–श्रम पोर्टल

26 अगस्त 2021 को आरंभ किया गया ई–श्रम पोर्टल असंगठित श्रमिकों का व्यापक आधार–सत्यापित राष्ट्रीय डेटाबेस बनाने के उद्देश्य से तैयार किया गया था। इसका उद्देश्य लक्षित सामाजिक–सुरक्षा लाभों की आपूर्ति को सक्षम बनाना और अंततः योजनाओं तक पहुंच के लिए "एकल समाधान" के रूप में कार्य करना था। यह कार्य अक्टूबर 2024 में औपचारिक रूप से प्रारंभ किया गया।
अगस्त 2025 तक पोर्टल पर 30 करोड़ से अधिक पंजीकरण दर्ज किए गए, जिससे यह विश्व के सबसे बड़े असंगठित श्रमिक डेटाबेसों में से एक बन गया।
फिर भी महाराष्ट्र और गुजरात में किए गए क्षेत्रीय अनुसंधान से पता चला कि पोर्टल आरंभ होने के तीन वर्ष बाद भी बड़ी संख्या में अनौपचारिक और प्रवासी निर्माण श्रमिक, विशेषकर महिलाएं और जनजातीय प्रवासी, इसके अस्तित्व से अनभिज्ञ थे। जटिल पंजीकरण प्रक्रिया, सीमित प्रचार और कमजोर डिजिटल पहुंच प्रमुख बाधाएं थीं।

सर्वेक्षित राज्यों में पंजीकृत निर्माण श्रमिकों में पुरुषों का अनुपात अत्यधिक था और नमूनों में महिला पंजीकृत श्रमिकों की संख्या एक–चौथाई से भी कम थी (ज्नचम, 2024)। पोर्टल में पंजीकृत व्यक्तियों के प्रवासी श्रमिक होने की स्पष्ट पहचान करने वाला विशिष्ट डेटा भी उपलब्ध नहीं दिखाई देता, जिससे प्रवासी–केंद्रित नीति–निर्माण में इसकी उपयोगिता सीमित होती है।

5.3.4 अन्य योजनाएं

ई–श्रम से एकीकृत अतिरिक्त योजनाओं में निम्न शामिल हैं:
• असंगठित श्रमिकों के लिए प्रधानमंत्री श्रम योगी मानधन पेंशन योजना;

• आयुष्मान भारत–प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना;

• प्रधानमंत्री स्ट्रीट वेंडर्स आत्मनिर्भर निधि सूक्ष्म ऋण योजना; और

• निर्माण लागत पर उपकर से वित्तपोषित राज्य भवन एवं अन्य सन्निर्माण कर्मकार कल्याण बोर्डों की योजनाएं।

इन सभी योजनाओं में लौटने वाले प्रवासियों से संबंधित एक सामान्य संरचनात्मक कमजोरी है। पात्रता, नामांकन और लाभ–वितरण सामान्यतः राज्य या जिला स्तर पर प्रशासित होते

हैं। किसी श्रमिक के अंशदान इतिहास अथवा अधिकार–अभिलेख को राज्य सीमा पार करने पर निर्बाध रूप से स्थानांतरित करने की व्यवस्था सीमित है।

6. लौटने वाले प्रवासी श्रमिकों की सामाजिक–सुरक्षा संबंधी चुनौतियां

6.1 रोजगार और आजीविका की असुरक्षा

ग्रामीण अथवा अर्ध–शहरी श्रम बाजार लौटने वाले श्रमिकों की संख्या को समाहित करने या उनके अर्जित कौशल का उपयोग करने में प्रायः असमर्थ होते हैं। परिणामस्वरूप, उन्हें कम मजदूरी, अल्परोजगार और विशेषकर कृषि में छिपी बेरोजगारी का सामना करना पड़ता है। कृषि में अतिरिक्त श्रम से उत्पादकता में आनुपातिक वृद्धि नहीं होती।

6.2 सामाजिक–सुरक्षा लाभों की पोर्टेबिलिटी का अभाव

यह इस अध्याय में पहचाने गए सबसे महत्वपूर्ण संरचनात्मक अंतरालों में से एक है। भारत में अधिकांश सामाजिक–सुरक्षा लाभ अभी भी निवास, पंजीकरण या रोजगार–स्थल पर निर्भर हैं। इसलिए प्रवासी और लौटने वाले श्रमिकों को दस्तावेज, पंजीकरण तथा पोर्टेबिलिटी प्रावधानों के अस्तित्व की जानकारी के अभाव जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

इस समस्या को संबोधित करने के उद्देश्य से बनाई गई सामाजिक सुरक्षा संहिता, 2020 की पोर्टल–आधारित स्व–घोषणा पंजीकरण प्रणाली की आलोचना हुई है। यह स्वतः पोर्टेबिलिटी सुनिश्चित नहीं करती, संगठित और असंगठित श्रमिकों को अलग करती है तथा अंतरराज्यीय गतिशीलता की वास्तविकताओं को पर्याप्त रूप से संबोधित नहीं करती। विश्लेषकों ने सुझाव दिया है कि सभी केंद्रीय और केंद्र–प्रायोजित योजनाओं को सार्वभौमिकता और पोर्टेबिलिटी के दोहरे सिद्धांतों के आधार पर पुनःनिर्मित किया जाना चाहिए। इसके लिए राज्यों के बीच अधिकार–स्तर का लेखा रखने में सक्षम परस्पर–संचालनीय सूचना–प्रौद्योगिकी आधारित राष्ट्रीय डेटा नेटवर्क आवश्यक है।

6.3 स्वास्थ्य संबंधी असुरक्षा

लौटने वाले प्रवासी अक्सर गंतव्य स्थान पर उत्पन्न अनुपचारित बीमारियों के साथ घर लौटते हैं। अपर्याप्त ग्रामीण स्वास्थ्य अवसंरचना, राज्य सीमाओं के पार अस्पतालों की सूची लागू न होने से बीमा कवरेज में अंतराल तथा निर्माण और ईंट–भट्ठा श्रमिकों में श्वसन रोग जैसी अनुपचारित व्यावसायिक स्वास्थ्य स्थितियां उनकी कमजोरियों को ब

6.4 खाद्य और पोषण संबंधी असुरक्षा

एक राष्ट्र, एक राशन कार्ड योजना के अस्तित्व के बावजूद दस्तावेज संबंधी कमियां, आधार प्रमाणीकरण में विफलता और जागरूकता का निम्न स्तर अनेक लौटने वाले प्रवासी परिवारों

को वापसी के समय सब्सिडी वाले खाद्यान्न की विश्वसनीय उपलब्धता से वंचित रखता है। यह वही समय होता है जब परिवार की आय सामान्यतः अपने न्यूनतम स्तर पर होती है।

6.5 आवास और मूलभूत सुविधाएं

"घर लौटना" सुरक्षा में वापसी के समान नहीं है। लौटने वाले श्रमिक अक्सर अपने मूल गांवों में ऐसे निम्नस्तरीय आवासों में वापस जाते हैं जहां बिजली, पानी और स्वच्छता सुविधाओं का अभाव होता है।

6.6 वित्तीय असुरक्षा

शहरी बचत का समाप्त होना, लॉकडाउन में जीवित रहने के लिए लिए गए ऋण का बोझ और वापसी के बाद उद्यमिता के लिए संस्थागत ऋण प्राप्त करने की कठिनाई अनेक परिवारों को दीर्घकालिक वित्तीय अस्थिरता में छोड़ देती है। सर्वेक्षण के अनुसार, प्रभावित श्रमिकों के अधिकांश परिवारों को महामारी के बाद आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऋण लेना अथवा पुरानी बचत खर्च करनी पड़ी।

6.7 प्रतिगामी प्रवासन के लैंगिक आयाम

प्रतिगामी प्रवासन के महिलाओं पर विशिष्ट और असमान प्रभाव पड़ते हैं। महिला प्रवासी श्रमिकों पर किए गए शोध में पाया गया कि उन्होंने वेतनभोगी कार्य तथा अवैतनिक घरेलू और देखभाल संबंधी कार्य का दोहरा बोझ उठाया। महामारी के दौरान उनकी आय महामारी–पूर्व स्तर की तुलना में आधे से अधिक घट गई। जब पुरुष श्रमिक ग्रामीण परिवारों में वापस आए, तब नियोक्ताओं द्वारा पुरुष श्रमिकों को प्राथमिकता देने के कारण महिला कृषि और शारीरिक श्रम की मांग प्रायः कम हो गई। दूसरी ओर, महिलाओं के अवैतनिक घरेलू काम का बोझ तेजी से बढ़ा। एक जिला–स्तरीय अध्ययन में पाया गया कि पुरुष सदस्यों की वापसी के बाद सामान्य परिवार की महिलाएं प्रतिदिन लगभग सात घंटे अवैतनिक कार्य में बिताती थीं। पश्चिम बंगाल की महिला प्रवासी श्रमिकों पर किए गए एक अन्य सर्वेक्षण में महामारी–पूर्व अवधि की तुलना में आय में उल्लेखनीय गिरावट और महिलाओं के विरुद्ध हिंसा में मापनीय वृद्धि पाई गई। इससे स्पष्ट होता है कि प्रतिगामी प्रवासन में लैंगिक कमजोरी आर्थिक हानि तक सीमित नहीं है; इसमें घरेलू और अंतरंग–साथी हिंसा का ब

• मौसमी तथा चक्रीय प्रवासी, जो मूल और गंतव्य के बीच इतनी अधिक बार आवागमन करते हैं कि निश्चित निवास अथवा रोजगार–अवधि पर आधारित योजनाओं के पात्रता मानदंड पूरे नहीं कर पाते।

7. संस्थागत और नीतिगत अंतराल

अधिकारों की औपचारिक मान्यता और उनके व्यावहारिक उपभोग के बीच अंतराल को निम्न शृंखला से समझा जा सकता हैः

कानूनी मान्यता –झ नीति–निर्माण –झ क्रियान्वयन –झ सुलभता –झ अधिकार का वास्तविक उपभोग इस शृंखला की प्रत्येक कड़ी में विशिष्ट कमजोरियां दिखाई देती हैंः

• विभिन्न मंत्रालयों और शासन स्तरों द्वारा संचालित अनेक कमजोर रूप से समन्वित योजनाओं के कारण विखंडन;

• ई–श्रम डेटाबेस के बड़े आकार के बावजूद अनौपचारिक श्रमिकों का सीमित प्रभावी पंजीकरण, क्योंकि पंजीकरण सदैव योजना में नामांकन या लाभ–प्राप्ति में परिवर्तित नहीं होता;

• राज्य और जिला स्तर पर कमजोर क्रियान्वयन तंत्र;

• लक्षित लाभार्थियों में लगातार कम जागरूकता;

• नागरिक पंजीकरण और पहचान सत्यापन की व्यापक समस्याओं से उत्पन्न दस्तावेजी बाधाएं;

• कमजोर अंतरराज्यीय समन्वय, क्योंकि केंद्रीय कानून के बावजूद सामाजिक–सुरक्षा प्रशासन काफी हद तक राज्य–विशिष्ट बना हुआ है;

• प्रतिगामी प्रवासन से उत्पन्न अचानक मांग को समाहित करने में ग्रामीण रोजगार गारंटी की सीमाएं

• कमजोर शिकायत–निवारण तंत्र;

• सामाजिक सुरक्षा संहिता में मातृत्व और बाल–देखभाल प्रावधान मजबूत करने की प्रतिबद्धता के बावजूद अपर्याप्त लैंगिक–संवेदनशील नीति–निर्माण; और

• लौटने वाले प्रवासियों की संख्या, स्थान और आवश्यकताओं पर विश्वसनीय वास्तविक डेटा का अभाव।

ई–श्रम पोर्टल का उद्देश्य अंतिम समस्या को संबोधित करना था, किंतु प्रवासी–विशिष्ट डेटा के सीमित संकलन के कारण यह अब तक केवल आंशिक रूप से सफल हुआ है (ज्नचम, 2024)।

8. लौटने वाले प्रवासियों के लिए अधिकार–आधारित सामाजिक–सुरक्षा

8.1 लैंगिक उत्तरदायी सामाजिक संरक्षण

प्रतिगामी प्रवासन के दौरान और बाद में महिलाओं की आय और सुरक्षा में दर्ज गिरावट को देखते हुए नीतिगत प्रतिक्रियाओं में निम्न शामिल होने चाहिएः

- घर लौटने वाली महिलाओं के लिए विशिष्ट नकद सहायता;

- पुनर्समेकन कार्यक्रमों में अंतरंग–साथी और घरेलू हिंसा से मजबूत सुरक्षा।

8.2 राज्यों के बीच बेहतर समन्वय

पोर्टेबिलिटी के अंतराल को कम करने के लिए मूल और गंतव्य राज्यों के बीच सहयोग की औपचारिक प्रक्रियाएं आवश्यक हैं। इनमें डेटा–साझाकरण, पंजीकरण की पारस्परिक मान्यता और समन्वित शिकायत–निवारण शामिल होने चाहिए।

8.3 कानूनी साक्षरता और जागरूकता

अनौपचारिक और प्रवासी श्रमिकों में लगातार कम जागरूकता को देखते हुए सतत और बहुभाषी जागरूकता अभियान आवश्यक हैं। इन्हें केवल डिजिटल पोर्टलों के माध्यम से नहीं, बल्कि श्रमिकों द्वारा वास्तव में उपयोग किए जाने वाले सामुदायिक नेटवर्क, नियोक्ता और विश्वसनीय मध्यस्थों के माध्यम से संचालित किया जाना चाहिए।

8.4 सुलभ शिकायत–निवारण

सरल, बहुभाषी और कम लागत वाली शिकायत प्रक्रियाएं विकसित की जानी चाहिए, जिनके लिए अत्यधिक कागजी कार्यवाही आवश्यक न हो। इससे वर्तमान जवाबदेही अंतराल को कम करने में सहायता मिलेगी।

8.5 नीति–निर्माण में प्रवासी श्रमिकों की भागीदारी

प्रवासी श्रमिकों के प्रतिनिधियों तथा उनके साथ सीधे कार्य करने वाले नागरिक समाज संगठनों के साथ संस्थागत संवाद स्थापित किया जाना चाहिए। इससे योजनाओं की संरचना और प्रतिगामी प्रवासन की वास्तविक जीवन–परिस्थितियों के बीच बेहतर सामंजस्य स्थापित होगा।

9. निष्कर्ष

इस अध्याय का तर्क है कि भारत में प्रतिगामी प्रवासन को केवल जनसांख्यिकीय या आर्थिक घटना के रूप में पूर्णतः समझा या संबोधित नहीं किया जा सकता। यह मूलतः सामाजिक सुरक्षा और मानवाधिकार का विषय है। सिद्धांततः किसी श्रमिक द्वारा राज्य सीमा पार करने से उसके श्रम और अंशदान से अर्जित लाभ समाप्त नहीं होने चाहिए। फिर भी सामाजिक

सुरक्षा संहिता, 2020, ई–श्रम पोर्टल और एक राष्ट्र, एक राशन कार्ड व्यवस्था तक पहुंचने वाले वर्षों के विधायी एवं प्रशासनिक सुधारों के बावजूद यहां समीक्षा किए गए साक्ष्य दर्शाते हैं कि व्यवहार में लाभों का नुकसान अब भी होता है।

अध्याय के केंद्रीय विचार को निम्न शृंखला में व्यक्त किया जा सकता है: प्रतिगामी प्रवासन –झ पुनर्समेकन –झ सामाजिक सुरक्षा –झ मानवीय गरिमा –झ समावेशी विकास

इस दृष्टि से लौटने वाले प्रवासी श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा को वित्तीय संसाधनों या प्रशासनिक सुविधा पर निर्भर कल्याणकारी अथवा दानपूर्ण कदम नहीं माना जाना चाहिए। इसका प्रभावी कार्यान्वयन इस बात का मापदंड है कि कोई विधिक और राजनीतिक व्यवस्था अपने सर्वाधिक गतिशील और सबसे कम संरक्षित श्रमिकों के मानवाधिकारों को कितनी गंभीरता से लेती है। यह जीवन, आजीविका, समानता और गरिमा से संबंधित संवैधानिक अधिकारों की प्राप्ति का आवश्यक अंग है।

संदर्भ

पलायन से प्रभावित उत्तराखंड के ग्रामीण इलाकों में डिजिटल समावेशन एवं महिला सशक्तिकरण

डॉ० दीपिका वर्मा
सहायक प्राध्यापक
गृह विज्ञान विभाग, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी–263139 (नैनीताल, उत्तराखंड)
ईमेल: dverma@uou-ac-in

सारांश

उत्तराखंड के पर्वतीय ग्रामीण क्षेत्रों में पलायन केवल जनसंख्या के स्थानांतरण की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि इसका प्रभाव परिवार की आर्थिक संरचना, कृषि, श्रम–विभाजन और महिलाओं की परिस्तिथि पर भी पड़ता है। पलायन के कारण कई गाँव आज खाली हो चुके है पुरुष सदस्यों के रोजगार के लिए बाहर जाने की स्थिति में गांव में रहने वाली महिलाओं पर कृषि, पशुपालन, घरेलू कार्य, बच्चों की देखभाल तथा परिवार के अनेक निर्णयों से संबंधित जिम्मेदारियां बढ़ती हैं। ऐसी परिस्थितियों में डिजिटल प्रौद्योगिकी महिलाओं के लिए सूचना, शिक्षा, वित्तीय सेवाओं, सरकारी योजनाओं, स्वास्थ्य सेवाओं और बाजारों तक पहुंच का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। डिजिटल समावेशन को केवल मोबाइल फोन अथवा इंटरनेट की उपलब्धता के आधार पर नहीं समझा जा सकता इसमें उपकरणों तक पहुंच, डिजिटल कौशल, स्वतंत्र उपयोग, सुरक्षित उपयोग तथा डिजिटल संसाधनों से वास्तविक सामाजिक एवं आर्थिक लाभ प्राप्त करना भी शामिल है। कई शोधों से संकेत मिलता है कि डिजिटल साक्षरता और महिला सशक्तिकरण के बीच सकारात्मक संबंध हो सकता है। आर्थिक सीमाएं, डिजिटल कौशल की कमी, सामाजिक–सांस्कृतिक मान्यताएं, कमजोर आधारभूत संरचना और डिजिटल सुरक्षा संबंधी चिंताएं महिलाओं के डिजिटल समावेशन को प्रभावित करती हैं। यह अध्याय उत्तराखंड के पलायन–प्रभावित ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल समावेशन और महिला सशक्तिकरण के पारस्परिक संबंध का विश्लेषण करता है तथा कृषि, वित्त, स्वास्थ्य, शिक्षा, उद्यमिता और स्थानीय संस्थाओं के संदर्भ में इसकी संभावनाओं और चुनौतियों पर विचार प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द: डिजिटल समावेशन, महिला सशक्तिकरण, ग्रामीण पलायन, डिजिटल साक्षरता, डिजिटल असमानता

प्रस्तावना

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ने वर्तमान सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। मोबाइल फोन, इंटरनेट, डिजिटल भुगतान, ऑनलाइन शिक्षा, सामाजिक माध्यम और विभिन्न सरकारी डिजिटल सेवाओं ने सूचना तथा सेवाओं तक पहुंच के पारंपरिक तरीकों में परिवर्तन किया है। ग्रामीण क्षेत्रों में भी इन तकनीकों का व्यापक प्रचार एवं विस्तार हो रहा है, लेकिन इनका लाभ सभी सामाजिक समूहों तक समान रूप से नहीं पहुंच रहा है। विशेष रूप से महिलाओं के संदर्भ में डिजिटल उपकरणों की उपलब्धता, उनका स्वतंत्र उपयोग, डिजिटल कौशल तथा डिजिटल तकनीक से प्राप्त वास्तविक लाभ अलग–अलग स्तरों पर दिखाई देते हैं। डिजिटल समावेशन का अर्थ केवल हर व्यक्ति के पास मोबाइल फोन या इंटरनेट कनेक्शन होना नहीं है। यदि किसी महिला के घर में स्मार्टफोन उपलब्ध है, लेकिन वह उसका स्वतंत्र उपयोग नहीं कर सकती, ऑनलाइन जानकारी नहीं खोज सकती या डिजिटल भुगतान करने में सक्षम नहीं है, तो केवल उपकरण की उपलब्धता को वास्तविक डिजिटल समावेशन नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार इंटरनेट उपलब्ध होने के बावजूद यदि महिला को प्राप्त ऑनलाइन जानकारी की विश्वसनीयता पहचानने का कौशल नहीं है, तो डिजिटल संसाधनों का उपयोग सीमित रह सकता है।

ग्रामीण महिलाओं के लिए डिजिटल समावेशन का महत्व उनके सामाजिक और आर्थिक संदर्भ से जुड़ा हुआ है। कृषि, पशुपालन, बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य, वित्तीय लेन–देन, सरकारी योजनाओं तथा बाजार से संबंधित जानकारी महिलाओं के दैनिक जीवन का हिस्सा है। इसलिए यदि डिजिटल तकनीक इन क्षेत्रों में महिलाओं की पहुंच और निर्णय क्षमता को बढ़ाती है, तो यह महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया को भी प्रभावित कर सकती है। उत्तराखंड के संदर्भ में यह विषय पलायन की प्रक्रिया से विशेष रूप से जुड़ता है। पर्वतीय क्षेत्रों में रोजगार के सीमित अवसरों के कारण परिवार के पुरुष सदस्यों का बाहर जाना कई ग्रामीण परिवारों की सामाजिक–आर्थिक वास्तविकता का हिस्सा रहा है। यदि महिलाओं पर परिवार और आजीविका से जुड़ी जिम्मेदारियां बढ़ती हैं, तो उन्हें कृषि, स्वास्थ्य, वित्तीय सेवाओं, सरकारी योजनाओं और बाजार से संबंधित सूचनाओं की अधिक आवश्यकता हो सकती है। ऐसे में डिजिटल संसाधन महिलाओं के लिए केवल संचार का माध्यम न रहकर सूचना और सेवाओं तक पहुंच का सहायक साधन बन सकते हैं।

उत्तराखंड में पलायन और महिलाओं की बदलती भूमिका

पलायन का प्रभाव परिवार के प्रत्येक सदस्य पर समान नहीं होता। पुरुषों के बाहर जाने के बाद पीछे रह जाने वाले परिवार के सदस्यों, विशेषकर महिलाओं, पर जिम्मेदारियों का पुनर्वितरण हो सकता है। उत्तराखंड जैसे पर्वतीय राज्य में यह स्थिति इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यहां कृषि, पशुपालन और घरेलू अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी पहले से ही महत्वपूर्ण रही है। भंडारी और रेड्डी (2015) के अध्ययन में पलायनकारी परिवारों में महिलाओं के कार्यभार को गैर–पलायनकारी परिवारों की तुलना में अधिक पाया गया। अध्ययन में यह भी सामने आया कि पुरुषों की अनुपस्थिति में महिलाओं पर गैर–घरेलू और गैर–कृषि कार्यों का अतिरिक्त दबाव पड़ता है। इस स्थिति का एक महत्वपूर्ण पहलू समय और सूचना की उपलब्धता है। जब महिला कृषि कार्य, पशुपालन, घरेलू जिम्मेदारियों और परिवार की अन्य आवश्यकताओं को संभालती है, तब उसे अनेक प्रकार के निर्णय लेने पड़ सकते हैं। यदि आवश्यक जानकारी के लिए उसे प्रत्येक बार बाहरी सहायता पर निर्भर रहना पड़े, तो निर्णय लेने की प्रक्रिया धीमी या सीमित हो सकती है। उदाहरण के लिए महिला मौसम संबंधी जानकारी देख सकती है, कृषि संबंधी सामग्री प्राप्त कर सकती है, बैंक खाते की जानकारी जान सकती है, सरकारी योजना की पात्रता देख सकती है या बाजार की जानकारी प्राप्त कर सकती है। हालांकि इसका लाभ तभी संभव है जब डिजिटल उपकरण महिला के लिए वास्तव में उपलब्ध और उपयोग योग्य हो। इस प्रकार पलायन और डिजिटल समावेशन के संबंध को सीधे "पलायन से डिजिटल सशक्तिकरण" के रूप में नहीं समझना चाहिए। अधिक उपयुक्त दृष्टिकोण यह है कि पलायन महिलाओं की जिम्मेदारियों को प्रभावित करता है, बढ़ी हुई जिम्मेदारियां सूचना की आवश्यकता को बढ़ाती हैं और डिजिटल संसाधन इस सूचना आवश्यकता को पूरा करने का एक संभावित माध्यम प्रदान करते हैं। उत्तराखंड में पुरुषों के बाह्य–प्रवासन ने महिलाओं की कृषि, घरेलू प्रबंधन और सामाजिक दायित्वों को बढ़ाया है। ग्रामीण महिलाएँ स्थानीय आजीविका की महत्वपूर्ण आधार बनी हैं, लेकिन बढ़ती जिम्मेदारियों के साथ उनका कार्यभार, संसाधनों पर निर्भरता और सामाजिक–आर्थिक असुरक्षा भी बढ़ी है (जोशी, 2017; हसीजा एवं अन्य, 2022)। प्रवासन के प्रमुख कारणों में रोजगार के सीमित अवसर, घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति में कठिनाई तथा शिक्षा और स्वास्थ्य संबंधी खर्च शामिल हैं (यादव एवं अन्य, 2018)।

डिजिटल समावेशन की अवधारणा

डिजिटल समावेशन एक बहुआयामी अवधारणा है। इसे कम से कम पांच स्तरों पर समझा जा सकता है।

• **डिजिटल उपकरणों तक पहुंच:** स्मार्टफोन, कंप्यूटर, इंटरनेट और डिजिटल सेवाएं डिजिटल समावेशन की आधारभूत आवश्यकताएं हैं। ग्रामीण महिलाओं के लिए व्यक्तिगत मोबाइल स्वामित्व विशेष महत्व रखता है क्योंकि साझा उपकरण पर उनकी स्वतंत्रता सीमित हो सकती है।

• **डिजिटल कौशल:** डिजिटल कौशल का अर्थ केवल मोबाइल पर कॉल करना या वीडियो देखना नहीं है। इसमें जानकारी खोजना, ऑनलाइन आवेदन करना, डिजिटल भुगतान करना, बैंकिंग सेवाओं का उपयोग करना, दस्तावेज भेजना तथा डिजिटल जानकारी का मूल्यांकन करना शामिल है।

• **स्वतंत्र उपयोग:** महिला के पास उपकरण होना और उसका स्वतंत्र उपयोग कर पाना दो अलग–अलग बातें हैं। परिवार में मोबाइल का नियंत्रण किसी अन्य सदस्य के पास होने पर महिला की वास्तविक डिजिटल पहुंच कम हो सकती है।

• **सुरक्षित उपयोग:** डिजिटल सशक्तिकरण में साइबर सुरक्षा भी आवश्यक है। व्यक्तिगत जानकारी, बैंकिंग विवरण, पासवर्ड और अन्य संवेदनशील जानकारी की सुरक्षा का ज्ञान महिलाओं को डिजिटल धोखाधड़ी से बचाने में सहायक हो सकता है।

• **सार्थक परिणाम:** डिजिटल समावेशन का अंतिम उद्देश्य तकनीक का उपयोग मात्र नहीं है। यदि डिजिटल तकनीक महिला की आय, जानकारी, सेवाओं तक पहुंच, आत्मविश्वास या निर्णय क्षमता में सुधार करती है, तभी उसे सार्थक डिजिटल समावेशन कहा जा सकता है।

ग्रामीण महिलाओं पर किए गए हालिया अध्ययनों से भी इस व्यापक दृष्टिकोण को समर्थन मिलता है। महिलाओं का डिजिटल समावेशन आर्थिक संसाधनों, कौशल, सामाजिक परिस्थितियों और उपलब्ध अवसरों जैसे अनेक कारकों से प्रभावित होता है। उत्तराखंड के संदर्भ में भी हालिया शोध यह दर्शाता है कि ग्रामीण महिलाओं के डिजिटल उपयोग को केवल इंटरनेट या उपकरण की उपलब्धता से नहीं समझा जा सकता इसमें शिक्षा, सामाजिक–सांस्कृतिक परिस्थितियां, डिजिटल आधारभूत सुविधाएं और उपयोग की स्वतंत्रता भी महत्वपूर्ण हैं। पलायन से प्रभावित उत्तराखंड के ग्रामीण परिवारों में डिजिटल समावेशन को ऐसी प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए जो महिलाओं को केवल डिजिटल दुनिया से जोड़ने के बजाय उन्हें सूचना प्राप्त करने, सेवाओं का उपयोग करने, अवसरों की पहचान करने और अपने व्यक्तिगत तथा पारिवारिक निर्णयों में अधिक प्रभावी भूमिका निभाने की क्षमता प्रदान करे।

डिजिटल साक्षरता और महिला सशक्तिकरण

डिजिटल तकनीक उत्तराखंड की महिलाओं के वित्तीय समावेशन और आर्थिक गतिविधियों के लिए नए अवसर प्रस्तुत कर रही है। महिलाएँ सोशल मीडिया, ऑनलाइन खरीदारी, शुल्क भुगतान और डिजिटल बिल भुगतान जैसी सेवाओं का उपयोग कर रही हैं (कुमार एवं अन्य 2024यऔलख एवं राय, 2025)। यह जाँचना आवश्यक है कि कि डिजिटल सशक्तीकरण बढ़ती प्रवासन–जनित जिम्मेदारियों को किस सीमा तक आजीविका, वित्तीय स्वतंत्रता और घरेलू निर्णय–क्षमता में बदल सकता है। फिर भी तकनीक की उपलब्धता को अपने आप सशक्तिकरण का संकेत नहीं माना जा सकता। वास्तविक परिवर्तन तब संभव है जब महिला डिजिटल साधनों पर पर्याप्त पकड़ विकसित करे, उनका उपयोग अपनी आवश्यकता के अनुसार स्वतंत्र रूप से कर सके और ऑनलाइन गतिविधियों से जुड़े जोखिमों के प्रति भी जागरूक हो। इसलिए ग्रामीण महिलाओं के डिजिटल समावेशन का उद्देश्य केवल उन्हें तकनीक से परिचित कराना नहीं, बल्कि ऐसी क्षमता विकसित करना होना चाहिए जिसके माध्यम से वे डिजिटल संसाधनों का उपयोग

अपनी सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक आवश्यकताओं को पूरा करने तथा अपने निर्णयों में अधिक सक्रिय भूमिका निभाने के लिए कर सकें।

कृषि और आजीविका में डिजिटल तकनीक की भूमिका

पलायन प्रभावित क्षेत्रों में कृषि का संचालन कई बार महिलाओं की बढ़ी हुई भागीदारी पर निर्भर हो सकता है। ऐसे में कृषि संबंधी जानकारी तक समय पर पहुंच महत्वपूर्ण हो जाती है। ग्रामीण महिलाओं के लिए डिजिटल तकनीक कृषि से जुड़ी जानकारी और अवसरों तक पहुंच का एक उपयोगी माध्यम बन सकती है। मोबाइल फोन और इंटरनेट के माध्यम से महिलाएं मौसम की स्थिति, फसल संबंधी समस्याओं, कृषि सामग्री, स्थानीय बाजार में उपलब्ध कीमतों तथा विभिन्न सरकारी कृषि योजनाओं के बारे में समय पर जानकारी प्राप्त कर सकती हैं। विशेष रूप से उन क्षेत्रों में इसका महत्व बढ़ जाता है जहां परिवार के पुरुष सदस्य रोजगार के लिए बाहर चले जाते हैं और कृषि से संबंधित अनेक कार्यों की जिम्मेदारी महिलाओं पर आ जाती है। इसलिए उत्तराखंड में डिजिटल कृषि पहल को केवल तकनीकी साधनों के वितरण तक सीमित रखने के बजाय स्थानीय कृषि ज्ञान, महिला किसानों के अनुभव और कृषि विस्तार सेवाओं के साथ जोड़ा जाना अधिक उपयोगी होगा। इस प्रकार डिजिटल माध्यम महिलाओं को केवल कृषि संबंधी सूचना प्राप्त करने में ही नहीं, बल्कि उपलब्ध विकल्पों को समझने, बेहतर निर्णय लेने और अपनी कृषि गतिविधियों से जुड़े अवसरों का अधिक प्रभावी ढंग से उपयोग करने में भी सहायता कर सकता है।

डिजिटल माध्यम और महिला उद्यमिता

उत्तराखंड के ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं द्वारा उत्पादित स्थानीय वस्तुओं में आर्थिक संभावनाएं मौजूद हैं। मंडुवा, झंगोरा, राजमा, दालें, मसाले, अचार, शहद, ऊनी वस्त्र तथा हस्तशिल्प जैसी वस्तुओं को स्थानीय बाजार से आगे पहुंचाने में डिजिटल माध्यम सहायक हो सकते हैं। महिला स्वयं सहायता समूह उत्पादों की जानकारी साझा करने, संभावित ग्राहकों से संपर्क करने और डिजिटल भुगतान प्राप्त करने के लिए डिजिटल माध्यमों का उपयोग कर सकते हैं। डिजिटल तकनीक पलायन से प्रभावित ग्रामीण महिलाओं की आजीविका को स्थानीय सीमाओं से बाहर ले जाने की दिशा में एक संभावित माध्यम बन सकती है। उत्तराखंड के गांवों में महिलाओं के पास स्थानीय कृषि उपज, पारंपरिक खाद्य पदार्थों, हस्तनिर्मित वस्तुओं और अन्य स्थानीय उत्पादों से जुड़ा अनुभव एवं कौशल है। इन उत्पादों की पहचान और उनके बारे में जानकारी डिजिटल माध्यमों से अधिक लोगों तक पहुंचाई जा सकती है। इससे महिला उत्पादकों के लिए संभावित ग्राहकों से संपर्क बनाने तथा स्थानीय स्तर से आगे बाजार तलाशने की संभावना बढ़ सकती है। डिजिटल भुगतान की सुविधा लेन–देन को अपेक्षाकृत सरल बना सकती है, जबकि मोबाइल आधारित संचार ग्राहक और उत्पादक के बीच संपर्क बनाए रखने में उपयोगी हो सकता है। फिर भी डिजिटल माध्यम को बाजार की सभी समस्याओं का समाधान नहीं माना जा सकता। उत्पाद की गुणवत्ता बनाए रखना, उचित मूल्य निर्धारित करना, सुरक्षित पैकेजिंग, भंडारण, परिवहन और ग्राहक तक वस्तु पहुंचाना जैसी व्यवस्थाएं भी आवश्यक हैं। इसलिए डिजिटल साधनों का प्रशिक्षण महिलाओं की पारंपरिक आजीविका और उद्यम संबंधी कौशल से अलग नहीं होना चाहिए। यदि तकनीकी जानकारी को स्थानीय संसाधनों, महिला समूहों और बाजार संबंधी समझ के साथ जोड़ा जाए, तो डिजिटल माध्यम ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक गतिविधियों को अधिक संगठित करने और उनकी आय के संभावित स्रोतों को विस्तृत करने में सहायक हो सकता है।

डिजिटल वित्तीय समावेशन और महिलाओं की आर्थिक भूमिका

महिला सशक्तिकरण का एक महत्वपूर्ण आयाम आर्थिक संसाधनों तक पहुंच और उनके उपयोग से जुड़े निर्णयों में भागीदारी है। डिजिटल बैंकिंग और डिजिटल भुगतान महिलाओं को वित्तीय सेवाओं तक अधिक सुविधाजनक पहुंच दे सकते हैं। पलायनकारी परिवारों में बाहर रहने वाले सदस्य द्वारा भेजी गई धनराशि परिवार की अर्थव्यवस्था का हिस्सा हो सकती है। यदि गांव में रहने वाली महिला स्वयं बैंकिंग सेवाओं का उपयोग कर सके, तो उसकी आर्थिक निर्भरता कम हो सकती है। फिर भी बैंक खाते तक पहुंच और आर्थिक सशक्तिकरण को समान नहीं माना जाना चाहिए। महिला के पास खाता होने के बावजूद यदि वित्तीय निर्णय परिवार का कोई अन्य सदस्य लेता है, तो उसकी वास्तविक आर्थिक स्वायत्तता सीमित रह सकती है। इसलिए डिजिटल वित्तीय साक्षरता में केवल डिजिटल भुगतान सिखाना पर्याप्त नहीं होगा। महिला को बैंक खाते की जानकारी, लेन–देन की समझ, बचत, वित्तीय सुरक्षा और धोखाधड़ी से बचाव का प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए।

स्वास्थ्य सेवाओं और जानकारी तक डिजिटल पहुंच

पर्वतीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं तक भौगोलिक दूरी कई परिवारों के लिए चुनौती हो सकती है। डिजिटल माध्यम महिलाओं को स्वास्थ्य संस्थानों, स्वास्थ्य योजनाओं और सामान्य स्वास्थ्य संबंधी प्रमाणित जानकारी तक पहुंचने में सहायता कर सकते हैं। महिलाएं डिजिटल माध्यम से स्वास्थ्य सेवाओं के समय, उपलब्ध सुविधाओं और सरकारी योजनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकती हैं। इससे विशेष रूप से उन परिस्थितियों में सहायता मिल सकती है जहां किसी सेवा के लिए पहले से जानकारी प्राप्त करना आवश्यक हो। लेकिन स्वास्थ्य संबंधी डिजिटल सामग्री के उपयोग में सावधानी आवश्यक है। इंटरनेट पर उपलब्ध सामग्री की गुणवत्ता समान नहीं होती। इसलिए डिजिटल स्वास्थ्य साक्षरता का एक महत्वपूर्ण हिस्सा यह होना चाहिए कि महिला विश्वसनीय स्रोतों की पहचान कर सके और गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं में प्रशिक्षित स्वास्थ्यकर्मी की सहायता लेने का निर्णय कर सके।

शिक्षा और कौशल विकास

डिजिटल माध्यम ग्रामीण महिलाओं के लिए औपचारिक शिक्षा के साथ–साथ अनौपचारिक सीखने के अवसर भी बढ़ा सकते हैं। महिला कृषि, स्वास्थ्य, वित्त, भाषा, उद्यमिता और अन्य कौशलों से संबंधित सामग्री अपनी सुविधा के अनुसार सीख सकती है। पलायन प्रभावित परिवारों में बच्चों की शिक्षा की जिम्मेदारी भी महिलाओं पर अधिक हो सकती है। डिजिटल शैक्षिक संसाधनों से महिलाएं बच्चों की पढ़ाई में सहायता कर सकती हैं और विद्यालय से संबंधित सूचना प्राप्त कर सकती हैं। इस प्रकार डिजिटल तकनीक महिला के लिए दोहरी भूमिका निभा सकती है जिसमें स्वयं सीखने का माध्यम और परिवार की शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने का साधन सम्मिलित हो।

स्वयं सहायता समूहों की भूमिका

स्वयं सहायता समूह ग्रामीण महिलाओं के बीच सामूहिक सीखने और आर्थिक गतिविधियों के लिए प्रभावी मंच बन सकते हैं। डिजिटल प्रशिक्षण यदि समूह आधारित हो, तो महिलाएं एक–दूसरे से सीख सकती हैं और अपनी समस्याओं पर सामूहिक रूप से चर्चा कर सकती हैं। समूहों के माध्यम से निम्नलिखित प्रशिक्षण दिए जा सकते हैंरू मोबाइल का सुरक्षित उपयोग, डिजिटल भुगतान, बैंकिंग,सरकारी योजनाओं की खोज, ऑनलाइन आवेदन, कृषि संबंधी जानकारी, बाजार मूल्य, डिजिटल विपणन और साइबर सुरक्षा। एक प्रशिक्षित महिला अन्य महिलाओं को प्रशिक्षित कर सकती है। इस प्रकार डिजिटल ज्ञान का प्रसार व्यक्ति से समूह और समूह से समुदाय तक हो सकता है।

सशक्तिकरण हेतु डिजिटल सुरक्षा: डिजिटल तकनीक का उपयोग तभी सशक्तिकरण का माध्यम बन सकता है जब महिला उसका सुरक्षित उपयोग भी जानती हो। ग्रामीण महिलाओं के डिजिटल प्रशिक्षण में निम्न विषयों को शामिल करना आवश्यक हैरू पासवर्ड की सुरक्षा, ओटीपी साझा न करना, संदिग्ध लिंक से बचना, बैंकिंग संबंधी जानकारी सुरक्षित रखना, अज्ञात कॉल की पहचान, व्यक्तिगत दस्तावेजों की सुरक्षा, गलत सूचना की पहचान और साइबर अपराध की स्थिति में शिकायत की जानकारी। डिजिटल सुरक्षा को प्रशिक्षण का अतिरिक्त विषय न मानकर डिजिटल साक्षरता का मूल हिस्सा माना जाना चाहिए।

पलायन और डिजिटल संचार

पलायन परिवार के सदस्यों के बीच भौगोलिक दूरी पैदा करता है। मोबाइल और इंटरनेट के माध्यम से परिवार के सदस्य नियमित संपर्क में रह सकते हैं। बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य, घरेलू आवश्यकताओं और आर्थिक मामलों पर बातचीत संभव हो सकती है। लेकिन संचार की सुविधा को स्वतः महिला सशक्तिकरण नहीं माना जा सकता। महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि महिला को परिवार के निर्णयों में कितनी आवाज प्राप्त है। यदि डिजिटल संपर्क महिला को केवल परिवार के बाहर गए सदस्य से सूचना प्राप्त करने तक सीमित रखता है, तो उसका प्रभाव सीमित होगा। इसके विपरीत, यदि महिला स्वयं आर्थिक, कृषि और पारिवारिक निर्णयों में सक्रिय भागीदारी करती है, तो डिजिटल संचार उसकी निर्णय क्षमता को मजबूत कर सकता है।

डिजिटल समावेशन और निर्णय लेने की क्षमता

महिला सशक्तिकरण का एक महत्वपूर्ण संकेतक निर्णय लेने की क्षमता है। डिजिटल जानकारी महिला को विकल्पों की तुलना करने और निर्णय लेने में सहायता कर सकती है। उदाहरण के लिए, बाजार मूल्य की जानकारी महिला को उत्पाद बेचने का उचित समय चुनने में सहायता कर सकती है। सरकारी योजना की जानकारी उसे किसी सेवा के लिए आवेदन करने में सक्षम बना सकती है। बैंकिंग जानकारी उसके वित्तीय निर्णयों को अधिक सूचित बना सकती है। इस प्रकार डिजिटल तकनीक का प्रभाव केवल "जानकारी प्राप्त करने" तक सीमित नहीं है। जानकारी जब निर्णय में परिवर्तित होती है, तभी उसका सशक्तिकरण संबंधी महत्व बढ़ता है।

ग्रामीण महिलाओं के डिजिटल सशक्तिकरण की एक समग्र रूपरेखा

पलायन से प्रभावित ग्रामीण परिवारों में महिलाओं की भूमिका को देखते हुए डिजिटल समावेशन को एक ऐसी समग्र प्रक्रिया के रूप में समझा जा सकता है, जो उनकी बदलती सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओं से जुड़ी हो। डिजिटल साधन इस आवश्यकता को पूरा करने में सहायक हो सकते हैं, बशर्ते महिलाओं को उनका उपयोग करने के लिए आवश्यक उपकरण, इंटरनेट सुविधा और व्यावहारिक डिजिटल ज्ञान उपलब्ध हो। इसके साथ ही वित्तीय लेन–देन, व्यक्तिगत जानकारी और ऑनलाइन गतिविधियों से जुड़े जोखिमों के प्रति जागरूकता विकसित करना भी आवश्यक है। जब महिलाएं डिजिटल माध्यमों का उपयोग अपनी आवश्यकता के अनुसार स्वतंत्र और सुरक्षित रूप से करने लगती हैं, तब कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, सरकारी योजनाओं, वित्तीय सेवाओं और बाजार से संबंधित अवसरों तक उनकी पहुंच बेहतर हो सकती है। ऐसी पहुंच धीरे–धीरे उनके आत्मविश्वास, जानकारी और निर्णय लेने की क्षमता को मजबूत कर सकती है तथा आर्थिक गतिविधियों में उनकी भागीदारी के लिए नए अवसर उत्पन्न कर सकती है। इस दृष्टि से डिजिटल तकनीक को महिला सशक्तिकरण का अंतिम परिणाम नहीं, बल्कि एक सहायक साधन माना जाना चाहिए, जिसका महत्व इस बात से निर्धारित होता है कि वह महिला की वास्तविक आवश्यकताओं, स्थानीय संसाधनों और आजीविका के अवसरों से कितनी प्रभावी रूप से जुड़ पाती है। उत्तराखंड के पलायन–प्रभावित गांवों में ऐसी दृष्टि विशेष रूप से उपयोगी हो सकती है, क्योंकि

यहां डिजिटल पहल को स्थानीय परिस्थितियों और महिलाओं की मौजूदा जिम्मेदारियों के अनुरूप विकसित करने की आवश्यकता है।

ग्राम पंचायत और स्थानीय संस्थाओं की भूमिका

डिजिटल समावेशन को सफल बनाने में ग्राम पंचायतों की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है। पंचायत स्तर पर डिजिटल सहायता केंद्र विकसित किए जा सकते हैं, जहां महिलाएं ऑनलाइन सेवाओं का उपयोग सीख सकें। स्वयं सहायता समूहों के साथ पंचायतों का समन्वय किया जा सकता है। स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षित महिलाओं को डिजिटल मार्गदर्शक बनाया जा सकता है। इससे डिजिटल सहायता गांव में ही उपलब्ध हो सकेगी। विद्यालयों, महाविद्यालयों और स्थानीय प्रशिक्षण संस्थानों को भी इस प्रक्रिया में शामिल किया जा सकता है। विशेष रूप से युवा महिलाओं और छात्राओं को सामुदायिक डिजिटल स्वयंसेवक के रूप में प्रशिक्षित करना उपयोगी हो सकता है।

स्थानीय भाषा और संदर्भ आधारित डिजिटल प्रशिक्षण

उत्तराखंड के ग्रामीण क्षेत्रों के लिए डिजिटल प्रशिक्षण की सामग्री स्थानीय सामाजिक और भाषाई संदर्भ को ध्यान में रखकर तैयार की जानी चाहिए। यदि प्रशिक्षण केवल तकनीकी शब्दावली और अंग्रेजी आधारित निर्देशों पर केंद्रित होगा, तो कम शिक्षित महिलाओं के लिए उसका उपयोग कठिन हो सकता है। इसलिए प्रशिक्षण में सरल भाषा, चित्र, छोटे वीडियो, स्थानीय उदाहरण, व्यावहारिक अभ्यास और चरणबद्ध निर्देश का प्रयोग किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए केवल यह बताने के बजाय कि "डिजिटल भुगतान कैसे करें", महिला को वास्तविक परिस्थितियों में भुगतान करना, भुगतान की पुष्टि देखना और गलत लेन–देन की स्थिति में क्या करना है– इन सभी का अभ्यास कराया जाना चाहिए।

भविष्य के शोध की संभावनाएं

उत्तराखंड में इस विषय पर भविष्य के शोध को बहुआयामी बनाया जा सकता है। कई संकेतकों को शामिल करना अधिक उपयोगी होगा जैसे– व्यक्तिगत मोबाइल स्वामित्व, इंटरनेट उपलब्धता, इंटरनेट उपयोग की नियमितता, डिजिटल कौशल, डिजिटल वित्तीय साक्षरता, साइबर सुरक्षा ज्ञान, सरकारी डिजिटल सेवाओं का उपयोग, कृषि संबंधी डिजिटल जानकारी, स्वास्थ्य संबंधी डिजिटल जानकारी, डिजिटल माध्यम से आय–सृजन, स्वयं सहायता समूह में सहभागिता, परिवार में निर्णय लेने की भूमिका, डिजिटल उपकरण पर पारिवारिक नियंत्रण तथा परिवार में पलायन की स्थिति। विशेष रूप से पलायनकारी और गैर–पलायनकारी परिवारों की महिलाओं के बीच तुलनात्मक अध्ययन महत्वपूर्ण शोध क्षेत्र हो सकता है। इसी प्रकार आवश्यकता–आधारित डिजिटल प्रशिक्षण का पूर्व–पश्चात मूल्यांकन किया जा सकता है। प्रशिक्षण से पहले और बाद में डिजिटल ज्ञान, आत्मविश्वास, वित्तीय साक्षरता, सरकारी योजनाओं की जानकारी और निर्णय लेने की क्षमता में परिवर्तन का अध्ययन किया जा सकता है।

निष्कर्ष

उत्तराखंड के पलायन प्रभावित ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल समावेशन की रणनीति को केवल "महिलाओं को मोबाइल उपलब्ध कराने" तक सीमित नहीं किया जाना चाहिए। इसे स्थानीय आजीविका, कृषि, वित्तीय सेवाओं, स्वास्थ्य, शिक्षा, सरकारी योजनाओं और महिला उद्यमिता से जोड़ना अधिक प्रभावी होगा। अंततः, डिजिटल समावेशन की सफलता का मूल्यांकन इस प्रश्न से नहीं किया जाना चाहिए कि "महिला डिजिटल तकनीक का उपयोग करती है या नहीं?" बल्कि इस प्रश्न से किया जाना चाहिए कि "डिजिटल तकनीक के उपयोग से महिला की जानकारी, विकल्प, आय, सेवाओं तक पहुंच और निर्णय लेने की क्षमता में कितना वास्तविक परिवर्तन आया है?" इसी दृष्टिकोण से डिजिटल तकनीक पलायन प्रभावित उत्तराखंड

के ग्रामीण समाज में महिलाओं के लिए केवल संचार का साधन न रहकर सूचना, आत्मनिर्भरता, आजीविका और सामाजिक–आर्थिक सशक्तिकरण का माध्यम बन सकती है।

संदर्भ सूची

Bhandari, G., & Reddy, B. V. C. (2015). Impact of out-migration on agriculture and women work load: An economic analysis of hilly regions of Uttarakhand, *India. Indian Journal of Agricultural Economics*, 70(3), 396–404. https://doi.org/10.22004/ag.econ.230218.

Hasija, A. M., Bisht, H. S., Bandooni, S. K., Kaur, U., & Rani, U. (2022). *Impact of male out migration on women folk in Kumaon Himalaya*. Semantic Scholar. https://www.semanticscholar.org/paper/e256d641e8138c439672e47c6878e7e5a47e4f35

Joshi, B. (2017). *Outmigration, abandonment of agricultural land and houses and their impact on environment, economy and women in Uttarakhand Himalaya*. Semantic Scholar. https://www.semanticscholar.org/paper/76d1b1411bbf07a76b5b74cfd69aac5c13dea1c0

Kumar, B., Kohli, K., Singh, V. K., & Kashyap, M. (2024). Bridging the digital divide: Understanding women's fintech adoption in Uttarakhand. *Journal of Mountain Research, 19*(2). https://doi.org/10.51220/jmr.v19-i2.15

Kumar, R., & Bhagat, B. (2025). Women and the web: A comparative study of socio-cultural and digital infrastructural barriers. *International Journal on Research and Development*-A Management Review, 14(1), 273–280. https://doi.org/10.65521/ijrdmr.v14i1.686.

Kumar, S., Kumar, V., & Devi, N. (2024). Digital literacy: A pathway toward empowering rural women. Global Knowledge, Memory and Communication, 75(1–2), 134–149. https://doi.org/10.1108/GKMC-08-2023-0295.

Oulakh, B., & Rai, P. (2025). Learn about the impact of digitization on mountain women in the Champawat region. *Journal of Social Science and Humanities,* 7(01), 93-98, https://doi.org/10.53469/jssh.2025.7(01).12

Pandey, K., Arya, N., & Singh, S. (2025). Socio-economic, communication and psychological characteristics of rural women from migrant households in Uttarakhand, India. *Journal of Scientific Research and Reports, 31*(2). https://doi.org/10.9734/jsrr/2025/v31i22825

Singh, P., & Kandpal, B. (n.d.). *Digital transformation and women entrepreneurship in hilly regions: An empirical study of e-commerce adoption among women entrepreneurs in Nainital district, Uttarakhand*. Retrieved August 27, 2026, from the indexed source record.

Singh, S., Rahul, K., Paliwal, M., Wani, I. A., & Suri, S. (2025). Gendering the digital divide: A systematic review of women's digital inclusion challenges and emerging research directions. *Digital Transformation and Society*, 4(4), 503–531. https://doi.org/10.1108/DTS-04-2025-0083.

Yadav, A. K., Sharma, G., & Gangwar, R. (2018). Determining factors for migration in Uttarakhand. *International Journal of Advances in Scientific Research and Engineering, 4*(2). https://doi.org/10.24247/ijasrfeb201813

उत्तराखण्ड महिलाओं में महिलाओं का राजनीतिक सशक्तिकरण पंचायती राज से राज्य नेतृत्व तक

डॉ. लता
राजनीति विज्ञान विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

सारांश (Abstract)

उत्तराखण्ड एक पर्वतीय एवं ग्रामीण राज्य है जहाँ की पारंपरिक सामाजिक आर्थिक संरचना में महिलाएँ सदैव आधार स्तंभ रही हैं। वन अधिनियमों एवं आधुनिक नीतियों के कारण पारंपरिक कार्यविभाजन में जो परिवर्तन आया, उसने कृषि, बुनाई और हस्तशिल्प के माध्यम से महिलाओं को ग्रामीण अर्थव्यवस्था के केंद्र में स्थापित कर दिया। किन्तु आर्थिक केन्द्रीयता के बावजूद राजनीतिक भागीदारी में महिलाएँ अब भी पर्याप्त प्रतिनिधित्व से वंचित हैं। यह अध्याय तर्क प्रस्तुत करता है कि चूँकि राजनीति ही समाज के प्रत्येक निर्णय को निर्धारित करती है, अतः महिला सशक्तिकरण तब तक अधूरा है जब तक राजनीतिक नेतृत्व में महिलाओं की सक्रिय एवं निर्णायक भागीदारी सुनिश्चित न हो। पंचायती राज संस्थाओं में आरक्षण, महिला स्वयं सहायता समूहों की राजनीतिक भूमिका तथा नंदा देवी की सांस्कृतिक परम्परा जैसे तत्व उत्तराखण्ड को महिला नेतृत्व के लिए सांस्कृतिक एवं संस्थागत रूप से तैयार राज्य सिद्ध करते हैं। यह पत्र चुनौतियों की पहचान करते हुए व्यावहारिक नीतिगत सुझाव भी प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्दः महिला राजनीतिक सशक्तिकरण, पंचायती राज, उत्तराखण्ड, नंदा देवी, स्वयं सहायता समूह, ग्रामीण नेतृत्व

प्रस्तावना

उत्तराखण्ड राज्य का निर्माण वर्ष 2000 में एक विशिष्ट पर्वतीय पहचान एवं सांस्कृतिक विरासत के साथ हुआ। राज्य की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है और इसका विशाल भूभाग हिमालय की पर्वत शृंखलाओं से आच्छादित है। इस भौगोलिक वास्तविकता ने यहाँ की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संरचना को एक विशिष्ट रूप दिया है, जिसमें महिलाओं की भूमिका सदैव केंद्रीय रही है।

पहाड़ी जीवन की कठोरता और पुरुष पलायन की परम्परा ने उत्तराखण्ड की महिलाओं को असाधारण परिश्रम और दायित्व बोध से सम्पन्न किया है। खेती–बाड़ी से लेकर पशुपालन, वन संग्रह से लेकर घरेलू प्रबंधन तक, महिलाएँ ग्रामीण अर्थव्यवस्था की वास्तविक संचालिका रही हैं। परन्तु इस आर्थिक केन्द्रीयता के बावजूद, राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया में उनकी भागीदारी सीमित रही है।

राजनीतिक सशक्तिकरण केवल एक अधिकार का प्रश्न नहीं है, यह विकास की अनिवार्य शर्त है। राजनीति ही वह माध्यम है जो समाज की प्राथमिकताएँ, संसाधनों का आवंटन और नागरिकों के जीवन की दशा–दिशा निर्धारित करती है। महिलाओं के हाथ में राजनीतिक शक्ति आने से न केवल महिला केंद्रित नीतियाँ सुदृढ़ होती हैं, अपितु समग्र समाज की विकास गति भी त्वरित होती है। अतः उत्तराखण्ड के सन्दर्भ में महिला राजनीतिक सशक्तिकरण को विकास दृष्टि के केंद्र में रखना अत्यावश्यक है।

पारंपरिक अर्थव्यवस्था और महिलाओं की केंद्रीय भूमिका

उत्तराखण्ड की पारंपरिक ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कार्य विभाजन ऐतिहासिक रूप से स्पष्ट था। पुरुष वन से जुड़े कार्यों जैसेः लकड़ी काटना, चारा एकत्र करना, वन उत्पाद संग्रहण आदि में संलग्न रहते थे, जबकि महिलाएँ कृषि, बुनाई, हस्तशिल्प और घरेलू उत्पादन का दायित्व निभाती थीं। यह विभाजन परस्पर पूरक था और दोनों भूमिकाएँ ग्रामीण जीवन के लिए समान रूप से आवश्यक थीं।

स्वतंत्रता के पश्चात बीते सात आठ दशकों में वन अधिनियमों एवं पर्यावरण संरक्षण नीतियों ने इस परम्परागत ढाँचे को गहरे प्रभावित किया। वनों पर सामुदायिक अधिकार सीमित होने से पुरुषों की वन आधारित आजीविका बाधित हुई। इसका एक बड़ा परिणाम यह हुआ कि पुरुषों का पहाड़ से मैदानी शहरों और सैन्य सेवाओं की ओर पलायन बढ़ा, इससे ग्रामीण कार्यभार का बड़ा हिस्सा महिलाओं पर आ गया। परिणामस्वरूप, कृषि, बुनाई, ऊन शिल्प और स्थानीय व्यापार जैसे क्षेत्र जो पहले से ही महिलाओं के दायित्व क्षेत्र में थे वे उत्तराखण्ड की ग्रामीण अर्थव्यवस्था के मुख्य स्तम्भ बन गए। ग्रामीण उत्तराखण्ड में

आज खेतों में काम करने वाले अधिकांश हाथ महिलाओं के हैं। बुग्यालों की देखभाल से लेकर जल स्रोतों के प्रबंधन तक, महिलाएँ पर्यावरण और अर्थव्यवस्था दोनों की संरक्षक हैं।
यह तथ्य अत्यंत महत्वपूर्ण हैः जो समाज आर्थिक दृष्टि से महिलाओं पर टिका हो, उसमें महिलाओं का राजनीतिक, सामाजिक और संस्थागत सशक्तिकरण न केवल न्यायसंगत है, अपितु विकास की तार्किक माँग भी है।

राजनीतिक सशक्तिकरणः क्यों और क्यों अभी

सशक्तिकरण की कोई भी परिभाषा तब तक पूर्ण नहीं हो सकती जब तक उसमें राजनीतिक आयाम सम्मिलित न हो। राजनीति केवल चुनाव जीतने या हारने का विषय नहीं है यह वह प्रक्रिया है जो निर्धारित करती है कि समाज के किस वर्ग को कितने संसाधन मिलेंगे, किसकी शिक्षा पर ध्यान दिया जाएगा, किसके स्वास्थ्य पर बजट आवंटित होगा। एक अर्थ में, हम क्या खाते हैं, क्या पहनते हैं, क्या पढ़ते हैं यह सब प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से राजनीतिक निर्णयों से प्रभावित होता है।
भारतीय संविधान के 73वें संशोधन (1992) ने पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए एक तिहाई आरक्षण का प्रावधान किया। उत्तराखण्ड ने इससे एक कदम आगे जाते हुए 2008 में पंचायती राज में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण को बढ़ा कर 50 प्रतिशत आरक्षण लागू किया। यह एक ऐतिहासिक कदम था जिसने हजारों महिलाओं को प्रधान, वार्ड सदस्य , क्षेत्र पंचायत सदस्य,ब्लाक प्रमुख जिला पंचायत सदस्य और जिला पंचायत अध्यक्ष के रूप में संस्थागत राजनीति में प्रवेश का अवसर दिया।
किन्तु आरक्षण मात्र पर्याप्त नहीं है। संख्यात्मक उपस्थिति और वास्तविक राजनीतिक नेतृत्व में अंतर होता है। प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व की समस्या (जहाँ निर्वाचित महिला प्रतिनिधि के स्थान पर उनके परिवार के पुरुष वास्तविक निर्णय लेते हैं) उत्तराखण्ड में भी देखी गई है। इस समस्या का समाधान केवल कानून से नहीं, बल्कि सामाजिक सांस्कृतिक जागरूकता, प्रशिक्षण और सहयोग तंत्र संभव होगा। राज्य विधानसभा और संसद में महिला प्रतिनिधित्व के आँकड़े अभी भी चिंताजनक हैं। महिला आरक्षण विधेयक (नारी शक्ति वंदन अधिनियम, 2023) का संसद में पारित होना एक महत्वपूर्ण कदम है, परन्तु इसके क्रियान्वयन की प्रतीक्षा है। उत्तराखण्ड को इस दिशा में अग्रणी भूमिका निभानी चाहिए। उत्तराखण्ड विधानसभा में वर्तमान में 70 सीटें हैं, 2022 के विधानसभा चुनाव में 8 महिलाएँ विधायक निर्वाचित हुई थीं, जो कुल विधानसभा का केवल 11.43 प्रतिशत है।

महिला स्वयं सहायता समूहः राजनीतिक सहभागिता का सेतु

उत्तराखण्ड में महिला स्वयं सहायता समूहों (SHG) का विस्तार उल्लेखनीय है। ये समूह आरंभ में बचत, ऋण और लघु उद्योग जैसे आर्थिक उद्देश्यों के कारण गठित हुए परन्तु धीरे धीरे ये सामाजिक और राजनीतिक चेतना के केंद्र भी बनते गए हैं। पड़ोसी पहाड़ी राज्यों की तुलना में उत्तराखण्ड के स्वयं सहायता समूह अपेक्षाकृत अधिक संगठित और सक्रिय देखे गए हैं। जब कोई महिला स्वयं सहायता समूह की बैठक में बोलना सीखती है, समूह के वित्त का हिसाब रखती है या सामूहिक निर्णय लेने में भाग लेती है तो वह वास्तव में राजनीतिक नेतृत्व की नींव तैयार कर रही होती है। यह अनौपचारिक राजनीतिक प्रशिक्षण है जो पंचायती राज की संस्थागत भागीदारी के लिए महिलाओं को तैयार करता है। राज्य सरकार एवं विभिन्न संस्थाओं को चाहिए कि वे स्वयं सहायता समूहों और पंचायती राज संस्थाओं के बीच एक सुदृढ़ सेतु का निर्माण करें। स्वयं सहायता समूह की सक्रिय सदस्य महिलाएँ पंचायत चुनाव में स्वाभाविक उम्मीदवार बन सकती हैं और बनती भी हैं।

नंदा देवी और सांस्कृतिक आधारः महिला नेतृत्व की उर्वर भूमि

उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक परम्परा में नंदा देवी को केंद्रीय आराध्य शक्ति के रूप में पूजा जाता है। बारह वर्षों में एक बार आयोजित होने वाली नंदा देवी राज जात यात्रा हिमालय की सबसे बड़ी तीर्थयात्राओं में से एक है। यह परम्परा दर्शाती है कि उत्तराखण्ड का समाज मूल रूप से नारीशक्ति का सम्मान करने वाला समाज है। लोकगीतों, उत्सवों और सामुदायिक जीवन में महिलाओं की केंद्रीय भूमिका इस सांस्कृतिक आधार को और पुष्ट करती है। यह सांस्कृतिक विरासत महिला राजनीतिक नेतृत्व के लिए एक स्वाभाविक और अनुकूल वातावरण प्रदान करती है। जिस समाज में देवीशक्ति की पूजा की परम्परा हो, उस समाज में महिला मुख्यमंत्री या महिला नेता की संकल्पना अस्वाभाविक नहीं है, यह वास्तव में सांस्कृ

तिक निरन्तरता का ही एक रूप होगी। उत्तराखण्ड में महिला राजनीतिक नेतृत्व को प्रोत्साहित करना न केवल संवैधानिक कर्तव्य है, अपितु यहाँ की सांस्कृतिक आत्मा के अनुरूप भी है। उत्तराखण्ड राज्य निर्माण आंदोलन में भी महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही थी ।उन्होंने जुलूस, धरना, प्रदर्शन और जनसभाओं में सक्रिय भागीदारी कर आंदोलन को गाँव–गाँव तक पहुँचाया। पहाड़ की महिलाओं ने जल, जंगल, जमीन, रोजगार, सम्मान और सामाजिक न्याय जैसे मुद्दों को राज्य की मांग से जोड़ा। उनका साहस, संघर्ष और सामूहिक नेतृत्व उत्तराखण्ड राज्य निर्माण आंदोलन की सबसे मजबूत जनशक्ति बनकर उभरा।

चुनौतियाँ एवं अवसर

महिला राजनीतिक सशक्तिकरण की दिशा में उत्तराखण्ड के समक्ष कुछ गंभीर चुनौतियाँ भी हैं जिन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता।

प्रथम, महिलाओं के विरुद्ध अपराध के आँकड़ेः हिमालयी राज्यों में महिला अपराध के संदर्भ में उत्तराखण्ड की स्थिति चिंताजनक है। सुरक्षा और सम्मान के बिना राजनीतिक भागीदारी अर्थहीन है। राजनीतिक नेतृत्व में आने वाली महिलाओं को विशेष रूप से उत्पीड़न और सामाजिक दबाव का सामना करना पड़ता है। इसके लिए कानूनी सुरक्षा के साथ–साथ सामाजिक जागरूकता अभियान आवश्यक हैं।

द्वितीय, प्रॉक्सी राजनीतिः कई निर्वाचित महिला प्रतिनिधि वास्तविक निर्णय लेने में असमर्थ हैं क्योंकि पारिवारिक या सामाजिक दबाव में उनकी भूमिका केवल प्रतीकात्मक रह जाती है। इसका समाधान के लिए निर्वाचित महिलाओं के लिए समय–समय पर नेतृत्व प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण कार्यक्रमों चलाये जाने चाहिए ।

तृतीय, शिक्षा और जागरूकता की कमीः ग्रामीण और दूरस्थ क्षेत्रों में महिलाओं की शैक्षिक स्थिति और राजनीतिक चेतना में अभी भी अंतर है। दूरस्त शिक्षा, डिजिटल साक्षरता और आधारभूत शिक्षा की पहुँच इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

अवसर की दृष्टि से देखें तो, पंचायती राज में 50 प्रतिशत आरक्षण, सक्रिय स्वयं सहायता समूह–तंत्र, नारी शक्ति वंदन अधिनियम (2023) और राज्य की सांस्कृतिक परम्परा ये सब मिलकर उत्तराखण्ड को महिला राजनीतिक नेतृत्व के लिए देश के अग्रणी राज्यों में स्थापित करने की क्षमता रखते हैं।

सिफारिशें एवं आगे का मार्ग

उत्तराखण्ड में महिला राजनीतिक सशक्तिकरण की दिशा में केवल संवैधानिक प्रावधान पर्याप्त नहीं हैं, इसके लिए एक बहुस्तरीय, समन्वित और दीर्घकालिक नीतिगत दृष्टिकोण की आवश्यकता है। नीचे दिए गए सुझाव उस दिशा में एक व्यावहारिक रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं।

1. राजनीतिक नेतृत्व प्रशिक्षण को संस्थागत रूप देनाः पंचायत स्तर पर निर्वाचित होने वाली महिला प्रतिनिधियों के लिए मात्र आरक्षण देना पर्याप्त नहीं है, उन्हें शासन की व्यावहारिक समझ भी होनी चाहिए। बजट कैसे पढ़ें, विकास प्रस्ताव कैसे तैयार करें, ग्राम सभा की बैठक का संचालन कैसे करें, सरकारी योजनाओं तक पहुँच कैसे बनाएँ; इन सब विषयों पर व्यवस्थित प्रशिक्षण की आवश्यकता है। उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय जैसी संस्थाएँ, जो पहाड़ के दूरस्थ क्षेत्रों तक पहुँचने में सक्षम हैं, इस कार्य में राज्य सरकार की सहयोगी बन सकती हैं। ऑनलाइन और ऑफलाइन दोनों माध्यमों से ऐसे प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार किए जाएँ जो स्थानीय भाषा और संदर्भ में हों।

2. स्वयं सहायता समूहों को राजनीतिक भागीदारी का सोपान बनानाः उत्तराखण्ड में लाखों महिलाएँ स्वयं सहायता समूहों से जुड़ी हैं। इन समूहों ने महिलाओं में सामूहिक निर्णय क्षमता, वित्तीय समझ और नेतृत्व की प्रारम्भिक नींव रखी है। राज्य सरकार को चाहिए कि वह एक विशेष कार्यक्रम बनाए जिसके अंतर्गत स्वयं सहायता समूहों की सक्रिय और अनुभवी नेत्रियों को पंचायत चुनावों के लिए तैयार किया जाए। इसमें उनका नामांकन प्रक्रिया से परिचय, चुनाव प्रचार की समझ और निर्वाचन के बाद की जिम्मेदारियों का बोध शामिल हो। स्वयं सहायता समूह से पंचायत तक की यह यात्रा एक प्राकृतिक नेतृत्व पाइपलाइन बन सकती है।

3. लिंग आधारित बजट निर्माण (ळमदकमत ठनकहमजपदह) को जिला और ब्लॉक स्तर तक लागू करनाः केंद्र सरकार ने राष्ट्रीय बजट में लिंग आधारित बजट का प्रावधान किया है, परन्तु इसकी वास्तविक प्रभावशीलता तब होगी जब यह जिला और ब्लॉक स्तर तक पहुँचे। उत्तराखण्ड सरकार को प्रत्येक जिले

में एक Gender Budget Cell स्थापित करनी चाहिए जिसमें महिला निर्वाचित प्रतिनिधियों की सहभागिता अनिवार्य हो। इससे एक ओर महिलाओं की वास्तविक जरूरतें बजट में प्रतिबिम्बित होंगी और दूसरी ओर निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों को शासन प्रक्रिया में वास्तविक भूमिका मिलेगी।

4. महिला सुरक्षा और राजनीतिक भागीदारी का अनिवार्य सम्बन्धः किसी भी महिला के लिए राजनीतिक जीवन में प्रवेश करना तब तक सहज नहीं होगा जब तक उसे सुरक्षा का भरोसा न हो। उत्तराखण्ड में महिलाओं के विरुद्ध अपराध की जो स्थिति है, वह राजनीतिक सहभागिता पर भी अप्रत्यक्ष प्रभाव डालती है। उत्पीड़न का भय, सार्वजनिक जीवन में बदनामी का डर और पारिवारिक दबाव महिलाओं को चुनावी राजनीति से दूर रखते हैं। इसलिए महिला अपराध रोकने की नीतियाँ और महिला राजनीतिक सहभागिता की नीतियाँ, दोनों को एक साथ देखा जाना चाहिए। पुलिस प्रशिक्षण, त्वरित न्याय तंत्र और सामुदायिक जागरूकता अभियानों में निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की भूमिका सुनिश्चित की जाए।

5. उच्च शिक्षा संस्थानों की भूमिका, राजनीतिक चेतना का निर्माणः विश्वविद्यालय और महाविद्यालय राजनीतिक चेतना निर्मित करने के स्थान भी हैं। उत्तराखण्ड के विश्वविद्यालयों को चाहिए कि वे राजनीति विज्ञान और समाज विज्ञान के पाठ्यक्रमों में महिला राजनीतिक नेतृत्व को एक अनिवार्य विषय के रूप में सम्मिलित करें। छात्राओं के लिए मॉक पंचायत, छात्र संघ चुनावों में समान भागीदारी, और सफल महिला जनप्रतिनिधियों के अनुभव साझा करने के कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ। यह आने वाली पीढ़ी की महिला नेत्रियों की नींव रखेगा।

6. मीडिया और सामाजिक संचार माध्यमों में महिला नेतृत्व की सकारात्मक छविः समाज में महिला नेतृत्व के प्रति दृष्टिकोण को बदलने में मीडिया की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। स्थानीय समाचार पत्र, रेडियो और डिजिटल मंच, ये सब मिलकर पंचायतों में काम करने वाली सफल महिला प्रतिनिधियों की कहानियाँ प्रमुखता से प्रस्तुत करें। उत्तराखण्ड के क्षेत्रीय मीडिया को इस दिशा में एक सकारात्मक और जिम्मेदार भूमिका निभानी चाहिए। जब एक पहाड़ी गाँव की महिला प्रधान की सफलता की कहानी अखबार के पहले पन्ने पर आती है, तो वह हजार महिलाओं को प्रेरित करती है।

7. राजनीतिक दलों की संस्थागत जिम्मेदारीः राजनीतिक दल लोकतंत्र के प्रमुख वाहक हैं। यदि दल अपने संगठन में ही महिलाओं को हाशिये पर रखते हैं, तो संसदीय और विधायी स्तर पर महिला प्रतिनिधित्व की उम्मीद कमजोर हो जाती है। उत्तराखण्ड के सभी प्रमुख राजनीतिक दलों को (स्वेच्छा से या नीतिगत दबाव में) यह सुनिश्चित करना चाहिए कि चुनावी टिकटों में महिलाओं को केवल हारने योग्य सीटें नहीं, बल्कि जीतने योग्य और प्रतिष्ठित सीटें दी जाएँ। दल के भीतर महिला मोर्चों को प्रतीकात्मक नहीं, बल्कि निर्णायक भूमिका मिले।

8. पंचायत से कैबिनेट तक एक दीर्घकालिक नेतृत्व पाइपलाइनः सबसे महत्वपूर्ण और दूरगामी सुझाव यह है कि उत्तराखण्ड में एक सुव्यवस्थित महिला नेतृत्व पाइपलाइन विकसित की जाए। इसका अर्थ है, ग्राम पंचायत स्तर पर प्रशिक्षित और अनुभवी महिला नेत्रियों को क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत में आगे बढ़ाना, वहाँ से विधानसभा की ओर प्रोत्साहित करना और फिर मंत्रिमंडल तक की यात्रा को संभव बनाना। उत्तराखण्ड में एक महिला मुख्यमंत्री की परिकल्पना कोई सुदूर स्वप्न नहीं है। यह एक सुनिश्चित लक्ष्य हो सकता है यदि आज से ही इस दिशा में सचेत प्रयास किए जाएँ। जिस राज्य में नंदा देवी की शक्ति परम्परा हो, जहाँ की महिलाएँ पहाड़ की कठिनतम परिस्थितियों में समाज को सँभाले रखती हों, वहाँ महिला के सर्वोच्च राजनीतिक नेतृत्व तक पहुँचना सांस्कृतिक रूप से भी स्वाभाविक और अपेक्षित है।

निष्कर्ष

उत्तराखण्ड की महिलाएँ इस राज्य की वास्तविक निर्मात्री हैं। सदियों से वे पहाड़ की कठोर भूमि को उगाती रही हैं, घर की अर्थव्यवस्था को सँभालती रही हैं और समाज की सांस्कृतिक स्मृति, तीज त्योहारों को जीवित रखती रही हैं। वन अधिनियमों के बाद जब पारंपरिक कार्य विभाजन बदला और पुरुषों का पलायन बढ़ा, तो महिलाओं ने न केवल अपनी जिम्मेदारी निभाई, बल्कि पुरुषों की जिम्मेदारी भी अपने कन्धों में उठा ली। इस पृष्ठभूमि में उनके राजनीतिक सशक्तिकरण की माँग न केवल न्यायसंगत है, यह उस ऋण का स्वीकार है जो पहाड़ी समाज पर महिलाओं का बकाया है।

राजनीतिक सशक्तिकरण की यह माँग केवल संख्याओं की माँग नहीं है। यह माँग है कि महिलाएँ उन निर्णयों में भागीदार बनें जो उनके जीवन के कई पहलुओं को सीधे प्रभावित करते हैं, जैसे जल स्रोतों का प्रबंधन, स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता, बच्चों की शिक्षा, वन अधिकार, और आपदा प्रबंधन आदि ।

ये सब विषय उत्तराखण्ड की महिलाओं के दैनिक जीवन से जुड़े हैं और इनसे सम्बन्धित नीतियाँ तभी प्रभावी होंगी जब उनके निर्माण में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी होगी।

उत्तराखण्ड के पास इस दिशा में एक विशिष्ट और अनुकूल आधार है। 73वें संविधान संशोधन और राज्य द्वारा लागू 50 प्रतिशत आरक्षण ने हजारों महिलाओं को संस्थागत राजनीति का अनुभव दिया है। महिला स्वयं सहायता समूहों ने लाखों महिलाओं में सामूहिक नेतृत्व की संस्कृति विकसित की है। नंदा देवी की सांस्कृतिक परम्परा यह सिद्ध करती है कि यह समाज नारी शक्ति को सर्वोच्च स्थान देने की क्षमता रखता है।नारी शक्ति वंदन अधिनियम (2023) ने विधायी स्तर पर महिला प्रतिनिधित्व के लिए वैधानिक आधार तैयार किया है। उत्तराखण्ड राज्य आन्दोलन ने भी महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता को बढाया और उनका साहस, संघर्ष और सामूहिक नेतृत्व उत्तराखण्ड राज्य निर्माण आंदोलन की सबसे मजबूत जनशक्ति बनकर उभरा। महिला अपराध के आँकड़े, प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व की समस्या और ग्रामीण क्षेत्रों में जागरूकता की कमी जैसी चुनौतियाँ भी हैं, परन्तु ये चुनौतियाँ इस लक्ष्य को असम्भव नहीं बनातीं वे केवल यह बताती हैं कि कहाँ और अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। जहाँ नींव मजबूत हो, वहाँ चुनौतियाँ अवरोध नहीं निर्माण की प्रक्रिया का हिस्सा होती हैं।

माननीय राज्यपाल की विकास दृष्टि के केंद्र में समावेशी और टिकाऊ विकास है। यह तब तक संभव नहीं है जब तक इस राज्य की रीढ़, उत्तराखण्ड की आधी आबादी राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया में पूर्ण और सक्रिय भागीदार न हो। महिला राजनीतिक सशक्तिकरण उत्तराखण्ड के विकास की पूर्वशर्त है। अंत में, यह कहना समीचीन होगा कि उत्तराखण्ड की महिलाएँ सदियों से इस राज्य की अर्थव्यवस्था और समाज को सँभालती आई हैं। खेत, जंगल, घर और पशुपालन; इन सभी मोर्चों पर उनकी केंद्रीय भूमिका रही है। यही कारण है कि उनकी राजनीतिक भागीदारी को प्रोत्साहन देना उत्तराखण्ड के समग्र विकास की अनिवार्य शर्त है। पंचायत स्तर पर अर्जित अनुभव और नेतृत्व क्षमता को राज्य के उच्चतम राजनीतिक पदों तक पहुँचने का अवसर मिलना चाहिए। माननीय राज्यपाल की विकास दृष्टि का लक्ष्य एक समावेशी और आत्मनिर्भर उत्तराखण्ड है। यह लक्ष्य तभी प्राप्त होगा जब राज्य की प्रत्येक महिला, चाहे वह किसी दूरस्थ पहाड़ी गाँव की निर्वाचित प्रतिनिधि हो अथवा राज्य स्तरीय नीति निर्माण में सहभागी, अपनी पूर्ण क्षमता के साथ राज्य निर्माण की प्रक्रिया में भागीदार बने।

संदर्भ सूची (References)

भारत सरकार. (1992). संविधान (तिहत्तरवाँ संशोधन) अधिनियम, 1992. भारत का राजपत्र.

भारत सरकार. (2023). नारी शक्ति वंदन अधिनियम, 2023. संसद के अधिनियम.

उत्तराखण्ड सरकार. (2019). पंचायती राज अधिनियम, उत्तराखण्ड (संशोधन). देहरादूनः राज्य शासन.

Agarwal, B. (1994). A Field of One's Own: Gender and Land Rights in South Asia. Cambridge University Press.

Chen, M. A. (1995). A matter of survival: Women's right to employment in India and Bangladesh. In M. Nussbaum & J. Glover (Eds.), Women, Culture and Development (pp. 37–57). Oxford University Press.

Devi, U. (2011). Uttarakhand mein Mahila Andolan: Ek Adhyayan. Almora: Shri Almora Book Depot.

Kishwar, M. (2003). Women in politics — for people or proxy? Manushi, 134, 2–14.

NITI Aayog. (2021). Sustainable Development Goals: India Index 2021. New Delhi: Government of India.

Pai, S. (2004). Panchayati Raj, women empowerment and Dalit politics. Economic and Political Weekly, 39(2), 241–248.

Sharma, K. (2009). Uttarakhand ki Lok Parampara aur Nanda Devi. Dehradun: Pahar Prakashan.

UNDP. (2023). Human Development Report 2023/24. New York: United Nations Development Programme.

.

परिचय 1.

डॉ. लता जोशी पिथौरागढ़ में जन्मी हैं। उन्होंने राजनीति विज्ञान में पीएच.डी. की है और वर्तमान में उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय में सहायक प्राध्यापक के रूप में कार्यरत हैं। उनका प्रमुख अकादमिक कार्यक्षेत्र जेंडर स्टडीज, राजनीति तथा भारतीय ज्ञान प्रणाली है। वे समकालीन सामाजिक एवं राजनीतिक विषयों के अध्ययन के साथ भारतीय ज्ञान परंपरा के विभिन्न आयामों पर भी कार्य करती हैं।

परिचय 2.

डॉ. लता जोशी
जन्मस्थानः पिथौरागढ़
शिक्षाः राजनीति विज्ञान में पीएच.डी.
पदः सहायक प्राध्यापक, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रमुख कार्यक्षेत्रः जेंडर स्टडीज, राजनीति एवं भारतीय ज्ञान प्रणाली

सतत विकास और महिला नेतृत्व: उत्तराखण्ड की वन पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी एवं भूमिका का अध्ययन

- नियती रावत एवं दिग्विजय सिंह पथनी
सहायक प्राध्यापक (ए.सी)
राजनीति विज्ञान विभाग
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

संक्षेप

उत्तराखंड में, वन पंचायतें समुदाय-आधारित वन प्रबंधन का एक अहम हिस्सा हैं। महिला शशक्तिकरण व महिलाओं की भागीदारी का आजीविका की सुरक्षा, समुदाय के फैसलों और पर्यावरण संरक्षण पर बड़ा असर पड़ता है। इस अध्ययन में वन पंचायतों में महिलाओं के नेतृत्व और भागीदारी के स्वरूप और दायरे की जांच की गई है, साथ ही यह भी देखा गया है कि उनकी भागीदारी किस तरह सतत विकास की प्रक्रियाओं में मदद करती है। यह अध्ययन सरमोली-जैंती गांव के अनुभव और भर्की-उरगम के पुराने उदाहरण पर मुख्य रूप से ध्यान केंद्रित करते हुए महिलाओं के सामूहिक संगठन, वन संरक्षण में उनके रोज़मर्रा के काम, फैसलों में उनकी भागीदारी और आजीविका के अवसरों पर उनके बढ़ते नियंत्रण की जांच करता है। नतीजे बताते हैं कि महिलाओं की सामूहिक कोशिशों ने समुदाय की भागीदारी को मज़बूत किया है, क्षेत्रीय पारिस्थितिक परंपराओं को बनाए रखा है और वन प्रबंधन को आजीविका की सुरक्षा और सामुदायिक कल्याण से जोड़ा है। उत्तराखंड में सतत वन प्रबंधन के विकास और उसे बनाए रखने के लिए महिलाओं की भागीदारी बहुत ज़रूरी है।

***मुख्य शब्द**: सतत विकास, महिला नेतृत्व, वन पंचायत, पारिस्थितिकीय नारीवाद*

उत्तरखंडी महिलाएं एवं पर्यावरण

विषम भौगोलिक स्थिति से हार न मानते हुए उत्तराखंड की महिलाएं अनवरत घर के काम के साथ कृषि-कर्म, गाय-बैलों की देखभाल, पानी एवं ईंधन का इंतजाम भी पूरे जीवट के साथ करती हैं। इन सबके अतिरिक्त विभिन्न सामाजिक-राजनीतिक मुद्दों से निपटने के लिए यहां की महिलाएं एकजुट रही हैं। प्रकृति से उत्तराखंड की महिलाओं का एक विशेष लगाव रहा है। उत्तराखंड की महिलाएं जन जंगल ज़मीन की सदैव प्रहरी रहीं है। यही नहीं उत्तराखंड के संदर्भ में हुए कई पर्यावरण संबंधी आंदोलनों में महिलाओं ने अग्रणी भूमिका निभाई है । महिलाओं का प्रकृति से एक विशेष संबंध होता है - यही पारिस्थितिकीय नारीवादी (Eco-feminism) का मूल विचार रहा है।

महिलाएं और पर्यावरण: एक पारिस्थितिकीय नारीवादी परिप्रेक्ष्य

पारिस्थितिकी नारीवाद (Eco-feminism) एक ऐसी सामाजिक-राजनीतिक विचारधारा है जो प्रकृति के शोषण को महिलाओं के दमन से जोड़ता है। पारिस्थितिकीय नारीवाद या ईको फेमिनिज्म शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग फ्रांसीसी लेखिका फ्रांसवा दि ओबोन द्वारा 1974 में अपनी पुस्तक ल फेमिनिज्म अ ला मोर्त (नारिवाद या मृत्यु) में किया गया था। उनका तर्क है कि पितृसत्तात्मक समाज की प्रभुत्ववादी और नियंत्रणवादी सोच प्रकृति एवं महिलाओं दोनों का शोषण करती है। पितृसत्तात्मक सोच पुरुषों के भीतर यह प्रवृत्ति पैदा करती है कि पालन-पोषण, घर की देखभाल एवं व्यक्तिगत संबंधों जैसे जो भी निजी काम हैं, वे केवल महिलाओं के हैं। श्रम का यही लैंगिक विभाजन पुरुषों को प्रकृति एवं महिलाओं पर शासन करने को प्रेरित करता है और वह स्वयं को इन दोनों का ही मालिक समझ बैठते हैं।

पारिस्थितिकीय नारीवाद सभी हाशिये पर स्थित समूहों के साथ होने वाले दमन और भेदभाव (लिंगभेद, रंगभेद, नस्लभेद, जातिवाद आदि) और प्रकृति के शोषण को जुड़ा हुआ मानता है। पारिस्थितिकीय नारीवाद का मानना है कि जो सोच महिलाओं को कमतर

समझती है और उन पर नियंत्रण करने का प्रयास करती है, वही अन्य हाशिये पर स्थित समूहों का भी दमन करती है और प्रकृति का भी शोषण करती है।

पारिस्थितिकीय नारीवाद के अनुसार पितृसत्तात्मक व्यवस्थाएँ, वैश्विक पूंजीवाद और अन्य दमनकारी व्यवस्थाएँ आपस में जुड़ी हुई हैं। पारिस्थितिकीय नारिवाद पुरुषों द्वारा महिलाओं पर प्रभुत्व और संस्कृति द्वारा प्रकृति पर प्रभुत्व को एक-दूसरे के अनुरूप मानता है। अगर महिलाओं एवं प्रकृति में एक किस्म का प्राकृतिक संबंध है तो पुरुष एवं प्रकृति का संबंध बिल्कुल अलग है। पारिस्थितिकीय नारिवाद का मानना है की महिलाएं प्रकृति (nature) की प्राणी हैं तो पुरुष संस्कृति (culture)का - पुरुष परिवेश मानव-निर्मित है अर्थात सिंथेटिक है, उसमें प्रकृतिक रचनात्मकता की कमी है। सुसान ग्रिफिन की *Women and Nature* (1978), कैरोलिन मर्चेंट की *The Death of Nature* (1980) और मैरी डेली की *Gyn/Ecology* (1978) जैसी रचनाएँ इस विचार और महिलाओं और प्रकृति के इस संबंध को उजागर करती हैं।

महिलाओं और प्रकृति के बीच इस जुड़ाव का विचार नया नहीं है। प्राच्य धर्म परम्पराएँ एवं प्रारंभिक संस्कृतियां, पृथ्वी या प्राकृतिक शक्तियों को देवी के रूप में निरूपित करती थीं।

पितृसत्तात्मक सोच महिलाओं एवं प्रकृति दोनों को शासन एवं नियंत्रण की दृष्टि से देखती है। पारिस्थितिकीय नारीवाद इसलिए एक ऐसे समाज की वकालत करता है जिसमें कठोर एवं श्रेणीबद्ध ढांचे की जगह सहयोगी एवं सतत-जीवन शैली हो।

उत्तराखंड की महिलाओं के प्रकृति से संबंध को पारिस्थितिकीय नारीवादी दृष्टिकोण अच्छी तरह समझने में सहायक है। उत्तराखंड की महिलाएं प्रकृति से अपनी जीवनशैली के कारण जुड़ी हुई हैं। वह पर्यावरणीय मुद्दों के प्रति सदैव सजग रही हैं। इस कारण प्रकृति संरक्षण के अनेक आंदोलनों में – जैसे कुंजड़ी बन आंदोलन, खास पट्टी आंदोलन जैसे ऐतिहासिक एवं चिपको आंदोलन जैसे प्रसिद्ध वन संपदा एवं पर्यावरणीय आंदोलनों में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

महिलाओं की इस पर्यावरणीय चेतना और प्रकृति से विशिष्ट संबंध इस बात की पैरवी करता है की उन्हें वन एवं पर्यावरणीय संरक्षण एवं प्रबंधन में विशेष प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिए। उत्तराखंड का वन प्रबंधन में लोक प्रतिनिधित्व की अनूठी व्यवस्था – वन पंचायत एक ऐसा ही अभूतपूर्व प्रयोग है।

वन पंचायत: उत्तराखंड में वन प्रबंधन की अनूठी व्यवस्था

वन पंचायत समुदाय प्रबंधित वन क्षेत्र है। 1890 में ब्रिटिश-राज द्वारा तब के संयुक्त प्रांत के सभी गैर-निजी वन क्षेत्रों को अपने अधिकार में ले लिया गया था। उस समय के संयुक्त प्रांत का एक हिस्सा आज का उत्तराखंड है। वन संपदा पर बहुत अधिक निर्भरता होने से पहाड़ के समुदाय इससे वंचित हो गए। इसका यहां की जनता द्वारा व्यापक विरोध किया गया, जिसमें भारी मात्रा में जंगलों में आग लगाना भी शामिल था। इस मामले के समाधान हेतु कुमाऊं वन शिकायत समिति गठित की गई, जिसके द्वारा 1931 में पहला कुमाऊं पंचायत वन नियम बनाया गया। जिससे यहां के समुदायों को अपने वनों के प्रबंधन का अधिकार दिया गया। उत्तराखंड में 11217 वन पंचायतें हैं। वन पंचायत संशोधन अधिनियम 1971, 1976, 2001, 2005 और 2012 के द्वारा इनमें समय-समय पर संशोधन किए जाते रहे हैं।

1931 में पहली वन पंचायत गठित की गई। एक अनुमान के अनुसार प्रदेश में वन पंचायत लगभग 405,426 हेक्टेयर वनों का प्रबंध कर रही हैं । एक वन पंचायत में एक हेक्टेयर से कम से लेकर 2000 हेक्टेयर तक वन क्षेत्र आता है। सामुदायिक वनों के प्रबंधन एवं नियंत्रण में वन पंचायतें राजस्व विभाग द्वारा निर्देशित की जाती हैं। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि वनों को स्थानीय लोग अपनी संपत्ति मानते हुए देखभाल करते हैं। यहां इस संभावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि इनका बिल्कुल भी दुरुप्रयोग नहीं होता है।

वन पंचायत अधिनियम

इसका उद्देश्य वन क्षेत्र की सुरक्षा एवं वन उपज को वहां का स्थानीय लोगों के बीच बंटवारा है। भारतीय वन अधिनियम 1927 के सेक्शन 28(2) के अंतर्गत निर्मित कुमाऊं वन पंचायत अधिनियम में इन क्षेत्रों के प्रबंधन और देखरेख को विस्तार से दिया गया है। 1971 के वन पंचायत अधिनियम ने 1931 के नियमों के अंतर्गत लोगों को मिली रियायतों को सीमित कर दिया। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि वन पंचायत अधिनियम के अनुसार वन पंचायतों द्वारा प्रबंढीत सामुदायिक वन - राज्य के स्वामित्व और सामुदायिक उत्तरदायित्व का सम्मिश्रण है। यह वन पंचायतें वन उपयोग के प्रबंधन एवं नियंत्रण में राजस्व विभाग के नियमों एवं वन विभाग की तकनीकी सलाह से निर्देशित होते हैं। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि स्थानीय उपयोगकर्ता इन्हें अपनी सामूहिक संपत्ति मानते हैं। यहां तक कि ग्रामीण इन वनों को बचाने के लिए किसी विशेष वन क्षेत्र को किसी देवी या किसी अन्य देवता के नाम समर्पित कर देते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि ग्रामीण श्रद्धा से या देवी के प्रकोप के भय से इन वनों का शोषण बंद कर देते हैं।

वन पंचायत अधिनियम यह निर्धारित करता है कि पंचायत का गठन किस तरह होगा। इसका उद्देश्य वनों की रक्षा एवं वन उपज का समान वितरण ग्रामीणों के बीच हो।

वन पंचायत के मुख्य कार्य इस प्रकार हैं

1- वनों का संरक्षण एवं पेड़ों के अंधाधुंध कटान को रोकना।
2- वन पंचायत की भूमि पर किसी भी प्रकार के अतिक्रमण को रोकना।
3- घेरबाड़ का निर्माण एवं देखभाल।
4- जंगलों के संवर्धन एवं संरक्षण के संबंध में उपखंड अधिकारी के निर्देशन का पालन।
5- वन उपज का हक-हकूकधारी लोगों के बीच सही वितरण।

प्रशासनिक एवं वित्तीय शक्तियां

1- स्थानीय लोगों को घास, टूटी हुई टहनियां एवं पत्थर के पटल बेचना।
2- जिलाधिकारी एवं प्रभागीय वन अधिकारी की पूर्व अनुमति से 5000 तक के पेड़ों की नीलामी।
3- बिकी लकड़ी और शुल्क से प्राप्त आय का बंटवारा।

बंटवारा इस प्रकार किया जा सकता है:

1- 20% जिला परिषद को।
2- 40% ग्राम सभा को खंड विकास समिति की सहमति से स्थानीय विकास योजनाओं के लिए।
3- शेष धनराशि वन विभाग द्वारा पंचायत नियमों के रखरखाव व विकास के लिए।

ग्रामीणों की शिकायत है कि वन पंचायत पर नौकरशाही का अत्यधिक नियंत्रण है। दूसरी तरफ नौकरशाही का आरोप है कि एक केंद्रीय नियंत्रण के अभाव में ग्रामीण सारे जंगल का सफाया कर सकते हैं। लेकिन सभी नियमों का विश्लेषण करने पर यह पाया जाता है कि यह नियम वनों के प्रबंधन की जिम्मेदारी तो पंचायतों को सौंपते हैं लेकिन उन्हें आवश्यक अधिकार नहीं दिए जाते हैं। वन पंचायत को और अधिक मजबूत एवं सशक्त तथा आत्मनिर्भर बनाने के लिए उत्तराखंड सरकार द्वारा वन पंचायत संशोधन अधिनियम 2024 पारित किया गया। इसके मुख्य बिंदु इस प्रकार हैं:

1- नए नियमों के अनुसार 9 सदस्य वन पंचायत का गठन होगा, जिसको जड़ी-बूटी उत्पादन, वृक्षारोपण, जल संचयन, वनाग्नि की रोकथाम, एको पर्यटन में भाग लेने का अधिकार होगा।
2- पहली बार त्रिस्तरीय स्थानीय प्रशासन को भी वन प्रबंधन से जोड़ा गया।

लैंगिकता, प्रतिनिधित्व और नेतृत्व: सरमोली वन पंचायत

1931 में स्थापित वन पंचायतों की औपचारिक संरचना लैंगिक रूप से तटस्थ थी। किंतु, औपचारिक लैंगिक तटस्थता व्यवहार में समान भागीदारी सुनिश्चित नहीं करती। अलग-अलग वन पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी में काफ़ी अंतर रहा है। हालांकि, पिथौरागढ़ जिले की मुनस्यारी तहसील में स्थित सरमोली-जैंती वन पंचायत एक महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करती है, जहाँ महिलाओं की भूमिका औपचारिक समावेशन से आगे बढ़कर सक्रिय वन संरक्षण और प्रबंधन तक पहुँची।

सरमोली-जैंती की वन पंचायत 1949 में स्थापित हुई थी, अर्थात् उत्तराखंड राज्य के गठन से लगभग आधी शताब्दी पहले। इसके संस्थागत लैंगिक इतिहास में निर्णायक मोड़ 2003 में मलिका विर्दी के सरपंच चुने जाने के साथ आया। उनके नेतृत्व में सामान्य सभा ने दो महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किए: पहला, घरों की सभी महिला मुखियाओँ को समान अधिकार-धारी के रूप में मान्यता देना, चाहे औपचारिक पारिवारिक सदस्यता का हस्तांतरण पितृवंशीय व्यवस्था के अनुसार ही क्यों न होता हो; और दूसरा, गाँव में रहने वाली अविवाहित, विधवा तथा अन्य ऐसी महिलाओं को, जो निरंतर गाँव में निवास करती हैं, स्थायी निवासी होने के आधार पर अधिकार-धारी का दर्जा देना (Virdi, 2022)। उत्तराखंड पंचायती वन नियमावली के अंतर्गत वन अधिकार ऐतिहासिक रूप से पिता से पुत्र को हस्तांतरित होते रहे हैं और बेटियों को औपचारिक अधिकार से बाहर रखा गया, भले ही वे जीवन भर गाँव में रहती रही हों। यह प्रावधान निरस्त नहीं हुआ है, लेकिन स्थानीय प्रस्तावों के माध्यम से व्यवहार में इसे काफी हद तक महत्त्व नहीं दिया गया, जिससे पुराना नियम और नई स्थानीय प्रथा साथ-साथ अस्तित्व में हैं (Kisun Singh & Prasad, 2026)। इस प्रकार इस पंचायत ने अधिकार प्राप्ति का एक समानांतर माध्यम स्थापित किया, जिसने पुराने पितृवंशीय नियम को काग़ज़ों में बदला नहीं लेकिन व्यवहार में उसकी जगह ले ली है। यह क्रमिक और स्थानीय स्तर पर बातचीत के माध्यम से होने वाले सुधार का उदाहरण है, जो इन सामुदायिक संसाधनों के संस्थागत परिवर्तन की एक विशिष्ट प्रक्रिया रही है।

इस प्रक्रिया का एक पूर्व उदाहरण गढ़वाल की भरकी-उर्गम वन पंचायत में मिलता है, जिसका उल्लेख राकेश अग्रवाल (1999) ने किया है। यह राज्य में दर्ज शुरुआती "महिला-प्रधान" वन पंचायतों में से एक थी, जिसका गठन 1951 में उन परिस्थितियों में हुआ जो बाद में सरमोली में दिखाई दीं। वहाँ बौनी देवी ने भरकी, घाट, उर्गम, क्यूणी और सलाना की महिलाओं को एक निजी चूना और कोयला भट्ठा ठेकेदार के विरुद्ध संगठित किया, जिसकी गतिविधियाँ जंगल को क्षति पहुँचा रही थीं और गाँव के जलस्रोत को प्रदूषित कर रही थीं। इस आंदोलन के परिणामस्वरूप भट्ठा बंद हुआ और एक वन पंचायत का गठन हुआ, जिसकी प्रबंधन समिति आरंभ से ही मुख्यतः महिलाओं से बनी थी और वे बिना पारिश्रमिक के कार्य करती थीं।

दोनों ही मामलों में एक समान प्रवृत्ति दिखाई देती है: वन शासन के औपचारिक ढाँचे में महिलाओं का प्रवेश संसाधनों पर गंभीर ख़तरे के विरुद्ध सामूहिक लामबंदी की पहले से मौजूद गतिविधियों के बाद हुआ। भरकी-उर्गम में यह ख़तरा जल के प्रदूषण का था, जबकि सरमोली में अवैध शराब उत्पादन से उत्पन्न सामाजिक समस्याएँ थीं। सरमोली में बसंती रावत और मल्लिका विर्दी द्वारा 1994 में स्थानीय शराब भट्टियों के विरुद्ध चलाया गया अभियान वन पंचायत के नेतृत्व में उनकी बाद की भूमिका का प्रत्यक्ष आधार बना (Kisun Singh & Prasad, 2026)। दूसरे शब्दों में, इन हिमालयी सामुदायिक संसाधनों में संस्थागत सुधार शायद ही कभी ऊपर से थोपी गई नीति के रूप में आया; वह पहले सामूहिक संगठन और संघर्ष के माध्यम से अर्जित हुआ और बाद में पंचायत के प्रस्ताव रजिस्टर में संस्थाबद्ध किया गया।

उपलब्ध विवरण यह भी दिखाते हैं कि महिलाओं के केवल पद धारण करने से बढ़कर उनके नेतृत्व ने बेहतर शासन-परिणामों को जन्म दिया। अग्रवाल (1999) के अनुसार, भरकी-उर्गम की महिला-नेतृत्व वाली समिति ने उस समय की समान पंचायतों की तुलना में अधिक पारदर्शी कार्यप्रणाली विकसित की। वे यह भी बताते हैं कि जब उस गाँव की ग्राम प्रधान भी महिला बनीं, तो ग्राम पंचायत और वन पंचायत के बीच सहयोग में उल्लेखनीय सुधार हुआ और विवाद पहले की तुलना में कम टकराव के साथ सुलझने लगे। चूँकि सहभागिता पहले से ही व्यापक थी, इसलिए जंगल की निगरानी के लिए औपचारिक गश्त की अपेक्षाकृत कम आवश्यकता

पड़ी; यह संरक्षण भुगतान-आधारित व्यवस्था के बजाय नियमित उपस्थिति और सहभागिता से सुनिश्चित हुआ। स्वयं बौनी देवी ने इसे संरक्षण के लिए किसी "कृत्रिम साधन" की आवश्यकता न होने के रूप में व्यक्त किया था।

सरमोली का अनुभव भी इसी प्रकार की प्रवृत्ति दिखाता है। यहाँ महिला नेतृत्व ने शराब उत्पादन के नियमन, घरेलू हिंसा की रोकथाम और भोटिया हस्तशिल्प परंपराओं के संरक्षण जैसे सामाजिक प्रश्नों को वन प्रबंधन के साथ एक ही संस्थागत मंच पर लाया। इससे सामुदायिक कल्याण और पारिस्थितिक संरक्षण को अलग-अलग क्षेत्रों के बजाय एकीकृत शासन-पद्धति के रूप में देखा गया (Kisun Singh & Prasad, 2026)। इन उदाहरणों से संकेत मिलता है कि इस संदर्भ में महिला नेतृत्व का लाभ किसी एक सुधार में नहीं, बल्कि एक व्यापक संगठनात्मक शैली में निहित है—सघन अनौपचारिक भागीदारी, संस्थाओं के बीच निकट सहयोग और वन शासन को समुदाय के कल्याण से जोड़कर देखने की प्रवृत्ति। इस तरह के परिणाम मात्र औपचारिक समिति संरचना से उत्पन्न नहीं होते।

वन संरक्षण में महिलाओं की दैनिक भूमिका

औपचारिक नेतृत्व केवल इस पूरी प्रक्रिया का एक हिस्सा है। वंदना शिवा और मारिया मीज़ की रचनाओं से विशेष रूप से प्रभावित इकोफेमिनिस्ट विमर्श लंबे समय से यह तर्क देता रहा है कि कृषि और वन-निर्भर समुदायों में महिलाओं का प्राकृतिक संसाधनों से अधिक निकट और निरंतर भौतिक संबंध होता है, क्योंकि ईंधन, चारा और पानी एकत्र करने की पारंपरिक जिम्मेदारी मुख्यतः उन्हीं पर होती है। इस निकटता को किसी स्वाभाविक या जैविक संबंध के रूप में नहीं, बल्कि संरचनात्मक रूप से निर्मित संबंध के रूप में समझना चाहिए। यह निकटता निर्वाह-श्रम के लैंगिक विभाजन से उत्पन्न होती है, जो महिलाओं को पारिस्थितिक परिणामों में व्यावहारिक हित के साथ-साथ वन पारिस्थितिकी से संबंधित अनुभवजन्य ज्ञान भी प्रदान करता है, जिसे मुख्यतः उनके दैनिक व्यवहार के माध्यम से आगे बढ़ाया जाता है।

सरमोली इस तर्क का स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। दैनिक स्तर पर वन व्यवस्था को बनाए रखने वाला नियमित और अधिकांशतः अवैतनिक श्रम मुख्य रूप से जोहारी महिलाओं द्वारा किया जाता है, जो दो स्वयं सहायता समूहों—माटी संगठन और हिमाल प्रकृति—के माध्यम से संगठित हैं। सदस्य पय्या की पत्तियाँ मवेशियों के लिए एकत्र करती हैं और बाद में गोबर के साथ मिश्रित अवशेष को जैविक खाद में बदलती हैं; बुरांश (rhododendron) की पंखुड़ियाँ रस, रंग और चाय के लिए एकत्र करती हैं; वन पंचायत की आय कम होने के बाद से वेतन पर रखे चौकीदारों के स्थान पर बारी-बारी से स्वयं वन गश्त करती हैं; और प्रत्येक मानसून में होने वाले पौधारोपण तथा वनीकरण अभियानों में सक्रिय भूमिका निभाती हैं (Kisun Singh & Prasad, 2026; Virdi, 2022)। यही वह नियमित और धारणीय श्रम है जिसे इकोफेमिनिस्ट विमर्श संरक्षण को मज़बूत और सुनिश्चित करने की आधारभूत शर्त मानता है, हालांकि "वन प्रबंधन" के औपचारिक नियमों में इसका उल्लेख बहुत कम होता है। ऐसे विवरण सामान्यतः पद धारण करने और नियम बनाने को दर्ज करते हैं, जबकि संसाधन-आधार को दिन-प्रतिदिन मज़बूत करने की कहानी को अक्सर अनदेखा कर देते हैं।

इस भौतिक श्रम को मान्यताओं की एक ऐसी व्यवस्था भी मजबूत करती है, जो सामुदायिक स्वामित्व वाली अनौपचारिक पारिस्थितिक नियमन प्रणाली के रूप में काम करती है और पंचायत के लिखित नियमों के साथ-साथ चलती है। व्यवहार में यह कई बार लिखित नियमों से भी अधिक प्रभावी होती है। सरमोली में माना जाता है कि विशिष्ट वन क्षेत्रों में स्थानीय देवताओं का निवास है और अनधिकृत रूप से फूल तोड़ने या पेड़ काटने जैसे उल्लंघनों पर परी, चाल या काला बाण जैसे वन-आत्माओं का हस्तक्षेप हो सकता है; ऐसी स्थितियों का समाधान पारंपरिक पूजा-अनुष्ठानों के माध्यम से किया जाता है (Kisun Singh & Prasad, 2026)। महिलाएँ इन अनुष्ठानों में निकटता से जुड़ी हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि उनकी दैनिक गतिविधियाँ और धार्मिक व्यवहार गाँव में संरक्षण मानकों को बनाए रखने वाली मान्यताओं की संरचनाओं में कितनी गहराई से जुड़े हैं।

इसे एक स्थिर व्यवस्था के बजाय स्थानीय स्तर पर निरंतर तालमेल बैठाने वाली जीवंत परंपरा के रूप में समझना अधिक उचित है। 2003 से 2006 के बीच, गाँव के पवित्र जलस्रोत मेसर कुंड को नया जीवन देने की योजना बनाने और क्रियान्वयन करने का काम स्वयं सरमोली, जैंती और संकधुरा की महिलाओं ने किया। उन्होंने यह तय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई कि किन स्थलों को प्राथमिकता दी जाए और फिर से जीवन दिया जाए (Virdi, 2022)। समग्र रूप से, पवित्र परिदृश्य की यह व्यवस्था सरमोली में संरक्षण को बढ़ाने के एक ऐसे माध्यम के रूप में कार्य करती है जिसे मुख्यतः महिलाओं के धार्मिक और भौतिक श्रम से बनाए रखा जाता है और जो पंचायत के वैधानिक अधिकार का स्थान लेने के बजाय उसका पूरक बन जाती है।

महिला नेतृत्व और सतत विकास

2003 में नेतृत्व परिवर्तन के बाद कई ठोस संस्थागत और आर्थिक परिवर्तन हुए:

•घर की महिला मुखियाओं तथा अविवाहित और विधवा स्थायी निवासियों के लिए समान अधिकार धारण करने संबंधी प्रस्ताव, जैसा ऊपर चर्चा की गई है।
• मेसर कुंड का पुनर्स्थापन (2003–2006), जिसका नियोजन और अधिकांश कार्य सरमोली, जैंती और संकधुरा की महिलाओं ने किया।
• 2004 से होमस्टे व्यवस्था का औपचारिकीकरण, जिसमें बैंक खाते पुरुष मुखियाओं के माध्यम से संचालित करने के बजाय सीधे महिलाओं के नाम पर रखे गए।
• महिलाओं के स्वयं सहायता समूहों द्वारा स्वेच्छा से होमस्टे आय पर 2% उपकर देने की व्यवस्था, जिससे अब वन रक्षकों के वेतन और गश्ती कार्य के लिए धन मिलता है।

इन परिवर्तनों के साथ सरमोली के आर्थिक आधार में भी व्यापक परिवर्तन आया। 1962 के बाद भारत-तिब्बत व्यापार मार्ग बंद होने से मौसमी पशुपालन की जीवन-व्यवस्था में गिरावट आई और गाँव ने होमस्टे पर्यटन की ओर रुख किया, जिसे हिमालयन आर्क पहल के माध्यम से औपचारिक रूप दिया गया (Kisun Singh & Prasad, 2026; Patni, 2024)। यह परिवर्तन लैंगिक दृष्टि से वास्तविक रूप से आय के सब तक वितरित होने में सहायक रहा है। इसमें महिलाओं की आय को पुरुष-प्रधान घरेलू अर्थव्यवस्था की सहायक आय के रूप में नहीं, बल्कि स्वतंत्र और प्रत्यक्ष आय के स्रोत के रूप में स्थापित किया गया, जो साथ ही वन पंचायत द्वारा संरक्षण हेतु वित्तपोषण का आधार भी बनती है।

लगभग दो दशकों में इसके पारिस्थितिक परिणाम भी दर्ज किए गए हैं। मेसर कुंड अब पूरे वर्ष जल उपलब्ध कराता है और इससे बारह आश्रित गाँवों को पानी मिलता है। चराई, पेड़ों की टहनियाँ काटने और ईंधन-लकड़ी के संग्रह जैसी गतिविधियाँ, जो पहले खुले उपयोग की थीं, अब विनियमित हैं। क्षेत्र में वन्यजीवों और पक्षियों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गई है, जिसमें हिमालयी मोनाल, काकड़ (Barking Deer) और हिमालयी घुरड़ शामिल हैं (Virdi, 2022)। सरमोली को उत्तराखंड के पहले आधिकारिक होमस्टे गाँव के रूप में मान्यता मिली और 2023 में इसे पर्यटन मंत्रालय का "सर्वश्रेष्ठ पर्यटन गाँव" पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसके नेचर गाइड, जिन्हें प्रारंभ में गाँव के अपने ईको-टूरिज्म को सहयोग देने के लिए प्रशिक्षित किया गया था, अब राज्य के अन्य समुदायों के गाइडों को भी प्रशिक्षित करते हैं। इससे संकेत मिलता है कि यह मॉडल अन्य स्थानों पर भी अपनाए जाने के लिए पर्याप्त रूप से सक्षम सिद्ध हुआ है (Kisun Singh & Prasad, 2026; Patni, 2024)।

फिर भी इस परिवर्तन के कुछ पहलू अभी प्रक्रिया में हैं और उन्हें अंतिम उपलब्धि नहीं माना जा सकता। उदाहरण के लिए, औपचारिक सदस्यता अब भी पिता से पुत्र को हस्तांतरित होती है; 2003 के प्रस्ताव इस नियम के स्थान पर कोई नया नियम स्थापित करने के बजाय उसके साथ जोड़ी गई स्थानीय व्यवस्था के रूप में काम करते हैं (Kisun Singh & Prasad, 2026; Virdi, 2022)। उत्तराखंड पर मधु सरीन (2001) का शोध यहाँ एक महत्वपूर्ण सावधानी की ओर संकेत करता है: स्थानीय प्रस्तावों के माध्यम से प्राप्त उपलब्धियाँ तब अधिक टिकाऊ होती हैं जब उन्हें ऊपर से निरंतर संस्थागत और वित्तीय सहयोग मिलता रहे, न कि वे केवल

किसी एक प्रतिबद्ध नेतृत्व की निरंतरता पर निर्भर रहें। सरीन का निष्कर्ष वन पंचायतों की प्रशासनिक और वित्तीय क्षमता में दीर्घकालिक निवेश के व्यापक तर्क को मजबूत करता है। ऐसा सहयोग सरमोली-जैंती जैसी उन पंचायतों को, जिन्होंने मजबूत महिला नेतृत्व का प्रदर्शन किया है, स्वयं-उत्पन्न आय, मनरेगा-वित्तपोषित पौधारोपण कार्य तथा हिमाल प्रकृति जैसे संगठनों के साथ साझेदारी के माध्यम से अपने लाभों को सुदृढ़ और विस्तारित करने में सक्षम बनाएगा।

समीक्षा

सरमोली-जैंती गाँव का अनुभव, भरकी-उर्गम के पुराने उदाहरण के साथ देखने पर यह स्पष्ट करता है कि वन पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी केवल औपचारिक नेतृत्व पदों पर उनकी उपस्थिति तक सीमित नहीं है। महिलाओं की सामूहिक लामबंदी, वन संरक्षण में उनका दैनिक श्रम, निर्णय-निर्माण में उनकी भागीदारी तथा आजीविका के अवसरों पर उनका बढ़ता नियंत्रण, इन सबने मिलकर सामुदायिक वानिकी का ऐसा रूप विकसित किया है जिसमें पर्यावरण संरक्षण और स्थानीय विकास एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हैं। सरमोली में महिला नेतृत्व का महत्व केवल इस तथ्य में नहीं है कि महिलाओं ने सत्ता के पद सँभाले, बल्कि इस बात में भी है कि उन्होंने व्यापक भागीदारी को संभव बनाया तथा वन शासन को सामुदायिक कल्याण, आजीविका सुरक्षा और क्षेत्रीय पारिस्थितिक परंपराओं के संरक्षण से जोड़ा।

साथ ही, सदस्यता की पितृवंशीय संरचनाओं, संस्थागत सीमाओं और पर्यटन से उत्पन्न दबावों का बने रहना यह दर्शाता है कि महिलाओं की भागीदारी ने वन पंचायतों के भीतर मौजूद संरचनात्मक सीमाओं को पूरी तरह समाप्त नहीं किया है। इसलिए सरमोली सामुदायिक वानिकी में महिला नेतृत्व की संभावनाओं और सीमाओं, दोनों को सामने लाता है। सतत विकास केवल महिला नेतृत्व से उत्पन्न नहीं होता, बल्कि महिला एजेंसी, सामूहिक भागीदारी, संस्थागत सहयोग तथा बदलती सामाजिक, आर्थिक और पारिस्थितिक आवश्यकताओं के प्रति वन पंचायत की निरंतर प्रतिक्रिया-क्षमता के बीच अंतःक्रिया से विकसित होता है। इस अर्थ में यह उदाहरण उत्तराखंड में सतत विकास की व्यापक समझ में योगदान देता है, जहाँ महिलाओं की भागीदारी केवल सामुदायिक वानिकी का परिणाम नहीं है, बल्कि यह स्वयं सतत वन शासन के निर्माण और उसके निरंतर बने रहने का एक महत्वपूर्ण घटक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हेवुड, ए. (2021). *Political ideologies: An introduction* (7th ed.). Bloomsbury Academic.
2. मीस, एम., एवं शिवा, वी. (1993). *Ecofeminism*. Fernwood Publications.
3. ग्रिफिन, एस. (1978). *Woman and nature: The roaring inside her*. Counterpoint.
4. कफ़ल्टिया, हिमांशु. *उत्तराखंड में लोक प्रशासन*

5. Agrawal, R. (1999). Van Panchayats in Uttarakhand: A Case Study. Economic and Political Weekly, 34(39), 2779–2781.

6. Kisun Singh, N., & Prasad, D. V. (2026). Conservation of Sacred Landscape through Van Panchayats: A Study of Sarmoli Village in Pithoragarh District, Uttarakhand. The Eastern Anthropologist, 79(1), 15–34.

7. Mies, M., & Shiva, V. (1993). Ecofeminism. Zed Books.

8. Nagahama, K., Satya, L., & Saito, K. (2016). The Van Panchayat Movement and Struggle for Achieving Sustainable Management of the Forest: A Case Study of Uttarakhand in North India. SDRP Journal of Earth Sciences & Environmental Studies, 1(3), 70–79.

9. Patni, S. (2024). Declining Powers of Van Panchayats: A Case for Empowering Community Based Conservation Programs. International Journal of Social Science and Economic Research, 9(7), 2153–2162.

10. Sarin, M. (2001). Empowerment and Disempowerment of Forest Women in Uttarakhand, India. Gender, Technology and Development, 5(3), 341–364.

11. Virdi, M. (2022, May 20). Sarmoli-Jainti Van Panchayat: An Initiative in Community-Managed Forests. Food and Agriculture Organization of the United Nations (FAO), India. Retrieved from https://www.fao.org/india/resources/success-stories/sarmoli-jainti-van-panchayat--an-initiative-in-community-managed-forests.-a-case-study-by-malika-virdi/en

बालिका शिक्षा, स्वयं सहायता समूहों की सदस्यता एवं पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी: उत्तराखण्ड का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

शुभांकर शुक्ला
असिस्टेंट प्रोफेसर , उत्तराखंड मुक्त विश्व विद्यालय

शोध सार (Abstract)

प्रस्तुत शोध पत्र उत्तराखण्ड राज्य के विशेष सन्दर्भ में बालिका शिक्षा, स्वयं सहायता समूहों (Self-Help Groups) में महिलाओं की सदस्यता तथा पंचायती राज संस्थाओं (PRIs) में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी के मध्य अन्तर्सम्बन्धों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। महिला सशक्तीकरण की प्रक्रिया को समग्रता में समझने हेतु यह आवश्यक है कि शिक्षा, आर्थिक सहभागिता एवं राजनीतिक निर्णय-प्रक्रिया — इन तीनों आयामों को परस्पर सम्बद्ध रूप में देखा जाए। द्वितीयक आँकड़ों (जनगणना 2011, राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण, यूडाइस+, उत्तराखण्ड राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन तथा पंचायती राज मंत्रालय) के विश्लेषण से यह उभरकर आता है कि उत्तराखण्ड में साक्षरता के लिंग अंतराल में निरन्तर कमी, स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं का बड़े पैमाने पर संगठित होना, तथा पंचायतों में महिलाओं हेतु 50 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था — इन तीनों प्रवृत्तियों ने मिलकर राज्य में महिला सशक्तीकरण की एक अनुकूल पारिस्थितिकी का निर्माण किया है। तथापि, शिक्षा से आर्थिक भागीदारी और आर्थिक भागीदारी से राजनीतिक नेतृत्व तक की यात्रा में अनेक संरचनात्मक बाधाएँ अब भी विद्यमान हैं। अध्ययन के अंत में नीतिगत सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं।

कूटशब्द (Keywords): *बालिका शिक्षा, स्वयं सहायता समूह, पंचायती राज संस्थाएँ, महिला सशक्तीकरण, राजनीतिक भागीदारी, उत्तराखण्ड*

1. प्रस्तावना

भारत में महिला सशक्तीकरण एक बहुआयामी अवधारणा है, जिसमें शैक्षिक विकास, आर्थिक स्वावलंबन तथा राजनीतिक-सामाजिक भागीदारी — तीनों तत्व एक-दूसरे के पूरक माने जाते हैं। संविधान के 73वें संशोधन (1992) ने पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं हेतु न्यूनतम एक-तिहाई आरक्षण अनिवार्य किया, जिसे उत्तराखण्ड सहित इक्कीस से अधिक राज्यों ने अपने राज्य पंचायती राज अधिनियमों में संशोधन कर 50 प्रतिशत तक बढ़ा दिया है। इसके समानान्तर, दीनदयाल अन्त्योदय योजना–राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (DAY-NRLM) के अंतर्गत स्वयं सहायता समूहों (SHG) के माध्यम से करोड़ों ग्रामीण महिलाएँ वित्तीय एवं सामाजिक संगठन का हिस्सा बनी हैं। परन्तु इन दोनों प्रक्रियाओं की नींव में बालिका शिक्षा की स्थिति एक निर्णायक चर के रूप में कार्य करती है — क्योंकि शिक्षित महिला ही समूह-गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभा पाती है तथा आगे चलकर सार्वजनिक जीवन एवं स्थानीय शासन में नेतृत्व हेतु आत्मविश्वास एवं क्षमता अर्जित करती है।

उत्तराखण्ड — जो अपनी पर्वतीय भौगोलिक संरचना, उच्च पुरुष-प्रवास दर तथा परिणामस्वरूप कृषि एवं घरेलू उत्तरदायित्वों के महिलाकरण (feminisation) के लिए जाना जाता है — इस अध्ययन हेतु एक विशिष्ट व सार्थक प्रकरण (case) प्रस्तुत करता है। राज्य की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है और महिलाओं पर आर्थिक व सामाजिक उत्तरदायित्व का भार अपेक्षाकृत अधिक है। ऐसे में यह प्रश्न विशेष महत्त्व रखता है कि क्या शिक्षा और आर्थिक संगठन की यह प्रक्रिया राज्य में महिलाओं

की राजनीतिक भागीदारी को सुदृढ़ कर पा रही है।

उत्तराखण्ड के पर्वतीय जिलों — विशेषतः अल्मोड़ा, पौड़ी गढ़वाल, टिहरी गढ़वाल, पिथौरागढ़, बागेश्वर, चमोली एवं रुद्रप्रयाग — में पुरुषों के रोजगार की तलाश में मैदानी शहरों अथवा राज्य से बाहर पलायन करने की प्रवृत्ति दशकों से देखी जा रही है। राज्य के पलायन आयोग (Palayan Aayog), जिसका गठन वर्ष 2017 में हुआ, की रिपोर्टों के अनुसार वर्ष 2011 की जनगणना में राज्य के कुल 16,793 गाँवों में से 1,053 गाँव पूर्णतः निर्जन (uninhabited) पाए गए थे; वर्ष 2018 तक यह संख्या बढ़कर 1,768 तथा वर्ष 2022 तक लगभग 1,792 हो चुकी थी। इसी प्रकार वर्ष 2008 से 2018 के मध्य लगभग 1,18,981 व्यक्ति स्थायी रूप से पलायन कर चुके थे, यद्यपि वर्ष 2018 से 2022 के मध्य यह संख्या घटकर लगभग 28,531 रह गई — जो स्थानीय स्वरोजगार योजनाओं (जैसे मुख्यमंत्री स्वरोजगार योजना) के आंशिक प्रभाव को दर्शाती है। इस सतत पुरुष-पलायन का प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ है कि पर्वतीय ग्रामीण परिवारों में कृषि, पशुपालन, ईंधन-चारा संग्रहण तथा घरेलू प्रबन्धन का उत्तरदायित्व मुख्यतः महिलाओं पर आ गया है। इसे साहित्य में प्रायः 'कृषि का महिलाकरण' (feminisation of agriculture) की संज्ञा दी जाती है। ऐसी परिस्थिति में महिलाओं की शिक्षा, आर्थिक संगठन (जैसे SHG) तथा स्थानीय शासन में भागीदारी और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि यही तीन माध्यम उन्हें बढ़ते हुए पारिवारिक व सामुदायिक उत्तरदायित्व के अनुरूप संसाधन, कौशल तथा निर्णय-क्षमता प्रदान कर सकते हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो उत्तराखण्ड (पूर्ववर्ती उत्तर प्रदेश का पर्वतीय क्षेत्र) महिला जन-आंदोलनों की एक समृद्ध परम्परा का साक्षी रहा है — 1970 के दशक का चिपको आंदोलन, जिसमें ग्रामीण महिलाओं ने वनों की रक्षा हेतु अग्रणी भूमिका निभाई, इसका सुपरिचित उदाहरण है। यह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि इस तथ्य को रेखांकित करती है कि उत्तराखण्ड की महिलाओं में सामूहिक कार्यवाही (collective action) एवं सार्वजनिक सहभागिता की सांस्कृतिक क्षमता व परम्परा दीर्घकाल से विद्यमान रही है। वर्तमान अध्ययन इसी परम्परा के सन्दर्भ में यह परखने का प्रयास करता है कि क्या समकालीन संस्थागत ढाँचा — विशेषतः शिक्षा-व्यवस्था, स्वयं सहायता समूह तथा पंचायती राज — इस अन्तर्निहित सामाजिक पूँजी (social capital) का समुचित उपयोग कर पा रहा है, अथवा संरचनात्मक बाधाएँ इसे सीमित कर रही हैं।

2. समस्या का कथन एवं औचित्य

यद्यपि उत्तराखण्ड पंचायती राज संस्थाओं में महिला आरक्षण को लागू करने वाले अग्रणी राज्यों में गिना जाता है, फिर भी अध्ययन इस बात की पड़ताल करना आवश्यक समझता है कि क्या यह औपचारिक (de jure) प्रतिनिधित्व वास्तविक (de facto) निर्णय-क्षमता में परिवर्तित हो पा रहा है, अथवा नहीं। इसके अतिरिक्त बालिका शिक्षा में हुई प्रगति और स्वयं सहायता समूहों के विस्तार के बावजूद महिलाओं का उच्च शिक्षा, कुशल रोजगार एवं राजनीतिक नेतृत्व की ओर संक्रमण (transition) अपेक्षाकृत धीमा है। अतः तीनों चरों — शिक्षा, आर्थिक संगठन एवं राजनीतिक भागीदारी — के मध्य सह-सम्बन्ध का विश्लेषणात्मक अध्ययन नीति-निर्माताओं तथा शोधकर्ताओं दोनों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

इस समस्या का औचित्य तीन स्तरों पर स्थापित किया जा सकता है। प्रथम, शैक्षणिक स्तर पर — भारत में अधिकांश शोध या तो बालिका शिक्षा, या SHG, या पंचायती राज में महिला भागीदारी को पृथक-पृथक विषयों के रूप में अध्ययन करते हैं; तीनों को एक समेकित ढाँचे में जोड़कर देखने वाले राज्य-विशिष्ट अध्ययन अपेक्षाकृत सीमित हैं, विशेषकर उत्तराखण्ड जैसे पर्वतीय राज्य के सन्दर्भ में। द्वितीय, नीतिगत स्तर पर — उत्तराखण्ड सरकार तथा भारत सरकार दोनों बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ, समग्र शिक्षा अभियान, DAY-NRLM एवं महिला आरक्षण जैसी अनेक योजनाएँ एक साथ संचालित कर रही हैं, परन्तु इन योजनाओं के मध्य तालमेल

(convergence) तथा उनके संचयी प्रभाव का समेकित मूल्यांकन प्रायः नहीं किया जाता। तृतीय, सामाजिक स्तर पर — पर्वतीय राज्य में उच्च पुरुष-पलायन दर के कारण महिलाओं पर बढ़ते उत्तरदायित्व एवं भार को देखते हुए यह समझना आवश्यक है कि क्या यह 'भार' अवसर (जैसे नेतृत्व, निर्णय-क्षमता) में परिवर्तित हो पा रहा है, या केवल श्रम के अतिरिक्त बोझ के रूप में ही बना हुआ है।

3. शोध उद्देश्य

- उत्तराखण्ड में बालिका शिक्षा (साक्षरता, नामांकन, ड्रॉपआउट) की वर्तमान स्थिति का परीक्षण करना।
- राज्य में स्वयं सहायता समूहों में महिलाओं की सदस्यता एवं संस्थागत प्रगति का विश्लेषण करना।
- पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी (आरक्षण एवं वास्तविक प्रतिनिधित्व) का मूल्यांकन करना।
- राज्य में महिला कार्यबल भागीदारी एवं कृषि-क्षेत्र में उनकी भूमिका की पड़ताल करना, तथा इसे शिक्षा एवं राजनीतिक भागीदारी से जोड़कर देखना।
- शिक्षा, स्वयं सहायता समूह सदस्यता एवं राजनीतिक भागीदारी — इन चरों के मध्य सम्भावित अन्तर्सम्बन्ध की पहचान करना।
- अध्ययन के आधार पर नीतिगत सुझाव प्रस्तुत करना।

4. शोध परिकल्पनाएँ

- H1: बालिका शिक्षा के स्तर में सुधार का सकारात्मक सम्बन्ध महिलाओं की स्वयं सहायता समूहों में सदस्यता से है।
- H2: स्वयं सहायता समूहों में सक्रिय सदस्यता महिलाओं की पंचायती राज संस्थाओं में राजनीतिक भागीदारी हेतु अनुकूल आधार तैयार करती है।
- H3: औपचारिक आरक्षण (50 प्रतिशत) के बावजूद उत्तराखण्ड में महिलाओं की वास्तविक निर्णायक भूमिका शैक्षिक एवं आर्थिक असमानताओं के कारण सीमित है।
- H4: उच्च पुरुष-पलायन दर वाले पर्वतीय जिलों में महिलाओं का कार्यबल भागीदारी अनुपात अधिक होने के बावजूद, यह आर्थिक भार निर्णय-क्षमता अथवा राजनीतिक नेतृत्व में स्वतः परिवर्तित नहीं होता।

5. शोध पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन प्रकृति में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक (descriptive-analytical) है तथा पूर्णतः द्वितीयक आँकड़ों (secondary data) पर आधारित है। आँकड़े भारत की जनगणना 2011, राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-5, 2019-21), यूडाइस+ (UDISE+) एवं नीति आयोग के प्रतिवेदन, उत्तराखण्ड राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन (USRLM) के आधिकारिक पोर्टल, पंचायती राज मंत्रालय (MoPR) एवं संख्यिकी तथा कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय (MoSPI) के प्रकाशनों, उत्तराखण्ड पलायन आयोग के प्रतिवेदनों, तथा प्रतिष्ठित शोध/नीति संस्थानों (ORF, PRIA, NIRDPR) एवं शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित अध्ययनों से संकलित किए गए हैं। आँकड़ों को सारणी एवं आरेख (bar chart) के माध्यम से प्रस्तुत कर तुलनात्मक एवं व्याख्यात्मक विश्लेषण किया गया है। जहाँ राज्य-विशिष्ट अद्यतन आँकड़े उपलब्ध नहीं थे, वहाँ निकटतम उपलब्ध वर्ष के आँकड़ों अथवा राष्ट्रीय प्रवृत्तियों का उपयोग तुलनात्मक सन्दर्भ हेतु किया गया है, तथा इसे यथास्थान स्पष्ट रूप से इंगित किया गया है।

6. साहित्य समीक्षा तथा सैद्धांतिक ढाँचा

महिला सशक्तीकरण साहित्य में यह व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है कि शिक्षा महिलाओं की एजेंसी (agency) तथा निर्णय-क्षमता में वृद्धि करने वाला सबसे प्रभावी साधन है। अमर्त्य सेन का क्षमता उपागम (Capability Approach) यह प्रतिपादित करता है कि विकास का वास्तविक उद्देश्य केवल आय अथवा संसाधनों में वृद्धि नहीं, अपितु व्यक्ति की 'वास्तविक स्वतंत्रताओं' (real freedoms) — जैसे शिक्षित होने, स्वस्थ रहने तथा सार्वजनिक जीवन में भाग लेने की क्षमता — का विस्तार होना चाहिए। इसी क्रम में नाइला कबीर (Naila Kabeer) का सशक्तीकरण मॉडल तीन परस्पर सम्बद्ध आयामों — संसाधनों तक पहुँच (resources), एजेंसी (agency) तथा उपलब्धियों (achievements) — के माध्यम से महिला सशक्तीकरण को परिभाषित करता है, जो प्रस्तुत अध्ययन के शिक्षा–SHG–राजनीतिक भागीदारी वाले त्रि-आयामी ढाँचे से सीधा साम्य रखता है।

भारत में पंचायती राज संस्थाओं पर हुए अध्ययनों (जैसे PRIA, 2019 तथा Factly, 2019) से यह स्पष्ट होता है कि आरक्षण-आधारित प्रवेश ने बड़ी संख्या में महिलाओं को औपचारिक राजनीति में लाया है, परन्तु प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व (जैसे 'सरपंच पति' परिघटना), सीमित शैक्षिक पूँजी तथा पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना जैसी चुनौतियाँ अब भी बनी हुई हैं। ORF (2024) के अध्ययन में यह पाया गया है कि निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों (EWRs) की प्रभावशीलता उनके शैक्षिक स्तर, पारिवारिक समर्थन तथा क्षमता-निर्माण प्रशिक्षण की उपलब्धता पर काफी हद तक निर्भर करती है — जो इस अध्ययन की परिकल्पना H3 के अनुरूप है।

दूसरी ओर, स्वयं सहायता समूहों पर केंद्रित शोध यह दर्शाते हैं कि SHG सदस्यता से महिलाओं के वित्तीय कल्याण, आत्मविश्वास एवं सामूहिक सौदेबाजी क्षमता में सुधार होता है, जो अप्रत्यक्ष रूप से उनकी सार्वजनिक भागीदारी को भी प्रोत्साहित करता है। ग्रामीण विकास मंत्रालय के अनुसार दिसम्बर 2023 तक भारत में DAY-NRLM के अंतर्गत लगभग 10.04 करोड़ महिलाएँ 90.76 लाख से अधिक स्वयं सहायता समूहों से जुड़ चुकी थीं — यह विशाल संगठनात्मक आधार महिलाओं हेतु एक 'सामूहिक मंच' (collective platform) के रूप में कार्य करता है, जिसके माध्यम से वे न केवल वित्तीय साक्षरता अपितु सार्वजनिक बैठकों में बोलना, हिसाब-किताब रखना तथा सामूहिक निर्णय लेना भी सीखती हैं।

पर्वतीय-क्षेत्र विशिष्ट साहित्य (जैसे NIRDPR तथा विभिन्न शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित उत्तराखण्ड-केंद्रित अध्ययन) यह इंगित करते हैं कि पुरुष-पलायन के कारण उत्तराखण्ड की ग्रामीण महिलाएँ कृषि एवं पशुपालन गतिविधियों में असाधारण रूप से उच्च योगदान देती हैं — कुछ अध्ययनों के अनुसार यह योगदान 90 प्रतिशत तक पहुँच जाता है। यह 'श्रम का महिलाकरण' महिलाओं के समय-बजट पर भारी दबाव डालता है, जिसके कारण वे प्रायः शिक्षा जारी रखने, कौशल-विकास प्रशिक्षण लेने अथवा सार्वजनिक बैठकों में भाग लेने हेतु पर्याप्त समय नहीं निकाल पातीं। यह तथ्य इस अध्ययन के लिए एक महत्त्वपूर्ण विश्लेषणात्मक चुनौती प्रस्तुत करता है — अर्थात् उच्च आर्थिक भागीदारी अनिवार्यतः उच्च राजनीतिक भागीदारी में परिवर्तित नहीं होती, जब तक कि समय, गतिशीलता (mobility) तथा निर्णय-क्षमता से जुड़ी संरचनात्मक बाधाएँ दूर न हों।

7. उत्तराखण्ड का सामाजिक-आर्थिक प्रोफाइल: अध्ययन की पृष्ठभूमि

आँकड़ा विश्लेषण में प्रवेश करने से पूर्व उत्तराखण्ड के सामाजिक-आर्थिक ढाँचे की एक संक्षिप्त झलक प्रस्तुत करना उपयोगी होगा, क्योंकि यह पृष्ठभूमि शिक्षा, SHG तथा राजनीतिक भागीदारी सम्बन्धी आँकड़ों की व्याख्या हेतु आवश्यक सन्दर्भ प्रदान करती है। राज्य की जनसंख्या का लगभग 70 प्रतिशत भाग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है, तथा ग्रामीण जनसंख्या में महिलाओं का अनुपात लगभग 50.2 प्रतिशत है — जिसमें से लगभग 76.1 प्रतिशत महिलाएँ ग्रामीण परिवेश में रहती हैं। राज्य के पर्वतीय जिलों (जैसे अल्मोड़ा, पौड़ी

गढ़वाल) में जनसंख्या वृद्धि दर धीमी अथवा ऋणात्मक रही है — उदाहरणस्वरूप, 2001-2011 के मध्य अल्मोड़ा एवं पौड़ी जिलों में जनसंख्या में वास्तविक कमी दर्ज की गई, जबकि देहरादून, हरिद्वार, ऊधमसिंह नगर एवं नैनीताल जैसे मैदानी जिलों में 30 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि दर देखी गई। यह असमान जनसांख्यिकीय प्रवृत्ति मुख्यतः पर्वतीय क्षेत्रों से मैदानी क्षेत्रों अथवा राज्य से बाहर होने वाले पुरुष-पलायन का परिणाम है।

सामाजिक-आर्थिक संकेतक	मूल्य / स्थिति
ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात	लगभग 70%
ग्रामीण जनसंख्या में महिलाओं का अनुपात	लगभग 50.2%
कुल महिला जनसंख्या में ग्रामीण महिलाओं का अनुपात	लगभग 76.1%
राज्य में निर्जन (ghost) गाँवों की संख्या (लगभग, 2022)	लगभग 1,792
स्थायी पलायन (2008–2018, संचयी)	लगभग 1,18,981 व्यक्ति
स्थायी पलायन (2018–2022, संचयी)	लगभग 28,531 व्यक्ति
स्रोत: पलायन आयोग (Palayan Aayog), उत्तराखण्ड सरकार (2018, 2022 प्रतिवेदन — The Tribune, PMC/NCBI शोध लेख); जनगणना 2011; JIER शोध पत्रिका (2024) विश्लेषण।	

इस पृष्ठभूमि में यह उल्लेखनीय है कि जनसंख्या-वृद्धि तथा पलायन की यह असमानता शिक्षा, SHG एवं पंचायती राज सम्बन्धी आँकड़ों की व्याख्या को प्रभावित करती है — पर्वतीय जिलों में विद्यालयों तक पहुँच, अध्यापकों की उपलब्धता तथा अवसंरचना की चुनौतियाँ मैदानी जिलों की तुलना में अधिक हैं, जबकि इन्हीं जिलों में महिलाओं पर आर्थिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्व का दबाव भी अधिक है। अतः राज्य-स्तरीय औसत आँकड़े, यद्यपि समग्र प्रवृत्ति को दर्शाते हैं, पर्वतीय बनाम मैदानी क्षेत्रों के मध्य विद्यमान आंतरिक विषमता को पूर्णतः प्रतिबिंबित नहीं कर पाते — यह इस अध्ययन की एक उल्लेखनीय सीमा भी है, जिसकी चर्चा अनुभाग 12 में की गई है।

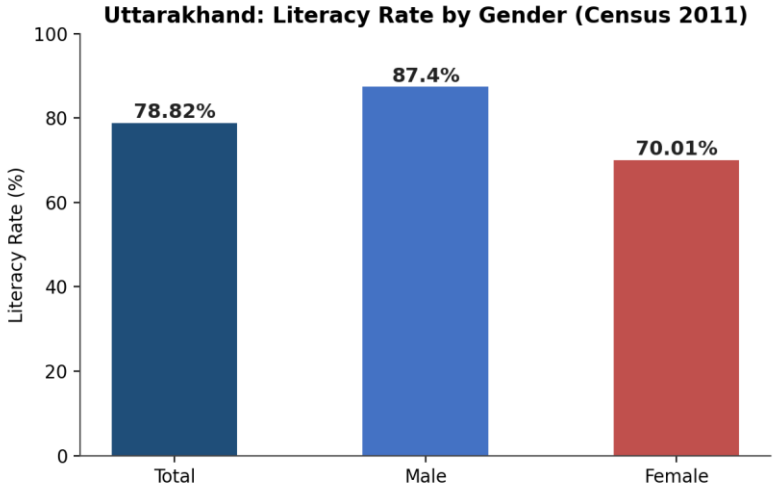
8. आँकड़ा विश्लेषण एवं विवेचन

8.1 उत्तराखण्ड में बालिका शिक्षा की स्थिति

जनगणना 2011 के अनुसार उत्तराखण्ड की समग्र साक्षरता दर 78.82 प्रतिशत है, जिसमें पुरुष साक्षरता 87.40 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता 70.01 प्रतिशत दर्ज की गई — अर्थात् 17.39 प्रतिशत अंकों का लिंग अंतराल (gender gap) विद्यमान है। ग्रामीण क्षेत्रों की साक्षरता दर (76.31%) शहरी क्षेत्रों (84.45%) की तुलना में अपेक्षाकृत कम है, जो पर्वतीय-ग्रामीण महिलाओं के समक्ष शिक्षा तक पहुँच की चुनौती को रेखांकित करता है।

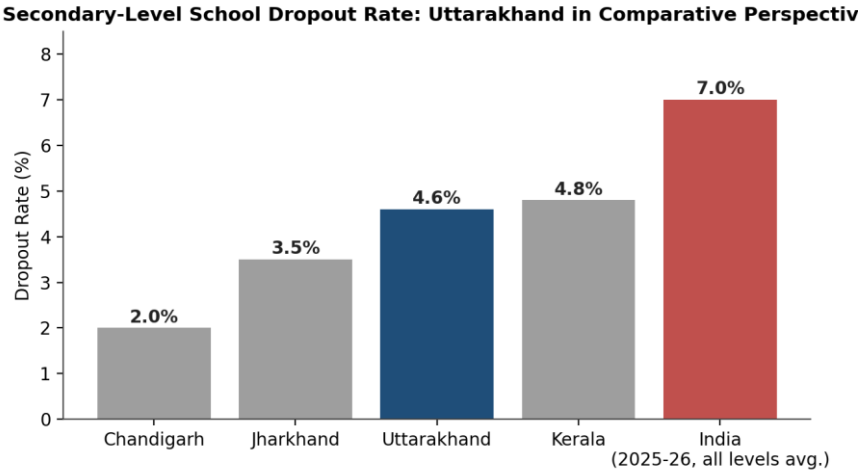
वर्ग / संकेतक	मूल्य
कुल साक्षरता दर	78.82%
पुरुष साक्षरता दर	87.40%
महिला साक्षरता दर	70.01%
लिंग अंतराल (पुरुष–महिला)	17.39 प्रतिशत अंक

वर्ग / संकेतक	मूल्य
ग्रामीण साक्षरता दर (कुल)	76.31%
शहरी साक्षरता दर (कुल)	84.45%
स्रोत: भारत की जनगणना 2011, रजिस्ट्रार जनरल एवं जनगणना आयुक्त कार्यालय, भारत सरकार (census2011.co.in / Wikipedia — Education in Uttarakhand).	



चित्र 1: उत्तराखण्ड में लिंग आधार पर साक्षरता दर (जनगणना 2011)

शैक्षिक प्रगति के अधिक हालिया संकेतकों को देखें तो, नीति आयोग एवं यूडाइस+ 2024-25 के अनुसार उत्तराखण्ड में माध्यमिक स्तर पर विद्यालय ड्रॉपआउट दर 4.6 प्रतिशत दर्ज की गई है, जो राष्ट्रीय औसत (यूडाइस+ 2025-26 के अनुसार सभी स्तरों पर 7.0 प्रतिशत) से बेहतर किन्तु चंडीगढ़ (2.0%) एवं झारखण्ड (3.5%) जैसे शीर्ष-प्रदर्शक राज्यों/UT से पीछे है। राष्ट्रीय स्तर पर बालिकाओं का सकल नामांकन अनुपात (GER) माध्यमिक स्तर पर 2014-15 के 75.5 प्रतिशत से बढ़कर 2025-26 में 83.4 प्रतिशत हो गया है तथा लिंग समानता सूचकांक (GPI) माध्यमिक स्तर पर सुधरकर लगभग 1.0 के निकट पहुँच गया है — यह प्रवृत्ति उत्तराखण्ड जैसे राज्यों में भी बालिका शिक्षा हेतु अनुकूल राष्ट्रीय वातावरण का संकेत देती है, यद्यपि राज्य-विशिष्ट GER आँकड़े हेतु विस्तृत UDISE+ राज्य प्रतिवेदन देखा जाना चाहिए।



चित्र 2: माध्यमिक स्तर ड्रॉपआउट दर — उत्तराखण्ड बनाम चयनित राज्य एवं राष्ट्रीय औसत (2024-25/2025-26)

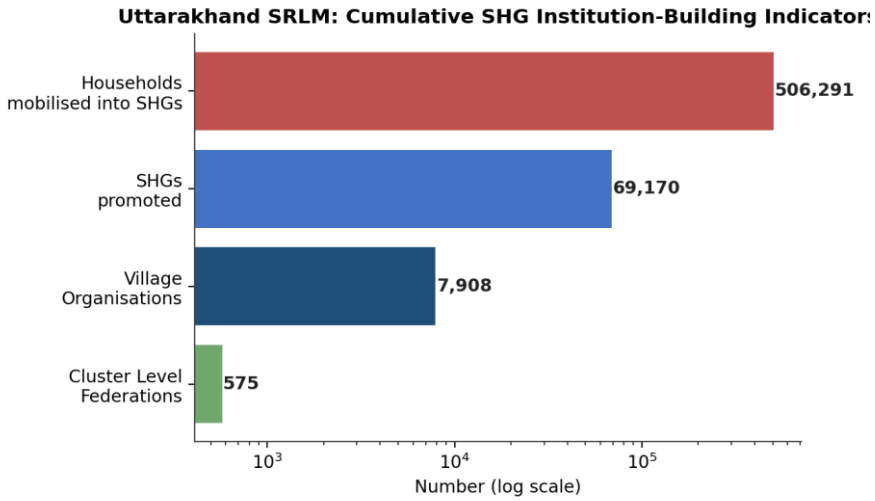
स्रोत: नीति आयोग / यूडाइस+ प्रतिवेदन 2024-25 एवं 2025-26, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार (Business Standard, 14 अगस्त 2026; The Hindu/UPSC सारांश, 8 जुलाई 2026)।

इन आँकड़ों की समग्र व्याख्या करें तो उत्तराखण्ड में बालिका शिक्षा की स्थिति एक 'मिश्रित तस्वीर' प्रस्तुत करती है — एक ओर राज्य की समग्र साक्षरता दर राष्ट्रीय औसत से बेहतर मानी जाती है तथा माध्यमिक स्तर पर ड्रॉपआउट दर भी नियंत्रण में है, परन्तु दूसरी ओर लिंग आधारित अंतराल तथा ग्रामीण-शहरी विषमता अब भी बनी हुई है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-5, 2019-21) के निष्कर्ष भी इस प्रवृत्ति की पुष्टि करते हैं — सर्वेक्षण के अनुसार उत्तराखण्ड में 10 अथवा अधिक वर्षों तक विद्यालय जाने वाली महिलाओं का अनुपात पुरुषों की तुलना में उल्लेखनीय रूप से कम है, विशेषकर 20-24 आयु वर्ग की उन महिलाओं में जिनका विवाह 18 वर्ष की आयु से पूर्व हो गया — यह दर्शाता है कि बाल-विवाह जैसी सामाजिक प्रथाएँ अब भी बालिका शिक्षा की निरंतरता में एक अवरोधक तत्व के रूप में कार्य करती हैं। राज्य के कुछ पर्वतीय एवं मैदानी सीमावर्ती क्षेत्रों में विशेष रूप से यह दिखाई देता है।

8.2 स्वयं सहायता समूहों में महिलाओं की सदस्यता

उत्तराखण्ड राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन (USRLM), दीनदयाल अन्त्योदय योजना–राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (DAY-NRLM) के अंतर्गत राज्य में महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों में संगठित करने का कार्य करता है। मिशन के आधिकारिक पोर्टल पर उपलब्ध नवीनतम संचयी आँकड़ों के अनुसार राज्य में अब तक 5,06,291 परिवारों को स्वयं सहायता समूहों में समाहित किया जा चुका है तथा कुल 69,170 स्वयं सहायता समूह गठित किए गए हैं। इन समूहों को ग्राम संगठन (Village Organisation) तथा क्लस्टर स्तरीय संघ (Cluster Level Federation) के रूप में उच्चतर संस्थागत ढाँचे में संगठित किया गया है — राज्य में कुल 7,908 ग्राम संगठन तथा 575 क्लस्टर स्तरीय संघ कार्यरत हैं। वित्तीय समावेशन की दृष्टि से 57,975 समूहों को परिक्रामी निधि (Revolving Fund) के रूप में ₹86.17 करोड़ तथा 46,896 समूहों को सामुदायिक निवेश निधि (Community Investment Fund) के रूप में ₹326.71 करोड़ की राशि वितरित की जा चुकी है।

संकेतक (संचयी)	मूल्य
SHG में समाहित परिवारों की संख्या	5,06,291
गठित स्वयं सहायता समूहों (SHG) की संख्या	69,170
ग्राम संगठन (Village Organisations)	7,908
क्लस्टर स्तरीय संघ (Cluster Level Federations)	575
परिक्रामी निधि प्राप्त SHG की संख्या	57,975
परिक्रामी निधि वितरण राशि	₹86.17 करोड़ (8,617.00 लाख)
सामुदायिक निवेश निधि (CIF) प्राप्त SHG	46,896
CIF वितरण राशि	₹326.71 करोड़ (32,671.00 लाख)
स्रोत: उत्तराखण्ड राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन (USRLM), ग्रामीण विकास विभाग, उत्तराखण्ड सरकार — आधिकारिक पोर्टल (usrlm.uk.gov.in, 'Key Statistics — Our Impact', अद्यतन: 23 जुलाई 2026)	



चित्र 3: उत्तराखण्ड में स्वयं सहायता समूह संस्थागत ढाँचे के संचयी संकेतक (log पैमाना)

राष्ट्रीय परिदृश्य में देखें तो दिसम्बर 2023 में जारी DAY-NRLM आँकड़ों के अनुसार भारत में लगभग 90 लाख स्वयं सहायता समूह तथा लगभग 10 करोड़ महिला सदस्य कार्यरत हैं — अर्थात् प्रत्येक आठवीं भारतीय महिला किसी न किसी SHG की सदस्य है। इस राष्ट्रीय प्रवृत्ति के अनुरूप उत्तराखण्ड में भी SHG आन्दोलन का सतत विस्तार हुआ है, जो राज्य की महिलाओं के वित्तीय स्वावलंबन, कौशल-विकास तथा सामूहिक निर्णय-क्षमता को सशक्त बनाने का महत्त्वपूर्ण माध्यम बन गया है।

गुणात्मक दृष्टि से देखें तो उत्तराखण्ड में SHG की भूमिका केवल वित्तीय समावेशन तक सीमित नहीं है। पर्वतीय क्षेत्रों में अनेक SHG समूह स्थानीय कृषि-उत्पादों (जैसे बुराँश का शरबत, माल्टा, बुरांश एवं पहाड़ी दालों से निर्मित उत्पाद), हस्तशिल्प, ऊन-बुनाई तथा जैविक खेती जैसी गतिविधियों से जुड़कर 'लखपति दीदी' जैसी योजनाओं के अंतर्गत आय-सृजन कर रहे हैं। इसके साथ ही अनेक ग्राम संगठन (VOs) एवं क्लस्टर स्तरीय संघ (CLFs) स्वास्थ्य, पोषण, स्वच्छता तथा बालिका शिक्षा से जुड़े सामाजिक अभियानों में भी सक्रिय भूमिका निभाते हैं — जिससे यह स्पष्ट होता है कि SHG संरचना आर्थिक सशक्तीकरण के साथ-साथ सामाजिक जागरूकता तथा सामूहिक कार्यवाही का भी एक सशक्त मंच बन चुकी है, जो दीर्घकाल में महिलाओं की सार्वजनिक भागीदारी हेतु आधारभूमि

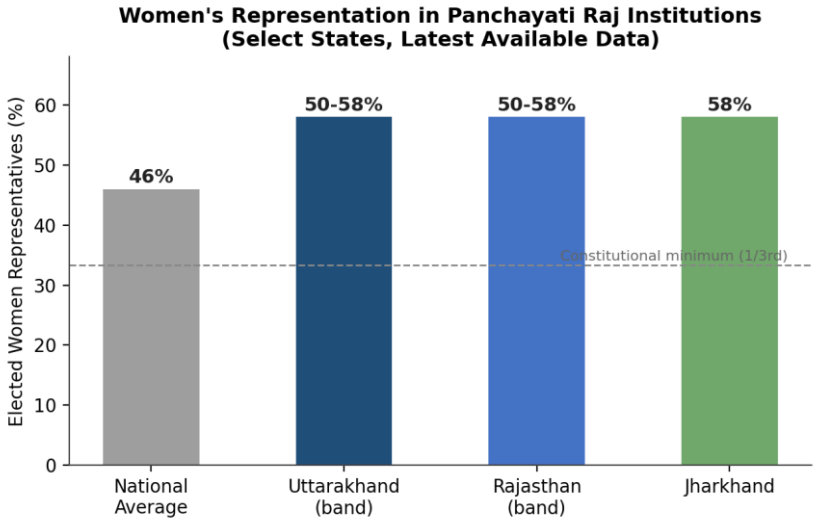
तैयार करता है।

8.3 पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 243घ (243D) के अन्तर्गत पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं हेतु न्यूनतम एक-तिहाई (33.3%) आरक्षण अनिवार्य है। उत्तराखण्ड उन 21 राज्यों/केन्द्रशासित प्रदेशों में सम्मिलित है, जिन्होंने अपने राज्य पंचायती राज अधिनियम में संशोधन कर यह आरक्षण 50 प्रतिशत तक बढ़ाया है। उपलब्ध अध्ययनों (PRIA, 2019; Factly, 2019) के अनुसार वास्तविक निर्वाचित महिला प्रतिनिधित्व की दृष्टि से उत्तराखण्ड झारखण्ड (58%) एवं राजस्थान के साथ देश के अग्रणी राज्यों में गिना जाता है, जहाँ महिलाओं का वास्तविक प्रतिनिधित्व निर्धारित आरक्षण सीमा से भी अधिक अर्थात 50 से 58 प्रतिशत के दायरे में पाया गया है — जबकि मार्च 2025 तक राष्ट्रीय स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं में निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों (लगभग 14.5 लाख) का औसत हिस्सा लगभग 46 प्रतिशत है। वर्ष 2019 में सम्पन्न उत्तराखण्ड पंचायत आम चुनाव में मतदान प्रतिशत 69.59 प्रतिशत दर्ज किया गया, जो ग्रामीण मतदाताओं विशेषतः महिलाओं की स्थानीय शासन-प्रक्रिया में सक्रिय रुचि को दर्शाता है।

श्रेणी	प्रतिशत / मान
संवैधानिक न्यूनतम आरक्षण (अनुच्छेद 243घ)	33.3%
उत्तराखण्ड में राज्य अधिनियम द्वारा निर्धारित आरक्षण	50%
उत्तराखण्ड में वास्तविक निर्वाचित महिला प्रतिनिधित्व (अनुमानित परास)	50%–58%
झारखण्ड (सर्वाधिक — तुलनात्मक संदर्भ हेतु)	58%
राष्ट्रीय औसत निर्वाचित महिला प्रतिनिधित्व (मार्च 2025)	लगभग 46%
2019 उत्तराखण्ड पंचायत आम चुनाव — मतदान प्रतिशत	69.59%

स्रोत: पंचायती राज मंत्रालय (MoPR) / PIB प्रेस विज्ञप्ति; PRIA, 'Women's Political Leadership in Panchayati Raj' (2019); Factly.in विश्लेषण (2019); ORF शोध लेख (2024); Wikipedia — 2019 Uttarakhand Local Elections।



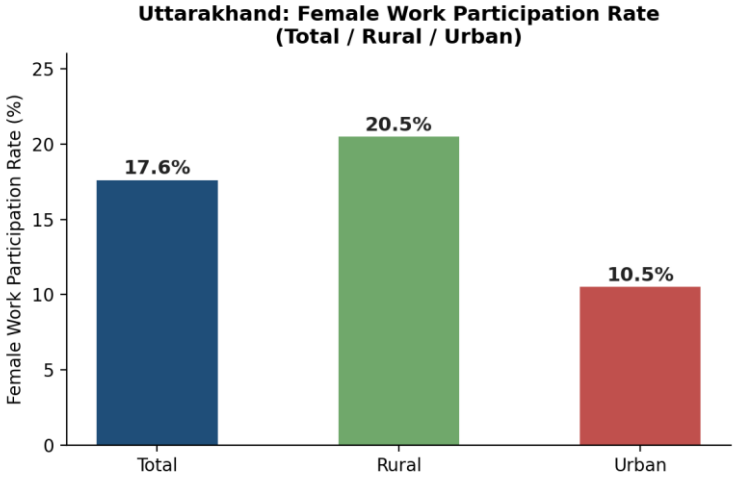
चित्र 4: पंचायती राज संस्थाओं में महिला प्रतिनिधित्व — उत्तराखण्ड की तुलनात्मक स्थिति

यह भी उल्लेखनीय है कि उत्तराखण्ड में निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों (EWRs) हेतु राज्य सरकार तथा गैर-सरकारी संगठनों द्वारा समय-समय पर क्षमता-निर्माण प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाते रहे हैं, जिनमें पंचायत की वित्तीय प्रक्रिया, ग्राम सभा संचालन तथा योजना-निर्माण जैसे विषय सम्मिलित होते हैं। तथापि, फील्ड-आधारित अध्ययनों (जैसे PRIA, 2019 एवं Outlook India, 2024) में यह भी दर्ज किया गया है कि अनेक निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों को प्रशासनिक भाषा, दस्तावेज़ीकरण एवं तकनीकी प्रक्रियाओं में कठिनाई का सामना करना पड़ता है, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ महिला साक्षरता दर अपेक्षाकृत कम है — जो पुनः यह रेखांकित करता है कि बालिका शिक्षा की गुणवत्ता एवं निरंतरता, पंचायती राज में महिलाओं की प्रभावी भागीदारी की एक अनिवार्य पूर्वशर्त है।

8.4 महिला कार्यबल भागीदारी एवं कृषि का महिलाकरण

उत्तराखण्ड में महिलाओं की आर्थिक भागीदारी को समझने के लिए कार्यबल भागीदारी दर (Work Participation Rate — WPR) एक महत्त्वपूर्ण संकेतक है। उपलब्ध अध्ययनों के अनुसार राज्य में महिला कार्यबल भागीदारी दर समग्र रूप से लगभग 17.6 प्रतिशत है, जिसमें ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी दर (20.5%) शहरी महिलाओं (10.5%) की तुलना में लगभग दोगुनी है। यह प्रवृत्ति राष्ट्रीय औसत से भी भिन्न है तथा इसका मुख्य कारण उच्च पुरुष-पलायन दर के चलते ग्रामीण महिलाओं का कृषि तथा पशुपालन गतिविधियों में अनिवार्य रूप से संलग्न होना है। कुछ फील्ड-अध्ययनों के अनुसार पर्वतीय ग्रामीण उत्तराखण्ड में महिलाएँ कृषि एवं पशुपालन सम्बन्धी कुल श्रम का लगभग 90 प्रतिशत भाग वहन करती हैं — जिसमें बुवाई-कटाई, चारा-ईंधन संग्रहण, पशुपालन तथा जल-प्रबन्धन जैसी गतिविधियाँ सम्मिलित हैं।

संकेतक	मूल्य
महिला कार्यबल भागीदारी दर (कुल)	17.6%
महिला कार्यबल भागीदारी दर (ग्रामीण)	20.5%
महिला कार्यबल भागीदारी दर (शहरी)	10.5%
कृषि एवं पशुपालन कार्यों में महिलाओं का अनुमानित योगदान (ग्रामीण)	लगभग 90%
स्रोत: 'Assessment of Women Labour Participation in Urban and Rural Areas of Uttarakhand', Shodh Samagam शोध पत्रिका; NIRDPR शोध प्रतिवेदन।	



चित्र 5: उत्तराखण्ड में महिला कार्यबल भागीदारी दर — कुल, ग्रामीण एवं शहरी तुलना

यह आँकड़े एक विरोधाभासी किन्तु महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति को उजागर करते हैं — जिन क्षेत्रों में महिलाओं की आर्थिक भागीदारी (श्रम के रूप में) सबसे अधिक है, वहीं शिक्षा एवं औपचारिक रोजगार तक उनकी पहुँच अपेक्षाकृत सबसे कम है। शोध साहित्य में इसे 'श्रम-प्रधान किन्तु अवसर-विहीन सशक्तीकरण' (labour-intensive but opportunity-poor empowerment) की संज्ञा दी जा सकती है — अर्थात् महिलाएँ आर्थिक गतिविधि में भारी योगदान तो देती हैं, परन्तु यह योगदान प्रायः अवैतनिक पारिवारिक श्रम (unpaid family labour) के रूप में होता है, जिसे न तो औपचारिक रूप से मान्यता मिलती है और न ही यह उन्हें स्वतंत्र वित्तीय निर्णय-क्षमता प्रदान करता है। यही कारण है कि स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिलाओं की आय-सृजक गतिविधियों को औपचारिक व मान्यता-प्राप्त स्वरूप देना, तथा इस श्रम-योगदान को राजनीतिक एवं सामाजिक स्वीकार्यता में परिवर्तित करने हेतु सचेत नीतिगत हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता है।

9. चारों चरों के मध्य अन्तर्सम्बन्ध का विश्लेषण

उपर्युक्त आँकड़ों के समेकित विश्लेषण से एक स्पष्ट प्रवृत्ति उभरती है — शिक्षा, आर्थिक संगठन तथा राजनीतिक भागीदारी एक क्रमिक श्रृंखला (continuum) के रूप में कार्य करते प्रतीत होते हैं। साक्षर एवं शिक्षित महिलाएँ स्वयं सहायता समूहों में सक्रिय भूमिका (जैसे लेखा-जोखा, बैठक संचालन, ऋण-प्रबन्धन) निभाने में अधिक सक्षम पाई जाती हैं; समूह-आधारित संगठन महिलाओं में नेतृत्व-कौशल, सार्वजनिक वक्तृत्व-क्षमता एवं सामाजिक नेटवर्क का विकास करता है, जो आगे चलकर पंचायत चुनावों में उम्मीदवारी हेतु आत्मविश्वास व सामाजिक स्वीकार्यता प्रदान करता है। उत्तराखण्ड में यह भी उल्लेखनीय है कि अनेक निर्वाचित महिला प्रतिनिधि (Elected Women Representatives — EWRs) पूर्व में स्वयं सहायता समूहों की सदस्य रह चुकी हैं, तथा EWR महासंघों (federations) ने राज्य में महिला नेतृत्व को सशक्त बनाने हेतु प्रभावी मंच के रूप में कार्य किया है।

इस श्रृंखला में चौथा चर — महिला कार्यबल भागीदारी — एक द्वि-मुखी भूमिका निभाता प्रतीत होता है। एक ओर, उच्च पुरुष-पलायन के कारण बढ़ी हुई आर्थिक ज़िम्मेदारी महिलाओं को घर की सीमाओं से बाहर निकालकर सार्वजनिक क्षेत्र (जैसे बाज़ार, बैंक, पंचायत कार्यालय) से जोड़ती है, जो एक प्रकार से 'अनायास सशक्तीकरण' (empowerment by default) उत्पन्न करती है। दूसरी ओर, यही आर्थिक भार महिलाओं के समय एवं ऊर्जा को इस कदर अवशोषित कर लेता है कि उनके पास शिक्षा-निरंतरता, कौशल-प्रशिक्षण अथवा सार्वजनिक बैठकों में भाग लेने हेतु अवकाश नहीं बचता। अतः यह कहा जा सकता है कि उच्च कार्यबल भागीदारी अपने आप में सशक्तीकरण की गारंटी नहीं है, अपितु यह इस बात पर निर्भर करता है कि क्या यह भागीदारी शिक्षा एवं संगठनात्मक समर्थन (जैसे

SHG) से जुड़कर 'सशक्त श्रम' (empowered labour) में परिवर्तित हो पा रही है, अथवा केवल 'अतिरिक्त बोझ' (added burden) बनकर रह जाती है।

तथापि यह श्रृंखला स्वतः-सम्पादित नहीं है। लिंग आधारित साक्षरता अंतराल (17.39 प्रतिशत अंक), उच्च शिक्षा एवं कौशल-विकास तक सीमित पहुँच, तथा पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना (जिसके अंतर्गत निर्वाचित महिला प्रतिनिधि प्रायः पारिवारिक पुरुष सदस्यों की 'प्रॉक्सी' के रूप में कार्य करने हेतु सामाजिक दबाव का सामना करती हैं) — जैसी बाधाएँ इस अन्तर्सम्बन्ध को कमजोर करती हैं। अतः शोध परिकल्पना H3 एवं H4 की पुष्टि होती प्रतीत होती है — औपचारिक आरक्षण एवं उच्च आर्थिक भागीदारी के बावजूद महिलाओं की वास्तविक निर्णायक भूमिका शैक्षिक एवं संरचनात्मक असमानताओं द्वारा सीमित रहती है।

संक्षेप में, चारों चरों के मध्य सम्बन्ध को एक 'सोपान मॉडल' (staircase model) के रूप में समझा जा सकता है, जिसमें प्रत्येक सोपान (शिक्षा ⟶ आर्थिक संगठन/श्रम ⟶ सामाजिक आत्मविश्वास ⟶ राजनीतिक भागीदारी) अगले सोपान की सम्भावना तो बढ़ाता है, परन्तु स्वतः उसकी गारंटी नहीं देता। प्रत्येक सोपान पर संस्थागत सहयोग (जैसे विद्यालय अवसंरचना, SHG प्रशिक्षण, EWR क्षमता-निर्माण) की अनुपस्थिति में महिलाएँ उस सोपान पर ही रुक सकती हैं, भले ही उनमें आगे बढ़ने की क्षमता एवं इच्छा विद्यमान हो। यह मॉडल नीति-निर्माताओं के लिए यह स्पष्ट करता है कि महिला सशक्तीकरण हेतु किसी एक क्षेत्र में हस्तक्षेप पर्याप्त नहीं है — शिक्षा, आर्थिक संगठन एवं राजनीतिक भागीदारी, तीनों क्षेत्रों में समवेत तथा समन्वित हस्तक्षेप आवश्यक है।

10. प्रमुख निष्कर्ष

- उत्तराखण्ड में महिला साक्षरता (70.01%) पुरुष साक्षरता (87.40%) से लगभग 17 प्रतिशत अंक पीछे है, यद्यपि हाल के वर्षों में विद्यालय ड्रॉपआउट दर तथा लिंग समानता सूचकांक में राष्ट्रीय स्तर पर सुधार की प्रवृत्ति देखी गई है।
- राज्य में स्वयं सहायता समूह आन्दोलन का विस्तार सुदृढ़ रहा है — 5 लाख से अधिक परिवार तथा लगभग 69 हज़ार समूह अब तक संगठित हो चुके हैं, जो ग्रामीण महिलाओं के वित्तीय समावेशन का सशक्त माध्यम बन गया है।
- पंचायती राज संस्थाओं में उत्तराखण्ड का महिला आरक्षण (50%) एवं वास्तविक प्रतिनिधित्व दोनों देश के सर्वाधिक प्रगतिशील राज्यों में सम्मिलित हैं।
- राज्य में महिला कार्यबल भागीदारी दर (17.6%), विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों में (20.5%), उच्च पुरुष-पलायन दर तथा 1,700 से अधिक 'निर्जन गाँवों' की उपस्थिति से प्रत्यक्षतः सम्बद्ध है, जिसके कारण कृषि एवं पशुपालन कार्यों का लगभग 90 प्रतिशत भार महिलाओं पर आ गया है।
- शिक्षा, SHG सदस्यता, कार्यबल भागीदारी एवं राजनीतिक भागीदारी के मध्य सकारात्मक सह-सम्बन्ध की प्रवृत्ति दिखाई देती है, परन्तु यह सम्बन्ध रैखिक (linear) एवं स्वतः-सम्पादित नहीं है — सामाजिक-सांस्कृतिक कारक इसमें मध्यस्थता करते हैं।

11. नीतिगत सुझाव

- पर्वतीय एवं दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में बालिका शिक्षा हेतु माध्यमिक-स्तरीय अवसंरचना (छात्रावास, परिवहन, सुरक्षा) को सुदृढ़ किया जाए, ताकि लिंग आधारित साक्षरता अंतराल को और कम किया जा सके।
- स्वयं सहायता समूहों में नेतृत्व-प्रशिक्षण, वित्तीय साक्षरता तथा सार्वजनिक वक्तृत्व-कौशल जैसे मॉड्यूल सम्मिलित किए जाएँ, ताकि SHG सदस्यता राजनीतिक भागीदारी हेतु एक प्रभावी 'प्रशिक्षण मंच' बन सके।

- निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों (EWR) के लिए क्षमता-निर्माण कार्यक्रम तथा राज्यव्यापी EWR महासंघों को और सुदृढ़ किया जाए, ताकि 'प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व' की प्रवृत्ति को कम किया जा सके।
- महिलाओं द्वारा किए जा रहे अवैतनिक कृषि एवं पारिवारिक श्रम को औपचारिक मान्यता तथा आर्थिक मूल्य प्रदान करने हेतु भूमि-अभिलेखों में सह-स्वामित्व (joint land titles), फसल-बीमा एवं किसान-योजनाओं में महिला किसानों के स्वतंत्र पंजीकरण को प्रोत्साहित किया जाए।
- पलायन-प्रभावित पर्वतीय गाँवों में स्थानीय स्वरोजगार, कृषि-प्रसंस्करण उद्योग तथा होमस्टे-पर्यटन जैसी SHG-संचालित आर्थिक गतिविधियों को प्राथमिकता के आधार पर बढ़ावा दिया जाए, ताकि महिलाओं का श्रम-योगदान आय एवं निर्णय-क्षमता में परिवर्तित हो सके।
- शिक्षा, SHG तथा पंचायती राज विभागों के मध्य अभिसरण (convergence) सुनिश्चित कर एक एकीकृत महिला सशक्तीकरण रणनीति तैयार की जाए।
- राज्य-विशिष्ट, जिलावार तथा लिंग-वर्गीकृत आँकड़ों के नियमित प्रकाशन को प्रोत्साहित किया जाए, ताकि भविष्य के शोध एवं नीति-निर्माण हेतु सुदृढ़ साक्ष्य-आधार उपलब्ध हो सके।

12. अध्ययन की सीमाएँ

प्रस्तुत अध्ययन पूर्णतः द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है तथा इसमें प्राथमिक क्षेत्र-सर्वेक्षण (primary field survey) सम्मिलित नहीं है। कुछ आँकड़े (जैसे साक्षरता) जनगणना 2011 पर आधारित हैं, जबकि जनगणना 2021 के परिणाम अभी उपलब्ध नहीं हैं; अतः वर्तमान स्थिति में कुछ परिवर्तन सम्भव है। इसके अतिरिक्त, पंचायती राज संस्थाओं में उत्तराखण्ड के वास्तविक महिला प्रतिनिधित्व का सटीक एकल आँकड़ा (single precise figure) उपलब्ध स्रोतों में भिन्न-भिन्न रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसके कारण अध्ययन में इसे एक अनुमानित परास (range) के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

इसके अतिरिक्त, अध्ययन में प्रयुक्त राज्य-स्तरीय औसत आँकड़े उत्तराखण्ड के 13 जिलों के मध्य विद्यमान आंतरिक विषमता (जैसे पर्वतीय बनाम मैदानी जिले, अथवा गढ़वाल बनाम कुमाऊँ मंडल) को पूर्णतः प्रतिबिंबित नहीं कर पाते। भविष्य के शोध हेतु यह अनुशंसा की जाती है कि जिला-स्तरीय प्राथमिक सर्वेक्षण के माध्यम से इन तीनों (अथवा चारों) चरों के मध्य सांख्यिकीय सह-सम्बन्ध (जैसे सहसम्बन्ध गुणांक अथवा प्रतिगमन विश्लेषण) का परिमाणात्मक (quantitative) परीक्षण किया जाए, जो प्रस्तुत गुणात्मक-वर्णनात्मक विश्लेषण को और सुदृढ़ आधार प्रदान कर सकेगा।

13. निष्कर्ष

संक्षेप में, उत्तराखण्ड में बालिका शिक्षा, स्वयं सहायता समूहों की सदस्यता एवं पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी — तीनों क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति हुई है, तथा ये तीनों प्रक्रियाएँ परस्पर एक-दूसरे को सुदृढ़ करती प्रतीत होती हैं। राज्य की विशिष्ट भौगोलिक एवं जनसांख्यिकीय संरचना — उच्च पुरुष-पलायन दर, बढ़ते निर्जन गाँव तथा कृषि के महिलाकरण — ने महिलाओं को आर्थिक एवं सामाजिक जीवन में अपेक्षाकृत अधिक केंद्रीय भूमिका में ला खड़ा किया है, जिसका सदुपयोग करते हुए राज्य ने SHG एवं पंचायती राज महिला आरक्षण के क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर पर अनुकरणीय प्रगति की है।

तथापि, महिला सशक्तीकरण की इस यात्रा को स्थायी एवं समावेशी बनाने हेतु शिक्षा में शेष लिंग अंतराल को पाटना, SHG को नेतृत्व-

विकास के मंच के रूप में और सुदृढ़ करना, महिलाओं के अवैतनिक श्रम को औपचारिक आर्थिक मान्यता प्रदान करना, तथा पंचायती राज में महिलाओं की औपचारिक उपस्थिति को वास्तविक निर्णायक शक्ति में परिवर्तित करना — ये सभी कार्य समवेत रूप से आवश्यक हैं। अंततः, उत्तराखण्ड जैसे पर्वतीय राज्य में महिला सशक्तीकरण की सच्ची परीक्षा इस बात में निहित है कि क्या राज्य अपनी महिलाओं के असाधारण श्रम-योगदान एवं सामूहिक संगठन-क्षमता को वास्तविक निर्णय-शक्ति एवं सार्वजनिक नेतृत्व में परिवर्तित कर पाता है — यही इस अध्ययन का केंद्रीय निष्कर्ष एवं भविष्य के नीति-निर्माण हेतु मूल संदेश है।

संदर्भ सूची (References)

1. भारत की जनगणना 2011 (Census of India 2011), रजिस्ट्रार जनरल एवं जनगणना आयुक्त कार्यालय, भारत सरकार। https://censusindia.gov.in

2. Census2011.co.in — Uttarakhand Population, Literacy and Sex Ratio Data. https://www.census2011.co.in/census/state/uttarakhand.html

3. Wikipedia — 'Education in Uttarakhand'. https://en.wikipedia.org/wiki/Education_in_Uttarakhand

4. National Family Health Survey (NFHS-5), 2019-21 — Uttarakhand State Factsheet, International Institute for Population Sciences (IIPS) एवं Ministry of Health and Family Welfare, Government of India। https://dhsprogram.com/pubs/pdf/FR374/FR374_UTTARAKHAND.pdf

5. Business Standard (14 अगस्त 2026) — 'From school access to student retention: India's education challenge at 80', UDISE+ 2024-25/2025-26 एवं NITI Aayog आँकड़ों पर आधारित। https://www.business-standard.com

6. The Hindu / UPSC Current Affairs (8 जुलाई 2026) — 'School dropout rate falls across key stages: report', UDISE+ 2025-26 प्रतिवेदन पर आधारित।

7. उत्तराखण्ड राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन (Uttarakhand State Rural Livelihoods Mission — USRLM), ग्रामीण विकास विभाग, उत्तराखण्ड सरकार — आधिकारिक पोर्टल। https://usrlm.uk.gov.in

8. Down To Earth (22 अप्रैल 2024) — 'Women's Day 2024: She is for Self Help Empowerment', DAY-NRLM आँकड़ों पर आधारित। https://www.downtoearth.org.in

9. Ministry of Rural Development, Government of India — Press Release: 'DAY-NRLM has mobilised more than 10.04 crore women over 90.76 lakh Self Help Groups'. https://rural.gov.in

10. PRIA (Participatory Research in Asia), फरवरी 2019 — 'Women's Political Leadership in Panchayati Raj Institutions: Challenges and Prospects'. https://www.pria.org

11. Factly.in (18 मई 2019) — 'Representation to Participation: Women in Panchayat Raj Institutions & State Assemblies'. https://factly.in

12. Observer Research Foundation — ORF (2024) — 'Elected Women Representatives in Local Rural Governments in India: Assessing the Impact and Challenges'. https://www.orfonline.org

13. Press Information Bureau (PIB), भारत सरकार — 'Women Reservation in Panchayats', Ministry of Panchayati Raj प्रेस विज्ञप्ति। https://www.pib.gov.in

14. Ministry of Statistics and Programme Implementation (MoSPI), भारत सरकार — 'State/UT wise Elected Women (%) Representatives in Panchayati Raj Institutions (PRIs)'. https://www.mospi.gov.in

15. Wikipedia — '2019 Uttarakhand Local Elections'. https://en.wikipedia.org/wiki/2019_Uttarakhand_local_elections

16. Outlook India (18 जनवरी 2024) — 'Women in Panchayati Raj Institutions: Successful for Some, Barrier for Many'. https://www.outlookindia.com

17. 'Assessment of Women Labour Participation in Urban and Rural Areas of Uttarakhand', Shodh Samagam शोध पत्रिका। https://shodhsamagam.com

18. उत्तराखण्ड पलायन आयोग (Rural Development and Migration Commission), उत्तराखण्ड सरकार — द्वितीय अंतरिम प्रतिवेदन (2022); The Tribune (2022) — 'Decline in rate of migration from Uttarakhand: report'. https://www.tribuneindia.com

19. 'Forced Out-Migration from Hill Regions and Return Migration During the Pandemic: Evidence from Uttarakhand', PMC/NCBI। https://pmc.ncbi.nlm.nih.gov/articles/PMC7659421/

20. 'Out-Migration from Hill Region of Uttarakhand: Issues and Policy Options', राष्ट्रीय ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज संस्थान (NIRDPR)। https://nirdpr.org.in

21. Sen, Amartya — 'Development as Freedom' (Capability Approach); Kabeer, Naila — 'Resources, Agency, Achievements: Reflections on the Measurement of Women's Empowerment' (सैद्धांतिक ढाँचा हेतु सन्दर्भित)।

महिला सशक्तीकरण में लघु वित्त की भूमिकाः समावेशी विकास की दिशा में एक मार्ग

डॉ. प्रिया महाजन

असिस्टेंट प्रोफेसर

वाणिज्य विभाग

उत्तराखंड मुक्त विश्विद्यालय ,हल्द्वानी

8439274300

pmahajan@uou.ac.in

सारांश

महिला सशक्तीकरण समावेशी एवं सतत विकास की आधारशिला है। किसी भी समाज की आर्थिक प्रगति का वास्तविक आकलन तभी संभव है जब महिलाओं को आर्थिक संसाधनों, वित्तीय सेवाओं, शिक्षा, रोजगार तथा निर्णय–निर्माण की प्रक्रियाओं में समान अवसर प्राप्त हों। भारत जैसे विकासशील देश में महिलाओं की आर्थिक भागीदारी को बढ़ाने में वित्तीय समावेशन की महत्वपूर्ण भूमिका है। इस संदर्भ में लघु वित्त एक प्रभावी साधन के रूप में उभरकर सामने आया है। लघु वित का उद्देश्य निम्न आय वर्ग के उन व्यक्तियों और परिवारों तक वित्तीय सेवाएँ पहुँचाना है, जो पारंपरिक बैंकिंग व्यवस्था से प्रायः बाहर रह जाते हैं। विशेष रूप से महिलाओं के लिए लघु वित्त प्रणाली ने ऋण, बचत, बीमा तथा अन्य वित्तीय सेवाओं तक पहुँच के नए अवसर उत्पन्न किए हैं।

स्वयं सहायता समूहों (micro finance), माइक्रोफाइनेंस संस्थाओं तथा बैंक–संबद्ध समूहों के माध्यम से महिलाओं को छोटे ऋण उपलब्ध कराए जाते हैं, जिनका उपयोग वे कृषि, पशुपालन, हस्तशिल्प, लघु व्यवसाय, खाद्य प्रसंस्करण, सिलाई–कढ़ाई तथा अन्य आय–सृजन गतिविधियों में करती हैं। इससे महिलाओं की आय एवं आर्थिक आत्मनिर्भरता में वृद्धि होने के साथ–साथ परिवार में उनकी निर्णय लेने की क्षमता भी मजबूत होती है। लघु वित्त प्रणाली महिलाओं में बचत की आदत, वित्तीय अनुशासन, उद्यमिता, आत्मविश्वास और सामाजिक सहभागिता को बढ़ावा देता है।

हालाँकि, लघु वित्त अपने आप में महिला सशक्तीकरण का पूर्ण समाधान नहीं है। उच्च ब्याज दर, ऋण का उत्पादनात्मक उपयोग न होना, ऋणग्रस्तता, वित्तीय साक्षरता की कमी, डिजिटल विभाजन, बाजार तक सीमित पहुँच तथा सामाजिक–पारिवारिक बाधाएँ इसके प्रभाव को सीमित कर सकती हैं। अतः लघु वित्त को कौशल विकास, वित्तीय साक्षरता, बाजार की समझ , वित् के डिजिटल अनुप्रयोग , सामाजिक सुरक्षा तथा उद्यमिता विकास के साथ जोड़ना आवश्यक है। यह लेख महिला सशक्तीकरण में लघु वित्त की भूमिका,

इसके प्रभाव, चुनौतियों और समावेशी विकास की दिशा में इसकी संभावनाओं का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द (key words): लघु वित्त, महिला सशक्तीकरण, वित्तीय समावेशन, स्वयं सहायता समूह, उद्यमिता, समावेशी विकास, ग्रामीण महिलाएँ, आर्थिक आत्मनिर्भरता।

प्रस्तावना

वर्तमान समय में आर्थिक विकास की अवधारणा केवल सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि तक सीमित नहीं रह गई है। आधुनिक विकास विमर्श में आर्थिक विकास के साथ–साथ सामाजिक न्याय, समान अवसर, गरीबी उन्मूलन, लैंगिग समानता तथा समाज के कमजोर वर्गों की आर्थिक भागीदारी को भी महत्वपूर्ण माना जाता है। इसी संदर्भ में समावेशी विकास की अवधारणा सामने आती है। समावेशी विकास का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि विकास के लाभ समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुँचें और कोई भी समूह आर्थिक अवसरों से वंचित न रहे।

महिलाएँ समाज की कुल आबादी का लगभग आधा हिस्सा हैं और परिवार तथा अर्थव्यवस्था दोनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इसके बावजूद अनेक महिलाएँ वित्तीय संसाधनों, औपचारिक ऋण, संपत्ति के स्वामित्व, रोजगार तथा उद्यमिता के अवसरों से अपेक्षाकृत कम जुड़ी रहती हैं। विशेष रूप से ग्रामीण और निम्न आय वर्ग की महिलाओं के सामने वित्तीय संस्थाओं तक पहुँच, संपार्श्विक की आवश्यकता, कम आय, वित्तीय जानकारी की कमी तथा सामाजिक मान्यताओं जैसी अनेक बाधाएँ होती हैं।

ऐसी परिस्थितियों में लघु वित्त (microfinance) महिलाओं को वित्तीय सेवाओं से जोड़ने का एक महत्वपूर्ण माध्यम बनकर उभरा है। लघु वित्त का मूल विचार यह है कि छोटे स्तर पर आय अर्जित करने वाले व्यक्तियों को छोटी राशि के ऋण तथा अन्य वित्तीय सेवाएँ उपलब्ध कराई जाएँ ताकि वे अपनी आर्थिक गतिविधियों को प्रारम्भ या विस्तारित कर सकें।

भारत में महिलाओं के संदर्भ में लघु वित्त का विकास मुख्यतः स्वयं सहायता समूह (self help groups), बैंक–संबद्ध कार्यक्रमों (bank linkage program) और माइक्रोफाइनेंस संस्थाओं (micro finance institutions) के माध्यम से हुआ है। स्वयं सहायता समूहों ने ग्रामीण महिलाओं को न केवल बचत और ऋण की सुविधा प्रदान की है, बल्कि उन्हें सामूहिक रूप से निर्णय लेने, प्रशिक्षण प्राप्त करने और स्थानीय स्तर पर आर्थिक गतिविधियाँ संचालित करने का अवसर भी दिया है।

इस प्रकार लघु वित्त का महत्व केवल एक छोटे ऋण की उपलब्धता तक सीमित नहीं है। यह महिलाओं को आर्थिक गतिविधियों में भाग लेने, अपनी आय अर्जित करने, परिवार के आर्थिक निर्णयों में भागीदारी करने और सामाजिक रूप से अधिक सक्रिय बनने का अवसर प्रदान कर सकता है। इसलिए सूक्ष्म वित्त को महिला सशक्तीकरण और समावेशी विकास के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में देखा जा सकता है।

लघु वित्त की अवधारणा

लघु वित्त का अर्थ निम्न आय वर्ग के लोगों को छोटी मात्रा में वित्तीय सेवाएँ उपलब्ध कराना है। इन सेवाओं में मुख्य रूप से लघु ऋण, बचत, बीमा, प्रेषण तथा अन्य वित्तीय सेवाएँ शामिल हो सकती हैं। इसका उद्देश्य उन लोगों को औपचारिक वित्तीय प्रणाली से जोड़ना है जो सामान्य बैंकिंग व्यवस्था में आसानी से प्रवेश नहीं कर पाते।

पारंपरिक बैंकिंग व्यवस्था में ऋण प्राप्त करने के लिए आय का प्रमाण, जमानत यां गरंटी हेतु परिसम्पति , बैंकिंग इतिहास तथा अन्य दस्तावेजों की आवश्यकता हो सकती है। निम्न आय वर्ग के अनेक लोगों, विशेषकर महिलाओं, के पास ये सुविधाएँ नहीं होतीं। लघु वित्त मॉडल सामूहिक गारंटी, समूह बचत तथा छोटे ऋणों के माध्यम से इन बाधाओं को कम करने का प्रयास करता है।

भारत में स्वयं सहायता समूह आधारित मॉडल विशेष रूप से महत्वपूर्ण रहा है। एक स्वयं सहायता समूह में सामान्यतः समान सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि की महिलाएँ नियमित रूप से छोटी राशि की बचत करती हैं। समूह की बचत का उपयोग सदस्यों की आंतरिक ऋण आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया जा सकता है तथा बाद में समूह बैंक से ऋण प्राप्त कर सकता है।

इस व्यवस्था से महिलाओं में वित्तीय अनुशासन और सामूहिक जिम्मेदारी की भावना विकसित होती है। समूह आधारित वित्तीय व्यवस्था महिलाओं को अकेले वित्तीय संस्थान से संपर्क करने की बजाय सामूहिक रूप से आर्थिक गतिविधियों में भाग लेने का अवसर देती है।

महिला सशक्तीकरण का अर्थ और आयाम

महिला सशक्तीकरण का अर्थ महिलाओं को अपने जीवन से संबंधित आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा व्यक्तिगत निर्णय लेने की क्षमता और अवसर प्रदान करना है। सशक्तीकरण केवल आय में वृद्धि नहीं हैय यह महिलाओं की क्षमता, आत्मविश्वास, स्वतंत्रता, अधिकारों और निर्णय लेने की शक्ति में वृद्धि से संबंधित है।

महिला सशक्तीकरण के प्रमुख आयाम निम्नलिखित है

1 आर्थिक सशक्तीकरण

आर्थिक सशक्तीकरण का अर्थ महिलाओं की आय, संपत्ति, रोजगार, उद्यमिता तथा वित्तीय संसाधनों तक पहुँच में वृद्धि करना है। लघु वित्त का सबसे प्रत्यक्ष प्रभाव इसी क्षेत्र में दिखाई देता है।

2 सामाजिक सशक्तीकरण

जब महिलाएँ स्वयं सहायता समूहों तथा सामुदायिक गतिविधियों में भाग लेती हैं, तो उनका सामाजिक दायरा विस्तृत होता है। इससे उनमें सामाजिक मुद्दों पर चर्चा करने और सामूहिक रूप से निर्णय लेने का आत्मविश्वास बढ़ता है।

3 निर्णय लेने की क्षमता

आय अर्जित करने वाली महिलाओं की परिवार के खर्च, बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य, बचत तथा निवेश जैसे मामलों में भागीदारी बढ़ सकती है। इस प्रकार आर्थिक स्वतंत्रता कसी घरेलू निर्णय लेने के आत्मविश्वास को बड़ाती है ।

4 राजनीतिक एवं सामुदायिक सहभागिता

स्वयं सहायता समूहों में सामूहिक नेतृत्व और निर्णय लेने का अनुभव महिलाओं को स्थानीय संस्थाओं और सामुदायिक गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है।

5 मनोवैज्ञानिक सशक्तीकरण

आर्थिक गतिविधि में सफलता महिलाओं के आत्मविश्वास और आत्मसम्मान को बढ़ाती है। स्वयं की आय अर्जित करने से उनमें यह भावना विकसित होती है कि वे परिवार और समाज की आर्थिक प्रगति में सक्रिय योगदान दे सकती हैं।

लघु वित्त और महिला सशक्तीकरण के बीच संबंध

लघु वित्त और महिला सशक्तीकरण के बीच संबंध को समझने के लिए यह देखना आवश्यक है कि वित्तीय संसाधनों तक पहुँच महिलाओं की क्षमताओं को किस प्रकार प्रभावित करती है।

जब महिला को स्वयं के नाम से या स्वयं सहायता समूह के माध्यम से ऋण प्राप्त होता है, तो उसके पास आर्थिक गतिविधि शुरू करने के लिए पूंजी उपलब्ध होती है। उदाहरण के लिए, कोई महिला सिलाई का व्यवसाय शुरू करने के लिए सिलाई मशीन खरीद सकती है, पशुपालन के लिए पशु खरीद सकती है, खाद्य प्रसंस्करण का छोटा व्यवसाय शुरू कर सकती है या कृषि से संबंधित गतिविधियों में निवेश कर सकती है। और जब यह गतिविधि सफल होती है, तो महिला की आय में वृद्धि होती है। आय में वृद्धि से उसकी बचत क्षमता बढ़ सकती है और भविष्य में वह बड़े निवेश के लिए अधिक वित्तीय संसाधन जुटा सकती है। इस प्रकार ऋण → आर्थिक गतिविधि → आय → बचत → निवेश का एक चक्र विकसित हो सकता है।

लेकिन इसका प्रभाव केवल आर्थिक नहीं होता। आय अर्जित करने वाली महिला परिवार के भीतर आर्थिक निर्णयों में अधिक सक्रिय हो सकती है। बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य, भोजन और घरेलू आवश्यकताओं पर खर्च के निर्णयों में उसकी भूमिका बढ़ सकती है।

इस प्रकार लघु वित्त महिलाओं को वित्तीय संसाधन से आर्थिक क्षमता और आर्थिक क्षमता से सामाजिक एवं निर्णयात्मक शक्ति की ओर ले जाने में सहायता कर सकता है।

महिलाओं की वित्तीय समावेशन में लघु वित्त की भूमिका

वित्तीय समावेशन का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति को उचित लागत पर उपयोगी और आवश्यक वित्तीय सेवाओं तक पहुँच उपलब्ध कराना है। महिलाओं के लिए वित्तीय समावेशन विशेष महत्व रखता है क्योंकि वित्तीय सेवाओं तक पहुँच उनकी आर्थिक स्वतंत्रता को मजबूत कर सकती है।

लघु वित्त महिलाओं को निम्नलिखित वित्तीय सेवाओं से जोड़ने में सहायता करता है।

- बचत खाते
- छोटे ऋण
- बीमा
- पेंशन योजनाएँ
- डिजिटल भुगतान
- बैंकिंग सेवाएँ
- वित्तीय साक्षरता
- उद्यमिता से संबंधित वित्तीय सेवाएँ।

जब महिला का बैंक खाता होता है और वह नियमित रूप से बचत तथा डिजिटल लेन–देन करती है, तो उसकी औपचारिक वित्तीय प्रणाली में भागीदारी बढ़ती है। इससे भविष्य में अन्य वित्तीय सेवाओं तक उसकी पहुँच भी आसान हो सकती है।

महिला के नाम पर वित्तीय संपत्ति और बैंकिंग संबंध स्थापित होना आर्थिक पहचान को मजबूत करने की दिशा में भी महत्वपूर्ण कदम है।

स्वयं सहायता समूह और महिला सशक्तीकरण

भारत में महिला सशक्तीकरण के क्षेत्र में स्वयं सहायता समूहों का विशेष महत्व है। स्वयं सहायता समूह महिलाओं को छोटे स्तर पर नियमित बचत करने और आवश्यकता के समय समूह से ऋण प्राप्त करने का अवसर देते हैं।

समूह मॉडल की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता इसका सामूहिक स्वरूप है। आर्थिक रूप से कमजोर महिला अकेले बैंक या वित्तीय संस्था के सामने अपनी आवश्यकता रखने में संकोच कर सकती है, लेकिन समूह के माध्यम से वह अधिक आत्मविश्वास के साथ वित्तीय गतिविधियों में भाग ले सकती है।

स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिलाओं में।

1. बचत की आदत
2. वित्तीय अनुशासन
3. सामूहिक निर्णय लेने की क्षमता
4. नेतृत्व कौशल
5. उद्यमिता

6. बैंकिंग संबंध

7. सामाजिक जागरूकता

का विकास हो सकता है।

इस प्रकार स्वयं सहायता समूह लघु वित्त को केवल ऋण वितरण की व्यवस्था न बनाकर सामाजिक परिवर्तन का माध्यम भी बना सकते हैं।

लघु वित्त के माध्यम से महिला उद्यमिता को बढ़ावा

महिला उद्यमिता समावेशी विकास का एक महत्वपूर्ण घटक है। भारत में बड़ी संख्या में महिलाएँ छोटे स्तर पर आर्थिक गतिविधियों में संलग्न हैं, लेकिन पूंजी और बाजार की कमी के कारण वे अपने व्यवसाय का विस्तार नहीं कर पातीं।

लघु ऋण ऐसी महिलाओं को प्रारंभिक पूंजी उपलब्ध करा सकता है। उदाहरण के लिए।

- डेयरी व्यवसाय
- बकरी पालन
- मुर्गी पालन
- विभिन्न कोचिंग सेंटर
- जन सहायता केंद्र
- मधुमक्खी पालन
- सिलाई एवं कढ़ाई
- हस्तशिल्प
- अगरबत्ती निर्माण
- मसाला निर्माण
- अचार एवं पापड़ निर्माण
- खाद्य प्रसंस्करण
- किराना या छोटे खुदरा व्यवसाय
- स्थानीय सेवा व्यवसाय।

इन गतिविधियों के माध्यम से महिलाएँ घरेलू जिम्मेदारियों के साथ–साथ आय अर्जित कर सकती हैं।

हालाँकि, केवल ऋण उपलब्ध करा देना पर्याप्त नहीं है। व्यवसाय की सफलता के लिए बाजार की जानकारी, कौशल प्रशिक्षण, गुणवत्ता नियंत्रण, पैकेजिंग, ब्रांडिंग, डिजिटल मार्केटिंग और वित्तीय प्रबंधन का ज्ञान भी आवश्यक है। इसलिए महिला उद्यमिता कार्यक्रमों को सूक्ष्म वित्त से जोड़ना अधिक प्रभावी दृ ष्टिकोण हो सकता है।

घरेलू निर्णय–निर्माण में महिलाओं की भूमिका

महिला सशक्तीकरण का एक महत्वपूर्ण संकेतक यह है कि महिला परिवार से जुड़े निर्णयों में कितनी सक्रिय भूमिका निभाती है।

आय अर्जित करने वाली महिलाओं की परिवार में आर्थिक भूमिका बढ़ सकती है। वे बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, घरेलू वस्तुओं की खरीद तथा बचत जैसे विषयों पर अधिक प्रभाव डाल सकती हैं।

उदाहरण के लिए, यदि कोई महिला स्वयं सहायता समूह से ऋण लेकर दुग्ध व्यवसाय शुरू करती है और नियमित आय प्राप्त करती है, तो वह परिवार की आय में प्रत्यक्ष योगदान देती है। इससे परिवार के आर्थिक निर्णयों में उसका महत्व बढ़ सकता है।

हालाँकि,यह प्रभाव प्रत्येक परिवार और समुदाय में समान नहीं होता। सामाजिक संरचना, शिक्षा, पारिवारिक संबंध और स्थानीय मान्यताएँ इस स्थिति को प्रभावित करती हैं।

गरीबी उन्मूलन और समावेशी विकास में योगदान

लघु वित्त का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य गरीब परिवारों को आय–सृजन गतिविधियों से जोड़ना है। यदि ऋण का उपयोग उत्पादक गतिविधियों में किया जाए और गतिविधि से पर्याप्त आय प्राप्त हो, तो परिवार की आर्थिक स्थिति में सुधार हो सकता है।

महिला की आय का लाभ अक्सर परिवार के अन्य सदस्यों तक भी पहुँचता है। आय का उपयोग बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण तथा आवास की स्थिति सुधारने में किया जा सकता है।

इस दृष्टि से महिला–केंद्रित सूक्ष्म वित्त केवल व्यक्तिगत आय बढ़ाने का साधन नहीं है, बल्कि परिवार और समुदाय के सामाजिक जीवन को भी प्रभावित कर सकता है।

महिला की आर्थिक भागीदारी बढ़ने से स्थानीय स्तर पर छोटे व्यवसायों की संख्या बढ़ सकती है, रोजगार उत्पन्न हो सकता है और स्थानीय बाजारों में आर्थिक गतिविधि बढ़ सकती है। इस प्रकार सूक्ष्म वित्त स्थानीय आर्थिक विकास में योगदान दे सकता है।

ग्रामीण महिलाओं के लिए लघु वित्त का महत्व

ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की बड़ी संख्या कृषि और उससे जुड़ी अनौपचारिक गतिविधियों में भाग लेती है। इसके बावजूद उनके पास उत्पादन के साधनों और औपचारिक वित्तीय सेवाओं पर पर्याप्त नियंत्रण नहीं होता।

ग्रामीण महिलाओं के लिए लघु वित्त विशेष रूप से उपयोगी हो सकता है क्योंकि छोटे ऋण के माध्यम से वे स्थानीय संसाधनों पर आधारित व्यवसाय शुरू कर सकती हैं।

ग्रामीण महिला उद्यमिता के कुछ प्रमुख क्षेत्र हैं।

- कृषि आधारित प्रसंस्करण
- पशुपालन
- दुग्ध उत्पादन
- हस्तशिल्प
- स्थानीय खाद्य उत्पाद
- बागवानी
- जैविक उत्पाद
- ग्रामीण पर्यटन से संबंधित सेवाएँ

यदि इन गतिविधियों को प्रशिक्षण, बाजार और डिजिटल प्लेटफॉर्म से जोड़ा जाए, तो ग्रामीण महिलाओं की आय और आर्थिक स्वतंत्रता में महत्वपूर्ण वृद्धि हो सकती है।

लघु वित्त और महिलाओं में वित्तीय साक्षरता

वित्तीय समावेशन तभी प्रभावी होता है जब व्यक्ति वित्तीय सेवाओं का उचित उपयोग करना जानता हो। इसलिए वित्तीय साक्षरता सूक्ष्म वित्त की सफलता का महत्वपूर्ण आधार है।

महिलाओं को निम्नलिखित विषयों की जानकारी देना आवश्यक हैं।

- ब्याज दर
- ऋण की लागत
- किस्त और पुनर्भुगतान
- बचत
- बीमा
- पेंशन
- डिजिटल बैंकिंग

- साइबर सुरक्षा
- बजट निर्माण
- निवेश
- सरकारी वित्तीय योजनाएँ आदि।

वित्तीय साक्षरता महिलाओं को अनौपचारिक और महंगे ऋण स्रोतों पर निर्भरता कम करने में सहायता कर सकती है। साथ ही, यह उन्हें ऋण का जिम्मेदारीपूर्वक उपयोग करने और अत्यधिक ऋणग्रस्तता से बचने में सहायता करती है।

डिजिटल वित्त और महिला सशक्तीकरण

डिजिटल तकनीक ने लघु वित्त के स्वरूप को भी बदल दिया है। मोबाइल बैंकिंग, डिजिटल भुगतान, आधार–आधारित सेवाएँ और अन्य डिजिटल वित्तीय माध्यमों ने वित्तीय सेवाओं तक पहुँच को अधिक सुविधाजनक बनाया है।

महिलाएँ यदि डिजिटल वित्तीय सेवाओं का उपयोग करना सीखती हैं तो उन्हें बैंक शाखा पर निर्भरता कम हो सकती है। वे पैसे भेजने, भुगतान करने, खाते की जानकारी प्राप्त करने और कुछ वित्तीय सेवाओं का उपयोग घर से कर सकती हैं।

लेकिन डिजिटल वित्तीय समावेशन के सामने डिजिटल विषय में लैंगिक भेद एक बड़ी चुनौती है। अनेक ग्रामीण महिलाओं के पास स्मार्टफोन, इंटरनेट या डिजिटल कौशल का पर्याप्त अभाव हो सकता है।

इसलिए डिजिटल वित्त को महिला सशक्तीकरण का प्रभावी साधन बनाने के लिए सामान्य लैंगिग भेदभाव को दूर करते हुए डिजिटल साक्षरता, साइबर सुरक्षा प्रशिक्षण और सुरक्षित डिजिटल अवसंरचना के विकास की भी आवश्यकता है।

सरकारी योजनाओं और लघु वित्त का समन्वय

महिला सशक्तीकरण को मजबूत करने के लिए लघु वित्त को विभिन्न सरकारी योजनाओं के साथ जोड़ा जा सकता है। वित्तीय सहायता के साथ यदि कौशल विकास, बाजार संपर्क, सामाजिक सुरक्षा और उद्यमिता सहायता उपलब्ध हो, तो महिलाओं के आर्थिक परिणाम अधिक समावेशी हो सकते हैं।

स्वयं सहायता समूहों को सरकारी कार्यक्रमों से जोड़कर महिलाओं को प्रशिक्षण, ऋण, विपणन तथा अन्य सहायता उपलब्ध कराई जा सकती है।

इस प्रकार एक समन्वित मॉडल विकसित किया जा सकता है।

वित्तीय समावेशन + लघु ऋण + कौशल विकास + डिजिटल साक्षरता + बाजार संपर्क + सामाजिक सुरक्षा = समावेशी महिला सशक्तीकरण

लघु वित्त की प्रमुख चुनौतियाँ

यद्यपि लघु वित्त महिला सशक्तीकरण का प्रभावी साधन है, लेकिन इसके सामने अनेक चुनौतियाँ भी हैं।

1. अत्यधिक ऋणग्रस्तता

यदि महिला या परिवार एक से अधिक संस्थाओं से ऋण लेता है और उसकी आय पर्याप्त नहीं है, तो पुनर्भुगतान का दबाव बढ़ सकता है।

2. ऋण का गैर–उत्पादक उपयोग

कई बार ऋण का उपयोग व्यवसाय के बजाय घरेलू खर्च, स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकता या अन्य तात्कालिक अवश्यकताओं के लिए किया जाता है। ऐसी स्थिति में ऋण से आय उत्पन्न नहीं होती और पुनर्भुगतान कठिन हो सकता है।

3. वित्तीय साक्षरता का अभाव

ब्याज दर, ऋण की वास्तविक लागत और डिजिटल वित्तीय जोखिमों की जानकारी न होने से महिलाएँ गलत वित्तीय निर्णय ले सकती हैं।

4. बाजार तक सीमित पहुँच

महिलाएँ उत्पाद तो बना सकती हैं, लेकिन उचित बाजार, उचित मूल्य और बड़े खरीदारों तक पहुँच का अभाव उनके व्यवसाय की क्षमता को सीमित कर सकता है।

5. सामाजिक एवं पारिवारिक बाधाएँ

कुछ क्षेत्रों में महिलाओं की स्वतंत्र आर्थिक गतिविधियों को परिवार या समाज का पर्याप्त समर्थन नहीं मिलता। इससे ऋण प्राप्त होने के बावजूद आर्थिक गतिविधि का विस्तार सीमित हो सकता है।

6. डिजिटल विभाजन

डिजिटल बैंकिंग और ऑनलाइन बाजारों के बढ़ते महत्व के बावजूद डिजिटल उपकरणों तथा इंटरनेट तक महिलाओं की असमान पहुँच एक चुनौती है।

लघु वित्त को अधिक प्रभावी बनाने के उपाय

महिला सशक्तीकरण के लिए सूक्ष्म वित्त को अधिक प्रभावी बनाने हेतु निम्नलिखित उपाय अपनाए जा सकते हैं।

1.ऋण के साथ कौशल प्रशिक्षण

महिलाओं को केवल ऋण देने के बजाय व्यवसाय शुरू करने और संचालित करने का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

2. वित्तीय साक्षरता

ऋण, बचत, बीमा, निवेश, डिजिटल भुगतान और साइबर सुरक्षा पर नियमित प्रशिक्षण आवश्यक है।

3. बाजार से जोड़ना

महिला उद्यमियों के उत्पादों को स्थानीय बाजारों, मेलों, ई–कॉमर्स प्लेटफॉर्म और सरकारी खरीद व्यवस्था से जोड़ने की आवश्यकता है।

4. डिजिटल सशक्तीकरण

महिलाओं को मोबाइल बैंकिंग, डिजिटल भुगतान, ऑनलाइन बिक्री और साइबर सुरक्षा का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

5. उत्पादों में विविधता

लघु वित्त केवल ऋण तक सीमित न रहकर बचत, बीमा, पेंशन और अन्य वित्तीय उत्पादों को भी शामिल करे।

6.जिम्मेदार ऋण व्यवस्था

ऋण देने से पहले महिला की पुनर्भुगतान क्षमता और मौजूदा ऋण दायित्वों का उचित आकलन किया जाना चाहिए।

7. महिला में नेतृत्व क्षमता

स्वयं सहायता समूहों में महिलाओं को नेतृत्व और प्रबंधन की जिम्मेदारियाँ दी जानी चाहिए ताकि उनमें निर्णय लेने की क्षमता विकसित हो।

समावेशी विकास की दिशा में लघु वित्त की संभावनाएँ

समावेशी विकास का उद्देश्य आर्थिक अवसरों को व्यापक बनाना है। इस दृष्टि से महिलाओं को आर्थिक गतिविधियों में शामिल करना आवश्यक है। सूक्ष्म वित्त इस प्रक्रिया में एक प्रारंभिक वित्तीय आधार प्रदान करता है।

यदि महिला को ऋण मिलता है, लेकिन बाजार नहीं मिलता, तो उसका प्रभाव सीमित रहेगा। यदि बाजार मिलता है लेकिन कौशल नहीं है, तो व्यवसाय स्थायी नहीं होगा। यदि व्यवसाय सफल है लेकिन महिला के पास वित्तीय निर्णय लेने की स्वतंत्रता नहीं है, तो सशक्तीकरण अधूरा रह सकता है।

अतः वास्तविक महिला सशक्तीकरण के लिए वित्तीय पूंजी के साथ मानव पूंजी, सामाजिक पूंजी और बाजार पूंजी का निर्माण भी आवश्यक है। लघु वित्त को इस व्यापक दृष्टिकोण से देखने पर यह केवल गरीबी उन्मूलन का साधन नहीं बल्कि सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन का माध्यम बन सकता है।

सतत विकास लक्ष्यों के संदर्भ में लघु वित्त

महिला सशक्तीकरण और वित्तीय समावेशन का संबंध संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों से भी जुड़ा है। विशेष रूप से गरीबी उन्मूलन, लैंगिक समानता, सम्मानजनक कार्य एवं आर्थिक विकास के लक्ष्य के साथ ही असमानताओं को कम करने जैसे उदेश्यों की प्राप्ति में महिला–केंद्रित वित्तीय समावेशन का योगदान हो सकता है।

जब महिलाओं को आर्थिक संसाधनों और रोजगार के अवसर प्राप्त होते हैं, तो वे परिवार तथा समुदाय की आर्थिक स्थिति सुधारने में योगदान देती हैं। इससे विकास की प्रक्रिया अधिक व्यापक और समावेशी बनती है।इसलिए महिला–केंद्रित सूक्ष्म वित्त को केवल वित्तीय कार्यक्रम के रूप में नहीं बल्कि सतत विकास की व्यापक रणनीति के हिस्से के रूप में देखा जाना चाहिए।

उत्तराखंड जैसे पर्वतीय राज्य के सामाजिक एवं आर्थिक परिप्रेक्ष्य में महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए लघु वित्त (micro finance) की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाती है। उत्तराखंड की भौगोलिक परिस्थितियाँ, सीमित स्थानीय रोजगार के अवसर तथा पुरुषों का रोजगार की तलाश में राज्य के मैदानी क्षेत्रों एवं अन्य राज्यों की ओर पलायन ग्रामीण परिवारों की सामाजिक–आर्थिक संरचना को प्रभावित करते हैं। अनेक पर्वतीय क्षेत्रों में पुरुषों के बाहर रोजगार के लिए चले जाने के कारण महिलाएँ अपने गांवों और घरों में रहकर परिवार, बच्चों, बुजुर्गों तथा घरेलू कार्यों के साथ–साथ कृषि एवं पशुपालन जैसी आर्थिक गतिविधियों की जिम्मेदारी भी निभाती हैं। इस प्रकार, उत्तराखंड की ग्रामीण महिलाएँ परिवार की अर्थव्यवस्था की महत्वपूर्ण आधारशिला होने के बावजूद प्रायः वित्तीय संसाधनों, औपचारिक ऋण सुविधाओं तथा आय के स्वतंत्र साधनों तक सीमित पहुंच रखती हैं। ऐसी परिस्थितियों में लघु वित्त महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने का एक प्रभावी माध्यम बन सकता है।

इससे उन परिवारों में विशेष लाभ हो सकता है जहाँ परिवार का प्रमुख पुरुष सदस्य रोजगार के लिए घर से दूर रहता है। महिला द्वारा अर्जित आय परिवार की आवश्यकताओं जैसे बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण तथा दैनिक घरेलू खर्चों को पूरा करने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। साथ ही, स्वयं की आय एवं वित्तीय संसाधनों पर अधिक नियंत्रण महिलाओं की घरेलू निर्णय–निर्माण प्रक्रिया में भागीदारी और आर्थिक आत्मनिर्भरता को बढ़ाता है। अतः उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में लघु वित्त को केवल ऋण उपलब्ध कराने की व्यवस्था के रूप में नहीं, बल्कि महिलाओं की वित्तीय समावेशन, आजीविका सुरक्षा, आत्मनिर्भरता, निर्णय लेने की क्षमता तथा सामाजिक प्रतिष्ठा को बढ़ाने वाले एक व्यापक सशक्तिकरण उपकरण के रूप में देखा जाना चाहिए। इस प्रकार, लघु वित्त के माध्यम से महिलाओं की स्थानीय स्तर पर आय अर्जित करने की क्षमता को मजबूत करके न केवल महिलाओं का सशक्तिकरण किया जा सकता है, बल्कि पर्वतीय परिवारों की आर्थिक स्थिरता, ग्रामीण आजीविका तथा उत्तराखंड के समावेशी और सतत विकास को भी बढ़ावा दिया जा सकता है।

निष्कर्ष

लघु वित्त ने आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों, विशेषकर महिलाओं, को औपचारिक वित्तीय प्रणाली से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। छोटे ऋण, बचत, स्वयं सहायता समूह और वित्तीय सेवाओं तक पहुँच ने अनेक महिलाओं को आय–सृजन गतिविधियों में भाग लेने का अवसर प्रदान किया है।

महिला सशक्तीकरण के संदर्भ में लघु वित्त का महत्व इसलिए अधिक है क्योंकि इसका प्रभाव केवल आय तक सीमित नहीं रहता। उचित परिस्थितियों में यह महिलाओं के आत्मविश्वास, वित्तीय निर्णय लेने की क्षमता, उद्यमिता, सामाजिक सहभागिता और परिवार में उनकी भूमिका को मजबूत कर सकता है।

फिर भी यह समझना आवश्यक है कि केवल ऋण उपलब्ध करा देना महिला सशक्तीकरण के समान नहीं है। ऋण तभी सशक्तीकरण का प्रभावी साधन बनता है जब महिला के पास उस ऋण का उत्पादक उपयोग करने का ज्ञान, कौशल, बाजार, तकनीक और निर्णय लेने की स्वतंत्रता हो।

इसलिए भविष्य की सूक्ष्म वित्त व्यवस्था को क्रेडिट–केंद्रित मॉडल से आगे बढ़ाकर समग्र महिला सशक्तीकरण मॉडल की ओर ले जाना आवश्यक है। इसमें वित्तीय साक्षरता, कौशल विकास, डिजिटल साक्षरता, बाजार संपर्क, बीमा, पेंशन, सामाजिक सुरक्षा और उद्यमिता विकास को एकीकृत किया जाना चाहिए।

विशेष रूप से ग्रामीण महिलाओं के लिए स्वयं सहायता समूहों को स्थानीय आर्थिक गतिविधियों, कृषि मूल्य श्रृंखला, डिजिटल बाजार और सरकारी योजनाओं से जोड़ना महत्वपूर्ण हो सकता है। इससे महिलाएँ केवल ऋण लेने वाली नहीं, बल्कि उद्यमी, उत्पादक, निवेशक और आर्थिक निर्णयकर्ता बन सकती हैं।

अंततः कहा जा सकता है कि लघु वित्त महिलाओं के लिए आर्थिक अवसरों का द्वार खोल सकता है, लेकिन उस द्वार से वास्तविक और समावेशी सशक्तीकरण की यात्रा तभी संभव है जब वित्तीय संसाधनों के साथ ज्ञान, कौशल, बाजार और सामाजिक समर्थन भी उपलब्ध हो। महिला सशक्तीकरण को केंद्र में रखकर विकसित किया गया सूक्ष्म वित्त मॉडल न केवल महिलाओं की व्यक्तिगत आर्थिक स्थिति को बेहतर बना सकता है, बल्कि परिवार, समुदाय और संपूर्ण अर्थव्यवस्था को अधिक समावेशी, न्यायपूर्ण और निरंतर विकासमान बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

इस प्रकार, लघु वित्त को समावेशी विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण मार्ग माना जा सकता है। ऐसा मार्ग जो महिलाओं को वित्तीय निर्भरता से आर्थिक आत्मनिर्भरता, आर्थिक आत्मनिर्भरता से निर्णय लेने की क्षमता और निर्णय लेने की क्षमता से व्यापक सामाजिक सशक्तीकरण की ओर ले जा सकता है।

संदर्भ

Mahesh K.M.et al.(2023). Government initiatives and digital Innovation for AtmaNirbhar MSMEs/SMEs: To Achieve Sustainable and Inclusive Economic Growth International Journal of Management, Technology, and Social Sciences (IJMTS), ISSN: 2581-6012, Vol. 8, No. 1, January2023.

Mahua Biswas, Ashwini Vernekar (2020). An Empirical Study on Problems and Prospects of Micro Small and Medium Enterprises in Bengaluru, Karnataka..AMBER—ABBS Management Business and Entrepreneurship Review, 10(1), 15–20.

Sarita Satpathy , P. SailajaRani , M.L.Nagajyothi (2017). A Study of Micro, Small and Medium Enterprises; the Backbone for Economic Development of Indian Economy. International Journal of Research and Scientific Innovation (IJRSI) | Volume IV, Issue VI, June 2017 | ISSN 2321–2705.

Sharon Buteau (2021). Roadmap for digital technology to foster India's MSME ecosystem—opportunities and challenges. CSIT (December 2021) 9(4):233–244 https://doi.org/10.1007/s40012-021-00345-4

Cueto, L. J., Frisnedi, A. F. D., Collera, R. B., Batac, K. I. T., &Agaton, C. B. (2022). Digital Innovations in MSMEs during economic disruptions: Experiences and challenges of young entrepreneurs. Administrative Sciences, 12(1), 8-17.

Dhar, Sujoy. Micro Small and Medium Enterprises (MSMEs) in India - Its Scopes and Challenges (December 14, 2014). Presented and Accepted for publication in UGC sponsored National Level Seminar organized by Department of Commerce, KK Das College, in collaboration with The Institute of Cost Accountants of India in December, 2014, Available at SSRN: https://ssrn.com/abstract=2541162

Mehralian, Mohammad Mehdi and Khazaee, Parinaz (2022) Effect of Digital Marketing on the Business Performance of MSMEs during the COVID-19 Pandemic: The Mediating Role of Customer Relationship Management. 37th Digital Marketing and Customer Behavior Science Conference (2022), Available at SSRN: https://ssrn.com/abstract=4195985 or http://dx.doi.org/10.2139/ssrn.4195985

Manisha Kakkar,Laxmi Narayan ,Mini Amit , Museer Ahmad (2012). Role of digital payment in the growth of MSMEs Sector.Indian Journal of Economics and Business Vol. 20 No. 1 (January-June, 2021)

उत्तराखंड के विशेष संदर्भ में महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने में वित्तीय साक्षरता और सरकारी पहलों की भूमिका

सारांश

महिलाओं के सशक्तिकरण को अब आर्थिक और सामाजिक विकास का एक अहम हिस्सा माना जा रहा है। यह सिर्फ नौकरी या कमाई वाले कामों में महिलाओं की भागीदारी तक ही सीमित नहीं है। इसमें फैसले लेने की क्षमता, संसाधनों तक पहुँच और उन पर नियंत्रण, ज्यादा आजादी और आर्थिक व सामाजिक जीवन में सार्थक भागीदारी भी शामिल है। इस अध्ययन का मकसद महिलाओं के आर्थिक फैसले लेने की क्षमता पर वित्तीय साक्षरता और सरकारी पहलों की भूमिका को समझना और उनका अध्ययन करना है, ताकि महिलाओं को सशक्त बनाया जा सके। यह अध्ययन खोजपूर्ण प्रकृति का है और सेकेंडरी डेटा पर आधारित है, जिसमें मौजूदा साहित्य, समाचार लेख, शोध पत्र, सरकारी वेबसाइटें और उत्तराखंड सरकार के आधिकारिक पोर्टल शामिल हैं, ताकि महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए वित्तीय साक्षरता और सरकारी पहलों के एकीकरण को सुनिश्चित किया जा सके। साहित्य से मिले नतीजों से पता चलता है कि वित्तीय साक्षरता, वित्तीय समावेशन और महिलाओं के सशक्तिकरण के बीच एक अहम कड़ी का काम कर सकती है। उत्तराखंड में महिलाओं का सशक्तिकरण उनकी आर्थिक गतिविधियों में भाग लेने, वित्तीय संसाधनों तक पहुँचने और सोच–समझकर वित्तीय फैसले लेने की क्षमता से गहराई से जुड़ा हुआ है। यह अध्ययन नीति–निर्माताओं को वित्तीय साक्षरता और महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए महिलाओं से जुड़ी पहलें लागू करने में मदद करेगा, जिससे ''सशक्त नारी–समृद्ध उत्तराखंड'' (सशक्त महिला, समृद्ध उत्तराखंड) के विजन में योगदान मिलेगा।

संकेतशब्द

महिला सशक्तिकरण, वित्तीय साक्षरता, वित्तीय समावेशन, सरकारी पहल, SDG

1. परिचय

महिलाओं के सशक्तिकरण को आर्थिक और सामाजिक विकास का एक अहम हिस्सा माना जा रहा है। यह सिर्फ महिलाओं के रोजगार या आय कमाने वाली गतिविधियों में शामिल होने तक ही सीमित नहीं है। इसमें फैसले लेने की क्षमता, संसाधनों तक पहुँच और उन पर नियंत्रण, ज्यादा आजादी और आर्थिक व सामाजिक जीवन में सार्थक भागीदारी भी शामिल है। जैसा कि संयुक्त राष्ट्र के पूर्व महासचिव कोफी अन्नान ने कहा है – ''महिलाओं के सशक्तिकरण से ज्यादा असरदार विकास का कोई और जरिया नहीं है।'' इस तरह, महिलाओं को सशक्त बनाने के महत्व पर जोर दिया गया है और महिलाओं में निवेश को विकास को बढ़ावा देने के सबसे असरदार तरीकों में से एक माना गया है। (संयुक्त राष्ट्र, 2005)।

फाइनेंशियल लिटरेसी (वित्तीय साक्षरता) का मतलब है पैसे का प्रबंधन करने, संसाधनों का सही इस्तेमाल करने और फाइनेंशियल सिस्टम को समझने के लिए जरूरी कौशल और जानकारी होना (लुसार्डी, 2019; OECD, 2023। फाइनेंशियल लिटरेसी भारत जैसी विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में महिलाओं को सशक्त बनाती है, जहाँ पैसे तक पहुँच और फैसले लेने के मामले में अभी भी लैंगिक असमानताएँ मौजूद हैं (कुमार, 2026)। बचत, क्रेडिट, बीमा, निवेश, ब्याज दरों, जोखिम और डिजिटल फाइनेंशियल सेवाओं को समझने से महिलाओं की आय का प्रबंधन करने और वित्तीय फैसलों में भाग लेने की क्षमता मजबूत हो सकती है।

भारत में महिलाओं के बीच सामूहिक आर्थिक संगठन का एक लंबा इतिहास रहा है। इसका एक अहम उदाहरण 'सेल्फ–एम्प्लॉयड विमेंस एसोसिएशन' (SEWA) है, जिसकी स्थापना 1972 में अहमदाबाद में गरीब और खुद का काम करने वाली महिला कामगारों के एक ट्रेड यूनियन के तौर पर की गई थी। SEWA

के काम में असंगठित क्षेत्र की महिलाओं के लिए संगठन, रोजगार, आय की सुरक्षा, वित्तीय सेवाओं तक पहुँच और सामाजिक सुरक्षा पर जोर दिया गया है।

संयुक्त राष्ट्र के सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल्स (SDGs) में महिला सशक्तिकरण को एक अहम कारक माना गया है। 17 लक्ष्यों में से SDG 5 जेंडर–इक्वालिटी (लैंगिक समानता) पर केंद्रित है, जिसका मकसद सभी महिलाओं और लड़कियों को सशक्त बनाना है। इसके लक्ष्यों में आर्थिक संसाधनों तक समान अधिकार और फैसले लेने की प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी शामिल है।

फाइनेंशियल एजुकेशन (वित्तीय शिक्षा), फाइनेंशियल इन्क्लूजन (वित्तीय समावेशन) के लिए एक जरूरी पूरक बन गई है। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया ने 'प्रोजेक्ट फाइनेंशियल लिटरेसी' नाम का एक प्रोजेक्ट शुरू किया है। इसका मकसद अलग–अलग टारगेट ग्रुप्स – जैसे स्कूल और कॉलेज के छात्र, ग्रामीण और शहरी गरीब, महिलाएं, डिफेंस के जवान और सीनियर सिटिजन – तक सेंट्रल बैंक और बैंकिंग से जुड़ी आम जानकारी पहुँचाना है। फाइनेंशियल लिटरेसी, फाइनेंशियल इन्क्लूजन और महिलाओं के सशक्तिकरण के बीच का संबंध बहुत अहम है। इसलिए, फाइनेंशियल लिटरेसी और सरकारी पहलों को महिलाओं के सशक्तिकरण के पूरक हिस्सों के तौर पर समझा जा सकता है। सरकारी प्रोग्राम बैंकिंग, क्रेडिट, SHG और आजीविका तक पहुँच बढ़ाकर मौके पैदा कर सकते हैं, जबकि फाइनेंशियल लिटरेसी महिलाओं को इन मौकों को बेहतर ढंग से समझने और इस्तेमाल करने में मदद कर सकती है। यह मुद्दा उत्तराखंड में खास तौर पर अहम है, जहाँ SHG का एक बड़ा नेटवर्क महिलाओं की वित्तीय भागीदारी को बेहतर बनाने के लिए एक संस्थागत मंच देता है।

1.1 अध्ययन की प्रासंगिकता

फॉर्मल और डिजिटल फाइनेंशियल सेवाओं के विस्तार के साथ महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए फाइनेंशियल साक्षरता की अहमियत बढ़ गई है। आज महिलाएं बैंक अकाउंट, डिजिटल पेमेंट, क्रेडिट, इंश्योरेंस और दूसरे फाइनेंशियल प्रोडक्ट्स का ज्यादा इस्तेमाल कर रही हैं। हालांकि, एक्सेस का मतलब हमेशा सही इस्तेमाल नहीं होता। फाइनेंशियल साक्षरता महिलाओं को फाइनेंशियल प्रोडक्ट्स को समझने, जोखिमों का आकलन करने, बचत की योजना बनाने, उधार को मैनेज करने और सोच–समझकर फाइनेंशियल फैसले लेने में मदद करती है। सरकारी और गैर–सरकारी संगठनों ने ग्रामीण समुदायों को संसाधन उपलब्ध कराने के लिए डिजिटल साक्षरता बढ़ाने की पहल की है, और इन प्रयासों को विशेष रूप से महिला उद्यमियों की जरूरतों को पूरा करने के लिए और बढ़ाने और उनके अनुकूल बनाने की जरूरत है। इसके अलावा, ये संगठन स्थानीय महिला समूहों के साथ मिलकर डिजिटल मार्केटिंग वर्कशॉप, फाइनेंशियल साक्षरता ट्रेनिंग और मोबाइल–आधारित फाइनेंशियल सेवाएं आयोजित कर सकते हैं ताकि ग्रामीण महिला उद्यमियों को डिजिटल प्लेटफॉर्म का सफलतापूर्वक उपयोग करने के लिए सशक्त बनाया जा सके (हसन आदि, 2022)।

फाइनेंशियल साक्षरता उनकी कमाई को मैनेज करने और वर्तमान व भविष्य की फाइनेंशियल जरूरतों से जुड़े फैसले लेने की क्षमता को मजबूत कर सकती है। यह स्वरोजगार और छोटे व्यवसायों में लगी महिलाओं के लिए भी प्रासंगिक है, जहां क्रेडिट, निवेश, कैश फ्लो और फाइनेंशियल जोखिम से जुड़े फैसले सीधे तौर पर उनके कामकाज की स्थिरता को प्रभावित करते हैं।

फाइनेंस का डिजिटलीकरण एक और पहलू जोड़ता है। शौकत आदि 2025) ने उत्तराखंड में महिलाओं को डिजिटल फाइनेंशियल प्लेटफॉर्म के साथ अधिक प्रभावी ढंग से जुड़ने में सक्षम बनाने के लिए फाइनेंशियल साक्षरता के महत्व पर जोर दिया।

2. साहित्य की समीक्षा

उत्तराखंड में महिलाओं के सशक्तिकरण और वित्तीय समावेश पर समय के साथ रिसर्च बढ़ी है, जिसमें वित्तीय पहुंच, SHG (स्वयं सहायता समूह), क्रेडिट साक्षरता और डिजिटल वित्तीय सेवाओं पर ज्यादा ध्यान दिया जा रहा है।

• **वर्मा (2016)** ने उत्तराखंड में महिलाओं के सशक्तिकरण का अध्ययन किया और पहाड़ी इलाकों में महिलाओं के सामने आने वाली मुश्किल सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों पर प्रकाश डाला। अध्ययन में बेहतर शैक्षिक और वित्तीय आजादी और सरकार की मजबूत पहल की जरूरत पर जोर दिया गया। यह अध्ययन महिलाओं के सशक्तिकरण में आने वाली बड़ी संरचनात्मक बाधाओं पर उत्तराखंड–केंद्रित शुरुआती नजरिया पेश करता है।

• **आर्य (2016)** ने उत्तराखंड में 'गौरा देवी कन्याधन योजना' का अध्ययन किया और पाया कि इस योजना के तहत दी जाने वाली आर्थिक मदद ने महिलाओं की शिक्षा और सशक्तिकरण में काफी सहयोग दिया। आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों की लड़कियों को उच्च शिक्षा हासिल करने में मदद करके, इस योजना ने उनके आत्मविश्वास, ज्ञान और सामाजिक स्थिति को बेहतर बनाने में अहम भूमिका निभाई। आर्य ने निष्कर्ष निकाला कि असमानता के चक्र को तोड़ने और महिलाओं के समग्र सामाजिक–आर्थिक उत्थान को सुनिश्चित करने के लिए इस तरह के कदम बहुत जरूरी हैं।

• **श्रीवास्तव और श्रीवास्तव (2017)** ने उत्तराखंड में महिलाओं के सशक्तिकरण के कारकों की जांच की। 'एक्सप्लोरेटरी फैक्टर एनालिसिस' का इस्तेमाल करके, इस अध्ययन ने महिलाओं के सशक्तिकरण से जुड़े कारकों की पहचान की और सामाजिक–सांस्कृतिक, शैक्षिक और आर्थिक बाधाओं को दूर करने के महत्व पर जोर दिया।

• **कांदपाल (2022)** ने ग्रामीण भारत में स्वयं–सहायता समूहों (SHGs) के नजरिए से सामाजिक–आर्थिक विकास का मूल्यांकन किया। अध्ययन में इस बात पर जोर दिया गया कि टिकाऊ विकास हासिल करने के लिए जरूरी है कि सभी लोगों को, बिना किसी लैंगिक भेदभाव के, संसाधनों तक समान पहुँच मिले। महिलाओं में वित्तीय साक्षरता बढ़ाने के लिए टेक्नोलॉजी और नए तरीकों को अपनाना जरूरी है। साथ ही, जागरूकता कार्यक्रमों के जरिए वित्तीय समावेशन की पहलों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी उनके सशक्तिकरण और व्यापक समुदाय के विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

• **पाठक और पंत (2018)** ने उत्तराखंड में महिला SHGs सदस्यों के बीच बैंक क्रेडिट साक्षरता, पहुंच और सेवा की गुणवत्ता का अध्ययन किया। उनके अध्ययन में चार जिलों की 200 महिलाएं शामिल थीं। हालांकि कई प्रतिभागी सरकार द्वारा समर्थित फाइनेंसिंग प्रोग्राम के बारे में जानती थीं, फिर भी लोन की शर्तों, रीपेमेंट, डिफॉल्ट और क्रेडिट मैनेजमेंट के दूसरे पहलुओं के बारे में उनकी समझ में कमियां थीं ।

• **फारूकी और कुमार (2019)** ने उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड में SHGs के जरिए महिलाओं के सशक्तिकरण का अध्ययन किया। उनके नतीजों से पता चलता है कि SHGs सामाजिक–आर्थिक स्थिति, आय, आवाजाही, आत्मविश्वास और फैसले लेने की क्षमता में सुधार लाने में योगदान दे सकते हैं। इस अध्ययन में SHGs और सरकारी कार्यक्रमों के बीच बेहतर तालमेल की भी वकालत की गई।

• **भारती और डंगवाल (2023)** ने उत्तराखंड में ग्रामीण महिलाओं के वित्तीय समावेशन और सामाजिक स्थिति का अध्ययन किया। उनकी स्टडी में 214 ग्रामीण महिलाओं से मिले प्राइमरी डेटा का इस्तेमाल किया गया और इसमें वित्तीय समावेशन को तय करने वाले कारकों और महिलाओं की सामाजिक स्थिति के साथ इसके

संबंध पर ध्यान दिया गया। यह स्टडी इस व्यापक तर्क में राज्य–विशेष के अनुभवजन्य प्रमाण जोड़ती है कि वित्तीय समावेशन महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने में योगदान दे सकता है।

• **शौकत और अन्य (2025)** ने वित्तीय साक्षरता और महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण का अध्ययन किया और वित्तीय ज्ञान को महिलाओं की आर्थिक भागीदारी से जोड़ने में डिजिटल वित्तीय सेवाओं की भूमिका पर प्रकाश डाला।

• **नसीफ और अन्य (2025)** ने भारत में 23,700 से ज्यादा महिलाओं के राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिनिधि डेटा का इस्तेमाल करते हुए पाया कि वित्तीय समावेशन और महिलाओं के वित्तीय सशक्तिकरण के बीच एक महत्वपूर्ण संबंध है, जिसमें सक्रिय बैंकिंग व्यवहार एक मध्यस्थ की भूमिका निभाता है ।

• **वाही और कुमार (2025)** ने भी इसी तरह यह निष्कर्ष निकाला कि महिलाओं की वित्तीय साक्षरता शिक्षा, सामाजिक–आर्थिक स्थितियों, सांस्कृतिक मानदंडों और वित्तीय शिक्षा तक पहुँच जैसे कारकों से प्रभावित होती है। समीक्षा में डिजिटल वित्तीय सेवाओं के बढ़ते महत्व और महिलाओं की विशिष्ट परिस्थितियों को ध्यान में रखकर बनाए गए वित्तीय–शिक्षा कार्यक्रमों की आवश्यकता पर भी जोर दिया गया ।

2.1 उद्देश्य

• महिलाओं के सशक्तिकरण को बढ़ावा देने में वित्तीय साक्षरता के महत्व और भूमिका की जांच करना।

• उत्तराखंड के विशेष संदर्भ में, महिलाओं के सशक्तिकरण को बढ़ावा देने वाली प्रमुख सरकारी पहलों का अध्ययन करना।

• उत्तराखंड में महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति को समझना।

• वित्तीय सेवाओं तक पहुँचने और उनके उपयोग में महिलाओं के सामने आने वाली प्रमुख चुनौतियों की पहचान करना।

3. रिसर्च का तरीका

यह स्टडी खोजपूर्ण (Exploratory) है और सेकेंडरी डेटा पर आधारित है। इसमें मौजूदा लिटरेचर, न्यूज आर्टिकल, रिसर्च पेपर और सरकारी वेबसाइटें शामिल हैं, जैसे कि सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया (RBI), डिपार्टमेंट ऑफ फाइनेंशियल सर्विसेज, वित्त मंत्रालय, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नीति आयोग, भारत की जनगणना, नेशनल सेंटर फॉर फाइनेंशियल एजुकेशन (NCFE), यूनाइटेड नेशन्स, MY SCHEME और उत्तराखंड सरकार के संबंधित विभाग और आधिकारिक पोर्टल। इस तरह, महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए फाइनेंशियल लिटरेसी और सरकारी पहलों को एक साथ लाने का प्रयास किया गया है।

4. उत्तराखंड में महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति का संक्षिप्त विवरण

उत्तराखंड का पहाड़ी भूगोल, बड़ी ग्रामीण आबादी और समुदाय–आधारित आजीविका गतिविधियों पर मजबूत निर्भरता, महिलाओं के सशक्तिकरण की जांच के लिए एक खास माहौल बनाती है। 2011 की जनगणना के अनुसार राज्य में महिलाओं की संख्या 4962574 थी, जबकि कुल लिंगानुपात प्रति 1000 पुरुषों पर 963 महिलाएं था। पुरुषों में साक्षरता दर 88.33 प्रतिशत की तुलना में महिलाओं में साक्षरता दर 70.70 प्रतिशत थी, जो 17.63 प्रतिशत अंकों के लैंगिक अंतर को दर्शाता है ।

राज्य में महिलाओं की आर्थिक भागीदारी कृषि, पशुपालन, घरेलू उद्यमों, वेतन–रोजगार और अन्य आजीविका गतिविधियों तक फैली हुई है। जनगणना के आंकड़े महिलाओं की आर्थिक गतिविधियों के बारे में

अलग–अलग जानकारी देते हैं, जिसमें मुख्य और सीमांत श्रमिकों के रूप में भागीदारी और विभिन्न व्यावसायिक श्रेणियों में शामिल होना शामिल है ।

इसलिए, उत्तराखंड में महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति को केवल औपचारिक रोजगार के माध्यम से नहीं समझा जा सकता है। घरेलू उत्पादन, कृषि, पशुपालन और सामुदायिक गतिविधियों में महिलाओं का योगदान भी महत्वपूर्ण है। साथ ही, भौगोलिक बाधाएं, संसाधनों तक असमान पहुंच और शैक्षिक व वित्तीय अवसरों में अंतर, उनकी आर्थिक भागीदारी को बेहतर वित्तीय स्वतंत्रता में बदलने की क्षमता को प्रभावित कर सकते हैं ।

4.1 महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए सरकारी पहलों की झलक

• सरकारी संगठनों ने ग्रामीण समुदायों को संसाधन उपलब्ध कराने के लिए डिजिटल साक्षरता बढ़ाने की पहल की है, और इन प्रयासों को विशेष रूप से महिला उद्यमियों की जरूरतों को पूरा करने के लिए और बढ़ाने और उसके अनुसार ढालने की जरूरत है। (वॉसेंबर्ग, 2013)। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया (RBI) के डिप्टी गवर्नर द्वारा 'वित्तीय शिक्षा के लिए राष्ट्रीय रणनीति (NSFE): 2020–2025' नाम का एक दस्तावेज जारी किया गया। इस रणनीति में देश में वित्तीय शिक्षा के प्रसार के लिए '5 C' अप्रोच का सुझाव दिया गया है ।

• रणनीति के '5 C' अप्रोच में शामिल स्कूलों, कॉलेजों और प्रशिक्षण संस्थानों के पाठ्यक्रम में जरूरी कंटेंट (सामग्री) विकसित करने पर जोर देनाय वित्तीय सेवाएँ प्रदान करने में शामिल मध्यस्थों की क्षमता विकसित करनाय उचित कम्युनिकेशन (संचार) रणनीति के माध्यम से वित्तीय साक्षरता के लिए समुदाय–आधारित मॉडल के सकारात्मक प्रभाव का लाभ उठानाय और विभिन्न हितधारकों के बीच सहयोग को बढ़ाना (NCFE)।

4.1.1 भारत सरकार की कई पहलें

फाइनेंशियल एजुकेशन एंड क्रेडिट गाइडेंस सेंटर (FLCC): इसे RBI ने शुरू किया है और वही इसे चलाता है। पूरे भारत में 1500 से ज्यादा FLCs मुफ्त फाइनेंशियल एजुकेशन देते हैं, खासकर ग्रामीण और अर्ध–शहरी इलाकों में।

बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजनाः यह भारत सरकार की एक पहल है जिसका मकसद महिलाओं के लिए सोशल सर्विस के बारे में जागरूकता बढ़ाना और उन्हें ज्यादा असरदार बनाना है।

सुकन्या समृद्धि योजनाः यह स्कीम घर के संसाधनों और बचत के सही बंटवारे को पक्का करती है, खासकर उन इलाकों में जहाँ लड़कियों के साथ लड़कों की तुलना में भेदभाव होता है।

प्रधानमंत्री जन–धन योजनाः देश में फाइनेंशियल इन्क्लूजन (वित्तीय समावेशन) को बेहतर बनाने के लिए सरकार द्वारा उठाए गए सबसे बड़े कदमों में से एक PMJDY को शुरू करना है। PMJDY का मकसद कई तरह की फाइनेंशियल सर्विस तक पहुँच देना है।

NCFE: नेशनल सेंटर फॉर फाइनेंशियल एजुकेशन (NCFE) को फाइनेंशियल एजुकेशन के लिए नेशनल स्ट्रेटेजी (NSFE) को लागू करने के लिए बनाया गया था। यह देश के जीवन के सभी क्षेत्रों में मदद करता है। इसमें फाइनेंशियल सेक्टर के सभी रेगुलेटर शामिल हैं, जैसे रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया (RBI), सिक्योरिटीज एंड एक्सचेंज बोर्ड ऑफ इंडिया (SEBI), इंश्योरेंस रेगुलेटरी एंड डेवलपमेंट अथॉरिटी ऑफ इंडिया (IRDAI), पेंशन फंड रेगुलेटरी एंड डेवलपमेंट अथॉरिटी (PFRDA), और नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ सिक्योरिटीज मार्केट रिसर्च (NISM)।



फिगर 1. स्रोत: https://ncfe-org-in/

• **नारी शक्ति पुरस्कार – महिलाओं के लिए राष्ट्रीय पुरस्कारः** भारत सरकार के महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने 'नारी शक्ति पुरस्कार' शुरू किया है। इसका मकसद महिलाओं, खासकर कमजोर और हाशिए पर रहने वाले समूहों के सशक्तिकरण में उनके बेहतरीन योगदान को पहचानना और सम्मानित करना है। इस योजना का उद्देश्य सभी क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा देना और राष्ट्र–निर्माण में उनकी भूमिका को उजागर करना है। साथ ही, इसका मकसद महिलाओं की शानदार उपलब्धियों को दिखाकर नागरिकों, खासकर युवाओं को प्रेरित करना भी है। (इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल डेवलपमेंट, nd.)

• **वनइंडिया स्टाफ (२०२६)** के अनुसार, मुख्यमंत्री पुष्कर सिंह धामी की अध्यक्षता में उत्तराखंड ने अपनी पहली डेडिकेटेड महिला पॉलिसी को मंजूरी दी है, जिसका फोकस पूरे राज्य में शासन, रोजगार और आर्थिक गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी को बेहतर बनाना है, जिससे महिलाओं की भागीदारी के जरिए सशक्तिकरण में योगदान मिलेगा। इस तरह, यह एक तरह से "सशक्त नारी–समृद्ध उत्तराखंड" (सशक्त महिलाएँ, समृद्ध उत्तराखंड) के अपने विजन को पूरा करने का एक तरीका है ।

• **उत्तराखंड राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन (USRLM)** ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण के लिए सबसे महत्वपूर्ण संस्थागत तंत्रों में से एक है। यह मिशन गरीब ग्रामीण परिवारों, विशेषकर महिलाओं को स्वयं–सहायता समूहों (SHGs) में संगठित करता है और उन्हें संस्थागत, वित्तीय और आजीविका संबंधी सहायता प्रदान करता है ।

• **राज्य समेकित सहकारी विकास योजना – गंगा गाय महिला डेयरी योजनाः** "गंगा गाय महिला डेयरी योजना" को उत्तराखंड सरकार के डेयरी विकास विभाग द्वारा राज्य समेकित सहकारी विकास योजना के तहत लागू किया जाता है। इस योजना का मकसद सहकारी समितियों की महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और सामान्य श्रेणी के सदस्यों के बीच डेयरी के क्षेत्र में उद्यमिता को बढ़ावा देना है। इसके लिए दूध देने वाली गायों और भैंसों को खरीदने के लिए सब्सिडी और लोन के रूप में आर्थिक मदद दी जाती है। (भारत सरकार, n.d)

• उत्तराखंड सरकार ने 2003 में 'उत्तराखंड महिला समेकित विकास योजना' (UMSVY) शुरू की थी। इसका मकसद महिलाओं का सर्वांगीण सशक्तिकरण करना और उन्हें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास में शामिल होने के काबिल बनाना था। इसने आजीविका, बुनियादी ढांचे और स्वास्थ्य से जुड़ी पहलों को एक साथ लाकर महिला सशक्तिकरण और ग्रामीण विकास में अहम योगदान दिया है। इस प्रोजेक्ट ने महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के साथ–साथ उनके जीवन स्तर को भी बेहतर बनाया है, जिससे यह टिकाऊ सामुदायिक विकास का एक मजबूत मॉडल बन गया है।

• 'नंदा गौरा योजना' राज्य सरकार की एक और महत्वपूर्ण पहल है। इसे उत्तराखंड सरकार के महिला सशक्तिकरण और बाल विकास विभाग ने शुरू किया है। इस योजना का मकसद परिवार की अधिकतम दो बेटियों को आर्थिक मदद देना है। यह मदद हर बेटी को दो किश्तों में दी जाती हैः पहली किश्त जन्म के समय दी जाती है अगर बच्ची का जन्म अस्पताल या ANM सेंटर में हुआ हो, और दूसरी किश्त तब दी जाती है जब बच्ची 12वीं कक्षा पास कर लेती है। यह योजना लड़कियों के विकास के खास पड़ावों पर आर्थिक मदद देती है और इसलिए महिलाओं के लंबे समय के सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण के लिए अहम है।

• राष्ट्रीय स्तर पर, PMJDY ने महिलाओं की औपचारिक बैंकिंग सेवाओं तक पहुँच को काफी बढ़ाया है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, 28 फरवरी 2025 तक PMJDY के कुल 54.97 करोड़ खातों में से 30.6 करोड़ खाते महिलाओं के नाम पर थे। DAY & NRLM एक और प्रमुख राष्ट्रीय पहल है। जून 2025 तक, इस कार्यक्रम के तहत10.5 करोड़ महिलाओं को 90.90 लाख स्वयं–सहायता समूहों (SHGs) से जोड़ा गया था। इसकी गतिविधियों में वित्तीय सहायता, बैंक लिंकेज, आजीविका विकास और क्षमता निर्माण शामिल हैं ।

• लखपति दीदी योजनाः "लखपति दीदी योजना" उत्तराखंड सरकार के ग्रामीण विकास विभाग द्वारा चलाई जा रही है । इस योजना को भारत के माननीय प्रधानमंत्री ने महिलाओं की आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने और उन्हें 'लखपति' बनने में सक्षम बनाने के मुख्य उद्देश्य से शुरू किया था। इस पहल के तहत, उत्तराखंड के माननीय मुख्यमंत्री ने 2025 तक 1.5 लाख महिला सदस्यों को 'लखपति दीदी' का दर्जा दिलाने का संकल्प लिया है। इस योजना के हिस्से के तौर पर, उत्तराखंड राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन ने पहले ही स्वयं–सहायता समूहों से जुड़ी 40270 महिलाओं को 2022–23 में और 52729 महिलाओं को 2023–24 में 'लखपति दीदी' के रूप में मान्यता दी है। (भारत सरकार, n.d.)

• प्रधानमंत्री मुद्रा योजना (PMMY) और स्टैंड–अप इंडिया भी संस्थागत क्रेडिट के जरिए महिलाओं के उद्यमिता को बढ़ावा देते हैं। इकोनॉमिक सर्वे 2023–24 में दिए गए सरकारी आंकड़ों के अनुसार, मई 2024 तक मंजूर किए गए PMMY लोन में से लगभग 68 प्रतिशत महिलाओं को दिए गए थे और स्टैंड–अप इंडिया के लाभार्थियों में से 77.7 प्रतिशत महिलाएं थीं।

इन सभी पहलों को मिलाकर देखें तो सरकार के सहयोग के तीन मुख्य पहलू सामने आते हैंः वित्तीय पहुँच, आर्थिक अवसर और वित्तीय क्षमता। हालाँकि, इनकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि महिलाएँ उन्हें उपलब्ध कराए गए संसाधनों और अवसरों को समझ पाती हैं या नहीं और उन पर सार्थक नियंत्रण रख पाती हैं या नहीं।

4.2 चुनौतियां

• सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम (MSME) मंत्रालय की 2024 की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में महिलाओं के स्वामित्व वाले लगभग 1.5 करोड़ MSME हैं, जिनमें से कई ग्रामीण इलाकों में चल रहे हैं। ये उद्यम परिवारों की आय और व्यापक आर्थिक विकास में योगदान देकर महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हालांकि, जेंडर से जुड़ी

143 बाधाएं – जिनमें ज्यादा लोन मिलने में सीमित पहुंच और MFI के लीडरशिप पदों पर महिलाओं की कम भागीदारी शामिल है – विकास में रुकावट बनी हुई हैं (MSME, 2024: स्कारलाटोस, 2004) ।

• भौगोलिक सुविधा। राज्य के पहाड़ी इलाकों और दूर–दूर तक फैली बस्तियों के कारण महिलाओं और औपचारिक वित्तीय संस्थानों, बाजारों व अन्य सेवाओं के बीच की दूरी बढ़ सकती है। डिजिटल वित्तीय सेवाएँ इन बाधाओं को कुछ हद तक कम कर सकती हैं, लेकिन इसके लिए भरोसेमंद कनेक्टिविटी और जरूरी डिजिटल कौशल की जरूरत होती है।

• फाइनेंशियल इन्क्लूजन (वित्तीय समावेशन) और फाइनेंशियल लिटरेसी (वित्तीय साक्षरता)। फाइनेंशियल एक्सेस (वित्तीय सेवाओं तक पहुँच) और फाइनेंशियल लिटरेसी के बीच एक अंतर है। हो सकता है कि किसी महिला का बैंक खाता हो, लेकिन उसमें फाइनेंशियल लिटरेसी की कमी होय इसमें ब्याज दरों, लोन चुकाने के शेड्यूल, इंश्योरेंस, इन्वेस्टमेंट प्रोडक्ट्स, डिजिटल ट्रांजैक्शन या वित्तीय जोखिमों की समझ शामिल है ।

• डिजिटल फाइनेंशियल लिटरेसी (वित्तीय साक्षरता)। जैसे–जैसे बैंकिंग और पेमेंट मोबाइल और डिजिटल प्लेटफॉर्म पर तेजी से बढ़ रहे हैं, महिलाओं को न सिर्फ वित्तीय जानकारी की जरूरत है, बल्कि टेक्नोलॉजी का सुरक्षित रूप से इस्तेमाल करने की क्षमता की भी जरूरत है। धोखाधड़ी, गलत ट्रांजैक्शन और साइबर जोखिमों की चिंताएं महिलाओं को डिजिटल फाइनेंशियल सेवाओं का स्वतंत्र रूप से इस्तेमाल करने से रोक सकती हैं ।

• वित्तीय संसाधनों पर नियंत्रण। वित्तीय रूप से सशक्त होने का मतलब सिर्फ कमाई करना या बैंक खाता होना ही नहीं है। इसमें यह तय करने की क्षमता भी शामिल है कि पैसे की बचत, उधार, निवेश और खर्च कैसे किया जाए। घर की जिम्मेदारियाँ और समाज की उम्मीदें महिलाओं के वित्तीय फैसलों पर उनके नियंत्रण को सीमित कर सकती हैं, भले ही वे आर्थिक गतिविधियों में हिस्सा लेती हों ।

5. निष्कर्ष

• समीक्षा से पता चलता है कि वित्तीय साक्षरता और वित्तीय समावेशन का महिलाओं के सशक्तिकरण से गहरा संबंध है। सरकारी नीति धीरे–धीरे केवल कल्याणकारी सहायता देने से आगे बढ़कर महिलाओं की बैंकिंग, क्रेडिट, आजीविका, उद्यमिता और सामुदायिक संस्थाओं तक पहुँच बेहतर बनाने की दिशा में बढ़ी है।

• एक मुख्य निष्कर्ष यह है कि SHG (स्वयं सहायता समूह) महिलाओं की वित्तीय और आर्थिक भागीदारी के लिए एक महत्वपूर्ण मंच हैं। राष्ट्रीय स्तर पर DAY & NRLM और उत्तराखंड में USRLM का बड़े पैमाने पर विस्तार ग्रामीण महिलाओं तक पहुँचने में सामूहिक संस्थाओं के महत्व को दर्शाता है।

• PMJDY ने लाखों महिलाओं को औपचारिक बैंकिंग से जोड़ा है, लेकिन सिर्फ खाता होने का मतलब वित्तीय साक्षरता, सक्रिय इस्तेमाल या सशक्तिकरण नहीं है। हाल की राष्ट्रीय रिसर्च इस अंतर की पुष्टि करती है और बताती है कि वित्तीय समावेशन और महिलाओं के सशक्तिकरण के बीच संबंध में सक्रिय बैंकिंग व्यवहार एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

• इससे यह भी पता चलता है कि डिजिटल वित्तीय सेवाएँ महिलाओं की वित्तीय क्षमता का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनती जा रही हैं। वित्तीय साक्षरता में अब डिजिटल पेमेंट, ऑनलाइन बैंकिंग, धोखाधड़ी से बचाव और सुरक्षित वित्तीय व्यवहार की जानकारी शामिल करना जरूरी हो गया है।

• अंत में, सबूत एक एकीकृत दृष्टिकोण (integrated approach) के महत्व की ओर इशारा करते हैं। वित्तीय समावेशन, वित्तीय साक्षरता, आजीविका, उद्यमिता और संस्थागत सहयोग तब सबसे अधिक प्रभावी होते हैं जब वे अलग–अलग काम करने के बजाय एक–दूसरे को मजबूत करते हैं।

5.1 चर्चा

मौजूदा जानकारी और अध्ययनों से पता चलता है कि वित्तीय साक्षरता, वित्तीय समावेशन और महिलाओं के सशक्तिकरण के बीच एक अहम कड़ी का काम कर सकती है। बैंक खाता, लोन या इंश्योरेंस प्रोडक्ट एक मौका तो देते हैं, लेकिन वित्तीय जानकारी और आत्मविश्वास ही यह तय करते हैं कि उस मौके का कितनी अच्छी तरह इस्तेमाल किया जाता है।

यह संबंध उत्तराखंड के लिए खास तौर पर अहम है क्योंकि SHG (स्वयं सहायता समूह) एक ऐसा सामुदायिक माहौल देते हैं जिसमें महिलाएं असल में वित्तीय गतिविधियों में शामिल होकर सीख सकती हैं। नियमित बचत, ग्रुप फंड का प्रबंधन, लोन लेना और बैंकों के साथ बातचीत करने से व्यावहारिक वित्तीय अनुभव मिल सकता है। SHG–बैंक लिंकेज प्रोग्राम पर उत्तराखंड से जुड़े हालिया सबूत इस प्रक्रिया में वित्तीय साक्षरता के महत्व को और पुख्ता करते हैं।

जो कम सुविधा वाले इलाकों से आती हैं। वे समावेशी विकास को बढ़ावा देकर महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण के लिए माइक्रोफाइनेंस, बचत और क्रेडिट समूह के साथ–साथ वित्तीय साक्षरता कार्यक्रम भी उपलब्ध कराते हैं (चक्रवर्ती और अन्य, 2019)।

6. संदर्भ

1. अन्नान, के. (2005, 9 मई), महिलाओं के सशक्तिकरण से ज्यादा असरदार विकास का कोई साधन नहीं है, गुटनिरपेक्ष देशों की मंत्री–स्तरीय बैठक में महासचिव का संदेश, संयुक्त राष्ट्र।

2. आर्य, यू. सी. (2016) महिलाओं के आर्थिक, शैक्षिक और सामाजिक उत्थान में "गौरा देवी कन्याधन" योजना का आलोचनात्मक अध्ययन (कुमाऊं मंडल के विशेष संदर्भ में), अप्रकाशित डॉक्टरेट शोध–प्रबंध, कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल।

3. भारती, आर., और डंगवाल, आर. सी. (2023) ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक स्थिति पर वित्तीय समावेशन के प्रभाव की जांचः उत्तराखंड में एक अध्ययन। नाइस जर्नल ऑफ बिजनेस, 18(1),1–12।

4. चक्रवर्ती, ए., शर्मा, पी., और चतुर्वेदी, सी. (2019) महिला सशक्तिकरण और गरीबी उन्मूलन पर स्वयं–सहायता समूहों का बढ़ता प्रभावरू विश्वसनीयता का एक अध्ययन। SSRN, 6(2), 35–38। DOI: 10-2139/ssrn,3407126.

5. फारूकी, एन., और कुमार, ए. (2019) उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड में महिला सशक्तिकरणरू स्वयं–सहायता समूहों का विश्लेषण, द ईस्टर्न एंथ्रोपोलॉजिस्ट, 72(1–2) 193–210।

6. भारत सरकार (तारीख नहीं) लखपति दीदी योजना – उत्तराखंड, MyScheme, 26 अगस्त, 2026 को https://www-myscheme-gov-in/schemes/ldyuk से लिया गया।

7. भारत सरकार (तारीख नहीं) राज्य समेकित सहकारी विकास योजना – गंगा गाय महिला डेयरी योजना, MyScheme, 26अगस्त, 2026 को https://www-myscheme-gov-in/schemes/rssvyeggmdy से लिया गया।

8. सरकारी आदेशः नंदा गौरा योजना, उत्तराखंड सरकार।

9. हसन, आर., अशफाक, एम., परवीन, टी., और गुनार्डी, ए. (2023) फाइनेंशियल इन्क्लूजन – क्या महिला उद्यमियों के लिए डिजिटल फाइनेंशियल लिटरेसी मायने रखती है? इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल इकोनॉमिक्स, 50(8), 1085–1104, DOI: 10.1108/IJSE-04-2022-0277

https://doi-org/10.1080/23322039.2024.2440444

11. इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल डेवलपमेंट. (n.d.). इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल डेवलपमेंट में आपका स्वागत है। ऊधम सिंह नगर, उत्तराखंड में एक NGO. https://isduk-in/activity/37

12. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन इकोनॉमिक्स एंड सोशल साइंसेज, 7(10), 303–314।

13. कांडपाल, वी. (2022) ग्रामीण भारत में स्वयं–सहायता समूहों के माध्यम से सामाजिक–आर्थिक विकास – एक गुणात्मक अध्ययन. क्वालिटेटिव रिसर्च इन फाइनेंशियल मार्केट्स, 14(5), 621–636।

14. कुमार, वी. (2026) क्या फाइनेंशियल लिटरेसी से बेहतर फाइनेंशियल फैसले लिए जा सकते हैं? भारत की महिला कार्यबल से मिली जानकारी. मेटामोर्फोसिसः ए जर्नल ऑफ मैनेजमेंट रिसर्च।

15. मनोलोवा, टी. एस., कार्टर, एन. एम., मानेव, आई. एम., और ग्योशेव, बी. एस. (2017) परिवार और दोस्तों से फंडिंग के रास्ते को तोड़नाः शुरुआती दौर के वेंचर में जेंडर और एंजेल इन्वेस्टिंग. वेंचर कैपिटल, 19(3) 157–181.

16. वित्त मंत्रालय, भारत सरकार. (2024, 22 जुलाई). महिला श्रम बल भागीदारी दर (LFPR) 2017–2018 में 23.3 प्रतिशत से बढ़कर 2022–2023 में 37 प्रतिशत हो गई, प्रेस सूचना ब्यूरो।

17. ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार. (2024, 9 अगस्त). दीनदयाल अंत्योदय योजना–राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के तहत उपलब्धियां, प्रेस सूचना ब्यूरो।

18. ग्रमीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार (2024, 2 अगस्त). लखपति दीदी योजना का कार्यान्वयन, प्रेस सूचना ब्यूरो।

19. MSME (2024) वार्षिक रिपोर्ट, सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम मंत्रालय, भारत सरकार।

20. MSME (2024) वार्षिक रिपोर्ट, सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम मंत्रालय, भारत सरकार।

21. नसीफ, एम., रफी, टी. ए., और प्रसाद, एस. (2025), वित्तीय समावेशन, महिला सशक्तिकरण और सक्रिय बैंकिंग व्यवहार की भूमिका, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी एंड सोशल पॉलिसी, 45(5–6), 606–625, https://doi.org/10.1108/IJSSP-02-2024-0104

22. पांडे, एल., राजीव, पी. वी., सक्सेना, ए., और पांडे, डी. (2024) उत्तराखंड राज्य के विशेष संदर्भ में स्वयं–सहायता समूह–बैंक लिंकेज कार्यक्रम पर वित्तीय साक्षरता के प्रभाव की जांच, सर्कुलर इकोनॉमी एंड सस्टेनेबिलिटी, 4(3), 2339–2364, https://doi.org/10.1007/s43615-024-00398-y

23. पाठक, पी., और पंत, वी. (2018), महिला स्वयं–सहायता समूहों के बीच बैंक क्रेडिट साक्षरता, पहुंच और सेवा गुणवत्ता का आकलन, एकेडमी ऑफ एंटरप्रेन्योरशिप जर्नल, 24(1), 1–17।

24. भारतीय रिजर्व बैंक (2025) वार्षिक रिपोर्ट 2024–25, भारतीय रिजर्व बैंक, सेल्फ–एम्प्लॉयड विमेंस एसोसिएशन (SEWA), (तारीख नहीं दी गई), इतिहास, SEWA।

25. शिप्रा बसेरा, डॉ. रेखा जोशी, 2026, महिला सशक्तिकरण में उत्तराखंड की नंदा गौरा योजना की भूमिका, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंजीनियरिंग रिसर्च एंड टेक्नोलॉजी (IJERT) वॉल्यूम 15, इश्यू 02, फरवरी, 2026.

26. शौकत, एम., नगीना, आर., बाबा, एम. ए., और याह्या, ए. टी. (2025) महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण पर वित्तीय साक्षरता का प्रभावः डिजिटल वित्तीय सेवाओं की मध्यस्थ भूमिका की पड़ताल, कोजेंट इकोनॉमिक्स एंड m फाइनेंस, 13(1), आर्टिकल 2440444।

27. स्कार्लेटोस, के. (2004) माइक्रोफाइनेंस और महिला उद्यमी, जर्नल ऑफ एंटरप्रेन्योरशिप डेवलपमेंट, 32(1), 67–88।

28. स्कार्लेटोस, के. (2004) माइक्रोफाइनेंस और महिला उद्यमी, जर्नल ऑफ एंटरप्रेन्योरशिप डेवलपमेंट, 32(1), 67–88।

29. श्रीवास्तव, वी., और श्रीवास्तव, ए. (2017) उत्तराखंड में महिला सशक्तिकरण के निर्धारक।

30. यूएनm न्यूज, (2021, 8 मार्च), महिलाओं पर कोविड–19 महामारी का प्रभाव।

31. संयुक्त राष्ट्र आर्थिक और सामाजिक मामलों का विभाग (n.d) लक्ष्य 5: लैंगिक समानता हासिल करना और सभी महिलाओं और लड़कियों को सशक्त बनाना, संयुक्त राष्ट्र।

32. उत्तराखंड महिला समेकित विकास योजनाः दिशानिर्देश, उत्तराखंड सरकार।

33. उत्तराखंड राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन, (तारीख नहीं दी गई), उत्तराखंड राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन, उत्तराखंड सरकार।

34. वाही, एन., और कुमार, ए. (2025), महिलाओं की वित्तीय साक्षरतारू प्रेडिक्टर्स (पूर्वानुमान लगाने वाले कारकों), व्यवहारों और वित्तीय परिणामों की व्यवस्थित समीक्षा, इंडियन जर्नल ऑफ इकोनॉमिक्स एंड फाइनेंस, 5(1), 95–101. https://doi.org/10.54105/ijef.A2616.05010525

35. वर्मा, के. के. (2016) भारत में महिला सशक्तिकरणः उत्तराखंड का एक अध्ययन। मदरहुड इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च एंड डेवलपमेंट, 1(2), 8–23।

36. वॉसेंबर्ग, एस. (2013) विकासशील देशों में महिला उद्यमिता को बढ़ावा देनाः उद्यमिता में लैंगिक अंतर का कारण क्या है और इसे कैसे कम किया जाए? जर्नल ऑफ एंटरप्रेन्योरशिपइन इमर्जिंग इकोनॉमीज, 5(2), 72–83।

37. महिला सशक्तिकरण एवं बाल विकास विभाग, उत्तराखंड सरकार (n.d)।

38. महिला सशक्तिकरण एवं बाल विकास विभाग, उत्तराखंड सरकार (n.d)।

39. वनइंडिया स्टाफ (2026, 25 जून) उत्तराखंड की महिला नीति ने महिला–नेतृत्व वाले विकास का नया अध्याय शुरू किया। वनइंडिया https://www.oneindia.com/india/uttarakhand-s-women-policy-marks-a-new-chapter-in-women-led-growth-8129077.html

उत्तराखण्ड में बालिका शिक्षा : पर्वतीय संदर्भ, चुनौतियाँ एवं भविष्य की संभावनाएँ

1. प्रस्तावना

शिक्षा मानव विकास की आधारभूत प्रक्रिया है, जो व्यक्ति को केवल ज्ञान और कौशल प्रदान नहीं करती, बल्कि उसे अपने जीवन के संबंध में निर्णय लेने, सामाजिक संबंधों में सक्रिय भागीदारी करने तथा उपलब्ध अवसरों का उपयोग करने के लिए सक्षम बनाती है। किसी भी समाज में शिक्षा के अवसरों का समान वितरण सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक समानता का महत्वपूर्ण आधार है। इस दृष्टि से बालिका शिक्षा को केवल शिक्षा क्षेत्र की एक उपश्रेणी के रूप में नहीं, बल्कि लैंगिक समानता, सामाजिक सशक्तीकरण और समावेशी विकास की केंद्रीय शर्त के रूप में देखा जाना चाहिए।

बालिका की शिक्षा का प्रभाव उसके व्यक्तिगत जीवन तक सीमित नहीं रहता। शिक्षा उसके स्वास्थ्य, आत्मविश्वास, निर्णय लेने की क्षमता, रोजगार की संभावनाओं तथा सामाजिक सहभागिता को प्रभावित करती है और इसके व्यापक प्रभाव परिवार तथा अगली पीढ़ी तक पहुँचते हैं। अतः किसी समाज में महिलाओं की स्थिति को समझने के लिए बालिकाओं को उपलब्ध शैक्षिक अवसरों और उन अवसरों की वास्तविक उपयोगिता को समझना आवश्यक है।

भारत में स्वतंत्रता के बाद से बालिका शिक्षा के विस्तार की दिशा में अनेक महत्वपूर्ण प्रयास किए गए हैं। प्रारंभिक दशकों में प्राथमिक शिक्षा तक पहुँच और नामांकन बढ़ाना प्रमुख लक्ष्य रहा, जबकि वर्तमान समय में चुनौती केवल विद्यालय में प्रवेश तक सीमित नहीं है। अब प्रश्न यह भी है कि बालिकाएँ विद्यालय में कितनी देर तक बनी रहती हैं, एक शैक्षिक स्तर से दूसरे स्तर तक कितनी सफलतापूर्वक पारगमन करती हैं, माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक शिक्षा पूरी कर पाती हैं तथा उन्हें विद्यालय में किस प्रकार का सुरक्षित और अनुकूल वातावरण उपलब्ध होता है।

यह परिवर्तन वैश्विक शिक्षा विमर्श में भी दिखाई देता है। संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्य (Sustainable Development Goals) में SDG4 का उद्देश्य सभी के लिए समावेशी और समान गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करना है। इसके अंतर्गत Target 4.1 सभी बालिकाओं और बालकों के लिए प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा की पूर्णता पर बल देता है, जबकि Target 4.5 का स्पष्ट उद्देश्य शिक्षा में लैंगिक असमानताओं को समाप्त करना है। इसी प्रकार Target 4.a विद्यालयों में बाल-संवेदनशील, दिव्यांग-संवेदनशील और लैंगिक-संवेदनशील, सुरक्षित एवं समावेशी अधिगम वातावरण की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

इस प्रकार बालिका शिक्षा को केवल नामांकन के आधार पर मापना पर्याप्त नहीं है। यदि किसी क्षेत्र में बालिकाओं का प्राथमिक स्तर पर नामांकन अच्छा है, लेकिन माध्यमिक स्तर पर उनकी भागीदारी कम हो जाती है, तो इसे शिक्षा की पूर्ण सफलता नहीं

माना जा सकता। इसी कारण प्रस्तुत अध्ययन में नामांकन के साथ-साथ शैक्षिक पारगमन , विद्यालय छोड़ने की दर, विद्यालयी सुविधाओं और महिला शिक्षकों की उपलब्धता जैसे संकेतकों को भी महत्व दिया गया है।

उत्तराखण्ड का विशिष्ट संदर्भ

उत्तराखण्ड में बालिका शिक्षा का प्रश्न देश के अन्य राज्यों की तुलना में एक विशिष्ट भौगोलिक संदर्भ में सामने आता है। राज्य का एक बड़ा हिस्सा पर्वतीय है, जहाँ बस्तियाँ अनेक स्थानों पर छोटी, दूर-दूर और भौगोलिक रूप से दुर्गम क्षेत्रों में स्थित हैं। इसके विपरीत देहरादून, हरिद्वार, ऊधमसिंह नगर तथा अन्य मैदानी/अधिक शहरीकृत क्षेत्रों में शिक्षा संस्थानों और परिवहन की परिस्थितियाँ अपेक्षाकृत भिन्न हैं। इस प्रकार राज्य के भीतर ही शिक्षा तक पहुँच और उसकी निरंतरता के अनुभव एक समान नहीं हो सकते।

पर्वतीय क्षेत्रों में विद्यालय तक पहुँच की दूरी, परिवहन की उपलब्धता, कठिन भौगोलिक परिस्थितियाँ तथा माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों की सीमित उपलब्धता विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो सकती है। प्राथमिक स्तर पर निकटवर्ती विद्यालय उपलब्ध होने के बावजूद यदि उच्च कक्षाओं के लिए बालिका को अधिक दूरी तय करनी पड़े, तो शिक्षा जारी रखने की लागत केवल आर्थिक नहीं रहती; इसमें समय, सुरक्षा, परिवहन और परिवार की सामाजिक स्वीकृति जैसे आयाम भी जुड़ जाते हैं।

उत्तराखण्ड के संदर्भ में Dyson (2019) का अध्ययन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने चमोली जिले के पर्वतीय क्षेत्र स्थित बेमनी गाँव में बालिकाओं की शिक्षा में समय के साथ आए परिवर्तनों का अध्ययन करते हुए पाया कि 1990 के दशक और 2000 के प्रारम्भिक वर्षों में बालिकाओं की प्राथमिक शिक्षा में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, जबकि माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक शिक्षा में उनकी भागीदारी अपेक्षाकृत सीमित रही। बाद के वर्षों में माध्यमिक शिक्षा में बालिकाओं की भागीदारी बढ़ी और शिक्षा ने उनके लिए रोजगार तथा आत्मनिर्णय की नई संभावनाएँ खोलीं। हालांकि, शिक्षित युवा महिलाओं को रोजगार की कमी, अल्परोजगार तथा विवाह और सामाजिक अपेक्षाओं से जुड़े नए अंतर्विरोधों का भी सामना करना पड़ा। इस प्रकार, अध्ययन शिक्षा को बालिकाओं के सशक्तीकरण का माध्यम मानने के साथ-साथ उसके सामाजिक प्रभावों की जटिलता को भी रेखांकित करता है।

2. बालिका शिक्षा: वैचारिक परिप्रेक्ष्य

बालिका शिक्षा को समझने के लिए इसे तीन परस्पर जुड़े आयामों में देखा जा सकता है-अवसर, निरंतरता और परिणाम।

1. **शिक्षा का अवसर-** पहला प्रश्न यह है कि क्या बालिका के लिए विद्यालय उपलब्ध है और क्या वह विद्यालय तक पहुँच सकती है। विद्यालय की दूरी, परिवहन, आर्थिक स्थिति तथा विद्यालयी अवसंरचना इस अवसर को प्रभावित कर सकते हैं।

2. **शिक्षा की निरंतरता-** दूसरा प्रश्न है कि विद्यालय में प्रवेश के बाद बालिका अपनी शिक्षा कितनी निरंतरता के साथ जारी रखती है। यहाँ शिक्षा में टिके रहना (ठहराव), एक स्तर से दूसरे स्तर पर पारगमन (Transition) और शिक्षा बीच में छोड़ देना (ड्रॉपआउट) महत्वपूर्ण संकेतक बन जाते हैं।
3. **शिक्षा के परिणाम-** तीसरा प्रश्न है कि शिक्षा बालिका के जीवन में क्या परिवर्तन लाती है। उच्च शिक्षा, कौशल, रोजगार, आर्थिक स्वतंत्रता, निर्णय क्षमता और सामाजिक सहभागिता इसके संभावित परिणाम हैं।

इस संदर्भ में शिक्षा को केवल मानव पूंजी (human capital) के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है। शिक्षा व्यक्ति की क्षमताओं को भी विस्तृत करती है-अर्थात वह व्यक्ति के वास्तविक विकल्पों और जीवन-निर्णयों की क्षमता को बढ़ा सकती है। यही कारण है कि बालिका शिक्षा का संबंध केवल रोजगार से नहीं, बल्कि स्वयं निर्णय लेने की क्षमता और सामाजिक सशक्तीकरण से भी है।

हालाँकि शिक्षा के प्रभावों को स्वचालित या समान मानना भी उचित नहीं है। Dyson (2019) का उत्तराखण्ड-आधारित अध्ययन संकेत देता है कि शिक्षा एक ओर लड़कियों के लिए नए अवसर और स्वायत्तता की संभावनाएँ पैदा कर सकती है, वहीं दूसरी ओर रोजगार की सीमाओं तथा विवाह संबंधी अपेक्षाओं के साथ नए तनाव भी उत्पन्न कर सकती है। इसी प्रकार भारतीय राज्यों में उच्चतर माध्यमिक स्तर पर लड़कियों की शैक्षिक उपलब्धि पर किए गए एक अध्ययन में सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों और महिलाओं की स्वायत्तता को महत्वपूर्ण निर्धारक कारकों के रूप में पाया गया। इससे स्पष्ट होता है कि बालिका शिक्षा को केवल विद्यालयी व्यवस्था के भीतर समझना पर्याप्त नहीं है; परिवार और व्यापक सामाजिक-आर्थिक संदर्भ भी महत्वपूर्ण हैं

3.संबंधित साहित्य का संक्षिप्त अवलोकन

प्रस्तुत अध्याय के लिए उपलब्ध साहित्य को तीन प्रमुख आयामों-बालिका शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन, माध्यमिक शिक्षा में पारगमन एवं निरंतरता, तथा पर्वतीय/उत्तराखण्ड संदर्भ-के आधार पर देखा जा सकता है।

3.1 बालिका शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन

बालिका शिक्षा को महिलाओं के सामाजिक और आर्थिक अवसरों के विस्तार का महत्वपूर्ण माध्यम माना गया है। उपलब्ध अध्ययनों से संकेत मिलता है कि शिक्षा विवाह, रोजगार, आर्थिक स्वतंत्रता तथा निर्णय लेने की क्षमता से संबंधित महिलाओं की भूमिकाओं में परिवर्तन की संभावनाएँ उत्पन्न कर सकती है। हालांकि, इन परिवर्तनों की दिशा सामाजिक संरचनाओं से प्रभावित होती है। विशेष रूप से जाति, लैंगिक मानदंड तथा परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति शिक्षा से प्राप्त अवसरों को सीमित कर सकती हैं। अतः बालिका शिक्षा को केवल शैक्षिक उपलब्धि के रूप में न देखकर सामाजिक परिवर्तन की व्यापक प्रक्रिया के संदर्भ में समझना आवश्यक है।

3.2 माध्यमिक शिक्षा में पारगमन एवं निरंतरता

बालिकाओं के लिए प्राथमिक से माध्यमिक तथा माध्यमिक से उच्चतर माध्यमिक स्तर की ओर पारगमन शिक्षा की निरंतरता का महत्वपूर्ण चरण है। ग्रामीण भारत से संबंधित अध्ययनों में माध्यमिक विद्यालय की दूरी, शिक्षा की लागत, सामाजिक स्थिति तथा बालिका होने जैसे कारकों को पारगमन से जुड़ी महत्वपूर्ण परिस्थितियों के रूप में रेखांकित किया गया है।

यह निष्कर्ष उत्तराखण्ड के पर्वतीय संदर्भ में विशेष रूप से प्रासंगिक है, जहाँ बस्तियाँ दूर-दूर स्थित हो सकती हैं और अगले शैक्षिक स्तर का विद्यालय भौगोलिक रूप से अपेक्षाकृत दूर हो सकता है। ऐसी स्थिति में केवल विद्यालय की उपलब्धता पर्याप्त नहीं है; यह भी महत्वपूर्ण है कि अगले स्तर का विद्यालय बालिका के लिए कितना सुलभ और सुरक्षित है।

माध्यमिक स्तर पर विद्यालय छोड़ने से संबंधित शोध यह भी संकेत देते हैं कि विद्यालय छोड़ना किसी एक समय की घटना नहीं है, बल्कि इसके पीछे परिवार, सामाजिक परिवेश और जीवन-परिस्थितियों से जुड़े पूर्ववर्ती कारक कार्य कर सकते हैं।

3.3 उत्तराखण्ड एवं हिमालयी संदर्भ

उत्तराखण्ड के संदर्भ में Dyson (2019) का अध्ययन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने चमोली जिले के बेमनी क्षेत्र में लड़कियों की शिक्षा में समय के साथ आए परिवर्तनों का अध्ययन किया। अध्ययन से संकेत मिलता है कि बालिकाओं की शिक्षा के विस्तार ने माध्यमिक शिक्षा तथा आगे रोजगार और जीवन की आकांक्षाओं के लिए नई संभावनाएँ उत्पन्न कीं, लेकिन शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन के बीच संबंध सरल या एकरेखीय नहीं रहे।

हालाँकि शिक्षा के प्रभावों को स्वचालित या समान मानना भी उचित नहीं है। शिक्षा एक ओर लड़कियों के लिए नए अवसर और स्वायत्तता की संभावनाएँ पैदा कर सकती है, वहीं दूसरी ओर रोजगार की सीमाओं तथा विवाह संबंधी अपेक्षाओं के साथ नए तनाव भी उत्पन्न कर सकती है। इस प्रकार, शिक्षा का विस्तार अपने आप सामाजिक समानता सुनिश्चित नहीं करता; उसके प्रभाव व्यापक सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों से भी निर्धारित होते हैं।

3.4 साहित्य से उभरती समझ

उपलब्ध साहित्य से स्पष्ट होता है कि बालिका शिक्षा की स्थिति को केवल नामांकन के आधार पर नहीं समझा जा सकता। विद्यालय तक पहुँच, उच्चतर कक्षाओं में पारगमन , शैक्षिक निरंतरता तथा परिवार और व्यापक सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियाँ भी इसकी दिशा को प्रभावित करती हैं। उत्तराखण्ड के पर्वतीय संदर्भ में भौगोलिक दूरी और विद्यालयों की उपलब्धता इस प्रश्न को और महत्वपूर्ण बनाती है। उपलब्ध अध्ययनों के साथ वर्तमान UDISE+ आँकड़ों का विश्लेषण उत्तराखण्ड में बालिका शिक्षा की समकालीन स्थिति को व्यापक स्तर पर समझने का आधार प्रदान करता है।

4. SDG 4 और बालिका शिक्षा

सतत विकास लक्ष्य-4 (SDG-4) का उद्देश्य सभी के लिए समावेशी एवं समान गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करना तथा आजीवन सीखने के अवसरों को बढ़ावा देना है। बालिका शिक्षा के संदर्भ में SDG-4 के लक्ष्य 4.1, 4.5 और 4.a विशेष रूप से प्रासंगिक हैं।

SDG 4.1 प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा की पूर्णता पर बल देता है। इसलिए बालिका शिक्षा का आकलन केवल नामांकन तक सीमित न होकर विद्यालय में निरंतरता, ड्रॉपआउट तथा विभिन्न शैक्षिक स्तरों के बीच पारगमन की स्थिति से किया जाना आवश्यक है।

SDG 4.5 शिक्षा में लैंगिक असमानताओं को समाप्त करने तथा वंचित समूहों के लिए समान अवसर सुनिश्चित करने पर केंद्रित है। इस दृष्टि से बालक-बालिका नामांकन, लैंगिक समानता तथा शैक्षिक प्रगति के तुलनात्मक संकेतक महत्वपूर्ण हैं।

इसी प्रकार SDG 4.a सुरक्षित, समावेशी एवं प्रभावी अधिगम वातावरण के निर्माण पर बल देता है। बालिकाओं के लिए पृथक एवं कार्यशील शौचालय, पेयजल, विद्युत तथा डिजिटल सुविधाएँ इस व्यापक अधिगम वातावरण के महत्वपूर्ण आयाम हैं।

अतः इस अध्ययन में SDG-4 को केवल नीतिगत संदर्भ के रूप में नहीं, बल्कि उत्तराखण्ड में बालिका शिक्षा की पहुँच, निरंतरता, लैंगिक समानता तथा विद्यालयी वातावरण को समझने के एक विश्लेषणात्मक ढाँचे के रूप में ग्रहण किया गया है।

5. उत्तराखण्ड में बालिका शिक्षा के लिए नीतिगत प्रयास एवं प्रमुख योजनाएँ

उत्तराखण्ड में बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने के प्रयासों को राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों और योजनाओं के साथ-साथ राज्य की भौगोलिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में समझना आवश्यक है। पर्वतीय क्षेत्रों में बालिकाओं के लिए शिक्षा की उपलब्धता केवल विद्यालय खोलने तक सीमित नहीं है। विद्यालय की दूरी, आवागमन, आर्थिक स्थिति, सुरक्षित आवास, विद्यालयी सुविधाएँ तथा माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर तक पारगमन जैसी परिस्थितियाँ भी महत्वपूर्ण हैं। इसी कारण बालिका शिक्षा से संबंधित सरकारी हस्तक्षेपों में **प्रवेश**, निरंतरता, सुरक्षा, आर्थिक सहायता और शैक्षिक पारगमन को समान रूप से महत्व दिया जाना आवश्यक है।

5.1 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और लैंगिक समानता- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने शिक्षा में लैंगिक समानता को व्यापक सामाजिक एवं शैक्षिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण घटक माना है। नीति में सामाजिक एवं आर्थिक रूप से वंचित समूहों के अंतर्गत बालिकाओं पर विशेष ध्यान देने तथा शिक्षा में लैंगिक असमानताएँ को कम करने के लिए लक्षित हस्तक्षेपों की आवश्यकता पर बल दिया गया है। इसके अंतर्गत लैंगिक समावेशन निधि (Gender Inclusion Fund-GIF) की परिकल्पना की गई है, जिसका उद्देश्य राज्यों को ऐसी पहल करने में सहायता देना है जो बालिकाओं तथा अन्य वंचित समूहों के लिए शिक्षा तक पहुँच और उसमें निरंतरता को बढ़ा सकें।

उत्तराखण्ड जैसे पर्वतीय राज्य में इस दृष्टिकोण का विशेष महत्व है, क्योंकि यहाँ शैक्षिक अवसरों में असमानता केवल सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों से नहीं, बल्कि भौगोलिक स्थिति से भी जुड़ सकती है। अतः लैंगिक समानता की दिशा में नीति-निर्माण करते समय स्थानीय और क्षेत्रीय परिस्थितियों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

5.2 समग्र शिक्षा और बालिका शिक्षा - विद्यालयी शिक्षा के लिए समग्र शिक्षा एकीकृत राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके अंतर्गत बालिकाओं की शिक्षा के लिए अनेक हस्तक्षेप एवं सहायता उपाय किए जाते हैं। इनमें कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय (KGBV), बालिकाओं के लिए आत्मरक्षा प्रशिक्षण, तथा लैंगिक-समावेशी शैक्षिक प्रक्रियाएँ जैसे प्रयास शामिल हैं।

समग्र शिक्षा के अंतर्गत बालिका शिक्षा का विशेष महत्व इसलिए है कि योजना केवल प्राथमिक स्तर पर प्रवेश तक सीमित नहीं रहती, बल्कि बालिकाओं को विद्यालयी शिक्षा के उच्च स्तरों तक पहुँचाने और सामाजिक एवं आर्थिक रूप से वंचित बालिकाओं की भागीदारी बढ़ाने का प्रयास करती है।

5.3 कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय (KGBV) - उत्तराखण्ड जैसे पर्वतीय राज्य के संदर्भ में कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय विशेष रूप से महत्वपूर्ण योजना है। कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय का उद्देश्य सामाजिक एवं आर्थिक रूप से वंचित समूहों की बालिकाओं को आवासीय विद्यालयी सुविधा उपलब्ध कराना है। वर्तमान समग्र शिक्षा व्यवस्था में KGBV को कक्षा VI से XII तक की बालिकाओं के लिए आवासीय एवं शैक्षिक सुविधा उपलब्ध कराने की दिशा में विस्तारित किया गया है। इसका लक्ष्य विशेष रूप से अनुसूचित जाति (SC), अनुसूचित जनजाति (ST), अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC), अल्पसंख्यक समुदायों तथा गरीबी रेखा से नीचे (BPL) जीवन-यापन करने वाले परिवारों से आने वाली 10–18 वर्ष की बालिकाओं को शिक्षा से जोड़ना तथा प्रारंभिक स्तर से माध्यमिक स्तर और आगे कक्षा XII तक उनके शैक्षिक पारगमन को सुगम बनाना है।

पर्वतीय क्षेत्रों में KGBV का महत्व विद्यालय की भौगोलिक दूरी के संदर्भ में और अधिक बढ़ जाता है। यदि किसी बालिका के निवास स्थान के निकट उच्च कक्षाओं का विद्यालय उपलब्ध नहीं है, तो आवासीय विद्यालय की सुविधा उसके लिए शिक्षा जारी रखने का वैकल्पिक मार्ग प्रदान कर सकती है। इस प्रकार KGBV को केवल एक छात्रावास सुविधा के रूप में नहीं, बल्कि इसे बालिकाओं की शिक्षा तक पहुँच सुनिश्चित करने तथा उनके शैक्षिक पारगमन को सुगम बनाने वाले एक महत्वपूर्ण हस्तक्षेप के रूप में देखा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त, KGBV में बालिकाओं की सुरक्षा एवं संरक्षा को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। समग्र शिक्षा के दिशा-निर्देशों में सुरक्षित परिसर, महिला वार्डन एवं महिला कर्मचारियों की उपलब्धता, स्वच्छ पेयजल, उपयुक्त शौचालय, मासिक धर्म स्वच्छता संबंधी सुविधाओं तथा आत्मरक्षा प्रशिक्षण जैसी व्यवस्थाओं पर विशेष बल दिया गया है।

इससे स्पष्ट होता है कि बालिका शिक्षा में सुरक्षित एवं अनुकूल वातावरण केवल एक सहायक सुविधा नहीं, बल्कि शिक्षा की निरंतरता, नियमित उपस्थिति और विद्यालय में बालिकाओं की सहभागिता का एक महत्वपूर्ण घटक है।

5.4 बालिका शिक्षा प्रोत्साहन हेतु साइकिल योजना- उत्तराखण्ड सरकार द्वारा बालिकाओं की शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए बालिका शिक्षा प्रोत्साहन (साइकिल) योजना भी महत्वपूर्ण पहल है। इस प्रकार की योजना का मूल उद्देश्य विद्यालय आने-जाने में बालिकाओं के सामने आने वाली परिवहन संबंधी कठिनाइयों को कम करना तथा विशेष रूप से माध्यमिक स्तर पर उनकी शैक्षिक निरंतरता को प्रोत्साहित करना है।

यह पहल उत्तराखण्ड के पर्वतीय संदर्भ में विशेष महत्व रखती है, क्योंकि यहाँ विद्यालय की दूरी और आवागमन की कठिनाइयाँ बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करने वाली संभावित बाधाओं में शामिल हैं। राज्य के लैंगिक बजट में इस योजना का उल्लेख मिलता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि बालिका शिक्षा के लिए परिवहन-संबंधी सहायता को राज्य के लैंगिक-संवेदनशील बजट में स्थान दिया गया है।

हालाँकि पर्वतीय भू-भाग में साइकिल की उपयोगिता सभी स्थानों पर समान नहीं हो सकती। अत्यधिक दुर्गम एवं खड़ी भौगोलिक परिस्थितियों में साइकिल की तुलना में स्कूल बस, परिवहन सहायता, छात्रावास अथवा स्थानीय आवासीय सुविधा अधिक प्रभावी हो सकती है। इसलिए किसी योजना की सफलता का मूल्यांकन उसके लाभार्थियों की संख्या से आगे बढ़कर उसके भौगोलिक संदर्भ और वास्तविक उपयोगिता के आधार पर किया जाना चाहिए।

5.5 छात्रवृत्ति एवं आर्थिक सहायता - आर्थिक कठिनाइयाँ बालिकाओं की शिक्षा की निरंतरता को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारकों में से एक हो सकती हैं। इसलिए विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक श्रेणियों की बालिकाओं के लिए छात्रवृत्ति तथा आर्थिक सहायता की व्यवस्थाएँ शिक्षा में समान अवसर सुनिश्चित करने का महत्वपूर्ण माध्यम हैं।

उत्तराखण्ड में विभिन्न विभागों के माध्यम से सामाजिक एवं आर्थिक रूप से वंचित विद्यार्थियों के लिए विभिन्न छात्रवृत्ति योजनाएँ संचालित की जाती हैं। उदाहरणस्वरूप, प्रधानमंत्री यशस्वी (PM-YASASVI) योजना के अंतर्गत अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC), आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग (EBC) तथा विमुक्त, घुमंतू एवं अर्ध-घुमंतू समुदाय (DNT) से संबंधित विद्यार्थियों के लिए पूर्व-मैट्रिक तथा उत्तर-मैट्रिक छात्रवृत्ति की व्यवस्था की गई है।

इसी प्रकार अल्पसंख्यक समुदाय की मेधावी बालिकाओं के लिए उत्तराखण्ड सरकार की मुख्यमंत्री अल्पसंख्यक मेधावी बालिका प्रोत्साहन योजना के अंतर्गत हाईस्कूल तथा इंटरमीडिएट स्तर पर निर्धारित शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त करने वाली बालिकाओं को आर्थिक प्रोत्साहन प्रदान किया जाता है। (अल्पसंख्यक कल्याण विभाग, उत्तराखण्ड, 2025)।

इन योजनाओं का महत्व इस बात में है कि वे शिक्षा को परिवार के लिए होने वाली प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष लागत को कम करने में सहायता कर सकती हैं। हालांकि, आर्थिक सहायता को शिक्षा की निरंतरता के एकमात्र समाधान के रूप में नहीं देखा जा सकता। आर्थिक सहायता के साथ विद्यालय की दूरी, सुरक्षित परिवहन, विद्यालयी सुविधाएँ और शैक्षिक गुणवत्ता जैसे पहलुओं पर भी समान ध्यान आवश्यक है।

6. उत्तराखण्ड में बालिका शिक्षा की स्थिति: UDISE+ आँकड़ों का विश्लेषण

उत्तराखण्ड में बालिका शिक्षा की वर्तमान स्थिति को समझने के लिए केवल विद्यालयों में बालिकाओं के नामांकन को देखना पर्याप्त नहीं है। बालिकाओं की शैक्षिक भागीदारी, आयु-उपयुक्त नामांकन, लैंगिक समानता, शिक्षा में निरंतरता, विभिन्न शैक्षिक स्तरों के बीच पारगमन तथा विद्यालयों में उपलब्ध भौतिक एवं डिजिटल सुविधाएँ-इन सभी आयामों को एक साथ देखना आवश्यक है। प्रस्तुत अध्ययन में उपलब्ध UDISE+ आँकड़ों के आधार पर इन संकेतकों का विश्लेषण किया गया है (Department of School Education & Literacy [DoSE&L], Ministry of Education, Government of India, 2026)।

6.1 विद्यालयी शिक्षा का व्यापक परिदृश्य

तालिका 1
उत्तराखण्ड में विद्यालय, विद्यार्थी नामांकन एवं शिक्षकीय संसाधन

संकेतक	संख्या
कुल विद्यालय	22,437
कुल विद्यार्थी	24,07,131
बालक	12,68,351
बालिकाएँ	11,38,780
कुल नामांकन में बालिकाओं की हिस्सेदारी	47.3%
कुल शिक्षक	1,38,055
छात्र-शिक्षक अनुपात (PTR)	17

स्रोत: DoSE&L (2026) आँकड़ों के आधार पर संकलित।

- उत्तराखंड में स्कूल शिक्षा (बुनियादी से लेकर माध्यमिक स्तर तक) के अंतर्गत कुल 22,437 स्कूल संचालित हैं, जिनमें कुल 2,407,131 विद्यार्थी नामांकित हैं। इस कुल नामांकित छात्र संख्या में बालिकाओं की संख्या 1,138,780 है, जो कुल नामांकन का 47.3% हिस्सेदारी दर्शाती है। राज्य में कुल 138,055 शिक्षक तैनात हैं और छात्र-शिक्षक अनुपात (PTR) 17 है।

- भौगोलिक दृष्टि से अत्यंत जटिल और पर्वतीय क्षेत्र होने के बावजूद, उत्तराखंड में कुल नामांकन में लड़कियों का 47.3% होना यह दर्शाता है कि राज्य ने बालिकाओं को स्कूल तक लाने में बुनियादी सफलता हासिल कर ली है। यह आँकड़ा बालिकाओं की शिक्षा के प्रति मातापिता और नीतिगत पहलों की सजगता को रेखांकित करता है। वर्तमान - समय में उत्तराखंड जैसी विषम भौगोलिक परिस्थितियों वाले राज्य के लिए इतनी बड़ी संख्या में बालिकाओं का स्कूल में नामांकित होना महिला सशक्तिकरण कीएक मजबूत नींव है। हालांकि, यह डेटा इस बात की ओर भी ध्यान आकर्षित करता है कि राज्य के अत्यंत सुदूर ग्रामीण और पर्वतीय अंचलों में शतप्रतिशत लैंगिक संतुलन हासिल करने - के लिए अभी भी नीतिगत स्तर पर विशेष भौगोलिक और सामाजिक प्रोत्साहन की आवश्यकता है।

6.2 विभिन्न शैक्षिक स्तरों पर बालिकाओं की शैक्षिक भागीदारी

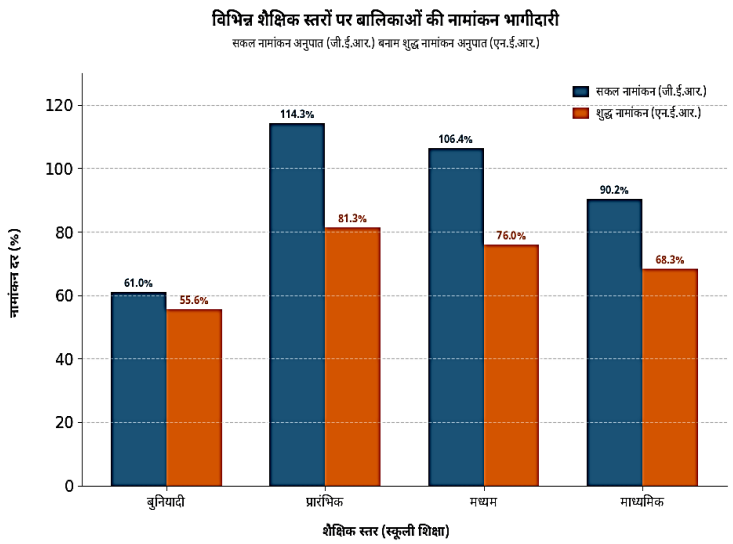
तालिका 2

विभिन्न शैक्षिक स्तरों पर बालक-बालिकाओं का GER, NER एवं GPI

शैक्षिक स्तर	बालकों का GER (%)	बालिकाओं का GER (%)	बालकों का NER (%)	बालिकाओं का NER (%)	GPI
Foundational	60.5	61.0	54.2	55.6	1.0
Preparatory	107.1	114.3	76.0	81.3	1.1
Middle	99.4	106.4	71.3	76.0	1.1
Secondary	84.2	90.2	63.8	68.3	1.1

स्रोत: DoSE&L (2026) आँकड़ों के आधार पर संकलित।

तालिका 2 के विश्लेषण का सबसे महत्वपूर्ण और उत्साहजनक पहलू यह है कि उत्तराखंड में प्राथमिक स्तर से लेकर माध्यमिक स्तर तक बालिकाओं का सकल (GER) और शुद्ध (NER) नामांकन अनुपात बालकों की तुलना में लगातार अधिक बना हुआ है। विशेष रूप से, माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं का GER 90.2% होना (बालकों के 84.2% की तुलना में) अत्यंत गौरवपूर्ण है।



1.1 का लैंगिक समानता सूचकांक (Gender Parity Index-GPI) यह दर्शाता है कि उच्चतर स्तर की स्कूल शिक्षा में लड़कियों की भागीदारी लड़कों के अनुपात से भी अधिक हो गई है। यह डेटा इस रूढ़िवादी धारणा को पूरी तरह खारिज करता है कि पहाड़ों में लड़कियों की शिक्षा की उपेक्षा की जाती है। हालांकि, NER और GER के बीच का अंतर (जैसे माध्यमिक स्तर पर GER 90.2% लेकिन NER 68.3%) यह स्पष्ट संकेत देता है कि वर्तमान में बड़ी संख्या में लड़कियां अपनी आयु के अनुसार उपयुक्त कक्षाओं में नामांकित नहीं हैं, बल्कि वे या तो देर से स्कूल में दाखिला ले रही हैं या उनकी कक्षाओं में दोहराव की स्थिति है।

इस प्रकार उपलब्ध participation indicators के आधार पर बालिकाओं की स्थिति किसी भी शैक्षिक स्तर पर बालकों से कमतर दिखाई नहीं देती। यह उत्तराखण्ड में बालिका शिक्षा के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण सकारात्मक संकेत है।

6.3 बालिकाओं की शैक्षिक निरंतरता: ड्रॉपआउट, ठहराव एवं परागमन

नामांकन की सकारात्मक स्थिति के बावजूद बालिका शिक्षा की वास्तविक सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि बालिकाएँ विद्यालय में कितनी निरंतरता के साथ बनी रहती हैं और एक शैक्षिक स्तर से दूसरे स्तर तक कितनी सफलतापूर्वक आगे बढ़ती हैं। इस दृष्टि से ड्रॉपआउट, ठहराव और परागमन महत्वपूर्ण संकेतक हैं।

तालिका 3
उत्तराखण्ड में बालिकाओं की शैक्षिक निरंतरता : ड्रॉपआउट, ठहराव एवं पारगमन के प्रमुख संकेतक

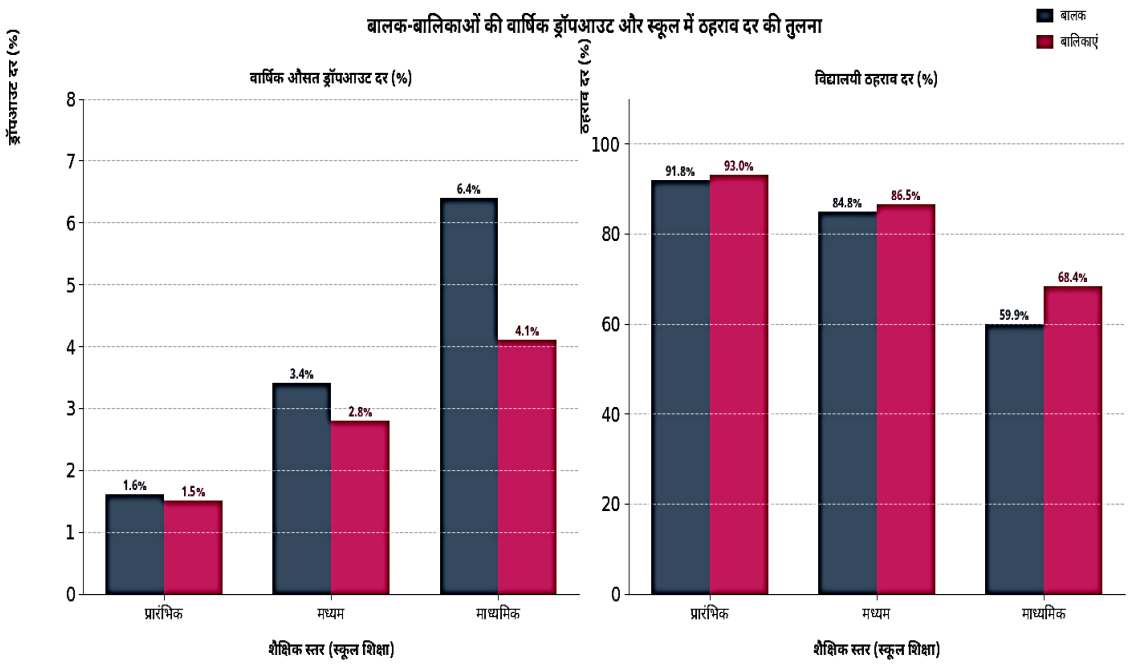
संकेतक	शैक्षिक स्तर/पारगमन	बालक (%)	बालिकाएँ (%)	कुल (%)
ड्रॉपआउट की दर	Preparatory	1.6	1.5	1.5

संकेतक	शैक्षिक स्तर/पारगमन	बालक (%)	बालिकाएँ (%)	कुल (%)
	Middle	3.4	2.8	3.1
	Secondary	6.4	4.1	5.3
ठहराव की दर	Class 1–5	91.8	93.0	92.3
	Class 1–8	84.8	86.5	85.6
	Class 1–12	59.9	68.4	63.9
पारगमन की दर	Primary ⟶ Upper Primary	—	98.7	98.7
	Upper Primary ⟶ Secondary	—	96.5	96.5
	Secondary ⟶ Higher Secondary	—	91.7	91.7

स्रोत: DoSE&L (2026) आँकड़ों के आधार पर संकलित।

तालिका से स्पष्ट है कि दोनों लिंगों में शैक्षिक स्तर बढ़ने के साथ ड्रॉपआउट में वृद्धि होती है, लेकिन प्रत्येक उपलब्ध स्तर पर बालिकाओं की ड्रॉपआउट दर बालकों से कम है। माध्यमिक स्तर पर यह अंतर विशेष रूप से स्पष्ट है- बालकों की ड्रॉपआउट दर 6.4 प्रतिशत के मुकाबले बालिकाओं की ड्रॉपआउट दर 4.1 प्रतिशत है।

यह निष्कर्ष विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे बालिका शिक्षा के संबंध में एक सकारात्मक प्रवृत्ति सामने आती है। हालांकि माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं की ड्रॉपआउट दर अपेक्षाकृत कम है, फिर भी 4.1 प्रतिशत ड्रॉपआउट यह संकेत देता है कि उच्चतर शैक्षिक स्तर तक पहुँचने की प्रक्रिया में कुछ बालिकाएँ अभी भी शिक्षा से बाहर हो रही हैं।



उत्तराखंड में शैक्षिक निरंतरता के आंकड़ों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर एक अत्यंत प्रेरणादायक तस्वीर उभरती है। सभी स्तरों पर लड़कियों की स्कूल छोड़ने (ड्रॉपआउट) की दर लड़कों की तुलना में उल्लेखनीय रूप से कम है। विशेष रूप से माध्यमिक स्तर पर बालकों का ड्रॉपआउट 6.4% है, जबकि बालिकाओं का केवल 4.1% है। इसके परिणामस्वरूप, माध्यमिक स्तर (कक्षा 1 से 12) तक पहुँचते-पहुँचते लड़कियों की ठहराव दर 68.4% है, जो लड़कों के 59.9% से बहुत अधिक है। यह विश्लेषण वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में बालिकाओं के दृढ़ संकल्प को सिद्ध करता है। वर्तमान समय में जहां छात्र आर्थिक कारणों, रोजगार की तलाश या अन्य सामाजिक भटकावों के कारण तेजी से पढ़ाई छोड़ रहे हैं, वहीं छात्राएं अपनी शैक्षिक यात्रा को पूरा करने के लिए कहीं अधिक प्रतिबद्ध हैं। लड़कियों का यह लगातार उच्च ठहराव यह दर्शाता है कि शिक्षा अब उनके लिए केवल एक विकल्प नहीं, बल्कि आत्म-निर्भरता और आत्म-सम्मान हासिल करने का एकमात्र सशक्त माध्यम बन चुकी है।

6.4 विद्यालयी आधारभूत सुविधाएँ, संस्थागत क्षमता एवं समावेशी अवसंरचना

बालिकाओं की शिक्षा की निरंतरता के लिए विद्यालय में सुरक्षित, स्वच्छ और अनुकूल वातावरण का होना आवश्यक है। उपलब्ध UDISE+ आँकड़ों में बालिका शौचालय, पेयजल, बिजली, पुस्तकालय, खेल सुविधाएँ तथा डिजिटल संसाधनों से संबंधित महत्वपूर्ण संकेतक उपलब्ध हैं।

तालिका 6
उत्तराखण्ड के विद्यालयों में बालिका शिक्षा से संबंधित प्रमुख सुविधाएँ

सुविधा	विद्यालयों की संख्या	प्रतिशत
बालिका शौचालय	21,895	97.6
क्रियाशील बालिका शौचालय	20,686	92.2
पेयजल	22,348	99.6
क्रियाशील पेयजल	22,229	99.1
बिजली	21,839	97.3
क्रियाशील बिजली	21,472	95.7
पुस्तकालय	21,805	97.2
खेल मैदान	18,944	84.4
कंप्यूटर	20,930	93.3
क्रियाशील कंप्यूटर	19,392	86.4
इंटरनेट	16,511	73.6

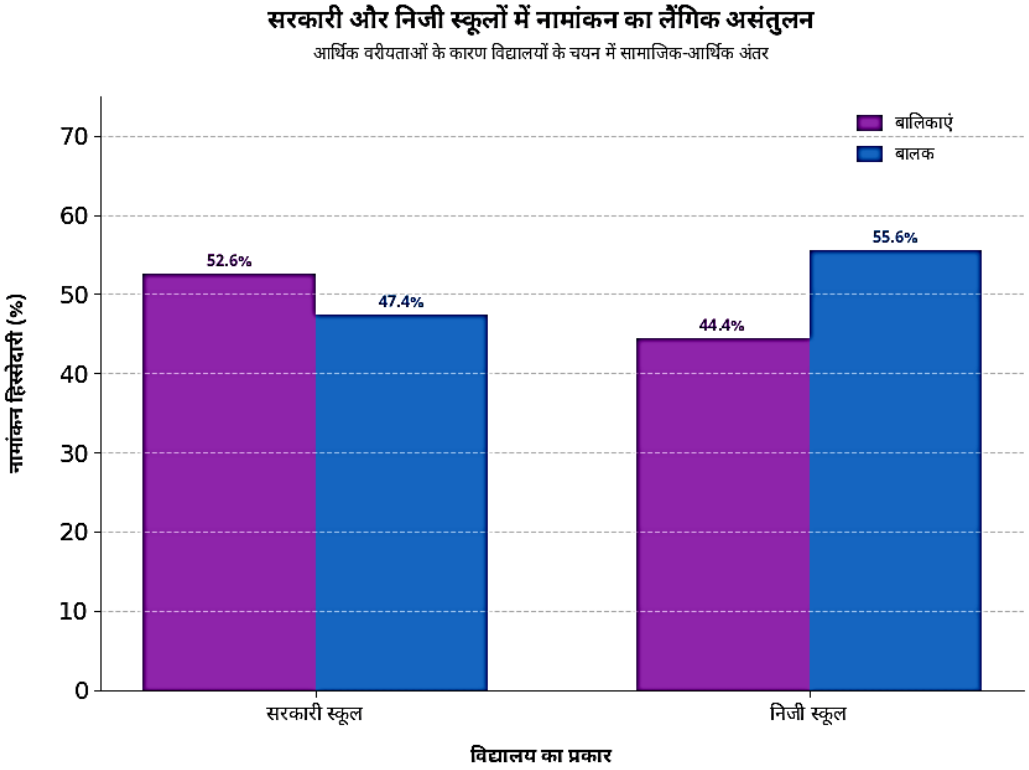
स्रोत: DoSE&L (2026) आँकड़ों के आधार पर संकलित।

बुनियादी ढाँचे के स्तर पर उत्तराखंड का प्रदर्शन सराहनीय कहा जा सकता है। स्कूलों में पेयजल (99.1%) और क्रियाशील बालिका शौचालय (92.2%) की व्यापक उपलब्धता ने स्कूल के वातावरण को लड़कियों के स्वास्थ्य और गरिमा के अनुकूल बनाया है, जिसने ऐतिहासिक रूप से ड्रॉपआउट दरों को कम करने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मासिक धर्म के दौरान लड़कियों की स्कूलों से अनुपस्थिति को रोकने के लिए यह अवसंरचना सबसे बड़ा वरदान है। इसके अतिरिक्त, 93.3% कंप्यूटर उपलब्धता और 73.6% इंटरनेट पहुँच पर्वतीय विद्यालयों के डिजिटल एकीकरण का मार्ग प्रशस्त कर रही है। हालांकि, वर्तमान 'स्मार्ट शिक्षा' और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के युग में सिर्फ इंटरनेट पहुँच होना ही काफी नहीं है; सुदूर पहाड़ी गांवों के सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाली गरीब लड़कियों को इन डिजिटल उपकरणों के व्यावहारिक उपयोग की कितनी ट्रेनिंग मिल पा रही है, यह वर्तमान शिक्षा प्रणाली के सामने एक ज्वलंत प्रश्न है।

6.5 उत्तराखण्ड में विद्यालयी संरचना, डिजिटल संसाधन एवं समावेशी अवसंरचना

- सरकारी स्कूलों में नामांकित विद्यार्थियों में बालिकाओं का हिस्सा 52.6% (380,153 बालिकाएं) है। इसके विपरीत, निजी गैर-सहायता प्राप्त मान्यता प्राप्त स्कूलों में बालिकाओं का हिस्सा घटकर केवल 44.4% (658,884 बालिकाएं) रह जाता है।

- पहाड़ी क्षेत्रों में बिखरी आबादी के कारण उत्तराखंड में स्कूलों का औसत आकार बहुत छोटा है, जहाँ प्रति स्कूल औसतन केवल 107 छात्र हैं। राज्य में 2,655 एकल-शिक्षक स्कूल संचालित हैं, जहाँ कुल 28,113 बच्चे पढ़ते हैं। साथ ही, 17 ऐसे स्कूल हैं जहाँ नामांकन शून्य (0) है, लेकिन फिर भी 26 शिक्षकों की वहाँ तैनाती है।
- केवल 2.1% स्कूलों में डिजिटल लाइब्रेरी और माध्यमिक स्कूलों में केवल 11.2% टिंकरिंग लैब हैं। साथ ही, शारीरिक रूप से अक्षम बच्चों (CWSN) के लिए केवल 15.6% स्कूलों में CWSN शौचालय हैं, जिनमें से केवल 14.4% चालू स्थिति में हैं। रैंप और रेलिंग की सुविधा केवल 54.8% स्कूलों में उपलब्ध है।



उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि उत्तराखण्ड में बालिका शिक्षा के क्षेत्र में नामांकन, लैंगिक समानता तथा शैक्षिक निरंतरता के अनेक संकेतक सकारात्मक स्थिति प्रस्तुत करते हैं। साथ ही, उच्चतर स्तरों पर पारगमन , विद्यालयी संस्थागत क्षमता, डिजिटल संसाधनों तथा समावेशी अवसंरचना से संबंधित कुछ अंतर भी सामने आते हैं। अतः भविष्य की रणनीतियों का केंद्र केवल बालिकाओं की विद्यालयी पहुँच बढ़ाना नहीं, बल्कि उनकी गुणवत्तापूर्ण, सतत, समावेशी और भविष्योपयोगी शिक्षा सुनिश्चित करना होना चाहिए।

7. पर्वतीय संदर्भ में बालिका शिक्षा की प्रमुख चुनौतियाँ

उत्तराखण्ड में बालिका शिक्षा के क्षेत्र में नामांकन, लैंगिक समानता तथा शैक्षिक निरंतरता से संबंधित अनेक संकेतक सकारात्मक स्थिति को दर्शाते हैं। फिर भी राज्य की विशिष्ट भौगोलिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के कारण बालिकाओं के लिए गुणवत्तापूर्ण और सतत शिक्षा सुनिश्चित करना अभी भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है। UDISE+ आँकड़ों से प्राप्त निष्कर्षों को पर्वतीय संदर्भ में

देखने पर स्पष्ट होता है कि अब चुनौती केवल विद्यालय तक पहुँच उपलब्ध कराने की नहीं, बल्कि पूरी शैक्षिक यात्रा को सुगम, सुरक्षित, समावेशी और गुणवत्तापूर्ण बनाने की है।

1. **उच्चतर कक्षाओं तक निरंतरता की चुनौती-** बालिकाओं की ड्रॉपआउट दर अपेक्षाकृत कम और ठहराव की स्थिति बालकों की तुलना में बेहतर होने के बावजूद, प्राथमिक स्तर से उच्चतर माध्यमिकतक पहुँचते-पहुँचते शैक्षिक निरंतरता में कमी दिखाई देती है। विशेष रूप से माध्यमिक से उच्चतर माध्यमिक स्तर की ओर पारगमन में कमी इस बात की ओर संकेत करती है कि विद्यालयी शिक्षा के उच्चतर चरण तक सभी बालिकाओं की निरंतर पहुँच अभी सुनिश्चित नहीं हुई है। पर्वतीय क्षेत्रों में विद्यालयों की दूरी और उच्चतर कक्षाओं के लिए सीमित संस्थागत विकल्प इस चुनौती को अधिक जटिल बना सकते हैं।
2. **भौगोलिक दुर्गमता और विद्यालयी संस्थागत क्षमता-** उत्तराखण्ड की पर्वतीय भौगोलिक संरचना शिक्षा नियोजन को विशिष्ट बनाती है। छोटी एवं बिखरी हुई बस्तियों के कारण अनेक स्थानों पर विद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या कम है और एकल शिक्षक विद्यालय की उपस्थिति भी उल्लेखनीय है। ऐसी स्थिति में विद्यालय की स्थानीय पहुँच और गुणवत्तापूर्ण शिक्षण के बीच संतुलन बनाना चुनौतीपूर्ण हो जाता है। अतः पर्वतीय क्षेत्रों के लिए मैदानी क्षेत्रों की समान शैक्षिक संरचना को यथावत लागू करने के बजाय स्थान-संवेदी शैक्षिक नियोजन की आवश्यकता है।
3. **डिजिटल पहुँच में असमानता-** विद्यालयों में कंप्यूटर जैसी सुविधाओं का विस्तार अपेक्षाकृत व्यापक है, किंतु इंटरनेट और अन्य डिजिटल संसाधनों की उपलब्धता उसी अनुपात में नहीं है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में डिजिटल संसाधन केवल अतिरिक्त सुविधा नहीं रह गए हैं, बल्कि ज्ञान, सूचना और नवीन अधिगम अवसरों तक पहुँच का महत्वपूर्ण माध्यम बन चुके हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में संपर्कता की भौगोलिक कठिनाइयाँ इस डिजिटल अंतर को और महत्वपूर्ण बना सकती हैं। इसलिए बालिकाओं के लिए डिजिटल समानता को बालिका शिक्षा की व्यापक समानता का हिस्सा मानना आवश्यक है।
4. **समावेशी विद्यालयी वातावरण की चुनौती-** बालिका शिक्षा को केवल लिंगr के आधार पर देखना पर्याप्त नहीं है। बालिकाओं के भीतर भी दिव्यांगता, सामाजिक-आर्थिक स्थिति तथा भौगोलिक स्थिति के आधार पर अलग-अलग प्रकार की शैक्षिक आवश्यकताएँ हो सकती हैं। CWSN के लिए कार्यशील शौचालय, रैंप तथा अन्य सुगम्य अवसंरचनात्मक सुविधाएँ सुविधाओं की सीमित उपलब्धता यह दर्शाती है कि लैंगिक समानता को समावेशी शिक्षा के साथ जोड़ने की आवश्यकता है।
5. **गुणवत्तापूर्ण एवं भविष्योपयोगी शिक्षा की आवश्यकता-** जब बालिकाओं की विद्यालयी भागीदारी में सकारात्मक परिवर्तन दिखाई देता है, तब अगला प्रश्न शिक्षा की गुणवत्ता और भविष्य की उपयोगिता का है। डिजिटल पुस्तकालय , नवाचार प्रयोगशालाएं , बेहतर ICT सुविधाएँ तथा सीखने के समृद्ध अवसर बालिकाओं को बदलती ज्ञान-अर्थव्यवस्था के लिए तैयार करने में महत्वपूर्ण हो सकते हैं। इसलिए, बालिका शिक्षा की आगामी चुनौती विद्यालयी पहुँच से गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तथा सहभागिता से सशक्तीकरण की ओर पारगमन है।

8. भविष्य की रणनीतियां और संभावनाएं

उत्तराखण्ड में बालिका शिक्षा की स्थिति को देखते हुए भविष्य की रणनीतियों का केंद्र केवल विद्यालयी पहुँच बढ़ाना नहीं, बल्कि सुरक्षित, गुणवत्तापूर्ण, समावेशी और भविष्योपयोगी शिक्षा सुनिश्चित करना होना चाहिए। पर्वतीय क्षेत्रों की भौगोलिक विषमता तथा विद्यालयी संसाधनों में दिखाई देने वाले अंतर को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित उपाय महत्वपूर्ण हैं।

1. **विद्यालयों का युक्तिकरण एवं सुरक्षित परिवहन-** एकल-शिक्षक तथा अत्यल्प नामांकन वाले विद्यालयों की स्थिति को देखते हुए, जहाँ भौगोलिक परिस्थितियाँ अनुकूल हों, छोटे एवं कम उपयोग वाले विद्यालयों को विद्यालय समूहों के रूप में विकसित कर पर्याप्त शिक्षक एवं संसाधन उपलब्ध कराए जा सकते हैं। ऐसे विद्यालयों तक बालिकाओं की सुरक्षित पहुँच के लिए निःशुल्क परिवहन की व्यवस्था आवश्यक होगी। अत्यधिक दुर्गम क्षेत्रों में विद्यालयों के विलय के बजाय स्थानीय पहुँच को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
2. **सरकारी विद्यालयों का आधुनिकीकरण -** डिजिटल संसाधनों की उपलब्धता में दिखाई देने वाले अंतर को कम करने के लिए सरकारी विद्यालयों में इंटरनेट संपर्क, डिजिटल पुस्तकालय, टिंकरिंग प्रयोगशालाओं तथा आधुनिक शिक्षण-संसाधनों का विस्तार किया जाना चाहिए। इससे बालिकाओं को गुणवत्तापूर्ण तथा भविष्योपयोगी अधिगम के अधिक अवसर प्राप्त होंगे।
3. **समावेशी अवसंरचना का विकास** - दिव्यांग विद्यार्थियों के लिए शौचालय, रैंप, रेलिंग तथा अन्य आवश्यक सुविधाओं को सभी विद्यालयों में 100 प्रतिशत उपलब्ध एवं कार्यशील बनाने का लक्ष्य रखा जाना चाहिए। केवल निर्माण ही नहीं, बल्कि इन सुविधाओं के नियमित रखरखाव और कार्यशीलता की निगरानी भी सुनिश्चित की जानी चाहिए।

   समग्र रूप से, उत्तराखण्ड में बालिका शिक्षा की भावी रणनीति स्थान-संवेदी और आवश्यकता-आधारित होनी चाहिए। विद्यालयों का युक्तिकरण, सुरक्षित परिवहन, सरकारी विद्यालयों का आधुनिकीकरण तथा समावेशी अवसंरचना का सुदृढ़ीकरण बालिकाओं के लिए अधिक समान, सुरक्षित और गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर सुनिश्चित करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम हो सकते हैं।

9. निष्कर्ष

उत्तराखण्ड में बालिका शिक्षा के UDISE+ आधारित विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि राज्य ने बालिकाओं की विद्यालयी भागीदारी और लैंगिक समानता के क्षेत्र में उल्लेखनीय आधार तैयार किया है। GER, NER, GPI, ड्रॉपआउट तथा ठहराव के अनेक संकेतक बालिकाओं की अपेक्षाकृत अनुकूल स्थिति को दर्शाते हैं। यह परिवर्तन बालिका शिक्षा के पारंपरिक विमर्श को केवल "प्रवेश" और "वंचना" के प्रश्न से आगे ले जाने की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

फिर भी उच्चतर स्तरों पर ठहराव और पारागमन में कमी, GER–NER अंतर , एकल शिक्षक विद्यालय, डिजिटल संपर्कता की सीमाएँ तथा समावेशी सुविधाओं की कमी यह दर्शाती है कि समान नामांकन अपने आप में समान शैक्षिक अवसर की गारंटी नहीं है।

पर्वतीय राज्य के संदर्भ में बालिका शिक्षा की भावी दिशा ऐसी नीतियों पर आधारित होनी चाहिए जो भौगोलिक परिस्थितियों, विद्यालयी संसाधनों और बालिकाओं की बदलती शैक्षिक आवश्यकताओं को साथ लेकर चलें। सुरक्षित परिवहन, स्थान-संवेदी विद्यालयी नियोजन, डिजिटल पहुँच, समावेशी अवसंरचना और उच्चतर माध्यमिकतक निरंतरता इस दिशा में महत्वपूर्ण हस्तक्षेप हो सकते हैं।

अतः उत्तराखण्ड में बालिका शिक्षा का अगला चरण "अधिक बालिकाओं को विद्यालय तक पहुँचाने" से आगे बढ़कर "प्रत्येक बालिका को गुणवत्तापूर्ण, निरंतर, समावेशी और भविष्योपयोगी शिक्षा उपलब्ध कराने" का होना चाहिए। यही दृष्टिकोण लैंगिक समानता को वास्तविक शैक्षिक सशक्तिकरण में परिवर्तित कर सकता है।

References

1. Department of School Education & Literacy, Ministry of Education, Government of India. (2026). *Unified District Information System for Education Plus (UDISE+) 2025–26*. Ministry of Education.
2. Dejaeghere, J., & Arur, A. A. (2020). Education for all: How schooling is creating social changes for lowered-caste girls in rural India. *Gender & Society, 34*(6), 951–975. https://doi.org/10.1177/0891243220966604
3. Dyson, J. (2019). Rethinking education as a contradictory resource: Girls' education in the Indian Himalayas. *Geoforum, 103*, 66–74. https://doi.org/10.1016/j.geoforum.2019.03.021
4. Government of India, Ministry of Education. (2020). *National education policy 2020*. Ministry of Education.
5. Government of Uttarakhand. (2018). *Uttarakhand: Vision 2030*. Government of Uttarakhand.
6. Government of Uttarakhand, Directorate of Economics and Statistics. (2025). *Economic survey 2024–25*. Government of Uttarakhand.
7. Ministry of Education. (2021). *Samagra Shiksha: An integrated scheme for school education*. Department of School Education & Literacy, Government of India.
8. Ministry of Human Resource Development. (2008). *Annual report 2007–08*. Government of India.
9. Office of the Registrar General & Census Commissioner, India. (2011). *Census of India 2011*. Government of India.
10. Sharma, S. K., Rani, M., & Sharma, R. (2010). Elementary education in Uttarakhand: An appraisal. *Journal of Indian Education, 35*(4), 46–58.
11. United Nations. (2015). *Transforming our world: The 2030 agenda for sustainable development*. United Nations.

डा0 मनीषा पंत
सहायक प्राध्यापक शिक्षाशास्त्र विभाग
9456194888
mpant@uou.ac.in

डा. दिनेश चन्द्र काण्डपाल
सहायक प्राध्यापक शिक्षाशास्त्र विभाग
912040817
dckandpal@uou.ac.in

शिक्षा के विभिन्न स्तरों में बालिका शिक्षा की वर्तमान स्थिति– उत्तराखंड राज्य के विशेष सन्दर्भ में–

प्रस्तावना

बालिका शिक्षा समाज में लैंगिक समानता स्थापित करने, महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने तथा आने वाली पीढ़ियों के बेहतर भविष्य के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पिछले कुछ दशकों में भारत ने प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में बालिकाओं के नामांकन को बढ़ाने में उल्लेखनीय प्रगति की है। जनगणना 2011 के अनुसार उत्तराखंड की महिला साक्षरता दर 70.7 प्रतिशत है, जो राष्ट्रीय महिला साक्षरता दर (65.5 प्रतिशत) से लगभग पाँच प्रतिशत अंक अधिक है। यह आँकड़ा राज्य में महिला शिक्षा की अपेक्षाकृत संतोषजनक स्थिति को दर्शाता है। तथापि, राज्य के विभिन्न जनपदों के बीच महिला साक्षरता में उल्लेखनीय क्षेत्रीय असमानताएँ विद्यमान हैं। देहरादून 78.5 प्रतिशत महिला साक्षरता दर के साथ राज्य में प्रथम स्थान पर है, जबकि उत्तरकाशी (62.4 प्रतिशत), टिहरी गढ़वाल (64.3 प्रतिशत) तथा बागेश्वर (68.0 प्रतिशत) जैसे प्रमुख पर्वतीय जनपद अपेक्षाकृत निम्न महिला साक्षरता वाले जिलों में शामिल हैं । हाल ही में उत्तराखंड राज्य को सम्पूर्ण साक्षर राज्य घोषित किया जा चुका है इससे यह पता चलता है कि राज्य में महिला साक्षरता तेजी से बढ़ी है ।

उत्तराखण्ड राज्य के संदर्भ में बालिका शिक्षा का विशेष महत्व है। राज्य का अधिकांश भू–भाग पहाड़ी और दुर्गम होने के कारण विद्यालयों तक पहुँच, परिवहन व्यवस्था, शिक्षकों की उपलब्धता, आर्थिक संसाधनों की कमी, घरेलू जिम्मेदारियाँ, सामाजिक परिस्थितियाँ तथा विद्यालयों की दूरी जैसी समस्याएँ बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करती रही हैं। बावजूद इसके उत्तराखण्ड राज्य में वर्तमान समय में बालिका शिक्षा की स्थिति में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। प्रस्तुत अध्याय में विशेष रूप से उत्तराखण्ड राज्य के संदर्भ में शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर बालिका शिक्षा की स्थिति का अध्ययन किया गया है। इसमें प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च शिक्षा में बालिकाओं की भागीदारी, उपलब्धियाँ, चुनौतियाँ और सुधार के संभावित उपायों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इसका उद्देश्य उत्तराखण्ड में बालिका शिक्षा की वर्तमान स्थिति को समझना तथा राज्य में शिक्षा के अधिक समावेशी और समान विकास की दिशा को स्पष्ट करना है।

उत्तराखंड में शिक्षा के विभिन्न स्तर

उत्तराखंड में शिक्षा व्यवस्था राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020, शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009 तथा राज्य की समग्र शिक्षा योजना के अनुरूप संचालित होती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 भारत की शिक्षा व्यवस्था को अधिक समावेशी, न्यायसंगत और गुणवत्तापूर्ण बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल है। बालिका शिक्षा को इस नीति में विशेष महत्व दिया गया है राज्य की भौगोलिक परिस्थितियाँ विशेषकर पर्वतीय क्षेत्रों में बिखरी हुई आबादी, दुर्गम मार्ग तथा सीमित संसाधन शिक्षा के प्रत्येक स्तर को प्रभावित करती हैं। फिर भी राज्य सरकार द्वारा विद्यालयों की पहुँच बढ़ाने, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराने तथा बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक प्रयास किए जा रहे हैं। उत्तराखंड में शिक्षा के विभिन्न स्तर निम्नलिखित हैः

प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक शिक्षा (Primary and Upper Primary Education)

प्राथमिक शिक्षा कक्षा 1 से 5 तक होती है, और सामान्यतः 6 से 11 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों को शामिल करती है। यह शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण चरण माना जाता है, क्योंकि इसी स्तर पर भाषा, गणित, पर्यावरण अध्ययन तथा जीवन कौशल की आधारभूत समझ विकसित होती है। उत्तराखंड में सरकारी, सहायता प्राप्त एवं निजी विद्यालयों के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराई जाती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के 5334 योजना के अनुसार प्राथमिक शिक्षा में बालवाटिका

को जोड़कर प्राथमिक शिक्षा के दो भाग किए गये है प्रथम पांच वर्ष जसमें बालवाटिका के साथ कक्षा 1 और कक्षा–2 शामिल है जबकि अगले तीन वर्षों में कक्षा 3,4 और कक्षा 5 को जोड़ा गया है उत्तराखंड राज्य में इस योजना को लागू किया जा चुका है।

उच्च प्राथमिक स्तर कक्षा 6 से 8 तक का होता है। इस स्तर पर विषयों की विविधता बढ़ती है, तथा विज्ञान, गणित, सामाजिक विज्ञान और भाषाओं का व्यवस्थित अध्ययन प्रारंभ होता है।

माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक शिक्षा (Secondary and Higher Secondary Education)

माध्यमिक शिक्षा कक्षा 9 एवं 10 तक होती है। इस स्तर पर विद्यार्थियों की विषयगत समझ विकसित होती है तथा बोर्ड परीक्षाओं की तैयारी की जाती है। उत्तराखंड विद्यालयी शिक्षा परिषद (UBSE) राज्य स्तर पर माध्यमिक शिक्षा का संचालन करती है।

उच्च माध्यमिक शिक्षा कक्षा 11 एवं 12 तक होती है। इस स्तर पर विद्यार्थियों को विज्ञान, वाणिज्य, कला तथा व्यावसायिक शिक्षा जैसे विभिन्न विषय समूहों का चयन करने का अवसर मिलता है।

उच्च शिक्षा

उच्च शिक्षा में स्नातक, स्नातकोत्तर, शोध तथा व्यावसायिक शिक्षा सम्मिलित होती है। उत्तराखंड में अनेक राज्य विश्वविद्यालय, केंद्रीय विश्वविद्यालय, निजी विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, तकनीकी संस्थान, चिकित्सा महाविद्यालय तथा शिक्षक शिक्षा संस्थान संचालित हैं।

प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा की वर्तमान स्थिति

उत्तराखण्ड में प्राथमिक (कक्षा 1–5) और उच्च प्राथमिक (कक्षा 6–8) स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा में पिछले वर्षों में सकारात्मक परिवर्तन देखने को मिला है। अभिभावकों में जागरूकता बढ़ने, सरकारी योजनाओं के विस्तार और विद्यालयी सुविधाओं में सुधार के कारण विद्यालयों में बालिकाओं की संख्या में वृद्धि हुई है ।

UDISE+ 2025–26 के अंतर्गत विद्यालयी शिक्षा से संबंधित आंकड़ों के अनुसार राज्य में प्रारंभिक शिक्षा स्तर पर बालक एवं बालिकाओं के नामांकन में अंतर काफी कम है। बालिकाओं की विद्यालयी भागीदारी में वृद्धि हुई है तथा लैंगिक समानता की स्थिति संतोषजनक बनी हुई है। वर्ष 2026 में, केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय के श्उल्लासश (ULLAS) कार्यक्रम के मानकों के तहत उत्तराखंड को 98.7 की साक्षरता दर के साथ देश का छठा सम्पूर्ण साक्षर राज्य घोषित किया गया है। वित्तीय वर्ष 2022–23 से 2026–27 तक की अवधि के लिए नव भारत साक्षरता कार्यक्रम प्रारम्भ किया है। इस केंद्र प्रायोजित योजना के संचालन हेतु पाँच वर्षों में 1037.90 करोड़ का वित्तीय प्रावधान किया गया है।

तालिका –1

उत्तराखण्ड में लिंग–वार नामांकन (Gende-rwise Enrolment)

शैक्षिक स्तर	बालक (Boys)	बालिकाएँ (Girls)	कुल नामांकन
प्राथमिक स्तर (कक्षा1□5)	लगभग 3.03 लाख	लगभग 2.80 लाख	लगभग 5.83 लाख
उच्च प्राथमिक स्तर (कक्षा 6–8)	लगभग 1.70 लाख	लगभग 1.55 लाख	लगभग 3.25 लाख

स्रोत:UDISE+2025–26

उत्तराखण्ड के प्राथमिक विद्यालयों में लगभग हर 100 विद्यार्थियों में 48 बालिकाएँ और 52 बालक हैं। उच्च प्राथमिक स्तर पर भी बालिकाओं की भागीदारी अच्छी बनी हुई है, जहाँ लगभग 48प्रतिशत विद्यार्थी बालिकाएँ हैं। अर्थात राज्य में बेटियों की शिक्षा के प्रति भागीदारी बढ़ी है और विद्यालयों तक उनकी पहुँच में सुधार हुआ है। उत्तराखण्ड में प्राथमिक कक्षाओं में लगभग 3 से 4 लाख बालिकाएँ विद्यालयी शिक्षा से जुड़ी हुई हैं, जबकि उच्च प्राथमिक स्तर तक पहुँचने पर भी बड़ी

संख्या में बालिकाएँ अपनी पढ़ाई जारी रख रही हैं। पहाड़ी और दूरस्थ क्षेत्रों की भौगोलिक कठिनाइयों के बावजूद बालिकाओं का विद्यालयों में नामांकन बनाए रखना राज्य की शिक्षा व्यवस्था की एक सकारात्मक उपलब्धि है। हालाँकि, प्राथमिक से उच्च प्राथमिक स्तर पर पहुँचते समय नामांकन में कमी दिखाई देती है, जिसके पीछे विद्यालय की दूरी, परिवारों का पलायन, आर्थिक परिस्थितियाँ और घरेलू जिम्मेदारियाँ जैसे कारण कुछ क्षेत्रों में प्रभाव डाल सकते हैं। प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं का नामांकन लड़कों के लगभग समान होना यह बताता है कि छोटी आयु से ही लड़कियों को शिक्षा के अधिकार से जोड़ा जा रहा है। वहीं उच्च प्राथमिक स्तर (कक्षा 6–8) पर भी नामांकन में समानता यह संकेत देती है कि बालिकाएँ प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने के बाद भी अपनी पढ़ाई जारी रख रही हैं और बीच में विद्यालय छोड़ने की प्रवृत्ति कम हुई है।

तालिका–2

उत्तराखण्ड में प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं का जेंडर पैरिटी इंडेक्स

स्तर	बालिकाओं का GPI
प्राथमिक स्तर (कक्षा 1–5)	0.92
उच्च प्राथमिक स्तर (कक्षा 6–8)	0.91

स्रोत:UDISE+2025–26

GPI यह दर्शाता है कि विद्यालयों में बालकों की तुलना में बालिकाओं की भागीदारी कितनी है। यदि GPI का मान 1 के बराबर हो, तो इसका अर्थ है, कि बालक और बालिकाओं की संख्या लगभग समान है।

उत्तराखण्ड में प्राथमिक स्तर का GPI 0.92 और उच्च प्राथमिक स्तर का GPI 0.91 है, जिसका अर्थ है कि विद्यालयों में बालिकाओं की भागीदारी अच्छी है, लेकिन बालकों की तुलना में थोड़ी कम है। यानी प्रत्येक 100 बालकों की तुलना में लगभग 91–92 बालिकाएँ नामांकित हैं। उत्तराखण्ड जैसे पर्वतीय राज्य में यह उपलब्धि महत्वपूर्ण है, क्योंकी राज्य की विषम परिस्थितियाँ बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित कर सकती हैं। फिर भी GPI, 1 के काफी निकट होना यह दर्शाता है कि राज्य में बालिकाओं की शिक्षा तक पहुँच में लगातार सुधार हुआ है। शिक्षा प्राप्त करने के अवसरों में बालिकाओं के साथ कोई बड़ा भेदभाव नहीं रह गया है। बेटियाँ भी विद्यालयों तक पहुंच बना रही हैं, कक्षाओं में नियमित रूप से भाग ले रही हैं और अपनी शिक्षा को जारी रखने में सक्षम हो रही हैं। उत्तराखंड में प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं का नामांकन बालकों के लगभग बराबर होना यह दर्शाता है कि आज राज्य में बेटियों की शिक्षा को लेकर परिवारों और समाज की सोच में सकारात्मक बदलाव आया है।

तालिका –3

उत्तराखण्ड में बालिकाओं की ड्रॉपआउट दर प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर

स्तर	बालिकाओं की ड्रॉपआउट दर(Girls Dropout Rate)
प्राथमिक स्तर(कक्षा 1–5)	1.8%
उच्च प्राथमिक स्तर (कक्षा 6–8)	2.8%

स्रोत :UDISE+2025–26

उत्तराखण्ड में UDISE+ 2025–26 के अनुसार प्राथमिक स्तर पर 1.8 प्रतिशत तथा उच्च प्राथमिक स्तर पर 2.8 प्रतिशत बालिकाएँ विद्यालय छोड़ देती हैं। अर्थात् प्राथमिक स्तर पर लगभग 100 में से 2 और उच्च प्राथमिक स्तर पर लगभग 100 में से 3 बालिकाएँ अपनी पढ़ाई बीच में छोड़ती हैं। यह दर्शाता है कि उच्च प्राथमिक स्तर पर ड्रॉपआउट की चुनौती प्राथमिक स्तर की तुलना में थोड़ी अधिक है।

तालिका –4

उत्तराखण्ड में बालिकाओं की प्रतिधारण दर (Retention Rate) प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर

स्तर	बालिकाओं की प्रतिधारण दर
प्राथमिक(Primary: कक्षा 1–5)	93.0%
उच्च प्राथमिक (Elementary: कक्षा 1–8)	86.5%

स्रोत:UDISE+2025–26

UDISE+ 2025–26 के अनुसार उत्तराखण्ड में प्राथमिक स्तर (कक्षा 1–5) पर बालिकाओं की प्रतिधारण दर 93.0 प्रतिशत है, जबकि उच्च प्राथमिक स्तर (कक्षा 1–8) पर यह 86.5 प्रतिशत है। इससे स्पष्ट होता है, कि अधिकांश बालिकाएँ प्राथमिक शिक्षा पूरी करती हैं, किन्तु उच्च प्राथमिक स्तर तक पहुँचते–पहुँचते कुछ बालिकाएँ शिक्षा व्यवस्था से बाहर हो जाती हैं। यह स्थिति इस बात की ओर संकेत करती है कि उच्च प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं को विद्यालय में बनाए रखने के लिए निरंतर सहयोग, गुणवत्तापूर्ण शिक्षण, सुरक्षित विद्यालयी वातावरण तथा आवश्यक योजनाओं को प्रभावी ढंग से लागू करने की आवश्यकता है।

माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा की वर्तमान स्थिति –

माध्यमिक (कक्षा 9–10) और उच्च माध्यमिक (कक्षा 11–12) शिक्षा किसी भी विद्यार्थी के जीवन का महत्वपूर्ण चरण होती है। बालिकाओं के लिए यह स्तर विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी आयु में अनेक सामाजिक चुनौतियाँ सामने आती हैं। यदि इस समय उन्हें गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और उचित मार्गदर्शन प्राप्त हो, तो वे उच्च शिक्षा, रोजगार तथा सामाजिक नेतृत्व की दिशा में आगे बढ़ सकती हैं।

राज्य बनने के बाद शिक्षा के क्षेत्र में अनेक सुधारात्मक प्रयास किए गए। पर्वतीय क्षेत्रों तक विद्यालयों का विस्तार किया गया, छात्रवृत्तियाँ बढ़ाई गई तथा विद्यालयों में आधारभूत सुविधाओं में सुधार किया गया। आज राज्य के अधिकांश अभिभावक अपनी बेटियों को विद्यालय भेजने के प्रति पहले की अपेक्षा अधिक जागरूक हैं। परिणामस्वरूप माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं का नामांकन लगातार बढ़ा है। अनेक विद्यालयों में बालिकाएँ न केवल नियमित रूप से अध्ययन कर रही हैं बल्कि शैक्षणिक, खेल, सांस्कृतिक एवं विज्ञान प्रतियोगिताओं में भी उत्कृष्ट प्रदर्शन कर रही हैं।

उत्तराखंड की विषम भौगोलिक परिस्थितियों के कारण अनेक गाँव दूरस्थ एवं दुर्गम क्षेत्रों में स्थित हैं। इन क्षेत्रों में माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालयों तक पहुँचने के लिए छात्राओं को कई किलोमीटर पैदल चलना पड़ता है। विशेषकर बरसात और शीत ऋतु में यह समस्या और अधिक गंभीर हो जाती है। इसके बावजूद पिछले वर्षों में बालिकाओं का विद्यालयों में नामांकन और उपस्थिति बढ़ी है, जो समाज में बढ़ती शैक्षिक जागरूकता का प्रमाण है।

UDISE+ 2024–25 के आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि राज्य में विद्यालयी शिक्षा का विस्तार हुआ है तथा माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर तक बालिकाओं की पहुँच पहले की तुलना में अधिक सुदृढ़ हुई है। राज्य में कुल 22,452 विद्यालय संचालित हैं, जिनमें 1,382 माध्यमिक तथा 2,782 उच्च माध्यमिक विद्यालय शामिल हैं। यह संख्या दर्शाती है कि विद्यार्थियों, विशेषकर बालिकाओं, को उच्च कक्षाओं तक शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए विद्यालयी ढाँचे का विस्तार किया गया है।

तालिका –5

उत्तराखण्ड में माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर लिंग–वार नामांकन

शैक्षिक स्तर	बालक (Boy)	बालिकाएँ (Girls)	कुल नामांकन
माध्यमिक स्तर (कक्षा 9–10)	63,549 (46.4%)	73,358 (53.6%)	1,36,907
उच्च माध्यमिक स्तर(कक्षा 11–12)	52,886(44.3%)	66,557 (55.7%)	1,19,443

स्रोत : UDISE+ Report 2025–26, Ministry of Education, Government of India

उत्तराखण्ड में माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं की भागीदारी बालकों से अधिक दिखाई देती है।

- कक्षा 9–10 में कुल विद्यार्थियों में लगभग 54% बालिकाएं हैं, जबकि 46%बालक हैं।

- कक्षा 11–12 में बालिकाओं की भागीदारी बढ़कर लगभग 56% है, जबकि बालकों की भागीदारी लगभग 44% रहती है।

UDISE+ 2025–26 के अनुसार माध्यमिक स्तर पर कुल नामांकित विद्यार्थियों में लगभग 53.6%बालिकाएँ हैं, जबकि उच्च माध्यमिक स्तर पर यह भागीदारी बढ़कर लगभग 55.7%हो जाती है। इसका अर्थ है कि उच्च कक्षाओं तक पहुँचने वाली छात्राओं की संख्या बालकों की तुलना में अधिक है। यह स्थिति उत्तराखण्ड में बालिका शिक्षा के प्रति बढ़ती जागरूकता को दर्शाती है। राज्य के अनेक परिवार अब बेटियों की शिक्षा को भविष्य के बेहतर अवसरों से जोड़कर देख रहे हैं।

तालिका –6

उत्तराखण्ड में माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर का जेंडर पैरिटी इंडेक्स (Gender Parity Index GPI)

शिक्षा स्तर	Gender Parity Index (GPI)
माध्यमिक (Secondary: कक्षा 9–10)	1.1
उच्च माध्यमिक(Higher Secondary: कक्षा 11–12)	1.1

स्रोत : UDISE+ Report 2025–26, Ministry of Education Government of India

GPI का मान 1.0 होने पर बालकों और बालिकाओं की भागीदारी समान मानी जाती है। 1.1 का अर्थ है कि इन दोनों स्तरों पर बालिकाओं का नामांकन बालकों की तुलना में थोड़ा अधिक है। यह स्थिति बताती है, कि उत्तराखण्ड में बालिकाएँ माध्यमिक शिक्षा के बाद भी बड़ी संख्या में अपनी पढ़ाई जारी रख रही हैं और उच्च कक्षाओं तक उनकी शैक्षिक भागीदारी मजबूत बनी हुई है।

तालिका –7

उत्तराखण्ड में बालिकाओं (Girl) की ड्रॉपआउट दर (Dropout Rate)

स्तर	बालिकाओं की ड्रॉपआउट दर
माध्यमिक(Secondary: कक्षा 9–10)	4.8%
उच्च माध्यमिक (Higher Secondary: कक्षा 11–12)	14.1%

स्रोत : UDISE+ Report 2025–26] Ministry of Education Government of India

UDISE+ 2025–26 के अनुसार उत्तराखण्ड में माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं की ड्रॉपआउट दर 4.8%है, जबकि उच्च माध्यमिक स्तर पर यह 14.1% तक पहुँच जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि उच्च माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं के विद्यालय छोड़ने की समस्या अधिक गंभीर है, जिसके समाधान के लिए विशेष प्रयासों की आवश्यकता है।

तालिका –8

उत्तराखण्ड में बालिकाओं (Girls) की प्रतिधारण दर (Retention Rate)

स्तर	बालिकाओं की प्रतिधारण दर (Retention Rate)

माध्यमिक(Secondary: कक्षा 1–10)	77.4%
उच्च माध्यमिक(Higher Secondary: कक्षा 1–12)	68.4%

UDISE+ 2025–26 के अनुसार उत्तराखण्ड में बालिकाओं की प्रतिधारण दर माध्यमिक स्तर पर 77.4% तथा उच्च माध्यमिक स्तर पर 68.4% है। उच्च माध्यमिक स्तर पर प्रतिधारण दर में कमी यह संकेत देती है कि इस स्तर पर बालिकाओं को विद्यालय में बनाए रखने हेतु विशेष प्रयासों की आवश्यकता है।

उच्च माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं कि शिक्षा की वर्तमान स्थिति –

उत्तराखण्ड में उच्च शिक्षा का तात्पर्य उस शिक्षा से है, जो विद्यार्थी विद्यालयी शिक्षा (कक्षा 12) पूरी करने के बाद महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों तथा अन्य उच्च शिक्षण संस्थानों में प्राप्त करते हैं। यह केवल डिग्री हासिल करने का माध्यम नहीं है, बल्कि व्यक्ति के ज्ञान, सोच, व्यक्तित्व, कौशल और जीवन–दृष्टि को विकसित करने की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। वर्तमान में उत्तराखण्ड में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में बालिकाओं की स्थिति पहले की तुलना में काफी बेहतर हुई है। उत्तराखण्ड जैसे पर्वतीय राज्य में उच्च शिक्षा का महत्व और भी अधिक है, क्योंकि यह युवाओं, विशेषकर बालिकाओं, को आत्मनिर्भर बनने, बेहतर रोजगार प्राप्त करने और अपने जीवन के बारे में स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करती है। उच्च शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सामाजिक उत्तरदायित्व, नेतृत्व क्षमता और नवाचार की भावना विकसित होती है।

वर्तमान समय में उत्तराखण्ड का उच्च शिक्षा तंत्र निरंतर विस्तार की ओर अग्रसर है। राज्य में कुल 33 विश्वविद्यालय संचालित हैं, जिनमें 13 राज्य विश्वविद्यालय, 1 केंद्रीय विश्वविद्यालय, 3 डीम्ड विश्वविद्यालय तथा 18 निजी विश्वविद्यालय शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, राज्य में 119 सरकारी महाविद्यालय और 21 अनुदानित महाविद्यालय उच्च शिक्षा की सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं। इन संस्थानों के माध्यम से राज्य के दूरस्थ पर्वतीय क्षेत्रों सहित विभिन्न जिलों के विद्यार्थियों, विशेषकर बालिकाओं, को उच्च शिक्षा तक पहुँच उपलब्ध कराने का प्रयास किया जा रहा है।

तालिका –9

उत्तराखण्ड में उच्च शिक्षा में नामांकन (AISHE 2023–24)

विवरण	नामांकन
कुल नामांकन (विद्यार्थी)	लगभग 6.40 लाख
बालिकाओं का नामांकन	लगभग 3.20 लाख
बालकों का नामांकन	लगभग 3.20 लाख (बालिकाओं से थोड़ा कम)

स्रोत : All India Survey on Higher Education (AISHE) 2023–24 राज्यवार नामांकन आँकड़े।

उत्तराखण्ड उन राज्यों में शामिल है जहाँ उच्च शिक्षा में बालिकाओं का नामांकन बालकों के बराबर या उससे थोड़ा अधिक है। ।

तालिका –10

उत्तराखण्ड राज्य में उच्च शिक्षा का जेंडर पैरिटी इंडेक्स (Gender Parity IndeÛ & GPI)

सूचकांक	आँकड़ा
जेंडर पैरिटी इंडेक्स (GPI)	1.14

स्रोत : All India Survey on Higher Education (AISHE) 2023–24 Table 20

जेंडर पैरिटी इंडेक्स (GPI) का मान 1.00 होने का अर्थ है कि उच्च शिक्षा में बालक एवं बालिकाओं की भागीदारी समान है। उत्तराखण्ड का GPI 1.14 होने से स्पष्ट होता है कि राज्य में 18–23 वर्ष आयु वर्ग की बालिकाओं की उच्च शिक्षा में भागीदारी बालकों की अपेक्षा अधिक है, जो उच्च शिक्षा में लैंगिक समानता एवं बालिका शिक्षा की प्रगति का सकारात्मक संकेतक है।

राज्य में उच्च शैक्षणिक संस्थानों का विस्तार विशेष रूप से पर्वतीय क्षेत्रों की छात्राओं के लिए लाभकारी सिद्ध हुआ है, क्योंकि उन्हें अपने गृह क्षेत्र के निकट ही उच्च शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा मिलने लगी है। इससे बालिकाओं के नामांकन और निरंतरता (Retention) में भी वृद्धि हुई है।

विषयगत दृष्टि से भी परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देता है। जहाँ पहले बालिकाओं का झुकाव मुख्यतः कला संकाय तक सीमित था, वहीं वर्तमान में वे विज्ञान, वाणिज्य, शिक्षा, प्रबंधन, कंप्यूटर अनुप्रयोग, नर्सिंग, कृषि, योग, विधि तथा तकनीकी शिक्षा जैसे क्षेत्रों में भी उल्लेखनीय संख्या में प्रवेश ले रही हैं। इससे स्पष्ट होता है कि उनकी शैक्षिक अभिरुचियाँ अधिक विविध एवं रोजगारोन्मुख हुई हैं।

चुनौतियाँ

यद्यपि राज्य ने उल्लेखनीय प्रगति की है, फिर भी पर्वतीय एवं दुर्गम क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा, छात्रावास, सुरक्षित परिवहन, डिजिटल संसाधनों तथा रोजगारोन्मुखी पाठ्यक्रमों की उपलब्धता जैसी चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं। ये चुनौतियाँ केवल विद्यालय में प्रवेश तक सीमित नहीं हैं, बल्कि शिक्षा की निरंतरता, गुणवत्ता तथा उच्च शिक्षा तक पहुँच को भी प्रभावित करती हैं। कुछ प्रमुख चुनौतियाँ निम्न हैं –

भौगोलिक एवं परिवहन संबंधी चुनौतियाँ

उत्तराखण्ड के पर्वतीय भागों में कई बालिकाओं को विद्यालय या महाविद्यालय पहुँचने के लिए प्रतिदिन कई किलोमीटर पैदल चलना पड़ता है। बरसात, भूस्खलन, बर्फबारी तथा खराब सड़कों के कारण यह यात्रा और अधिक कठिन हो जाती है। सुरक्षित एवं नियमित परिवहन की कमी भी अभिभावकों की चिंता बढ़ाती है, जिसके कारण कई बालिकाएँ उच्च कक्षाओं में पढ़ाई छोड़ देती हैं।

आर्थिक कठिनाइयाँ

राज्य के अनेक परिवार सीमित आय पर निर्भर हैं। ऐसी स्थिति में शिक्षा पर होने वाले खर्च– जैसे शुल्क, पुस्तकें, वर्दी, परिवहन, डिजिटल उपकरण और प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी का वहन करना कठिन हो जाता है। कई बार परिवार में बालक एवं बालिकाओं में अंतर से भी बालिकाओं की शिक्षा प्रभावित होती है।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक धारणाएँ

यद्यपि समाज में सकारात्मक परिवर्तन आए हैं, फिर भी कुछ क्षेत्रों में यह धारणा अभी भी मौजूद है कि बालिकाओं की शिक्षा एक निश्चित स्तर तक ही आवश्यक है। कई परिवारों में उनसे घरेलू कार्यों की अपेक्षा अधिक की जाती है। कम आयु में विवाह या परिवार की जिम्मेदारियाँ भी कई बार उनकी शिक्षा को बीच में ही रोक देती हैं।

विद्यालयी आधारभूत सुविधाओं का अभाव

कुछ विद्यालयों में पर्याप्त कक्षाओं, विज्ञान प्रयोगशालाओं, पुस्तकालय, खेल सुविधाओं तथा स्वच्छ पेयजल जैसी मूलभूत सुविधाओं की कमी देखने को मिलती है। विशेष रूप से बालिकाओं के लिए स्वच्छ एवं पृथक शौचालयों का अभाव उनकी नियमित उपस्थिति और आत्मसम्मान दोनों को प्रभावित करता है।

किशोरावस्था एवं स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ

किशोरावस्था के दौरान मासिक धर्म से जुड़ी सुविधाओं और जागरूकता का अभाव कई बालिकाओं के लिए विद्यालय जाना कठिन बना देता है। जिस कारण कुछ छात्राएँ इस अवधि में विद्यालय से अनुपस्थित रहती हैं, जिससे उनकी पढ़ाई प्रभावित होती है।

उच्च शिक्षा तक सीमित पहुँच

उत्तराखण्ड के पर्वतीय जनपदों में उच्च शिक्षा संस्थानों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। अनेक छात्राओं को विश्वविद्यालय या महाविद्यालय में प्रवेश के लिए अपने घर से दूर जाना पड़ता है। सुरक्षित छात्रावास, परिवहन और आवास की सीमित उपलब्धता के कारण कई परिवार बेटियों को बाहर भेजने से हिचकिचाते हैं।

डिजिटल विभाजन

नई शिक्षा व्यवस्था में डिजिटल संसाधनों का महत्व लगातार बढ़ रहा है, लेकिन राज्य के अनेक ग्रामीण एवं पर्वतीय क्षेत्रों में इंटरनेट कनेक्टिविटी अभी भी संतोषजनक नहीं है। कई परिवारों के पास स्मार्टफोन, लैपटॉप या अन्य डिजिटल उपकरण उपलब्ध नहीं होते, जिससे ऑनलाइन शिक्षा और डिजिटल सामग्री का लाभ सभी बालिकाओं तक समान रूप से नहीं पहुँच पाता।

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा एवं करियर मार्गदर्शन का अभाव

कई विद्यालयों में विषय विशेषज्ञ शिक्षकों की कमी, आधुनिक शिक्षण सामग्री का अभाव तथा करियर परामर्श की सीमित व्यवस्था बालिकाओं के भविष्य को प्रभावित करती है। उचित मार्गदर्शन न मिलने के कारण अनेक छात्राएँ अपनी रुचि और क्षमता के अनुरूप विषय या करियर का चयन नहीं कर पातीं।

सुरक्षा संबंधी चिंताएँ

विद्यालय या महाविद्यालय तक लंबी दूरी तय करना, सुनसान मार्गों से होकर गुजरना तथा सार्वजनिक परिवहन की सीमित उपलब्धता अभिभावकों की सुरक्षा संबंधी चिंताओं को बढ़ाती है। यही कारण है कि कुछ परिवार उच्च कक्षाओं में बेटियों की शिक्षा जारी रखने में संकोच करते हैं।

पलायन और पारिवारिक परिस्थितियाँ

उत्तराखण्ड के अनेक पर्वतीय क्षेत्रों में रोजगार की कमी के कारण पलायन एक बड़ी सामाजिक समस्या है। परिवारों के स्थानांतरण, माता–पिता के बाहर काम करने या घर में श्रम की आवश्यकता के कारण बालिकाओं की शिक्षा कई बार बाधित हो जाती है।

उत्तराखंड में बालिकाओं की शिक्षा हेतु सरकार द्वारा किए जा रहे प्रयास

समग्र शिक्षा अभियान

इस योजना के माध्यम से बालिकाओं को अच्छी शिक्षा, विद्यालय की सुविधाएँ, निःशुल्क पाठ्य सामग्री, प्रशिक्षण और सीखने के बेहतर अवसर दिए जाते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य बालक–बालिकाओं के बीच शिक्षा के अंतर को कम करना है।

जेंडर इंक्लूजन फंड

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत जेंडर इंक्लूजन फंड की परिकल्पना की गई है, जिसका उद्देश्य राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों को ऐसे कार्यक्रमों के लिए सहायता प्रदान करना है जो बालिकाओं और ट्रांसजेंडर विद्यार्थियों की शिक्षा को प्रोत्साहित करें। इसके अंतर्गत शिक्षा में लैंगिक असमानता को कम करने तथा दिव्यांग बालिकाओं तथा अन्य वंचित वर्गों की छात्राओं के लिए भी विशेष सहायता का प्रावधान किया गया है।

कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय (KGBV)

जो बालिकाएँ आर्थिक या सामाजिक रूप से कमजोर परिवारों से आती हैं या दूर–दराज क्षेत्रों में रहती हैं, उनके लिए आवासीय विद्यालयों की व्यवस्था की जाती है। यहाँ उन्हें रहने, पढ़ने और आगे बढ़ने के अवसर मिलते हैं।

बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना

इस योजना का उद्देश्य समाज में बेटियों के प्रति सकारात्मक सोच बढ़ाना और बालिकाओं को शिक्षा के माध्यम से आत्मनिर्भर बनाना है।

निःशुल्क पाठ्य–पुस्तक एवं शैक्षिक सामग्री

सरकारी विद्यालयों में पढ़ने वाली बालिकाओं को किताबें और आवश्यक शैक्षिक सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं, ताकि आर्थिक कठिनाई उनकी पढ़ाई में बाधा न बने।

छात्रवृत्ति एवं प्रोत्साहन योजनाएँ

मेधावी और कमजोर वर्ग की बालिकाओं को छात्रवृत्ति एवं आर्थिक सहायता देकर उन्हें पढ़ाई जारी रखने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

विद्यालयों में बालिका अनुकूल सुविधाएँ

बालिकाओं के लिए अलग शौचालय, सुरक्षित वातावरण, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता संबंधी सुविधाओं पर ध्यान दिया जाता है, जिससे वे नियमित रूप से विद्यालय जा सकें।

बालिकाओं के लिए करियर मार्गदर्शन एवं कौशल विकास

कक्षा 9 से 12 की छात्राओं को आगे की शिक्षा, रोजगार और कौशल विकास के अवसरों के बारे में जानकारी दी जाती है, ताकि वे अपने भविष्य के लिए बेहतर निर्णय ले सकें।

डिजिटल शिक्षा एवं तकनीकी सुविधाएँ

स्मार्ट कक्षाओं, डिजिटल संसाधनों और ऑनलाइन शिक्षण माध्यमों के द्वारा बालिकाओं को आधुनिक शिक्षा से जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है।

किशोरी स्वास्थ्य एवं जागरूकता कार्यक्रम

किशोरियों के स्वास्थ्य, स्वच्छता और आत्मविश्वास से जुड़े विषयों पर जागरूकता कार्यक्रम चलाए जाते हैं, जिससे वे बिना किसी झिझक के अपनी पढ़ाई जारी रख सकें।

प्रधानमंत्री उच्चतर शिक्षा अभियान (PM-USHA)

पूर्व में राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान (RUSA) के रूप में संचालित यह योजना वर्तमान में PM-USHA के रूप में लागू है। इसके अंतर्गत राज्य विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में आधारभूत संरचना का विकास, स्मार्ट कक्षाएँ, प्रयोगशालाएँ, पुस्तकालय, छात्रावास तथा डिजिटल सुविधाओं का विस्तार किया जा रहा है। महिला छात्रावासों के निर्माण एवं सुरक्षा संबंधी सुविधाओं पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है, जिससे दूरस्थ क्षेत्रों की बालिकाएँ भी उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकें।

छात्रवृत्ति योजनाएँ

आर्थिक कठिनाइयों के कारण कोई भी बालिका उच्च शिक्षा से वंचित न रहे, इसके लिए केंद्र एवं राज्य सरकार द्वारा अनेक छात्रवृत्ति योजनाएँ संचालित की जा रही हैं। इनमें प्रमुख हैं।

Post Matric Scholarship (SC/ST/OBC/EWS)

Central Sector Scheme of Scholarship for College and University Students (CSSS)

National Scholarship Portal (NSP) के माध्यम से विभिन्न छात्रवृत्तियाँ राज्य सरकार की मेधावी एवं आर्थिक रूप से कमजोर छात्राओं के लिए छात्रवृत्ति योजनाएँ।

अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (AICTE) की 'प्रगति छात्रवृत्ति योजना'

तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा में बालिकाओं की भागीदारी बढ़ाने के उद्देश्य से ।प्ब्ज् द्वारा 'प्रगति छात्रवृत्ति योजना' संचालित की जाती है। इसके अंतर्गत मान्यता प्राप्त तकनीकी संस्थानों में अध्ययनरत छात्राओं को आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है, जिससे वे इंजीनियरिंग, प्रबंधन एवं अन्य तकनीकी पाठ्यक्रमों में बिना आर्थिक बाधा के अध्ययन कर सकें।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) की पहल

UGC उच्च शिक्षा संस्थानों में महिला अध्ययन केंद्रों की स्थापना, लैंगिक समानता, महिला सुरक्षा, एंटी–रैगिंग व्यवस्था तथा यौन उत्पीड़न रोकथाम समितियों (ICC) के गठन को प्रोत्साहित करता है। इससे छात्राओं के लिए सुरक्षित एवं अनुकूल शिक्षण वातावरण विकसित होता है।

डिजिटल शिक्षा को बढ़ावा

सरकार ने डिजिटल माध्यम से उच्च शिक्षा को सुलभ बनाने के लिए कई महत्वपूर्ण पहल की हैं, जैसे–

- SWAYAM ऑनलाइन पाठ्यक्रम
- SWAYAM PRABHA डीटीएच शैक्षिक चौनल
- DIKSHA डिजिटल शिक्षण मंच
- National Digital Library of India (NDLI)

इन माध्यमों से दूरस्थ एवं पर्वतीय क्षेत्रों की बालिकाओं को गुणवत्तापूर्ण अध्ययन सामग्री उपलब्ध हो रही है।

उत्तराखण्ड सरकार की पहल

उत्तराखण्ड सरकार द्वारा बालिकाओं की उच्च शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक प्रयास किए जा रहे हैं, जिनमें प्रमुख हैं–

- राजकीय महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों का विस्तार।
- दूरस्थ पर्वतीय क्षेत्रों में उच्च शिक्षा संस्थानों की स्थापना।
- आर्थिक रूप से कमजोर छात्राओं के लिए छात्रवृत्ति एवं शुल्क प्रतिपूर्ति।
- छात्रावास एवं परिवहन सुविधाओं का विस्तार।
- उच्च शिक्षा संस्थानों में स्मार्ट कक्षाएँ, ई–लाइब्रेरी एवं डिजिटल शिक्षण संसाधनों का विकास।
- महिला सुरक्षा, परामर्श सेवाएँ तथा करियर मार्गदर्शन कार्यक्रम।

कौशल विकास एवं रोजगारोन्मुख शिक्षा

सरकार उच्च शिक्षा को रोजगार से जोड़ने के लिए Skill India Mission, National Apprenticeship Promotion Scheme (NAPS) तथा इंटर्नशिप एवं उद्यमिता कार्यक्रमों को बढ़ावा दे रही है। इससे बालिकाओं में कौशल विकास, रोजगार क्षमता तथा स्वरोजगार की संभावनाएँ बढ़ रही हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव

उत्तराखण्ड में बालिका शिक्षा की वर्तमान स्थिति का अध्ययन यह स्पष्ट करता है, कि राज्य ने शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर उल्लेखनीय प्रगति की है। आज प्राथमिक स्तर पर लगभग सभी बालिकाएँ विद्यालय तक पहुँच रही हैं तथा माध्यमिक, उच्च माध्यमिक और उच्च शिक्षा में भी उनकी भागीदारी पहले की तुलना में लगातार बढ़ी है। विद्यालयों में आधारभूत सुविधाओं का विस्तार, छात्रवृत्ति योजनाएँ, समग्र शिक्षा अभियान, कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय, नन्दा गौरा योजना तथा समाज में बढ़ती शैक्षिक जागरूकता ने इस परिवर्तन को गति दी है। हाल के UDISE+ आँकड़े भी बालिकाओं की बढ़ती भागीदारी, विद्यालयी अवसंरचना में सुधार तथा विद्यालय छोड़ने की दर में कमी की पुष्टि करते हैं। राज्य सरकार द्वारा निःशुल्क पाठ्यपुस्तकें, मध्याह्न भोजन, छात्रवृत्तियाँ तथा विद्यालयी सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं, जिससे विशेष रूप से बालिकाओं के नामांकन और उपस्थिति में वृद्धि हुई है। फिर भी यह उपलब्धि पूरी तरह संतोषजनक नहीं कही जा सकती। क्योंकी उत्तराखण्ड की भौगोलिक परिस्थितियाँ आज भी बालिका शिक्षा के सामने सबसे बड़ी चुनौती हैं। दूरस्थ पर्वतीय गाँवों में विद्यालयों और महाविद्यालयों की दूरी, सुरक्षित परिवहन का अभाव, डिजिटल संसाधनों की कमी तथा आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों की सीमाएँ अनेक बालिकाओं की शैक्षिक प्रगति को प्रभावित करती हैं। विशेष रूप से माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के स्तर पर अनेक प्रतिभाशाली छात्राएँ परिस्थितियों के कारण अपनी शिक्षा बीच में छोड़ने या अपनी रुचि के विषयों से समझौता करने के लिए विवश हो जाती हैं। अतः जब तक राज्य की प्रत्येक बालिका– चाहे वह किसी दूरस्थ पर्वतीय गाँव में रहती हो या शहरी क्षेत्र में– बिना किसी आर्थिक, सामाजिक अथवा भौगोलिक बाधा के गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकेगी, तब तक शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य पूर्ण नहीं माना जा सकता । बालिका शिक्षा के लक्ष्य प्राप्ति के लिए सरकार द्वार ऐसी नीतियों को बढ़ावा देना चाहिए जिससे बालिकाओं के ड्रॉप आउट की समस्या दूर हो सके तथा स्कूल एवं कॉलेजों की गुणवत्ता बढ़ाई जा सके । इसके साथ ही बालिकाओं के लिए छात्रावासों की संख्या बढ़ाई जाए, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ उच्च माध्यमिक विद्यालय या महाविद्यालय दूर स्थित हैं। इसलिए भविष्य में केवल विद्यालयों और महाविद्यालयों की संख्या बढ़ाना ही पर्याप्त नहीं होगा, बल्कि सुरक्षित परिवहन, छात्रावास, डिजिटल सुविधाएँ, गुणवत्तापूर्ण शिक्षण, करियर मार्गदर्शन तथा सामाजिक जागरूकता को भी समान रूप से सुदृढ़ करना आवश्यक होगा। विद्यालयों में जीवन कौशल, स्वास्थ्य शिक्षा, मासिक धर्म स्वच्छता एवं लैंगिक समानता से संबंधित कार्यक्रम नियमित रूप से आयोजित करने होंगे , जिससे किशोरियों का समग्र विकास सुनिश्चित हो सके। उन्हें कैरियर परामर्श और प्रेरणा प्रदान दी जाए। जरूरत इस बात की है कि प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक इस प्रकार की कड़ी बनाई जाए कि बालिकाओं को बीच में शिक्षा छोड़ने की जरूरत ही न पड़े इससे न केवल बालिकाओं का व्यक्तिगत विकास होगा, बल्कि उत्तराखण्ड के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास को भी नई दिशा मिलेगी ।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- All India Survey on Higher Education.(2024)- All India Survey on Higher Education (AISHE) 2023–24. Ministry of Education, Government of India- https://aishe-gov-in
- Ministry of Education. (2026).UDISE+ 2025–26 report.Department of School Education & Literacy, Government of India. https://dashboard-udiseplus-gov-in
- Ministry of Education. (2020)- National Education Policy 2020. Government of India- .https://www-education-gov-in
- Ministry of Women and Child Development.(2024). Beti Bachao Beti Padhao. Government of India. https://wcd-gov-in
- Government of Uttarakhand.(2025). Department of Higher Education. Government of Uttarakhand. https://www-highereducation-uk.gov.in
- त्रिपाठी.मधुसूदन.(2006). बालिका शिक्षा. नई दिल्लीः विद्यावती प्रकाशन.
- सेंसेक्स ऑफ इंडिया (2011)

कृतिका त्रिवेदी

सहायक प्रोफेसर ए.सी

व्यावसायिक विभाग

परंपरा और पूँजी– उत्तराखंड में महिला उद्यमिता और सांस्कृतिक सशक्तिकरण

लेखक के बारे



मैं कृतिका त्रिवेदी हूँ और नैनीताल, कुमाऊँ क्षेत्र, उत्तराखंड से आती हूँ। मैं एक स्वतंत्र सांस्कृतिक अध्ययन शोधकर्ता हूँ। मेरे शोध की शुरुआत इस अनुभव से हुई कि मैं कुमाऊँनी होते हुए भी स्वयं को पूरी तरह 'कुमाऊँनी' नहीं महसूस कर पाती थी। बचपन में ही मेरी मातृभाषा कुमाऊँनी का स्थान हिंदी ने ले लिया और हिंदी मेरी पहली भाषा बन गई, जबकि मेरी औपचारिक शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रही। भाषाई पहचान में आया यह व्यवधान मेरे जटिल कुमाऊँनी अस्मिता–बोध की शुरुआत था। मेरे लिए यह व्यक्तिगत अनुभव केवल पहचान का प्रश्न नहीं रहा, बल्कि मेरे दीर्घकालिक शोध–उद्देश्य की आधारभूमि बन गया। इसी अनुभव ने मुझे कुमाऊँ की लोकभाषाओं, लोकस्मृतियों, लोककथाओं और सांस्कृतिक परंपराओं के अध्ययन की ओर प्रेरित किया। वर्तमान में मैं उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय के व्यावसायिक विभाग में अंग्रेजी संचार के लिए सहायक प्राध्यापक और शैक्षणिक परामर्शदाता के रूप में कार्य कर रही हूँ।

महिला सशक्तिकरण और उद्यमिता

परंपरा और पूँजी– उत्तराखंड में महिला उद्यमिता और सांस्कृतिक सशक्तिकरण

सारांश

उत्तराखंड की लोककथाएँ महज मनोरंजन या इतिहास की यादें नहीं हैं, ये समाज की सामूहिक चेतना, नैतिक मूल्य, संबंध, संघर्ष और जीवन के नजरिए को पीढ़ी से पीढ़ी तक पहुंचाने वाली मौखिक परंपराएँ हैं। खासकर महिलाओं और बालिकाओं से जुड़ी लोककथाएँ उस सामाजिक परिदृश्य को उजागर करती हैं, जिसमें महिलाएँ परिवार, संस्कृति, स्मृति और समुदाय के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इस अध्याय में उत्तराखंड की तीन प्रमुख लोककथाओं– 'हा, मैं क्या करूँ?', 'सदेई' और 'चंद्रवती के माध्यम से महिला सशक्तीकरण, बालिका शिक्षा, सांस्कृतिक संरक्षण और लोकतांत्रिक सुशासन के बीच संबंध स्थापित करने की कोशिश की गई है। इसका मुख्य तर्क यह है कि लोककथाओं को केवल अतीत की सामाजिक संरचना के प्रतिबिंब के रूप में नहीं, बल्कि वर्तमान नीतियों के सांस्कृतिक रूप में भी समझा जा सकता है। यह अध्याय यह तर्क रखता है कि लोककथाओं में जो नैतिक मूल्य मौजूद हैं, उन्हें आधुनिक संवैधानिक सिद्धांतों जैसे समानता, गरिमा, स्वतंत्रता, न्याय और सहभागिता के संदर्भ में समझा जा सकता है। लोककथा को नीतियों का विकल्प मानने के बजाय, इसे नीति और समुदाय के बीच एक सांस्कृतिक पुल के रूप में देखना चाहिए। जब लोककथाओं के प्रतीकों को बालिका शिक्षा, महिला स्वावलंबन, स्थानीय नेता, सांस्कृतिक संरक्षण और सामुदायिक भागीदारी के साथ जोड़ा जाता है, तो इससे सरकारी नीतियाँ अधिक स्थानीय, संवादात्मक और सहभागी बन सकती हैं। हालांकि, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि हर लोककथा को नीतिगत आधार के रूप में उपयोग करने से पहले उसे आलोचनात्मक दृष्टिकोण से परखना जरूरी है। क्योंकि लोक परंपराओं में पितृसत्तात्मक और स्त्री–विरोधी तत्व भी हो सकते हैं। इसलिए, लोककथाओं का चयन करते समय हमें आलोचनात्मक, संवैधानिक और लैंगिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

कीवर्ड्स– लोक कथाएँ, महिला सशक्तीकरण, सांस्कृतिक संरक्षण, लोकतांत्रिक सुशासन , बालिका शिक्षा, लोक

परिचय

उत्तराखंड की सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना को गहराई से समझने के लिए वहां की लोकपरंपराओं का अध्ययन करना बहुत महत्वपूर्ण है। पहाड़ का समाज सिर्फ लिखित इतिहास, सरकारी दस्तावेजों या औपचारिक संस्थानों द्वारा नहीं बना हैय बल्कि उसकी पहचान का एक बड़ा हिस्सा लोकगीतों, लोककथाओं, कहावतों, पर्वों और देवी–देवताओं से संबंधित मान्यताओं में छिपा हुआ है (सिकाला, 2006)। ये सब तत्व वर्षो से चले आ रहे मौखिक ज्ञान का हिस्सा हैं, जिसमें समाज के अनुभवों को संजोया गया है। इन लोकपरंपराओं में यह दर्शाया गया है कि किस व्यवहार को अच्छा माना गया और किन्हें अनुचित समझा गया (अंतवाल और अन्य, 2010)। परिवार और समुदाय के बीच के संबंध कैसे कायम किए गए, महिला और पुरुष की भूमिकाएं किस प्रकार से निर्धारित की गईं, और संकट के समय में मनुष्य से किस प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा की गई–इन सभी सवालों के जवाब लोककथाओं में स्पष्ट या अदृश्य रूप से मिल जाते हैं (सहाय, 2025)। इसलिए, लोककथा को केवल मनोरंजन का साधन मानना उसके व्यापक सामाजिक महत्व को कम करना होगा। महिलाओं से जुड़ी लोककथाएँ विशेष महत्त्व रखती हैं। उत्तराखंड के ग्रामीण

परिवेश में, महिलाएँ खेती, पशुपालन, परिवार के सदस्यों की देखभाल, जल और वन संसाधनों के प्रबंधन, त्योहारों के आयोजनों और लोक संस्कृति के संरक्षण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं (सिंह और अन्य, 2023)। कई लोकगीत और कथाएँ स्वयं महिलाओं के अनुभवों, यादों और भावनात्मक जीवन को व्यक्त करती हैं। इस कारण, हमें लोककथाओं को महिला अध्ययन के एक स्रोत के रूप में देखना चाहिए, जिससे यह समझने में मदद मिलती है कि महिलाएँ अपने समाज को किस दृष्टिकोण से देखती हैं और अपने अनुभवों को सामूहिक यादों में किस तरह से संजोती हैं (नेगी, 2022)। 'लोक' को एक महत्वपूर्ण लोकतांत्रिक मूल्य के रूप में समझना काफी सहायक है। यह ध्यान रखना जरूरी है कि लोक का संसार हमेशा केवल काले या सफेद रंग में नहीं रंगा होता। लोककथाओं के पात्र न सिर्फ नायक या खलनायक के सीमित वर्गों में बँटे होते हैं, बल्कि वे सामान्य इंसान होते हैं (लूनासेक, 2014)। इनमें प्रेम, भय, भूल, स्वार्थ, करुणा और सुधार की संभावनाएँ शामिल होती हैं। यही जटिलता लोककथाओं को आधुनिक लोकतांत्रिक चिंतन के लिए प्रासंगिक बनाती है। लोकतंत्र भी लोगों को पूर्ण या अपूर्ण के आधार पर नहीं बांटता, यह हर व्यक्ति की गरिमा, अधिकार और भागीदारी को महत्वपूर्ण मानता है। इस दृष्टिकोण से, लोककथाओं के नैतिक आयामों और आधुनिक संवैधानिक मूल्यों के बीच एक संवाद स्थापित किया जा सकता है। महिला सशक्तीकरण पर यह संवाद अत्यंत महत्वपूर्ण है (राणा और अंसारी, 2019)। आज के संदर्भ में, महिला सशक्तीकरण का मतलब सिर्फ महिलाओं को किसी योजना का लाभ देना नहीं है। यह शिक्षा, आर्थिक स्वतंत्रता, निर्णय लेने की क्षमता, सामाजिक मान–सम्मान, सुरक्षा, नेतृत्व और सार्वजनिक जीवन में भागीदारी को भी शामिल करता है। बालिका शिक्षा भी केवल विद्यालय में नामांकन तक सीमित नहीं रह जानी चाहिए। शिक्षा एक लड़की को अपने अधिकारों को जानने, सवाल पूछने, निर्णय लेने और अपने भविष्य की दिशा तय करने की शक्ति देती है (महिला उद्यमियों और गैर सरकारी संगठनों की भूमिका, 2017)। यदि इन नीतियों को स्थानीय समुदाय की सांस्कृतिक धरोहर से जोड़ा जाए, तो उनके संदेश को और भी प्रभावी और आत्मीय बनाया जा सकता है। इस अध्याय की शुरुआत प्रश्न से होती है कि क्या लोककथाएँ वर्तमान शासन और विकास के संदर्भ में महत्वपूर्ण हो सकती हैं। विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि लोककथा शासन का स्थान नहीं ले सकती, लेकिन यह शासन को जनता से जोड़ने का कार्य अवश्य कर सकती है। यह नीति को स्थानीय संस्कृति, भाषा और अनुभव से जोड़कर प्रस्तुत कर सकती है। लोककथाओं में केवल कथा नहीं होती, बल्कि इनमें लोगों की यादें, अनुभव, डर, विश्वास और आशाएँ भी समाहित होती हैं। ये तत्व किसी समाज के व्यवहार को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं (यूनेस्को, 2015)। इस प्रकार, लोककथाओं में निहित महत्वपूर्ण मूल्यों को समकालीन नीतियों से जोड़ना संभव है। ऐसा करने से न केवल लोकसंस्कृति की रक्षा होगी, बल्कि नीतियाँ भी लोगों के लिए अधिक सुलभ और समझने में आसान हो जाएँगी।

पहली कथा है– 'हां मैं क्या करू'। यह लोक कथा महिला सशक्तिकरण की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। यह महिलाओं और प्राकृतिक संबंधों को दर्शाती है (गुरुरानी, 2002)। कहानी की शुरुआत एक चिड़िया की दुख भरी चीख से होती है। उसका स्वर अक्सर इस तरह सुनाई देता है– हां मैं क्या करूं? सभी लोक कथाओं की तरह यह लोक कथा भी बहुत पुराने समय की बात है कहकर शुरू होती है। यहाँ एक बड़े परिवार का वर्णन है जिसमें कुल सात भाई और उनकी बहुएं रहतीं थीं। कहानी की मुख्य किरदार घर के सबसे छोटे भाई की पत्नी है। स्त्री का नाम रूपा है और लोक कथा में उसे निर्णय लेने की स्वतंत्रता नहीं है। उसके जीवन के सभी निर्णय उसके परिवार जन लेते दिखाई देते हैं। सबसे छोटी बहू होने के बावजूद भी वह अपने पूरे परिवार की जिम्मेदारी लेती है। बात आषाढ़ के महीने की है, जहां रोपाई

के लिए रोज खेतों में जाना होता है। रूपा का एक छोटा पुत्र भी है। घर का सारा काम करने की अत्यधिक थकान के कारण वह खेत की रोपाई में नहीं जा सकती थी। यह देख घर में उपस्थित सभी उसे खेत में जाने से तो मना कर देते हैं परंतु घर का सभी काम रूपा के सर आ जाता है। रूपा सिर्फ इस बात से खुश हो जाती है कि पिछली रात उसे सोने को नहीं मिला था और अब उसे ज्यादा कुछ नहीं बस घर का काम करना होगा। लोक कथा में बताया जाता है कि किस तरह वह एक हाथ में बच्चे को लिए है और दूसरे हाथ से काम कर रही है– आटा गूंथना, सब्जी चढ़ाना। परंतु कुछ ही देर में उसका पुत्र जोर–जोर से रोने लगता है और वह लाचार होकर उसे दूध पिलाने लगती है। वह थकी थी और बच्चे को भोजन देते हुए उसे नींद आ गई। घर पर कोई था नहीं, तो उसे जगाने वाला कोई न था। जब देर शाम वह उठती है तो चूल्हा ठंडा पाकर घबरा जाती है। वह इतनी घबरा जाती है कि उसके शरीर से प्राण निकलते हुए दिखाई देते हैं। लोक कथा इस बात को दर्शाती है कि उत्तराखंड में महिलाएं सदा ही काम करती आई है, चाहे वह घर का हो या बाहर का। यह कथा घर में रह रही स्त्री अनुभव की एक बेहतरीन लोकदृष्टि है। कथा में भय से स्त्री के प्राण चले जाना केवल एक दुरघटना मानकर नजर अंदाज करना उचित नहीं। कहानी के अंत में बताया जाता है कि कैसे घर का एक–एक सदस्य– सास, पति, जेठानी और जेठ उसे क्रोध से देखने लगते हैं। वह इतनी डर जाती है कि यह कहते–कहते– 'हाँ मैं क्या करूं' उसके प्राण पखेरू उड़ जाते हैं। यह लोक कथा महिलाओं की घर, बाहर वह सांस्कृतिक संरक्षण में निरंतर जिम्मेदारी को दिखाता है (गुरुरानी, 2002)। महिला सभी के काम करती है परंतु उसको स्वतंत्र निर्णय लेने का बहुत कम अधिकार होता है। जब घर के सदस्य बाहर काम पर चले जाते हैं तो एक महिला ग्रामीण समाज में पशुपालन, खेती, जल स्रोतों से पानी भरना, व्यंजन बनाना, परिवार की देखभाल करना और सभी रीति रिवाजों का पालन करती है। इसीलिए उत्तराखंड में महिला सशक्तिकरण को लोक कथा की लोकदृष्टि देना अत्यंत महत्वपूर्ण है। इससे हमें महिलाओं की निरंतर जिम्मेदारी और शक्ति का पता चलता है। इस कथा को सिर्फ श्रम और दुख की नजर से देखने के विपरीत हमें महिला शक्ति, नेतृत्व और बुद्धिमता के रूप में स्वीकारने की आवश्यकता है (डायसन, 2022)। पाठ में बताया जाता है कि अंत में उस महिला के प्राण एक चिड़िया में बस जाते हैं। आज भी आषाढ़ के महीने में वह चिड़िया रोती सुनाई पड़ती है। 'हां मैं क्या करूं' । अतीत में जो वाक्य महिला की विवशता दिखता है– 'हां मैं क्या करूं' आज वही वाक्य उनके अधिकार मांगने का प्रतीक बन सकता है। महिलाओं को आज अपने लिए ही नहीं अपनी बालिकाओं के लिए भी यह सोचने की जरूरत है कि– 'हां, मैं क्या कर सकती हूं'। महिलाओं को शिक्षित करना केवल एक मनुष्य को अक्षर ज्ञान देना नहीं है। एक लड़की के पढ़ने से दो परिवार शिक्षित होते हैं (तिवारी और अन्य, 2023)। उत्तराखंड में चलने वाली महिला सशक्तिकरण व बालिका शिक्षा योजनाओं को लोकदृष्टि से देखने की आवश्यकता है। बालिकाओं को छात्रवृत्ति या महिलाओं को कौशल विकास योजनाएं अगर लोक के माध्यम से बताई जाएं तो वह मात्र प्रशासनिक भाषा नहीं रह जाती उसमें भावनात्मक रूप से लोगों की भागीदारी जुड़ती है। इस कथा में चिड़िया शक्ति का प्रतीक बन सकती है। चिड़िया स्वतंत्र है वह जब चाहे उड़ सकती है। उसका कहना 'मैं क्या करूं' निर्णय लेने की ताकत दिखता है। उस चिड़िया में रूपा की दबी हुई आवाज है। जो मनुष्य रूप में वह न कह पाए लेकिन लोगदृष्टि उसे चिड़िया के स्वर में लोगों तक पहुंचाती है। वह चिड़िया रूपा की अभिव्यक्ति का प्रतीक है। प्रशासन की दृष्टि से यह ऐसी कहानी है जो स्त्री की बात कठिन समय में सुने जाने पर जोर देती है। प्रासंगिक संदर्भ में इस लोक कथा का मार्म यह होना चाहिए कि स्त्री की आवाज इतनी बुलंद हो जाए कि किसी रूपा को अपनी आवाज दबाने की या अपनी प्राण त्यागने की जरूरत न पड़े।

दूसरी कथा है– सदेई। यह कथा एक बहन और उसके भाई के संबंध और सांस्कृतिक परंपराओं की लोकदृष्टि प्रस्तुत करती है। इस कहानी में सदेई नाम की स्त्री का विवाह बहुत छोटी उम्र में ही हो जाता है। उसका ससुराल उसके मायके से बहुत दूर होता है। उसे अपने घर अर्थात पहाड़ की याद बहुत सताती है उसके ससुराल के कमरे की खिड़की के सामने ऊंचे ऊंचे पर्वत घना जंगल दिखाई देते हैं। वह उसके मायके जाने के रास्ते में है और उन्हें पार करना आसान नहीं। परंतु वह जब भी आकाश को देखती तो उसे अपने मायके की याद सताती। कथा में उसका घर तीन से चार पहाड़ों के पार बताया गया है। बार–बार पहाड़ों, आकाश, नदियों और पशु पक्षियों का जिक्र स्त्री के मायके की यादें ताजा करना इस बात को स्पष्ट करते हैं कि महिलाओं का प्रकृति से प्रगाढ़ संबंध हैं (गुरुरानी, 2002)। यह बात और भी पक्की हो जाती है जब वह स्त्री अपने मायके की याद में एक वृक्ष लगती है। वह उस वृक्ष से बातें करती रहती है। कभी अपना माता–पिता मानकर, कभी अपना भाई मानकर। उस स्त्री का कोई भाई नहीं था। यह लोक कथा में बताया जाता है कि उसे एक भाई की आकांक्षा थी, जिसकी तुलना वह पेड़ों से करती थी। जो वृक्ष सदेई ने लगाया था वह मात्र एक पौधा नहीं था वह लोक कथा का एक महत्वपूर्ण प्रतीक है। वह स्त्री के लिए उसका बचपन, उसका परिवार, उसका मायका था। जब आज सांस्कृतिक संरक्षण की बात होती है तो अक्सर हम जड़ों से जुड़ने की बात करते हैं। एक पेड़ लगाकर उससे बातचीत करने से सदेई यह दिखाती है कि उत्तराखंड में परिवार और प्रकृति एक ही। मायके के नाम का वृक्ष लगाकर उससे बातचीत करना अपनी पहचान को जीवित रखना सांस्कृतिक संरक्षण की ओर संकत करता है। लोक कथा में सदेई को सिर्फ एक रोती हुई स्त्री देखना उचित नहीं। वह पहाड़ों की बेटी है जो जंगल, नदियों आकाश और पशु–पक्षियों को अपना परिवार मानती है। इस लोक कथा में हमें महिला सशक्तिकरण और सांस्कृतिक संरक्षण के कई बिंदु मिलते हैं। वहीं दूसरी ओर महिला का प्रकृति से प्रेम और महिला और प्रकृति का अटूट संबंध भी दिखता है। यह दिखाता है कि एक स्त्री की निजी स्मृति किस प्रकार एक समुदाय का सांस्कृतिक अनुभव बन सकती है (जोशी और भारद्वाज, 2015)। मायके जाने की आकांक्षा होने पर वह कई बार भाई की इच्छा करती है। वह सोचती है अगर उसका कोई भाई होता तो उसे मायके ले जाता। उसके भाई सदैऊ उसके ब्याहने के बाद जन्म लेता है। जब उसे अपनी बहन का पता चलता है तो वह बिना प्रतीक्षा किया उसे मायके लाने चल देता है। यह लोक कथा हमें महिला सशक्तिकरण का एक और मुख्य बिंदु पढाती है– सशक्तिकरण स्वतंत्रता से आता है। यदि सदेई स्वतंत्रत होती तो वह मायके जाने के लिए सशक्त होती। इस कहानी को आज के संदर्भ में इस प्रकार पढ़ा जा सकता है कि क्या आज की बेटी को अपने निर्णय लेने की स्वतंत्रता है? इस लोक कथा में एक सबसे शक्तिशाली लोकतांत्रिक पक्ष सदेई के चरित्र में दिखाई देता है– अपनी इच्छा व्यक्त करना और निर्णय लेना। जब वह अपने भाई से मिलती है और देवी भवानी उसके स्वप्न में उससे अपने सबसे प्रिय वस्तु की बलि देने का आदेश देती है, सदेई के पास निर्णय लेने की शक्ति लोक कथा में है। सदेई कहानी में अपने पुत्रों की बलि चढ़ा देती है। परंतु मां भवानी उसके त्याग और पवित्र मन को देखकर उसके दोनों पुत्रों को फिर से जीवित कर देती है। इस लोक कथा में स्त्री की आवाज, उसकी स्थिति, उसकी इच्छा और उसके निर्णय वह खुद तय करती है। यह लोक कथा महिला सशक्तिकरण का एक बेहतरीन उदाहरण तो है ही परंतु उसके साथ–साथ यह महिलाओं और प्रकृति के संबंधों को व्यक्त करता है और सांस्कृतिक संरक्षण भी सुरक्षित करने का संदेश देता है।

तीसरी कहानी है– चंद्रवती। इस कथा में एक राजकुमारी का असाधारण जीवन, उसकी आस्था और चमत्कारों का जिक्र है, लेकिन इसके पीछे गहराई में स्त्री की निर्णय क्षमता, संकट के समय विवेक, आत्मरक्षा, नैतिक साहस और अपने भविष्य पर खुद के निर्णय लेने की ताकत के कई आयाम छिपे हैं।

उत्तराखंड की लोककथाएँ सिर्फ मनोरंजन का साधन नहीं रही हैं, बल्कि इन्होंने पीढ़ी दर पीढ़ी जीवन के मूल्यों, संबंधों, कर्तव्यों और सामाजिक व्यवहार का संचार किया है (नेगी, 2022)। चंद्रावती विभिन्न परिस्थितियों को समझती है, सवाल उठाती है, निर्णय लेती है और समस्याओं का सामना करने के लिए अपनी बुद्धि का प्रयोग करती है। कहानी की शुरुआत एक ऐसे सामाजिक परिदृश्य से होती है, जहां चंद्रावती की इच्छा के विरुद्ध मात्र पाँच दिन के शिशु से उसका विवाह कर दिया जाता है। यह लोककथा उस समय की सामाजिक व्यावस्था को उजागर करती है, जिसमें बाल विवाह और महिलाओं की सहमति की कमी सामान्य बात थी। आज के संवैधानिक लोकतंत्र में, जहाँ समानता, गरिमा, स्वतंत्रता और शिक्षा जैसे मूलभूत मूल्य महत्वपूर्ण हैं, ऐसी प्रथाओं को कभी मान्यता नहीं दी जा सकती। इसलिए इस कथा का समकालीन अध्ययन इसका पुराना दृष्टिकोण नहीं अपनाना है, बल्कि उसके अंदर से उन प्रतीकों की पहचान करना है, जो आज के समाज को और अधिक न्यायपूर्ण बना सकते हैं। चन्द्रावती का सबसे महत्वपूर्ण गुण यह है कि वह सत्य को पहचानने और उस पर आधारित निर्णय लेने का साहस रखती है। जब उसे यह पता चलता है कि विवाह की आड़ में उसके साथ छल हुआ है, तो वह जरुर टूटती है, लेकिन परिस्थितियों के आगे खुद को पूरी तरह समर्पित नहीं करती। वह अपनी बुद्धिमत्ता के बल पर एक नया रास्ता चुनती है। जंगल की कठिन यात्रा, अपरिचित परिस्थितियाँ, और एक शिशु का साथ, ये सभी उसके सामने अनेक चुनौतियाँ प्रस्तुत करते हैं। फिर भी, वह अपने भाग्य पर निर्भर नहीं रहती। रूप में स्वीकार नहीं करती। यह पक्ष आज की बालिका शिक्षा के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रतीक बन सकता है। शिक्षा का असली अर्थ सिर्फ स्कूल जाकर पढ़ाई करना या परीक्षा पास करना नहीं हैय यह एक ऐसी गहरी समझ विकसित करना है जो एक लड़की को सही और गलत का अंतर पहचानने, अपने अधिकारों का ज्ञान रखने और मुश्किल हालात में स्वतंत्र निर्णय लेने में सक्षम बनाती है (गुप्तां, 2026)। इस संदर्भ में, चन्द्रावती की कथा एक प्रेरणादायक नायिका पेश करती है, जो शिक्षा को आत्मनिर्भरता और निर्णय–निर्माण से जोड़ती है। कहानी में पार्वती का पात्र भी महत्वपूर्ण है। जब वह चन्द्रावती की दुखद स्थिति को देखती हैं, तो वह महादेव से उसकी सहायता की प्रार्थना करती हैं और तब तक आग्रह करती हैं जब तक चन्द्रावती की हालात में सुधार नहीं होता। यह उत्तराखंड की सांस्कृतिक परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें महिला केवल घर की देखभाल करने वाली नहीं होती, बल्कि वह शक्ति, करुणा, संरक्षण और न्याय की प्रतीक भी होती है (गुरुरानी, 2002)। उत्तराखंड की लोक–स्मृति में देवी परंपरा, कुलदेवी, ग्रामदेवी और अन्य स्थानीय विधियों में महिलाओं की विशेष सांस्कृतिक भागीदारी को उजागर किया गया है। इसलिए, यदि महिला सशक्तीकरण की नीतियों को केवल प्रशासनिक भाषा में पेश किया जाता है, तो वे समुदाय के साथ दूरी बना सकती हैं। लेकिन अगर इनमें स्थानीय देवी, परंपराओं और लोककथाओं के परिचित प्रतीकों का संवेदनशील तरीके से उपयोग किया जाए, तो महिलाओं और लड़कियों को यह महसूस हो सकता है कि सशक्तीकरण सिर्फ एक बाहरी धारणा नहीं है, बल्कि उनकी सांस्कृतिक पहचान का भी एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। चन्द्रावती की सबसे बड़ी ताकत उसका शारीरिक बल नहीं है, बल्कि उसका विवेक और संकट के क्षणों में निर्णय लेने की क्षमता है। जब वन का राजा उसकी ओर बुरी नजर डालता है, तो वह खतरे को पहचान लेती है और अपने पति को वहां से जाने के लिए कहती है। बाद में, जब वह सात चोरों के घर पहुंचती है, तो वह स्थिति को समझ जाती है और अपने पति को सावधान करती है। हालांकि, उसका पति उसकी चेतावनी को गंभीरता से नहीं लेता, लेकिन चन्द्रावती स्थिति को सही तरीके से पढ़ने मं असफल नहीं होती। इस पूरे घटनाक्रम को आज की लड़कियों के लिए सुरक्षा की भावना, निर्णय लेने की क्षमता, और आत्मरक्षा के संदर्भ में देखा जा सकता है। प्रतीक के रूप में पढ़ा जा सकता है। कथा के लोकतांत्रिक पहलू की झलक इस बात से मिलती है कि चन्द्रावती को एक सर्वशक्तिशाली आदर्श स्त्री के रूप में नहीं दिखाया गया

है। वह असुरक्षित होती है, भावनाओं में बहती है, विभिन्न परिस्थितियों में उलझती है, और कभी–कभी दूसरों पर भरोसा भी करती है, फिर भी हर संकट से वह सीखते हुए आगे बढ़ती है। यही कथा की 'धूसर' दुनिया है, जहाँ पात्र पूर्णतया देवता या दानव नहीं होते (लूनासेक, 2014)। राजकुमार तो दयालु है, लेकिन सभी परिस्थितियों को समझने की क्षमता नहीं रखताय काना चोर धोखा देता हैय दूती की इच्छाएँ और उसके कार्य नैतिकता की सीमा से परे जाते हैंय पार्वती करुणा के भाव से हस्तक्षेप करती हैं। इस प्रकार की कथा मानव व्यवहार की जटिलता को उजागर करती है। यही विशेषता इसे संवैधानिक लोकतांत्रिक सिद्धांतों के अध्ययन में प्रासंगिक बनाती है। लोकतंत्र सिर्फ नागरिकों को अच्छे और बुरे के स्थायी द्वंद्व में नहीं बांटता, बल्कि कानून, अधिकार, न्याय और जिम्मेदारी के अनुसार उनके व्यवहार को समझता है (यूएनडीपी, द.क.)। चन्द्रावती का व्यक्तित्व इसलिये भी महत्वपूर्ण है क्योंकि वह केवल अपने लिए नहीं, बल्कि अपने संबंधों और जिम्मेदारियों के प्रति भी संघर्ष करती है। वह अपने शिशु की देखभाल करती है, पति को संकट से बाहर निकालने का प्रयास करती है और अंततः अपने परिवार को सुरक्षित पहुँचाने का मार्ग प्रशस्त करती है। इसे उत्तराखंड की महिलाओं की व्यापक सामाजिक भूमिका के संदर्भ में समझा जा सकता है। पहाड़ी समाज में महिलाओं का परिवार, कृषि, पशुपालन, जल संसाधनों, स्थानीय परंपराओं, त्योहारों और सामुदायिक जीवन को सहेजने में ऐतिहासिक योगदान रहा है (भंडारी और रेड्डी, 2015)। यह भूमिका उन्हें सिर्फ त्याग करने वाली स्त्री के रूप में देखने की वजह नहीं बननी चाहिएय बल्कि यह हमें यह समझने में मदद करनी चाहिए कि महिलाओं के पास स्थानीय ज्ञान, सामाजिक नेतृत्व और निर्णय लेने की क्षमता का एक विशाल अनुभव है। इसलिए, आज की महिला–केंद्रित नीतियों में महिलाओं को केवल लाभार्थी मानने के बजाय उन्हें नीति–निर्माण की प्रक्रिया में भी शामिल किया जाना जरूरी है। और स्थानीय शासन की सहभागी बनाया जाना आवश्यक है।

अनुशंसाएँ और आगे की दिशा

महिला सशक्तीकरण और बालिका शिक्षा से संबंधित नीतियों में लोककथाओं का समावेश केवल इसलिए जरूरी नहीं है कि वे स्थानीय संस्कृति का प्रतीक हैं, बल्कि इसीलिए भी कि ये नीति और समुदाय के बीच एक भावनात्मक और सांस्कृतिक संबंध स्थापित कर सकती हैं। आधुनिक शासन में नीतियों का निर्माण उसी तरह महत्वपूर्ण है, जैसे कि उन नीतियों की समाज द्वारा समझदारी और उनमें लोगों की सक्रिय भागीदारी। जब किसी योजना की भाषा समुदाय के अनुभवों से मेल खाती है, तो उसका विश्वास और अपनापन बढ़ता है। जैसे उत्तराखंड के सांस्कृतिक रूप से समृद्ध राज्य में, लोककथाएं इस प्रक्रिया के लिए एक प्रभावी साधन बन सकती हैं। उत्तराखंड में लोककथाओं से प्रेरित एक सरल और व्यावहारिक मॉडल तैयार किया जा सकता है। प्रारंभिक कदम के रूप में, स्थानीय लोककथाओं और मौखिक परंपराओं का समुदाय के सहयोग से दस्तावेजीकरण करना होगा। इसमें केवल कथाएँ ही नहीं, बल्कि उन कथाओं से संबंधित स्थान, भाषा, गीत, भोजन, पौधे और सामाजिक व्यवहार को भी संकलित किया जाना चाहिए। इसके बाद, हर लोक परंपरा में निहित महत्वपूर्ण मूल्यों की पहचान की जानी चाहिए। तीसरा चरण सरकारी योजनाओं को स्थानीय सांस्कृतिक प्रतीकों और नामों के माध्यम से अधिक स्वीकार्य बनाना होगा, जिसे स्थानीय समुदाय की सलाह से किया जाना चाहिए। चौथे चरण में, गाँवों में ऐसे पर्यटन मार्ग विकसित करने होंगे, जहाँ पर्यटक सिर्फ दृश्य स्थलों का आनंद न लें, बल्कि उनकी कहानियों को भी सुन सकें। इससे स्थानीय महिलाएँ उद्यमिता के माध्यम से आय प्राप्त कर सकेंगी।

संदर्भ सूची

भंडारी, जी., एवं रेड्डी, बी. वी. सी. (2015)। उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में बाह्य–प्रवास का कृषि और महिलाओं के कार्यभार पर प्रभावरू एक आर्थिक विश्लेषण। *इंडियन जर्नल ऑफ एग्रीकल्चरल इकोनॉमिक्स, 70*(3), 395–404।

डायसन, जे. (2022)। सुधारवादी सक्रियतारू भारत में युवा महिलाएँ, लैंगिकता और परिवर्तन। *जर्नल ऑफ द रॉयल एंथ्रोपोलॉजिकल इंस्टीट्यूट, 28*(4), 1234–1251।

चटक, जी. (1956) गदवाली लोकगीत। जुगल किशोर एंड कंपनी।

गुप्ता, एस. के. (2026)। उत्तराखंड में महिला सशक्तीकरण और प्रवासन नियंत्रण के साधन के रूप में स्वयं सहायता समूह। *वीथिकारू एन इंटरनेशनल इंटरडिसिप्लिनरी रिसर्च जर्नल*।

गुरुरानी, एस. (2002)। सुख और पीड़ा के वनरू कुमाऊँ हिमालय, भारत के वनों में श्रम और आजीविका की लैंगिक संरचना। *जेंडर, प्लेस एंड कल्चर, 9*(3), 229–243।

जोशी, के., एवं भारद्वाज, एन. (2015)। उत्तराखंड के लघु हिमालयी क्षेत्र में जल एवं वन संरक्षण में महिलाओं की भूमिका का अध्ययन। *इंडियन रिसर्च जर्नल ऑफ एक्सटेंशन एजुकेशन, 15*(3)।

कौर, के., एवं द्विवेदी, ए. वी. (2018)। मौखिक परंपरा कथाविज्ञान की जीवंत पुस्तिका के रूप मेंरू डोगरा लोकगीतों का लैंगिकता पर सांस्कृतिक प्रभाव। *मीडिया वॉच, 9*(1), 150–159।

लुनाचे़क, आई. (2014)। अच्छा, बुरा और बहिष्कृतरू लोकनायकों की नैतिक द्वैधता पर। *स्टूडिया माइथोलॉजिका स्लाविका, 17*, 103–116।

नेगी, पी. (2022)। उत्तराखंड के लोक साहित्य में महिलाओं का प्रतिनिधित्व। *शोधकोशरू जर्नल ऑफ विजुअल एंड परफॉर्मिंग आर्ट्स, 3*(2), 1050–1056।

राणा, के., एवं अंसारी, एम. ए. (2019)। स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिला सशक्तीकरणरू भारत के उत्तरी हिमालयी राज्य में एक अध्ययन। *जर्नल ऑफ कम्युनिटी मोबिलाइजेशन एंड सस्टेनेबल डेवलपमेंट, 14*(3), 389–396।

महिला उद्यमियों और गैर–सरकारी संगठनों की उद्यमिता को बढ़ावा देने में भूमिकारू उत्तराखंड, भारत से प्राप्त प्रकरण अध्ययन। (2017)। *जर्नल ऑफ एशिया बिजनेस स्टडीज, 11*(4), 451दृ465।

सहाय, एस. (2025)। पहाड़ों की महिलाओं की आवाजेंरू उत्तराखंड के लोक साहित्य का एक अध्ययन। *द एक्सप्रेशनरू एन इंटरनेशनल मल्टीडिसिप्लिनरी ई–जर्नल, 11*(3)।

सीकाला, ए.–एल. (2006)। लोककथा प्रदर्शन और अपनत्व की भावना। *एफएफ नेटवर्क, 31*, 2।

सिंह, जे., दत्ता, ए., सिंह, पी., डोभाल, ए., मनन, डी., एवं गोस्वामी, पी. (2023)। उत्तराखंड के एक आकांक्षी जिले की महिलाओं की उद्यमशील अभिरुचि। *इंडियन जर्नल ऑफ एक्सटेंशन एजुकेशन।*

तिवारी, एस. के., पल्टासिंह, के. आर., जेना, पी. के., एवं राव, के. आर. (2023)। लैंगिक विविधता और भारत में सीखने की क्षमता का अंतर–पीढ़ीगत संचरण। *जर्नल ऑफ एशियन एंड अफ्रीकन स्टडीज।*

यूनेस्को। (2015)। *अमूर्त सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण संबंधी अभिसमय के कार्यान्वयन के लिए परिचालन निर्देश। यूनेस्को*।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम। (बिना तिथि)। *जन–केंद्रित न्याय और सुरक्षारू जवाबदेही*। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम।

उत्तराखंड में महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका

सार

उत्तराखंड एक पर्वतीय राज्य होने के कारण भौगोलिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्तर पर विशिष्ट चुनौतियों का सामना करता है, जिनका महिलाओं के जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। लैंगिक असमानता, निर्धनता का स्त्रीकरण, पुरुषों का रोजगार हेतु बाह्य प्रवासन तथा इसके परिणामस्वरूप महिलाओं पर बढ़ता दोहरा कार्यभार प्रमुख समस्याएँ हैं। पुरुषों के प्रवासन के कारण घरेलू दायित्वों के साथ कृषि, पशुपालन, परिवार की देखभाल तथा अन्य सामाजिक-आर्थिक जिम्मेदारियाँ भी मुख्यतः महिलाओं के कंधों पर आ जाती हैं। परिणामस्वरूप, उनके श्रम, त्याग और योगदान का पर्याप्त मूल्यांकन नहीं हो पाता ।महिला सशक्तिकरण में गैर-सरकारी संगठनों की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है। इस अध्याय के माध्यम से आप गैर-सरकारी संगठनों द्वारा किए गए विभिन्न हस्तक्षेपों (प्रयासों) को समझेंगे, जो प्रारंभ में छोटे स्तर पर लागू किए गए थे, किंतु समय के साथ उत्तराखंड की महिलाओं के सर्वांगीण विकास पर उनका व्यापक और गहरा प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

परिचय

विश्व बैंक के अनुसार, गैर-सरकारी संगठन ऐसे निजी संगठन हैं जो मानवीय पीड़ा को कम करने, निर्धन एवं वंचित वर्गों के हितों को बढ़ावा देने, पर्यावरण संरक्षण, बुनियादी सामाजिक सेवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने तथा सामुदायिक विकास को प्रोत्साहित करने जैसी गतिविधियों में संलग्न होते हैं। (Lewis & Kanji, 2009) सामाजिक कार्यकर्ताओं का प्रमुख ध्यान सामाजिक न्याय एवं सामाजिक परिवर्तन के मूल्यों को सूक्ष्म-स्तरीय (micro-level) सामाजिक संबंधों में स्थापित करने पर केंद्रित रहा है। वे सेवाग्राहियों के साथ इस प्रकार कार्य करने का प्रयास करते हैं कि उनकी समस्याओं का समाधान हो तथा उनकी विविधता, विशिष्टता और भिन्नताओं का सम्मान भी सुनिश्चित किया जा सके। इस दृष्टि से गैर-सरकारी संगठन सामाजिक विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे हाशिए पर स्थित एवं वंचित व्यक्तियों तथा बाह्य बाजार-व्यवस्था के बीच एक सेतु के रूप में कार्य करते हुए उन्हें स्वतंत्र एवं स्वावलंबी आय अर्जित करने के अवसर उपलब्ध कराते हैं। इस प्रकार, “जहाँ चाह, वहाँ राह” की भावना के अनुरूप, NGOs सामाजिक एवं आर्थिक रूप से वंचित समुदायों को आत्मनिर्भरता की दिशा में आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं।

किसी राष्ट्र का विकास उस राष्ट्र की महिलाओं के विकास से पृथक अथवा उससे अलग-थलग करके नहीं देखा जा सकता। विश्व की कुल जनसंख्या का लगभग आधा हिस्सा महिलाएँ हैं और मानव इतिहास की दिशा को प्रभावित करने के साथ-साथ मानवता के भविष्य एवं नियति को आकार देने में उनकी निर्णायक भूमिका हो सकती है। दुर्भाग्यवश, लगभग प्रत्येक समाज में लैंगिक असमानता आज भी महिलाओं के अधिकारों, क्षमताओं और अवसरों के प्रभावी उपयोग के मार्ग में एक शक्तिशाली अवरोध के रूप में विद्यमान है। जीवन के विभिन्न चरणों में यह लैंगिक अवरोध महिलाओं की व्यक्तिगत स्वतंत्रता, सामाजिक सहभागिता तथा विकास की संभावनाओं को सीमित करता है। अतः सर्वप्रथम हमारे समाज में महिलाओं द्वारा सामना की जाने वाली प्रमुख समस्याओं को समझना आवश्यक है। इसके पश्चात् गैर-सरकारी संगठन क्षेत्र द्वारा इन समस्याओं के समाधान हेतु किए जा रहे हस्तक्षेपों का अध्ययन किया जाएगा तथा अंततः उत्तराखंड में कार्यरत गैर-सरकारी संगठनों पर विशेष ध्यान केंद्रित किया जाएगा।

हम स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि महिलाओं को समाज में अनेक विशिष्ट चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जिनमें बाल विवाह, लैंगिक आधार पर हिंसा तथा सीमित शैक्षिक अवसर प्रमुख हैं। ये समस्याएँ न केवल महिलाओं के व्यक्तिगत, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक विकास में बाधा उत्पन्न करती हैं, बल्कि व्यापक रूप से समाज के समग्र विकास एवं प्रगति को भी प्रभावित करती हैं। महिलाओं पर प्रायः दोहरे दायित्व का बोझ रहता है। एक ओर वे पारंपरिक घरेलू भूमिकाओं का निर्वहन करते हुए परिवार का प्रबंधन करती हैं तथा बच्चों एवं परिवार के अन्य सदस्यों की देखभाल करती हैं; वहीं दूसरी ओर वे आर्थिक योगदान सुनिश्चित करने के लिए मजदूरी, रोजगार अथवा स्वरोजगार में भी संलग्न रहती हैं। इस दोहरी भूमिका के कारण महिलाओं पर सामाजिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक दबाव की तीव्रता काफी बढ़ जाती है। ऐसी परिस्थितियाँ महिला सशक्तीकरण के मार्ग में गंभीर अवरोध उत्पन्न करती हैं। इन बाधाओं के प्रभावी समाधान के लिए नीति-निर्माताओं के साथ-साथ सामाजिक संगठनों की सक्रिय एवं सार्थक भागीदारी आवश्यक है। जैसा कि कहा जाता है, पांचों उंगलियां मिलकर मुट्ठी बनती हैं, अर्थात् महिला सशक्तीकरण के लिए सरकार, सामाजिक संस्थाओं और समुदाय की सामूहिक सहभागिता आवश्यक है। जब अलग-अलग शक्तियां या वर्ग एक साथ आते हैं, तभी हमें महिला सशक्तिकरण जैसे सामाजिक बदलाव देखने को मिलते हैं। (Devendran, 2024)

उत्तराखंड के ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति को अत्यंत चुनौतीपूर्ण, दयनीय एवं कष्टपूर्ण बताया गया है। अनेक महिलाएँ एक ऐसे जीवन का निर्वहन करती हैं, जिसे “कठिन, यातनापूर्ण और अस्थिर” कहा जा सकता है। वे घरेलू हिंसा, बलात्कार, जबरन विवाह तथा दहेज-संबंधी मृत्यु जैसी विभिन्न प्रकार की हिंसा की बार-बार शिकार होती हैं। इसके अतिरिक्त, वे कन्या भ्रूण/शिशु हत्या तथा यौन उत्पीड़न जैसी सामाजिक कुरीतियों और लैंगिक अपराधों का भी सामना करती हैं। ये परिस्थितियाँ यह स्पष्ट

करती हैं कि महिलाओं के विरुद्ध हिंसा केवल व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक समस्या नहीं है, बल्कि यह व्यापक सामाजिक संरचना, लैंगिक असमानता और सामाजिक मान्यताओं से जुड़ी हुई एक गंभीर समस्या है। (K.Verma, 2016)

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) की वर्ष 2023 की रिपोर्ट के अनुसार, महिलाओं एवं बच्चों के विरुद्ध अपराधों के संदर्भ में उत्तराखंड हिमालयी राज्यों में प्रथम स्थान पर रहा। हालांकि, पिछले कुछ वर्षों के दौरान राज्य में अपराध की दर में वृद्धि की प्रवृत्ति भी देखी गई है। उत्तराखंड में पिछले लगभग 25 वर्षों के दौरान अपराध के मामलों में निरंतर वृद्धि दर्ज की गई है। कभी उत्तराखंड को "देवभूमि" के रूप में ऐसी भूमि माना जाता था जहाँ अपराध की घटनाएँ नगण्य थीं, किंतु NCRB के आँकड़े यह संकेत देते हैं कि राज्य में आपराधिक घटनाओं की संख्या बढ़ रही है। विशेष रूप से, अप्रैल 2025 में दर्ज अपराधों की संख्या वर्ष 2023 और 2024 के पूर्ववर्ती वर्षों की तुलना में उल्लेखनीय रूप से अधिक रही। महिलाओं के विरुद्ध अपराधों से संबंधित आँकड़े भी निरंतर बढ़ती हुई प्रवृत्ति को दर्शाते हैं। यह स्थिति राज्य में महिलाओं की सुरक्षा, सामाजिक न्याय तथा लैंगिक समानता के संदर्भ में गंभीर चिंता का विषय है। (NATIONAL CYBER CRIME DATA, 2026)

उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में महिलाएँ अत्यंत कठिन शारीरिक श्रम एवं प्रतिकूल भौगोलिक परिस्थितियों का सामना करती हैं। उन्हें प्रायः अपने परिवार के लिए पेयजल लाने हेतु लंबी दूरी तय करनी पड़ती है तथा पशुओं के लिए चारा एकत्र करने का दायित्व भी निभाना पड़ता है। दैनिक जीवन में निरंतर किए जाने वाले इस श्रम और शारीरिक परिश्रम को प्रायः सामान्य एवं स्वाभाविक मान लिया जाता है। परिणामस्वरूप, महिलाओं के स्वास्थ्य की उपेक्षा होती है और पर्वतीय क्षेत्रों में आधे से अधिक महिलाएँ एनीमिया (रक्ताल्पता) से पीड़ित होने की गंभीर स्थिति सामने आती है।

पर्वतीय क्षेत्रों के कठिन एवं दुर्गम भू-भाग में कृषि से संबंधित लगभग सभी प्रमुख कार्यों में महत्वपूर्ण योगदान देने के बावजूद महिलाओं के श्रम का वास्तविक मूल्यांकन प्रायः नहीं किया जाता। कृषि उत्पादन में उनकी केंद्रीय भूमिका होने के बावजूद उनके श्रम को अक्सर अदृश्य अथवा कम महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। इसके साथ ही वे अभी भी ऐसी पारंपरिक पुरुष-केंद्रित सामाजिक भूमिकाओं से बंधी हुई हैं, जो उनकी आर्थिक एवं सामाजिक स्वतंत्रता को सीमित करती हैं। इस प्रकार, उत्तराखंड की ग्रामीण एवं पर्वतीय महिलाओं की स्थिति को समझने के लिए केवल उनके आर्थिक योगदान का अध्ययन पर्याप्त नहीं है; बल्कि उनके श्रम, सामाजिक स्थिति, स्वास्थ्य, सुरक्षा, शिक्षा, निर्णय लेने की क्षमता तथा संसाधनों तक पहुँच को भी समग्र रूप से समझना आवश्यक है। वस्तुतः "नारी के उत्थान में ही समाज का उत्थान निहित है" अतः महिलाओं के सशक्तीकरण के बिना समावेशी एवं सतत सामाजिक विकास की कल्पना अधूरी है।

महिला सशक्तीकरण

महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने का कोई भी प्रयास 'सशक्तीकरण' से प्रारंभ होना चाहिए। सशक्तीकरण से आशय ऐसे सक्षमकारी वातावरण के निर्माण से है, जिसमें व्यक्ति अपनी क्षमताओं का पूर्ण उपयोग करते हुए अपने जीवन का उत्तरदायित्व स्वयं संभाल सकें। सशक्तीकरण का उद्देश्य व्यक्ति को कठोर नियंत्रण से मुक्त करना तथा उसे अपने विचारों और कार्यों की जिम्मेदारी स्वयं लेने की स्वतंत्रता प्रदान करना है। इसके साथ ही, इसका उद्देश्य उन अंतर्निहित संसाधनों और क्षमताओं को सक्रिय करना भी है, जो अन्यथा अप्राप्य या अप्रयुक्त रह जाती हैं। समाज में वंचित एवं हाशिए पर स्थित महिलाओं के सशक्तीकरण में गैर-सरकारी संगठन (NGOs) महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये संगठन महिलाओं को विभिन्न प्रकार की सहायता एवं सहयोग प्रदान करते हैं, जिससे वे अपने जीवन की गुणवत्ता में सुधार ला सकें और आत्मनिर्भरता की दिशा में आगे बढ़ सकें।

पिछले वर्षों में महिला सशक्तीकरण के क्षेत्र में महिला समाख्या कार्यक्रम से लेकर हाल के 'लखपति दीदी' कार्यक्रम तक अनेक सरकारी नीतियों एवं पहलों को देखा गया है। राष्ट्रीय स्तर पर महिला समाख्या कार्यक्रम की सफलता उल्लेखनीय रही है। भारत सरकार द्वारा वर्ष 1989 में प्रारंभ किए गए इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं, विशेष रूप से सामाजिक एवं आर्थिक रूप से वंचित समुदायों की महिलाओं में शिक्षा, सशक्तीकरण तथा सामूहिक शक्ति को बढ़ावा देना था। इन समूहों में भागीदारी के माध्यम से महिलाएँ एक व्यक्ति के रूप में तथा समाज की सदस्य के रूप में अपनी भूमिकाओं का आलोचनात्मक विश्लेषण करना सीखती हैं। इससे उन्हें पारंपरिक मानदंडों को चुनौती देने तथा सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को आरंभ करने में सक्षम बनाया जाता है। इसके अतिरिक्त, ये सामूहिक मंच महिलाओं को सहायता की निष्क्रिय प्राप्तकर्ता की भूमिका से आगे बढ़कर सक्रिय सहभागी बनने का अवसर प्रदान करते हैं, जिसके माध्यम से वे अपने गाँवों में शैक्षिक गतिविधियों तथा विभिन्न सेवाओं के वितरण की निगरानी कर सकती हैं। (Devendran, 2024)

उत्तराखंड राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन (USRLM) के अंतर्गत 'लखपति दीदी' योजना का उद्देश्य स्वयं सहायता समूहों से जुड़ी ग्रामीण महिलाओं को विभिन्न आजीविका गतिविधियों के माध्यम से कम-से-कम 1 लाख की वार्षिक पारिवारिक आय अर्जित करने में सहायता प्रदान करना है। उत्तराखंड में यह कार्यक्रम ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण की राज्य की रणनीति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है। हाल की राज्य स्तरीय रिपोर्टों में स्वयं सहायता समूहों तथा विभिन्न आजीविका गतिविधियों में बड़ी संख्या में महिलाओं की भागीदारी को रेखांकित किया गया है। (Ministry Of Rural Deveopment, 2026)

इसी प्रकार, गैर-सरकारी संगठनों ने भी इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है। विशेष रूप से, गैर-सरकारी संगठन महिला सशक्तीकरण से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण क्षेत्रों में हस्तक्षेप करते हैं, जिनमें शिक्षा, स्वास्थ्य एवं पोषण, कानूनी सहायता एवं अधिकारों के प्रति जागरूकता, कौशल विकास एवं आजीविका, मानसिक स्वास्थ्य तथा हिंसा की रोकथाम एवं सुरक्षा प्रमुख हैं। इस संदर्भ में, गैर-सरकारी संगठन बुनियादी शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण, कानूनी सहायता, संरक्षण तथा आत्म-जागरूकता से संबंधित कार्यक्रमों जैसी आवश्यक सेवाएँ प्रदान करते हैं।

उत्तराखंड में ऐसे अनेक संगठन कार्यरत हैं, जो संस्थागत एकजुटता को बढ़ावा देने तथा शिक्षा एवं नेतृत्व के विविध अवसर उपलब्ध कराने के माध्यम से हिमालयी क्षेत्र की ग्रामीण महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए कार्य कर रहे हैं। भागीदारी, कौशल विकास और आत्मनिर्भरता के अवसरों का सृजन करके गैर-सरकारी संगठन महिलाओं को अपनी क्षमताओं को सुदृढ़ करने, आत्मविश्वास विकसित करने तथा अपने जीवन से संबंधित सूचित निर्णय और विकल्प स्वयं चुनने के लिए आवश्यक स्वायत्तता प्राप्त करने में सहायता करते हैं। प्रस्तुत अध्याय में उत्तराखंड में महिला सशक्तीकरण के क्षेत्र में गैर-सरकारी संगठनों द्वारा किए जाने वाले विभिन्न प्रकार के हस्तक्षेपों के क्षेत्रों का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा। अंततः, ये संगठन अन्याय, भेदभाव और असमानता को दूर करने की दिशा में कार्य करते हुए महिलाओं को उनके विकास, सशक्तीकरण, गरिमा तथा समाज में सार्थक भागीदारी के लिए एक प्रभावी मंच प्रदान करते हैं।

1. महिलाओं एवं बालिकाओं की शिक्षा में गैर-सरकारी संगठनों के हस्तक्षेप

कई गैर-सरकारी संगठन (NGOs) महिलाओं एवं बालिकाओं की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कार्य करते हैं, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहाँ सरकारी संसाधन सीमित हैं अथवा जहाँ सामाजिक एवं आर्थिक कारणों से लोग शैक्षिक अवसरों से वंचित रह जाते हैं। Smile Foundation की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार, भारत में 14–20 वर्ष की आयु वर्ग की बालिकाओं पर लड़कों की तुलना में घरेलू कार्यों का बोझ उल्लेखनीय रूप से अधिक है। घरेलू कार्यों में उनकी संलग्नता के कारण उन्हें औपचारिक शिक्षा के लिए पर्याप्त समय नहीं मिल पाता, जिससे उनकी शैक्षिक प्रगति बाधित होती है। इस संदर्भ में, गैर-सरकारी संगठनों के प्रयासों ने हजारों बालिकाओं एवं युवा महिलाओं को मुख्यधारा की शिक्षा व्यवस्था का हिस्सा बनने में सक्षम बनाया है। (Smile Foundation, 2022)

गैर-सरकारी संगठन विभिन्न उपायों के माध्यम से शिक्षा तक पहुँच को सुगम बनाते हैं। इनमें निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध कराना, आवश्यक पाठ्यपुस्तकें, वर्दी तथा अन्य शैक्षिक सामग्री प्रदान करना आदि शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, ये संगठन प्रौढ़ शिक्षा को भी बढ़ावा देते हैं, जिसका उद्देश्य उन महिलाओं

को शैक्षिक अवसर प्रदान करना है जो औपचारिक शिक्षा से वंचित रह गई हैं अथवा जिन्हें अपने ज्ञान एवं कौशल को उन्नत करने की आवश्यकता है। भारतीय हिमालयी क्षेत्र में ग्रामीण विकास के लिए समर्पित संस्था उत्तराखंड सेवा निधि पर्यावरण शिक्षा संस्थान (यूएसएनपीएसएस) ने उत्तराखंड (Uttarakhand Seva Nidhi Paryavaran Shiksha Sansthan, 2014) में युवा बालिकाओं के कंप्यूटर साक्षरता के क्षेत्र में कार्य किया है। उत्तराखंड सेवा निधि पर्यावरण शिक्षा संस्थान (लैंगिक समानता एवं सामूहिक कार्रवाई को बढ़ावा देने के लिए महिलाओं को ग्राम-स्तरीय समूहों (महिला संगठन) तथा राज्य-स्तरीय महासंघों में संगठित करता है। इन समूहों को प्रौढ़ साक्षरता कार्यक्रमों के माध्यम से सहयोग प्रदान किया जाता है, जिनमें बुनियादी संख्यात्मक ज्ञान को सामाजिक-आर्थिक मुद्दों तथा सरकारी योजनाओं से संबंधित व्यावहारिक जानकारी के साथ एकीकृत किया जाता है (Uttarakhand Seva Nidhi Paryavaran Shiksha Sansthan, 2014)।

वर्षों के दौरान, संस्था ने राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक कंप्यूटर केंद्र स्थापित किए हैं तथा अनेक युवा विद्यार्थियों ने बुनियादी कंप्यूटर पाठ्यक्रम सफलतापूर्वक पूरा किया है।

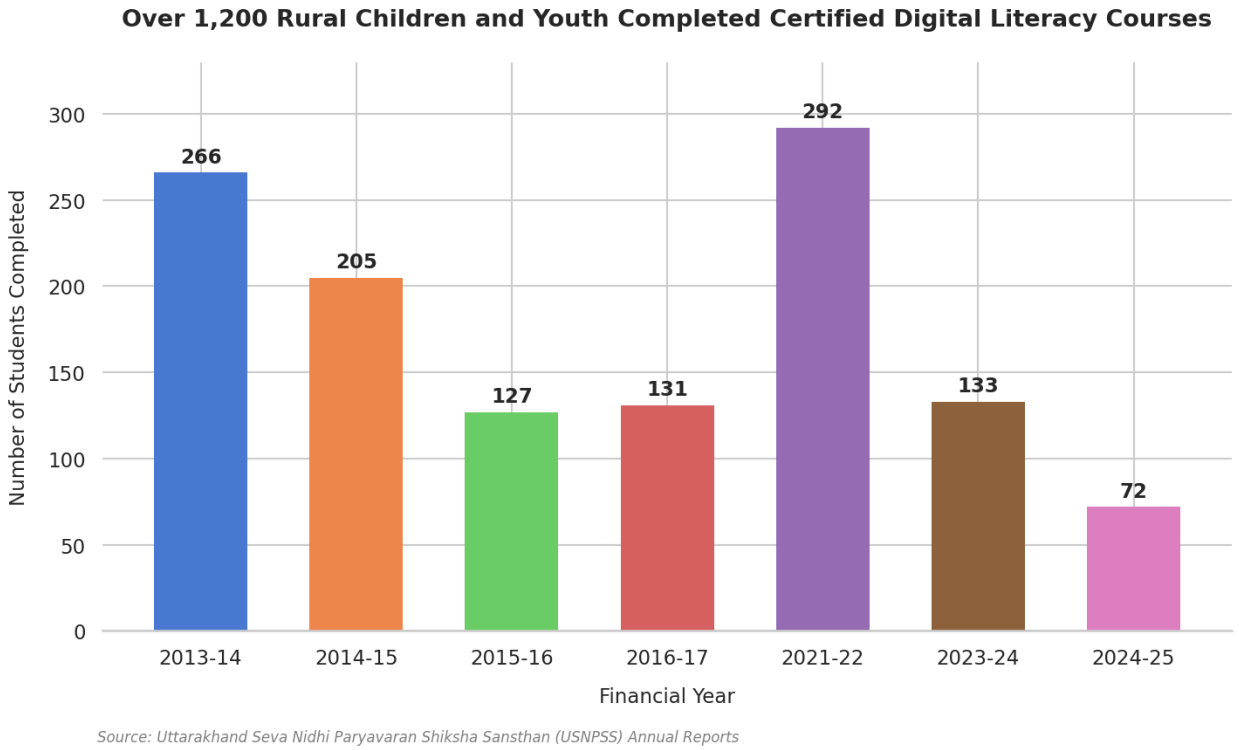
नीचे दी गई तालिका में वर्ष 2011 से 2020 के बीच संस्था यूएसएनपीएसएस द्वारा उत्तराखंड के 6 पर्वतीय जिलों में स्थापित किए गए विभिन्न कंप्यूटर केंद्रों का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

Table No. 1

ज़िला	कंप्यूटर सेंटर का स्थान	शुरू होने का वर्ष
अल्मोड़ा	मनियागर (जल बागड़ी/मैचुन क्लस्टर)	2011
	बनथोक	2015
	गिरचोला	2016
	चालमोदीगाड़ा (दन्या क्लस्टर)	2015
	आती	2016
	गौली (दन्या क्लस्टर)	Prior to 2019
	दन्या गांव	2019
	मुनोली	2016
	सुनाड़ी (द्वाराहाट क्लस्टर)	2015
	बिमंडेश्वर	2017
	बिंटा	Prior to 2018

चमोली	डोगारी/डोगारी काण्डेई (गोपेश्वर)	2013
	तांग्सा	2015
	गंगोलगांव	2017
	बधानी (कर्णप्रयाग क्लस्टर)	2015
	चंदौली	2017
	बमियाला	2018
	चमोली	2020
	बाकर	2021
	चौरासैंण	2023
	दोगाड़ी	2023
	पुडियानी	2023
चम्पावत	जोश्युरा (पाटी क्लस्टर)	2011
	सिलंग	2014
	कनीकोट	2015
	पति	2018
	जनकांडे	Prior to 2021
बागेश्वर	शामा/ शामा जलबिला	2012
	गोगिना	2017
	नामिक	2021
	रातिर	2023
रुद्रप्रयाग	ऊखीमठ	2013
पिथौरागढ़	भन्यानी	2019

इस सारणी (तालिका) से उत्तराखंड के पर्वतीय जिलों में कंप्यूटर केंद्रों के विकास और विस्तार को समझा जा सकता है। विद्यार्थियों की नामांकन संख्या में ठहराव (शिथिलता) आने के कारण कुछ केंद्रों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित कर दिया गया। (Uttarakhand Seva Nidhi Paryavaran Shiksha Sansthan, 2025)



ऊपर दिए गए ग्राफ़ से हम उत्तराखंड के 6 पहाड़ी ज़िलों में कंप्यूटर सेंटर खोलने के असर को समझ सकते हैं। 1200 से ज़्यादा ग्रामीण बच्चों और किशोरों ने कंप्यूटर के बारे में सीखा और बेसिक कंप्यूटर कोर्स पूरा किया। (Uttarakhand Seva Nidhi Paryavaran Shiksha Sansthan, 2025)

इससे हम यह समझ सकते हैं कि यूएसएनपीएसएस गैर-सरकारी संगठन द्वारा उठाया गया एक छोटा सा कदम उत्तराखंड के ग्रामीण समाज पर इतना बड़ा और गहरा प्रभाव डालता है। यह न केवल गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सीमित है, बल्कि ग्रामीण और शहरी शिक्षा के बीच के खाई को कम करने में भी सहायक है। उत्तराखंड के पर्वतीय ग्रामीण क्षेत्रों और शहरी केंद्रों के बीच शिक्षा, स्वास्थ्य और बुनियादी सुविधाओं में आज भी एक बड़ा अंतर देखने को मिलता है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और रोजगार के अवसरों की कमी के कारण ग्रामीण युवा लगातार शहरों की ओर पलायन करने के लिए मजबूर हो रहे हैं।शहरी क्षेत्रों की तुलना में गांवों में डिजिटल कनेक्टिविटी और आधुनिक संसाधनों की अनुपलब्धता इस खाई को और अधिक चौड़ा करती है। इस ग्रामीण-शहरी अंतर को समाप्त करना वर्तमान समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है, ताकि गांवों का संतुलन और अस्तित्व बना रहे। जब तक ग्रामीण क्षेत्रों में समान अवसर और बुनियादी सुविधाएं नहीं पहुंचेंगी, तब तक उत्तराखंड का समावेशी और स्थायी विकास संभव नहीं है। उत्तराखंड सेवा निधि पर्यावरण शिक्षा संस्थान (यूएसएनपीएसएस) द्वारा उठाया गया यह कदम समय की ज़रूरत है।

बालकों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम (RTE Act), 2009 में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि "लिंग के आधार पर किसी भी बच्चे के साथ भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए।" गैर-सरकारी संगठन शैक्षिक क्षेत्र में लैंगिक असमानता को कम करने के उद्देश्य से सभी स्तरों पर बालिकाओं एवं महिलाओं की शिक्षा को प्राथमिकता देते हैं तथा उसे प्रोत्साहित करते हैं। उत्तराखंड में कार्यरत अनेक गैर-सरकारी संगठन मेधावी छात्राओं को छात्रवृत्ति भी प्रदान करते हैं। इस प्रकार की वित्तीय सहायता एवं प्रोत्साहन छात्राओं को अपनी शिक्षा निरंतर जारी रखने तथा शैक्षिक रूप से आगे बढ़ने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

उत्तराखंड में अनेक गैर-सरकारी संगठन बाल्यावस्था की देखभाल तथा बालिकाओं की शिक्षा के क्षेत्र में भी कार्यरत हैं। उदाहरणस्वरूप, लक्ष्मी आश्रम, कौसानी, अल्मोड़ा निर्धन अथवा विघटित परिवारों से आने वाली बालिकाओं की शिक्षा एवं देखभाल का दायित्व निभाता है। इसी प्रकार, सेंट्रल हिमालयन रूरल एक्शन ग्रुप (CHIRAG, 2022) अपने बालिका छात्रवृत्ति कार्यक्रम के माध्यम से इन प्रयासों को और सुदृढ़ करता है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत वंचित एवं सामाजिक-आर्थिक रूप से कमजोर पृष्ठभूमि से आने वाली छात्राओं को शैक्षिक एवं स्वास्थ्य संबंधी सहायता प्रदान की जाती है, ताकि वे अपनी इंटरमीडिएट स्तर तक की शिक्षा पूर्ण कर सकें।

2. महिलाओं के स्वास्थ्य एवं पोषण में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका

गैर-सरकारी संगठन, सरकार के सहयोग से तथा स्वतंत्र रूप से, सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार, पोषण, स्वच्छता तथा मातृ स्वास्थ्य से संबंधित विभिन्न कार्यक्रमों को क्रियान्वित करते हैं। इन प्रयासों के माध्यम से वंचित एवं कमजोर समुदायों के लिए स्वस्थ जीवनशैली तथा आवश्यक स्वास्थ्य सेवाओं को अधिक सुलभ बनाने का प्रयास किया जाता है।

भारत में महिलाओं में कुपोषण एवं एनीमिया (रक्ताल्पता) आज भी गंभीर सार्वजनिक स्वास्थ्य संबंधी चिंताओं में शामिल हैं। हाल के राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (National Family Health Survey) के अनुसार, "15–49 वर्ष की आयु वर्ग की लगभग 57 प्रतिशत महिलाएँ एनीमिया से ग्रस्त पाई गईं, जो पिछले वर्षों की तुलना में वृद्धि को दर्शाता है।" यह स्थिति मुख्यतः शरीर में आयरन (लौह तत्व) की कमी से संबंधित है तथा ग्रामीण एवं आर्थिक रूप से वंचित क्षेत्रों में इसकी व्यापकता अधिक पाई जाती है। (Ministry of Healthand family Welfare, 2022)

सोसाइटी फॉर पीपल्स एक्शन एंड रूरल डेवलपमेंट इन हिमालयन एरिया (SPARDHA) ने पिछले कई वर्षों के दौरान स्वास्थ्य, पोषण एवं सार्वजनिक स्वच्छता से संबंधित विभिन्न पहलों में सक्रिय रूप से

सहभागिता की है। (Society for People's Action and Rural Development in Himalayan Area, 2018) यह गैर-सरकारी संगठन उत्तराखंड के कुमाऊँ क्षेत्र के पर्वतीय इलाकों में जमीनी स्तर के स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं, विशेष रूप से आशा (ASHA) एवं आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं, के माध्यम से स्वास्थ्य एवं पोषण संबंधी गतिविधियों को संचालित करता है। स्थानीय जमीनी कार्यकर्ता समाज की जड़ों से जुड़े होते हैं, इसलिए उनके प्रशिक्षित होने से स्वास्थ्य और सुरक्षा से जुड़े संदेशों का सीधा और गहरा प्रभाव आम जनता पर पड़ता है।

Table No. 2

रिपोर्टिंग वर्ष	ज़मीनी स्तर के स्वास्थ्य कार्यकर्ता (आशा / आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की भागीदारी)	गाँव, ब्लॉक
2017-18	खासकर आशा (ASHA) और आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के लिए "बाल सुरक्षा कानून, तस्करी और बाल शोषण के निवारण" पर एक दिन की जागरूकता कार्यशाला आयोजित की।	मछोर (सल्ट ब्लॉक, अल्मोड़ा) और कुमाऊं का विस्तृत पहाड़ी इलाका
2018-19	प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र (PHC) में आशा और 27 आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के लिए चाइल्ड हेल्प लाइन-1098 से संबंधित एक खास ट्रेनिंग सेशन आयोजित किया।	प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र माछोर (सल्ट ब्लॉक, अल्मोड़ा ज़िला)
2019-20	ब्लॉक अधिकारियों के साथ मिलकर आपातकालीन रिपोर्टिंग, चिकित्सा सहायता और बाल विकास नेटवर्क के कार्यों का समन्वय किया।	सल्ट ब्लॉक, अल्मोड़ा (बनकोटा, पनुवादोखन, जाख गाँव)
2020-21	घर-घर जाकर साफ़-सफ़ाई, कोविड से बचाव और बच्चों की सुरक्षा के काम को आगे बढ़ाने के लिए आशा (ASHA) कार्यकर्ताओं, आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं, ग्राम प्रधानों और BDC सदस्यों को सीधे तौर पर शामिल किया।	सल्ट ब्लॉकऔर हवालबाग़ ब्लॉक, अल्मोड़ा
2021-22	महामारी से निपटने की क्षमता बढ़ाने के लिए स्थानीय स्कूलों, आंगनवाड़ी केंद्रों और अस्पतालों में छोटे और बड़े समूहों के साथ स्वास्थ्य और साफ़	सल्ट ब्लॉक, अल्मोड़ा के दूर-दराज़ और दुर्गम गाँव

2022-23	गतिविधियों और स्वास्थ्य प्रोटोकॉल को सीधे बाल विकास विभाग, स्थानीय स्वास्थ्य विभागों और महिला स्वयं	सल्ट डेवलपमेंट ब्लॉक, तकुला ब्लॉक और जखसौड़ा गाँव
2023-24	नशीले पदार्थों के दुरुपयोग के बारे में जागरूकता और किशोरों की भावनात्मक भलाई के लिए आंगनवाड़ी केंद्रों और स्वास्थ्य विभाग के साथ साझेदारी की।	मछोर (सल्ट ब्लॉक) और अल्मोडा/नैनीताल गाँव (चितई-पंत, चितई-तिवारी, चंद्रकोट, कालाखेत)

इस सारणी से हम समझ सकते हैं कि गैर-सरकारी संगठन (NGOs) स्वास्थ्य, लैंगिक संवेदनशीलता तथा बाल तस्करी, नशीली दवाओं का दुरुपयोग और भावनात्मक कल्याण जैसे मुद्दों के प्रति जागरूकता के क्षेत्र में स्थानीय जमीनी कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण पर ध्यान केंद्रित करते हैं। बाल तस्करी, नशे की लत और लैंगिक विषमता जैसे गंभीर सामाजिक अपराधों की समय पर पहचान करने और उन्हें रोकने में प्रशिक्षित कार्यकर्ता एक मजबूत सुरक्षा ढाल का काम करते हैं। भावनात्मक कल्याण और स्वास्थ्य पर प्रशिक्षित कार्यकर्ता ग्रामीण समुदायों में झिझक को दूर कर एक सुरक्षित, जागरूक और संवेदनशील समाज के निर्माण का आधार बनते हैं। पिछले कुछ वर्षों में, 2017 से 2024 तक, SPARDHA ने महिलाओं और उनकी भलाई के लिए काम किया है। (Society for People's Action and Rural Development in Himalayan Area, 2018)

पर्वतीय महिला कल्याण समिति जैसे गैर-सरकारी संगठन महिलाओं को उनके प्रजनन संबंधी अधिकारों के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं। इसमें गर्भावस्था, गर्भनिरोध, प्रसव, परिवार नियोजन तथा सुरक्षित मातृत्व से संबंधित जानकारी शामिल है। इस प्रकार की जानकारी महिलाओं को अपने स्वास्थ्य के संबंध में सूचित एवं स्वतंत्र निर्णय लेने में सक्षम बनाती है। उत्तराखंड के पिथौरागढ़ जिले में वर्ष 1992 से कार्यरत इस गैर-सरकारी संगठन ने स्थानीय बालिकाओं को 5,000 से अधिक स्वच्छता किट वितरित की हैं। (Parvatiya Mahila Kalyan Samiti)

ममता सामाजिक संस्था ने वर्ष 1992 से अब तक 2,000 से अधिक गाँवों तथा 200 शहरी झुग्गी-बस्तियों में प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य के क्षेत्र में कार्य किया है। संस्था द्वारा पोषण, विटामिन A,

आयोडीन की कमी, दस्त प्रबंधन, तपेदिक (TB), HIV/AIDS तथा अन्य सार्वजनिक स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों पर भी जागरूकता कार्यक्रम संचालित किए गए हैं। (Mamta Samajik Sanstha, 2008)

सामाजिक एवं पारिवारिक दृष्टिकोण तथा मान्यताएँ प्रायः महिलाओं को अपने प्रजनन एवं स्वास्थ्य संबंधी अधिकारों का स्वतंत्र रूप से प्रयोग करने से प्रतिबंधित करती हैं। इसी संदर्भ में हिमालयन इंस्टीट्यूट हॉस्पिटल ट्रस्ट द्वारा संचालित किशोरी-उत्थान परियोजना (Kishori-Utthan Project) किशोरियों के सशक्तीकरण के लिए समर्पित एक महत्वपूर्ण पहल है। इसके अंतर्गत आंगनवाड़ी केंद्रों (AWCs) को प्रशिक्षण किट उपलब्ध कराना तथा किशोर स्वास्थ्य संबंधी पहलों को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए समेकित बाल विकास सेवा (ICDS) के कार्यकर्ताओं की क्षमता-वृद्धि करना शामिल था। पिछले दो दशकों के दौरान इस कार्यक्रम से 3,00,000 से अधिक महिलाएँ प्रत्यक्ष रूप से लाभान्वित हुई हैं। (Report: KISHORIUTTHAN: APROJECT FOR ADOLESCENT GIRLS, 2017)

ऐसी परियोजनाओं के माध्यम से गैर-सरकारी संगठन समुदाय स्तर पर जागरूकता अभियान भी संचालित करते हैं। महिला-केंद्रित स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच का विस्तार प्रजनन स्वास्थ्य क्लीनिकों, परिवार नियोजन शिविरों तथा सुरक्षित प्रसव सेवाओं के माध्यम से किया जाता है। इन प्रयासों का उद्देश्य महिलाओं को उनके स्वास्थ्य एवं प्रजनन संबंधी निर्णयों में अधिक सक्षम बनाना तथा आवश्यक स्वास्थ्य सेवाओं तक उनकी पहुँच सुनिश्चित करना है।

3. कानूनी अधिकारों के संबंध में पैरवी एवं जागरूकता में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका

महिलाएँ एवं बालिकाएँ आज भी लैंगिक आधार पर भेदभाव, लैंगिक असमानता तथा उत्पीड़न का सामना करती हैं। यह असमानता बाल विवाह, घरेलू हिंसा, दहेज संबंधी प्रथाओं, यौन उत्पीड़न तथा कन्या भ्रूण हत्या जैसी समस्याओं को जन्म देती है, जिससे समाज में महिलाओं की स्थिति और अधिक कमजोर होती है।

इस संदर्भ में पंचायती राज एवं जेंडर अवेयरनेस ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट (PRAGATI) महिलाओं के अधिकारों की रक्षा तथा उनके सशक्तीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देता है। गैर-सरकारी संगठन समुदाय स्तर पर लैंगिक आधार पर हिंसा, बाल विवाह, कन्या भ्रूण हत्या तथा यौन उत्पीड़न के संबंध में

जागरूकता उत्पन्न करने के लिए कार्यशालाओं, नुक्कड़ नाटकों, संगोष्ठियों तथा डिजिटल मीडिया अभियानों का आयोजन करते हैं। (PRAGATI)

स्वयं सहायता समूहों (Self-Help Groups—SHGs) का गठन एवं सुदृढ़ीकरण भी महिलाओं को सामूहिक रूप से संगठित होने, सामूहिक शक्ति विकसित करने, निर्णय-निर्माण में भागीदारी करने तथा बचत एवं ऋण सुविधाओं तक पहुँच प्राप्त करने में सक्षम बनाता है। इसके माध्यम से महिलाएँ अपने आर्थिक एवं सामाजिक जीवन पर अधिक नियंत्रण स्थापित कर पाती हैं। इसके अतिरिक्त, गैर-सरकारी संगठन महिलाओं के नेतृत्व एवं सामुदायिक संस्थाओं में उनकी भागीदारी को प्रोत्साहित करते हैं। इससे महिलाएँ केवल सहायता प्राप्त करने वाली निष्क्रिय लाभार्थी न रहकर अपने परिवारों एवं समुदायों को प्रभावित करने वाले मुद्दों के समाधान में सक्रिय भागीदार बनती हैं। (Uttarakhand Seva Nidhi Paryavaran Shiksha Sansthan, 2014)

राजनीतिक नेतृत्व भी इन प्रयासों का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। द्वारा पंचायती राज व्यवस्था के संबंध में विशेष प्रशिक्षण प्रदान किया गया, जिसका उद्देश्य महिलाओं को स्थानीय चुनावों में भाग लेने तथा सार्वजनिक मंचों पर अपनी आवाज़ उठाने के लिए प्रोत्साहित करना था। इसके अतिरिक्त, किशोरियों के सामाजिक सशक्तीकरण के लिए किशोरी कार्यक्रम (Kishori Karyakram) जैसी पहलें उन्हें स्वास्थ्य, शिक्षा तथा लैंगिक असमानताओं से संबंधित चुनौतियों का सामना करने के लिए आवश्यक आत्मविश्वास, संचार कौशल एवं संसाधन उपलब्ध कराती हैं। (Uttarakhand Seva Nidhi Paryavaran Shiksha Sansthan, 2025)

गैर-सरकारी संगठन विद्यालय एवं महाविद्यालय स्तर के विद्यार्थियों के लिए लैंगिक संवेदनशीलता तथा लैंगिक समानता से संबंधित कार्यक्रम भी संचालित करते हैं। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य सम्मानजनक सामाजिक संबंधों को प्रोत्साहित करना तथा प्रारंभिक अवस्था से ही समानता की संस्कृति को विकसित करना है।

ममता सामाजिक संस्थान पिछले 20 वर्षों से कानूनी साक्षरता प्रशिक्षण के क्षेत्र में कार्य कर रहा है। संगठन द्वारा 500 से अधिक प्रशिक्षण एवं कार्यशालाएँ आयोजित की गई हैं, जिनमें कानूनी सहायता तथा महिलाओं के अधिकारों से संबंधित विशेष सत्र भी शामिल रहे हैं। गैर-सरकारी संगठन महिलाओं को

उनके संवैधानिक एवं कानूनी अधिकारों के संबंध में शिक्षित करते हैं, ताकि वे अपने अधिकारों एवं विधिक हकदारी के प्रति जागरूक हो सकें तथा अन्याय के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठा सकें।

अनेक गैर-सरकारी संगठन महिला पीड़िताओं/उत्तरजीवियों को निःशुल्क कानूनी परामर्श, पैरवी संबंधी सहायता एवं मार्गदर्शन उपलब्ध कराते हैं। महिलाओं को घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 (Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005), दहेज प्रतिषेध अधिनियम, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से संबंधित कानूनों, संपत्ति संबंधी अधिकारों तथा अन्य प्रासंगिक विधानों के बारे में जानकारी दी जाती है। कुछ संगठन सर्वोच्च न्यायालय के अधिवक्ताओं के साथ सहयोग करके व्यावहारिक कानूनी शिक्षा भी प्रदान करते हैं, जिससे महिलाएँ कानूनी प्रक्रियाओं को बेहतर ढंग से समझ सकें तथा आवश्यकतानुसार उचित कानूनी कार्रवाई कर सकें। (Department of Women and Child Development, 2026)

ममता सामाजिक संस्थान जैसे अनेक गैर-सरकारी संगठन महिला पीड़िताओं/उत्तरजीवियों के लिए अस्थायी अथवा स्थायी सुरक्षित आश्रय-स्थल भी उपलब्ध कराते हैं। इन आश्रय स्थलों में महिलाओं को कानूनी, चिकित्सीय तथा मनोसामाजिक सहायता भी प्रदान की जाती है। महिला हेल्पलाइन एवं परामर्श केंद्र अत्यंत संवेदनशील मामलों में त्वरित हस्तक्षेप एवं आवश्यक सहायता उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। (Mamta Samajik Sanstha, 2008)

ममता सामाजिक संस्थान तथा सेवा भाव फाउंडेशन (Sewa Bhav Foundation) जैसे अनेक गैर-सरकारी संगठन समुदाय स्तर पर महिलाओं के नेतृत्व एवं सहभागिता को बढ़ावा देने के लिए सामाजिक नेतृत्व, कानूनी साक्षरता तथा अधिकार-आधारित दृष्टिकोण से संबंधित प्रशिक्षण निरंतर प्रदान करते हैं। सेवा भाव फाउंडेशन अपने सहेली कार्यक्रम (Saheli Programme) के माध्यम से विशेष रूप से महिलाओं के कानूनी अधिकारों से संबंधित प्रशिक्षण प्रदान करता है। इस प्रकार का प्रशिक्षण केवल व्यक्तिगत सहायता तक सीमित नहीं रहता, बल्कि महिलाओं को स्वयं संगठित होने तथा दीर्घकालिक नीतिगत परिवर्तन एवं सामाजिक रूपांतरण की दिशा में सामूहिक रूप से कार्य करने के लिए भी प्रोत्साहित करता है। (Sewabhav, 2025)

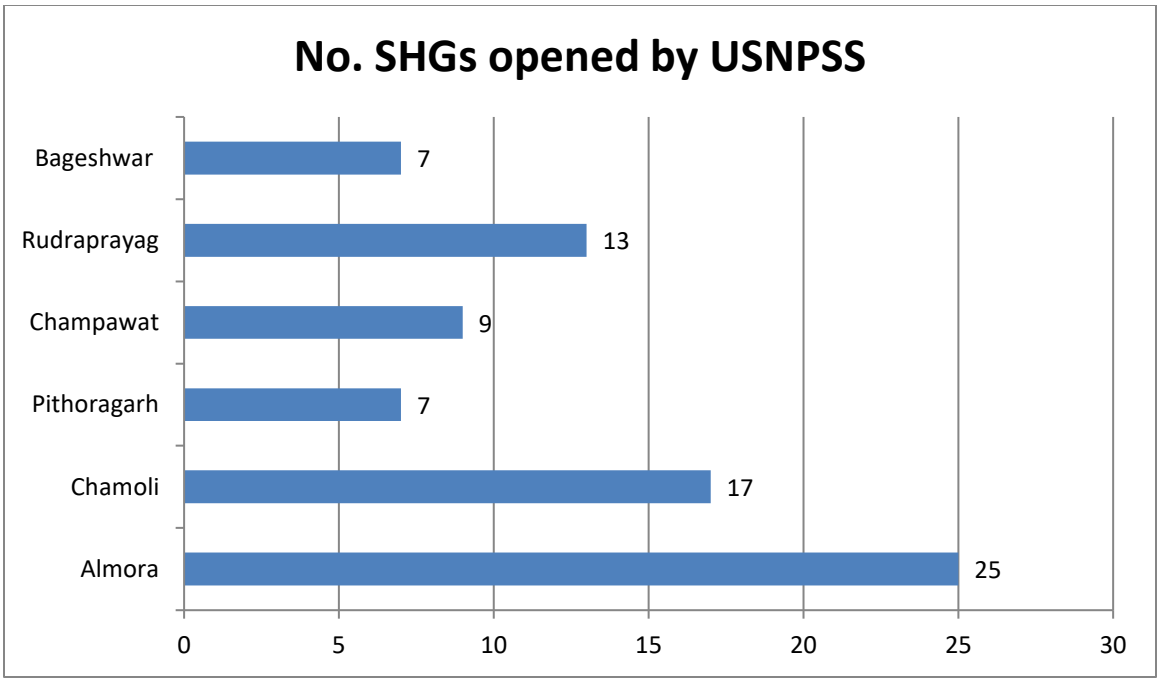
4. कौशल विकास एवं आजीविका सृजन में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका

कौशल विकास एवं आजीविका सृजन महिलाओं तथा अन्य वंचित समूहों के आर्थिक सशक्तीकरण की दिशा में कार्य करने वाले गैर-सरकारी संगठनों के हस्तक्षेप का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। यह प्रक्रिया न केवल महिलाओं में आत्मनिर्भरता को बढ़ाती है, बल्कि उन्हें समाज में अधिक सम्मान एवं पहचान प्राप्त करने तथा बेहतर जीवन-स्तर प्राप्त करने में भी सक्षम बनाती है।

गैर-सरकारी संगठन महिलाओं को रोजगारोन्मुखी कौशल अर्जित करने तथा आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने के अवसर प्रदान करके कौशल विकास एवं सतत आजीविका को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके लिए वे सिलाई, कढ़ाई, सौंदर्य एवं वेलनेस सेवाएँ, कंप्यूटर शिक्षा, कृषि, खाद्य प्रसंस्करण एवं पाक-कला, हस्तशिल्प तथा स्थानीय स्तर पर प्रासंगिक अन्य व्यवसायों से संबंधित व्यावसायिक एवं व्यावहारिक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करते हैं। इन कार्यक्रमों के माध्यम से महिलाएँ ऐसे कौशल विकसित कर पाती हैं, जो उन्हें रोजगार अथवा स्वरोजगार प्राप्त करने में सहायक होते हैं।

उत्तराखंड सेवा निधि पर्यावरण शिक्षा संस्थान उत्तराखंड का एक गैर-सरकारी संगठन है, जो लैंगिक समानता और सामूहिक कार्रवाई (सहभागिता) को बढ़ावा देने के लिए महिलाओं को ग्राम-स्तरीय समूहों (महिला संगठनों) तथा राज्य-स्तरीय महासंघों के रूप में संगठित करता है। यह संस्था स्वयं सहायता समूहों (SHGs) के गठन में सहायता प्रदान करती है, जिसके माध्यम से महिलाएं सामूहिक बचत, ऋण प्राप्ति, परस्पर सहयोग और आय-उत्पादक गतिविधियों को संचालित करने के लिए एकजुट होती हैं। इन समूहों को प्रौढ़ साक्षरता कार्यक्रमों का समर्थन प्राप्त है, जो व्यावहारिक सामाजिक-आर्थिक मुद्दों तथा सरकारी योजनाओं के ज्ञान के साथ बुनियादी अंकगणित को एकीकृत करते हैं (Uttarakhand Seva Nidhi Paryavaran Shiksha Sansthan, 2025)।

यू.एस.एन.पी.एस.एस ने कई अत्यधिक सक्रिय ग्राम समूहों की 629 महिलाओं का मूल्यांकन (ग्रेडिंग) और अनुश्रवण (निगरानी) किया है। वर्ष 2011 से 2023 के दौरान कुल 78 सक्रिय स्वयं सहायता समूह कार्यरत हैं। बेहतर समझने के लिए नीचे एक ग्राफ़ दिया गया है:-



ऊपर दिए गए ग्राफ़ से हम समझ सकते हैं कि इस संस्था ने उत्तराखंड के पहाड़ी इलाकों में कई जगहों पर काम किया है। हम देख सकते हैं कि संस्था द्वारा उठाए गए एक कदम का सालों तक कितना बड़ा असर रहा है। ये स्वयं सहायता समूह न केवल महिलाओं की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करते हैं, बल्कि सामूहिक निर्णय-निर्माण, आत्मविश्वास, नेतृत्व और सामाजिक सहभागिता को भी बढ़ावा देते हैं।

कौशल प्रशिक्षण के अतिरिक्त, गैर-सरकारी संगठन महिलाओं को स्थानीय बाजारों, मेलों, सहकारी समितियों, डिजिटल मंचों तथा अन्य विपणन माध्यमों के साथ जोड़कर बाजार तक उनकी पहुंच सुगम बनाते हैं। इससे वे अपने उत्पादों को उचित और लाभकारी मूल्यों पर बेचने में सक्षम होती हैं। कृषि क्षेत्र में, हिमालयन एक्शन रिसर्च सेंटर जैसी संस्थाएं फसलों के लिए वायर-स्टैकिंग (तार-आधारित सहारा प्रणाली) और मशरूम की खेती जैसी उन्नत तकनीकों की शुरुआत करती हैं, ताकि सीमांत समुदायों की उपज और आय में वृद्धि की जा सके। (HARC , 2024)

रोजगार एवं व्यवसाय में प्रौद्योगिकी के बढ़ते महत्व को देखते हुए, गैर-सरकारी संगठन डिजिटल साक्षरता और अन्य समकालीन तकनीकी प्रशिक्षण भी प्रदान करते हैं। इसके माध्यम से महिलाएं ऑनलाइन सेवाओं का उपयोग कर सकती हैं, नए रोजगार अवसरों की तलाश कर सकती हैं, डिजिटल प्लेटफॉर्मों के जरिए अपने उत्पादों का प्रचार कर सकती हैं और उभरती हुई डिजिटल अर्थव्यवस्था में भाग ले सकती हैं। चिराग जैसे संगठन कंप्यूटर साक्षरता, सिलाई, बुनाई और ब्यूटीशियन सेवाओं सहित

विभिन्न व्यवसायों में प्रशिक्षण प्रदान करते हैं, जो महिलाओं को गैर-कृषि व्यवसाय स्थापित करने और स्वतंत्र आय उत्पन्न करने में सक्षम बनाते हैं। (CHIRAG, 2022)

इसके अतिरिक्त, उत्तराखंड के गैर-सरकारी संगठन महिलाओं को व्यवसाय नियोजन, वित्तीय प्रबंधन, उत्पाद विकास, विपणन (मार्केटिंग) तथा उद्यम प्रबंधन पर मार्गदर्शन प्रदान करके स्व-रोजगार और उद्यमिता को प्रोत्साहित करते हैं। इसके साथ ही, वे आय-उत्पादक गतिविधियों को शुरू करने या उनका विस्तार करने में मदद करने के उद्देश्य से सूक्ष्म वित्त (माइक्रोफाइनेंस) और लघुस्तरीय ऋण तक उनकी पहुंच को सुगम बनाते हैं । इन एकीकृत हस्तक्षेपों के माध्यम से, ये संगठन न केवल महिलाओं की रोजगार क्षमता और अर्जन क्षमता में वृद्धि करते हैं, बल्कि अधिक आर्थिक स्वतंत्रता, उन्नत पारिवारिक कल्याण, बढ़े हुए आत्मविश्वास और अपने समुदायों के आर्थिक व सामाजिक विकास में महिलाओं की सशक्त भागीदारी में भी योगदान देते हैं। वास्तव में, यह पहल "स्वावलंबन ही परम सुख है" की भावना को चरितार्थ करती है, जहाँ छोटे-छोटे वित्तीय प्रयास महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाकर पूरे समाज को समृद्ध करते हैं।

5. महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य की स्थिति एवं गैर-सरकारी संगठनों (NGOs) की भूमिका

मानसिक स्वास्थ्य समग्र स्वास्थ्य का एक महत्वपूर्ण आयाम है और इसका व्यक्ति के सामाजिक, भावनात्मक तथा व्यावसायिक जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। विभिन्न अध्ययनों से यह स्थापित हुआ है कि पुरुषों की तुलना में महिलाएँ मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं, विशेष रूप से अवसाद (Depression) और चिंता संबंधी विकारों (Anxiety Disorders), से अधिक प्रभावित होती हैं। महिलाओं में अवसाद की व्यापकता न केवल अधिक पाई जाती है, बल्कि यह अपेक्षाकृत दीर्घकालिक एवं गंभीर रूपों में भी प्रकट हो सकता है (World Health Organization, 2022)
महिलाओं में मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं की उच्च व्यापकता सामाजिक-आर्थिक कारकों से जुड़ी हुई है, जिनमें लैंगिक आधार पर निर्धारित सामाजिक भूमिकाएँ, आर्थिक निर्भरता, घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न, कार्यस्थल पर असमानता तथा पारिवारिक दबाव प्रमुख हैं (Patel et al., 2018)। ये कारक महिलाओं में आत्म-संयम, आत्मविश्वास की कमी तथा मनोवैज्ञानिक तनाव को जन्म दे सकते हैं, जिसके परिणामस्वरूप मानसिक स्वास्थ्य पर दीर्घकालिक नकारात्मक प्रभाव पड़ सकते हैं।
ऐसे समय में, जब जीवन-शैली निरंतर अधिक तनावपूर्ण होती जा रही है और महिलाएँ व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्तरों पर अनेक प्रकार के दबावों का सामना कर रही हैं, मानसिक

स्वास्थ्य की सुरक्षा एवं संवर्धन की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। इस संदर्भ में, गैर-सरकारी संगठन (NGOs) महिलाओं की मानसिक स्वास्थ्य संबंधी चिंताओं को संबोधित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे जागरूकता का प्रसार करने, मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित कलंक को कम करने तथा सुलभ सहायता एवं पुनर्वास सेवाएँ उपलब्ध कराने के माध्यम से महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। सेवा भाव फ़ाउंडेशन अपने "संवेदना कार्यक्रम" के माध्यम से विशेष रूप से समुदाय-आधारित जागरूकता कार्यक्रम संचालित करने पर केंद्रित है। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से जुड़े सामान्य मिथकों, भ्रांतियों तथा सामाजिक कलंक को चुनौती देना है, जिससे महिलाओं को अपनी भावनात्मक एवं मनोवैज्ञानिक कठिनाइयों को पहचानने तथा बिना भय या संकोच के पेशेवर सहायता प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके। (Sewabhav, 2025)
गैर-सरकारी संगठन उन महिलाओं एवं किशोरियों को परामर्श तथा मनोवैज्ञानिक सहायता भी प्रदान करते हैं, जो तनाव, चिंता, अवसाद, आघात, पारिवारिक संघर्ष, संबंधों से जुड़ी कठिनाइयों अथवा अन्य भावनात्मक चुनौतियों का सामना कर रही हो सकती हैं।
बुरांस, देहरादून स्थित एक संस्था है, जिसने वर्ष 2014 से अब तक 3,000 से अधिक मनोसामाजिक दिव्यांगता से प्रभावित व्यक्तियों के साथ कार्य किया है। यह संगठन देखभाल-योजनाओ, सक्रिय श्रवण तथा समस्या-समाधान की प्रक्रियाओं के माध्यम से उन सामाजिक मुद्दों का समाधान करने का प्रयास करता है, जो व्यक्तियों को मानसिक तनाव के प्रति अधिक संवेदनशील बनाते हैं। (Mathias K, 2017)
इस प्रकार की परामर्श सेवाएँ विशेष रूप से अवसाद, चिंता, आघात तथा अभिघातज-उपरांत तनाव विकार (PTSD) का अनुभव करने वाली महिलाओं के लिए अत्यंत उपयोगी हो सकती हैं, क्योंकि इनके माध्यम से महिलाओं को एक सुरक्षित एवं सहयोगात्मक वातावरण प्राप्त होता है, जहाँ वे अपनी भावनाओं को व्यक्त कर सकती हैं, अपनी समस्याओं को समझ सकती हैं तथा स्वस्थ सामना-रणनीतियाँ विकसित कर सकती हैं (Gururaj G, 2016)।
परामर्श सेवाओं के साथ-साथ, गैर-सरकारी संगठन योग, ध्यान, विश्राम, तनाव-प्रबंधन तकनीकों, सकारात्मक चिंतन, आत्म-देखभाल तथा भावनात्मक दृढ़ता पर केंद्रित कार्यक्रमों के माध्यम से स्वस्थ जीवन-शैली एवं मानसिक कल्याण के लिए निवारक दृष्टिकोण को बढ़ावा देते हैं। देहरादून स्थित बुरांस, मनोसामाजिक सहायता समूह आधारित हस्तक्षेपों के माध्यम से महिलाओं में उनकी भावनात्मक आवश्यकताओं के प्रति अधिक जागरूकता विकसित करने तथा दैनिक तनाव एवं कठिन जीवन परिस्थितियों से निपटने की उनकी क्षमता को सुदृढ़ करने में सहायता करता है। (Mathias K, 2017)
गैर-सरकारी संगठन घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न, दुर्व्यवहार, पारिवारिक संघर्ष अथवा अन्य आघातकारी परिस्थितियों का सामना कर रही महिलाओं को सुरक्षित स्थान, मनोसामाजिक सहायता, कानूनी परामर्श तथा उपयुक्त स्वास्थ्य एवं सामाजिक सेवाओं के लिए संदर्भन उपलब्ध कराकर संकट-प्रबंधन सहायता भी प्रदान करते हैं। संकट की परिस्थितियों में समय पर प्रदान की गई भावनात्मक एवं

व्यावहारिक सहायता महिलाओं को सुरक्षा, गरिमा, आत्मविश्वास तथा अपने जीवन पर नियंत्रण की भावना पुनः प्राप्त करने में सहायता कर सकती है तथा उनके मनोवैज्ञानिक पुनर्प्राप्ति और दीर्घकालिक पुनर्वास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। इन परस्पर संबद्ध प्रयासों के माध्यम से गैर-सरकारी संगठन न केवल मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के उपचार में योगदान देते हैं, बल्कि ऐसे सहयोगात्मक वातावरण के निर्माण में भी सहायता करते हैं, जहाँ महिलाएँ भावनात्मक दृढ़ता विकसित कर सकें, अपने समग्र कल्याण में सुधार कर सकें तथा अपने परिवारों और समुदायों में अधिक आत्मविश्वास के साथ सहभागिता कर सकें।

6. हिंसा की रोकथाम एवं महिलाओं की सुरक्षा में गैर-सरकारी संगठनों के हस्तक्षेप

समकालीन समाज में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा एक अत्यंत गंभीर एवं चिंताजनक वास्तविकता बनी हुई है। महिलाओं की सुरक्षा सुनिश्चित करना तथा उनके अधिकारों की रक्षा करना केवल सरकार की जिम्मेदारी नहीं है; यह समाज, परिवारों और समुदायों की भी साझा जिम्मेदारी है। हिंसा के विभिन्न एवं व्यापक रूपों तथा संरचनात्मक असमानताओं को संबोधित करते हुए गैर-सरकारी संगठन महिलाओं को पारंपरिक सत्ता-संबंधों को चुनौती देने तथा समाज में सम्मानजनक स्थान सुनिश्चित करने के लिए सशक्त बनाते हैं।
जागरूकता-सृजन, सहायता तथा पुनर्वास के क्षेत्र में निरंतर प्रयासों के माध्यम से गैर-सरकारी संगठन महिलाओं के सशक्तीकरण तथा हिंसा-मुक्त समाज के निर्माण में योगदान दे सकते हैं। महिलाओं की सुरक्षा करना तथा उन्हें सुरक्षित वातावरण उपलब्ध कराना समग्र समाज की संतुलित एवं समावेशी प्रगति के लिए आवश्यक है। भारत में, विशेष रूप से उत्तराखंड में, महिलाएँ घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न, दहेज-संबंधी हिंसा, मानव तस्करी, कार्यस्थल पर उत्पीड़न, साइबर बुलिंग तथा ऑनलाइन उत्पीड़न सहित हिंसा के विभिन्न रूपों का सामना करती हैं। (NATIONAL CYBER CRIME DATA, 2026) महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के विभिन्न रूपों को कम करने तथा उन्हें सामाजिक, आर्थिक एवं कानूनी रूप से सशक्त बनाने के लिए गैर-सरकारी संगठन बहुआयामी एवं समुदाय-आधारित रणनीतियों को अपनाते हैं। इन रणनीतियों का उद्देश्य केवल हिंसा की रोकथाम करना ही नहीं, बल्कि महिलाओं की सुरक्षा, गरिमा, जागरूकता तथा आत्मनिर्भरता सुनिश्चित करना भी है। गैर-सरकारी संगठनों के हस्तक्षेप का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र जागरूकता एवं शिक्षा है, जिसके माध्यम से वे उन हानिकारक सामाजिक दृष्टिकोणों, लैंगिक रूढ़ियों तथा प्रथाओं को चुनौती देने का प्रयास करते हैं, जो महिलाओं के विरुद्ध हिंसा को बढ़ावा देते हैं। गैर-सरकारी संगठन लैंगिक-आधारित हिंसा, घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न, दहेज-संबंधी हिंसा, बाल विवाह तथा भेदभाव एवं दुर्व्यवहार के अन्य रूपों के संबंध में जागरूकता बढ़ाने

के लिए जन-जागरूकता अभियान, नुक्कड़ नाटक, कार्यशालाएँ, संगोष्ठियाँ, सामुदायिक बैठकें तथा मीडिया अभियानों का आयोजन करते हैं।

रोकथाम एवं जागरूकता के साथ-साथ, गैर-सरकारी संगठन हिंसा का सामना कर रही अथवा तत्काल जोखिम में रहने वाली महिलाओं के लिए सुरक्षा-तंत्र एवं आश्रय सेवाएँ भी उपलब्ध कराते हैं। अस्थायी एवं स्थायी आश्रय-गृह महिलाओं को एक सुरक्षित वातावरण प्रदान करते हैं, जहाँ उन्हें भोजन, आवास, चिकित्सा देखभाल, परामर्श तथा मनोसामाजिक सहायता जैसी आवश्यक सेवाएँ प्राप्त हो सकती हैं। अनेक मामलों में ममता सामाजिक संस्थान जैसे गैर-सरकारी संगठन अस्थायी अथवा स्थायी सुरक्षित आश्रय उपलब्ध कराते हैं। ममता सामाजिक संस्थान ने 15,000 से अधिक महिलाओं और किशोरियों को अधिकारों, लैंगिक समानता और सरकारी योजनाओं (स्वास्थ्य, पोषण तथा व्यावसायिक कौशल के साथ) पर प्रशिक्षित किया है, ताकि उन्हें नेतृत्वकर्ता और परिवर्तन के उत्प्रेरक (एजेंट) के रूप में विकसित किया जा सके। (Mamta Samajik Sanstha, 2008)

इसके अतिरिक्त, गैर-सरकारी संगठन हेल्पलाइन सेवाओं, आपातकालीन प्रतिक्रिया तंत्र तथा संकट-हस्तक्षेप सेवाओं का संचालन करते हैं अथवा इन तक पहुँच को सुगम बनाते हैं, ताकि हिंसा या दुर्व्यवहार की परिस्थितियों में महिलाओं को समय पर सहायता प्राप्त हो सके।

कानूनी सहायता गैर-सरकारी संगठनों के हस्तक्षेप का एक अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र है, क्योंकि अनेक महिलाओं को अपने कानूनी अधिकारों की पर्याप्त जानकारी नहीं होती अथवा न्याय तक पहुँच प्राप्त करने में उन्हें आर्थिक, सामाजिक या पारिवारिक बाधाओं का सामना करना पड़ सकता है। गैर-सरकारी संगठन घरेलू हिंसा, दहेज-संबंधी अपराधों, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न, संपत्ति संबंधी अधिकारों तथा हिंसा एवं भेदभाव के अन्य रूपों से संबंधित मामलों में निःशुल्क अथवा कम लागत वाली कानूनी परामर्श सेवाएँ, पक्ष-समर्थन (Advocacy), शिकायत एवं मामला दर्ज करने संबंधी मार्गदर्शन तथा कानूनी कार्यवाही के दौरान सहायता प्रदान करते हैं। वे महिलाओं की सुरक्षा एवं सहायता के लिए उपलब्ध तंत्र को सुदृढ़ करने हेतु पुलिस, विधिक सेवा प्राधिकरणों, स्वास्थ्य संस्थानों तथा स्थानीय प्रशासन के साथ समन्वय भी कर सकते हैं।

साथ ही, गैर-सरकारी संगठन यह स्वीकार करते हैं कि हिंसा से सुरक्षा के साथ दीर्घकालिक सशक्तीकरण भी आवश्यक है। इसलिए वे कौशल विकास, व्यावसायिक प्रशिक्षण, साक्षरता, वित्तीय शिक्षा, उद्यमिता विकास तथा आजीविका के अवसरों के माध्यम से महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक स्वतंत्रता को बढ़ावा देने वाले कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करते हैं।

वर्तमान डिजिटल युग में साइबर सुरक्षा भी महिलाओं की सुरक्षा का एक महत्वपूर्ण घटक बन गई है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) के अनुसार, उत्तराखंड राज्य में दर्ज साइबर अपराध के मामलों की संख्या वर्ष 2023 में 494 से बढ़कर वर्ष 2024 में 810 हो गई, जो लगभग 64 प्रतिशत की वृद्धि को

दर्शाती है। इन आंकड़ों से यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि स्थिति अत्यंत चिंताजनक है। (NATIONAL CYBER CRIME DATA, 2026)

गैर-सरकारी संगठन ऑनलाइन गोपनीयता, डिजिटल अधिकारों, साइबर बुलिंग, ऑनलाइन उत्पीड़न, पहचान की चोरी तथा साइबर अपराध के अन्य रूपों के संबंध में जागरूकता उत्पन्न करने की दिशा में निरंतर प्रयास कर रहे हैं। साइबर जागृति, देहरादून स्थित एक गैर-सरकारी संगठन है, जो महिलाओं को सुरक्षित ऑनलाइन व्यवहार, डिजिटल आत्म-सुरक्षा तथा साइबर उत्पीड़न एवं साइबर अपराध की रिपोर्ट करने की प्रक्रियाओं के संबंध में शिक्षित करने के लिए कार्य करता है। कुछ संगठन ऑनलाइन हेल्पडेस्क, परामर्श तथा संदर्भन सेवाएँ भी प्रदान करते हैं, जिनके माध्यम से महिलाएँ सुरक्षित रूप से सहायता प्राप्त कर सकती हैं। इन परस्पर संबद्ध हस्तक्षेपों के माध्यम से गैर-सरकारी संगठन ऐसे सहयोगात्मक वातावरण के निर्माण में योगदान देते हैं, जिसमें महिलाएँ न केवल हिंसा से सुरक्षित रहती हैं, बल्कि अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होती हैं, न्याय एवं सहायता सेवाओं तक पहुँच प्राप्त करने में सक्षम बनती हैं, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होती हैं तथा अपने जीवन और व्यापक समाज को प्रभावित करने वाले निर्णयों में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए सशक्त होती हैं।

निष्कर्ष

महिला सशक्तीकरण की प्रक्रिया एक ऐसी परिवर्तनकारी प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत महिलाएँ अपने लिए समय एवं स्थान का निर्माण करती हैं और अपने जीवन, अनुभवों तथा सामाजिक परिस्थितियों का आलोचनात्मक एवं सामूहिक रूप से पुनर्मूल्यांकन करना आरंभ करती हैं। यह प्रक्रिया महिलाओं को समस्याओं को नवीन एवं वैकल्पिक दृष्टिकोणों से देखने, अपने सामाजिक परिवेश एवं परिस्थितियों का विश्लेषण करने तथा अपनी अंतर्निहित शक्तियों, क्षमताओं और संभावनाओं को पहचानने में सक्षम बनाती है। इसके साथ ही, महिला सशक्तीकरण महिलाओं की आत्म-छवि में सकारात्मक परिवर्तन लाने, नवीन प्रकार की सूचनाओं एवं ज्ञान तक पहुँच स्थापित करने, नए कौशल अर्जित करने तथा अपने अधिकारों एवं हितों की प्राप्ति के उद्देश्य से आवश्यक एवं सार्थक कार्रवाई प्रारंभ करने की क्षमता विकसित करता है। इस प्रकार, सशक्तीकरण केवल व्यक्तिगत क्षमता-विकास तक सीमित न रहकर महिलाओं को अपने जीवन से संबंधित निर्णयों में सक्रिय एवं स्वायत्त भूमिका निभाने के लिए सक्षम बनाता है। वस्तुतः, हाथ में हुनर और दिल में विश्वास, नारी रचेगी नया इतिहास, की भावना महिला सशक्तीकरण की इसी परिवर्तनकारी प्रक्रिया को अभिव्यक्त करती है, जब महिलाओं को कौशल और अवसर मिलते हैं, तो वे आत्मनिर्भर बनकर समाज को नई दिशा देती हैं।

पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं की स्थिति लंबे समय से असमान शक्ति-संबंधों से प्रभावित रही है। ऐसी व्यवस्था में महिला को प्रायः पुरुष परिवार-सदस्यों की संपत्ति अथवा उनके अधीनस्थ व्यक्ति के रूप में देखा जाता है। परिणामस्वरूप, अनेक महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने के अवसरों से वंचित रहना पड़ता है तथा अपने जीवन से संबंधित निर्णय स्वयं लेने की स्वतंत्रता भी सीमित हो जाती है। उनकी इच्छाओं, आकांक्षाओं और मतों को अपेक्षित महत्त्व नहीं दिया जाता।

उत्तराखंड एक पर्वतीय राज्य होने के कारण भौगोलिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्तर पर विशिष्ट चुनौतियों का सामना करता है। इन परिस्थितियों का महिलाओं के जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ता है और राज्य की महिलाएँ बहुआयामी एवं परस्पर संबद्ध समस्याओं से जूझती हैं। इनमें लैंगिक असमानता, निर्धनता का स्त्रीकरण, पुरुषों का रोजगार एवं आजीविका की तलाश में बड़े पैमाने पर बाह्य प्रवासन तथा इसके परिणामस्वरूप महिलाओं पर पड़ने वाला दोहरा कार्यभार प्रमुख हैं। पुरुषों के प्रवासन के कारण घरेलू दायित्वों के साथ-साथ कृषि, पशुपालन, परिवार की देखभाल तथा अन्य सामाजिक एवं आर्थिक उत्तरदायित्वों का भार भी प्रायः महिलाओं के कंधों पर आ जाता है। इस प्रकार, महिलाओं के श्रम एवं उत्तरदायित्वों में वृद्धि होने के बावजूद उनकी आवश्यकताओं और कल्याण को पर्याप्त प्राथमिकता नहीं मिल पाती। इन परिस्थितियों का प्रतिकूल प्रभाव महिलाओं के स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। निरंतर कार्यभार, संसाधनों की सीमित उपलब्धता, सामाजिक असमानता तथा अपनी आवश्यकताओं की अपेक्षा परिवार के अन्य सदस्यों की आवश्यकताओं को प्राथमिकता देने की प्रवृत्ति के कारण महिलाएँ अपने स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं की प्रायः उपेक्षा करती रहती हैं। वे परिवार के कल्याण और अन्य सदस्यों की आवश्यकताओं को स्वयं से आगे रखती हैं। इस स्थिति को “घर की मुर्गी दाल बराबर” जैसी कहावत के व्यापक सामाजिक संदर्भ में समझा जा सकता है, जहाँ महिलाओं के निरंतर श्रम, त्याग और योगदान को अक्सर स्वाभाविक मान लिया जाता है और उसका पर्याप्त मूल्यांकन नहीं हो पाता।

इस संदर्भ में महिला सशक्तीकरण के क्षेत्र में कार्यरत गैर-सरकारी संगठन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन संगठनों के हस्तक्षेपों ने उत्तराखंड की महिलाओं के जीवन के विभिन्न पक्षों को प्रभावित किया है तथा उनके समग्र कल्याण एवं जीवन-स्तर में सुधार की दिशा में योगदान दिया है। गैर-सरकारी संगठन महिलाओं के लिए सहभागिता, आत्म-जागरूकता, ज्ञान, कौशल-विकास और निर्णय-निर्माण के अवसरों का सृजन करके उन्हें अपनी क्षमताओं एवं अधिकारों को पहचानने के लिए प्रेरित करते हैं। इसके माध्यम से महिलाएँ न केवल अपनी व्यक्तिगत एवं पारिवारिक परिस्थितियों को समझने में सक्षम होती हैं, बल्कि सामाजिक संरचनाओं और शक्ति-संबंधों को भी अधिक आलोचनात्मक दृष्टि से देखने लगती हैं।

संदर्भग्रंथ सूची

1. CHIRAG. (2022). *35th Annual Report 2021-2022.* Nainital: Central Himalayan Institute Rural Action Group .

2. Department of Women and Child Development. (2026, October 25). *Protection of women from domestic violence act comes into effect*. Retrieved 08 17, 2026, from www.pib.gov.in: https://www.pib.gov.in/newsite/erelcontent.aspx?relid=21508&reg=48&lang=2

3. Devendran, M. (2024). ROLE OF NGOS IN WOMEN EMPOWERMENT: WITH SPECIAL REFERENCE TO MUMBAI, MAHARASHTRA. *A GLOBAL JOURNAL OF HUMANITIES , 7* (1), 216-220.

4. Gururaj G, V. M. (2016). *National Mental Health Survey of India, 2015-16: Prevalence, Pattern and Outcomes.* Banglore: National Institute of Mental Health and Neuro Sciences.

5. HARC . (2024). *Annual Report- 2023-2024.* Dehradun: Himalayan ACtion Research Center.

6. K.Verma, D. (2016). Women Empowerment In India: A Study Of Uttarakhand. *Motherhood International Journal of Multidisciplinary , 1* (2), 08-23.

7. Lewis, D., & Kanji, N. (2009). *Non Government Organization and Development* (Vol. 1). London: Routledge.

8. Mamta Samajik Sanstha. (2008). *Mamta's Contribution to make difference in the life of Disadvantaged people of the Society in the last 16 Years.* Rajpir Road, Dehradun: Mamta Samajik Sanstha.

9. Mathias K, M. J. (2017, July 29). Strengthening community mental health competence—A realist informed case study from Dehradun, North India. *Health and Social Care in Community* , 01-12.

10. Ministry of Healthand family Welfare. (2022, Feb 04). *National family Health Survey 05.* Retrieved 8 15, 2026, from PIB: https://www.pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1795421#:~:text=The%20prevalence%20of%20anaemia%20among,capacity%20building%20through%20physical%20trainings.

11. Ministry Of Rural Deveopment. (2026, 07 28). *Press Information Bureau .* Retrieved 08 28, 2026, from ACTION PLAN UNDER LAKHPATI DIDI: https://www.pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2290658&reg=3&lang=1

12. *NATIONAL CYBER CRIME DATA.* (2026, 07 21). Retrieved 08 28, 2026, from Press Information Bureau: https://www.pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2287039&lang=1&reg=3&utm

13. Parvatiya Mahila Kalyan Samiti. (n.d.). *Impact Report* . Retrieved 08 15, 2026, from pmksngo.org: https://pmksngo.org/impact

14. Patel, v. s. (2018). The lancet commission on global mental health and sustainable development. *The Lancet* , 1553-1599.

15. PRAGATI. (n.d.). *Core Activities*. Retrieved 08 17, 2026, from pragatidehradun.org: https://pragatidehradun.org/publications/

16. (2017). *Report: KISHORIUTTHAN: APROJECT FOR ADOLESCENT GIRLS.* Dehradun: Rural Development Institute (RDI-HIHT) .

17. Sewabhav. (2025, December 18). *Saheli Program: Women Empowerment and Legal Awareness.* Retrieved 08 17, 2026, from Sewabhav.org: https://sewabhav.org/2025/12/18/women-empowerment-legal-awareness/

18. Smile Foundation. (2022, 10 30). *Annual Report 21-22.* Retrieved 09 19, 2025, from smilefoundation.org: https://www.smilefoundationindia.org/wp-content/uploads/2023/01/imfact-2022.pdf.

19. Society for People's Action and Rural Development in Himalayan Area. (2018). *Annual Report 2017-2018.* Almora: SPARDHA.

20. Uttarakhand Seva Nidhi Paryavaran Shiksha Sansthan. (2014). *Annual Report 2014.* Jakhan Devi, Mall Road Almora: USNPSS.

21. Uttarakhand Seva Nidhi Paryavaran Shiksha Sansthan. (2025). *Annual Report 24-25.* Almora: Uttarakhand Seva Nidhi Paryavaran Shiksha Sansthan.

22. World Health Organization. (2022). *World mental health report: Transforming mental health for all.* Geneva: WHO.

उत्तराखंड के हस्तशिल्प और हथकरघा
(महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. ज्योति जोशी, सहायक प्राध्यापक (A.C.)
गृह विज्ञान विभाग
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

सार

यह अध्याय उत्तराखंड की महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण में हस्तशिल्प और हथकरघा की भूमिका का अध्ययन करता है। उत्तराखंड में हस्तशिल्प एवं हथकरघा उद्योग से जुडी महिलाओं की आय का एक सतत स्रोत हस्तशिल्प एवं हथकरघा उत्पाद हैं। सतत चलने वाली आजीविका छोटे और लम्बे समय में वैश्विक और स्थानीय स्तर पर दूसरी आजीविकाओं के स्रोतों को भी कुल मिलाकर फ़ायदा पहुँचाती है। किसी क्षेत्र की खास स्थानीय क्षमताओं और प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग करके तथा उनके प्रयोग को बढ़ावा देकर वैकल्पिक रोज़गार रणनीति के तौर पर हथकरघा और हस्तशिल्प को काफ़ी अहम बनाया जा सकता है। इस अध्याय में यह बताने का प्रयास किया गया है कि उत्तराखंड में हस्तशिल्प और हथकरघा क्षेत्र आर्थिक सशक्तिकरण का एक महत्वपूर्ण माध्यम हो सकता है। यह अध्याय हथकरघा और हस्तशिल्प क्षेत्रों के ज़रिए टिकाऊ आजीविका और आत्मनिर्भरता हासिल करने की रणनीतियों पर भी चर्चा करता है।

मुख्य शब्द: हस्तशिल्प, हथकरघा, सशक्तिकरण, आजीविका और संसाधन

प्रस्तावना

उत्तराखंड राज्य अपनी समृद्ध, सांस्कृतिक विरासत और पारंपरिक कारीगरी के लिए अत्यधिक प्रसिद्ध है। यहाँ कई तरह की हस्तकलाएँ मौजूद हैं जो राज्य के इतिहास, स्थानीय ज्ञान और कलात्मक दक्षता को दिखाती हैं। उत्तराखंड की महिलाएँ इन पारंपरिक कलाओं को सहजने और उन्हें बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। उत्तराखंड राज्य में हस्तशिल्प और हथकरघा के उत्पाद जैसे रिंगल (बाँस) के उत्पाद, ऊन से बने हथकरघा उत्पाद, ऐपण कला से बने उत्पाद और प्राकृतिक रेशों से बनी वस्तुएँ शामिल हैं। पीढ़ियों से चली आ रही ये हस्तकलाएँ न सिर्फ़ संस्कृति को दिखाने का तरीका हैं, बल्कि ग्रामीण महिलाओं के लिए रोज़गार का एक अत्यधिक महत्वपूर्ण साधन भी हैं। पिछले कुछ सालों से उत्तराखंड में महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण के लिए हस्तशिल्प एक आवश्यक माध्यम बनकर उभरा है। महिलाओं को शिल्प उद्यमिता से जुड़कर स्वतंत्र रूप से धन अर्जित करने, घर की आर्थिक स्थिति में योगदान देने तथा अपनी सामाजिक–आर्थिक स्थिति को उन्नत बनाने का एक सकारात्मक अवसर मिला है। राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय बाज़ारों में हाथ से बने पर्यावरण अनुकूल और टिकाऊ उत्पादों की बढ़ती मांग ने आय का एक अच्छा माध्यम बन कर हस्तशिल्प क्षेत्र को विकसित होने में और प्रोत्साहित कियाहै।

सरकारी प्रयासों, स्वयं–सहायता समूहों, गैर–सरकारी संगठनों (NGOs) और सहकारी समितियों ने उन महिलओं को जो लघु उद्योगों के कार्यों में लगी हुई हैं उन्हें कौशल विकास, आर्थिक सहायता, मार्केटिंग में मदद और डिजिटल प्लेटफॉर्म उपलब्ध कराने में अहम भूमिका निभाई है। इन प्रयासों ने कई महिलाओं को

अपने पारंपरिक कौशल को स्थापित उद्यमों के रूप में विकसित करने में सक्षम बनाया है जिसके द्वारा राज्य की सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखते हुए महिलाओं की आत्मनिर्भरता और उद्यमिता को बढ़ावा मिला है। इन उपलब्धियों के बावजूद, महिला कारीगरों को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है जैसे कि बाज़ार तक सीमित पहुँच, अपर्याप्त बुनियादी ढाँचा, कम वित्तीय साक्षरता, आधुनिक डिज़ाइन की जानकारी में कमी और मशीन से बने उत्पादों से प्रतिस्पर्धा। हस्तशिल्प और हथकरघा क्षेत्र की पूरी क्षमता का लाभ उठाने के लिए पॉलिसी सपोर्ट, इनोवेशन, डिजिटल मार्केटिंग और क्षमता–निर्माण कार्यक्रमों के ज़रिए इन बाधाओं को दूर करना ज़रूरी है। इन प्रयासों द्वारा, उत्तराखंड में हस्तशिल्प एवं हथकरघा क्षेत्र को केवल एक पारंपरिक काम न समझकर उसे वैश्विक स्तर तक बढ़ाया जा सकता है। इन प्रयत्नों द्वारा उत्तराखंड की महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण तथा विकास किया जा सकता है। ये प्रयास सांस्कृतिक संरक्षण का एक सशक्त माध्यम भी बन सकते हैं। इस क्षेत्र को मजबूत करने से समावेशी आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान मिल सकता है और साथ ही पूरे राज्य में महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति भी बेहतर हो सकती है।

उत्तराखण्ड के हस्तशिल्प की परंपरा एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

उत्तराखंड की पारंपरिक हस्तकलाएँ वहाँ के उच्च पहाड़ी इलाकों, प्राचीन मंदिरों की बनावट और स्थानीय जनजातीय विरासत से जुड़ी हुई हैं। उत्तराखंड के विशेष समुदायों से जुड़े लोगों की कई पीढ़ियों ने ऊँचे पहाड़ी इलाकों में मिलने वाली ऊन जैसी प्राकृतिक चीज़ों को लकड़ी, रिंगल (एक तरह का छोटा बांस) और तांबा को पवित्र और रोज़मर्रा के काम आने वाली कलाकृतियों एवं उत्पादों में बदला है। प्राचीन काल में उत्तराखंड के कुमाऊं क्षेत्र के कत्यूरी और चंद राजवंशों ने मंदिर निर्माण को बढ़ावा दिया, जिससे लकड़ी की जटिल नक्काशी और धातु–शिल्प कला का विकास हुआ। उत्तराखंड की हथकरघा और हस्तशिल्प परंपराएं मुख्य रूप से भोटिया समुदाय और स्थानीय कारीगर संघों द्वारा संचालित हैं और इनकी जड़ें जनजातीय व्यापार, हिमालय के दुर्गम भूगोल और प्राचीन रीति–रिवाजों में निहित हैं।

उत्तराखंड की हथकरघा और हस्तशिल्प परम्परों में मुख्यत: ऊनी बुनाई, धातु–शिल्प और ऐपण कला शामिल हैं। ऊन से बने उत्पादों का उत्पादन एवं व्यापार विशेषतया ऊंचे इलाकों में रहने वाली (जैसे नीति, माणा और जाध घाटियों में) भोटिया जनजातियों की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार थी। ये लोग तिब्बत की सीमा के पार ऊन से बने उत्पादों जैसे कालीनों, शाल, पंखी, आदि का व्यापार करते थे। पारंपरिक बुनाई में रंगने के लिए कत्था, किल्मोड़ा और काफल की पत्तियों जैसे स्थानीय पौधों के अर्क का इस्तेमाल किया जाता था।

उत्तराखंड के अलग–अलग ज़िलों में स्थानीय बांस (रिंगाल) से मज़बूत और पर्यावरण के अनुकूल टोकरियाँ और सामान रखने के लिए डिब्बे बुने जाते थे। 'ऐपण कला' एक पारंपरिक कला है जिसमें त्योहारों के दौरान

ईंट जैसे लाल रंग के 'गेरू' के आधार पटल, जमीन एवं दीवार पर चावल के आटे के सफेद पेस्ट (बिस्वार) से आकृतियां बनाई जाती हैं, ताकि दैवीय सुरक्षा का आशीर्वाद मिल सके। कुमाऊं में महिलाएं आज भी श्ऐपण कलाश् का प्रयोग करती हैं।

उत्तराखण्ड के प्रमुख हस्तशिल्प

उत्तराखंड की पर्वत श्रंखलाओं के बीच, यहाँ की हस्तकला का एक ऐसा संसार फलता–फूलता है जो मशीनों के इस दौर में भी अपनी आत्मा और असलियत के साथ जीवित है। उत्तराखंड में कई तरह की मशहूर

पारंपरिक हस्तकलाएं हैं, जिन्हें स्थानीय लोग आज भी अपनाते हैं। ये कलाएं टिकाऊ हैं और स्थानीय लोगों के लिए आमदनी का एक अच्छा माध्यम हैं। उत्तराखंड के हस्तशिल्प एवं हथकरघा उत्पाद इस प्रकार हैं:

- **रंगवाली पिछौड़ा**

कुमाऊँनी महिलाएँ कुछ पारम्पारिक धार्मिक अनुष्ठानों एवं शादी पर सिर ढकने के लिए एक खास तरह की चुन्नी पहनती हैं जिसे रंगवाली पिछौड़ा् कहा जाता है। गहरे पीले रंग के कपड़े पर चटख लाल रंग के बूटे (बिंदु) और किनारों पर सुंदर लेस लगे होते है और इस कपड़े को रंगवाली पिछौड़ा् कहा जाता है। रंगवाली पिछौड़ा के बीच में स्वास्तिक, घंटी, शंक और सूर्य जैसे धार्मिक चित्र भी बने होते हैं। पीला रंग भौतिक सुख–समृद्धि और लंबे समय तक चलने वाले वैवाहिक रिश्ते का प्रतीक माना जाता है।

- **रिंगाल शिल्प**

पूरे उत्तराखंड में बहुतायत में पाया जाने वाला रिंगाल, बांस की एक ऐसी प्रजाति है जिसका इस्तेमाल कई तरह की मज़बूत और पर्यावरण के अनुकूल टोकरियाँ, रसोई के सामान, चटाइयाँ (मोश्ता), फ़र्नीचर आदि बनाने में किया जाता है। कुमाऊं के कारीगर रिंगाल से सुंदर हस्तशिल्प बनाने में माहिर हैं। हालांकि, वे इस कला को रोज़ी–रोटी के ज़रिया से अधिक एक परंपरा के तौर पर अपनाते हैं।

- **ताम्र एवं धातु शिल्प**

उत्तराखंड की तांबे की कारीगरी, जो ऐतिहासिक रूप से अल्मोड़ा के टम्टा मोहल्ले में केंद्रित रही है। 16वीं सदी से चली आ रही धातु को हाथ से पीटकर आकार देने की एक प्राचीन परंपरा है। कारीगर केवल साधारण हथौड़ों और छेनी का इस्तेमाल करके शुद्ध तांबे की चादर से पारंपरिक पानी के बर्तन, खाना पकाने के बर्तन और धार्मिक अनुष्ठानों में प्रयोग की जाने वाली विविध सामग्रियों का निर्माण करते हैं।

- **लकड़ी की नक्काशी**

गढ़वाल और कुमाऊं की पहाड़ियों में लकड़ी की प्रचुरता के कारण यहाँ घर के दरवाजों और खिड़कियों को बनाने में लकड़ियों का प्रयोग किया जाता था। यहाँ के संरचनात्मक खंभों, खिड़कियों और मंदिर के दरवाजों पर ज्यामितीय आकृतियों का उपयोग करते हुए लकड़ी पर बेहतरीन नक्काशी की कला विकसित हुई।

- **ऊनी शिल्प**

उत्तराखंड की ऊनी कारीगरी हिमालय की एक समृद्ध विरासत है, जो चमोली, पिथौरागढ़ और उत्तरकाशी जैसे ज़िलों में रहने वाली भोटिया जनजाति और ऊंचे पहाड़ी इलाकों के समुदायों की जीवनशैली से गहराई से जुड़ी हुई है। कारीगर भेड़, बकरी और खरगोश के ऊन से धागा बनाते हैं और मज़बूत, गर्म सर्दियों के कपड़े और भारी वस्त्र बनाने के लिए पारंपरिक छोटे गड्ढे वाले करघों (Pit Loom) पर बुनाई करते हैं।

- **ऐपण कला**

ऐपण' शब्द संस्कृत के शब्द 'अल्पना' से बना है। ऐपण बनाने हेतु मुख्यतः दो पदार्थों गेरु व बिस्वार का प्रयोग किया जाता है। गेरु एक प्रकार की लाल मिट्टी है जिससे सतह को लीपकर आधार तैयार किया जाता

है। यह ढेलों या पाउडर के रुप में बाजार में उपलब्ध होती है। बिस्वार बनाने हेतु चावलों को भिगोकर, महीन पीस लिया जाता है व इस प्रकार तैयार गाढ़े घोल द्वारा गेरू से लीपी हुई सतह पर ऐपण नमूनों को बनाया जाता है। बिस्वार से ऐपण बनाने हेतु दाहिने हाथ की तीन उंगलियों कनिष्ठा, अनामिका व मध्यमा का प्रयोग किया जाता है। ऐपण को कुमाऊँ में लिखाई भी कहा जाता है। ये संरचनाएँ घर के मंदिर, दीवारों, देहरी, आँगन पूजा स्थल में धरातल, लकड़ी की चौकियों, कागज के पट्टों, कपड़ों आदि पर निर्मित की जाती है। ऐपण के अन्तर्गत बनने वाले नमूनों में बिन्दुओं, रेखाओं, प्राकृतिक तत्वों, ज्यामितीय आकृतियों का अत्यंत महत्व है, जो हमें वसुधारा, फूल पत्तों युक्त बेलबूटों, सूर्य, चंद्र, शंख, घंटा, स्वास्तिक, पगचिन्ह चौखाने व चौपड़ के रुप में दृष्टिगोचर होता है। यह कला सिर्फ़ महिलाओं तक ही सीमित है। माँ अपनी बेटी को यह सिखाती है और इस तरह, यह कला एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचती रही है। कुमाऊँ के लोगों के लिए, हिंदू धर्म के हर देवता का एक खास निशान होता है और हर मौके पर अलग तरह के ऐपन की ज़रूरत होती है। इसलिए, शादी की रस्मों में उपयोग होने वाले डिज़ाइन, लड़के के जनेऊ संस्कार के समय बनाए जाने वाले डिज़ाइनों से काफ़ी अलग होते हैं।

पहाड़ी इलाकों में हथकरघा और हस्तशिल्प से जुड़े स्थाई रोज़गार के विकल्प

हथकरघा (Handloom) और हस्तशिल्प (Handicraft) उत्पाद भारत की समृद्ध संस्कृति और विरासत के प्रतीक हैं और ये पारंपरिक ज्ञान के साथ–साथ स्थानीयता की भी झलक दिखाते हैं। हथकरघा और हस्तशिल्प के मामले में देश के हर इलाके की अपनी खासियत है। हथकरघा का मतलब है ऐसा करघा जिसे हाथ से (जैसे पिट लूम या फ्रेम लूम) चलाया जाता है और जो आमतौर पर बुनकर के घर पर लगा होता है। भारत में हथकरघा और हस्तशिल्प की विविधता उतनी ही है जितनी देश की सांस्कृतिक विविधता। करघे का प्रयोग फायदेमंद है क्योंकि यह सस्ता है और बहुत से लोगों की पहुंच में है। इसके प्रयोग में वे लोग भी शामिल हैं जिनके पास काम के बहुत सीमित विकल्प हैं। हालांकि यह उद्योग बिखरा हुआ, अलग–थलग और विकेंद्रीकृत है, फिर भी यह भारतीय अर्थव्यवस्था का एक बहुत महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह ग्रामीण और कस्बे जैसे इलाकों में पर्यावरण के अनुकूल, टिकाऊ, कम पूंजी और कम ऊर्जा की खपत वाले, लेकिन अधिक श्रम वाले स्थानीय संसाधनों और स्थानीय प्रयासों का प्रयोग करता है। उत्तराखंड के हथकरघा क्षेत्र (Handloom sector) को मुख्य रूप से ऊनी, रेशमी और सूती हैंडलूम में बांटा गया है। उत्तराखंड का पर्यावरण भी अलग–अलग तरह के रेशम के लिए बहुत अच्छा माना जाता है। रेशम विभाग (Sericulture Department) के अनुसार, उत्तराखंड अकेला ऐसा राज्य है जहाँ चारों तरह के कोकून का उत्पादन होता हैरू मलबरी, ओक टसर, मूंगा और एरी रेशम । उत्तराखंड भारत का पहला राज्य भी है जिसने भांग (हेम्प) की कमर्शियल खेती को कानूनी मान्यता दी है (जयन 2018)। अपनी बनावट की वजह से, हेम्प से बने कपड़े का इस्तेमाल खास तौर पर ऊँचे पहाड़ी इलाकों में तैनात डिफेंस कर्मियों के कपड़ों के लिए किया जा सकता है (दत्ता 2020)। हेम्प से बैग, बैकपैक, बेल्ट, वॉलेट और एक्सेसरीज़ जैसी चीज़ें भी बनाई जाती हैं। उत्तराखंड की मुख्य कलाओं में प्राकृतिक रेशों, रामबांस, रिंगल, जूट से बनी हस्तशिल्प कला, ऐपण लोक कला, तांबे के बर्तन, लकड़ी का काम, मोम का काम आदि शामिल हैं। हालाँकि, राज्य के निदेशालय के मौजूदा आँकड़े बताते हैं कि हैंडलूम और हस्तशिल्प दोनों का उत्पादन अभी भी बड़े पैमाने पर नहीं हो रहा है और यह पहाड़ों के कुछ खास इलाकों में ही होता है, जो काफी दूर–दूर फैले हुए हैं और जिनमें तालमेल और अच्छी विपणन व्यवस्था की कमी है।

उत्तराखण्ड में महिला कारीगरों की भूमिका एवं आर्थिक सशक्तिकरण

उत्तराखंड की महिला कारीगर राज्य की ग्रामीण अर्थव्यवस्था और संस्कृति की आधारशिला हैं। पारंपरिक हस्तशिल्प, ऐपण कला और हथकरघा के माध्यम से महिलायें आजीविका कमाने, सांस्कृतिक विरासत को सहेजने और परिवारों को आर्थिक संबल देने में अहम भूमिका निभा रही हैं। उत्तराखण्ड की ग्रामीण अर्थव्यवस्था और सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने में महिला कारीगरों की महत्वपूर्ण भूमिका है। पर्वतीय क्षेत्रों में महिलाएँ पारंपरिक हस्तशिल्प जैसे ऊन से बने उत्पाद के निर्माण, ऐपण कला, बाँस/रिंगाल शिल्प, हस्तनिर्मित सजावटी वस्तुओं तथा स्थानीय उत्पादों के निर्माण से जुड़ी रही हैं। आज यही पारंपरिक कौशल महिलाओं के लिए आय, स्वरोजगार और आर्थिक आत्मनिर्भरता का माध्यम बन रहा है। राज्य सरकार के ग्रामीण विकास विभाग के अनुसार, विभिन्न जिलों में महिला स्वयं सहायता समूहों की सहायता से हस्तशिल्प और हथकरघा उत्पादों जैसी आजीविका गतिविधियों के माध्यम से उल्लेखनीय आय अर्जित कर रही है। इसके बावजूद महिला कारीगरों को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जैसे कच्चे माल की उपलब्धता, आधुनिक डिजाइन का अभाव, सीमित पूँजी, बाजार तक पहुँच, बिचौलियों की भूमिका, डिजिटल विपणन की कमी और उत्पादों का उचित मूल्य न मिलना। इसलिए केवल कौशल प्रशिक्षण पर्याप्त नहीं है; उत्पादन से लेकर ब्रांडिंग, पैकेजिंग, वित्त, डिजिटल मार्केटिंग और बाजार संपर्क तक पूरी मूल्य–श्रृंखला को मजबूत करना आवश्यक है।

हथकरघा और हस्तशिल्प क्षेत्र के द्वारा सतत आजीविका और आत्मनिर्भरता हासिल करने की रणनीतियाँ

स्थानीयकरण का शब्दकोश के अनुसार अर्थ है – किसी चीज़ को स्थानीय स्वरूप देना या उसे किसी खास जगह तक सीमित रखना। हथकरघा और हस्तशिल्प से जुड़े अलग–अलग आकड़ों और साहित्य की समीक्षा से यह बात सामने आई है कि उत्तराखंड राज्य अभी तक हथकरघा और हस्तशिल्प क्षेत्र में अपनी खास पहचान नहीं बना पाया है। उत्तराखंड में आजीविका के इस स्थाई और वैकल्पिक ज़रिया की क्षमता का पूरा लाभ उठाने के लिए कई तरह के उपायों और रणनीतियों की ज़रूरत है। कुछ रणनीतियाँ इस प्रकार हैं:

- **प्रवास–आजीविका का विकल्प**

प्रवासन का परिवारों और स्थानीय अर्थव्यवस्था पर साफ़ असर पड़ता है। कई ऐसे कारण होते हैं जो लोगों को एक इलाके से दूसरे इलाके में जाने के लिए प्रेरित करते हैं। इनमें मुख्य हैं – बेहतर रोज़गार के मौके, ज्यादा आमदनी, बेहतर शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएँ, और शादी–ब्याह जैसे सामाजिक कारण। प्रवासन के कारण महिलाओं पर ज्यादा ज़िम्मेदारियाँ आती हैं, जिससे स्त्री–पुरुष की भूमिकाओं में कई बदलाव आते हैं। विविधीकरण, औद्योगीकरण, छोटे पैमाने के उद्यम और कुटीर उद्योग लगाने, आधारभूत संरचना के विकास और आखिर में उन क्षेत्रों पर ध्यान देकर जहाँ तुलनात्मक फ़ायदा हो वहाँ उत्पादक आधार को बेहतर बनाया जाना चाहिए।

- **सूक्ष्म उद्यम**

ग्रामीण इलाकों, खासकर पहाड़ी क्षेत्रों के लिए ऐसे छोटे स्तर के घरेलू उद्योग सबसे उपयुक्त हैं जिनमें सीमित तरह की गतिविधियां होती हैं। कम निवेश और सीमित उत्पादों वाले उद्योग इनके लिए सबसे अच्छे रहते हैं। हर इलाके के हथकरघा और हस्तशिल्प में वहां की सांस्कृतिक विरासत की खास झलक मिलती है। इसलिए, लोग सीधे तौर पर इन उद्योगों और इनसे जुड़ी गतिविधियों में शामिल हो सकते हैं।

- **विविधीकरण रणनीति**

आजीविका को बेहतर बनाने और ज़्यादा कमाई करने के लिए मानव संसाधनों को कौशल विकास क्षेत्रों में लगाने की बहुत ज़रूरत है। उत्तराखंड में हथकरघा और हस्तशिल्प के व्यवस्थित विकास में कई कमियों ने बड़ी बाधा डाली है, जैसे कि कच्चे माल की उपलब्धता, भंडारण, क्रेडिट सुविधाएँ, डिज़ाइन में नवाचार, गुणवत्ता और मार्केटिंग नेटवर्क जैसे सही संस्थागत तंत्र का अभाव।

- **कौशल उन्नयन**

किसी खास इलाके के हुनर को बेहतर बनाकर और वहां की क्षेत्रीय कला और शिल्प को विकसित करके मानव संसाधनों की क्षमता का पूरा इस्तेमाल किया जाना चाहिए। क्षमता निर्माण और मानव संसाधन विकास का काम सही तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा के ज़रिए किया जाना चाहिए, जिसमें उपलब्ध स्थानीय संसाधनों और विकास की संभावनाओं वाली क्षेत्रीय विशेषताओं के प्रयोग पर ज़ोर दिया जाए।

- **सतत फ़ैशन को बढ़ावा देना**

पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक डिज़ाइन व मांग के मेल से ग्राहकों की सोच को सतत (Sustainable) फ़ैशन की ओर मोड़ने का एक बड़ा मौका है। 'सतत फैशन अवधारण'(Sustainable Fashion Concept) का इस्तेमाल करके ऐसे उत्पादों को अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में भी बेचा जा सकता है और ये कमाई का एक अच्छा ज़रिया बन सकते हैं।

- **डिज़ाइनरों को काम पर रखना**

नए और स्थाई उत्पाद डिज़ाइन करने के लिए ब्लॉक–स्तर और उससे आगे के क्लस्टर में पेशेवर डिज़ाइनरों को काम पर रखा जा सकता है। वे बुनकरों और कारीगरों को मार्केटिंग के लिए संपर्क बनाने में भी मदद कर सकते हैं।

निष्कर्ष

उत्तराखंड की महिलाओं का स्थानीय अर्थव्यवस्था, सांस्कृतिक विरासत और ग्रामीण उद्यमिता में महत्वपूर्ण योगदान है। उत्तराखण्ड की महिलाओं का हस्तशिल्प एवं हथकरघा उत्पादों के उत्पादन की आधारशिला हैं। स्वयं सहायता समूहों, कौशल विकास, आसान ऋण, डिजिटल विपणन, पर्यटन आधारित बाजार और बेहतर मूल्य–वर्धन के माध्यम से उनकी आर्थिक क्षमता को और बढ़ाया जा सकता है। अतः महिला कारीगरों को उत्पादक से स्वतंत्र उद्यमी और बाजार–निर्माता बनाने की दिशा में प्रयास करना उत्तराखण्ड के समावेशी एवं सतत ग्रामीण विकास के लिए महत्वपूर्ण है। उत्तराखंड के हस्तशिल्प और हथकरघा केवल राज्य की सांस्कृतिक विरासत के प्रतीक नहीं हैं, बल्कि महिलाओं के आर्थिक एवं सामाजिक सशक्तिकरण का एक प्रभावी माध्यम भी हैं। राज्य की अनेक महिलाएँ पारंपरिक शिल्प जैसे ऐपन कला, रिंगाल शिल्प, ऊनी बुनाई, थुलमा, पंखी, शॉल, कालीन, ताम्र एवं बाँस शिल्प आदि के माध्यम से आजीविका अर्जित कर रही हैं। हथकरघा एवं हस्तशिल्प के क्षेत्र में जो चुनौतियों है उनका का समाधान कौशल विकास, डिज़ाइन नवाचार, ब्रांडिंग, डिजिटल विपणन, वित्तीय समावेशन और नीतिगत समर्थन के माध्यम से किया जा सकता है। अंततः यह कहा जा सकता है कि उत्तराखंड के हस्तशिल्प और हथकरघा क्षेत्र महिलाओं के समावेशी, सतत और आत्मनिर्भर आर्थिक विकास की मजबूत एवं महत्वपूर्ण आधारशिला हैं।

संदर्भग्रंथ सूची

- Lohumi, J. M. and Joshi, P. 2024. Empowering the women of Uttarakhand through the traditional folk art of Aipan. *International Journal of Multidisciplinary Research*. 6(6): 1-4.
- Khanduri, S. and Datta, R. 2021. Handloom and Hadicrafts: Employment Prospects and sustainable livelihood option for the Himalayan State of Uttarakhand. *International Journal of Arts Humanities and Social Sciences Studies*. 6(12): 28-36.
- Dobriyal, A. and Sarkar, S. 2024. A review of Uttarakhand's craftsmanship in Natural Textiles and Traditional Weaving. *Journal of Propulsion Technology*. 45(4): 901-915.
- Jayan, T. 2018. Cannabis cultivation is now legal in Uttarakhand. New Delhi. Business Line
- Datta, R.2020. Handlooms as a sustainable livelihood option for Uttarakhand. Niti Ghosh, The Quarterly Bulletin. Centre for Public Policy and Good Governance. 1(2): 5-19.

उत्तराखण्ड में कार्यात्मक खाद्य (Functional Food) एवं सतत् पोषण

परिचय

शहरीकरण, बदलती जीवनशैली, जलवायु परिवर्तन, पर्यावरणीय क्षरण और खान–पान की आदतों में बदलाव के कारण वैश्विक खाद्य प्रणाली तेजी से बदल रही है। इन परिवर्तनों के कारण पोषण से जुड़ी एक जटिल स्थिति उत्पन्न हो गई है, जिसमें अल्पभार, सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी, उच्चभार, मोटापा, मधुमेह, हृदय रोग और अन्य गैर–संचारी रोग एक साथ उपस्थित हैं। ऐसे में अब ऐसे खाद्य पदार्थों की तरफ लोगों का रुझान बढ़ रहा है जो आधारभूत पोषण से परे लाभ प्रदान करते हैं तथा साथ ही ऐसे खान–पान के तरीकों में भी जो सेहत के लिए अच्छे हों और पर्यावरण के लिए भी अनुकूलित हों।

कार्यात्मक खाद्य (functional foods) आधुनिक पोषण विज्ञान के एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में उभरे हैं। कार्यात्मक खाद्य ऐसे प्राकृतिक या प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ होते हैं जो उन्नत स्वास्थ्य के लिए सहायक होते हैं और बीमारियों से बचाने में मदद भी करते हैं। इन खाद्य पदार्थों में ऐसे जैविक रूप से सक्रिय यौगिक होते हैं जो आवश्यक पोषक तत्व देने के अलावा, अच्छा स्वास्थ्य बनाए रखने एवं दीर्घकालिक गैर–संचारी बीमारियों (chronic non & communicable diseases) को रोकने में सहायता करते हैं। कई तरह के खाद्य पदार्थों को कार्यात्मक खाद्य माना जाता है। इन खाद्यों में सम्पूर्ण और कम प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों के साथ–साथ वे खाद्य पदार्थ भी शामिल हो सकते हैं जिन्हें प्रबलीकृत, सम्पूरक या उन्नत बनाया गया हो। नियमित रूप से और सीमित मात्रा में खाने पर, इन खाद्य पदार्थों का स्वास्थ्य पर आम तौर पर सकारात्मक असर पड़ता है। आहारीय रेशा, पॉलीफेनॉल्स, फ्लेवोनॉयड्स, कैरोटीनॉयड्स, एंटीऑक्सीडेंट्स, आवश्यक वसीय अम्ल, प्रीबायोटिक घटक, विटामिन और खनिज उन घटकों में शामिल हैं जो खाद्य पदार्थों की कार्यात्मक क्षमता से जुड़े हैं।

साथ ही, सतत् पोषण की अवधारणा खान–पान के ऐसे तरीकों पर जोर देती है जो पोषण की आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव को कम करते हैं और जैव विविधता, स्थानीय आजीविका, सांस्कृतिक परंपराओं और खाद्य सुरक्षा को बढ़ावा देते हैं। स्थानीय, मौसमी, विविध एवं कम प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ सतत् खाद्य प्रणालियों में अहम योगदान दे सकते हैं।

उत्तराखण्ड भारत का हिमालयी राज्य है जो सतत् पोषण की बहुत संभावनाएं रखता है। यहां की विविध भू–आकृति, ऊंचाई, मौसम, खेती के पारंपरिक तरीके और भरपूर जैव–विविधता ने यहां के खान–पान की संस्कृति को विशिष्ट रूप दिया है। पारंपरिक खाद्य पदार्थ जैसे मंडुआ (finger millet), झंगोरा (barnyard millet), रामदाना/चौलाई (amaranth), भट्ट (black soybean), गहत (horse gram), राजमा, स्थानीय फल, पत्तेदार सब्जियां, जंगली खाने योग्य पौधे, बीज और पारंपरिक रूप से किण्वित खाद्य पदार्थ दीर्घकाल से यहां के लोगों की खाद्य शैली का महत्वपूर्ण भाग रहे हैं। इनमें से कई खाद्य पदार्थ पोषण की दृष्टि से बहुत लाभप्रद हैं और इनमें ऐसे जैवसक्रिय यौगिक होते हैं जो स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद हो सकते हैं। इनकी स्थानीय स्तर पर खेती से कृषि–विविधता, खाद्य सुरक्षा, ग्रामीण आजीविका और पारंपरिक ज्ञान को बचाने में भी सहायता मिलती है। इसलिए, उत्तराखंड की पारंपरिक खाद्य प्रणाली को केवल अतीत की सांस्कृतिक विरासत के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। इसमें कार्यात्मक खाद्यों, सतत् आहार, पोषण सुरक्षा और सामुदायिक स्वास्थ्य से जुड़ी आधुनिक रणनीतियों में योगदान देने की क्षमता है।

प्रस्तुत अध्याय में उत्तराखण्ड के पारंपरिक खाद्य पदार्थों की कार्यात्मक और पोषण संबंधी क्षमता की चर्चा की गई है। साथ ही इन खाद्यों की सतत् पोषण, स्वास्थ्य प्रचार, जैव–विविधता संरक्षण, आजीविका विकास और भविष्य की खाद्य प्रणालियों में उनकी भूमिका पर प्रकाश डाला गया है।

कार्यात्मक खाद्य पदार्थ की संकल्पना

कार्यात्मक खाद्य ऐसा सम्पूर्ण खाद्य पदार्थ या खाद्य पदार्थ का कोई भाग होता है जिसका प्रयोग विशिष्ट उपचारात्मक उद्देश्यों के लिए किया जाता है। इसे दो मुख्य श्रेणियों में बांटा गया है: पारंपरिक और संशोधित कार्यात्मक खाद्य। पारंपरिक कार्यात्मक खाद्य प्राकृतिक या सम्पूर्ण खाद्य पदार्थों से बने होते हैं जो कार्यात्मक तत्व प्रदान करते हैं, जबकि संशोधित कार्यात्मक खाद्य वे खाद्य पदार्थ या उत्पाद होते हैं जिनमें स्वास्थ्य संबंधी विशेष उद्देश्यों के लिए अतिरिक्त तत्व मिलाए जाते हैं जिस कारण वे कार्यात्मक खाद्यों की श्रेणी में सम्मिलित हो जाते हैं।

पौधों से मिलने वाले खाद्य पदार्थों जैसे फल, सब्जियाँ, जड़ी–बूटियाँ, अनाज, मेवे और बीन्स में विटामिन, खनिज, रेशा, ओमेगा–3 वसीय अम्ल, एंटीऑक्सीडेंट और फेनॉलिक तत्व होते हैं। ये तत्व मानव शरीर में कैंसर, हृदय रोगों और पाचन तंत्र से जुड़े विकारों जैसे दीर्घकालीन रोगों के विरुद्ध महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कुछ अन्य खाद्य पदार्थों या उत्पादों, जैसे फलों का रस, दुग्ध उत्पाद, प्रबलीकृत अंडे और समुद्री खाद्यों में भी ऐसे ही कार्यात्मक तत्व पाए जाते हैं। मछली में ओमेगा–3 वसीय अम्ल (EPA, eicosapentaenoic acid और DHA, docosahexaenoic acid) होते हैं, जो हृदय के स्वास्थ्य और मस्तिष्क के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

'कार्यात्मक पोषण' (functional nutrition) की अवधारणा नई नहीं है; क्योंकि पुराने समय में भी लोग रोगों के उपचार के लिए कुछ विशिष्ट पौधों और पोषक तत्वों का प्रयोग करते थे। वर्तमान समय में लोग अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक हो गए हैं और इस वजह से वह अपनी खान–पान की आदतों पर ध्यान दे रहे हैं तथा एक स्वस्थ जीवनशैली अपना रहे हैं। इस संदर्भ में कार्यात्मक खाद्य पदार्थों की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। इन खाद्यों में पाए जाने वाले तत्व कई गम्भीर रोगों जैसे हृदय रोग, मधुमेह, उच्च रक्तचाप, अल्सर के खतरों को कम कर देते हैं।

हालांकि, कार्यात्मक खाद्य का अर्थ यह नहीं है कि किसी खाद्य द्वारा कोई रोग का पूर्ण रूप से निदान किया जा सकता है। कार्यात्मक खाद्य स्वस्थ आहार का हिस्सा होते हैं और इन्हें उपयुक्त चिकित्सीय उपचार एवं जीवनशैली में बदलाव के साथ प्रयोग किया जाना चाहिए।

सतत् पोषण: अवधारणा एवं महत्व

जीवन और स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए, विश्व स्वास्थ्य संगठन और खाद्य एवं कृषि संगठन ने "सस्टेनेबल हेल्दी डाइट्स–गाइडिंग प्रिंसिपल्स" (सतत् एवं स्वस्थ आहार – मार्गदर्शक सिद्धांत) नाम का एक आलेख जारी किया। यह आलेख पर्यावरण के अनुकूल खाद्य प्रणालियाँ बनाने में स्वस्थ आहार की भूमिका को लागू करता है। इस आलेख के अनुसार, मार्गदर्शक सिद्धांत मुख्य रूप से इन तीन बातों पर केंद्रित हैं:

1. स्वास्थ्य से जुड़े पहलू, जिनमें जीवन की शुरुआत में स्तनपान की भूमिका और ऐसे खाद्य पदार्थों का प्रयोग शामिल है जो गैर–प्रसंस्कृत या बहुत कम प्रसंस्कृत हों और जिनमें ऐसे घटक न हों जिनसे खाद्य जनित रोग या गैर–संचारी रोग (NCDs) हो सकते हैं;

2. पर्यावरण पर प्रभाव, जिसमें वायु और रासायनिक प्रदूषण, जल और भूमि के इस्तेमाल के लिए तय लक्ष्यों बनाए रखना, तथा खाद्य उत्पादों की जैव–विविधता को बचाना शामिल है;

3. सामाजिक–सांस्कृतिक पहलू, जिसमें स्थानीय संस्कृति और खान–पान के तरीकों को ध्यान में रखते हुए जनसंख्या के सभी सदस्यों के लिए भोजन को सुलभ और किफायती बनाना शामिल है।

खाद्य उत्पादन के लिए भूमि, जल, ऊर्जा और दूसरे संसाधनों की जरूरत होती है। इसलिए, खान–पान की पसंद पर्यावरण की स्थिरता पर असर डाल सकती है। स्थानीय स्तर पर उगाए गए खाद्य, मौसमी खाद्य पदार्थ, विविध वानस्पतिक खाद्य, पारंपरिक फसलों और खाने को सुरक्षित रखने के सही तरीकों का अधिक प्रयोग करके एक सतत् खाद्य पोषण प्रणाली विकसित की जा सकती है।

उत्तराखण्ड जैसे पहाड़ी इलाकों में सतत् पोषण का विशेष महत्व है। यहाँ अक्सर खेती की जमीन कम होती है, परिवहन मुश्किल होता है, और समुदाय पर्यावरण और जलवायु में होने वाले बदलावों के प्रति संवेदनशील होते हैं। इसलिए, स्थानीय स्तर पर भोजन का उत्पादन परिवारों की खाद्य और पोषण सुरक्षा को मजबूत करने में अहम भूमिका निभा सकता है। स्थानीय फसलों को बढ़ावा देने से खेती से जुड़ी जैव–विविधता और पारंपरिक ज्ञान को बचाने में मदद मिल सकती है, साथ ही स्थानीय किसानों और ग्रामीण उद्यमियों के लिए नए अवसर भी पैदा हो सकते हैं।

उत्तराखण्ड की पारम्परिक भोजन संस्कृति

उत्तराखण्ड की भोजन संस्कृति यहाँ के पर्वतीय भूगोल, मौसम, खेती के तरीकों और सांस्कृतिक परंपराओं के साथ मिलकर विकसित हुई है। पारंपरिक खान–पान में ऐतिहासिक रूप से स्थानीय स्तर पर मिलने वाले अनाज, मोटे अनाज (मिलेट्स), दालों, सब्जियों, पत्तेदार साग, फलों, बीजों और जड़ी–बूटियों का इस्तेमाल होता रहा है।

पहाड़ी क्षेत्रों की भोजन प्रणालियों की एक विशिष्ट विशेषता स्थानीय संसाधनों का उपयुक्त प्रयोग है। फसलें ऊंचाई और मौसम के अनुसार उगाई जाती हैं, और खाद्य पदार्थों को स्थानीय तरीकों से प्रसंस्कृत तथा संरक्षित किया जाता है। पारंपरिक तौर पर खाना बनाने के तरीकों में अनाज पीसना, दालें पकाना, सब्जियों और फलों को सुखाना, किण्वन (खमीर उठाना), अचार बनाना और संरक्षण की दूसरी तकनीकें शामिल हैं। इन तरीकों से समुदायों को हर मौसम में भोजन की उपलब्धता बनाए रखने में मदद मिलती है। पारंपरिक खान–पान में स्थानीय स्तर पर मिलने वाले तरह–तरह के खाद्य पदार्थों और विशिष्ट मसाले जैसे जाम्बू, जखिया को शामिल किया जाता है। यह विविधता पोषक तत्वों की सही मात्रा और घरेलू खाद्य प्रणालियों की मजबूती में योगदान देती है। इसके अतिरिक्त उत्तराखण्ड की व्यंजन शैली दो उप–व्यंजन शैलियों, गढ़वाली और कुमाऊँनी में विभाजित है जो क्षेत्रीय विविधताओं के साथ समान ग्रामीण जड़ों को साझा करती हैं। इसलिए, उत्तराखण्ड की पारंपरिक भोजन परम्पराएं सतत् और सांस्कृतिक रूप से उचित पोषण के तरीकों को खोजने के लिए एक महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती हैं।

उत्तराखण्ड की खाद्य जैव–विविधता

अपनी भौगोलिक एवं पारिस्थितिक विविधता के कारण खाद्य जैव–विविधता की दृष्टि से उत्तराखण्ड अत्यंत समृद्ध हिमालयी क्षेत्र है। राज्य में स्थानीय समुदायों द्वारा परम्परागत रूप से विभिन्न अनाजों, मोटे अनाजों, दालों, तिलहन, सब्जियों, फलों, मसालों आदि का उपयोग किया जाता रहा है। यहाँ की पारंपरिक कृषि में अनेक फसलों को एक साथ उगाने की प्रथा ने खाद्य एवं पोषण विविधता के साथ–साथ पर्यावरणीय स्थिरता को भी बढ़ावा दिया है। Kala और Nautiyal के अध्ययन के अनुसार उत्तराखंड की भोजन संस्कृति में विभिन्न क्षेत्रों से विविध पारंपरिक व्यंजन सम्मिलित हैं। इनमें मंडुआ, झंगोरा, कौंणी, कुट्टू, भट्ट, गहत, उड़द, स्थानीय सब्जियाँ तथा अनेक जंगली खाद्य पौधे शामिल हैं। फाणू, चौंसू, गहत की दाल, काफली, राई और पीले खीरे का रायता और आलू के गुटके जैसे व्यंजन स्थानीय खाद्य संस्कृति के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं।

उत्तराखण्ड की खाद्य जैव–विविधता में जंगली खाद्य संसाधनों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। कंडाली, लिंगुड़ा, बुरांश, स्थानीय खाद्य मशरूम तथा विभिन्न जंगली फल स्थानीय आहार में विविधता प्रदान करते हैं। यहाँ के पारंपरिक खाद्य पदार्थ केवल भोजन का स्रोत नहीं हैं, बल्कि इनमें पोषण, औषधीय एवं कार्यात्मक खाद्य गुणों की भी संभावनाएँ हैं। मोटे अनाज, दालें, पत्तेदार सब्जियाँ, कंद और स्थानीय जड़ी–बूटियाँ स्थानीय समुदायों की आहार विविधता और स्वास्थ्य में अमूल्य योगदान देती हैं। इस प्रकार, उत्तराखंड की खाद्य जैव–विविधता पोषण सुरक्षा, खाद्य संप्रभुता, आजीविका और सतत् विकास का महत्वपूर्ण आधार है। हालांकि आधुनिकीकरण, बदलती खाद्य आदतों और पारंपरिक ज्ञान के कम होते हस्तांतरण के कारण अनेक स्थानीय खाद्य संसाधन और व्यंजन धीरे–धीरे कम हो रहे हैं। इसलिए इनके आलेखीकरण, संरक्षण, पुनर्जीवन और आधुनिक पोषण कार्यक्रमों में समावेशन की आवश्यकता है।

उत्तराखण्ड के प्रमुख पारंपरिक कार्यात्मक खाद्य पदार्थ

उत्तराखंड की पारंपरिक खाद्य संस्कृति स्थानीय कृषि, जैव–विविधता और पारंपरिक ज्ञान पर आधारित है। यहाँ मंडुआ, झंगोरा, कुट्टू, चौलाई, भट्ट, गहत, भंगीरा, जखिया, लिंगुड़ा, कंडाली तथा विभिन्न स्थानीय फल–सब्जियाँ पारम्परिक रूप से भोजन में प्रयुक्त होती रही हैं। इन खाद्य पदार्थों में प्रोटीन, आहारीय रेशा, खनिज, पॉलीफेनॉल, एंटीऑक्सीडेंट तथा अन्य जैव–सक्रिय यौगिक पाए जाते हैं, इसलिए इनमें कार्यात्मक खाद्य की महत्वपूर्ण संभावनाएँ हैं। उत्तराखण्ड के कुछ प्रमुख कार्यात्मक खाद्य निम्न हैं:

1. मंडुआ (Finger Millet)

मंडुआ उत्तराखंड का प्रमुख पारंपरिक मोटा अनाज है। इसमें आहारीय रेशा, कैल्शियम, लौह तत्व, पॉलीफेनॉल और अन्य जैव–सक्रिय यौगिक पाए जाते हैं। मंडुआ का सेवन उपचारात्मक दृष्टि से अत्यंत लाभकारी है। इसमें पाए जाने वाले तत्वों को एंटीऑक्सीडेंट, मधुमेह–रोधी और आंतों के स्वास्थ्य से जुड़े संभावित लाभों से जोड़ा गया है। उत्तराखण्ड में मंडुआ से रोटी, खीर और दलिया जैसे पारंपरिक व्यंजन बनाए जाते हैं।

2. झंगोरा (Barnyard Millet)

झंगोरा पहाड़ी क्षेत्रों में उगाया जाने वाला पारंपरिक मोटा अनाज है। यह आहार में ऊर्जा, प्रोटीन और अन्य महत्वपूर्ण पोषक तत्व प्रदान करता है। इससे झंगोरे का भात और झंगोरे की खीर जैसे पारंपरिक व्यंजन बनाए जाते हैं।

3. भट्ट (Black Soybean)

भट्ट, जिसे काला भट्ट या काली सोयाबीन भी कहा जाता है, विशेष रूप से कुमाऊँ क्षेत्र का महत्वपूर्ण पारंपरिक खाद्य है। यह वनस्पति प्रोटीन का एक बहुत अच्छा स्रोत है। पारम्परिक रूप से इससे भट्ट की चुड़काणी, भटवाणी, भट्ट के डुबके तथा चौंसू जैसे व्यंजन बनाए जाते हैं जो अत्यंत लोकप्रिय हैं। भट्ट आधारित खाद्य पदार्थों को उत्तराखंड के पारंपरिक कार्यात्मक खाद्य पदार्थों में प्रमुख स्थान दिया गया है।

4. गहत (Horse Gram)

गहत या कुलथी पारम्परिक रूप से उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में उपयोग की जाने वाली दाल है। यह प्रोटीन और रेशे का अच्छा स्रोत है। इससे गहत की दाल, फाणू और गहत के डुबके जैसे व्यंजन बनाए जाते हैं। पारंपरिक खाद्य अध्ययन में गहत को स्थानीय आहार की महत्वपूर्ण दालों में शामिल किया गया है।

5. चौलाई/रामदाना (Amaranth)

चौलाई एक पारंपरिक अनाज/छद्म–अनाज (Pseudocereal) है, जिसका उपयोग उत्तराखण्ड में विभिन्न खाद्य पदार्थों में किया जाता है। यह प्रोटीन, खनिज तथा जैव–सक्रिय घटकों के कारण पोषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। चौलाई को सब्जी तथा अनाज दोनों ही रूपों में प्रयोग किया जाता है।

6. कुट्टू (Buckwheat)

कुट्टू भी उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों का पारंपरिक छद्म–अनाज है जिसे मुख्यत: उपवास में खाया जाता है। इसमें आहारीय रेशा तथा पॉलीफेनॉल जैसे जैव–सक्रिय घटक पाए जाते हैं।

7. भांगजीरा/भंगीरा (Perill)

भांगजीरा या *Perilla frutescens* के बीज और पत्तियों का उपयोग चटनी तथा अन्य खाद्य पदार्थों में किया जाता है। इसमें आवश्यक वसीय अम्ल, खनिज लवण, कैरोटेनॉयड और पॉलीफेनॉल पाए जाते हैं। इसलिए यह पारंपरिक आहार में स्वाद के साथ–साथ संभावित एंटीऑक्सीडेंट और हृदय सम्बंधी लाभ भी प्रदान करता है।

8. कंडाली और लिंगुड़ा जैसे जंगली खाद्य

कंडाली तथा लिंगुड़ा जैसे स्थानीय जंगली खाद्य पौधे उत्तराखण्ड की वन्य खाद्य जैव–विविधता का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। इनमें विभिन्न सूक्ष्म पोषक तत्व और जैव–सक्रिय घटक पाए जाते हैं। इनका पारंपरिक उपयोग स्थानीय समुदायों के आहार में मौसमी विविधता और पोषण उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण रहा है।

9. पारंपरिक किण्वित खाद्य पदार्थ

उत्तराखण्ड में किण्वन की पारंपरिक तकनीक का उपयोग अनेक खाद्य पदार्थों और स्थानीय पेयों के निर्माण में किया जाता है जैसे उड़द दाल के बड़े, मूंग दाल बड़ी, त्यौहारों में बनाए जाने वाले मीठे पुए। किण्वन से स्वाद, पाचनशीलता, जीवन अवधि और कुछ पोषक/जैव–सक्रिय घटकों की उपलब्धता में सुधार होता है।

कार्यात्मक खाद्य के रूप में उत्तराखण्ड के स्थानीय फल एवं सब्जियाँ

उत्तराखण्ड की विविध भौगोलिक एवं जलवायु परिस्थितियाँ स्थानीय फलों और सब्जियों की समृद्ध विविधता को बढ़ावा देती हैं। इनमें काफल, बेडू, किलमोड़ा, हिसालू, तिमला, आंवला, जंगली बेर, माल्टा, नींबू तथा विभिन्न जंगली पत्तेदार सब्जियाँ प्रमुख हैं। इन खाद्य पदार्थों में कई जैव–सक्रिय यौगिक पाए जाते हैं जो इन्हें कार्यात्मक खाद्य के रूप में महत्वपूर्ण बनाते हैं।

1. बुरांश

बुरांश हिमालय का एक सांस्कृतिक रूप से महत्वपूर्ण पौधा है। इसके फूलों का इस्तेमाल पारंपरिक रूप से पेय पदार्थ बनाने में किया जाता है। इन फूलों में कई जैव सक्रिय यौगिक होते हैं। बुरांश से पेय पदार्थ, सिरप, कॉन्संट्रेट और अन्य मूल्य वर्धित उत्पाद निर्मित किए जा सकते हैं। सुरक्षित और मानकीकृत बुरांश उत्पादों के विकास से स्थानीय उद्यमों के लिए अवसर उत्पन्न हो सकते हैं और स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों का आर्थिक मूल्य बढ़ सकती है।

2. माल्टा

माल्टा उत्तराखण्ड का एक महत्वपूर्ण स्थानीय खट्टा फल है जो विटामिन सी तथा फाइटोकेमिकल्स का अच्छा स्रोत है। इससे जूस और अन्य उत्पाद बनाए जा सकते हैं। माल्टा का स्थानीय स्तर पर प्रसंस्करण करने से इससे अधिक उत्पादन से होने वाले नुकसान को कम करने में सहायता मिल सकती है और साथ ही किसानों के लिए अतिरिक्त आय के अवसर भी उत्पन्न हो सकते हैं।

3. खुबानी

खुबानी हिमालय के कई इलाकों में उगाई जाती है और इसमें कैरोटीनॉयड, फेनोलिक तत्व, विटामिन और अन्य पोषक तत्व होते हैं। इसे ताजा या सूखा खाया जा सकता है और इसे कई मूल्य संवर्धित उत्पादों में मिलाया जा सकता है।

4. स्थानीय पत्तेदार सब्जियाँ

उत्तराखण्ड में पारंपरिक रूप से स्थानीय स्तर पर मिलने वाली कई तरह की पत्तेदार सब्जियों और खाने योग्य जंगली पौधों का इस्तेमाल किया जाता रहा है। इनसे आहारीय रेशा, विटामिन, खनिज और फाइटोकेमिकल्स मिल सकते हैं।

उत्तराखण्ड के कार्यात्मक खाद्य पदार्थों के संभावित स्वास्थ्य लाभ

उत्तराखण्ड की पारंपरिक खाद्य प्रणाली में मंडुवा, झंगोरा, भट्ट, गहत, चौलाई, भांगजीरा, कंडाली तथा स्थानीय फल–सब्जियाँ प्रमुख हैं। इनमें पाए जाने वाले तत्वों के कई स्वास्थ्य लाभ हैं:

संभावित स्वास्थ्य लाभ	उत्तराखण्ड के खाद्य
मधुमेह में रक्त शर्करा नियंत्रण	मंडुवा, झंगोरा, भट्ट, भांगजीरा
पाचन एवं कब्ज में सहायक	झंगोरा, मंडुवा, गहत
वजन प्रबंधन	झंगोरा, मंडुवा, गहत, भट्ट
हृदय स्वास्थ्य में सहायक	भट्ट, मंडुवा, भांगजीरा, फाफर
एंटीऑक्सीडेंट एवं कोशिका सुरक्षा	भांगजीरा, चौलाई, कंडाली, भट्ट
प्रतिरक्षा प्रणाली में सुधार हेतु सहायक	कंडाली, भांगजीरा, स्थानीय हरी पत्तेदार सब्जियाँ
हड्डियों के स्वास्थ्य में सहायक	मंडुवा, भट्ट, चौलाई
लौह तत्व एवं खनिजों की पूर्ति	मंडुवा, कंडाली, चौलाई, भट्ट
प्रोटीन की पूर्ति/वृद्धि एवं विकास हेतु सहायक	गहत, भट्ट
आंतों के स्वास्थ्य के लिए संभावित लाभ	गहत, भट्ट, उड़द आधारित पारंपरिक व्यंजन

पारंपरिक खाद्य संरक्षण एवं स्थिरता

पर्वतीय समुदायों में भोजन का संरक्षण सदैव आवश्यक रहा है। सुखाना, किण्वन, अचार बनाना और दूसरे पारंपरिक तरीकों से मौसमी भोजन को बाद में इस्तेमाल के लिए संरक्षित किया जा सकता है। ऐसे पारम्परिक तरीकों से भोजन की बर्बादी कम हो सकती है और फसल कटने के मौसम के बाद भी भोजन उपलब्ध रह सकता है। इनसे सुदूर क्षेत्रों से भोजन लाने पर निर्भरता भी कम हो सकती है। भोजन को सुरक्षित रखने के पारंपरिक तरीकों में वैज्ञानिक सुधार करने से भोजन का पोषण मूल्य बनाए रखने, भोजन की सुरक्षा बढ़ाने और स्थानीय भोजन की व्यावसायिक क्षमता बढ़ाने में सहायता मिल सकती है।

कार्यात्मक खाद्य एवं सतत् कृषि

सतत् पोषण ऐसी कृषि प्रणालियों पर निर्भर करता है जो उत्पादकता और जैव–विविधता को बनाए रखते हुए प्राकृतिक संसाधनों का जिम्मेदारी से इस्तेमाल करती हैं। मडुआ, झंगोरा, चौलाई, भट्ट और गहत जैसी पारंपरिक फसलें, फसलों की विविधता बढ़ाने में योगदान दे सकती हैं। इनकी खेती से स्थानीय कृषि जैव–विविधता को बनाए रखने और खेती के पारंपरिक ज्ञान को संरक्षित करने में सहायता मिल सकती है। स्थानीय रूप से उगाए गए पारंपरिक खाद्य पदार्थों की बढ़ती मांग से किसानों के लिए नए बाजार बन सकते हैं। हालाँकि, बाजार के विकास के साथ–साथ सही दाम, टिकाऊ उत्पादन के तरीके और स्थानीय फसल विविधता का संरक्षण भी आवश्यक है।

जलवायु परिवर्तन और पोषण सुरक्षा

जलवायु परिवर्तन तापमान, बारिश, पानी की उपलब्धता, कीटों और मौसम की चरम घटनाओं में बदलाव के जरिए कृषि पर तेजी से असर डाल रहा है। पर्वतीय क्षेत्रों में कृषि के तंत्र पर ऐसे परिवर्तनों का प्रभाव अधिक हो सकता है। इस संदर्भ में, विविध फसलें उगाना और स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल फसलों का संरक्षण बहुत आवश्यक हो गया है। मोटे अनाजों और पारंपरिक दालों को जलवायु–अनुकूल कृषि रणनीतियों में शामिल किया जा सकता है, जहाँ वे खेती के लिहाज से उपयुक्त हों। स्थानीय खाद्य उत्पादन

को मजबूत करने से परिवारों की खाद्य सुरक्षा में मदद मिल सकती है और साथ ही बाहरी खाद्य आपूर्ति पर अत्यधिक निर्भरता भी कम हो सकती है।

महिला सशक्तिकरण और स्थानीय खाद्य उद्यमशीलता

उत्तराखंड की कृषि और खाद्य प्रणालियों में महिलाओं की अहम भूमिका है। वे खेती, खाना बनाने, खाद्य संरक्षण, प्रसंस्करण और पारंपरिक खाद्य ज्ञान को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। स्थानीय कार्यात्मक खाद्य उद्यम प्रसंस्करण एवं विपणन के जरिए उन्हें आय के अवसर दे सकते हैं। स्थानीय अनाज, दालों, फलों, मसालों और पारंपरिक खाद्य पदार्थों पर आधारित उत्पाद विकसित करने के लिए स्वयं–सहायता समूहों और सामुदायिक संगठनों की सहायता की जा सकती है। ऐसी पहल महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण, पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण और स्थानीय खाद्य प्रणालियों के विकास को बढ़ावा दे सकती हैं।

उत्तराखंड के कार्यात्मक खाद्य पदार्थों को बढ़ावा देने में चुनौतियां

- **खान–पान की आदतों में बदलाव:** शहरीकरण और बदलती जीवनशैली के कारण पारंपरिक खाद्य पदार्थों का उपभोग कम हुआ है, खासकर युवा पीढ़ी के बीच।
- **प्रसंस्करण हेतु सीमित आधारभूत संरचना:** छोटे स्तर के उत्पादकों के पास आधुनिक प्रसंस्करण, पैकेजिंग, भण्डारण और गुणवत्ता– नियंत्रण सुविधाओं तक पहुंच की कमी हो सकती है।
- **बाजार तक पहुंच:** स्थानीय उत्पादकों को बड़े बाजारों तक पहुंचने और सही मूल्य पाने में कठिनाईयों का सामना करना पड़ सकता है।
- **वैज्ञानिक पुष्टि:** कई पारंपरिक खाद्य पदार्थों के साथ स्वास्थ्य संबंधी दावे जुड़े होते हैं, जिनकी व्यवस्थित वैज्ञानिक पुष्टि की आवश्यकता होती है।
- **मानकीकरण:** कच्चे माल, प्रसंस्करण विधियों, व्यंजनों और भंडारण की स्थितियों में भिन्नता उत्पादों के पोषण संबंधी और कार्यात्मक गुणों को प्रभावित कर सकती है।
- **खाद्य सुरक्षा:** पारंपरिक खाद्य पदार्थों को व्यावसायिक रूप से उपलब्ध कराने से पहले स्वच्छता, संदूषण नियंत्रण, प्रसंस्करण, भंडारण और लेबलिंग के लिए उपयुक्त मानकों को पूरा करना आवश्यक है।
- **उपभोक्ता जागरूकता:** उपभोक्ताओं को पारंपरिक खाद्य पदार्थों के पोषण मूल्य और उन्हें निर्मित करने की विधि के विषय में सीमित जानकारी हो सकती है।

उत्तराखण्ड में सतत् पोषण को बढ़ावा देने की रणनीतियाँ

उत्तराखण्ड में सतत् पोषण सुनिश्चित करने के लिए स्थानीय खाद्य संसाधनों, पारंपरिक कृषि प्रणालियों और समुदाय की भागीदारी को बढ़ावा देना आवश्यक है। प्रमुख रणनीतियाँ निम्न हैं:

- **स्थानीय खाद्य पदार्थों का उपयोग:** मंडुवा, झंगोरा, गहत, भट्ट, चौलाई, फाफर तथा स्थानीय फल–सब्जियों को दैनिक आहार में सम्मिलित किया जाए।
- **पारंपरिक फसलों का संरक्षण:** स्थानीय बीजों और पारंपरिक फसलों की खेती को प्रोत्साहित कर कृषि–जैव विविधता को बनाए रखा जाए।

- **पारंपरिक बहुफसली कृषि प्रणाली को बढ़ावा:** पारंपरिक बहुफसली कृषि प्रणाली से पोषण विविधता, मिट्टी की उर्वरता और खाद्य सुरक्षा को संरक्षित किया जा सकता है।
- **मूल्य संवर्धन:** स्थानीय अनाज और दालों से आटा, त्वरित उत्पाद, नाश्ते हेतु खाद्य और अन्य पौष्टिक खाद्य पदार्थ विकसित किए जाएँ।
- **किसानों की आय बढ़ाना:** Farmer Producer Organisations (FPOs), स्वयं सहायता समूहों और स्थानीय बाजारों के माध्यम से किसानों को बेहतर बाजार एवं उचित मूल्य उपलब्ध कराया जाए।
- **पोषण शिक्षा:** विद्यालयों, आंगनवाड़ी केंद्रों और समुदायों में स्थानीय खाद्य पदार्थों के पोषण महत्व के विषय में जागरूकता बढ़ाई जाए।
- **पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण:** स्थानीय महिलाओं और बुजुर्गों के पारंपरिक खाद्य ज्ञान एवं व्यंजनों का दस्तावेजीकरण किया जाए।
- **जलवायु–अनुकूल कृषि:** कम पानी में उगने वाली स्थानीय फसलों और मिलेट्स को बढ़ावा देकर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटा जा सकता है।

निष्कर्ष

उत्तराखण्ड की पारंपरिक खाद्य प्रणाली पोषण, स्वास्थ्य, जैव–विविधता, संस्कृति, कृषि और स्थिरता का एक महत्वपूर्ण संगम है। मंडुआ, झंगोरा, रामदाना / चौलाई, भट्ट, गहत, राजमा, स्थानीय फल, पत्तेदार सब्जियां, बीज और किण्वित खाद्य पदार्थ जैसे पारंपरिक भोजन कई तरह के पोषक तत्व और लाभकारी जैव–सक्रिय तत्व प्रदान करते हैं। इनका महत्व केवल पोषण तक ही सीमित नहीं है। ये खाद्य पदार्थ पारंपरिक खेती के तरीकों, स्थानीय जैव–विविधता, सांस्कृतिक विरासत, घरेलू खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण आजीविका से जुड़े हैं। इनकी सतत् कृषि और सेवन से पारंपरिक फसलों की विविधता और स्थानीय खाद्य ज्ञान को संरक्षित करने में सहायता मिल सकती है।

जीवनशैली से जुड़े रोगों और जलवायु सम्बंधित चुनौतियों के बढ़ने के बीच, यदि पारंपरिक खाद्य पदार्थों को संतुलित आहार में शामिल किया जाए, तो वे अधिक स्वस्थ और सशक्त खाद्य प्रणालियों के निर्माण में सहायक हो सकते हैं। हालाँकि, इनकी क्षमता को वैज्ञानिक शोध, खाद्य सुरक्षा के उचित उपायों, बेहतर प्रसंस्करण तकनीकों, उपभोक्ताओं की जागरुकता और प्रभावी बाजार व्यवस्थाओं का समर्थन मिलना चाहिए। मूल्य संवर्धन के जरिए पारंपरिक खाद्य पदार्थों को आधुनिक उत्पादों में बदला जा सकता है, साथ ही उनकी सांस्कृतिक पहचान भी बनी रह सकती है। इस बदलाव में महिलाओं के नेतृत्व वाले उद्यम, किसान संगठन, स्थानीय संस्थाएँ, पर्यटन से जुड़ी पहल और शोध संगठन महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

इस प्रकार उत्तराखण्ड के पारंपरिक खाद्य पदार्थ स्वास्थ्यवर्धक, सांस्कृतिक रूप से उपयुक्त, पर्यावरण के प्रति अनुकूल और आर्थिक रूप से टिकाऊ खाद्य प्रणालियों के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण आधार बन सकते हैं। पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक पोषण विज्ञान से जोड़ना इस क्षेत्र की खाद्य विरासत को कार्यात्मक खाद्य पदार्थों और सतत् पोषण के भविष्य के लिए एक मूल्यवान संसाधन के रूप में स्थापित करने में सहायक हो सकता है।

शोध–पत्र संदर्भ

1. Agarwal, R., & Chandra, V. (2019). *Diversity of wild edible plants in the Mandal-Chopta forest, Uttarakhand.* Journal of Medicinal Plants Studies, 7(1), 89–92.
2. Bhatt, I.D.; Rawat, S.; Badhani, A. and Rawal, R.S. (2017). Nutraceutical potential of selected wild edible fruits of the Indian Himalayan region. *Food Chemistry*. 215. DOI: 10.1016/j.foodchem.2016.07.143.
3. Dwivedi, S., Singh, V., Mahra, K., Sharma, K., Baunthiyal, M., & Shin, J.-H. (2024). *Functional foods in the northwestern Himalayan Region of India and their significance: a healthy dietary tradition of Uttarakhand and Himachal Pradesh. Journal of Ethnic Foods*, 11, 20. DOI: 10.1186/s42779-024-00236-4.
4. Fekete, M.; Lehoczki, A.; Kryczyk-Poprawa, A.; Zábó, V.; Varga, J.T.; Bálint, M.; Fazekas-Pongor, V.; Csípo″, T.; Rza¸sa-Duran, E. and Varga, P. (2025). Functional Foods in Modern Nutrition Science: Mechanisms, Evidence, and Public Health Implications. *Nutrients.* 17, 2153. Pp. 1-35. DOI: 10.3390/nu17132153.
5. Galland, L. (2013). Functional Foods: Health Effects and Clinical Applications. Editor(s): Benjamin Caballero. *Encyclopedia of Human Nutrition (Third Edition)*, Academic Press, Pages 366-371. ISBN 9780123848857. DOI: 10.1016/B978-0-12-375083-9.00130-6.
6. Gibas-Dorna M, Zukiewicz-Sobczak W. (2024) Sustainable Nutrition and Human Health as Part of Sustainable Development. *Nutrients.* 10;16(2):225. DOI: 10.3390/nu16020225.
7. Gururani, K.; Sood, S.; Kumar, A.; Joshi, D.C.; Pandey, D. and Sharma, A.R. (2021). Mainstreaming Barahnaja cultivation for food and nutritional security in the Himalayan region. *Biodivers Conserv.* 30(3):551-574. doi: 10.1007/s10531-021-02123-9.
8. Juyal, B. & Priyadarshi. (2022). Traditional Food and Beverage of Kumaon region in central Himalaya, Uttarakhand, India. 9. 462-468.
9. Kala, C.P. & Nautiyal, S. (2023). Traditional food knowledge of local people and its sustainability in mountains of Uttarakhand State of India. *Journal of Social and Economic Development*, 25, 32–51. DOI: 10.1007/s40847-022-00222-z.
10. Pant, M., & Srivastava, S. K. (2010). Marketing Constraints Faced by Producer-sellers of Traditional Crop Products: A Study in Kumaon Hills of Uttarakhand. *Agricultural Economics Research Review*, 23, 572.
11. Peker, H. & Günal, A.M. (2023). Sustainable nutrition. Sustainable Social Development; 1(2): 2218. DOI: 10.54517/ssd.v1i2.2218
12. Shukla, A., Kansal, P., Dubey, S., Shukla, R. K., & Parmar, M. P. S. (2025). *Wild edible Ficus fruits of Uttarakhand, India: A natural remedy towards malnutrition and human health enrichment. Natural Product Research*, 39(17), 4938–4946. DOI: 10.1080/14786419.2024.2352877.
13. Singh, B., Rai, K. M., Bhatt, K. C., et al. (2022). *Ethnobotanical notes on some potential wild edible fruits used by the Bhotia community of Niti Valley, Uttarakhand, India. Indian Journal of Traditional Knowledge*, 21(1), 135–144.

14. Singh, C., Rani, A., Aswal, N., Rawat, V., Kanwal, A., Sharma, I., & Singh, R. (2025). *Traditional Food of Uttarakhand and Its Functional Importance: An Overview. Bulletin of Pure and Applied Sciences–Botany*, 44(2), 105–111.
15. Singh, R., & Bisht, I. S. (2019). Wild Plant Food Resources as Component of Dietary Diversity, Nutrition and Livelihood Security of Native Farming Communities of Uttarakhand Hills in North-western India: Some Policy Considerations for Promoting Their Sustainable Use. *American Journal of Food and Nutrition*, 7(4), 142–157. DOI: 10.12691/ajfn-7-4-5.
16. Verma, B. & Arya, S. (2024). *Phytochemical analysis and therapeutic applications of some wild edible fruits growing in Uttarakhand Himalayas. European Journal of Chemistry*, 15(2), 110–119.

रजोनिवृत्ति एवं स्वस्थ वृद्धावस्था

Mrs. Monika Dwivedi
Asstt. Professor (AC)
Uttarakhand Open University, Haldwani-263139
e-mail: mdwivedi@uou.ac.in

परिचय

महिलाओं के जीवन में रजोनिवृत्ति अथवा Menopause एक ऐसा प्राकृतिक चरण है जो मानसिक, शारीरिक, सामाजिक और भावनात्मक स्तर पर बहुत बड़ा परिवर्तन लेकर आता है। यह कोई बीमारी नहीं है, अपितु जीवन का एक सामान्य चरण है। वर्तमान समय में रजोनिवृत्ति, महिलाओं के स्वास्थ्य का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण विषय बन गया है, क्योंकि इस चरण में प्रवेश करते ही महिलाओं में कई प्रकार के रोगों का खतरा बढ़ जाता है। भारत में अधिकाँश महिलाएं अपने जीवन के लगभग 30–35 वर्ष रजोनिवृत्ति के बाद व्यतीत करती हैं। यही कारण है कि रजोनिवृत्ति के पश्चात महिलाओं के लिए स्वास्थ्य एवं पोषण प्रबंधन तथा स्वस्थ वृद्धावस्था सुनिश्चित करना सार्वजनिक स्वास्थ्य की प्रमुख प्राथमिकता बन गया है। ग्रामीण क्षेत्रों की कई महिलाएँ रजोनिवृत्ति को प्राकृतिक प्रक्रिया समझकर इसके लक्षणों को अनदेखा करती हैं। सामाजिक संकोच, स्वास्थ्य सेवाओं तक सीमित पहुँच तथा कभी कभी जानकारी के अभाव के कारण भी अनेक समस्याओं का समय पर निदान एवं उपचार संभव नहीं हो पाता। अत: स्वास्थ्य एवं पोषण शिक्षा से सम्बंधित जागरूकता कार्यक्रम इन स्थानों पर अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

रजोनिवृत्ति समस्त महिलाओं के जीवन की एक स्वाभाविक जैविक परिवर्तन की अवस्था है, जो प्रजनन से अप्रजनन स्थिति की ओर परिवर्तन का संकेत देता है। यह कोई बीमारी नहीं है, बल्कि महिलाओं के जीवन में होने वाली एक प्राकृतिक अवस्था है, जिसमें अंडाशयों की कार्य करने की क्षमता धीरे–धीरे कम होने लगती है और एस्ट्रोजन तथा प्रोजेस्टेरोन जैसे प्रमुख प्रजनन हार्मोनों का शरीर में स्तर घट जाता है। जिसके परिणामस्वरूप मासिक धर्म स्थायी रूप से बंद हो जाता है तथा महिला की प्रजनन क्षमता समाप्त हो जाती है। नैदानिक रूप से रजोनिवृत्ति को "किसी महिला में लगातार 12 महीनों तक मासिक धर्म का न होना तथा इसकी वजह गर्भावस्था या कोई अन्य रोग न होना" के रूप में जान जाता है। भारत में रजोनिवृत्ति की औसत आयु लगभग 46–48 वर्ष मानी जाती है, जो अनेक विकसित देशों की तुलना में कुछ कम है। भारतीय महिलाओं में स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएं जैसे कुपोषण, रक्ताल्पता (एनीमिया), विटामिन डी एवं कैल्शियम की कमी आदि तथा कुछ विषम परिस्थितियाँ जैसे सीमित स्वास्थ्य जागरूकता, सामाजिक–आर्थिक विषमताएँ तथा स्वास्थ्य सेवाओं तक असमान पहुँच आदि रजोनिवृत्ति तथा इसके प्रभावों को और अधिक मुश्किल बना देती हैं। विशेष रूप से पर्वतीय क्षेत्रों एवं गाँवों में रहने वाली महिलाएँ रजोनिवृत्ति के लक्षणों को बढ़ती उम्र के सामान्य लक्षण मानकर उनकी उपेक्षा करती हैं, जिससे उन्हें आने वाले समय में बहुत सारी स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करना पड़ता है। रजोनिवृत्ति के दौरान होने वाले परिवर्तन केवल शारीरिक ही नहीं होते अपितु मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक भी होते हैं। हार्मोनल असंतुलन के कारण चिड़चिड़ापन, चिंता, अवसाद, नींद में कमी, स्मरण शक्ति में परिवर्तन तथा आत्मविश्वास में कमी जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इसलिए रजोनिवृत्ति का प्रबंधन केवल चिकित्सीय उपचार तक सीमित न होकर मनोसामाजिक सहयोग, स्वास्थ्य शिक्षा तथा सामुदायिक समर्थन पर भी आधारित होना चाहिए।

स्वस्थ वृद्धावस्था का अर्थ केवल लंबा जीवन जीना नहीं है, अपितु ऐसी कार्यात्मक क्षमता बनाए रखना है जिससे व्यक्ति बढ़ती आयु में भी स्वतंत्र, सक्रिय, उत्पादक एवं सम्मानजनक जीवन जी सके। रजोनिवृत्ति के समय यदि महिलाओं को संतुलित आहार, पर्याप्त पोषक तत्व, नियमित व्यायाम, योग, मानसिक स्वास्थ्य परामर्श

तथा समय–समय पर स्वास्थ्य परीक्षण उपलब्ध कराए जाएँ, तो न केवल रजोनिवृत्ति के लक्षणों को प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है, बल्कि उक्त महिला लंबे समय तक स्वस्थ एवं सक्रिय जीवन भी व्यतीत कर सकती है।

वैश्विक स्तर पर वृद्ध होती जनसंख्या के कारण महिलाओं के स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। World Health Organization इस बात पर बल देता है कि प्रत्येक व्यक्ति, विशेषकर वृद्ध महिलाओं, को ऐसा वातावरण उपलब्ध कराया जाए जिससे वे अपनी कार्यात्मक क्षमता बनाए रखते हुए गरिमापूर्ण जीवन जी सकें। यह पहल रजोनिवृत्ति के बाद महिलाओं के स्वास्थ्य संवर्धन, रोग–निवारण, पोषण सुरक्षा तथा सामाजिक सहभागिता को बढ़ावा देने के लिए भी महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती है। भारत में भी राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों एवं महिला स्वास्थ्य नीतियों के माध्यम से मध्यम आयु एवं वृद्ध महिलाओं के स्वास्थ्य पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। इसके बावजूद रजोनिवृत्ति संबंधी जागरूकता, नियमित स्वास्थ्य परीक्षण, पोषण परामर्श तथा मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं में अभी भी पर्याप्त सुधार की आवश्यकता है। विशेषकर उत्तराखण्ड जैसे पर्वतीय राज्यों में भौगोलिक परिस्थितियाँ, सीमित स्वास्थ्य सुविधाएँ तथा सामाजिक–आर्थिक चुनौतियाँ महिलाओं के रजोनिवृत्ति अनुभव को प्रभावित करती हैं। इसलिए स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप स्वास्थ्य शिक्षा एवं पोषण हस्तक्षेप कार्यक्रम विकसित करना अत्यंत आवश्यक है।

रजोनिवृत्ति की अवधारणा

रजोनिवृत्ति महिलाओं के जीवन का एक स्वाभाविक एवं अपरिहार्य जैविक चरण है, जो प्रजनन अवस्था से उत्तर–प्रजनन अवस्था की ओर संक्रमण का प्रतीक है। यह एक प्राकृतिक शारीरिक प्रक्रिया है, जिसमें अंडाशयों की कार्यक्षमता क्रमशः कम हो जाती है और अंततः डिम्बोत्सर्जन स्थायी रूप से बंद हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप एस्ट्रोजन तथा प्रोजेस्टेरोन जैसे प्रमुख प्रजनन हार्मोनों का स्राव घट जाता है, जिससे मासिक धर्म स्थायी रूप से बंद हो जाता है और महिला की प्रजनन क्षमता समाप्त हो जाती है। चिकित्सकीय दृष्टि से रजोनिवृत्ति का निर्धारण तब किया जाता है जब किसी महिला में लगातार 12 महीनों तक मासिक धर्म न आए और इसका कारण गर्भावस्था, स्तनपान, हार्मोनल उपचार या कोई अन्य चिकित्सीय स्थिति न हो। यह परिभाषा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापक रूप से स्वीकार की जाती है और नैदानिक अभ्यास में मानक के रूप में प्रयुक्त होती है।

रजोनिवृत्ति एक क्रमिक जैविक प्रक्रिया है, जो अचानक नहीं होती। इसके पूर्व कई वर्षों तक हार्मोनल उतार–चढ़ाव चलता रहता है, जिसे रजोनिवृत्ति– पूर्व अवस्था अथवा पैरी मेनोपॉज (Peri-Menopause) कहा जाता है। इस अवधि में मासिक धर्म अनियमित हो सकता है तथा हॉट फ्लश, रात में पसीना, अनिद्रा, मनोदशा में परिवर्तन और थकान जैसे लक्षण दिखाई देने लगते हैं। रजोनिवृत्ति के पश्चात की अवस्था को रजोनिवृत्ति - पश्चात अवस्था अथवा पोस्ट मेनोपॉज (Post-Menopause) कहा जाता है, जिसमें एस्ट्रोजन का स्तर लंबे समय तक निम्न बना रहता है और महिलाओं में ऑस्टियोपोरोसिस, हृदय एवं रक्तवाहिका रोग तथा चयापचयी विकारों का जोखिम बढ़ सकता है। रजोनिवृत्ति की आयु विभिन्न देशों, समुदायों तथा व्यक्तियों में भिन्न हो सकती है। सामान्यतः यह 45 से 55 वर्ष की आयु के बीच होती है। भारत में अधिकांश अध्ययनों के अनुसार रजोनिवृत्ति की औसत आयु लगभग 46–48 वर्ष है।

रजोनिवृत्ति केवल प्रजनन क्षमता की समाप्ति नहीं है यह महिला के जीवन में एक ऐसे संक्रमणकाल के रूप में है, जो शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक स्वास्थ्य के अनेक आयामों को प्रभावित करता है। एस्ट्रोजन की कमी के कारण हड्डियों का घनत्व कम होना, मांसपेशियों की शक्ति में कमी, शरीर में वसा के वितरण में परिवर्तन, त्वचा की लोच में कमी तथा हृदय रोगों का जोखिम बढ़ना जैसी दीर्घकालिक समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इसके साथ ही कई महिलाओं में चिंता, अवसाद, चिड़चिड़ापन, स्मरण शक्ति में कमी तथा नींद संबंधी विकार भी देखे जाते हैं, जो उनके जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं।

भारतीय संदर्भ में रजोनिवृत्ति की अवधारणा का महत्व और अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि अनेक महिलाएँ इस विषय में पर्याप्त जानकारी के अभाव, सामाजिक संकोच तथा स्वास्थ्य सेवाओं तक सीमित पहुँच के कारण आवश्यक देखभाल प्राप्त नहीं कर पाती हैं। विशेष रूप से ग्रामीण एवं पर्वतीय क्षेत्रों में रजोनिवृत्ति संबंधी जागरूकता कार्यक्रम, पोषण शिक्षा और नियमित स्वास्थ्य परीक्षण की आवश्यकता अधिक है। अतः रजोनिवृत्ति को केवल जैविक घटना न मानकर महिला स्वास्थ्य, पोषण, मानसिक कल्याण और स्वस्थ वृद्धावस्था के समग्र परिप्रेक्ष्य में समझना और उसका प्रबंधन करना समय की आवश्यकता है।

रजोनिवृत्ति के प्रमुख चरण

चरण	प्रमुख विशेषताएँ
रजोनिवृत्ति– पूर्व अवस्था ((Pre menopause)	नियमित मासिक धर्म, सामान्य प्रजनन क्षमता एवं सामान्य हार्मोन स्तर।
रजोनिवृत्ति संक्रमणकाल (Perimenopause)	मासिक धर्म अनियमित होना, हार्मोनल उतार–चढ़ाव तथा प्रारंभिक रजोनिवृत्ति लक्षणों का प्रकट होना।
रजोनिवृत्ति (Menopause)	लगातार 12 महीनों तक मासिक धर्म का स्थायी रूप से बंद होना।
रजोनिवृत्ति - पश्चात अवस्था (Post menopause)	रजोनिवृत्ति के बाद का चरण, जिसमें हार्मोन स्तर स्थायी रूप से कम रहता है तथा दीर्घकालिक स्वास्थ्य जोखिमों की संभावना बढ़ जाती है।

रजोनिवृत्ति के लक्षण, निदान एवं स्वास्थ्य पर प्रभाव

- **लक्षण**

रजोनिवृत्ति के लक्षण प्रत्येक महिला में अलग–अलग हो सकते हैं। कुछ महिलाओं में लक्षण बहुत हल्के होते हैं, जबकि कुछ में वे दैनिक जीवन और कार्यक्षमता को प्रभावित कर सकते हैं। कुछ प्रमुख लक्षण निम्नवत हैंरू

मासिक धर्म से संबंधित परिवर्तन

मासिक धर्म की अनियमितता, मासिक धर्म के बीच का अंतर बढ़ना या कम होना, रक्तस्राव की मात्रा में परिवर्तन, धीरे–धीरे मासिक धर्म का पूर्णतः बंद हो जाना आदि।

शारीरिक लक्षण

अचानक गर्मी लगना (Hot flashes), रात में अत्यधिक पसीना आना, नींद में कठिनाई, थकान और कमजोरी, सिरदर्द हृदय की धड़कन तेज महसूस होना, वजन बढ़ना, विशेषकर पेट के आसपास वसा का जमा होना, त्वचा का रूखापन, मांसपेशियों और जोड़ों में दर्द आदि।

जनन–मूत्र संबंधी लक्षण

एस्ट्रोजन की कमी के कारण योनि एवं मूत्रमार्ग में परिवर्तन हो सकते हैं, जैसे: योनि में सूखापन, जलन या खुजली, संभोग के दौरान असुविधा, बार–बार पेशाब आना, मूत्र संक्रमण की प्रवृत्ति बढ़ना

मानसिक एवं भावनात्मक लक्षण

चिड़चिड़ापन, चिंता और बेचैनी, मनोदशा में उतार–चढ़ाव, उदासी, एकाग्रता में कमी, स्मरण शक्ति में कमी महसूस होना, आत्मविश्वास में कमी आदि।

➢ निदान

निदान के दौरान निम्न पहलुओं का मूल्यांकन किया जा सकता हैरू

- महिला की आयु।
- मासिक धर्म के इतिहास में हुए परिवर्तन।
- अंतिम मासिक धर्म की तिथि।
- गर्मी लगना, रात में पसीना, नींद और मूड संबंधी लक्षण।
- दवाओं तथा अन्य स्वास्थ्य समस्याओं का इतिहास।
- आवश्यकता पड़ने पर शारीरिक परीक्षण।

कुछ विशेष परिस्थितियों में चिकित्सक FSH (Follicle&Stimulating Hormone) तथा अन्य हार्मोन संबंधी परीक्षणों की सलाह दे सकते हैं। कम उम्र में मासिक धर्म बंद होने, लक्षणों के असामान्य होने अथवा अन्य रोगों की संभावना होने पर अतिरिक्त जाँच आवश्यक हो सकती है।

➢ स्वास्थ्य पर प्रभाव

रजोनिवृत्ति महिलाओं के जीवन का एक महत्वपूर्ण जैविक संक्रमणकाल है, जिसमें हार्मोनल परिवर्तनों के कारण अनेक शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक तथा सामाजिक परिवर्तन उत्पन्न होते हैं। यद्यपि यह एक प्राकृतिक प्रक्रिया है, फिर भी इसके लक्षणों की तीव्रता प्रत्येक महिला में भिन्न–भिन्न हो सकती है। कुछ महिलाओं में लक्षण अत्यंत हल्के होते हैं, जबकि कुछ में वे दैनिक जीवन, कार्यक्षमता तथा जीवन की गुणवत्ता को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं। रजोनिवृत्ति के दौरान एस्ट्रोजन की कमी शरीर के विभिन्न अंग–प्रणालियों पर प्रभाव डालती है, जिसके परिणामस्वरूप अल्पकालिक तथा दीर्घकालिक स्वास्थ्य समस्याएँ विकसित हो सकती हैं। इसलिए समय पर लक्षणों की पहचान, उचित निदान तथा प्रभावी प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है। रजोनिवृत्ति के दौरान होने वाले हार्मोनल परिवर्तन शरीर की अनेक जैविक प्रणालियों को प्रभावित करते हैं। एस्ट्रोजन के स्तर में कमी से हड्डियों का घनत्व घटने लगता है, हृदय एवं रक्तवाहिका रोगों का जोखिम बढ़ सकता है, शरीर की चयापचय क्रियाओं में परिवर्तन आता है तथा मांसपेशियों की शक्ति और त्वचा की लोच में भी कमी देखी जा सकती है। इसके अतिरिक्त अनेक महिलाओं में अचानक गर्मी लगना, अत्यधिक पसीना, अनिद्रा, थकान, जोड़ों में दर्द तथा वजन में परिवर्तन जैसे लक्षण भी दिखाई देते हैं। इन शारीरिक परिवर्तनों के साथ–साथ चिंता, चिड़चिड़ापन, अवसाद, स्मरण शक्ति में कमी तथा भावनात्मक अस्थिरता जैसी मनोवैज्ञानिक समस्याएँ भी उत्पन्न हो सकती हैं, जो उनके व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक जीवन को प्रभावित करती हैं।

रजोनिवृत्ति के दौरान पोषण, जीवनशैली एवं व्यायाम

राजनोनिवृत्ति की अवधि में संतुलित आहार, नियमित व्यायाम और स्वस्थ जीवनशैली अपनाने से लक्षणों को नियंत्रित करने तथा दीर्घकालीन स्वास्थ्य को बनाए रखने में सहायता मिलती है।

➢ रजोनिवृत्ति के दौरान पोषण

रजोनिवृत्ति के दौरान पोषण का मुख्य उद्देश्य हड्डियों, मांसपेशियों, हृदय, चयापचय और मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखना है। इस अवस्था में केवल भोजन की मात्रा ही नहीं, बल्कि भोजन की गुणवत्ता पर भी विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

(क) कैल्शियम

रजोनिवृत्ति के बाद एस्ट्रोजन में कमी के कारण हड्डियों के घनत्व में कमी आने का खतरा बढ़ सकता है। इसलिए कैल्शियम युक्त खाद्य पदार्थों का नियमित सेवन महत्वपूर्ण है। कैल्शियम के प्रमुख स्त्रोत जैसे: दूध एवं दही, पनीर, रागी, तिल, सोयाबीन एवं सोया उत्पाद, हरी पत्तेदार सब्जियाँ आदि के सेवन से उक्त खतरे को कम किया जा सकता है।

(ख) विटामिन D

विटामिन D शरीर में कैल्शियम के अवशोषण और हड्डियों के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। सूर्य के प्रकाश के संपर्क के साथ–साथ आहार और आवश्यकता पड़ने पर चिकित्सकीय सलाह के अनुसार पूरक आहार का उपयोग किया जा सकता है।

(ग) प्रोटीन

उम्र बढ़ने के साथ मांसपेशियों के द्रव्यमान और शक्ति में कमी हो सकती है। पर्याप्त प्रोटीन मांसपेशियों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रोटीन के प्रमुख स्त्रोत जैसेरू दालें, राजमा एवं छोले, सोयाबीन, दूध एवं दही, पनीर, अंडा, मछली एवं अन्य पशु–आधारित प्रोटीन स्रोत का नियमित सेवन शरीर में प्रोटीन की कमी नहीं आने देता।

(घ) आयरन

मासिक धर्म बंद होने के बाद आयरन की आवश्यकता सामान्यतः मासिक रक्तस्राव वाली अवस्था की तुलना में कम हो जाती है। फिर भी संतुलित आहार में आयरन युक्त खाद्य पदार्थों को शामिल करना आवश्यक है।

स्रोत: हरी पत्तेदार सब्जियाँ, दालें, चना, राजमा, तिल, मेवे और आवश्यकता के अनुसार पशु–आधारित स्रोत।

(ङ) फाइबर

फाइबर युक्त भोजन कब्ज को कम करने, पाचन स्वास्थ्य को बनाए रखने तथा स्वस्थ वजन प्रबंधन में सहायता करता है। **स्रोत:** साबुत अनाज, जई, दलिया, दालें, फल, सब्जियाँ, बीज और मेवे।

(च) स्वस्थ वसा

असंतृप्त वसा को प्राथमिकता देना चाहिए। मूंगफली, अखरोट, अलसी, तिल तथा वनस्पति तेलों का संतुलित मात्रा में उपयोग किया जा सकता है। अत्यधिक संतृप्त और ट्रांस वसा वाले खाद्य पदार्थों का सेवन सीमित करना उचित है।

(छ) फल एवं सब्जियाँ

प्रतिदिन विभिन्न रंगों के फल और सब्जियों को भोजन में शामिल करना चाहिए। इनमें विटामिन, खनिज, फाइबर और अन्य जैव सक्रिय घटक पाए जाते हैं जो समग्र स्वास्थ्य के लिए उपयोगी हैं।

रजोनिवृत्ति के दौरान निम्न खाद्य पदार्थों का सेवन कम करना लाभकारी हो सकता है, जैसे: अत्यधिक नमक, अधिक चीनी वाले खाद्य एवं पेय, अत्यधिक तले हुए खाद्य पदार्थ, अत्यधिक प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ, ट्रांस वसा युक्त खाद्य पदार्थ, अत्यधिक कैफीन, यदि इससे गर्मी लगना या नींद की समस्या बढ़ती हो, शराब का सेवन

- **स्वस्थ जीवनशैली**

रजोनिवृत्ति के दौरान केवल आहार में परिवर्तन पर्याप्त नहीं है। समग्र जीवनशैली में सकारात्मक परिवर्तन आवश्यक हैं।

(क) स्वस्थ वजन बनाए रखना

अत्यधिक वजन या पेट के आसपास अतिरिक्त वसा से मधुमेह, उच्च रक्तचाप और हृदय संबंधी समस्याओं का जोखिम बढ़ सकता है। संतुलित भोजन और नियमित शारीरिक गतिविधि स्वस्थ वजन बनाए रखने में सहायक हैं।

(ख) पर्याप्त नींद

रात में पसीना, गर्मी लगना और चिंता के कारण नींद प्रभावित हो सकती है। नियमित सोने–जागने का समय, आरामदायक वातावरण और सोने से पहले स्क्रीन का सीमित उपयोग नींद की गुणवत्ता में सहायता कर सकता है।

(ग) तनाव प्रबंधन

तनाव को कम करने के लिए योग, ध्यान, प्राणायाम, गहरी श्वास, संगीत, रुचि की गतिविधियाँ तथा सामाजिक सहभागिता उपयोगी हो सकती हैं।

(घ) धूम्रपान और तंबाकू से बचाव

तंबाकू हृदय एवं अस्थि स्वास्थ्य सहित समग्र स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। इसलिए इसका सेवन नहीं करना चाहिए।

(ङ) नियमित स्वास्थ्य परीक्षण

उम्र और व्यक्तिगत जोखिम के अनुसार रक्तचाप, रक्त शर्करा, रक्त लिपिड, वजन तथा हड्डियों के स्वास्थ्य की चिकित्सकीय निगरानी आवश्यक हो सकती है।

➢ रजोनिवृत्ति के दौरान व्यायाम

नियमित व्यायाम रजोनिवृत्ति के दौरान स्वस्थ जीवनशैली का महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह मांसपेशियों की शक्ति, हड्डियों के स्वास्थ्य, संतुलन, हृदय स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने में मदद करता है। तेज चाल से चलना, साइकिल चलाना, तैराकी और नृत्य जैसी गतिविधियाँ हृदय एवं फेफड़ों की कार्यक्षमता बढ़ाने में सहायक होती हैं। भार के साथ किए जाने वाले व्यायाम मांसपेशियों की शक्ति बनाए रखने और हड्डियों को मजबूत रखने में सहायक होते हैं। चलना, सीढ़ियाँ चढ़ना और कुछ प्रकार के प्रतिरोधक व्यायाम हड्डियों के स्वास्थ्य के लिए उपयोगी हो सकते हैं। योग और स्ट्रेचिंग से लचीलापन, शरीर का संतुलन तथा मानसिक शांति बनाए रखने में सहायता मिल सकती है। प्राणायाम और ध्यान तनाव तथा मानसिक बेचैनी को कम करने में भी सहायक हो सकते हैं।

रजोनिवृत्ति के दौरान एक सरल दैनिक दिनचर्या

समय	गतिविधि
सुबह	हल्की स्ट्रेचिंग/योग एवं कुछ समय पैदल चलना
नाश्ता	प्रोटीन एवं फाइबर युक्त संतुलित भोजन
दिन में	पर्याप्त पानी एवं पौष्टिक भोजन
शाम	तेज चाल से चलना या अन्य एरोबिक गतिविधि
सप्ताह में 2–3 दिन	शक्ति–वर्धक व्यायाम
रात	हल्का भोजन, विश्राम एवं पर्याप्त नीद

स्वस्थ वृद्धावस्था, मानसिक स्वास्थ्य

स्वस्थ वृद्धावस्था की अवधारणा अत्यंत प्रासंगिक है। स्वस्थ वृद्धावस्था का आशय केवल अधिक वर्षों तक जीवित रहने से नहीं, बल्कि बढ़ती आयु में शारीरिक क्षमता, मानसिक संतुलन, सामाजिक सहभागिता और आत्मनिर्भरता बनाए रखने से है। यदि रजोनिवृत्ति के समय महिलाओं को संतुलित एवं पोषक आहार, नियमित शारीरिक गतिविधि, योग एवं व्यायाम, मानसिक स्वास्थ्य सहयोग, समय–समय पर स्वास्थ्य परीक्षण तथा वैज्ञानिक स्वास्थ्य शिक्षा उपलब्ध कराई जाए, तो वे इस संक्रमणकाल का सफलतापूर्वक सामना करते हुए बेहतर जीवन–गुणवत्ता प्राप्त कर सकती हैं। इस प्रकार रजोनिवृत्ति का प्रभावी प्रबंधन स्वस्थ एवं सक्रिय वृद्धावस्था की आधारशिला सिद्ध होता है।

सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं भारतीय परिप्रेक्ष्य

भारतीय परिप्रेक्ष्य में रजोनिवृत्ति का अध्ययन विशेष महत्व रखता है। भारत में अनेक महिलाएँ पोषण संबंधी कमियों, रक्ताल्पता, कैल्शियम एवं विटामिन–डी की अपर्याप्तता, सीमित स्वास्थ्य जागरूकता तथा स्वास्थ्य सेवाओं तक असमान पहुँच जैसी चुनौतियों का सामना करती हैं। विशेष रूप से ग्रामीण एवं पर्वतीय क्षेत्रों में रहने वाली महिलाओं के लिए रजोनिवृत्ति से संबंधित परामर्श और नियमित स्वास्थ्य परीक्षण पर्याप्त रूप से उपलब्ध नहीं हैं। सामाजिक संकोच, पारिवारिक उत्तरदायित्व तथा जानकारी के अभाव के कारण अनेक महिलाएँ रजोनिवृत्ति के लक्षणों को सामान्य वृद्धावस्था मानकर अनदेखा कर देती हैं, जिससे दीर्घकालिक स्वास्थ्य समस्याओं की संभावना बढ़ जाती है।

भविष्य की चुनौतियाँ

रजोनिवृत्ति महिलाओं के जीवन का एक महत्वपूर्ण चरण है और बढ़ती जीवन प्रत्याशा के कारण महिलाएँ अपने जीवन का एक बड़ा हिस्सा रजोनिवृत्ति के बाद की अवस्था में व्यतीत कर रही हैं। इसलिए भविष्य में रजोनिवृत्ति से संबंधित स्वास्थ्य, पोषण, मानसिक स्वास्थ्य और सामाजिक आवश्यकताओं पर अधिक ध्यान देना आवश्यक होगा। भारत जैसे विविध सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों वाले देश में निम्न प्रमुख चुनौतियाँ सामने आ सकती हैं जैसेरू रजोनिवृत्ति के प्रति जागरूकता की कमी, पोषण संबंधी चुनौतियाँ, ऑस्टियोपोरोसिस और हड्डियों का स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, मोटापा एवं गैर–संचारी रोगों में वृद्धि आदि ।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में अधिकांश महिलाएँ अपने जीवन का एक बड़ा भाग रजोनिवृत्ति के पश्चात व्यतीत करती हैं। परिणामस्वरूप महिला स्वास्थ्य के संदर्भ में रजोनिवृत्ति का महत्व पहले की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ गया है। आज इसका अध्ययन केवल प्रजनन स्वास्थ्य तक सीमित नहीं है, बल्कि इसे पोषण, असंक्रामक रोगों, मानसिक स्वास्थ्य, जीवन–गुणवत्ता, कार्यात्मक क्षमता तथा स्वस्थ वृद्धावस्था के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है। यही कारण है कि विश्वभर में रजोनिवृत्ति को सार्वजनिक स्वास्थ्य की एक महत्वपूर्ण प्राथमिकता के रूप में लिया जा रहा संतुलित एवं पोषक आहार, पर्याप्त कैल्शियम, विटामिन D और प्रोटीन, नियमित शारीरिक गतिविधि, पर्याप्त नींद तथा तनाव प्रबंधन रजोनिवृत्ति के दौरान स्वास्थ्य संरक्षण के महत्वपूर्ण आधार हैं। नियमित चलना, योग, शक्ति–वर्धक एवं संतुलन संबंधी व्यायाम शारीरिक क्षमता और स्वतंत्रता बनाए रखने में सहायक हो सकते हैं। रजोनिवृत्ति को बीमारी न समझकर जीवन के एक स्वाभाविक संक्रमणकाल के रूप में समझना आवश्यक है। महिलाओं को सही समय पर समुचित स्वास्थ्य सम्बंधित जानकारी, पोषण शिक्षा, परामर्श तथा आवश्यक चिकित्सकीय सेवाएँ उपलब्ध कराकर इस अवस्था को अधिक सहज और स्वस्थ बनाया जा सकता है। भारत में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के मध्य स्वास्थ्य सेवाओं, पोषण और जागरूकता की असमानताओं को कम करना बहुत आवश्यक है। भविष्य में समुदाय–आधारित स्वास्थ्य शिक्षा, महिला–केंद्रित पोषण कार्यक्रम, नियमित स्वास्थ्य परीक्षण और जीवनशैली संबंधी हस्तक्षेपों को बढ़ावा देकर महिलाओं के स्वास्थ्य एवं जीवन की गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है। इस प्रकार, रजोनिवृत्ति के दौरान उचित पोषण, सक्रिय जीवनशैली और समग्र स्वास्थ्य देखभाल स्वस्थ वृद्धावस्था के लिए पुष्ट आधार निर्मित कर सकते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- *World Health Organization. (2024). Menopause. World Health Organization.*
- *World Health Organization. (2024). Physical activity. World Health Organization.*
- *Indian Council of Medical Research–National Institute of Nutrition. (2024). Dietary guidelines for Indians–2024 (2nd ed.). ICMR–National Institute of Nutrition, Hyderabad.*
- *The North American Menopause Society. (2022). The 2022 hormone therapy position statement of The North American Menopause Society. Menopause, 29(7), 767–794.*
- *The North American Menopause Society. (2023). The 2023 nonhormone therapy position statement of The North American Menopause Society. Menopause, 30(6), 573–590.*
- *Baber, R. J., Panay, N., & Fenton, A. (2016). 2016 IMS recommendations on women's midlife health and menopause hormone therapy. Climacteric, 19(2), 109–150.*
- *Davis, S. R., Lambrinoudaki, I., Lumsden, M., Mishra, G. D., Pal, L., Rees, M., Santoro, N., & Simoncini, T. (2015). Menopause. Nature Reviews Disease Primers, 1, 15004.*
- *Hall, J. E. (2015). Endocrinology of the menopause. Endocrinology and Metabolism Clinics of North America, 44(3), 485–496.*
- *Santoro, N., Epperson, C. N., & Mathews, S. B. (2015). Menopausal symptoms and their management. Endocrinology and Metabolism Clinics of North America, 44(3), 497–515.*
- *Monteleone, P., Mascagni, G., Giannini, A., Genazzani, A. R., & Simoncini, T. (2018). Symptoms of menopause—Global prevalence, physiology and implications. Nature Reviews Endocrinology, 14, 199–215.*
- *Nelson, H. D. (2008). Menopause. The Lancet, 371(9614), 521–534.*
- *Rossouw, J. E., Anderson, G. L., Prentice, R. L., LaCroix, A. Z., Kooperberg, C., Stefanick, M. L., Jackson, R. D., Beresford, S. A. A., Howard, B. V., Johnson, K. C., Kotchen, J. M., & Ockene, J. (2002). Risks and benefits of estrogen plus progestin in healthy postmenopausal women: Principal results from the Women's Health Initiative randomized controlled trial. JAMA, 288(3), 321–333.*
- *Writing Group for the Women's Health Initiative Investigators. (2004). Risks and benefits of estrogen plus progestin in healthy postmenopausal women: Principal results from the Women's Health Initiative randomized controlled trial. JAMA, 291(14), 1701–1712.*
- *Kanis, J. A., Cooper, C., Rizzoli, R., & Reginster, J. Y. (2019). European guidance for the diagnosis and management of osteoporosis in postmenopausal women. Osteoporosis International, 30, 3–44.*
- *Caan, B. J., Cespedes Feliciano, E. M., Alexeeff, S. E., Kroenke, C. H., Stewart, C., Quesenberry, C. P., Jr., et al. (2017). Association of muscle and adiposity measured by computed tomography with survival in postmenopausal women in the Women's Health Initiative. JAMA Oncology, 4(6), 798–806.*
- *World Health Organization. (2015). World report on ageing and health. World Health Organization.*
- *World Health Organization. (2020). Decade of healthy ageing: Baseline report. World Health Organization.*

- *United Nations, Department of Economic and Social Affairs, Population Division. (2020). World population ageing 2020 highlights. United Nations.*
- *International Menopause Society. (2016). Recommendations on women's midlife health and menopause hormone therapy. International Menopause Society.*
- *National Institute for Health and Care Excellence. (2024). Menopause: Diagnosis and management (NICE Guideline NG23). NICE.*

डिजिटल देवभूमि : कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) से सशक्त उत्तराखण्ड की परिकल्पना

ललिता बिष्ट, नीलिमा बुधानी
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

सारांश

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence—AI) वर्तमान समय में शासन, स्वास्थ्य, आपदा प्रबंधन, कृषि तथा पर्यावरण संरक्षण जैसे विविध क्षेत्रों में परिवर्तनकारी तकनीक के रूप में उभर रही है। हिमालयी राज्य उत्तराखण्ड अपनी विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियों, प्राकृतिक आपदाओं की संवेदनशीलता, सीमित अवसंरचना तथा दुर्गम क्षेत्रों तक सेवाओं की पहुँच जैसी चुनौतियों का सामना करता है। ऐसे परिदृश्य में AI आधारित समाधान राज्य के सतत एवं समावेशी विकास के लिए महत्वपूर्ण संभावनाएँ प्रस्तुत करते हैं। यह अध्याय उत्तराखण्ड में AI के वर्तमान परिदृश्य, प्रमुख अनुप्रयोगों, चुनौतियों तथा भविष्य की संभावनाओं का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

प्रस्तुत अध्याय में वनाग्नि निगरानी एवं पूर्वचेतावनी प्रणाली, ई–संजीवनी के माध्यम से AI-आधारित डिजिटल स्वास्थ्य सेवाएँ तथा भू–स्खलन एवं भूकम्प पूर्वानुमान से संबंधित AI-आधारित आपदा प्रबंधन पहलों का अध्ययन किया गया है। साथ ही, डिजिटल अवसंरचना, डेटा उपलब्धता एवं गुणवत्ता, तकनीकी दक्षता, वित्तीय संसाधनों, डिजिटल साक्षरता तथा सामाजिक स्वीकार्यता जैसी प्रमुख चुनौतियों की समीक्षा की गई है। तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए उत्तराखण्ड की AI पहलों की तुलना हिमाचल प्रदेश, सिक्किम तथा जम्मू–कश्मीर के डिजिटल एवं AI मॉडल से की गई है, जिससे विभिन्न हिमालयी राज्यों की विकास प्राथमिकताओं और नवाचार रणनीतियों को समझने का अवसर मिलता है।

कीवर्ड : कृत्रिम बुद्धिमत्ता, उत्तराखण्ड, डिजिटल गवर्नेंस, आपदा प्रबंधन

प्रस्तावना

वर्तमान इक्कीसवीं शताब्दी में वैश्विक समुदाय चतुर्थ औद्योगिक क्रांति के युग में प्रवेश कर चुका है। इस परिवर्तनकारी दौर में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) विश्वव्यापी प्रगति, नवोन्मेष और डिजिटल रूपांतरण को गति प्रदान करने वाले एक केंद्रीय घटक के रूप में उभरी है। AI मशीनों को डेटा से सीखने, विश्लेषण करने तथा निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करती है, जिसके फलस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में कार्यक्षमता एवं पारदर्शिता में वृद्धि हो रही है। भारत सरकार ने डिजिटल इंडिया, राष्ट्रीय AI रणनीति तथा इंडिया AI मिशन जैसी पहलों के माध्यम से AI को राष्ट्रीय विकास के महत्वपूर्ण आधार के रूप में प्रतिष्ठापित किया है। शासन, शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि तथा आपदा प्रबंधन जैसे क्षेत्रों में AI-आधारित समाधान क्रमिक रूप से अपनाए जा रहे हैं।

उत्तराखण्ड, अपनी विशिष्ट भौगोलिक संरचना, प्राकृतिक संसाधनों तथा विकासपरक चुनौतियों के कारण, कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित समाधानों के उपयोग की दिशा में निरंतर अग्रसर है। वर्तमान में शासन, स्वास्थ्य,

शिक्षा, कृषि, पर्यटन तथा आपदा प्रबंधन जैसे क्षेत्रों में डिजिटल प्रौद्योगिकियाँ राज्य के विकास को नई दिशा प्रदान कर रही हैं। भविष्य में AI का व्यापक उपयोग इन सेवाओं को अधिक दक्ष, सुलभ, पारदर्शी एवं जन–केंद्रित बना सकता है। इस प्रकार का प्रौद्योगिकी–संचालित परिवर्तन उत्तराखण्ड को एक स्मार्ट, आत्मनिर्भर तथा ज्ञान–आधारित राज्य के रूप में स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता की अवधारणा

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) कंप्यूटर विज्ञान की एक उन्नत एवं बहुविषयक शाखा है, जिसका लक्ष्य ऐसी बुद्धिमान प्रणाली विकसित करना है जो मानव बुद्धि की प्रक्रियाओं–सीखना, तर्क करना, निर्णय लेना, समस्या–समाधान तथा प्राकृतिक भाषा की समझ का अनुकरण करने में सक्षम हों। वर्ष 1956 में जॉन मैकार्थी ने डार्टमाउथ सम्मेलन में सर्वप्रथम "Artificial Intelligence" शब्द का प्रयोग किया था, जिसके कारण उन्हें प्रायः इस क्षेत्र का जनक माना जाता है।

AI का मूल आधार डेटा, एल्गोरिदम तथा कम्प्यूटेशनल शक्ति है। यह विशाल मात्रा में उपलब्ध डेटा का विश्लेषण कर उसमें निहित पैटर्न एवं संबंधों की पहचान करती है तथा प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर पूर्वानुमान एवं निर्णय लेने में सहायता प्रदान करती है। मशीन लर्निंग, डीप लर्निंग, प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (NLP), कंप्यूटर विजन, विशेषज्ञ प्रणालियाँ (Expert Systems) तथा रोबोटिक्स इसकी प्रमुख उप–तकनीकें हैं, जो मशीनों को अनुभव से सीखने तथा समय के साथ अपने प्रदर्शन में सुधार करने में सक्षम बनाती हैं।

उत्तराखण्ड जैसे पर्वतीय राज्य में AI आपदा प्रबंधन, स्मार्ट कृषि, पर्यावरण संरक्षण, स्वास्थ्य सेवाओं, पर्यटन एवं ई–गवर्नेंस को सशक्त बनाकर राज्य के समग्र एवं सतत विकास हेतु एक सुदृढ़ आधार प्रदान कर सकती है।

उत्तराखण्ड में AI की आवश्यकता

उत्तराखण्ड की पर्वतीय भौगोलिक परिस्थितियाँ, आपदा संवेदनशीलता, संसाधनों की सीमित उपलब्धता तथा दूरस्थ क्षेत्रों तक सेवाओं की पहुँच संबंधी चुनौतियाँ राज्य के समग्र एवं संतुलित विकास को प्रभावित करती हैं। राज्य के लगभग 86 प्रतिशत भू–भाग के पर्वतीय होने के कारण (Wikipedia, n.d.) स्वास्थ्य, शिक्षा तथा प्रशासनिक सेवाओं का प्रभावी वितरण कठिन बना रहता है, जबकि ग्रामीण पलायन तथा निर्जन होते गाँव सामाजिक–आर्थिक चिंताओं को बढ़ाते हैं। इसके साथ ही, वर्ष 2024 में राज्य में लगभग 5.95 करोड़ पर्यटकों / तीर्थयात्रियों का आगमन दर्ज किया गया (ETV Bharat, 2025), तथा उसी वर्ष राज्य में वनाग्नि की घटनाओं में भी उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई जिसने पर्यटन प्रबंधन एवं आपदा नियंत्रण की जटिलताओं को और अधिक उजागर किया। ऐसे परिदृश्य में कृत्रिम बुद्धिमत्ता राज्य के लिए एक परिवर्तनकारी तकनीक के रूप में उभर रही है। AI आधारित पूर्वानुमान प्रणाली, भू–स्थानिक विश्लेषण (GIS), स्मार्ट शासन, आपदा चेतावनी तंत्र तथा डिजिटल सेवा वितरण राज्य में संसाधनों के बेहतर प्रबंधन, त्वरित निर्णय निर्माण तथा नागरिक सेवाओं की पहुँच को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

भौगोलिक एवं सामाजिक चुनौतियाँ

उत्तराखण्ड की पर्वतीय भौगोलिक संरचना, दुर्गम क्षेत्र तथा सीमित आधारभूत सुविधाएँ विकास के समक्ष महत्वपूर्ण चुनौतियाँ प्रस्तुत करती हैं। ग्रामीण पलायन राज्य की एक प्रमुख समस्या है। उत्तराखण्ड ग्राम्य विकास एवं पलायन रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2011 से 2018 के मध्य राज्य के लगभग 734 गाँव पूर्णतः निर्जन (Ghost Villages) हो चुके थे, तथा बाद के वर्षों में यह संख्या और बढ़ी है (The Good Story Project, 2021)। ऐसी परिस्थितियों में AI आधारित डेटा विश्लेषण, भू–स्थानिक तकनीक (GIS) तथा पूर्वानुमान मॉडल क्षेत्रीय असमानताओं की पहचान कर प्रभावी विकास योजनाओं के निर्माण में सहायक हो सकते हैं।

आपदा प्रबंधन एवं जलवायु परिवर्तन

उत्तराखण्ड भूस्खलन, बाढ़, बादल फटने तथा वनाग्नि जैसी प्राकृतिक आपदाओं के प्रति अत्यधिक संवेदनशील है। राज्य के वन विभाग के आँकड़ों के अनुसार, नवंबर 2023 से जून 2024 के मध्य राज्य में लगभग 11,256 वनाग्नि की घटनाएँ दर्ज की गईं (Mongabay India, 2024), जो विगत वर्षों की तुलना में उल्लेखनीय वृद्धि दर्शाती हैं। दीर्घकालिक आँकड़ों के अनुसार विगत एक दशक में राज्य में कुल मिलाकर लगभग 14,638 वनाग्नि घटनाएँ दर्ज हुई हैं, जिनमें लगभग 23,683 हेक्टेयर वन क्षेत्र प्रभावित हुआ तथा 35 लोगों की मृत्यु हुई (DD India, 2026)। अध्ययनों से यह भी संकेत मिलता है कि तापमान में वृद्धि तथा वर्षा की कमी वनाग्नि की आवृत्ति को सीधे प्रभावित करती है। AI आधारित पूर्वानुमान प्रणाली, उपग्रह निगरानी (जैसे NASA के MODIS एवं VIIRS सेंसर पर आधारित प्रणालियाँ) तथा रियल–टाइम अलर्ट (सही समय में सूचना) तंत्र आपदा जोखिम को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

कृषि, स्वास्थ्य एवं पर्यटन में AI की आवश्यकता

कृषि क्षेत्र में AI फसल–रोग पहचान, मौसम पूर्वानुमान तथा स्मार्ट सिंचाई के माध्यम से उत्पादकता बढ़ाने में सहायक हो सकता है। स्वास्थ्य क्षेत्र में टेलीमेडिसिन तथा AI-आधारित रोग निदान दूरस्थ क्षेत्रों तक गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाएँ पहुँचाने में उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। पर्यटन क्षेत्र में वर्ष 2024 में लगभग 5.95 करोड़ पर्यटकों / तीर्थयात्रियों के आगमन (ETV Bharat, 2025) ने स्मार्ट पर्यटन प्रबंधन की आवश्यकता को अधिक स्पष्ट किया है। AI-आधारित भीड़ प्रबंधन, स्मार्ट ट्रैफिक नियंत्रण तथा डिजिटल पर्यटन सेवाएँ पर्यटन अनुभव को बेहतर बना सकती हैं।

सुशासन एवं डिजिटल सेवाएँ

AI-आधारित ई–गवर्नेंस नागरिक सेवाओं को अधिक पारदर्शी, त्वरित एवं प्रभावी बना सकता है। डेटा संचालित निर्णय निर्माण, शिकायत निवारण, योजना निगरानी तथा संसाधन प्रबंधन में AI महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। इस प्रकार AI उत्तराखण्ड को स्मार्ट, समावेशी एवं सतत विकास की दिशा में अग्रसर करने का एक प्रभावी माध्यम बन सकता है।

उत्तराखण्ड में AI की वर्तमान स्थिति (2018–2026)

उत्तराखंड में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग मुख्यतः शिक्षा, शासन, आपदा प्रबंधन, कृषि, पर्यटन, सुरक्षा तथा स्मार्ट सिटी जैसी पहलों में हो रहा है। कुछ अनुप्रयोग परिचालन–स्तर पर पहले से सक्रिय हैं, जबकि अन्य पायलट परियोजनाओं, नीतिगत पहलों तथा नवाचार कार्यक्रमों के माध्यम से क्रियान्वित किए जा रहे हैं। तालिका 1, में वे प्रमुख क्षेत्र प्रस्तुत किए गए हैं जहाँ AI का वर्तमान में उपयोग किया जा रहा है या सक्रिय रूप से प्रोत्साहित किया जा रहा है।

क्षेत्र	उत्तराखंड में AI का प्रमुख अनुप्रयोग	वर्तमान स्थिति
शिक्षा	AI थीम रूम, "AI ऑन व्हील्स" कार्यक्रम, AI-आधारित शिक्षण पहलें	परिचालन
आपदा प्रबंधन	बाढ़ पूर्वानुमान प्रणाली, ड्रोन–आधारित निगरानी, क्षति आकलन	पायलट व कार्यान्वयन चरण
कृषि	सटीक खेती (Precision Farming), ड्रोन एवं एनालिटिक्स आधारित फसल निगरानी	उभरता हुआ
स्वास्थ्य सेवा	टेलीमेडिसिन, दूरस्थ क्षेत्रों हेतु AI-आधारित निदान	उभरता हुआ
पर्यटन	स्मार्ट पर्यटन एवं आगंतुक प्रबंधन प्रणाली	उभरता हुआ
शासन (गवर्नेंस)	डेटा एनालिटिक्स एवं डिजिटल गवर्नेंस पहलें (यथा DARPAN 2.0)	बढ़ता हुआ
सुरक्षा एवं रक्षा	AI-आधारित काउंटर ड्रोन तकनीक	प्रदर्शन एवं पायलट परिनियोजन
अपशिष्ट प्रबंधन	स्मार्ट नगरपालिका कचरा संग्रहण एवं मार्ग अनुकूलन	सीमित उपयोग
पर्यावरण निगरानी	वनाग्नि निगरानी एवं पारिस्थितिकी सर्वेक्षण	उभरता हुआ

तालिका 1: उत्तराखंड में क्षेत्रवार AI अनुप्रयोग एवं वर्तमान स्थिति (लेखक द्वारा संकलित)

राज्य सरकार तथा विभिन्न विभाग अलग–अलग क्षेत्रों में कई विशिष्ट अनुप्रयोगों, सॉफ्टवेयर तथा AI-आधारित प्लेटफॉर्मों का उपयोग कर रहे हैं। इनमें से कुछ प्रमुख उदाहरण निम्नलिखित हैं:

वनाग्नि एवं आपदा नियंत्रण

Forest Fire Uttarakhand App: उत्तराखंड वन विभाग द्वारा विकसित यह मोबाइल एप्लीकेशन भारतीय वन सर्वेक्षण (FSI) तथा नासा के MODIS एवं VIIRS सैटेलाइट डेटा से जुड़ा हुआ है। वनक्षेत्र में अग्नि अथवा

तापीय विसंगति (thermal anomaly) दृष्टिगोचर होते ही यह ऐप ग्राउंड स्टाफ तथा स्वयंसेवकों को भू–टैग्ड अलर्ट प्रेषित करता है (Google Play Store, n.d.)।

FPDSS (Forest Fire Prediction and Decision Support System): यह एक वेब–आधारित निर्णय–समर्थन प्रणाली है, जो ऐतिहासिक आँकड़ों, वायु गति, तापमान तथा ईंधन (सूखी पत्तियों) के विश्लेषण के आधार पर मशीन लर्निंग मॉडल के माध्यम से वनाग्नि के फैलने की दिशा एवं गति का पूर्वानुमान करती है (Forest Survey of India, n.d.-a)।

AI-आधारित अतिक्रमण निगरानी प्रणाली: वन विभाग द्वारा हाल में आरक्षित वन भूमि पर अवैध अतिक्रमण की रियल–टाइम ट्रैकिंग तथा सैटेलाइट इमेजरी के माध्यम से परिवर्तनों की पहचान हेतु एक विशेष AI सॉफ्टवेयर आरंभ किया गया है।

स्वास्थ्य सेवाएँ

eSanjeevani (AB-HWC): यह राष्ट्रीय टेलीमेडिसिन प्लेटफॉर्म उत्तराखंड के दूरस्थ प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों (PHCs) में व्यापक रूप से उपयोग में लाया जा रहा है। इसके अंतर्गत एकीकृत डायग्नोस्टिक टूल्स तथा वर्चुअल हेल्थ असिस्टेंट्स पर्वतीय क्षेत्रों के मरीजों को उनके प्राथमिक लक्षणों की जाँच कर प्रमुख चिकित्सा संस्थानों (जैसे AIIMS ऋषिकेश) के चिकित्सकों से डिजिटल परामर्श उपलब्ध कराने में सहायक हैं (National Health Mission, Uttarakhand, n.d.)।

e-Swasthya Dham: चारधाम यात्रा पर आने वाले तीर्थयात्रियों हेतु उत्तराखंड स्वास्थ्य विभाग द्वारा संचालित इस ऐप के माध्यम से यात्री अपने चिकित्सा अभिलेख अपलोड करते हैं, जिसके पश्चात एल्गोरिदम–आधारित प्रणाली गंभीर स्वास्थ्य जोखिम (जैसे श्वसन अथवा हृदय संबंधी समस्याएँ) वाले व्यक्तियों को चिह्नित कर ऊँचाई वाले क्षेत्रों में उनकी सेहत के पूर्व मूल्यांकन एवं निगरानी में सहायता करती है (Uttarakhand Health Department, n.d.)।

पर्यटन एवं स्मार्ट प्रशासन

Digital Uttarakhand App: सूचना प्रौद्योगिकी विकास एजेंसी (ITDA) द्वारा विकसित इस एकीकृत ऐप में राज्य की विभिन्न नागरिक सेवाओं को समाहित किया गया है। जनशिकायतों के त्वरित निवारण हेतु संचालित 1905 CM हेल्पलाइन में भी AI-आधारित अनुप्रयोगों को एकीकृत किया गया है।

ITMS (Intelligent Traffic Management System): देहरादून, हरिद्वार, ऋषिकेश तथा हल्द्वानी जैसे शहरों के प्रमुख चौराहों पर ANPR (Automatic Number Plate Recognition) तथा रेड–लाइट उल्लंघन पहचान हेतु AI-संचालित प्रणालियाँ स्थापित की गई हैं, जो यातायात नियमों के उल्लंघन (जैसे ट्रिपल राइडिंग अथवा बिना हेलमेट संचालन) की स्वतः पहचान कर ऑटो चालान जनित करती हैं।

Smart Solid Waste Management System (SSWMS): नगरीय निकायों (ULBs) हेतु विकसित यह प्रणाली AI एवं GIS के समन्वय से कचरा वाहनों की रियल–टाइम ट्रैकिंग, मार्ग–निगरानी तथा अनुकूलन सुनिश्चित करती है, जिससे संग्रहण दक्षता, पारदर्शिता एवं जवाबदेही में सुधार होता है तथा ईंधन व्यय में कमी आती है।

उपर्युक्त विवरण यह दर्शाता है कि उत्तराखण्ड में AI का उपयोग अभी प्रारंभिक अथवा पायलट अवस्था में केंद्रित है, तथापि विभिन्न क्षेत्रों में इसकी संभावनाएँ व्यापक हैं। नीति–निर्माताओं हेतु आवश्यक है कि डेटा अवसंरचना, संस्थागत क्षमता तथा स्थानीय समुदायों की भागीदारी सुनिश्चित करते हुए इन पहलों को क्रमिक रूप से विस्तारित किया जाए।

उत्तराखण्ड में AI कार्यान्वयन की चुनौतियाँ

उत्तराखण्ड में कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित समाधानों को प्रायोगिक स्तर से आगे बढ़ाकर व्यापक एवं संस्थागत रूप में क्रियान्वित करने के मार्ग में अनेक संरचनात्मक, तकनीकी तथा सामाजिक–आर्थिक चुनौतियाँ विद्यमान हैं। राज्य की भू–प्राकृतिक संरचना इन चुनौतियों को अन्य मैदानी राज्यों की तुलना में अधिक जटिल बना देती है। इन चुनौतियों को निम्नलिखित पाँच प्रमुख आयामों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

दुर्गम क्षेत्रों में डिजिटल अवसंरचना एवं विश्वसनीय इंटरनेट कनेक्टिविटी का अभाव

उत्तराखण्ड में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के प्रभावी उपयोग के लिए मजबूत इंटरनेट और मोबाइल नेटवर्क कनेक्टिविटी अत्यंत आवश्यक है, लेकिन राज्य की कठिन पर्वतीय भौगोलिक परिस्थितियाँ इस दिशा में बड़ी चुनौती बनी हुई हैं। यद्यपि राज्य के लगभग 17,334 गाँवों में से करीब 97 प्रतिशत गाँव 4G नेटवर्क के दायरे में आ चुके हैं (ETV Bharat, n.d.), फिर भी 300 से अधिक गाँव आज भी बुनियादी मोबाइल कनेक्टिविटी से वंचित हैं। इसके अलावा, सीमावर्ती और उच्च हिमालयी क्षेत्रों में नेटवर्क सिग्नल की कमजोरी तथा बार–बार कनेक्टिविटी बाधित होने की समस्या बनी रहती है।

स्थिति तब और जटिल हो जाती है जब भूस्खलन, बाढ़ और भारी हिमपात जैसी प्राकृतिक आपदाएँ ऑप्टिकल फाइबर लाइनों और मोबाइल टावरों को नुकसान पहुँचाती हैं। इससे संचार सेवाओं की निरंतरता प्रभावित होती है और डिजिटल सेवाओं की उपलब्धता बाधित हो जाती है। BharatNet और उत्तराखण्ड फाइबर ग्रिड जैसी पहलें ग्रामीण क्षेत्रों तक ब्रॉडबैंड इंटरनेट पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं, किन्तु दूरस्थ पर्वतीय इलाकों में इनका पूर्ण विस्तार अभी बाकी है। ऐसे में रियल–टाइम डेटा संग्रहण, क्लाउड–आधारित AI प्रणालियों का संचालन तथा दूरदराज क्षेत्रों में AI सेवाओं का निर्बाध उपयोग अभी भी एक महत्वपूर्ण चुनौती बना हुआ है।

डेटा की उपलब्धता एवं गुणवत्ता

कृत्रिम बुद्धिमत्ता की सफलता काफी हद तक इस बात पर निर्भर करती है कि उसके पास कितना विश्वसनीय, पर्याप्त और अद्यतन डेटा उपलब्ध है। उत्तराखण्ड में विभिन्न सरकारी विभागों और संस्थानों के पास बड़ी

मात्रा में डेटा मौजूद है, लेकिन यह अक्सर अलग–अलग प्रणालियों में बिखरा रहता है, जिससे उसका समन्वित उपयोग कठिन हो जाता है। विभागों के बीच डेटा–साझाकरण की सीमित व्यवस्था भी AI-आधारित समाधानों के विकास में बाधा बनती है। दूसरी ओर, दूरस्थ और पर्वतीय क्षेत्रों से समुचित आँकड़े एकत्र करना भौगोलिक कठिनाइयों और सीमित डिजिटल अवसंरचना के कारण चुनौतीपूर्ण है। ऐसी परिस्थितियों में AI मॉडल सभी क्षेत्रों का समान प्रतिनिधित्व नहीं कर पाते, जिससे उनके परिणामों की सटीकता प्रभावित हो सकती है। इसलिए राज्य में AI की वास्तविक क्षमता का लाभ उठाने के लिए एकीकृत, मानकीकृत और विश्वसनीय डेटा व्यवस्था विकसित करना आवश्यक है।

कुशल मानव संसाधनों एवं तकनीकी विशेषज्ञता का अभाव

राज्य में AI, डेटा विज्ञान तथा संबंधित क्षेत्रों में प्रशिक्षित तकनीकी जनशक्ति की उपलब्धता सीमित है। विश्वविद्यालयों एवं तकनीकी संस्थानों में विशेष पाठ्यक्रमों तथा शोध सुविधाओं का विस्तार अभी प्रारंभिक अवस्था में है, जिससे स्थानीय स्तर पर कुशल मानव संसाधन तैयार करने में समय लगता है। इसके परिणामस्वरूप कई विभाग बाह्य विशेषज्ञों अथवा निजी एजेंसियों पर निर्भर रहते हैं, जिससे परियोजनाओं की निरंतरता एवं संस्थागत क्षमता संवर्धन प्रभावित होता है। दीर्घकालिक दृष्टि से स्थानीय संस्थानों में क्षमता संवर्धन तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों का विस्तार आवश्यक है।

वित्तीय संसाधनों एवं बजट संबंधी सीमाएँ

उत्तराखण्ड में कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित अवसंरचना विकसित करना एक महत्त्वाकांक्षी लेकिन खर्चीला कार्य है। डेटा केंद्र, क्लाउड प्लेटफॉर्म, सेंसर नेटवर्क और उपग्रह–आधारित निगरानी प्रणालियों जैसी तकनीकों की स्थापना के लिए बड़े प्राथमिक निवेश की आवश्यकता है। वहीं, राज्य का राजस्व आधार अपेक्षाकृत सीमित है और अनेक विकास परियोजनाएँ केंद्र सरकार के वित्तीय सहयोग पर निर्भर रहती हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में अवसंरचना निर्माण की लागत भी अधिक होती है, क्योंकि उपकरणों और संसाधनों को दुर्गम स्थानों तक पहुँचाने तथा उनका रखरखाव करने में अतिरिक्त खर्च आता है। यही कारण है कि कई AI परियोजनाएँ प्रारंभिक स्तर पर तो सफल दिखाई देती हैं, लेकिन उन्हें व्यापक स्तर पर लागू करना चुनौतीपूर्ण हो जाता है। दीर्घकालिक वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता और समुचित एवं निरंतर रखरखाव सुनिश्चित करना आज भी AI विस्तार की प्रमुख चुनौतियों में से एक है।

डिजिटल साक्षरता एवं सामाजिक स्वीकार्यता

उत्तराखण्ड में डिजिटल साक्षरता और AI की सामाजिक स्वीकार्यता अभी भी महत्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं। यद्यपि राज्य की साक्षरता दर लगभग 78.8 प्रतिशत है (Census of India, n.d.), फिर भी डिजिटल उपकरणों और इंटरनेट के प्रभावी उपयोग की क्षमता सभी वर्गों में समान रूप से विकसित नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों, विशेषकर महिलाओं और वृद्धजनों में डिजिटल उपयोग अपेक्षाकृत कम है, जिससे डिजिटल विभाजन की स्थिति बनी हुई है। पर्वतीय क्षेत्रों से पुरुषों के पलायन के कारण यह चुनौती और अधिक स्पष्ट दिखाई देती है। साथ ही,

डेटा गोपनीयता, AI आधारित निर्णयों पर भरोसे की कमी तथा नई तकनीकों को लेकर सामाजिक हिचक भी AI सेवाओं के व्यापक उपयोग में बाधा बनती है। इसलिए AI के सफल क्रियान्वयन के लिए तकनीकी अवसंरचना के साथ–साथ डिजिटल साक्षरता और जन–जागरूकता को भी समान महत्व देना आवश्यक है।

उत्तराखण्ड में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के व्यावहारिक अनुप्रयोगः तीन प्रमुख अध्ययन

उत्तराखण्ड की प्राकृतिक, सामाजिक एवं विकासात्मक चुनौतियाँ इसे तकनीकी नवाचारों के लिए एक महत्वपूर्ण परीक्षण स्थल बनाती हैं। इन चुनौतियों के समाधान हेतु राज्य में कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं डिजिटल प्रौद्योगिकियों का उपयोग निरंतर बढ़ रहा है। AI आधारित समाधान प्रशासनिक कार्यों से आगे बढ़कर पर्यावरण संरक्षण, स्वास्थ्य सेवाओं तथा आपदा प्रबंधन जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में भी प्रभावी योगदान दे रहे हैं। निम्नलिखित उदाहरण उत्तराखण्ड में AI के व्यावहारिक एवं नवाचारपूर्ण अनुप्रयोगों को दर्शाते हैं।

वनाग्नि निगरानी एवं पूर्व चेतावनी प्रणाली

उत्तराखण्ड में वनाग्नि वन संसाधनों, जैव विविधता तथा स्थानीय आजीविकाओं के लिए एक गंभीर चुनौती है। इसके प्रभावी प्रबंधन हेतु राज्य में उपग्रह आधारित निगरानी और डेटा संचालित प्रणालियों का उपयोग बढ़ाया गया है।

राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय वन सर्वेक्षण (FSI) की Forest Fire Alert System (FAST) SNPP-VIIRS उपग्रह डेटा के माध्यम से वनाग्नि की घटनाओं का स्वतः पता लगाती है तथा संबंधित अधिकारियों को त्वरित SMS अलर्ट भेजती है (Forest Survey of India, n.d.-b; World Bank Blogs, n.d.) । इससे आग की सूचना लगभग 45 मिनट से 1 घंटे के भीतर उपलब्ध हो जाती है, जिससे शीघ्र प्रतिक्रिया संभव होती है (World Bank Blogs, n.d.) ।

राज्य स्तर पर उत्तराखण्ड वन विभाग ने वर्ष 2025 में "Forest Fire Uttarakhand" मोबाइल ऐप लॉन्च किया, जो उपग्रह–आधारित सूचनाओं को लगभग उचित समय पर या उससे पूर्व ही संभावित क्षेत्र तक पहुँचाता है (Indian Masterminds, 2025b) । इसके साथ Integrated Command and Control Centre, GPS-सक्षम अग्निशमन वाहन तथा Pre-Fire Alert सुविधा को भी जोड़ा गया है, जो वनाग्नि संभावित क्षेत्रों की पूर्व पहचान में सहायता करती है (Indian Masterminds, 2025b) ।

हालाँकि, वैश्विक जलवायु परिवर्तन के कारण बढ़ते तापमान, सूखे चीड़ (Pine) के पिरुल एवं अन्य सूखी वनोपज, कमजोर नेटवर्क कनेक्टिविटी तथा दुर्गम भौगोलिक परिस्थितियाँ वनाग्नि प्रबंधन की प्रमुख चुनौतियाँ बनी हुई हैं (The Secretariat, n.d.) । फिर भी यह पहल उत्तराखण्ड में AI-आधारित और डेटा–आधारित वन प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करती है।

ई–संजीवनीः दूरस्थ क्षेत्रों तक स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच

उत्तराखण्ड के पर्वतीय एवं दूरस्थ क्षेत्रों में विशेषज्ञ स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता लंबे समय से एक चुनौती रही है। इस समस्या के समाधान हेतु केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय की ई–संजीवनी (eSanjeevani) टेलीमेडिसिन सेवा महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है, जो वर्तमान में विश्व की सबसे बड़ी सरकारी टेलीमेडिसिन पहल मानी जाती है (IMPRI India, n.d.) ।

राज्य में ई–संजीवनी के माध्यम से दूरस्थ क्षेत्रों के मरीजों को AIIMS ऋषिकेश, दून मेडिकल कॉलेज, गवर्नमेंट मेडिकल कॉलेज हल्द्वानी तथा अन्य जिला स्तरीय स्वास्थ्य केंद्रों से जुड़े विशेषज्ञ चिकित्सकों का निःशुल्क परामर्श उपलब्ध कराया जाता है (National Health Mission, Uttarakhand, n.d.) । यह सेवा eSanjeevani AB-HWC (डॉक्टर–से–डॉक्टर परामर्श) तथा eSanjeevaniOPD (मरीज–से–डॉक्टर परामर्श) के रूप में संचालित होती है (C-DAC, n.d.) ।

सेवा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए इसमें AI-आधारित Clinical Decision Support System (CDSS) को एकीकृत किया गया है, जो मरीज के लक्षणों के विश्लेषण के आधार पर चिकित्सकों को संभावित निदान संबंधी सुझाव प्रदान करता है (medRxiv, n.d.) । इसके अतिरिक्त, स्थानीय भाषाओं में संवाद को सुगम बनाने हेतु Bhashini platform (भाषा–अनुवाद सुविधा) का भी परीक्षण किया जा रहा है (IMPRI India, n.d.) ।

राष्ट्रीय स्तर पर ई–संजीवनी 33 करोड़ से अधिक परामर्श प्रदान कर चुकी है, जिनमें 57 प्रतिशत से अधिक लाभार्थी महिलाएँ तथा लगभग 12 प्रतिशत वरिष्ठ नागरिक हैं (Microsoft, n.d.) । हालांकि, सीमित डिजिटल अवसंरचना, इंटरनेट कनेक्टिविटी और स्मार्टफोन की उपलब्धता जैसी चुनौतियाँ ग्रामीण क्षेत्रों में इसके व्यापक उपयोग को प्रभावित करती हैं (Oxford Open Digital Health, n.d.) । फिर भी, यह पहल उत्तराखण्ड में AI-सहायित डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं का एक सफल उदाहरण प्रस्तुत करती है।

भू–स्खलन पूर्वानुमान एवं आपदा प्रबंधन

उत्तराखण्ड की उच्च आपदा–संवेदनशीलता को देखते हुए भू–स्खलन और भूकंप जैसी घटनाओं के पूर्वानुमान हेतु AI एवं सेंसर–आधारित प्रणालियों का विकास किया जा रहा है।

IIT रुड़की के आपदा शमन एवं प्रबंधन उत्कृष्टता केंद्र (CoEDMM) ने ISRO के सहयोग से एक उच्च–रिजोल्यूशन वर्षा–आधारित मॉडल विकसित किया है, जो मौसम, भू–आकृति एवं रिमोट सेंसिंग डेटा का उपयोग कर भूस्खलन की लगभग छह घंटे पूर्व चेतावनी देने में सक्षम है (Press Information Bureau, n.d.-b; Drishti IAS, n.d.) ।

इसी प्रकार, IIT मंडी द्वारा विकसित AI-सक्षम सेंसर नेटवर्क मिट्टी की नमी, वर्षा, तापमान तथा भू–गतिशीलता की निगरानी करता है और 90% से अधिक सटीकता के साथ लगभग तीन घंटे पूर्व भूस्खलन की चेतावनी प्रदान कर सकता है (The Better India, n.d.; NITI Aayog Frontier Tech, n.d.) । जोखिम की स्थिति में यह

प्रणाली SMS, सायरन एवं अन्य अलर्ट माध्यमों से सूचना प्रसारित करती है (NITI Aayog Frontier Tech, n.d.) ।

इसके अतिरिक्त, उत्तराखण्ड सरकार ने उत्तराखण्ड राज्य भूकंप पूर्व चेतावनी प्रणाली (UEEWS) लागू की है, जिसमें राज्यभर में स्थापित 170 एक्सेलेरोमीटर रियल–टाइम डेटा के आधार पर भूकंप संबंधी चेतावनियाँ जारी करते हैं (NCBI/PMC, 2024) ।

हालाँकि, सेंसरों के रखरखाव, विषम जलवायु परिस्थितियों तथा पूर्वानुमान प्रणालियों के सीमित विस्तार जैसी चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं (Down To Earth, n.d.) । फिर भी, ये प्रयास उत्तराखण्ड में AI- आधारित आपदा जोखिम न्यूनीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति को दर्शाती हैं।

ये उदाहरण बताते हैं कि उत्तराखण्ड में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) का उपयोग वनाग्नि प्रबंधन, स्वास्थ्य सेवाओं और आपदा पूर्व चेतावनी जैसी महत्वपूर्ण चुनौतियों के समाधान में प्रभावी रूप से किया जा रहा है। हालांकि, इन प्रयासों की सफलता और विस्तार के लिए मजबूत डिजिटल अवसंरचना, विश्वसनीय डेटा तथा स्थानीय स्तर पर तकनीकी क्षमता का विकास आवश्यक है।

उत्तराखण्ड के AI कार्यक्रमों का अन्य पर्वतीय राज्यों से तुलनात्मक अध्ययन

भारत के पर्वतीय राज्य – उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, सिक्किम और जम्मू–कश्मीर– दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र, सीमित अवसंरचना तथा आपदा–संवेदनशीलता जैसी समान चुनौतियों का सामना करते हैं। इन चुनौतियों के समाधान हेतु सभी राज्यों ने अपनी स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) एवं डिजिटल प्रौद्योगिकियों को अपनाना प्रारम्भ किया है। यद्यपि इन राज्यों का उद्देश्य सेवा वितरण एवं प्रशासनिक दक्षता में सुधार करना है, फिर भी प्रत्येक राज्य का फोकस उसकी सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों, प्रशासनिक प्राथमिकताओं तथा स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार भिन्न है।

उत्तराखण्डः आपदा प्रबंधन एवं पर्यावरण संरक्षण केंद्रित मॉडल

उत्तराखण्ड ने AI और डिजिटल प्रौद्योगिकियों का उपयोग मुख्यतः आपदा प्रबंधन, कृषि, वन संरक्षण, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं तथा ई–गवर्नेंस को सुदृढ़ बनाने के लिए किया है। "उत्तराखण्ड AI मिशन–2025" राज्य की भौगोलिक आवश्यकताओं के अनुरूप AI आधारित नवाचारों, उन्नत कंप्यूटिंग संसाधनों तथा स्टार्टअप नवाचारों को बढ़ावा देने का प्रयास है (AI CERTs News, 2025)। इसी क्रम में "Forest Fire Uttarakhand" ऐप उपग्रह–आधारित निगरानी एवं रियल–टाइम अलर्ट के माध्यम से वनाग्नि प्रबंधन को अधिक प्रभावी बना रहा है (Indian Masterminds, 2025a)। इसके अतिरिक्त, चमोली हिमनद आपदा के दौरान ड्रोन तकनीक का उपयोग खोज एवं बचाव कार्यों तथा क्षति आकलन में किया गया, जिसने आपदा प्रबंधन में उन्नत प्रौद्योगिकियों की उपयोगिता को प्रदर्शित किया (IEJSE, n.d.)।

हिमाचल प्रदेशः कृषि एवं बागवानी आधारित AI मॉडल

हिमाचल प्रदेश ने AI का उपयोग मुख्यतः कृषि एवं बागवानी क्षेत्र की उत्पादकता और बाजार दक्षता बढ़ाने के लिए किया है। डिजिटल सेब–मंडी मंच किसानों को पारदर्शी ग्रेडिंग, प्रत्यक्ष विपणन और डिजिटल भुगतान की सुविधा प्रदान करता है (The News Mill, 2025)। वहीं, AI आधारित कीट–पहचान प्रणालियाँ फसल प्रबंधन को अधिक सटीक एवं प्रभावी बना रही हैं (AgriEngineering, n.d.)। इसके अतिरिक्त, YES-TECH जैसी AI एवं रिमोट सेंसिंग आधारित उपज–आकलन प्रणाली को फसल बीमा कार्यक्रमों में शामिल किया गया है, जिससे जोखिम मूल्यांकन और क्षतिपूर्ति प्रक्रिया अधिक विश्वसनीय हुई है (Press Information Bureau, n.d.-a)।

सिक्किमः सतत विकास एवं स्मार्ट पर्यटन मॉडल

सिक्किम ने AI एवं डिजिटल तकनीकों को पर्यावरणीय संरक्षण और सतत पर्यटन विकास के साथ जोड़ा है। "सिक्किम दर्शन" डिजिटल मंच पर्यटकों को बहुभाषी एवं रियल–टाइम सूचना उपलब्ध कराता है (APAC News Network, 2025)। इसके अतिरिक्त, AI-संचालित यातायात प्रबंधन, डिजिटल सूचना प्रणाली और स्मार्ट पर्यटन सेवाओं के माध्यम से राज्य पर्यटक अनुभव को बेहतर बनाने का प्रयास कर रहा है (International Journal of Advanced Research, n.d.)। जैविक कृषि और शून्य–अपशिष्ट नीति के साथ डिजिटल शासन का एकीकरण सिक्किम के पर्यावरण केंद्रित विकास मॉडल को और सुदृढ़ करता है (Sikkim PCS Notes, n.d.)।

जम्मू–कश्मीरः सुरक्षा एवं आपदा–पूर्व चेतावनी मॉडल

जम्मू–कश्मीर में AI का उपयोग मुख्यतः सुरक्षा, सुशासन तथा आपदा जोखिम प्रबंधन पर केंद्रित है। IIT जम्मू और BISAG-N के सहयोग से प्रस्तावित AI-GIS उत्कृष्टता केंद्र भूमि प्रबंधन, बाढ़ निगरानी तथा संसाधन नियोजन को सुदृढ़ करने की दिशा में कार्य कर रहा है (Kashmir Life, 2025a)। इसके साथ ही, आपदा जोखिम प्रबंधन, स्वास्थ्य सेवाओं, कृषि परामर्श एवं शिकायत निवारण में AI के उपयोग हेतु संस्थागत ढाँचा विकसित किया जा रहा है (Kashmir Life, 2025b)। राज्य सरकार ने विभिन्न विभागों में AI के चरणबद्ध क्रियान्वयन की प्रक्रिया आरम्भ की है, जिसमें बाढ़, भूस्खलन एवं हिमस्खलन की पूर्व चेतावनी प्रणालियाँ प्रमुख प्राथमिकताओं में शामिल हैं (Kashmir Life, 2026)।

तुलनात्मक विश्लेषण

राज्य	मुख्य फोकस क्षेत्र
उत्तराखण्ड	आपदा–प्रतिक्रिया, वन–अग्नि निगरानी एवं स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार
हिमाचल प्रदेश	बागवानी, फसल बीमा एवं डिजिटल कृषि–बाजार

सिक्किम	पर्यावरण–संरक्षण एवं सतत विकासशील पर्यटन
जम्मू–कश्मीर	सुरक्षा, सीमावर्ती निगरानी एवं आपदा–पूर्व चेतावनी प्रणाली

तालिका 2: पर्वतीय राज्यों में AI के प्रमुख फोकस क्षेत्रों की तुलना

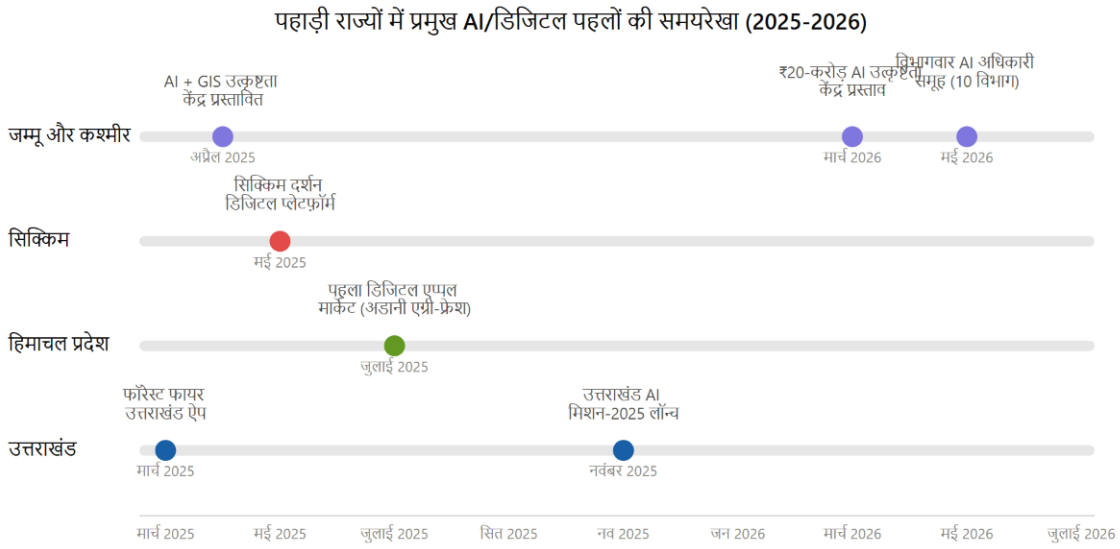
तालिका 2, यह दर्शाती हैं कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) का प्रभावी उपयोग केवल तकनीकी उपलब्धता पर निर्भर नहीं करता, बल्कि स्थानीय विकास आवश्यकताओं, संस्थागत क्षमता, डेटा उपलब्धता, डिजिटल अवसंरचना तथा नीति–समर्थन के समन्वय पर आधारित होता है। जहाँ उत्तराखण्ड ने आपदा प्रबंधन, वन संरक्षण और स्वास्थ्य सेवाओं पर ध्यान केंद्रित किया है, वहीं हिमाचल प्रदेश कृषि एवं बागवानी, सिक्किम सतत पर्यटन तथा जम्मू–कश्मीर सुरक्षा एवं आपदा पूर्व चेतावनी प्रणालियों को प्राथमिकता दे रहा है। यह विविधता दर्शाती है कि AI के सफल अनुप्रयोग के लिए क्षेत्र–विशिष्ट दृष्टिकोण अधिक प्रभावी सिद्ध होता है।

विशेष रूप से जम्मू–कश्मीर द्वारा BISAG-N, IIT जम्मू तथा सरकारी विभागों के बीच विकसित संस्थागत सहयोग मॉडल उल्लेखनीय है। यह मॉडल दर्शाता है कि विश्वविद्यालयों, तकनीकी संस्थानों और प्रशासनिक एजेंसियों के बीच समन्वित साझेदारी AI आधारित समाधानों के प्रभावी क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। यह अनुभव अन्य पर्वतीय राज्यों, विशेषकर उत्तराखण्ड, के लिए भी एक उपयोगी मार्गदर्शक उदाहरण प्रस्तुत करता है।

ग्राफिकल तुलना

प्रमुख पहलों का कालक्रम

नीचे दिया गया चित्र 1 मार्च 2025 से मई 2026 के बीच चारों पर्वतीय राज्यों में प्रारम्भ प्रमुख AI एवं डिजिटल पहलों की समयरेखा दर्शाता है। यह चित्र विभिन्न राज्यों में AI अपनाने की गति, प्राथमिकताओं तथा कार्यान्वयन के क्रम का तुलनात्मक अवलोकन प्रस्तुत करता है (AI CERTs News, 2025; Kashmir Life, 2026) ।



चित्र 1: वर्ष 2025–26 के दौरान चार पर्वतीय राज्यों में प्रमुख AI प्रमुख पहलों का कालक्रम

क्षेत्रानुसार प्रमुख फोकस–मैट्रिक्स

चित्र 2 चारों पर्वतीय राज्यों में AI एवं डिजिटल प्रौद्योगिकियों के प्रमुख अनुप्रयोग क्षेत्रों का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें स्वास्थ्य, आपदा प्रबंधन, वन एवं पर्यावरण संरक्षण, कृषि–बागवानी, पर्यटन तथा शासन–सुरक्षा जैसे क्षेत्रों में राज्यों की सापेक्ष प्राथमिकताओं को दर्शाया गया है। यह कोई मात्रात्मक या सांख्यिकीय सूचकांक नहीं है, बल्कि इस अध्याय में वर्णित प्राथमिक प्रयासों के आधार पर तैयार किया गया एक सांकेतिक विश्लेषण है, जिसका उद्देश्य विभिन्न राज्यों के भविष्योन्मुखी प्रयासों की तुलनात्मक समझ विकसित करना है।

	स्वास्थ्य एवं टेलीमेडिसिन	आपदा प्रबंधन एवं पूर्व चेतावनी	वन/पर्यावरण निगरानी	कृषि एवं बागवानी	पर्यटन एवं नागरिक सेवाएं	शासन एवं सुरक्षा
उत्तराखंड	प्रबल	प्रबल	प्रबल	उभरता हुआ	मध्यम	उभरता हुआ
हिमाचल प्रदेश	उभरता हुआ	उभरता हुआ	उभरता हुआ	प्रबल	मध्यम	उभरता हुआ
सिक्किम	न्यूनतम	उभरता हुआ	प्रबल	उभरता हुआ	प्रबल	उभरता हुआ
जम्मू और कश्मीर	मध्यम	प्रबल	उभरता हुआ	मध्यम	मध्यम	प्रबल

चित्र 2: राज्यवार AI एवं डिजिटल पहलों का क्षेत्रीय फोकस–मैट्रिक्स (सांकेतिक निरूपण)

उत्तराखण्ड ने AI का उपयोग अपनी स्थानीय चुनौतियों और विकास आवश्यकताओं के समाधान के लिए किया है, जबकि अन्य पर्वतीय राज्यों ने क्षेत्र–विशिष्ट आर्थिक एवं संस्थागत प्राथमिकताओं पर अधिक ध्यान दिया

है। इन अनुभवों से सीख लेकर उत्तराखण्ड एक अधिक सुदृढ़ एवं समावेशी AI कार्यक्रम चक्र विकसित कर सकता है। साथ ही, पर्वतीय राज्यों के बीच सहयोग, ज्ञान–साझाकरण और संयुक्त नवाचार के माध्यम से हिमालयी क्षेत्र के सतत एवं डिजिटल विकास को नई दिशा प्रदान की जा सकती है।

भविष्य की दिशा एवं नीतिगत सुझाव

उत्तराखण्ड के समग्र और सतत विकास की दिशा में उत्तराखण्ड एआई मिशन–2025 एक महत्वपूर्ण पहल के रूप में उभर रहा है। इसका उद्देश्य कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के माध्यम से स्वास्थ्य सेवाओं, आपदा प्रबंधन और पर्यटन जैसे प्रमुख क्षेत्रों को अधिक प्रभावी, सुलभ और तकनीक–सक्षम बनाना है। विशेष रूप से, दूरस्थ स्वास्थ्य सेवाओं तथा बाढ़ और भूस्खलन जैसी प्राकृतिक आपदाओं के पूर्वानुमान एवं निगरानी में AI आधारित समाधान राज्य की विशिष्ट भौगोलिक चुनौतियों से निपटने में सहायक हो सकते हैं।

साथ ही, उत्तराखण्ड स्टार्टअप नीति–2023 नवाचार और उद्यमिता को बढ़ावा देकर स्थानीय युवाओं और स्टार्टअप्स के लिए अनुकूल वातावरण तैयार कर रही है। बिजनेस इन्क्यूबेटरों और नवाचार केंद्रों के माध्यम से राज्य में एक मजबूत तकनीकी एवं उद्यमशील पारिस्थितिकी तंत्र विकसित करने का प्रयास किया जा रहा है।

हालाँकि डिजिटल अवसंरचना, तकनीकी साक्षरता, डेटा गोपनीयता और AI के नैतिक उपयोग जैसी चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं, फिर भी राज्य की नीतियाँ मानव–केंद्रित और उत्तरदायी AI विकास पर बल देती हैं। कुल मिलाकर, AI आधारित ये प्राथमिक प्रयास उत्तराखण्ड को डिजिटल रूप से सशक्त, आपदा– संरक्षित, नवाचार–उन्मुख और सतत विकास की दिशा में आगे बढ़ाने का महत्वपूर्ण आधार प्रदान कर रही हैं।

निष्कर्ष

उत्तराखण्ड में AI का विकास प्रारम्भिक अवस्था में है, किन्तु वनाग्नि नियंत्रण, डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं और भूस्खलन पूर्वानुमान जैसी पहलें इसकी संभावनाओं को स्पष्ट रूप से दर्शाती हैं। हालांकि, सीमित डिजिटल अवसंरचना, डेटा गुणवत्ता, वित्तीय संसाधन, तकनीकी विशेषज्ञता तथा डिजिटल साक्षरता जैसी चुनौतियाँ इसके व्यापक और सतत क्रियान्वयन में बाधा बनी हुई हैं।

अन्य पर्वतीय राज्यों की भाँति उत्तराखण्ड ने भी अपनी स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप आपदा प्रबंधन और स्वास्थ्य सेवाओं को AI अनुप्रयोगों का प्रमुख क्षेत्र बनाया है। अब मुख्य चुनौती इन प्राथमिक प्रयासों को राज्यव्यापी, टिकाऊ और प्रभावी प्रणालियों में रूपांतरित करने की है। इस संदर्भ में उत्तराखण्ड एआई मिशन–2025 और स्टार्टअप नीति–2023 एक महत्वपूर्ण नीतिगत आधार प्रदान करते हैं, जिनकी सफलता विभागीय समन्वय, क्षमता संवर्धन और तकनीक के प्रति जनविश्वास को सुदृढ़ करने पर निर्भर करेगी।

संदर्भ

- AgriEngineering. (n.d.). *Integrating AI and ML for sustainable development in agriculture: Temperate Himalayas.* https://doi.org/10.3390/agriengineering8010035
- AI CERTs News. (2025). *India policy drives Uttarakhand's AI Mission 2025 rollout.* https://www.aicerts.ai/news/india-policy-drives-uttarakhands-ai-mission-2025-rollout/
- APAC News Network. (2025). *Sikkim Darshan digital platform launched to boost smart tourism.* https://apacnewsnetwork.com/2025/05/sikkim-darshan-digital-platform-launched-to-boost-smart-tourism/
- C-DAC. (n.d.). *eSanjeevani – National telemedicine service.* Centre for Development of Advanced Computing. https://www.cdac.in
- Census of India. (n.d.). *Uttarakhand literacy rate.* https://www.censusofindia.net
- DD India. (2026). *Uttarakhand plans reward scheme of up to Rs 1 lakh to strengthen fight against forest fires.* https://ddindia.co.in/2026/05/uttarakhand-plans-reward-scheme-of-up-to-rs-1-lakh-to-strengthen-fight-against-forest-fires/
- Down To Earth. (n.d.). *India's battle against landslides: Early warning systems face challenges.* https://www.downtoearth.org.in
- Drishti IAS. (n.d.). *Early warning system by IIT-Roorkee researchers.* https://www.drishtiias.com
- ETV Bharat. (2025). *Uttarakhand records all-time high tourist footfall in 2025, crosses 6-crore mark.* https://www.etvbharat.com/en/state/uttarakhand-records-all-time-high-tourist-footfall-in-2025-crosses-6-crore-mark-enn26020306415
- ETV Bharat. (n.d.). *Uttarakhand 4G/2G village connectivity data.* https://www.etvbharat.com
- Forest Survey of India. (n.d.-a). *FPDSS: Forest Fire Prediction and Decision Support System.* https://fsiforestfire.gov.in/
- Forest Survey of India. (n.d.-b). *FSI Forest Fire Alert System (FAST 3.0).* https://fsi.nic.in
- Google Play Store. (n.d.). *Forest Fire Uttarakhand app.* https://play.google.com/store/apps/details?id=com.trihari.pranavi.forest_fire_uttarakhand&hl=hi
- IEJSE. (n.d.). *AI for sustainable development in Uttarakhand: Healthcare and disaster management.* International Electronic Journal of Science Education. https://iejse.com/journals/index.php/iejse/article/view/209
- IMPRI India. (n.d.). *eSanjeevani: India's national telemedicine initiative.* https://www.impriindia.com
- Indian Masterminds. (2025a). *Forest Fire Uttarakhand app: Wildfire management officer.* https://indianmasterminds.com/feature-stories-on-bureaucrats-changemakers/beyond-headlines/uttarakhand-forest-fire-app-wildfire-management-officer-137581/
- Indian Masterminds. (2025b, March). *Uttarakhand's game-changing fire app.* https://www.indianmasterminds.com
- International Journal of Advanced Research (IJAR). (n.d.). *Smart tourism practices in Sikkim: Integrating technology for sustainable tourism development.* https://www.journalijar.com/article/51373/smart-tourism-practices-in-sikkim:-integrating-technology-for-sustainable-tourism-development/

- Kashmir Life. (2025a). *Jammu and Kashmir to establish Centre of Excellence in AI and GIS for digital governance.* https://kashmirlife.net/jammu-and-kashmir-to-establish-centre-of-excellence-in-ai-and-gis-for-digital-governance-387332/
- Kashmir Life. (2025b). *Jammu Kashmir proposes Rs 20 crore AI Centre of Excellence for governance.* https://kashmirlife.net/jammu-kashmir-proposes-rs-20-crore-ai-centre-of-excellence-for-governance-427754/
- Kashmir Life. (2026). *Jammu Kashmir government constitutes department-specific officers' groups for AI implementation.* https://kashmirlife.net/jammu-kashmir-government-constitutes-department-specific-officers-groups-for-ai-implementation-436106/
- medRxiv. (n.d.). *AI Clinical Decision Support System (CDSS) for teleconsultations in eSanjeevani.* https://www.medrxiv.org
- Microsoft. (n.d.). *eSanjeevani: AI health platform revolutionising healthcare.* https://www.microsoft.com/en-in/aifirstmovers
- Mongabay India. (2024). *Uttarakhand forests burn while fire guards face outstanding salaries and lack of resources.* https://india.mongabay.com/2024/08/uttarakhand-forests-burn-while-fire-guards-face-outstanding-salaries-and-lack-of-resources/
- National Health Mission, Government of Uttarakhand. (n.d.). *Telemedicine.* https://nhm.uk.gov.in/service/telemedicine/
- NCBI/PMC. (2024). *Uttarakhand State Earthquake Early Warning System: A case study of the Himalayan environment.* Sensors. https://www.ncbi.nlm.nih.gov
- NITI Aayog Frontier Tech. (n.d.). *Low-cost indigenous sensors + AI deliver real-time landslide alerts.* https://frontiertech.niti.gov.in
- Oxford Open Digital Health. (n.d.). *Adoption and utilization of India's eSanjeevani national telemedicine service.* https://academic.oup.com
- Press Information Bureau. (n.d.-a). *Artificial Intelligence (AI) transforming Indian agriculture: YES-TECH.* https://www.pib.gov.in/PressNoteDetails.aspx?ModuleId=3&NoteId=157351&reg=3&lang=2
- Press Information Bureau. (n.d.-b). *IIT Roorkee's innovative framework for landslide early warning in the Himalayas.* https://pib.gov.in
- Sikkim PCS Notes. (n.d.). *Sustainable development initiatives of Sikkim.* https://sikkim.pscnotes.com/geography-of-sikkim/sustainable-development-initiatives-of-sikkim/
- The Better India. (n.d.). *This IIT Mandi device gives a 3-hour warning before landslides.* https://www.thebetterindia.com
- The Good Story Project. (2021). *The ghost villages of Uttarakhand.* Mongabay. https://thegoodstoryproject.com/2021/12/18/the-ghost-villages-of-uttarakhand/
- The News Mill. (2025). *India's first digital apple market launched by Adani Agri-Fresh in Himachal.* https://thenewsmill.com/2025/07/indias-first-digital-apple-market-launched-by-adani-agri-fresh-in-himachal-farmers-hail-transparent-and-profitable-model/

- The Secretariat. (n.d.). *Fighting forest fires in India: From community response to AI-powered detection.* https://thesecretariat.in
- Uttarakhand Health Department. (n.d.). *e-Swasthya Dham app.* https://www.prharyana.gov.in/en/the-government-of-uttarakhand-has-launched-a-pioneering-initiative-called-the-eswasthya-dham-app-to
- Wikipedia. (n.d.). *Geography of Uttarakhand.* https://en.wikipedia.org/wiki/Geography_of_Uttarakhand
- World Bank Blogs. (n.d.). *Spotting fires from space helps India's foresters.* https://blogs.worldbank.org

पहाड़ों से पहाड़ों की बात : उत्तराखंड में भाषा, AI और सहभागी विकास

लेखक और संबद्धता:

हर्षिता मेहता

सहायक अध्यापक

पत्रकारिता एवं मीडिया अध्ययन विद्याशाखा

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखंड

ईमेल: harshitamehta@uou.ac.in

फ़ोन नंबर: +91 8130920039

जीवनी

हर्षिता मेहता पत्रकारिता और मीडिया अध्ययन में सहायक अध्यापक हैं और वर्तमान में डिजिटलीकरण, विकास और सामाजिक आंदोलनों के अंतर्संबंधों का अध्ययन कर रही हैं। उनका शोध डिजिटलीकरण को एक उभरती हुई संचार प्रथा के रूप में देखता है जो हिमालयी राज्य उत्तराखंड में पर्यावरणीय विमर्श को आकार दे रही है। साहित्य, आलोचनात्मक मीडिया सिद्धांत और नए मीडिया अभ्यासों के प्रति उत्साही, वह समकालीन मीडिया घटनाओं के साथ ज्ञान को आगे बढ़ाकर मीडिया अध्ययन के क्षेत्र में सार्थक योगदान देना चाहती हैं।

पहाड़ों से पहाड़ों की बात : उत्तराखंड में भाषा, AI और सहभागी विकास

Abstract / सार:

उत्तराखंड की लगभग 40 प्रतिशत जनता ऐसी मातृभाषाओं में बात करती हैं जिन्हें संवैधानिक मान्यता प्राप्त नहीं है। भारत के जनभाषाई सर्वेक्षण ने राज्य में 13 भाषाएं दर्ज करी हैं, जिनमे से UNESCO द्वारा कुमाऊनी और गढ़वाली को 'संवेदनशील', जौनसारी को 'लुप्तप्राय' और राजी को 'गंभीर रूप से संकटग्रस्त' वर्गीकृत किया गया। इसके बावजूद इनमे से कोई भी भाषा संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल नहीं हैं। इस अध्याय का विषय उत्तराखंड में भाषा के लुप्त होने की घटना को एक सांस्कृतिक नुकसान की तरह पहचानना है जो विकास के आधुनिकीकरण का एक ऐसा खर्च है जिसका आंकलन अक्सर नहीं किया जाता और यह बताना है कि AI इस समस्या को हल करने में कैसे सहायक है और कैसे नहीं। AI भाषा के दस्तावेज़ीकरण और शिक्षण में निश्चित रूप से सहायक हो सकता है लेकिन भाषा के सहज, अंतर-पीढ़ीगत हस्तांतरण को सुगम नहीं बना सकता। इस अध्याय का उद्देश्य हिमालयी राज्य उत्तराखंड की भाषाओं की वर्तमान स्थिति का आकलन करना एवं, सहभागिता सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य से, पिछले तीन वर्षों में 2023 से 2026 के बीच शुरू की गई सरकारी नीतिगत अभिलेखों और पहलों की जांच करना है। अध्याय का समापन संस्कृति संरक्षण के लिए AI तकनीक के उपयोग के संदर्भ में समुदाय के स्वामित्व और समुदाय द्वारा संचालित प्रयासों पर चर्चा के साथ क्या गया है।

Keywords / संकेत शब्द: सहभागी विकास; लुप्तप्राय भाषाएँ; artificial intelligence (AI); डिजिटल समावेशन (digital inclusion); उत्तराखंड; हिमालयी विकास

परिचय

पिथौरागढ़ जिले की पूर्वी ढलानों पर, अस्कोट के ऊपर, वन में रहने वाला एक छोटा सा समुदाय बसता है, वन राजी, जिसकी आबादी मात्र एक हजार है। उन्हें अक्सर गुफाओं में रहने वाले लोगों के रूप में याद किया जाता है, अगर कभी उन्हें याद किया भी जाता है तो। समुदाय के बुजुर्ग एक ऐसी भाषा बोलते हैं जो धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है - जिसे संविधान मान्यता देने योग्य नहीं मानता और जिसे समुदाय के युवाओं द्वारा भुला दिया गया है। बच्चों को इसे सीखने से रोका नहीं गया, लेकिन उनके दादा-दादी ने इसे सिखाने का विकल्प ही नहीं चुना। वे अपनी इस स्वदेशी पहचान को आगे नहीं बढ़ा सके, जिसने उन्हें सामाजिक हाशिए पर धकेल दिया, जिसने उन पर "जंगली" होने का ठप्पा लगा दिया और खुद को और अपनी आने वाली पीढ़ियों को सामाजिक उत्थान के अवसर से वंचित कर दिया (बडोला, 2020)।

इस तरह के फैसले घर की चारदीवारी के अंदर ही लिए जाते हैं। इन्हें शायद ही कभी लिखित रूप में दर्ज किया जाता है, लेकिन ये उत्तराखंड में आज सबसे शक्तिशाली भाषा नीतियों में से एक हैं। विकास रिपोर्टें लाल रंग में घटते ग्राफ को दर्शाती हैं, बोलने वालों

की संख्या में घटे प्रतिशत का उल्लेख करती हैं, लेकिन किसी तरह उन क्षणों को दर्शाने में विफल रहती हैं जब कोई दादी अपने पोते-पोतियों की खातिर हिंदी बोलना शुरू कर देती है या उन्हें अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में दाखिला दिलाने के लिए दृढ़ संकल्पित होती है। यह चयन दशकों बाद धीरे-धीरे प्रतिबिंबित होते हैं, जब एक भाषा धीरे-धीरे लुप्त हो जाती है और कोई भी दोषी नहीं ठहराया जाता क्यूंकि एक बेहतर आर्थिक स्थिति की चाह रखना कोई अपराध नहीं है। यह अध्याय इसी मौन के बारे में है जो एक साधारण रूप से शुरू होता है। भाषा का लुप्त होना आकस्मिक नहीं है, बल्कि विकास की हमारी अवधारणा और प्रगति पाने के प्रति हमारी उथली विधि के उपयोग के कारण होता है।

भाषाओं का अस्तित्व एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचने पर निर्भर होता है, और उत्तराखंड की भाषाएँ हर दशक में अपने वाहक खोती जा रही हैं। ऐसे में AI एक उद्धारकर्ता के रूप में सामने आता है, जो न केवल वाहक की भूमिका निभाता है, बल्कि दस्तावेज़ीकरण से लेकर, अभिलेखपाल और शिक्षक की भी। उत्तराखंड राज्य में भी भाषा संरसक्षण को मद्दे नज़र रखते हुए नवंबर 2025 में राजभवन से AI मिशन शुरू हुआ। कुछ सप्ताह बाद कुमाऊँनी और गढ़वाली भाषाओं पर एक राष्ट्रीय कार्यशाला भी आयोजित की गई। राज्य के नागरिकों ने भी AI भाषा उपकरण विकसित किए हैं। इस अध्याय का यह तर्क नहीं है कि उत्तराखंड को बेहतर भाषा प्रौद्योगिकी की आवश्यकता है, बल्कि यह है कि उसे यह स्पष्ट करने की आवश्यकता है कि प्रौद्योगिकी का उद्देश्य क्या है। इस स्पष्टता के बिना, कोई भी बड़े बजट का डिजिटल नवाचार पूरी तरह से सफल हो सकता है, लेकिन फिर भी वह उस उद्देश्य की रक्षा करने में असमर्थ हो सकता है जिसके लिए इसे बनाया गया था।

इस निबंध के तर्क के लिए उत्तराखंड के नौलों का उदाहरण उपयुक्त है, जो एक प्राचीन जल संग्रहण विधि है – पहाड़ों में स्थित झरने के ऊपर पत्थर से बना तालाब। नौले पानी का सृजन नहीं करते, बल्कि उसे संग्रहित करते हैं। ये निजी संपत्ति नहीं हैं, बल्कि सामुदायिक स्वामित्व वाली संपत्ति हैं – जिनका संचालन और प्रबंधन गांव के सदस्यों द्वारा किया जाता है, और इसमें सरकार की भागीदारी नगण्य होती है (रावत और साह, 2009)। हालांकि, जब नौले उपयोग में नहीं होते और उनकी ठीक से देखभाल नहीं की जाती, तो वे सूखने और जीर्ण-शीर्ण होने लगते हैं। नौलों की छवि किसी न किसी रूप में उत्तराखंड में ठीक उसी प्रकार की समुदाय-केंद्रित प्रणाली का उदाहरण बन जाती है, जिसकी भाषा संबंधी डेटा को वर्तमान में आवश्यकता है।

विकास में भाषा का महत्व और भाषा हानि

विकास को शुरुआत से ही एक सर्वमान्य अवधारणा के रूप में देखा गया है। औद्योगिक पश्चिमी देशों के पदचिन्हों पर चलते हुए, हर समाज को एक ही राह पर चलने के लिए मजबूर किया गया, यानी पारंपरिक से आधुनिक (रोस्टोव, 1960)। सामाजिक सांस्कृतिक पहचान को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया गया, उसे अपने आप लुप्त होने के लिए छोड़ दिया गया। राष्ट्रीय भाषा के कार्यान्वयन ने भी यही राह अपनाई – प्रशासन को सुगम बनाने और राष्ट्र को एकजुट करने के लिए एक भाषा का चयन किया गया। बाकी सभी को "बोली" का नाम दे दिया गया।

आर्टुरो एस्कोबार (1995) ने तर्क दिया कि विकास यह नहीं बताता कि कौन या क्या पिछड़ा है, बल्कि यह लोगों के मन में यह धारणा पैदा करता है कि उनके जीवन में क्या कमी है। कुमाऊँनी, गढ़वाली या जौनसारी विज्ञान, साहित्य पढ़ाने या सरकारी दस्तावेजों में उपयोग के लिए अनुपयुक्त भाषाएँ नहीं हैं। इन्हें अनुपयुक्त बनाने वाला कारक यह निर्णय था कि आधिकारिक प्रपत्रों के लिए किस भाषा का उपयोग किया जाएगा, किस भाषा में परीक्षाएँ आयोजित की जाएँगी या कौन सी भाषा साक्षात्कार में चयनित होने की संभावना बढ़ाएगी।

इस प्रकार, विकास की हमारी अवधारणा को पुनर्परिभाषित करना उत्तराखंड में भाषा के लुप्त होने की वर्तमान समस्या को हल करने की दिशा में पहला कदम है। अमर्त्य सेन (1999) ने विकास को स्वतंत्रता के साथ जोड़ा, न कि आर्थिक मापन या तकनीकी उन्नति के साथ, बल्कि देश के लोगों की क्षमताओं और उनके वजूद के संदर्भ में। मार्था नुसबाम (2011) ने विकास की इस परिभाषा को आगे बढ़ाते हुए मानवीय क्षमताओं की एक सूची जोड़ी, जिसमें अपनेपन की भावना, दूसरों के साथ जुड़ाव और मानवीय तरीके से विचार और कल्पना का उपयोग करने की क्षमता शामिल है। ये क्षमताएँ भाषा के भीतर निहित हैं। इस परिप्रेक्ष्य से देखें तो, भाषा खोना केवल परंपरा से अलग होना ही नहीं है, बल्कि यह एक व्यक्ति की स्वयं की क्षमता का भी नुकसान है।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) ने अपनी 2004 की मानव विकास रिपोर्ट में इसी संदेश को दोहराया – सांस्कृतिक स्वतंत्रता मानव विकास के लिए आवश्यक है (यूएनडीपी, 2004)। अपनी भाषा बोलने, अपने धर्म का पालन करने और अपनी संस्कृति को आकार देने की स्वतंत्रता, स्वयं को चुनने की स्वतंत्रता के समान है। इस प्रकार, सांस्कृतिक स्वतंत्रता विकास का कोई अप्रत्याशित लाभ नहीं है, जो विकसित होने के बाद सभी को मिल जाता है, बल्कि यह विकास प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है।

अब यह सवाल, 'अगर भाषा का मतलब आज़ादी है, तो लोग इसे क्यों छोड़ देते हैं?' और अधिक भरी महसूस होता है। बॉर्डियू (1991) ने समझाया कि भाषा की कार्यप्रणाली मुद्राओं की तरह होती है, कुछ का मूल्य दूसरों से अधिक होता है। ये मूल्य हमारे अपने सामाजिक संस्थानों जैसे स्कूलों और कार्यालयों द्वारा निर्धारित किए जाते हैं, जो तय करते हैं कि क्या उचित और स्वीकार्य है। समय बीतने के साथ, लोग यह स्वीकार करने लगते हैं कि उनकी कम मूल्य वाली भाषा ने उन्हें गरीबी से बांध रखा है और आर्थिक रूप से आगे बढ़ने के लिए उन्हें संस्थागत रूप से स्वीकृत उच्च मूल्य वाली भाषा को अपनाना होगा। इस प्रक्रिया में, वे और उनकी आने वाली पीढ़ियाँ अपनी मातृभाषा से संपर्क खो देती हैं। इसलिए जब कोई गढ़वाली भाषी परिवार हिंदी में संवाद करते हैं और अपने बच्चों को अंग्रेजी सीखने के लिए प्रेरित करते हैं, तो वे अपनी जड़ों से विश्वासघात नहीं कर रहे हैं, बल्कि कठिन आर्थिक परिस्थितियों में अपना जीवन यापन करने का प्रयास कर रहे हैं।

पाउलो फ्रेयर (1970) ने विकास की अपनी अवधारणा बनाने पर ज़ोर दिया। उनका मानना था कि सच बोलना ही दुनिया को नाम देना है और उसे बदलने की शुरुआत करना है। जिस समुदाय को अपनी भाषा से वंचित रखा गया है उसे केवल दूसरों द्वारा बताई गई वास्तविकता ही मिलती है। यही कारण है कि भाषा का लुप्त होना भी विकास की एक समस्या है। जो समुदाय अपने कार्यों का संचालन अपनी मातृभाषा में नहीं कर पाता, वह हमेशा दूसरों द्वारा बताई गई ज़रूरतों पर ही निर्भर रहेगा।

भाषा के लुप्त होने में AI कैसे मदद कर सकता है और कैसे नहीं

AI की क्षमताओं का परीक्षण करने से पहले, यह समझना महत्वपूर्ण है कि कौन सी परिस्थितियाँ किसी भाषा को जीवित रखती हैं। यूनेस्को (UNESCO) के लुप्तप्राय भाषाओं पर तदर्थ विशेषज्ञ समूह (2003) ने नौ परीक्षण यह निर्धारित करने के लिए दिए कि कोई लुप्तप्राय भाषा कैसे जीवित रहती है:

1. अंतरपीढ़ीगत हस्तांतरण - क्या माता-पिता अपनी भाषा बच्चों को सिखाते हैं?
2. बोलने वालों की संख्या - भाषा बोलने वालों की संख्या कितनी है?
3. भाषा बोलने वाले समूह का अनुपात - जनसंख्या में उनका कितना हिस्सा है?
4. उत्पत्ति स्थलों का लुप्त होना - क्या भाषा उन स्थानों को खो रही है जहाँ इसका प्रयोग होता था?
5. नए माध्यमों की खोज - क्या यह नए स्थानों और नए माध्यमों में प्रवेश कर रही है?
6. भाषा सिखाने के साधन - क्या शिक्षण सामग्री उपलब्ध है?
7. राज्य की तत्परता - सरकारें और संस्थाएँ इस संबंध में क्या कर रही हैं?
8. सांप्रदायिक भावनाएँ - समुदाय अपनी भाषा के बारे में कैसा महसूस करता है?
9. प्रलेखन और अभिलेखन - अच्छे प्रलेखन की कितनी मात्रा उपलब्ध है?

अब, यह आकलन करना आसान होगा कि AI भाषा के लुप्त होने को कैसे रोक सकता है। AI सूची में दिए गए नौ परीक्षणों में से तीन में सफल होता है:

i. यह पाठ और भाषण को रिकॉर्ड, दस्तावेजीकृत और व्यवस्थित कर सकता है, उसे वर्गीकृत कर खोज योग्य प्रारूपों में संरक्षित कर सकता है;

ii. यह उसी दस्तावेजीकृत सामग्री का उपयोग करके भाषा के लिए शिक्षण सामग्री तैयार कर सकता है;

iii. यह उन माध्यमों में विविधता ला सकता है जिनमें भाषा मौजूद है – मोबाइल फोन, सर्च इंजन, सरकारी पोर्टल।

लेकिन AI दो अहम कसौटियों पर पूरी तरह से खरी नहीं उतरती, जो भाषा के विकास को सबसे ज़्यादा प्रभावित करती हैं। कोई भी AI तकनीक पीढ़ी दर पीढ़ी भाषा के हस्तांतरण को सुगम नहीं बना सकती। कोई भी मशीन माता-पिता को अपने बच्चों को भाषा सिखाने के लिए बाध्य नहीं कर सकती, क्योंकि यह एक सहज, स्वाभाविक प्रक्रिया है जो तब होती है जब माता-पिता बोलते हैं

और बच्चा जवाब देता है। साथ ही, कोई भी तकनीक भाषा से जुड़े हीनबोध को मिटा नहीं सकती। भाषा डेटाबेस में रिकॉर्ड सहेजने और संग्रहीत करने से वर्षों से चले आ रहे 'जंगली' कहे जाने के सामाजिक बहिष्कार को खत्म नहीं किया जा सकता।

यही समझ भाषा के लुप्त होने को रोकने के दृष्टिकोण में एक नया बदलाव लाती है – यह कोई तकनीकी कार्य नहीं है जिसमें मानवीय पहलू जुड़ा हो, बल्कि यह मुख्य रूप से एक मानवीय कार्य है जिसके लिए तकनीकी सहायता की आवश्यकता होगी। जिस प्रकार नौला पानी का उत्पादन नहीं करता बल्कि उसे संग्रहित करता है और नियमित सामुदायिक देखभाल से सुचारू रूप से चलता है, उसी प्रकार भाषा भी समुदाय-केंद्रित पहलों और AI द्वारा प्रदान की जाने वाली सहायता से जीवित रहेगी।

भाषा का संरक्षण: एक समुदाय-संचालित कार्य

एक बच्चे के पालन-पोषण के लिए पूरे गाँव की आवश्यकता होती है, यह बात आज भी उतनी ही सत्य है। पीढ़ी दर पीढ़ी भाषा का हस्तांतरण अनिवार्य रूप से एक सामुदायिक गतिविधि है, इसलिए इसे संरक्षित करने का कार्य भी समुदाय द्वारा ही किया जाना चाहिए। शेरी अर्नस्टीन (1960) ने नागरिक भागीदारी की अवधारणा को आठ स्तरों में विभाजित किया। हेरफेर या छलयोजना (manipulation) और चिकित्सा उपचार (therapy), जहाँ लोगों की बात नहीं सुनी जाती बल्कि उन्हें नियंत्रित किया जाता है, को सबसे निचले स्तर पर रखा गया। मध्य में सूचना देना (informing), परामर्श करना (consultation) और शांत करना (placation) जैसे कार्य थे। और साझेदारी (partnership), सौंपी गई शक्ति (empowerment) और नागरिक नियंत्रण (citizen control) को सबसे ऊपर रखा गया। सूचना प्रसार के बाहरी स्रोतों का परिवर्तन पर सीमित प्रभाव होता है। रॉबर्ट चैंबर्स (1997) ने इसी मुद्दे को आगे बढ़ाते हुए तर्क दिया कि जब कोई ग्रामीण किसी बाह्य विशेषज्ञ से असहमत होते हैं तो किसकी वास्तविकता मायने रखती है। उन्होंने शासन प्रणाली में बदलाव की मांग करते हुए कहा कि ऐसी परिस्तिथि में जो लोग आमतौर पर सबसे पीछे रहते हैं, उन्हें प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

बिल कुक और उमा कोठारी (2001) ने चेतावनीपूर्ण यह साझा किया कि जब बाहरी एजेंडा को लोकतांत्रिक स्वरूप देने का प्रयास किया जाता है तब भागीदारी भी एक नए प्रकार की तानाशाही बन सकती है। किसी गाँव में केवल एक बार के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए आयोजित रिकॉर्डिंग सत्र से ऐसे अभिलेखों का संग्रह तैयार होगा जिनसे पूरा समुदाय कभी भी जुड़ाव महसूस नहीं करेगा। भाषा विशेषज्ञों ने भी इस बदलाव पर ध्यान देना शुरू कर दिया है। जब नेकोटो एट अल. (2020) ने 30 से अधिक अफ्रीकी भाषाओं पर काम किया, तो उन्होंने पाया कि "कम संसाधनों" वाला डेटा समाज की गहरी समस्याओं को दर्शाता है, और निष्कर्ष निकाला कि सहभागी अनुसंधान उन सभी के लिए जगह बनाता है जिनकी आवश्यकता है, यहाँ तक कि उन अप्रशिक्षित वक्ताओं के लिए भी जिन्होंने कोई औपचारिक प्रशिक्षण प्राप्त नहीं किया है।

स्टीवन बर्ड (2020) ने स्पष्ट रूप से कहा कि जब प्रौद्योगिकीविद स्वदेशी ज्ञान को एक वस्तु की तरह मानने लगते हैं, तो वे उन स्थानीय लोगों को हाशिए पर धकेल देते हैं वास्तव में जिनके पास उस ज्ञान पर अधिकार होता है। इससे भाषा के लुप्त होने का वही

सिलसिला दोहराया जा सकता है। स्वदेशी डेटा शासन के लिए CARE सिद्धांत नियमों का सबसे स्पष्ट समूह प्रस्तुत करते हैं (स्टेफ़नी रूसो कैरोल एट अल., 2020)। यह चार बातों की मांग करता है:

1. सामूहिक लाभ - पहल का उद्देश्य और कार्य समुदाय को लाभ पहुंचाना चाहिए।

2. नियंत्रण का अधिकार - स्वदेशी समुदाय को अपने डेटा को नियंत्रित करने के नियम तय करने चाहिए।

3. उत्तरदायित्व - डेटा समुदाय की भाषा और संस्कृति में निहित होना चाहिए।

4. नैतिकता - समुदाय के मूल्य यह तय करते हैं कि किसे हानि या लाभ माना जाए।

यह चर्चा मात्र कल्पना तक सीमित नहीं है। इसे न्यूज़ीलैंड में एक सामुदायिक रेडियो स्टेशन, ते हिकु मीडिया द्वारा सफलतापूर्वक लागू किया गया है। उन्होंने माओरी नामक सामुदायिक भाषा के लिए एक वाक् तकनीक (speech technology) विकसित की और इसे 'कैतियाकितांगा' लाइसेंस (Kaitiakitanga Licence) के तहत जारी किया, जो स्वामित्व लाइसेंस के बजाय एक संरक्षक लाइसेंस है। यह लाइसेंस समुदाय को यह तय करने की शक्ति प्रदान करता है कि डेटा का उपयोग कैसे किया जाएगा और उन पहलों को प्राथमिकता देता है जो भाषा के अस्तित्व में सहायक होंगी (ते हिकु मीडिया, तिथि अज्ञात)। संरक्षकता का विचार महत्वपूर्ण है। इसे अधिकार के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसे रिश्ते के रूप में लागू किया जाता है जो डेटा सौंपे जाने के बाद भी समुदाय के दावे को कायम रखता है।

विंग किउ लाउ (2025) ने उल्लेख किया है कि विश्व की लगभग 6,700 भाषाओं में से लगभग 40% भाषाएँ जल्द ही विलुप्त होने की कगार पर हैं। इन भाषाओं को विलुप्त होने से बचाना AI तकनीक को एकीकृत करने वाले त्वरित समाधानों के बजाय सामुदायिक नेतृत्व, सहमति के सम्मान और स्थिर निधियों पर निर्भर करता है। उन्होंने यह भी ज़ोर दिया कि सामुदायिक भावनाओं सर्वप्रथम है जिन्हे अनदेखा नहीं करना चाहिए, कैसे AI द्वारा निर्मित भाषा पुस्तकें समुदाय के सदस्यों का अपमान कर सकती हैं और उनके विश्वास को ठेस पहुंचा सकती हैं।

उत्तराखंड की भाषाएँ: वर्तमान और भविष्य की संभावनाएँ

उत्तराखंड की लगभग 40% आबादी ऐसी स्थानीय भाषाएँ बोलती है जो संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल नहीं हैं (साहू, 2023)। भारत के जनभाषाई सर्वेक्षण में राज्य में कम से कम 13 भाषाएँ दर्ज की गई हैं: कुमाऊँनी, गढ़वाली, जौनसारी, राजी, थारू, बुक्सा, जौनपुरी, जौहरी, जाद, रलवु, मार्चा और बंगाणी (भट्ट और पाठक, 2015; साहू, 2023)। लगभग 20 लाख कुमाऊँनी भाषी और 23 लाख गढ़वाली भाषी हैं, जबकि हिंदी का स्थान आधिकारिक व्यावसायिक भाषा के रूप में प्रमुख बना हुआ है।

लेकिन बोलने वालों की बड़ी संख्या को भाषाओं के सुरक्षित भविष्य की गारंटी नहीं माना जाना चाहिए। यूनेस्को (2010) ने कुमाऊँनी और गढ़वाली को 'संकटग्रस्त' भाषाओं की सूची में रखा है, जिन्हें निरंतर देखभाल की आवश्यकता है। देहरादून जिले के जौनसार-बावर क्षेत्र में बोली जाने वाली जौनसारी भाषा को 'निश्चित रूप से लुप्तप्राय' घोषित किया गया है और पिथौरागढ़ जिले में वन राजी समुदाय द्वारा बोली जाने वाली राजी भाषा को 'अत्यधिक लुप्तप्राय' घोषित किया गया है (यूनेस्को, 2010)। जोशुआ फिशमैन (1991) का कहना है कि भाषा बोलने वालों की वास्तविक संख्या पीढ़ी दर पीढ़ी मायने रखती है। लाखों लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा, जिसके बच्चे कोई अन्य भाषा सीख रहे हैं, उसी राह पर है जिस राह पर केवल सौ लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा है।

भाषा के लुप्त होने की जांच करते समय तीन कारण फिर से सामने आते हैं: भाषा की पहचान ने लोगों को सामाजिक बहिष्कार के हाशिये पर धकेल दिया है, इस प्रकार, भाषा से जुड़ी शर्मिंदगी की भावना बच्चों को विरासत में मिली है, न कि उसकी शब्दावली। माता-पिता ने स्कूल और रोजगार के अवसरों के साथ तालमेल बिठाने के लिए हिंदी और अंग्रेजी को प्राथमिकता दी (साहू, 2023)। इसके अलावा, प्रवासन भी एक कारण है। राज्य के ग्रामीण विकास और प्रवासन रोकथाम आयोग के आंकड़ों के अनुसार, 2008 और 2018 के बीच 1,18,981 लोगों ने स्थायी रूप से अपने गाँव छोड़ दिए और जनवरी 2018 और सितंबर 2022 के बीच 28,531 लोगों ने (प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया, 2023)। खाली गाँव किसी भाषा को तुरंत खत्म नहीं करते, लेकिन यह भाषा को उसके मूल स्थानों से अलग कर देता है।

अब, एक नया चौथा कारण सामने आता है। इंडिक वॉइसेस, भारत की समावेशी वाक् परियोजना के रूप में शुरू हुई एक महत्वाकांक्षी पहल है, जिसने आठवीं अनुसूची में शामिल सभी 22 भाषाओं को शामिल करते हुए पहला वाक् पहचान तंत्र विकसित किया है। इसके लिए 145 जिलों के 16,237 वक्ताओं से 7,348 घंटे की रिकॉर्डिंग एकत्र की गई है (जावेद एट अल., 2024)। यह एक सराहनीय उपलब्धि है, लेकिन दुख की बात यह है कि इसमें उत्तराखंड की कोई भी भाषा शामिल नहीं है, क्योंकि संविधान उन्हें भाषा के रूप में मान्यता ही नहीं देता है। यह अपवाद, जो पहले कानून का हिस्सा था, अब डेटा मशीनों द्वारा दोहराया जा रहा है, और यह भविष्य में बनने वाली हर चीज में लागू होगा।

राष्ट्रीय प्रणालियों में सुधार लाने में लंबा समय लग सकता है, फिर भी उत्तराखंड राज्य ने इस खामी को पहचानते हुए चार सराहनीय प्रयास शुरू किए हैं, जिन पर गौर करना जरूरी है:

1. उत्तराखंड एआई मिशन 2025

   माननीय राज्यपाल द्वारा 26 नवंबर 2025 को शुरू किया गया उत्तराखंड एआई मिशन 2025, हिमालयी परिस्थितियों के लिए अपनाए गए राष्ट्रीय एआई ढांचे का अनुसरण करता है। यह डिजिटल निष्पक्षता और नैतिक जिम्मेदारी पर जोर देता है, जिसका उद्देश्य उत्तराखंड के दूरस्थ पर्वतीय क्षेत्रों तक इसके लाभ पहुंचाना है (राज भवन उत्तराखंड, 2025)। 7 जनवरी 2026 को प्रगति समीक्षा के बाद, राज्यपाल ने कहा कि विकास को अधिक समावेशी, टिकाऊ और भरोसेमंद

बनाने के लिए नए तकनीकी विचारों को नैतिक मूल्यों, पारंपरिक प्रशासनिक ज्ञान और सबसे बढ़कर मानवीय संवेदनशीलता के साथ जोड़ा जाना चाहिए (राज भवन उत्तराखंड, 2025)। यह प्रशंसनीय है कि राज्य के सर्वोच्च कार्यालय ने कार्यक्रम की रूप-रेखा में नैतिकता और निष्पक्षता को शामिल किया है, बाद में सोचे गए विचारों के रूप में नहीं, बल्कि शुरुआत से ही। हालांकि, यह मिशन अभी राज्य की भाषा और सांस्कृतिक विरासत पर लक्षित नहीं है, जो सबसे नाजुक अवस्था में है।

2. भाषिनी राजयम कार्यशाला

डिजिटल इंडिया भाषिनी प्रभाग ने दिसंबर 2025 में देहरादून में कुमाऊनी और गढ़वाली भाषाओं पर केंद्रित एक राज्य स्तरीय कार्यशाला का आयोजन किया। भाषादान, एक ऐसा मंच जहां लोग पाठ और आवाज दान करते हैं, और भाषिनी समुदाय, राज्य भाषा मिशन स्थापित करने वाला संगठन, के सहयोग से आयोजित इस कार्यशाला का उद्देश्य आवाज-प्रधान शासन व्यवस्था स्थापित करना था, जिसमें लोगों को स्कूलों, स्वास्थ्य सेवाओं और सरकारी सेवाओं से अपनी भाषाओं में जुड़ने की सुविधा देना शामिल था (प्रेस सूचना ब्यूरो, 2025a)। भाषिनी के संचालन में राज्य सरकार द्वारा कुमाऊनी और गढ़वाली डेटा का निरंतर संग्रह करना शामिल था ताकि कुशल और सटीक मॉडल तैयार किए जा सकें, और राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र ने राज्य की सरकारी वेबसाइटों में अनुवाद प्लगइन जोड़ने की योजना बनाई (प्रेस सूचना ब्यूरो, 2025b)। यह उत्तराखंड की क्षेत्रीय भाषाओं को सार्वजनिक जीवन में सार्थक स्थान दिलाने की दिशा में उठाया गया एक महत्वपूर्ण कदम है। यह संग्रह और प्रलेखन में बहुत काम करता है क्योंकि नागरिकों से आवाज दान करने के लिए कहा जाता है और रिकॉर्ड किया गया डेटा एक राष्ट्रीय मंच पर जाता है, लेकिन यह पीढ़ियों के बीच भाषा के हस्तांतरण को बढ़ावा देने में मदद नहीं करता है और न ही यह स्वदेशी समुदायों को कोई स्वायत्तता प्रदान करता है।

3. भाषा संस्थान का डिजिटल संग्रहालय

2010 में स्थापित उत्तराखंड भाषा संस्थान, 2018 के एक अधिनियम के तहत, कुमाऊँनी, गढ़वाली, जौनसारी, थारू, बुक्सा, रंग और भोटिया भाषाओं के साथ-साथ लोक संगीत और मौखिक इतिहास के डिजिटल अभिलेखागारों का रिकॉर्डिंग, अनुवाद, प्रकाशन और मानकीकरण कर रहा था। जून 2025 में इसने एक डिजिटल संग्रहालय बनाने का निर्णय लिया, जिसमें लोकगीत, लोककथाएँ, साहित्य, मुहावरे और कहावतें शामिल होंगी, जिन्हें मोबाइल एप्लिकेशन, कॉमिक्स, वीडियो पुस्तकें, ई-लर्निंग पाठ्यक्रम और पॉडकास्ट के माध्यम से उपलब्ध कराया जाएगा। इसके अलावा, राज्य विश्वविद्यालयों में स्थानीय भाषा और संस्कृति के लिए समर्पित केंद्र भी स्थापित किए जाएंगे (पायनियर एज, 2025)। यह पहल स्वदेशी संस्कृति और भाषा के संरक्षण में सहायक है, लेकिन भाषा के लुप्त होने की वर्तमान समस्या यह मांग करती है कि भाषाओं को संग्रहालयों से बाहर निकालकर सीधे उपयोग में लाया जाए। किसी जीवित भाषा को

केवल संग्रहालय में संग्रहित करना उसे मृत घोषित करने और उसके लिए एक समाधि बनाने के समान है, जबकि उसे पुनर्जीवित करने के लिए सक्रिय प्रयास किए जाने चाहिए।

4. नागरिक नेतृत्व वाला प्रयास – Pahadi.AI

   सितंबर 2025 में घोषित, पद्मश्री पुरस्कार विजेता एवं जागर गायक प्रीतम भरतवान के नेतृत्व में, कुछ सांस्कृतिक अध्ययन विद्वानों द्वारा देहरादून में एक पहल शुरू की गई, जिसका उद्देश्य AI का उपयोग करके कुमाऊँनी, गढ़वाली और जौनसारी भाषाओं का संरक्षण करना था (गढ़वाल पोस्ट, 2025a)। नवंबर 2025 तक, उत्तराखंड के दो आईटी पेशेवरों द्वारा Pahadi.AI का शुभारंभ किया गया। हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय और राज्य सरकार द्वारा समर्थित, यह परियोजना आवाज और पाठ के माध्यम से काम करती है और इसे तैयार होने में लगभग अठारह महीने लगे। इसमें गढ़वाली भाषा पर प्रारंभिक कार्य के साथ उत्तरकाशी जिले में बोलियों पर क्षेत्र कार्य शामिल है (ETV भारत, 2025; Pahadi.AI, n.d.)। यह पहल महत्वाकांक्षी है क्योंकि यह समुदाय से उत्पन्न हुई है, जिसकी नींव क्षेत्र कार्य और स्थानीय विशेषज्ञों की सहायता पर आधारित है। लेकिन इसके लिए एक सशक्त लाइसेंस ढांचा आवश्यक है जो सहमति और समझौते संबंधी कानूनों को लागू करे और, इससे भी महत्वपूर्ण, समुदाय को उसके द्वारा साझा किए जाने वाले ज्ञान का संरक्षक बनाए।

इन सभी पहलों की एक साझा ताकत है, और वो है इनकी गति। राज्य सरकार, संस्थाओं और आम नागरिकों का गठबंधन इन परियोजनाओं को और भी सशक्त बनाता है। इनमें से अधिकांश पहलें उत्पादन और सृजन पर केंद्रित हैं, जो एक अच्छी शुरुआत है, लेकिन इनमें शासन व्यवस्था की भी आवश्यकता है। सहमति के नियम, समझौते, एक साझा मानक और ऐसी शक्ति होनी चाहिए जो उत्तराखंड के स्वदेशी समुदायों को उनकी संस्कृति और भाषा पर अपना अधिकार प्रदान करे। यह एक व्यावहारिक समस्या होने के साथ-साथ एक नैतिक समस्या भी है।

भाषा के लिए AI : नया दृष्टिकोण

विकास के पिछले मॉडल में भाषा को एक बाधा के रूप में देखा जाता था। एक देश में एक ही भाषा बोलने के मुख्य लक्ष्य के साथ, मातृभाषा एक अस्थायी व्यवस्था बनकर रह गई थी। लेकिन जन-केंद्रित दृष्टिकोण के तहत, मातृभाषा विकास को पुनर्परिभाषित करने वाला एक सहायक बन जाती है। यही कारण है कि भाषा सहभागिता की प्रक्रिया का हिस्सा बन जाती है। वर्तमान समय की आवश्यकता प्रौद्योगिकी द्वारा समर्थित समुदाय-केंद्रित विकास है, न कि समुदाय के लिए प्रौद्योगिकी-सक्षम विकास। इसलिए, वर्तमान आवश्यकता अधिक से अधिक प्रौद्योगिकी नहीं है, बल्कि प्रौद्योगिकी के उद्देश्य की स्पष्ट समझ है।

यहां चार संभावनाएं दी गई हैं जो भाषा के लुप्त होने को रोकने में AI एकीकरण को अधिक समग्र बना सकती हैं:

1. एकत्रित अभिलेखों पर अधिकार का निर्धारण: प्रलेखन के अगले चरण से पहले एक सामुदायिक भाषा-साझा मंच स्थापित किया जा सकता है। ओस्ट्रोम (1990) के निष्कर्षों और CARE नियमों (कैरोल एट अल., 2020) को ध्यान में रखते हुए, इस प्रकार की संस्था को यह स्पष्ट रूप से निर्धारित करना होगा कि किस प्रकार की सामग्री को शामिल किया जाए, जो स्थानीय स्तर पर नियम बनाएगी और लोगों को केवल प्रजाजन बनकर रह जाने के बजाय उन्हें अधिक सक्रियता प्रदान करेगी। उत्तराखंड भाषा संस्थान, अपने डिजिटल संग्रहालय के साथ, पहले से ही प्रलेखन और अभिलेखन का कार्य कर रहा है। इसमें कमी यह है कि अभिलेखित सामग्री का अधिकार समुदाय के सदस्यों को नहीं सौंपा गया है।

2. स्वामित्व के बजाय संरक्षकता: कैतियाकितंगा लाइसेंस (Kaitiakitanga Licence) (ते हिकु मीडिया, दिनांक अज्ञात) ने रिकॉर्ड की गई भाषा सामग्री के अधिकार स्थानीय समुदायों के पास सुरक्षित रखे हैं, जिसे उत्तराखंड में भी अपनाया जा सकता है। इससे न केवल समुदाय को पहुंच और अधिकार प्राप्त होगा, बल्कि जागर रिकॉर्डिंग जैसी पवित्र सामग्री को भी अधिक सावधानी से रखा जा सकेगा, जिसका वर्णन और संग्रहण दस्तावेज़ बनाने वालों के बजाय कलाकारों द्वारा किया जाएगा।

3. ग्राम के बुजुर्गों को विशेषज्ञ मानना, स्रोत नहीं: भाषाओं के डेटा संग्रह की प्रक्रिया एक धाराप्रवाह वक्ता को आपूर्ति बैंक में बदल सकती है। इसलिए, ग्राम के बुजुर्गों से डेटा एकत्र करते समय सावधानी बरतना, उनकी सहमति का सम्मान करना, उनके काम का श्रेय देना, असहमति व्यक्त करने या वापस लेने की स्वतंत्रता की गारंटी देना और उनके योगदान के लिए उन्हें उचित भुगतान करना आवश्यक हो जाता है।

4. मातृभाषा का दैनिक उपयोग: भाषा के लुप्त होने की रोकथाम की प्रक्रिया केवल अभिलेखों में सहेजने तक सीमित नहीं है। आधिकारिक वेबसाइटों, पोर्टलों, कॉलर-ट्यून्स, प्राथमिक शिक्षा के माध्यम आदि में जानबूझकर मातृभाषा के अंशों को शामिल करने से भाषा को रोजमर्रा की जिंदगी में जगह मिलती है। जब मातृभाषा का भावनात्मक महत्व के साथ-साथ वास्तविक दुनिया में भी महत्व होता है, तो इससे भाषा के प्रति खोया हुआ विश्वास फिर से जागृत होता है।

निष्कर्ष

किसी भाषा पहल की सफलता के मापन में अधिक व्यापक मापदंडों को शामिल करने के लिए संशोधित किया जाना चाहिए। किसी भाषा कार्यक्रम का मूल्यांकन केवल रिकॉर्ड किए गए घंटों की संख्या या मशीन द्वारा प्राप्त जानकारी की सटीकता के आधार पर नहीं किया जा सकता। इसके लिए यह भी जानना आवश्यक है कि कितने बच्चे अब अपने दादा-दादी से संवाद कर सकते हैं और भाषा किस हद तक आम बोलचाल में वापस आ गई है। इन मानकों की गणना करना कठिन है, लेकिन इनसे एक समग्र तस्वीर सामने आती है।

अब तक की चर्चा AI के उपयोग के विरुद्ध कोई तर्क नहीं है। AI की मदद के बिना हमारी भाषाओं का इतनी तेज़ी और व्यापकता से अभिलेखन, दस्तावेज़ीकरण और संगठन संभव नहीं होता। यहाँ मुद्दा यह है कि भूमिका किसकी है। इस तकनीक को नौला के समान समझा जा सकता है, यह केवल उस जल को संजोकर रखती है जिसे पर्वत उत्पन्न करता है। इसका महत्व इस बात पर निर्भर करता है कि यह कितने लोगों तक पहुँचती है और कितनो की प्यास बुझाती है। यदि इसे एक बंद, निजी जलाशय की तरह बनाया जाए, तो यह केवल एक संग्रहालय बनकर रह जाएगा, लेकिन जब इसे गाँव की साझा संपत्ति की तरह बनाया जाता है, तो यह एक बारहमासी, प्रचुर स्रोत बना रहता है। AI की सहायता से भाषा संरक्षण का लक्ष्य दस्तावेज़ीकरण से आगे बढ़कर उन समुदायों में भाषाओं को पुनर्जीवित करना होना चाहिए जहाँ वे कभी लुप्त हो गई थीं और मूल निवासियों को हितधारक की भांति सक्रिय रूप से शामिल करना होना चाहिए।

संदर्भ सूची

आर्नस्टीन, एस. आर. (1969). नागरिक सहभागिता की सीढ़ी [A ladder of citizen participation]. *जर्नल ऑफ द अमेरिकन इंस्टिट्यूट ऑफ प्लानर्स, 35*(4), 216–224. https://doi.org/10.1080/01944366908977225

बडोला, ई. (2020, 24 दिसम्बर). *उत्तराखंड के संकटग्रस्त वन राजी समुदाय को बिना कुछ थोपे कैसे बचाया जा सकता है?* [How can Uttarakhand's endangered Van Raji people be saved without imposing?]. द क्विंट. https://www.thequint.com/opinion/van-raji-endangered-tribe-uttarakhand-cave-dwellers-forest-land-rights-disappearing-languages-loss-of-livelihood

भट्ट, यू., एवं पाठक, एस. (संपा.). (2015). *उत्तराखंड की भाषाएँ* [The languages of Uttarakhand] (भारतीय भाषा लोक सर्वेक्षण, खंड 30, भाग 2; जी. एन. देवी, प्रधान संपादक). ओरिएंट ब्लैकस्वान.

बर्ड, एस. (2020). वाक् एवं भाषा प्रौद्योगिकी का विऔपनिवेशीकरण [Decolonising speech and language technology]. *28वें अंतर्राष्ट्रीय कंप्यूटेशनल भाषाविज्ञान सम्मेलन की कार्यवाही* में (पृ. 3504–3519). इंटरनेशनल कमेटी ऑन कंप्यूटेशनल लिंग्विस्टिक्स. https://aclanthology.org/2020.coling-main.313/

बोर्दियू, पी. (1991). *भाषा और प्रतीकात्मक सत्ता* [Language and symbolic power] (जे. बी. थॉम्पसन, संपा.; जी. रेमंड एवं एम. एडमसन, अनु.). हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

कैरोल, एस. आर., गार्बा, आई., फिगेरोआ-रोड्रिगेज़, ओ. एल., होलब्रुक, जे., लवेट, आर., मातेरेचेरा, एस., पार्सन्स, एम., रासेरोका, के., रोड्रिगेज़-लोनबियर, डी., रोव, आर., सारा, आर., वॉकर, जे. डी., एंडरसन, जे., एवं हडसन, एम. (2020).

मूलनिवासी डेटा अभिशासन के CARE सिद्धांत [The CARE Principles for Indigenous Data Governance]. *डेटा साइंस जर्नल, 19*(1), 43. https://doi.org/10.5334/dsj-2020-043

चैम्बर्स, आर. (1997). *किसकी वास्तविकता मायने रखती है? जो अंत में हैं उन्हें पहले रखना* [Whose reality counts? Putting the first last]. इंटरमीडिएट टेक्नोलॉजी पब्लिकेशन्स.

कुक, बी., एवं कोठारी, यू. (संपा.). (2001). *सहभागिता: नया दमन?* [Participation: The new tyranny?]. ज़ेड बुक्स.

एस्कोबार, ए. (1995). *विकास से साक्षात्कार: तीसरी दुनिया का निर्माण और विघटन* [Encountering development: The making and unmaking of the Third World]. प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस.

ईटीवी भारत. (2025, 18 नवम्बर). *उत्तराखंड के आईटी पेशेवरों ने पहाड़ी भाषाओं के संरक्षण हेतु एआई पहल शुरू की* [Uttarakhand IT professionals launch AI initiative to preserve Pahari languages]. https://www.etvbharat.com/en/technology/uttarakhand-it-professionals-launch-ai-initiative-to-preserve-pahari-languages-enn25111803425

फिशमैन, जे. ए. (1991). *भाषा-परिवर्तन को उलटना: संकटग्रस्त भाषाओं की सहायता के सैद्धांतिक एवं अनुभवजन्य आधार* [Reversing language shift: Theoretical and empirical foundations of assistance to threatened languages]. मल्टीलिंगुअल मैटर्स.

फ्रेरे, पी. (1970). *उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र* [Pedagogy of the oppressed] (एम. बी. रामोस, अनु.). हर्डर एंड हर्डर.

गढ़वाल पोस्ट. (2025a, 3 सितम्बर). *एआई के माध्यम से गढ़वाली, कुमाऊँनी एवं जौनसारी भाषाओं के संरक्षण की पहल प्रस्तावित* [Initiative planned to preserve Garhwali, Kumaoni & Jaunsari languages through AI]. https://garhwalpost.in/initiative-planned-to-preserve-garhwali-kumaoni-jaunsari-languages-through-ai/

गढ़वाल पोस्ट. (2025b, 15 सितम्बर). *राज्यपाल ले. जनरल गुरमीत सिंह (सेवानिवृत्त) ने पद पर चार वर्ष पूर्ण किए* [Gov Lt General Gurmit Singh (Retd) completes four years in office]. https://garhwalpost.in/gov-lt-general-gurmit-singh-retd-completes-four-years-in-office/

जावेद, टी., नवाले, जे., जॉर्ज, ई., जोशी, एस., भोगले, के., मेहेंदले, डी., सेठी, आई., अनंतनारायणन, ए., फ़कीह, एच., पालित, पी., रविशंकर, एस., सुकुमारन, एस., पंचगनुला, टी., मुरली, एस., गांधी, के., अम्बुजवल्ली, आर., मणिकम, एम., वैजयंती, सी., करुणगन्नी, के., … खापड़ा, एम. (2024). इंडिकवॉइसेस: भारतीय भाषाओं हेतु समावेशी बहुभाषी वाक् डेटासेट के निर्माण की दिशा में [IndicVoices: Towards building an inclusive multilingual speech dataset for Indian languages].

फाइंडिंग्स ऑफ द एसोसिएशन फॉर कंप्यूटेशनल लिंग्विस्टिक्स: ACL 2024 में (पृ. 10740–10782). एसोसिएशन फॉर कंप्यूटेशनल लिंग्विस्टिक्स. https://aclanthology.org/2024.findings-acl.639/

लाउ, डब्ल्यू. के. (2025, 11 दिसम्बर). *भाषा एवं सांस्कृतिक संरक्षण हेतु एआई* [AI for language and cultural preservation]. बोडॉइन साइंस जर्नल. https://students.bowdoin.edu/bowdoin-science-journal/csci-tech/ai-for-language-and-cultural-preservation/

शिक्षा मंत्रालय. (2020). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* [National Education Policy 2020]. भारत सरकार. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf

नेकोटो, डब्ल्यू., मारिवाते, वी., मत्सीला, टी., फसुबा, टी., फगबोहुंगबे, टी., अकिनोला, एस. ओ., मुहम्मद, एस., कबोंगो कबेनामुआलु, एस., ओसेई, एस., सैकी, एफ., न्यिओंगाबो, आर. ए., माचार्म, आर., ओगायो, पी., अहिया, ओ., बेरियो, एम. एम., मोकगेसी-सेलिंगा, एस., ओकेगबेमी, एल., मार्टिनस, एल., ताजुदीन, के., … बशीर, ए. (2020). अल्प-संसाधन मशीनी अनुवाद हेतु सहभागी शोध: अफ़्रीकी भाषाओं का एक अध्ययन [Participatory research for low-resourced machine translation: A case study in African languages]. *फाइंडिंग्स ऑफ द एसोसिएशन फॉर कंप्यूटेशनल लिंग्विस्टिक्स: EMNLP 2020* में (पृ. 2144–2160). एसोसिएशन फॉर कंप्यूटेशनल लिंग्विस्टिक्स. https://aclanthology.org/2020.findings-emnlp.195/

नुसबाम, एम. सी. (2011). *क्षमताओं का सृजन: मानव विकास दृष्टिकोण* [Creating capabilities: The human development approach]. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

पहाड़ी.एआई. (तिथि रहित). *पहाड़ी.एआई: हिमालयी भाषाओं के लिए एआई* [Pahadi.AI: AI for Himalayan languages]. 12 अगस्त 2026 को https://pahadi.ai/ से प्राप्त

पायनियर एज. (2025, 9 जून). *लोक साहित्य एवं लोकगीतों के डिजिटल संग्रहालय हेतु भाषा संस्थान* [Bhasha Sansthan for digital museum for folk literature, songs]. https://www.pioneeredge.in/bhasha-sansthan-for-digital-museum-for-folk-literature-songs/

पत्र सूचना कार्यालय. (2025a, 17 दिसम्बर). *भाषिणी राज्यम् कार्यशाला: उत्तराखंड में गढ़वाली एवं कुमाऊँनी हेतु एआई-आधारित भाषा नवाचार कार्यशाला* [BHASHINI Rajyam workshop: Advance AI-driven language innovation workshop for Garhwali & Kumaoni in Uttarakhand]. इलेक्ट्रॉनिकी एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार. https://www.pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2204676

पत्र सूचना कार्यालय. (2025b, 19 दिसम्बर). *भाषिणी द्वारा गढ़वाली एवं कुमाऊँनी के सशक्तीकरण के साथ उत्तराखंड ने अपनाया वाक्-प्रथम डिजिटल शासन* [Uttarakhand embraces voice-first digital governance as BHASHINI empowers Garhwali & Kumaoni]. इलेक्ट्रॉनिकी एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार. https://www.pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2206440

प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया. (2023, 10 मार्च). *पिछले पाँच वर्षों में उत्तराखंड से पलायन की दर में गिरावट: रिपोर्ट* [Decline in rate of migration from Uttarakhand over the last 5 years: Report]. बिज़नेस स्टैंडर्ड. https://www.business-standard.com/article/current-affairs/decline-in-rate-of-migration-from-uttarakhand-over-the-last-5-years-report-123031001024_1.html

राज भवन उत्तराखंड. (2025, 26 नवम्बर). *राज्यपाल ने राजभवन में "उत्तराखंड एआई मिशन–2025" नीति का शुभारंभ किया* [Governor launched the "Uttarakhand AI Mission–2025" policy at Raj Bhawan]. https://governoruk.gov.in/26-11-2025-governor-launched-the-uttarakhand-ai-mission-2025-policy-at-raj-bhawan/

राज भवन उत्तराखंड. (2026, 7 जनवरी). *आईटी विभाग ने राज्यपाल से भेंट की, उत्तराखंड एआई मिशन की प्रगति की समीक्षा* [IT Department meets Governor, progress of Uttarakhand AI Mission reviewed]. https://governoruk.gov.in/07-01-2026-it-department-meets-governor-progress-of-uttarakhand-ai-mission-reviewed/

रावत, ए. एस., एवं साह, आर. (2009). कुमाऊँ हिमालय में जल प्रबंधन का पारंपरिक ज्ञान [Traditional knowledge of water management in Kumaon Himalaya]. *इंडियन जर्नल ऑफ ट्रेडिशनल नॉलेज, 8*(2), 249–254.

रोस्टो, डब्ल्यू. डब्ल्यू. (1960). *आर्थिक संवृद्धि की अवस्थाएँ: एक ग़ैर-साम्यवादी घोषणापत्र* [The stages of economic growth: A non-communist manifesto]. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

साहू, पी. (2023). उत्तराखंड की भाषाई विविधता का संरक्षण: भाषा एवं शिक्षा नीतियों की भूमिका [Preserving the linguistic diversity of Uttarakhand: Role of language and education policies]. *इंडियन जर्नल ऑफ लैंग्वेज एंड लिंग्विस्टिक्स, 4*(2), 32–41. https://doi.org/10.54392/ijll2324

सेन, ए. (1999). *स्वतंत्रता के रूप में विकास* [Development as freedom]. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

ते हिकु मीडिया. (तिथि रहित). *डेटा संप्रभुता और कैतिआकितांगा लाइसेंस* [Data sovereignty and the Kaitiakitanga License]. 12 अगस्त 2026 को https://tehiku.nz/te-hiku-tech/te-hiku-dev-korero/25141/data-sovereignty-and-the-kaitiakitanga-license से प्राप्त

यूएनडीपी. (2004). *मानव विकास रिपोर्ट 2004: आज की विविधतापूर्ण दुनिया में सांस्कृतिक स्वतंत्रता* [Human development report 2004: Cultural liberty in today's diverse world]. संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम. https://hdr.undp.org/content/human-development-report-2004

यूनेस्को. (2003). *भाषा जीवंतता एवं संकटग्रस्तता* [Language vitality and endangerment]. संकटग्रस्त भाषाओं पर यूनेस्को तदर्थ विशेषज्ञ समूह. https://unesdoc.unesco.org/ark:/48223/pf0000183699

यूनेस्को. (2010). *विश्व की संकटग्रस्त भाषाओं का एटलस* [Atlas of the world's languages in danger] (सी. मोज़ली, संपा.; तीसरा संस्करण). यूनेस्को पब्लिशिंग. https://www.unesco.org/languages-atlas/

उत्तराखंड भाषा संस्थान. (तिथि रहित). *संस्थान के बारे में* [About the institute]. 12 अगस्त 2026 को https://www.ukbhashasansthan.in/ से प्राप्त

21वी सदी की चुनौतियां : डिजिटल युग में समावेशी शिक्षा की सामाजिक, संवेगात्मक बाधाएं और उपाय (challenges of the 21st Century: Social, Emotional Barriers And Measures Inclusive Education In The Digital Age)

डॉ. राकेश कुमार शर्मा
सहायक प्राध्यापक (एसी), विशेष शिक्षा विभाग
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखंड

Email id:rksharma@uou.ac.in

Mobile no 8923354620

1. भूमिका (Introduction)

21वीं सदी तकनीकी क्रांति की सूचक है। विश्व के जन समूहों के लगभग सभी पक्षों को सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के अप्रत्याशित एवं चमत्कारी विस्फोट में सभी को प्रभावित किया है। आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक आदि सभी क्षेत्र भी इसके प्रभाव से वंचित नहीं रहे और साथ ही शिक्षा के क्षेत्र में भी आईसीटी ने काफी बदलाव किए हैं। आज की शिक्षा केवल पारंपरिक ज्ञान तक ही सीमित नहीं रही अपितु छात्रों के सर्वांगीण विकास में भी भूमिका निभा रही है। आज शिक्षा के अंतर्गत समावेशी शिक्षा की बात होती है समावेशी शिक्षा का प्रत्यय काफी संवेदनशील और महत्वपूर्ण है। समावेशी शिक्षा का शाब्दिक अर्थ है-सभी को शिक्षा अर्थात बिना किसी भेदभाव के सामान्य विद्यालय में एक ही कक्षा में सामान्य बच्चों के साथ शिक्षा देना। समावेशी शिक्षा साधारणत: केवल विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों को साधारण विद्यालय में रखने से ही संबंधित नहीं है। वरन यह उन परिस्थितियों से भी संबंधित है जिसके अंतर्गत हम प्रत्येक बालक को प्रभावशाली ढंग से शिक्षित कर सकते हैं। **यूनेस्को** के अनुसार समावेशी शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें प्रत्येक बच्चे की अलग-अलग आवश्यकता को समझ कर भेदभाव को समाप्त करके सभी को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने का प्रयास किया जाता है।

स्टीफन तथा ब्लैक हर्ट के अनुसार _

शिक्षा की मुख्य धारा का अर्थ बाधित (पूर्ण रूप से अपंग नहीं) बालकों की सामान्य कक्षाओं के शिक्षण की व्यवस्था करना है। यह समान अवसर मनोवैज्ञानिक सोच पर आधारित है जो व्यक्तिगत योजना के द्वारा उपयुक्त सामाजिक मानकीकरण और अधिगम को बढ़ावा देती है।"

आज के डिजिटल युग ने समावेशी शिक्षा को महत्वपूर्ण व रोचक बना दिया है। सामान्य बच्चों के साथ विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए सहायक तकनीकों, स्क्रीन रीडर ओर कस्टमाइज्ड लर्निंग एप्स आदि प्रयोग होने से बच्चों के सामने ज्ञान के भंडार उपस्थित हो गए हैं। लेकिन डिजिटल युग ने एक आदर्श समस्या को भी उपस्थित कर दिया है जैसे कि डिजिटल युग की समावेशी शिक्षा में सामाजिक एवं संवेगात्मक बाधाओं का होना।

विदित है कि आज परंपरागत शिक्षा में तकनीकी ने काफी बदलाव किए हैं। बच्चे केवल कक्षाओं का हिस्सा नहीं है अपितु वो अब साथ में एक आभासी दुनिया (virtual world) से भी जुड़े हुए हैं। आज तकनीकी के बढ़ते हस्तक्षेप से बच्चों का शारीरिक स्वास्थ्य व मानसिक स्वास्थ्य के साथ संवेगात्मक संतुलन भी प्रभावित हो रहा है। कारण यह है कि आज की समावेशी कक्षा में पहले से कहीं अधिक विशेष

आवश्यकता वाले बच्चों की संख्या बढ़ गई है। यह डिजिटल विभाजन और सामाजिक एवं संवेगात्मक समस्या एक गंभीर चुनौती खड़ी कर रही है।

क्योंकि वर्तमान समय में हमारी परंपरागत शिक्षण पद्धतियां प्रासंगिक नहीं है और हमारे शिक्षक भी तकनीकी रूप से इतने कुशल नहीं है। समावेशी शिक्षा में सामान्य बालकों के साथ विशेष बालक भी सामाजिक व संवेगात्मक समस्याओं से परिचित नहीं होते हैं। ऐसे में शिक्षकों को तकनीकी कौशलों के साथ बालकों की सामाजिक व संवेगात्मक समस्याओं के समझने और उनका हल करने का प्रशिक्षण भी आवश्यक है।

हमारे अध्याय का उद्देश्य भी डिजिटल युग में समावेशी शिक्षा के अंतर्गत होने वाली सामाजिक एवं सवेगात्मक

बाधाओ और उसके समाधान के उपाय का गहन अध्ययन करना है। विद्यालयों की भौतिक बढ़ाओ को तकनीकी ने कम कर दिया है जैसे अस्ति बाधित बालकों की व्हीलचेयर के लिए आने-जाने के स्थान पर रैंप का निर्माण करना या अन्य साधन उपलब्ध कराए गए हैं। परंतु साथ ही तकनीकी ने बच्चों में एक खालीपन भी दिया है। समावेशी शिक्षा का जो मूल सिद्धांत है सह अस्तित्व का सिद्धांत और सहानुभूति (empathy) उसे स्क्रीन के माध्यम से नहीं सिखाया जा सकता है। समावेशी शिक्षा का वर्तमान परिदृश्य हमें बताता है कि तकनीकी समावेशन के साथ मानवीय और संवेगात्मक समावेशन भी आवश्यक है।

डिजिटल युग (Digital Era) ने समावेशी शिक्षा को नए आयाम दिए हैं। एक ओर जहाँ सहायक तकनीकों (Assistive Technologies), स्क्रीन रीडर्स, और कस्टमाइज्ड लर्निंग ऐप्स ने दिव्यांग (Children with Special Needs - CWSN) और वंचित वर्ग के बच्चों के लिए ज्ञान के द्वार खोले हैं, तकनीकी के इस अति-उपयोग और निर्भरता ने बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य, संवेगात्मक संतुलन और सामाजिक कौशल को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। विशेष रूप से समावेशी कक्षा में, जहाँ पहले से ही विविध आवश्यकताओं वाले बच्चे मौजूद हैं, यह डिजिटल विभाजन (Digital Divide) और सामाजिक-संवेगात्मक असंतुलन एक गंभीर चुनौती बन चुका है।आज पारंपरिक शिक्षण पद्धतियाँ अप्रासंगिक साबित हो रही हैं। वर्तमान समय की माँग है कि शिक्षकों को न केवल तकनीकी रूप से दक्ष बनाया जाए, बल्कि उन्हें शिक्षार्थियों की सामाजिक और संवेगात्मक समस्याओं को समझने और उनका निदान करने के लिए भी प्रशिक्षित किया जाए। समावेशी शिक्षा का मूल सिद्धांत 'सह-अस्तित्व' (Co-existence) और 'सहानुभूति' (Empathy) है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार भारत में प्रत्येक बच्चे को चाहे उसकी शारीरिक, मानसिक या सामाजिक स्थिति कैसी भी हो सामान्य विद्यालय में ही शिक्षा मिलनी चाहिए। विद्यालय का काम है स्वयं को बच्चों के अनुकूल ढालना ना कि बच्चों को विद्यालय के अनुकूल ढालना।

2.21वीं सदी की समावेशी शिक्षा का समकालीन परिदृश्य (Contemporary Scenario of Inclusive Education in the 21st Century)

समावेशी शिक्षा के इतिहास पर दृष्टि डालें तो अधिकारों पर आधारित दृष्टिकोण (Rights-based Approach) से जुड़ा हुआ है। वैश्विक स्तर पर 'सलामंका घोषणापत्र' (Salamanca Statement, 1994) से लेकर संयुक्त राष्ट्र के 'दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकारों पर कन्वेंशन' (UNCRPD, 2006) तक, समावेशी शिक्षा को एक मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दी गई है। भारत के परिप्रेक्ष्य में, शिक्षा का अधिकार अधिनियम (RTE, 2009), दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम (RPwD Act, 2016) और हाल ही में घोषित राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP, 2020) ने समावेशी शिक्षा के प्रति देश की प्रतिबद्धता को और अधिक सुदृढ़ किया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी स्पष्ट कहा गया है कि शिक्षा को न्याय संगत एवं समावेशी होना चाहिए। सामान्य बालकों के साथ दिव्यांग बालकों को भी चाहे उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति कैसी भी क्यों ना हो शिक्षा के समान अवसर मिलने चाहिए। शिक्षा में तकनीकी का उपयोग विवेक पूर्ण हो और देश के सभी बालकों के पास शिक्षा की पहुंच सुनिश्चित की जानी चाहिए। ऐसे में आज की समावेशी

शिक्षा के अंतर्गत विविधता बढ़ गई है। पहले शिक्षा में सामान्य बालक ही होते थे परंतु अब सभी को एक साथ शिक्षा होने से (शारीरिक अक्षमता, श्रवण बधिरता, नेत्र हीनता, ऑर्थोपेडिक) के साथ ही इसमें न्यूरो डेवलपमेंट विकार जैसे ASD (ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर), ADHD (अटेंशन डेफिसिट हाइपर एक्टिविटी डिसऑर्डर) विशिष्ट शिक्षण अक्षमता (SLD), और डिजिटल तकनीकों के कारण उत्पन्न व्यवहार संबंधी विकार (Behavioral Disorders) भी सम्मिलित हो चुके हैं।

3. वर्तमान डिजिटल युग में शिक्षा का तकनीकीकरण: (Technologicalization of education in the current digital age)

डिजिटल तकनीक के प्रयोग से शिक्षा में एक एक द्वंद्वात्मक स्थिति पैदा हो गई है जिसके कई प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं।

3.1 तकनीकीकरण के सकारात्मक पक्ष (The positive side of technologization)

शिक्षा में तकनीकी के सकारात्मक पक्ष (चित्र 1)

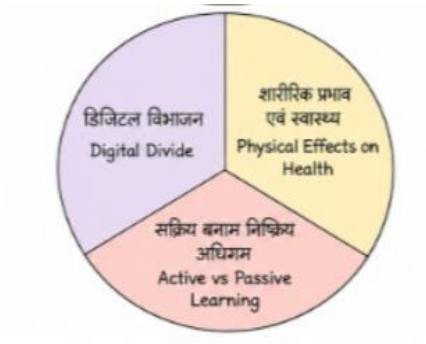


इसके अंतर्गत तकनीकी ने शिक्षा की पहुंच बालकों तक काफी सुगम बना दी है जैसे दृष्टिबाधितों के लिए टॉक बैक (talk back) और स्क्रीन रीडर (screen readers) सॉफ्टवेयर जैसे NVDA,JAWS आदि ने पुस्तक आदि को उपलब्ध करा दिया है। इस तरह श्रवण बाधितों के लिए ऑटो कैप्शनिंग और सांकेतिक भाषा के डिजिटल रूपांतरण करने वाले उपकरणों को भी उपलब्ध करा दिया है। वहीं बालक जब अपनी क्षमता और गति से सीखना है तब उसकी स्वतंत्रता के लिए डिजिटल प्लेटफॉर्म (जैसे दीक्षा ई-पाठशाला) भी उपलब्ध हैं। यहां यह कहना महत्वपूर्ण है कि इससे विशेष बालकों को काफी लाभ हुआ है। अब बालक खेल-खेल में शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं वहीं वह बालक जो बौद्धिक क्षमता से पीड़ित हैं उन्हें भी अमूर्त अवधारणाओं को समझने में आसानी होती है।

3.2 तकनीकीकरण के नकारात्मक पक्ष अथवा चुनौतियां

(Negative aspects or challenges of technology)

शिक्षा में तकनीकी के नकारात्मक पक्ष (चित्र नंबर द)

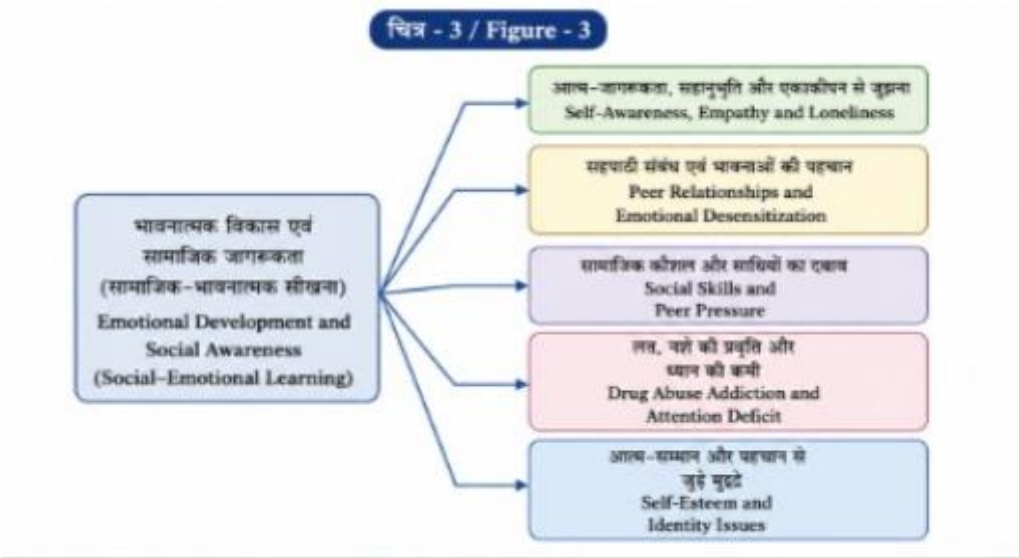


यदि हम अपने देश की बात करें तो हमारा देश शहरी और ग्रामीण, धनी और निर्धन, साक्षर और निरक्षर जैसे भागों में बंटा हुआ है। उसी प्रकार डिजिटल संसाधनों की उपलब्धता की बात करें तो यहां भी अंतर देखने को मिलता है। यदि हम विशेष बालकों की बात करें तो उनकी अक्षमता एक परेशानी है दूसरे उनके पास तकनीकी डिवाइस का ना होना भी उनको डिजिटल शिक्षा की परिधि से निकाल देता है। यदि डिजिटल संसाधन उपलब्ध भी है तो स्क्रीन के सामने निरंतर बैठना भी उनमें निष्क्रियता बढ़ाता है और जो अनुभव उन्हें मिलते भी हैं वह व्यावहारिक नहीं होते। साथ ही यह भी पाया गया है जो बालक निरंतर स्क्रीन के सामने रहते हैं उनमें अनिद्रा, मोटापा पोस्चर संबंधी एवं दृष्टि दोष जैसी बीमारियां पनप रही है। जो उनके शारीरिक स्वास्थ्य के साथ मानसिक समस्याएं भी बढ़ा रही हैं।

निष्कर्ष रूप से कहा जाए तो तकनीक अपने आप में न तो अच्छी है और न ही बुरी। यह इस बात पर निर्भर करता है कि इसका उपयोग किस प्रकार और किस सीमा तक किया जा रहा है। समावेशी शिक्षा के संदर्भ में, तकनीक का उपयोग एक 'साध्य' (End) नहीं बल्कि केवल एक 'साधन' (Means) के रुप में होना चाहिए।

4. वर्तमान डिजिटल युग की सामाजिक एवं संवेगात्मक बाधाएँ (Social and emotional Barriers of the current digital age)

केवल शैक्षणिक उपलब्धियां के आधार पर ही हम समावेशी शिक्षा की सफलता को नहीं मानते अपितु इसका बालकों के सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास पर क्या प्रभाव पड़ा है को भी देखते हैं। डिजिटल युग में बालकों के आंतरिक पक्ष सबसे अधिक प्रभावित हुआ है विशेषकर (CWSN) बालको पर पड़ने वाले सामाजिक एवं संवेगात्मक प्रभावों एवं समस्याओं को निम्न प्रकार से देखा जा सकता है।



चित्र नंबर 3

4.1 सामाजिक अलगाव और एकाकीपन (Social Isolation and Loneliness)

पहले बालक एक साथ खेलते कूदते, पढ़ते लिखते एवं लड़ते झगड़ते थे। इससे उनका सामाजिक समायोजन हो पाता था। परंतु अब डिजिटल उपकरणों से बालक बंध गए हैं। अब वो सामाजिक समायोजन से दूर हो रहे हैं। विशेषकर विशेष आवश्यकता वाले बालक जो पहले से ही स्वयं को समाज से अलग मानते थे अब ऑनलाइन कक्षाओं और डिजिटल गेमिंग के कारण सामाजिक अलगाव के शिकार होकर एकाकी हो गए हैं। उन्हें वास्तविक सामाजिक अंतर क्रिया के अवसर नहीं मिल पाते हैं। इस प्रकार इस प्रकार उनके अंदर अकेलापन और अवसाद की भावना भर जाती है।

4.2 सहानुभूति एवं संवेगात्मक संवेदनहीनता की कमी (Lack of Empathy and Emotional Desensitization)

समावेशी शिक्षा में सहानुभूति और समानुभूति पर बल दिया जाता है। किंतु आज के बालक संवेगात्मक रूप से अलग-अलग हैं। पहले के सामान्य बालक भी विशेष बालक की सहायता करते थे उन्हें समझते थे। पर अब स्क्रीन पर अपना समय बिताते हैं तो उनमें मानवीय भावों को समझने की शक्ति कम होने लगी है। परिणाम स्वरूप बालक अपने सभी सहपाठियों के प्रति एक प्रकार से असंवेदनशील हो जाते हैं और उन्हें सहानुभूति की कमी दिखाई पड़ती है। आमने-सामने के मानवीय भावों (Facial Expressions) और शारीरिक भाषा (Body Language) को समझने की क्षमता कम होने लगती है।

4.3 साइबर बुलिंग और पीयर प्रेशर (Cyberbullying and Peer Pressure)

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को चीजों को समझने में समय लगता है। जिसके कारण वो डिजिटल स्पेस के आसानी से शिकार हो जाते हैं। अन्य सामान बालक उनकी दिव्यांगता को लेकर मजाक बनाते हैं उन्हें परेशान करते हैं। इसे साइबर बुलिंग कहा जाता है। इसकी

खास बात यह भी है कि साइबर बुलिंग लगातार बालको का शारीरिक व मानसिक उत्पीड़न करती है। उनके शारीरिक या मानसिक लक्षणों, उनकी बोलने की शैली या उनकी सीखने की धीमी गति का मज़ाक उड़ाते हुए सोशल मीडिया या ऑनलाइन क्लास ग्रुप्स में उन्हें ट्रोल किया जाता है। जिससे बालक हीन भावना से ग्रस्त होकर अत्यधिक तनाव से ग्रस्त हो जाता है। यहां तक कि वह अधिक परेशान होकर स्वयं को हानि भी पहुंचने का प्रयास करते हैं।

4.4 स्क्रीन एडिक्शन और अटेंशन डेफिसिट (Screen Addiction and Attention Deficit)

डिजिटल डिवाइस के अत्यधिक प्रयोग से बालक इसके आदी हो जाते हैं। जिस कारण बालकों का ध्यान केंद्रित करने की अवधि काफी कम हो जाती है। समावेशी कक्षा में, ADHD या लर्निंग डिसेबिलिटी (जैसे डिस्लेक्सिया) से पीड़ित बच्चों के लिए पहले से ही ध्यान केंद्रित करना बड़ा मुश्किल होता है; डिजिटल का आदी होना और भी मुश्किल बड़ा देता है। यदि इन बालकों से डिजिटल डिवाइस ले लिए जाएं तो उनमें एक प्रकार की आक्रामकता व क्रोध देखा जा सकता है।

4.5 आत्मसम्मान और पहचान की समस्या (Self-esteem and identity issues)

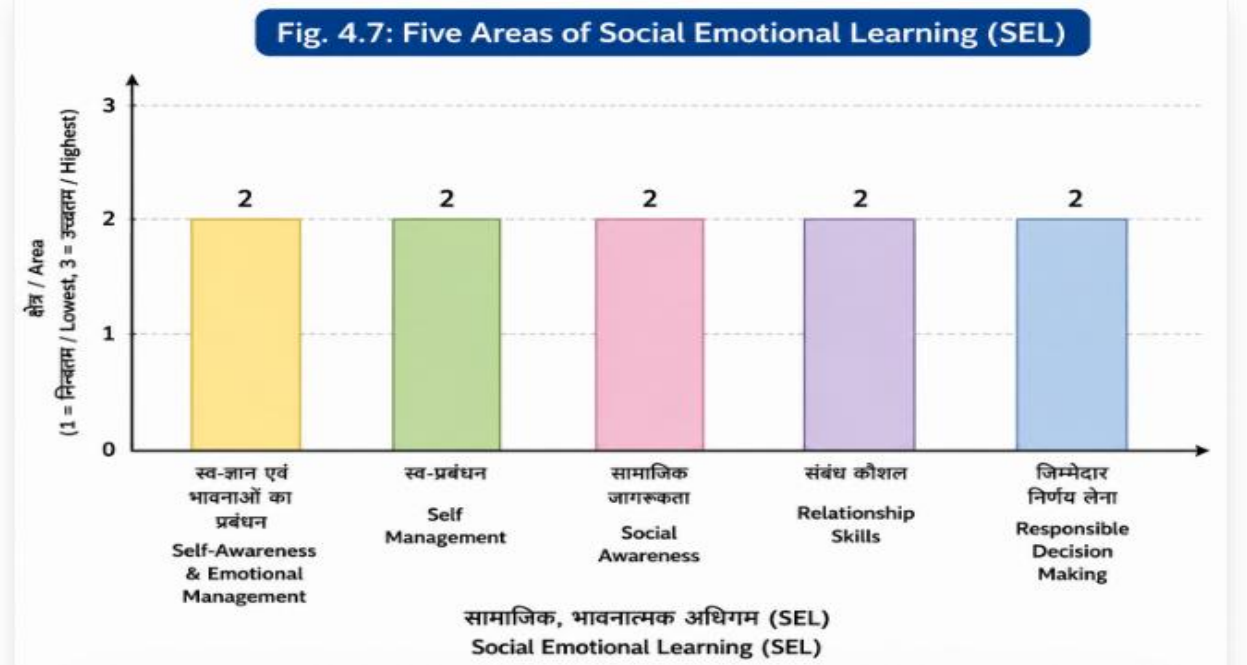
जितने भी सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म जैसे इंस्टाग्राम, फेसबुक, व्हाट्सएप, कु, एक्स आदि हैं । जब बालक इन पर लोगों की आदर्श' और 'फिल्टर्ड' फोटो, रिलस आदि देखते हैं तो एक अलग जिंदगी दिखाई पड़ती है। जिससे बालक प्रभावित होता है और स्वयं को वैसा प्रदर्शित करना चाहता है। विशेष आवश्यकता वाले बच्चे भी प्रभावित होते हैं। परंतु जब वो अपनी शारीरिक व मानसिक सीमाओं को देखते हैं तो उनका आत्मसम्मान डगमगा जाता है। वे स्वयं को समाज के लायक नहीं मानते जिससे उनका सामाजिक बस संवेगात्मक विकास बाधित होने लगता है तथा पहचान का संकट बन जाता है।

5. समावेशी शिक्षा में सामाजिक-संवेगात्मक अधिगम और उसका महत्व (Socio-emotional learning and its importance in inclusive education)

6. समावेशी शिक्षा में विभिन्न समस्याओं को दृष्टिगत रखते हुए आज शिक्षा शास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों ने 'सामाजिक-संवेगात्मक अधिगम' (Social-Emotional Learning - SEL) पर जोर दिया है। SEL एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से बच्चे और वयस्क भावनाओं को समझने, प्रबंधित करने, सकारात्मक लक्ष्य निर्धारित करने, दूसरों के प्रति सहानुभूति महसूस करने, सकारात्मक संबंध बनाए रखने और जिम्मेदारी से निर्णय लेने के लिए आवश्यक ज्ञान, दृष्टिकोण और कौशल विकसित करते हैं।

कासेल (CASEL - Collaborative for Academic, Social, and Emotional Learning)

ने SEL के पांच मुख्य घटक बताए हैं जो समावेशी कक्षा के लिए अत्यंत प्रासंगिक हैं:



चित्र नंबर 4

1.**आत्म-जागरूकता (Self-Awareness)** इसके अंतर्गत बालक अपनी प्रतिभा, शक्ति तथा कमजोरी को पहचान करने के साथ ही विशेष बालकों को अपनी क्षमताओं पर विश्वास करना सिखाता है।

2. सामाजिक जागरूकता (Social Awareness):

इसमें बालक अपने तनाव, आवेग और डिजिटल लत को नियंत्रित एवं संशोधित करता है।

3.आत्म प्रबंधन (self management):

इसमें सामान्य बालकों के साथ विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को समावेशी समाज की स्थापना हेतु प्रेरित किया जाता है। दूसरे बालकों की पृष्ठभूमि, संस्कृति, रुचियां व क्षमताओं के प्रति सम्मान और सहानुभूति रखना सिखाया जाता है।

4. संबंध कौशल (Relationship Skills): इसके अंतर्गत प्रभावपूर्ण संचार माध्यम को चुनना। आपसी सहयोग को बढ़ाना तथा आपसी मतभेदों एवं संघर्ष को सकारात्मक रूप से हल करना आता है।

5. जिम्मेदार निर्णय लेना (Responsible Decision-Making):
इसके अंतर्गत अपेक्षित व्यवहार को बढ़ावा देते हुए सामाजिक अंतः क्रिया करना साथ ही नैतिकता और सुरक्षा के आधार को बढ़ावा देते हुए इंटरनेट का सुरक्षित उपयोग पर बल देना आता है।

इस प्रकार समावेशी कक्षा में SEL को एकीकृत करने से शैक्षिक वातावरण सुधार होता है तथा डिजिटल युग की जो समस्याएं अथवा बाधाए हैं उनको भी कम किया जा सकता है।

6. प्रचलित शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम एवं शिक्षक(Current teacher training programmes and teachers)

बदलती हुई डिजिटल युग की परिस्थितियों के अंतर्गत परंपरागत शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों (जैसे B.Ed., D.El.Ed., B.Ed. Special Education) में गंभीर कमियां व अंतराल (Gaps) है। इसका प्रभाव शिक्षकों पर भी पड़ता है आज आवश्यकता है कि शिक्षकों को इस प्रकार तैयार एवं प्रशिक्षित किया जाए ताकि वह बदलती हुई डिजिटल युग की चुनौतियों का सामना कर सकें। क्योंकि एक जिम्मेदार शिक्षक ही समावेशी शिक्षा को गति प्रदान कर सकता है इसलिए जो निम्न कमियां हैं उनको दूर किया जाए।

6.1 सैद्धांतिक ज्ञान की अपेक्षा व्यवहारिक ज्ञान एवं कौशल की कमी

(Lack of practical knowledge and skills as compared to theoretical knowledge)

क्योंकि हमारा शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम परंपरागत व सैद्धांतिक अधिक है। पर व्यावसायिक अथवा व्यावहारिक नहीं है। वास्तविक समावेशी कक्षाओं की परिस्थितियों अलग है। यहां सामान्य बालकों के साथ विशेष आवश्यकता वाले बालक भी शिक्षा ग्रहण करते हैं। उन्हें किस प्रकार शिक्षा प्रदान की जाए कैसे इन बालकों को समावेशी कक्षा में अनुकूलन किया जाए इससे शिक्षक अनभिज्ञ होते हैं। साथ ही डिजिटल शिक्षण सामग्री को कैसे व्यवस्थित व अनुकूल करके अपने शिक्षार्थियों तक पहुंचाया जाए इसका भली भांति व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

6.2 डिजिटल साक्षरता और डिजिटल पेडागोजी में अंतर

(Difference between digital literacy and digital pedagogy)

केवल 'स्मार्टफोन चलाना या पीपीटी (PPT) बनाना' डिजिटल पेडागोजी (Digital Pedagogy) नहीं है। शिक्षकों को तकनीकी उपकरणों का सामान्य ज्ञान तो है, लेकिन वे 'यूनिवर्सल डिज़ाइन फॉर लर्निंग' (UDL - Universal Design for Learning) के सिद्धांतों के अनुसार डिजिटल सामग्री तैयार करने में कुशल नहीं हैं।क्योंकि उनको इस बात का प्रशिक्षण भी नहीं दिया गया कि कैसे तकनीकी का उपयोग करें। कैसे संबंधित सामग्री तैयार करें जिससे समावेशी शिक्षा में प्रत्येक बालक की आवश्यकता को पूरा किया जा सके।

6.3 मानसिक स्वास्थ्य और संवेगात्मक पक्ष की अवहेलना

(Neglect of mental health and emotional well-being)

आज की डिजिटल युग में विशिष्ट समस्याओं जैसे साइबर बुलिंग गेमिंग एडिक्शन और डिजिटल एंजाइटी के व्यावहारिक प्रबंधन की समावेशी शिक्षा में कोई प्रभावी व्यवस्था नहीं है। हालांकि परंपरागत शिक्षक प्रशिक्षण में बाल विकास के अंतर्गत संवेगात्मक विकास, सामाजिक विकास का अध्ययन कराया जाता है। पर शिक्षकों को समावेशी शिक्षा में समस्याओं का सामना करना पड़ता है। वो बच्चों की समस्याओं को पहचान नहीं पाते हैं। कि कक्षा में चुपचाप बैठा कोई बच्चा किसी गंभीर मानसिक अवसाद या साइबर उत्पीड़न का शिकार है।

6.4 सामान्य शिक्षा और विशेष शिक्षा के मध्य दूरी

(The gap between general education and special education)

भारत देश में सामान्य शिक्षक प्रशिक्षण एवं विशेष शिक्षक प्रशिक्षण दो अलग-अलग दिशाओं में क्रियान्वित हैं। सामान्य शिक्षकों को विशेष बच्चों के संबंध में सामान्य जानकारी ही होती है। जिसका प्रभाव समावेशी शिक्षा में स्पष्ट दिखाई देता है। इसलिए इन दोनों ही प्रकार के शिक्षक प्रशिक्षण का वास्तविक एकीकरण (Integration) किया जाना चाहिए। जिससे समावेशी शिक्षा के लक्ष्यो को प्राप्त किया जा सके।

7. वर्तमान समय के डिजिटल युग के परिपेक्ष में शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में बदलाव की आवश्यकताएं (The need for changes in teacher training programmes in the present digital age)

21वीं सदी की चुनौतियां एवं समस्याओं के समाधान के लिए प्रचलित शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में बड़े बदलाव करने की आवश्यकता है। नई शिक्षा नीति 2020 के प्रकाश में शिक्षक प्रशिक्षण की ऐसी रूपरेखा बनाई जानी चाहिए जो तकनीकी रूप से सुदृढ़ होने के सथ सामाजिक एवं मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण हो इसके लिए कुछ सुधारो और आवश्यकताओं को प्राथमिकता दी जानी आवश्यक है।

7.1 यूनिवर्सल डिज़ाइन फॉर लर्निंग (UDL) का प्रशिक्षण

(Universal Design for Learning (UDL) training)

शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में शिक्षकों के लिए यूनिवर्सल डिजाइन फॉर लर्निंग (UDL) के सिद्धांतों के अनुसार प्रशिक्षित किया जाए। हालांकि (UDL) के सिद्धांत का कोई एक तरीका या प्रकार सभी पर लागू नहीं होता है। इसके मुख्य तीन सिद्धांत हैं

- **प्रस्तुतीकरण के विविध साधन (Multiple Means of Representation):**
- कक्षा में सामग्री को पाठ्य पुस्तक के माध्यम के साथ ही ऑडियो, वीडियो, ग्राफिक्स और स्पर्श विधि सामग्री के साथ प्रस्तुत किया जाना चाहिए ताकि बालक अपेक्षित ज्ञान अर्जित कर सके।
- **अभिव्यक्ति के विविध साधन (Multiple Means of Action and Expression):**
- बालक से केवल लिखित परीक्षा के माध्यम से ही परीक्षा नहीं लेनी चाहिए। मौखिक, कलात्मक एवं डिजिटल प्रोजेक्ट के विकल्प भी प्रदान किए जाने चाहिए।
- **जुड़ाव के विविध साधन (Multiple Means of Engagement):**
- बालकों की शिक्षा में रुचि को निरंतर बनाए रखने के लिए कई प्रकार की गतिविधियों को करते रहना चाहिए एवं बालकों की रुचि के विषयों का चयन करना चाहिए।

7.2 डिजिटल सुरक्षा और एथिक्स

(Cyber Security and Digital Ethics)

शिक्षक-प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए साइबर सुरक्षा, डिजिटल नागरिकता (Digital Citizenship) और नेटिकेट्स (Netiquettes - इंटरनेट पर शिष्टाचार) का एक व्यापक मॉड्यूल बनाया जना चाहिए। शिक्षकों को यदि इंटरनेट के सुरक्षित उपयोग की जानकारी होगी तो वह बालकों को भी बता सकेंगे और उन्हें जागरूक कर सकेंगे। साथ ही साइबर बुलिंग के लक्षणों की पहचान कैसे करें और इसके खिलाफ क्या कानूनी और सुधारात्मक कदम उठाएं इसका ज्ञान भी आवश्यक है।

7.3 सामाजिक-संवेगात्मक अधिगम (SEL) का एकीकरण

(Integration of Social-Emotional Learning (SEL)

देश में प्रचलित शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में SEL को एक मुख्य विषय बनाया जाए ताकि शिक्षक अपनी पाठ योजना में सामाजिक एवं संवेगात्मक गतिविधियों को एकीकृत कर सके। इसके लिए कक्षा के प्रारंभ में चार से पांच मिनट के माइंडफूलनेस अभ्यास अथवा इमोशन चेक इन अथवा बालक द्वारा अपनी भावनाओं को व्यक्त द्वारा से किया जा सकता है।

7.4 सतत व्यावसायिक विकास (CPD - Continuous Professional Development)

शिक्षक-प्रशिक्षण को केवल सेवा-पूर्व (Pre-service) तक ही सीमित नहीं होना चाहिए। सेवारत शिक्षकों (In-service Teachers) के लिए नियमित अंतराल पर कार्यशालाएं, वेबिनार और अल्पकालिक पाठ्यक्रम (Short-term courses) आयोजित किए जाने चाहिए। उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय जैसे दूरस्थ शिक्षा संस्थान इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं, जो ऑनलाइन माध्यमों से दूरदराज के क्षेत्रों में कार्यरत शिक्षकों तक आधुनिक समावेशी तकनीकों का ज्ञान पहुँचा सकते हैं।

7.5 उपचारात्मक परामर्श कौशल (Remedial Counseling Skills)

शिक्षकों को बेसिक परामर्श कौशल समय-समय पर देते रहना चाहिए क्योंकि समावेशी शिक्षा के अंतर्गत पेशेवर परामर्शदाता (Counselors) नहीं होते हैं। इसलिए शिक्षकों को सक्रिय श्रवण गैर निर्णयात्मक दृष्टिकोण और सहानुभूति पूर्ण संचार का व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रदान करना चाहिए ताकि बालक भी अपने शिक्षक से अपनी सामाजिक एवं संवेगात्मक समस्याओं को बताकर उनका हल भी कर सके।

8.डिजिटल समावेशी कक्षा के लिए रणनीतियाँ और शिक्षक का स्थान (Strategies and Teacher Positioning for a Digitally Inclusive Classroom)

एक समावेशी शिक्षक को डिजिटल युग में 'ज्ञान के प्रदाता' (Provider of Knowledge) से बदलकर एक 'सुविधादाता' (Facilitator) और 'संवेगात्मक मार्गदर्शक' (Emotional Guide) की भूमिका निभानी होगी। एक आदर्श डिजिटल समावेशी कक्षा के संचालन के लिए शिक्षक को कुछ रणनीतियों को अपनाना चाहिए।

8.1 ब्लेंडेड लर्निंग का संतुलित उपयोग (Balanced Blended Learning)

पारंपरिक शिक्षण के साथ-साथ शिक्षक को डिजिटल परीक्षा से भी परिचित होना आवश्यक है। ब्लेंडेड लर्निंग (मिश्रित माध्यम) अनुसार ऑनलाइन और ऑफलाइन दोनों विधाओं का संतुलित मिश्रण होना चाहिए। जैसे की कोई जटिल अवधारणा बालकों को समझानी है तो अवधारणा को एक एनिमेशन द्वारा स्मार्ट बोर्ड पर दिखा सकते हैं। लेकिन उसके बाद बच्चों को समूहों में बांटकर उस पर चर्चा कराई जाए और कंक्रीट मॉडल बनाने को कहा जाए (भौतिक/सामाजिक)। इससे तकनीकी लाभ भी मिलेगा और बच्चों में सामाजिक अंत:क्रिया भी होगी।

8.2 डिजिटल एम्पैथी सर्किल का निर्माण (Digital Empathy Circles)

छात्र अपनी डिजिटल अनुभूतियां प्रभाव आदि को बता सके इसके लिए समय-समय पर कक्षा में एम्पैथी सर्किल का आयोजन भी किया जाना चाहिए। एक सुरक्षित वातावरण बालकों के सम्मुख प्रदान करना चाहिए जिसमें विशेष आवश्यकता वाले बालक भी सामान्य बालकों की तरह बिना किसी भय एवं झिझक के अपनी बात को रख सकें।

8.3 बडी सिस्टम का आधुनिकीकरण

(Modernization of Buddy systems)

पारंपरिक बडी सिस्टम में एक सामान्य बच्चे को एक विशेष बच्चे की सहायता के लिए जोड़ा जाता था। डिजिटल युग में इसे 'डिजिटल बडी सिस्टम' का रूप दिया जा सकता है। तकनीकी रूप से दक्ष बच्चे (Tech-savvy students) उन विशेष बच्चों की सहायता कर सकते हैं जिन्हें डिजिटल उपकरण संचालित करने में कठिनाई होती है। इससे न केवल तकनीकी समावेशन होगा, बल्कि बच्चों के बीच आपसी सहयोग, मित्रता और संबंध कौशल (Relationship Skills) का भी विकास हो सकेगा।

8.4 स्क्रीन-फ्री ज़ोन और रिलैक्सेशन टाइम (Screen-free zones and relaxation time)

विद्यालय और कक्षा में डिजिटल उपकरणों का उपयोग कब किया जाए? कितनी देर किया जाए? इसका स्पष्ट नियम शिक्षकों के साथ बालकों को भी होना चाहिए। विद्यालय समय, लंच समय, खेल का मैदान और समूह चर्चा के समय को स्क्रीन फ्री घोषित किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त लंबी कक्षाओं के बीच में 'ब्रेन ब्रेक्स' (Brain Breaks) दिए जाने चाहिए, जिसमें बच्चे कुछ शारीरिक स्ट्रेचिंग या आँखें बंद करके आराम कर सकें।

8.5 माता-पिता के साथ सक्रिय साझेदारी (Parent-Teacher Collaboration)

आज डिजिटल युग की चुनौतियाँ स्कूल की सीमाओं को तोड़ कर घर तक पहुँच गई हैं। शिक्षक की भूमिका केवल छात्रों तक सीमित न रह कर उनके माता-पिता के साथ भी हो गई है। माता-पिता को 'डिजिटल पेरेंटिंग' (Digital Parenting) के प्रति जागरूक करना, उन्हें घर पर बच्चों के स्क्रीन टाइम को नियंत्रित करने और उनके व्यवहार में आने वाले संवेगात्मक बदलावों पर नज़र रखने के लिए प्रेरित करना शिक्षक का ही दायित्व है।

9. केस स्टडीज और व्यावहारिक उदाहरण (Case Studies and Practical Examples)

सिद्धांतों को धरातल पर समझने के लिए दो काल्पनिक परंतु वास्तविक परिस्थितियों पर आधारित केस स्टडीज (Case Studies) का विश्लेषण यहाँ प्रासंगिक होगा:

केस स्टडी 1: मुकेश और उसकी डिजिटल दुनिया

परिस्थिति: हल्द्वानी का मुकेश 9वीं कक्षा का छात्र है और उसे 'हल्का ऑटिज़्म' (Mild Autism) है। वह कक्षा में बच्चों से आँखें मिलाने (Eye Contact) से कतराता है और बातचीत नहीं करता। ऑनलाइन कक्षाओं के दौरान मुकेश बहुत खुश था क्योंकि उसे किसी से सीधे बात नहीं करनी पड़ती थी। वह रात-रात भर कंप्यूटर पर गेम खेलने लगा और कोडिंग सीखने लगा। जब स्कूल दोबारा पूरी तरह खुले, तो मुकेश ने स्कूल आने से मना कर दिया। स्कूल आने पर वह अत्यधिक चिड़चिड़ा, हिंसक हो जाता था और अपने सहपाठियों पर चिल्लाने लगता था।

शिक्षक की भूमिका और हस्तक्षेप (Intervention):
मुकेश के समावेशी शिक्षक ने स्थिति को समझा। उन्होंने मुकेश को डांटने या सज़ा देने के बजाय उसकी तकनीकी क्षमता (कोडिंग कौशल) की सराहना की। शिक्षक ने कक्षा के एक प्रोजेक्ट के लिए मुकेश को 'तकनीकी लीडर' बनाया और उसके साथ दो संवेदनशील सामान्य छात्रों को जोड़ा। मुकेश को यह जिम्मेदारी दी गई कि वह अपने साथियों को एक बुनियादी गेम डिज़ाइन करना सिखाए। धीरे-धीरे, अपनी विशेषज्ञता के कारण मुकेश का आत्मविश्वास बढ़ा और साथियों द्वारा सराहना मिलने पर उसका सामाजिक अलगाव कम होने लगा। शिक्षक ने उसके माता-पिता के साथ मिलकर घर पर उसके स्क्रीन टाइम को भी धीरे-धीरे कम करवाया।

केस स्टडी 2: निशा और साइबर बुलिंग

परिस्थिति निशा देहरादून की रहने वाली है और 7वीं कक्षा की छात्रा है और वह 'डिस्लेक्सिया' (Dyslexia) से पीड़ित है, जिसके कारण वह शब्दों को धीरे पढ़ती है और स्पेलिंग की गलतियाँ करती है। ऑनलाइन असाइनमेंट ग्रुप में, कुछ सहपाठियों ने उसकी गलत स्पेलिंग वाले स्क्रीनशॉट लेकर मीम्स (Memes) बनाए और एक अनऑफिशियल ग्रुप में उसका मज़ाक उड़ाया। निशा ने स्कूल आना बंद कर दिया, वह गुमसुम रहने लगी और उसने खाना-पीना बहुत कम कर दिया।

शिक्षक की भूमिका और हस्तक्षेप (Intervention):
निशा की कक्षा अध्यापिका ने उसकी अनुपस्थिति और व्यवहार में अचानक आए बदलाव को नोटिस किया। उन्होंने निशा के माता-पिता से बात की और विश्वास में लेकर पूरी बात जानी। शिक्षिका ने तुरंत एक्शन लेते हुए उस ग्रुप के बच्चों की पहचान की। उन्होंने बच्चों को

दंडित करने के बजाय पूरी कक्षा के लिए 'साइबर एथिक्स और बुलिंग' पर एक विशेष कार्यशाला का आयोजन किया, जिसमें बिना निशा का नाम लिए यह समझाया गया कि कैसे हमारे छोटे से मज़ाक से किसी के मानसिक स्वास्थ्य पर जानलेवा असर हो सकता है। बच्चों को अपनी गलती का अहसास हुआ और उन्होंने निशा से माफी मांगी। निशा के लिए विशेष रूप से 'वॉयस-टू-टेक्स्ट' (Voice-to-text) ऐप्स का उपयोग सुलभ कराया गया ताकि उसकी शैक्षणिक बाधा कम हो सके और उसका संवेगात्मक संतुलन वापस लौटआए।

10. निष्कर्ष एवं भविष्य की राह (Conclusion and Way Forward)

21वीं सदी में समावेशी शिक्षा केवल एक नीतिगत अनिवार्यता नहीं है, बल्कि यह हमारे समाज के नैतिक और मानवीय पक्षों के ताने-बाने की परीक्षा है। डिजिटल युग ने लोगों को अद्भुत क्षमताएं और साधन दिए हैं, लेकिन इसने हमारे बच्चों की संवेगात्मक कोमलता और सामाजिक ताने-बाने को भी खतरे में डाल दिया है। आज की समावेशी कक्षा की बाधाएं केवल भौतिक (जैसे सीढ़ियाँ या रैंप का न होना) नहीं रह गई हैं, बल्कि वे अमूर्त, अदृश्य और अत्यधिक जटिल हो चुकी हैं—जैसे एकाकीपन, साइबर बुलिंग, सहानुभूति की कमी और संवेगात्मक बिखराव। इन नवीन चुनौतियों से निपटने का मार्ग केवल उन्नत तकनीकों से नहीं, बल्कि उन्नत मानवीय दृष्टिकोण से होकर गुज़रता है। और इस दृष्टिकोण का निर्माण केवल और केवल प्रभावी, संवेदनशील और दूरदर्शी शिक्षक-प्रशिक्षण के माध्यम से ही संभव है। हमें एक ऐसी शिक्षक-प्रशिक्षण प्रणाली की आवश्यकता है जो 'हाई-टेक' (High-Tech) होने के साथ-साथ 'हाई-टच' (High-Touch - मानवीय स्पर्श और संवेदना से युक्त) भी हो।

भविष्य की राह इस बात पर निर्भर करेगी कि हम कितनी जल्दी अपने पाठ्यक्रमों को पुनर्गठित करते हैं, सामान्य और विशेष शिक्षा के बीच अंतर को समाप्त करते हैं, और 'सामाजिक-संवेगात्मक अधिगम' (SEL) को शिक्षा की मुख्यधारा का हिस्सा बनाते हैं। उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय जैसे संस्थान अपनी व्यापक पहुँच के माध्यम से दूरस्थ और ग्रामीण अंचलों के शिक्षकों को इन आधुनिक कौशलों से लैस करने में अग्रणी भूमिका निभा सकते हैं। अंततः, समावेशी शिक्षा का अंतिम लक्ष्य एक ऐसे समाज का निर्माण करना है जहाँ हर बच्चा—चाहे वह किसी भी क्षमता या अक्षमता के साथ हो—स्वयं को सुरक्षित, सम्मानित और स्वीकृत महसूस कर सके। डिजिटल युग में तकनीक को इस लक्ष्य का बाधक नहीं, बल्कि साधक बनना होगा, और यह केवल एक सजग, प्रशिक्षित और संवेदनशील शिक्षक के माध्यम से ही सुनिश्चित किया जा सकता है।

संदर्भ सूची (References)

1. *भारतीय दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम (RPwD Act, 2016).* भारत सरकार।
2. *राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP, 2020).* मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।
3. CASEL. (2020). *Core SEL Competencies.* Collaborative for Academic, Social, and Emotional Learning.
4. UNESCO. (1994). *The Salamanca Statement and Framework for Action on Special Needs Education.* Paris: UNESCO.
5. शर्मा, आर. के. (2022). *विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए सहायक तकनीक और समावेशन.* जर्नल ऑफ एक्सक्लूजिव एजुकेशन, 10(2), 45-56.
6. United Nations. (2006). *Convention on the Rights of Persons with Disabilities (UNCRPD).* New York: United Nations.
7. Jayaswal, V.(2008).Inclusion in school education. R Lal book depo Meerut.pg-1
8. Sharma, R.K. (2011). A comparative study of Self -concept, Adaptive behaviour and Home environment of Disabled in Special and Inclusive Schools. Ph.D , MJP rohilkhand University- Bareilly.

जैविक एवं प्राकृतिक खेती का परिचयरू उत्तराखंड के विशेष संदर्भ में

नाम: डॉ वीरेन्द्र कुमार
पदनाम: सह आचार्य
विभाग: कृषि
ईमेल : vkumar@uou-ac-in
मोबाइल : 9456140200

भूमिका: सतत हिमालयी कृषि की ओर

हिमालय केवल भौगोलिक सीमाओं में बंधी पर्वत–श्रेणी नहीं है, बल्कि यह जल, जंगल, जमीन, जैव–विविधता और मानव सभ्यता के बीच स्थापित एक जटिल एवं जीवंत पारिस्थितिक संबंध का प्रतीक है। भारतीय हिमालय का एक महत्वपूर्ण भाग होने के कारण उत्तराखंड की प्राकृतिक एवं कृषि प्रणालियाँ अत्यंत संवेदनशील होने के साथ–साथ विशिष्ट भी हैं। यहाँ कृषि केवल अन्न उत्पादन का माध्यम नहीं, बल्कि ग्रामीण जीवन, आजीविका, संस्कृति, परंपरा और स्थानीय अर्थव्यवस्था की आधारशिला रही है। सदियों से पर्वतीय समुदायों ने स्थानीय जलवायु, मृदा, वनस्पतियों और पशुधन के अनुरूप ऐसी कृषि प्रणालियों का विकास किया, जिनमें प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व की भावना स्पष्ट दिखाई देती है। किंतु आधुनिक कृषि के विस्तार, प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ते दबाव, जलवायु परिवर्तन, बाजार–निर्भरता और ग्रामीण सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन ने हिमालयी कृषि के पारंपरिक संतुलन को प्रभावित किया है। आज आवश्यकता ऐसी कृषि व्यवस्था की है जो केवल अधिक उत्पादन का लक्ष्य न रखे, बल्कि प्रकृति की वहन क्षमता, संसाधनों की पुनरुत्पादक क्षमता और आने वाली पीढ़ियों की आवश्यकताओं को भी केंद्र में रखे। इसी व्यापक परिप्रेक्ष्य में सतत, जैविक एवं प्राकृतिक खेती की अवधारणा अत्यंत प्रासंगिक हो जाती है।

वर्तमान वैश्विक कृषि व्यवस्था एक ऐसे संक्रमणकाल से गुजर रही है जहाँ खाद्य उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के बीच संतुलन स्थापित करना

सबसे बड़ी चुनौती बन चुका है। जनसंख्या वृद्धि, नगरीकरण, बदलती उपभोग प्रवृत्तियाँ, कृषि उत्पादों की बढ़ती मांग तथा बाजार–आधारित उत्पादन प्रणालियों ने कृषि पर अभूतपूर्व दबाव डाला है। हरित क्रांति ने अनेक देशों में खाद्य उत्पादन और खाद्य सुरक्षा को मजबूत करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया, लेकिन इसके साथ रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, भूजल और ऊर्जा के अत्यधिक उपयोग जैसी समस्याएँ भी उभरीं। FAO के अनुसार भूमि, मृदा और जल विश्व की खाद्य प्रणालियों की आधारभूत प्राकृतिक संपदाएँ हैं, किंतु इनके क्षरण और बढ़ते दबाव के कारण कृषि की दीर्घकालिक उत्पादकता प्रभावित हो रही है। अतः 21वीं सदी की कृषि के सामने चुनौती केवल "अधिक उत्पादन" की नहीं, बल्कि "कम संसाधनों में अधिक, सुरक्षित, गुणवत्तापूर्ण और टिकाऊ उत्पादन"की है। इस बदलते परिदृश्य में मृदा स्वास्थ्य का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। मृदा को लंबे समय तक केवल उत्पादन का माध्यम समझा गया, जबकि वास्तव में यह असंख्य सूक्ष्मजीवों, जैविक पदार्थों, खनिजों और जीव–जंतुओं से निर्मित एक जटिल जीवंत तंत्र है। मृदा की जैव–विविधता पोषक तत्वों के चक्रण, जैविक पदार्थों के अपघटन, जल धारण क्षमता, पौधों की वृद्धि और पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। रासायनिकों का असंतुलित प्रयोग, मृदा अपरदन, जैविक पदार्थों में कमी और एकल फसल आधारित कृषि प्रणालियाँ मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरता और जैविक सक्रियता को प्रभावित कर सकती हैं। इसी प्रकार जल संसाधनों का अत्यधिक दोहन तथा वर्षा की अनिश्चितता कृषि की स्थिरता के लिए गंभीर चुनौती है। दूसरी ओर, कृषि जैव–विविधता में स्थानीय बीजों, पारंपरिक फसलों, मिश्रित खेती और बहुफसली प्रणालियों का महत्वपूर्ण योगदान है। FAO खाद्य एवं कृषि के लिए जैव–विविधता को टिकाऊ और लचीली खाद्य प्रणालियों का महत्वपूर्ण आधार मानता है। इस दृष्टि से प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण कृषि उत्पादन की अतिरिक्त गतिविधि नहीं, बल्कि कृषि की दीर्घकालिक उत्पादकता की पूर्वशर्त है।

जलवायु परिवर्तन ने हिमालयी कृषि के समक्ष उपस्थित चुनौतियों को और अधिक गंभीर बना दिया है। तापमान में परिवर्तन, वर्षा के स्वरूप में अनिश्चितता, असामान्य एवं तीव्र वर्षा, लंबे शुष्क काल, सूखे की स्थिति, भूस्खलन तथा अन्य चरम मौसमी घटनाएँ पर्वतीय कृषि की उत्पादकता और स्थिरता को प्रभावित कर सकती हैं। पर्वतीय कृषि की संरचनात्मक विशेषताएँकृजैसे छोटी एवं बिखरी हुई जोतें, ढलानदार भूमि, सीमित सिंचाई,

वर्षा पर निर्भरता तथा कठिन भौगोलिक परिस्थितियाँ इसे जलवायु जोखिमों के प्रति अधिक संवेदनशील बनाती हैं। इसलिए भविष्य की हिमालयी कृषि को ऐसी दिशा देने की आवश्यकता है जो जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का सामना करने में सक्षम हो।

उत्तराखंड को जैविक एवं प्राकृतिक खेती की दृष्टि से एक विशिष्ट हिमालयी प्रयोगशाला के रूप में देखा जा सकता है। राज्य की वेविध्यंपूर्ण भौगोलिक स्थिति जलवायु, मृदा, वनस्पति और कृषि–जलवायु परिस्थितियाँ विभिन्न प्रकार की फसलों एवं उच्च–मूल्य कृषि उत्पादों के लिए अनुकूल अवसर प्रदान करती हैं। मंडुवा, झंगोरा, चौलाई, पारंपरिक धान, विभिन्न दालें, फल, मसाले, औषधीय एवं सुगंधित पौधे तथा स्थानीय कृषि उत्पाद न केवल खाद्य एवं पोषण सुरक्षा को मजबूत कर सकते हैं, बल्कि जैविक ब्रांडिंग और मूल्य संवर्धन के माध्यम से किसानों की आय के नए अवसर भी उत्पन्न कर सकते हैं। राज्य सरकार द्वारा जैविक एवं प्राकृतिक कृषि को बढ़ावा देने के साथ–साथ मृदा स्वास्थ्य, जल एवं भूमि संरक्षण, कृषि विविधीकरण और जलवायु–अनुकूल कृषि पर भी बल दिया जा रहा है। इसलिए उत्तराखंड में जैविक एवं प्राकृतिक खेती को केवल कृषि की एक वैकल्पिक तकनीकी पद्धति के रूप में देखने के बजाय इसे "हिमालयी पारिस्थितिकी, स्थानीय ज्ञान, किसान आजीविका और बाजार के समन्वित विकास मॉडल" के रूप में समझना अधिक उपयुक्त होगा। अंततः, सतत हिमालयी कृषि का प्रश्न केवल खेत और फसल का प्रश्न नहीं हैय यह प्रकृति और मनुष्य के बीच संबंधों के पुनर्संतुलन का प्रश्न है। यदि हिमालयी कृषि को दीर्घकाल तक जीवंत और उत्पादक बनाए रखना है, तो मृदा को केवल उत्पादन का माध्यम नहीं, जल को केवल सिंचाई का साधन नहीं और जैव–विविधता को केवल प्राकृतिक संपदा नहीं, बल्कि कृषि की आधारभूत पूँजी के रूप में स्वीकार करना होगा। जैविक एवं प्राकृतिक खेती इसी समग्र दृष्टिकोण की ओर मार्ग प्रशस्त करती है। उत्तराखंड के संदर्भ में यह दृष्टिकोण प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, पारंपरिक कृषि ज्ञान के पुनर्जीवन, स्थानीय खाद्य प्रणालियों की मजबूती, किसान आय में वृद्धि, जलवायु–सहिष्णुता और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पुनरोद्धार का आधार बन सकता है। इस अर्थ में समावेशी हिमालयी कृषि केवल भविष्य की आवश्यकता नहीं, बल्कि हिमालय के पारिस्थितिक और सामाजिक अस्तित्व की अनिवार्यता है।

जैविक खेती: अवधारणा एवं विकास

जैविक खेती (Organic Farming) ऐसी कृषि प्रणाली है जिसमें रासायनिक उर्वरकों, कृत्रिम कीटनाशकों तथा अन्य सिंथेटिक कृषि– रसायनों पर निर्भरता को कम या समाप्त करते हुए प्राकृतिक संसाधनों, जैविक पदार्थों और पारिस्थितिक प्रक्रियाओं का उपयोग किया जाता है। इसका मूल उद्देश्य केवल रसायन–मुक्त उत्पादन करना नहीं, बल्कि ऐसी कृषि व्यवस्था विकसित करना है जो मृदा स्वास्थ्य, जैव–विविधता, जल–संरक्षण, पर्यावरणीय संतुलन तथा मानव स्वास्थ्य को दीर्घकालिक रूप से सुरक्षित रख सके। जैविक खेती की संकल्पना का आधार यह विचार है कि कृषि एक पृथक उत्पादन गतिविधि न होकर मृदा, पौधों, पशुओं, सूक्ष्मजीवों, जलवायु और मानव समुदाय के बीच परस्पर जुड़ी हुई पारिस्थितिक प्रणाली है। इसलिए इसमें फसल चक्र, हरी खाद, कम्पोस्ट, गोबर की खाद, जैव उर्वरक, जैविक कीट–नियंत्रण, मिश्रित एवं बहुफसली खेती तथा कृषि–अवशेषों के पुनर्चक्रण जैसी विधियों को महत्त्व दिया जाता है। इस प्रकार जैविक खेती मृदा में जैविक पदार्थ एवं पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाकर उसकी उर्वरता और संरचना को बनाए रखने में सहायक होती है। भारतीय संदर्भ में जैविक खेती विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि छोटे एवं सीमांत किसानों, पारंपरिक कृषि ज्ञान तथा स्थानीय जैव–संसाधनों के समन्वय से कम बाहरी निवेश वाली कृषि प्रणाली विकसित की जा सकती है। हिमालयी क्षेत्रों में इसकी उपयोगिता और भी बढ़ जाती है, जहाँ पारिस्थितिक संवेदनशीलता, ढालदार भूमि, मृदा अपरदन और जल–संसाधनों की सीमाएँ कृषि को प्रभावित करती हैं। अतः जैविक खेती उत्पादन, पर्यावरण संरक्षण और ग्रामीण आजीविका के बीच संतुलन स्थापित करने वाली सतत कृषि प्रणाली के रूप में देखी जा सकती है। जैविक खेती को विद्वानों द्वारा विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है जिसमें से कुछ निम्न प्रकार से है:

- जैविक कृषि की आधुनिक संकल्पना को विकसित करने में ।सइमतज भ्वूंतक (1940) का विशेष योगदान माना जाता है। उन्होंने कृषि में मृदा की उर्वरता और जैविक पदार्थों के पुनर्चक्रण को केंद्रीय महत्त्व दिया। उनके अनुसार सफल कृषि का आधार मृदा की प्राकृतिक उर्वरता को बनाए रखना है। भ्वूंतक ने कृषि–अवशेषों और

जैविक पदार्थों को पुनः मृदा में लौटाने की प्रक्रिया को कृषि की स्थायित्व क्षमता से जोड़ा।

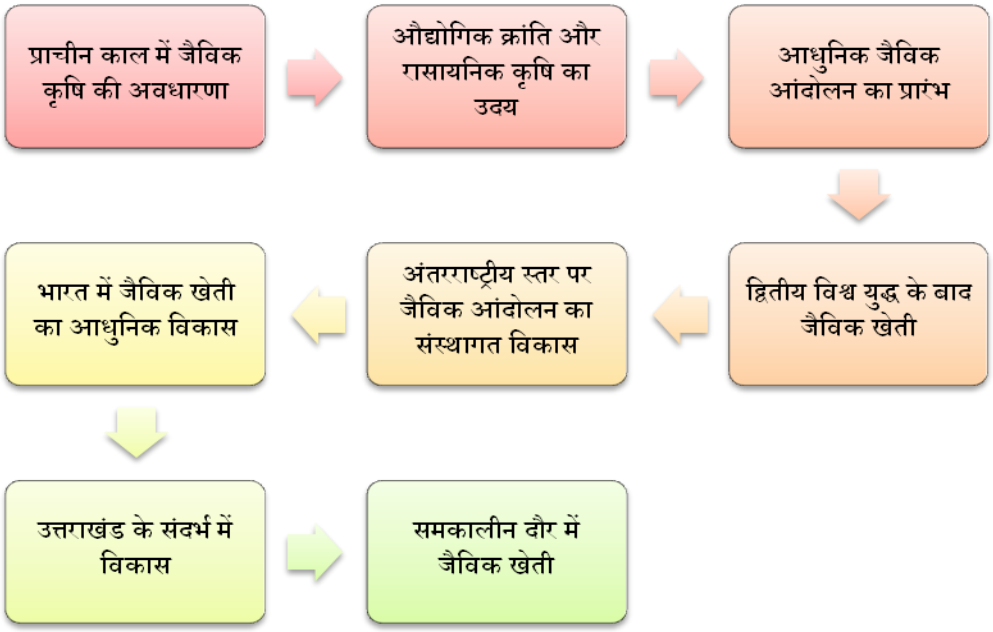
- ❖ Lampkin (1990) ने जैविक कृषि को ऐसी कृषि प्रणाली के रूप में देखा जिसमें अप्राकृतिक उपादानों पर निर्भरता कम करते हुए प्राकृतिक प्रक्रियाओं और पारिस्थितिक संबंधों का उपयोग किया जाता है। उनके अनुसार जैविक कृषि का उद्देश्य केवल कृत्रिम रसायनों का बहिष्कार नहीं, बल्कि एक संपूर्ण समावेशी कृषि–पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण है।
- ❖ Altieri (1995) ने जैविक एवं पारिस्थितिक कृषि की अवधारणा को कृषि–पारिस्थितिकी से जोड़ते हुए इस बात पर बल दिया कि कृषि उत्पादन को प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्रों के सिद्धांतों के अनुरूप विकसित किया जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण में जैव–विविधता, पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण, खेती को नुकसान पहुंचाने वाले कीट एवं अन्यि जीवों के प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण तथा संसाधनों का कुशल उपयोग प्रमुख हैं।
- ❖ IFOAM (2005) के अनुसार जैविक कृषि एक ऐसी उत्पादन प्रणाली है जो मृदा, पारिस्थितिक तंत्र और मानव स्वास्थ्य के स्थायित्व को बनाए रखती है तथा प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले कृषि–आदानों के स्थान पर पारिस्थितिक प्रक्रियाओं और जैव–विविधता पर निर्भर करती है।
- ❖ इसी प्रकार FAO जैविक कृषि को ऐसी समग्र उत्पादन प्रबंधन प्रणाली मानता है जो कृषि–पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ्य को बढ़ावा देती है तथा जैव–विविधता, जैविक चक्र और मृदा की जैविक गतिविधि को प्रोत्साहित करती है।

अतः विभिन्न विद्वानों के विचारों का समेकित विश्लेषण करने पर कहा जा सकता है कि जैविक खेती एक ऐसी ज्ञान–आधारित एवं पारिस्थितिकी–केंद्रित कृषि प्रणाली है, जिसमें प्राकृतिक संसाधनों और जैविक प्रक्रियाओं का संरक्षण करते हुए दीर्घकालिक कृषि उत्पादकता, पर्यावरणीय संतुलन और मानव कल्याण सुनिश्चित करने का प्रयास किया जाता है।

जैविक खेती का ऐतिहासिक विकास

जैविक खेती वर्तमान समय में सतत कृषि, पर्यावरण संरक्षण, मृदा स्वास्थ्य तथा सुरक्षित खाद्य उत्पादन की एक महत्वपूर्ण पद्धति के रूप में उभरकर सामने आई है, किंतु इसके मूल सिद्धांत मानव सभ्यता के कृषि इतिहास जितने ही पुराने हैं। कृषि के प्रारंभिक दौर में किसान स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहते थे और पशुधन, फसल अवशेष, जैविक पदार्थ, हरी खाद तथा फसल चक्र के माध्यम से मृदा की उर्वरता बनाए रखते थे। उस समय रासायनिक उर्वरकों एवं कृत्रिम कीटनाशकों का प्रयोग नहीं होता था। इसलिए परंपरागत कृषि प्रणालियों को जैविक कृषि के ऐतिहासिक आधार के रूप में देखा जा सकता है।

चित्र सं1: जैविक खेती का ऐतिहासिक विकासक्रम



प्राचीन काल में जैविक कृषि की अवधारणारू भारत में जैविक कृषि की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अत्यंत समृद्ध रही है। प्राचीन भारतीय कृषि व्यवस्था प्रकृति, पशुधन और कृषि के बीच संतुलित संबंध पर आधारित थी। वैदिक साहित्य, कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा समरांगणसूत्रधार एवं वृहद विभिन्न ग्रंथों में भूमि की उर्वरता, सिंचाई, पशुपालन, बीज संरक्षण और प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग का उल्लेख मिलता है। भारतीय किसान गोबर, गोमूत्र, पत्तियों, फसल अवशेष और अन्य जैविक पदार्थों का उपयोग मृदा की उर्वरता बढ़ाने के लिए करते थे। मिश्रित खेती और पशुपालन कृषि व्यवस्था के अभिन्न

अंग थे। इस प्रकार प्राचीन भारतीय कृषि में कृषि–परिस्थितिकी और संसाधनों के पुनर्चक्रण की ऐसी अनेक विशेषताएँ मौजूद थीं, जिन्हें आज जैविक एवं प्राकृतिक खेती के प्रमुख सिद्धांतों के रूप में स्वीकार किया जाता है।

औद्योगिक क्रांति और रासायनिक कृषि का उदयरू 18वीं और 19वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति के प्रभाव से कृषि में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। जनसंख्या वृद्धि और खाद्यान्न की बढ़ती मांग ने कृषि उत्पादकता बढ़ाने की आवश्यकता उत्पन्न की। 19वीं शताब्दी के मध्य में रासायनिक उर्वरकों के वैज्ञानिक उपयोग को बढ़ावा मिला। नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश आधारित उर्वरकों के प्रयोग तथा बाद में रासायनिक कीटनाशकों के विकास ने कृषि उत्पादन को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हालांकि इससे उत्पादन में वृद्धि हुई, लेकिन धीरे–धीरे मृदा क्षरण, जैव विविधता में कमी, जल प्रदूषण तथा कृषि पारिस्थितिकी पर प्रतिकूल प्रभाव जैसी समस्याएँ भी दिखाई देने लगीं।

आधुनिक जैविक आंदोलन का प्रारंभरू 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में कुछ वैज्ञानिकों और कृषि विचारकों ने अत्यधिक रासायनिक कृषि के विकल्पों की खोज प्रारंभ की। इस दौर में सर अल्बर्ट हावर्ड (Sir Albert Howard) का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने भारत में कार्य करते हुए भारतीय किसानों की पारंपरिक कृषि प्रणालियों का अध्ययन किया और मृदा की उर्वरता को बनाए रखने में जैविक पदार्थ तथा कंपोस्ट की महत्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित किया। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक An Agricultural Testament (1940) ने आधुनिक जैविक कृषि के विकास को वैचारिक एवं वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। हावर्ड ने इस बात पर बल दिया कि स्वस्थ फसल का आधार स्वस्थ मृदा है और मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए जैविक पदार्थों का पुनर्चक्रण आवश्यक है। इसी अवधि में रूडोल्फ स्टाइनर (Rudolf Steiner) ने 1924 में अपने व्याख्यानों के माध्यम से ठपवकलदंउपब Agriculture की अवधारणा प्रस्तुत की। उनका दृष्टिकोण कृषि को केवल उत्पादन की प्रक्रिया न मानकर एक जीवंत एवं समग्र पारिस्थितिक तंत्र के रूप में देखने पर आधारित था। इसके अतिरिक्त लेडी ईव बालफोर (Lady Eve Balfour) ने 1943 में प्रकाशित अपनी पुस्तक जीम स्पअपदह ैवपस के माध्यम से मृदा को कृषि प्रणाली

के जीवंत आधार के रूप में प्रस्तुत किया। इन विचारों ने जैविक आंदोलन को व्यापक बौद्धिक आधार प्रदान किया।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जैविक खेतीरू द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व में खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने पर विशेष जोर दिया गया। रासायनिक उर्वरकों, सिंथेटिक कीटनाशकों, संकर बीजों और कृषि मशीनीकरण के व्यापक प्रयोग ने कृषि उत्पादन में तेजी से वृद्धि की। 1960 और 1970 के दशकों में हरित क्रांति के माध्यम से अनेक विकासशील देशों में खाद्यान्न उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। भारत में भी हरित क्रांति ने खाद्यान्न आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जैविक आंदोलन का संस्थागत विकासः 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जैविक कृषि एक संगठित अंतरराष्ट्रीय आंदोलन के रूप में विकसित हुई। वर्ष 1972 में International Federation of Organic Agriculture Movements (IFOAM) की स्थापना ने वैश्विक जैविक आंदोलन को संस्थागत आधार प्रदान किया। इसके बाद विभिन्न देशों में जैविक कृषि के लिए उत्पादन मानक, प्रमाणन प्रणाली, निरीक्षण व्यवस्था और जैविक उत्पादों के विपणन संबंधी नियम विकसित होने लगे। 1990 के दशक से जैविक खाद्य पदार्थों की मांग में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। उपभोक्ताओं में स्वास्थ्य, खाद्य सुरक्षा, पर्यावरण संरक्षण और रासायनिक अवशेषों के प्रति बढ़ती चिंता ने जैविक कृषि को एक महत्वपूर्ण वैश्विक बाजार प्रदान किया। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन (थ।व) सहित विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं ने भी जैविक एवं सतत कृषि प्रणालियों के महत्व को रेखांकित किया।

भारत में जैविक खेती का आधुनिक विकासरू भारत में जैविक खेती का आधुनिक विकास पारंपरिक कृषि ज्ञान और आधुनिक संस्थागत प्रयासों के समन्वय से हुआ। 1980 और 1990 के दशकों में देश के विभिन्न क्षेत्रों में गैर–रासायनिक कृषि, जैविक खाद, कंपोस्ट, वर्मी–कंपोस्ट, जैव–कीटनाशक तथा पारंपरिक बीजों के संरक्षण पर पुनः ध्यान दिया जाने लगा। भारत सरकार ने जैविक कृषि को संस्थागत रूप देने के लिए वर्ष 2001 में National Programme for Organic Production (NPOP) प्रारंभ किया।

इसके अंतर्गत जैविक उत्पादन के मानक, प्रमाणन, निरीक्षण तथा जैविक उत्पादों के निर्यात के लिए व्यवस्था विकसित की गई। बाद में देश के भीतर जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न योजनाएँ लागू की गईं। इनमें च्तंउचंतंहंज ज्ञतपींप टपों ल्वरंदं (च्ज्ञटल)तथा डपेपवद व्तहंदपब टंसनम बिंपद Development वित छवतजी मेंजमतद त्महपवद (MOVCDNER) महत्वपूर्ण हैं। भारत में जैविक खेती को बढ़ावा देने का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि देश के अनेक पहाड़ी, आदिवासी और वर्षा–आधारित क्षेत्रों में किसान ऐतिहासिक रूप से अपेक्षाकृत कम रासायनिक इनपुट का उपयोग करते रहे हैं। विशेष रूप से हिमालयी क्षेत्रों में पारंपरिक मिश्रित कृषि, पशुपालन, जैविक खाद, फसल विविधता और स्थानीय संसाधनों पर आधारित कृषि प्रणालियाँ जैविक खेती के लिए अनुकूल आधार प्रदान करती हैं।

उत्तराखंड के संदर्भ में विकासरू उत्तराखंड में जैविक खेती का विकास विशेष महत्व रखता है। पर्वतीय क्षेत्रों में छोटे एवं सीमांत कृषक, वर्षा–आधारित कृषि, पारंपरिक फसल विविधता और पशुधन आधारित कृषि व्यवस्था जैविक कृषि की संभावनाओं को मजबूत करती है। राज्य में रासायनिक कृषि की तुलना में पारंपरिक कृषि प्रणालियों के अनेक तत्व पहले से ही प्रचलित रहे हैं। राज्य सरकार द्वारा जैविक कृषि, जैविक उत्पादों के प्रमाणीकरण, मूल्य संवर्धन तथा विपणन को बढ़ावा देने के प्रयास किए गए हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में मंडुवा, झंगोरा, चौलाई, राजमा, गहत, भट्ट तथा विभिन्न स्थानीय फलों एवं मसालों जैसे उत्पाद जैविक एवं प्राकृतिक कृषि के संदर्भ में विशेष संभावनाएँ रखते हैं।

प्राकृतिक खेतीः दर्शन, अवधारणा एवं वैज्ञानिक आधार

प्राकृतिक खेती (Natural Farming) समकालीन कृषि–चिंतन में ऐसी पद्धति के रूप में उभर रही है, जो कृषि को केवल अधिक उत्पादन प्राप्त करने की तकनीक न मानकर मृदा, जल, वनस्पति, जीव–जंतु, सूक्ष्मजीव तथा मानव के बीच पारिस्थितिक संतुलन स्थापित करने वाली जीवन–पद्धति के रूप में देखती है इसका मूल दर्शन यह है कि कृषि–उत्पादन प्रकृति की मौलिक प्रक्रियाओं के साथ सामंजस्य स्थापित करके किया जाए, न कि प्रकृति को नियंत्रित करने के लिए अत्यधिक बाहरी एवं रासायनिक इनपुट पर निर्भर रहा जाए।

भारत में नीति आयोग प्राकृतिक खेती को "रसायन–मुक्त एवं पशुधन–आधारित खेती" के रूप में परिभाषित करता है तथा इसे कृषि–पारिस्थितिकी पर आधारित विविधीकृत कृषि प्रणाली मानता है, जिसमें फसल, वृक्ष एवं पशुधन का एकीकरण तथा कार्यात्मक जैव–विविधता का अधिकतम उपयोग किया जाता है।

प्राकृतिक खेती की अवधारणा को आधुनिक रूप में विशेष पहचान जापानी कृषक एवं चिंतक मसानोबू फुकुओका (Masanobu Fukuoka) के दर्शन से मिली। फुकुओका के अनुसार प्राकृतिक खेती का सार प्रकृति के विरुद्ध अनावश्यक हस्तक्षेप को कम करना और कृषि को प्रकृति की स्वाभाविक प्रक्रियाओं के साथ जोड़ना है। उनके विचार में यह "कुछ न करने" की खेती नहीं, बल्कि अनावश्यक कृषि–क्रियाओं को हटाकर प्रकृति के साथ सहयोग करने की खेती है। इसी विचार को व्यापक कृषि–पारिस्थितिक दृष्टिकोण से देखें तो प्राकृतिक खेती का उद्देश्य मिट्टी की जैविक सक्रियता, जैव–विविधता, पोषक–तत्व चक्रण और प्राकृतिक कीट–नियंत्रण जैसी प्रक्रियाओं को सुदृढ़ करना है। छप्ज् ।लवह के अनुसार प्राकृतिक खेती प्राकृतिक अथवा पारिस्थितिक प्रक्रियाओं पर आधारित होती है और फसल, वृक्ष तथा पशुधन को एकीकृत कर संसाधनों का बेहतर उपयोग करती है। भारत में प्राकृतिक खेती की अवधारणा पारंपरिक कृषि–ज्ञान से भी गहराई से जुड़ी है। ICAR के अनुसार जैविक एवं प्राकृतिक खेती की अनेक विधियाँ स्थानीय ज्ञान, संस्कृति तथा स्थानीय जैव–भौतिक एवं सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप विकसित हुई हैं। इस प्रकार प्राकृतिक खेती आधुनिक तकनीकी ज्ञान और पारंपरिक अनुभव के बीच एक सेतु का निर्माण करती है। प्राकृतिक खेती का दार्शनिक आधार "प्रकृति के साथ संघर्ष नहीं, सहयोग" है। इसमें खेत को एक जीवित पारिस्थितिकी–तंत्र माना जाता है। किसान का कार्य केवल बीज डालना, खाद देना और कीटनाशक छिड़कना नहीं, बल्कि ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित करना है जिनमें मिट्टी, पौधे, सूक्ष्मजीव, कीट, पशु और अन्य जीव परस्पर सहयोग करते हुए उत्पादन–प्रक्रिया को संचालित करें। इस दर्शन के प्रमुख तत्व हैं–अहस्तक्षेप या न्यूनतम हस्तक्षेप, स्थानीय संसाधनों का उपयोग, जैव–विविधता, मृदा को जीवित रखना, पोषक–तत्वों का पुनर्चक्रण, मिश्रित एवं बहुफसली खेती, पशुधन का एकीकरण तथा प्राकृतिक पारिस्थितिक प्रक्रियाओं का संरक्षण। फुकुओका की विचारधारा में

अनावश्यक जुताई, खरपतवार नियंत्रण, रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों पर निर्भरता को कम करने पर ध्याकन दिया गया है।

प्राकृतिक खेती का वैज्ञानिक आधार मुख्यतः मृदा–पारिस्थितिकी, जैव–विविधता, सूक्ष्मजीव विज्ञान, पोषक–तत्व चक्रण एवं जल–संरक्षण में निहित है। स्वस्थ मृदा केवल खनिज पोषक–तत्वों का भंडार नहीं, बल्कि अरबों सूक्ष्मजीवों से युक्त एक जीवंत तंत्र है। प्ब्।त् के अनुसार ये सूक्ष्मजीव मृदा को "जीवित" प्रणाली बनाए रखने तथा पोषक–तत्वों के चक्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अत्यधिक कृषि–रसायनों के प्रयोग से मृदा की जैविक गतिविधि एवं संतुलन प्रभावित हो सकता है। प्राकृतिक खेती में मल्चिंग, जैविक अवशेषों का पुनर्चक्रण और मृदा को ढककर रखना, मृदा की नमी बनाए रखने, तापमान में उतार–चढ़ाव कम करने और जैविक गतिविधि को बढ़ाने में सहायक हो सकते हैं। इसी प्रकार फसल विविधीकरण और मिश्रित खेती विभिन्न पौधों की जड़ों, सूक्ष्मजीवों एवं लाभकारी कीटों के बीच संबंधों को बढ़ाती है। FAO के कृषि–पारिस्थितिकी संबंधी दृ ष्टिकोण में भी विविधीकरण, मिश्रित खेती, पुनर्चक्रण तथा मृदा एवं पशु स्वास्थ्य को अधिक तमेपसपमदज कृषि–तंत्र के महत्वपूर्ण आधार माना गया है। भारतीय प्राकृतिक खेती में बीजामृत, जीवामृत, घनजीवामृत, आच्छादन (mulching) तथा बहुफसली प्रणाली जैसी तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। ICAR ने प्राकृतिक खेती के प्रशिक्षण कार्यक्रमों में इन विधियों को प्रमुख घटकों के रूप में रेखांकित किया है। इनका वैज्ञानिक औचित्य मृदा में जैविक पदार्थ, सूक्ष्मजीवी सक्रियता और पोषक–तत्वों के पुनर्चक्रण को बढ़ावा देने की संभावनाओं से जुड़ा हैय हालांकि विभिन्न फसलों, मृदाओं और जलवायु परिस्थितियों में इनके प्रभाव का मूल्यांकन स्थानीय वैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा किया जाना आवश्यक है।

जैविक एवं प्राकृतिक खेती: समानताएँ और भिन्नताएँ

जैविक खेती (Organic Farming) और प्राकृतिक खेती (Natural Farming) दोनों ही कृषि की ऐसी पर्यावरण केअनुकूल विधियां हैं, जिनका उद्देश्य रासायनिक कृषि उत्पातदो पर निर्भरता कम करना, मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखना, जैव विविधता का संरक्षण तथा

सुरक्षित एवं गुणवत्तापूर्ण खाद्य उत्पादन करना है। हालांकि दोनों की वैचारिक पृष्ठभूमि में रसायनिक उत्पासदों के उपयोग और कृषि–प्रबंधन की पद्धतियों में महत्वपूर्ण अंतर है।

तालिका1.1 जैविक एवं प्राकृतिक खेतीरू समानताएँ और भिन्नताएँ

आधार	जैविक खेती (Organic Farming)	प्राकृतिक खेती (Natural Farming)
संकल्पना	कृषि उत्पादन में प्राकृतिक एवं जैविक उत्पाउदों का प्रयोग करते हुए पारिस्थितिक प्रक्रियाओं को बढ़ावा देने वाली प्रमाणित कृषि प्रणाली।	प्रकृति की स्व–नियामक एवं पारिस्थितिक प्रक्रियाओं के अनुरूप खेती करने की ऐसी पद्धति जिसमें बाहरी अजैविक उत्पाकदों को न्यूनतम रखा जाता है।
संकल्पना	"मिट्टी, पौधे, पशु और मानव के स्वास्थ्य की समग्रता" पर आधारित।	प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व, न्यूनतम हस्तक्षेप और कृषि पारिस्थितिकी की आत्मनिर्भरता पर आधारित।
मूल दर्शन	रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग सामान्यतः निषिद्ध है।	रासायनिक उर्वरकों से पूर्णतः परहेज किया जाता है।
रासायनिक उर्वरक	कृषि उत्पादन में प्राकृतिक एवं जैविक उत्पाउदों का प्रयोग करते हुए पारिस्थितिक प्रक्रियाओं को बढ़ावा देने वाली प्रमाणित कृषि प्रणाली।	प्रकृति की स्व–नियामक एवं पारिस्थितिक प्रक्रियाओं के अनुरूप खेती करने की ऐसी पद्धति जिसमें बाहरी अजैविक उत्पाकदों को न्यूनतम रखा जाता है।
रासायनिक कीटनाशक	कृत्रिम रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग प्रतिबंधितध्सीमित होता है।	रासायनिक कीटनाशकों से बचते हुए जैविक एवं पारिस्थितिक कीट–प्रबंधन पर बल।
जैविक खाद	कम्पोस्ट, वर्मी–कम्पोस्ट, हरी खाद, थ्ल्ड आदि का महत्वपूर्ण स्थान।	खेत पर उपलब्ध जैविक संसाधनों, जीवामृत, घनजीवामृत, आच्छादन आदि पर विशेष जोर।

बाहरी इनपुट	अनुमोदित जैविक उत्पाादों का बाहरी स्रोत से उपयोग किया जा सकता है।	बाहरी अजैविक उत्पाकदों को यथासंभव न्यूनतम रखने तथा खेत की स्थानीय संसाधन–आधारित आत्मनिर्भरता पर जोर।
मृदा प्रबंधन	जैविक पदार्थ बढ़ाकर मृदा की उर्वरता, संरचना एवं जैविक गतिविधि सुधारना।	मृदा को जीवित पारिस्थितिकी तंत्र मानकर सूक्ष्मजीवों एवं प्राकृतिक प्रक्रियाओं को सक्रिय करना।
कीट प्रबंधन	जैविक कीटनाशक, जैव–नियंत्रण, फसल विविधीकरण एवं समेकित उपाय।	कीट एवं अन्य जीवों के फसलों को नुकसान पहुंचाने वाले प्राकृतिक शत्रुओं, जैव–विविधता और पारिस्थितिक संतुलन को प्रमुख आधार बनाना।
खरपतवार प्रबंधन	यांत्रिक, जैविक एवं सांस्कृतिक उपायों का प्रयोग।	मल्चिंगध्आच्छादन, फसल विविधता एवं न्यूनतम मृदा हस्तक्षेप पर बल।
प्रमाणन	जैविक कृषि के लिए औपचारिक प्रमाणन व्यवस्था महत्वपूर्ण है, विशेषकर बाजार में "व्तहंदपब" उत्पाद के रूप में बिक्री के लिए।	प्राकृतिक खेती में सामान्यतः जैविक प्रमाणन की अनिवार्यता नहीं होतीय भारत में प्राकृतिक खेती के लिए अलग–अलग सरकारीध्प्रमाणन ढाँचे विकसित किए जा रहे हैं।
लागत	प्रारंभिक अवस्था में जैविक उत्पानदों, श्रम और प्रमाणन के कारण लागत अपेक्षाकृत अधिक हो सकती है।	स्थानीय संसाधनों के उपयोग के कारण अजैविक उत्पाधदों की लागत अपेक्षाकृत कम रखने का लक्ष्य।
आत्मनिर्भरता	खेत की आत्मनिर्भरता को प्रोत्साहित करती है, लेकिन प्रमाणित जैविक	किसान एवं खेत की स्थानीय संसाधनों पर अधिकतम

	उत्पारूदों की खरीद संभव है।	आत्मनिर्भरता इसका प्रमुख लक्ष्य है।
पशुधन की भूमिका	पशुपालन और कृषि का एकीकरण जैविक खेती में महत्वपूर्ण है।	देशी पशुधन, विशेषकर देशी गाय, की भूमिका कई भारतीय प्राकृतिक खेती मॉडलों में महत्वपूर्ण मानी जाती है।
प्रमुख दृष्टिकोण	"ऑर्गेनिक उत्पाणदों के माध्यम से पारिस्थितिक कृषि।"	"प्रकृति की प्रक्रियाओं के साथ न्यूनतम हस्तक्षेप।"
प्रमुख उद्देश्य	सुरक्षित खाद्य, मृदा स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण और टिकाऊ कृषि।	कृषि को कम लागत, संसाधन–कुशल, आत्मनिर्भर एवं पारिस्थितिक रूप से टिकाऊ बनाना।

उत्तराखंड की कृषि–जैव विविधता: जैविक खेती की आधारशिला

जैविक एवं प्राकृतिक खेती वर्तमान कृषि व्यवस्था में ऐसी वैकल्पिक कृषि प्रणालियों के रूप में उभर रही हैं, जिनका उद्देश्य केवल रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का विकल्प प्रस्तुत करना नहीं, बल्कि मृदा स्वास्थ्य, जैव विविधता, जल संरक्षण, स्थानीय संसाधनों के पुनर्चक्रण तथा कृषि–पारिस्थितिकी के संतुलन को बनाए रखना है। पर्वतीय राज्य उत्तराखण्ड के लिए इन प्रणालियों का महत्त्व और भी अधिक है, क्योंकि यहाँ कृषि मुख्यतः वर्षा–आधारित, छोटे एवं बिखरे हुए खेतों, सीमित सिंचाई, विविध कृषि–जलवायु परिस्थितियों और पारंपरिक कृषि ज्ञान पर आधारित है। राज्य के पर्वतीय क्षेत्रों में स्थानीय संसाधनों का उपयोग करके कम लागत वाली जैविक एवं प्राकृतिक खेती किसानों की आय, मृदा उर्वरता तथा पर्यावरणीय स्थिरता को मजबूत कर सकती है।

- **जैविक खाद एवं कम्पोस्ट का प्रयोग:** जैविक खेती की आधारभूत तकनीक गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मी–कम्पोस्ट और हरी खाद का प्रयोग है। उत्तराखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों में पशुपालन और कृषि एक–दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। इसलिए

गोबर, पशुशाला का कचरा, पत्तियाँ, घास तथा फसल अवशेष आसानी से उपलब्ध जैविक संसाधन हैं। उदाहरण के लिए, किसी पहाड़ी किसान द्वारा गेहूँ की कटाई के बाद उपलब्ध भूसा, पशुओं का गोबर और खेत की सूखी पत्तियों को मिलाकर कम्पोस्ट तैयार किया जा सकता है। इसी प्रकार वर्मी–कम्पोस्ट का उपयोग सब्जियों, दालों तथा बागवानी फसलों में किया जा सकता है। इससे खेत में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ती है तथा मृदा की जलधारण क्षमता में सुधार होता है। उत्तराखण्ड जैसे पर्वतीय क्षेत्रों में यह विशेष रूप से उपयोगी है क्योंकि जैविक पदार्थ मृदा अपरदन और नमी की कमी जैसी समस्याओं से निपटने में सहायक होता है।

- **फसल चक्र एवं बहुफसली खेती:** उत्तराखण्ड की पारंपरिक कृषि में मिश्रित एवं बहुफसली खेती का महत्त्व ऐतिहासिक रूप से रहा है। मंडुवा, झंगोरा, राजमा, गहत, भट्ट, मसूर, गेहूँ और विभिन्न सब्जियों, फलों को अलग–अलग परिस्थितियों में उगाया जाता है। आधुनिक कृषि में इस पारंपरिक विविधता को वैज्ञानिक फसल चक्र के साथ जोड़कर अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, एक खेत में एक वर्ष मंडुवा, अगले वर्ष दलहनी फसल जैसे गहत या मसूर तथा उसके बाद सब्जी फसल लेना मृदा की उर्वरता और जैव विविधता के लिए लाभकारी हो सकता है। दलहनी फसलें जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण में योगदान देती हैं। बहुफसली खेती से किसी एक फसल के खराब होने पर किसान की पूरी आय समाप्त होने का जोखिम भी कम होता है।
- **अंतरवर्ती एवं मिश्रित खेती:** पर्वतीय कृषि में भूमि सीमित होने के कारण अंतरवर्ती खेती (Intercropping) अत्यंत उपयोगी तकनीक है। उदाहरण के लिए, मक्का के साथ राजमा, मंडुवा के साथ दलहन या सब्जियों के साथ मसालों की खेती की जा सकती है। इससे भूमि, प्रकाश, जल और पोषक तत्वों का अपेक्षाकृत बेहतर उपयोग होता है। उत्तराखण्ड में पारंपरिक रूप से मक्का. राजमा या विभिन्न अनाज एवं दलहन को साथ उगाने की प्रथाएँ स्थानीय कृषि ज्ञान का महत्त्वपूर्ण हिस्सा रही हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से ऐसी प्रणालियाँ कृषि–जैव विविधता को बढ़ाती हैं और कीट एवं रोगों के एक साथ फैलने की संभावना को कम कर सकती हैं।

- **प्राकृतिक खेती में बीजामृत एवं जीवामृत:** प्राकृतिक खेती में बीजामृत और जीवामृत प्रमुख तकनीकों में शामिल हैं। बीजामृत का उपयोग बीज उपचार के लिए किया जाता है, जबकि जीवामृत को मृदा में सूक्ष्मजीवी गतिविधि को बढ़ावा देने वाले जैविक उत्पाउद के रूप में प्रयोग किया जाता है। उत्तराखण्ड के छोटे किसानों के लिए इन तकनीकों का महत्त्व इसलिए भी है कि इनके निर्माण में स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों का उपयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, किसान स्थानीय पशुधन से प्राप्त गोबर एवं गोमूत्र के साथ अन्य जैविक पदार्थों का उपयोग करके प्राकृतिक कृषि इनपुट तैयार कर सकता है। हालांकि इनका उपयोग वैज्ञानिक अनुशंसाओं, फसल की आवश्यकता और स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार किया जाना चाहिएय इन्हें प्रत्येक परिस्थिति में रासायनिक उर्वरकों का स्वतः पूर्ण विकल्प मानना उचित नहीं है।
- **मल्चिंग और आच्छादन:** उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में वर्षा का वितरण असमान होने तथा गर्मियों में मृदा की नमी कम होने के कारण मल्चिंग अत्यंत उपयोगी तकनीक है। सूखी घास, पत्तियाँ, फसल अवशेष तथा अन्य जैविक पदार्थों से मिट्टी को ढकने पर वाष्पीकरण कम होता है और मृदा की नमी लंबे समय तक बनी रह सकती है। उदाहरण के लिए, आलू, सब्जियों या फलों के पौधों के आसपास सूखी घास की परत बिछाने से खरपतवार नियंत्रण के साथ–साथ मृदा की नमी संरक्षण में सहायता मिल सकती है। पहाड़ी ढलानों पर जैविक आच्छादन मृदा के सीधे वर्षाजल से प्रभावित होने को कम करके अपरदन को घटाने में भी सहायक हो सकता है।
- **जैविक कीट एवं रोग प्रबंधन:** जैविक खेती में कीट नियंत्रण के लिए रासायनिक कीटनाशकों के स्थान पर नीम आधारित उत्पाद, जैव–कीटनाशी, ट्राइकोडर्मा, ब्यूवेरिया बेसियाना, फेरोमोन ट्रैप, पीले चिपचिपे ट्रैप और प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण किया जाता है। उत्तराखण्ड में सब्जी उत्पादन वाले क्षेत्रों में फल मक्खी, एफिड, विभिन्न कैटरपिलर तथा अन्य कीट किसानों के लिए चुनौती हो सकते हैं। ऐसे मामलों में खेत की नियमित निगरानी, रोगग्रस्त पौधों को हटाना, फसल चक्र,

जैविक उपचार और यांत्रिक नियंत्रण को एकीकृत करना अधिक प्रभावी रणनीति हो सकती है। इसे एकीकृत कीट प्रबंधन (IPM) के सिद्धांतों से जोड़ा जा सकता है।

- **खरपतवार प्रबंधन:** प्राकृतिक एवं जैविक खेती में खरपतवार नियंत्रण के लिए हाथ से निराई, खुरपी, मल्चिंग, अंतरवर्ती खेती और उचित फसल चक्र का प्रयोग किया जाता है। पर्वतीय क्षेत्रों में छोटे एवं सीढ़ीनुमा खेत होने के कारण यांत्रिक निराई हमेशा संभव नहीं होतीय इसलिए स्थानीय श्रम और जैविक आच्छादन का महत्त्व बढ़ जाता है। उदाहरण के लिए, सब्जियों की कतारों के बीच जैविक मल्च का प्रयोग करने से खरपतवारों की वृद्धि कम की जा सकती है तथा खेत में श्रम की आवश्यकता भी घटाई जा सकती है।
- **फसल अवशेषों का पुनर्चक्रण:** उत्तराखण्ड में कृषि अवशेषों को जलाने के बजाय उनका कम्पोस्ट, मल्च और पशु–आधारित जैविक खाद के रूप में उपयोग करना सतत कृषि की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। मंडुवा, गेहूँ, मक्का तथा दलहनी फसलों के अवशेषों को उचित रूप से विघटित करके खेत में वापस मिलाने से पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण होता है। यह तकनीक विशेष रूप से छोटे किसानों के लिए उपयोगी है क्योंकि इससे बाजार से खरीदे जाने वाले बाहरी आगतों पर निर्भरता कम की जा सकती है।
- **फसल–पशुधन एकीकरण:** उत्तराखण्ड की पारंपरिक कृषि व्यवस्था में कृषि और पशुपालन का एकीकरण पहले से मौजूद रहा है। गाय, भैंस, बकरी आदि से प्राप्त गोबर का उपयोग खाद के रूप में तथा कृषि अवशेषों का उपयोग पशु चारे के रूप में किया जाता है। इस प्रकार एक गतिविधि का अपशिष्ट दूसरी गतिविधि के लिए संसाधन बनता है। उदाहरण के लिए, खेत से प्राप्त भूसा पशुओं के चारे में तथा पशुशाला से प्राप्त गोबर कम्पोस्ट निर्माण में प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार पोषक तत्वों का स्थानीय चक्र मजबूत होता है और कृषि की लागत कम करने में सहायता मिलती है।
- **जल एवं मृदा संरक्षण:** उत्तराखण्ड में मृदा अपरदन और जल की उपलब्धता कृषि की प्रमुख चुनौतियों में हैं। अतः जैविक एवं प्राकृतिक खेती को जल एवं मृदा संरक्षण तकनीकों के साथ जोड़ना आवश्यक है। कंटूर आधारित खेती, सीढ़ीनुमा

खेतों का संरक्षण, मेड़बंदी, घास–पट्टी, वर्षाजल संचयन और मल्चिंग जैसी तकनीकें उपयोगी हो सकती हैं। विशेषकर ढलानदार खेतों में वर्षाजल के तेज बहाव को कम करना आवश्यक है। खेत की मेड़ों पर घास या अन्य वनस्पतियाँ लगाने से मिट्टी के बहाव को नियंत्रित करने में सहायता मिल सकती है।

- **स्थानीय एवं पारंपरिक फसलों का संरक्षण:** उत्तराखण्ड की मंडुवा, झंगोरा, गहत, भट्ट, राजमा, चौलाई तथा विभिन्न स्थानीय सब्जियाँ जैव विविधता और पोषण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इन फसलों को जैविक एवं प्राकृतिक खेती प्रणालियों में शामिल करने से स्थानीय आनुवंशिक संसाधनों का संरक्षण किया जा सकता है। इन फसलों की बाजार में विशिष्ट पहचान विकसित करके किसानों को बेहतर मूल्य दिलाने की संभावनाएँ भी बढ़ाई जा सकती हैं। इस प्रकार जैविक खेती केवल उत्पादन प्रणाली नहीं, बल्कि स्थानीय कृषि–संस्कृति और पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण का माध्यम भी बन सकती है।
- कृषि–वनीकरण एवं बागवानी का समावेशन: उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में कृषि वनीकरण (Agroforestry) और बागवानी को जैविक खेती के साथ जोड़ा जा सकता है। फलदार वृक्षों, चारा वृक्षों और कृषि फसलों का उचित संयोजन भूमि की उत्पादकता बढ़ाने में सहायक हो सकता है। सेब, नाशपाती, आड़ू, प्लम, माल्टा तथा नींबू वर्गीय फसलों के साथ जैविक खाद, मल्चिंग और जैविक कीट प्रबंधन को अपनाया जा सकता है।

Reference

1. Agricultural and Processed Food Products Export Development Authority (APEDA). (n.d.). *National Programme for Organic Production (NPOP)*. Ministry of Commerce & Industry, Government of India.
2. Altieri, M. A. (1995). *Agroecology: The science of sustainable agriculture*. Westview Press.
3. Balfour, E. B. (1943). *The Living Soil*. Faber & Faber.
4. Food and Agriculture Organization of the United Nations (FAO). (2002). *Organic agriculture, environment and food security*. FAO.
5. Food and Agriculture Organization of the United Nations (FAO). (2018). *The 10 elements of agroecology: Guiding the transition to sustainable food and agricultural systems*. Rome: FAO.

6. Food and Agriculture Organization of the United Nations. (2015). *Soils and food security*. FAO.
7. Food and Agriculture Organization of the United Nations. (2018). *The 10 elements of agroecology: Guiding the transition to sustainable food and agricultural systems*. FAO.
8. Food and Agriculture Organization of the United Nations. (2019). *The state of the world's biodiversity for food and agriculture*. FAO. https://doi.org/10.4060/CA3129EN
9. Food and Agriculture Organization of the United Nations. (2020). *The state of knowledge of soil biodiversity: Status, challenges and potentialities*. FAO. https://doi.org/10.4060/cb1928en
10. Food and Agriculture Organization of the United Nations. (2021). *The state of the world's land and water resources for food and agriculture: Systems at breaking point*. FAO.
11. Food and Agriculture Organization of the United Nations. (2021). *The state of food and agriculture 2021: Making agrifood systems more resilient to shocks and stresses*. FAO. https://doi.org/10.4060/cb4476en
12. Food and Agriculture Organization of the United Nations. (2022). *The state of food and agriculture 2022: Leveraging automation in agriculture for transforming agrifood systems*. FAO.
13. Food and Agriculture Organization of the United Nations. (2024). *Agroecological and other innovative approaches for sustainable agriculture and food systems*. FAO.
14. Food and Agriculture Organization of the United Nations. (n.d.). *Organic agriculture*. FAO.
15. Fukuoka, M. (1985). *The natural way of farming: The theory and practice of green philosophy*. Japan Publications.
16. Government of Uttarakhand, Department of Agriculture. (n.d.). *Organic and natural farming*. Government of Uttarakhand. Department of Agriculture, Uttarakhand
17. Government of Uttarakhand, Department of Agriculture. (n.d.). *Vision and mission*. Government of Uttarakhand. Department of Agriculture, Uttarakhand
18. Howard, A. (1940). *An agricultural testament*. Oxford University Press.
19. Howard, A. (1940). *An Agricultural Testament*. Oxford University Press.
20. https://agriculture.gov.in/?utm
21. https://www.fao.org/agroecology/overview/the-10-elements-of-agroecology/en
22. ICAR–Vivekananda Parvatiya Krishi Anusandhan Sansthan (VPKAS), Almora. *Research and technologies for hill agriculture*. Indian Council of Agricultural Research.
23. IFOAM – Organics International. (2005). *The principles of organic agriculture*. Bonn: IFOAM.
24. IFOAM. (2005). *Principles of organic agriculture*. International Federation of Organic Agriculture Movements.
25. IFOAM. (2005). *The principles of organic agriculture*. International Federation of Organic Agriculture Movements.
26. IFOAM–Organics International. (n.d.). *The history of the organic movement*. IFOAM–Organics International.
27. Indian Council of Agricultural Research. (2022). *Virtual workshop on "Sensitization of KVKs on Natural Farming for Healthy Nation"*. ICAR.

28. Indian Council of Agricultural Research. (2023). *1st meeting of the National Committee on Natural Farming organized*. ICAR.
29. Intergovernmental Panel on Climate Change. (2022). *Climate change 2022: Impacts, adaptation and vulnerability*. Cambridge University Press. https://doi.org/10.1017/9781009325844
30. Intergovernmental Panel on Climate Change. (2023). *Climate change 2023: Synthesis report*. Contribution of Working Groups I, II and III to the Sixth Assessment Report of the Intergovernmental Panel on Climate Change. IPCC. https://doi.org/10.59327/IPCC/AR6-9789291691647
31. Lampkin, N. (1990). *Organic farming*. Farming Press Books.
32. Lampkin, N. (1990). *Organic farming*. Farming Press.
33. Ministry of Agriculture & Farmers Welfare, Government of India. (n.d.). *Paramparagat Krishi Vikas Yojana (PKVY)*. Government of India.
34. Ministry of Agriculture & Farmers Welfare, Government of India. (2023). *National Mission on Natural Farming*. Government of India.
35. Ministry of Agriculture & Farmers Welfare. (2023). *National mission on natural farming*. Government of India. Ministry of Agriculture & Farmers Welfare
36. Ministry of Agriculture and Farmers Welfare. (2015). *National programme for organic production (NPOP)*. Government of India.
37. National Centre for Organic and Natural Farming (NCONF). *Organic and Natural Farming*. Department of Agriculture & Farmers Welfare, Government of India.
38. National Centre for Organic and Natural Farming. (n.d.). *Organic farming*. Department of Agriculture and Farmers Welfare, Ministry of Agriculture & Farmers Welfare, Government of India. National Centre for Organic and Natural Farming
39. Nature Farming International Research and Development Center. (2025). *What is Nature Farming?*
40. NITI Aayog. (n.d.). *Natural Farming: NITI Initiative*. Government of India.
41. Pretty, J. (2008). Agricultural sustainability: Concepts, principles and evidence. *Philosophical Transactions of the Royal Society B: Biological Sciences, 363*(1491), 447–465.
42. Pretty, J., & Bharucha, Z. P. (2014). Sustainable intensification in agricultural systems. *Annals of Botany, 114*(8), 1571–1596. https://doi.org/10.1093/aob/mcu205
43. Reganold, J. P., & Wachter, J. M. (2016). Organic agriculture in the twenty-first century. *Nature Plants, 2*, 15221. https://doi.org/10.1038/nplants.2015.221
44. Reganold, J. P., & Wachter, J. M. (2016). Organic agriculture in the twenty-first century. *Nature Plants, 2*, 15221.
45. Steiner, R. (1924). *Agriculture: Spiritual Foundations for the Renewal of Agriculture*. Rudolf Steiner Press.
46. Uttarakhand Organic Commodity Board. *Organic farming and organic agriculture in Uttarakhand*. Government of Uttarakhand.
47. Willer, H., & Lernoud, J. (Eds.). (2019). *The world of organic agriculture: Statistics and emerging trends 2019*. Research Institute of Organic Agriculture (FiBL) & IFOAM Organics International.

जैविक मूल्य श्रृंखलाओं द्वारा स्थानीय अर्थव्यवस्था का सशक्तीकरण

कृष्णा कुमार टम्टा[1], प्रीति पंत[1*], बीना तिवारी फुलारा[1], पूजा जुयाल[2], कीर्तिका पडलिया[2], और प्रभा बी. ढौंडियाल[2]

[1]वानिकी और पर्यावरण विज्ञान विभाग, भौमिकी एवं पर्यावरण विज्ञान संकाय, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखंड, 263139, भारत

[2]वनस्पति विज्ञान विभाग, विज्ञान संकाय, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखंड 263139, भारत

Corresponding author: ppant@uou.ac.in

सारांश

उत्तराखंड एक पारिस्थितिक रूप से संवेदनशील हिमालयी राज्य है, जहाँ ग्रामीण आजीविकाएँ मुख्यतः लघु एवं वर्षा-आधारित कृषि पर निर्भर हैं। छोटी एवं विखंडित जोतें, दुर्गम भौगोलिक परिस्थितियाँ, मौसमी परिवर्तनशीलता और जलवायु परिवर्तन कृषि उत्पादकता तथा कृषक आय को प्रभावित करते हैं। वहीं, स्थानीय ज्ञान, पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ, मोटे अनाज, विशिष्ट चावल तथा औषधीय एवं सुगंधित पौधे राज्य में विशिष्ट कृषि उत्पादों के विकास की महत्वपूर्ण संभावनाएँ प्रदान करते हैं।

यह अध्याय विश्लेषण करता है कि जैविक मूल्य श्रृंखलाएँ स्थानीय आर्थिक विकास और ग्रामीण समृद्धि को कैसे बढ़ावा दे सकती हैं। केवल जैविक उत्पादन पर्याप्त नहीं है; इसके लिए प्रमाणीकरण, सामूहिक संकलन, गुणवत्ता नियंत्रण, प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन, पैकेजिंग, ब्रांडिंग, ट्रेसेबिलिटी और विश्वसनीय बाजार संपर्क को एकीकृत करना आवश्यक है। कृषक उत्पादक संगठन (एफ. पी. ओ.) इन गतिविधियों के समन्वय, बाजार पहुँच और किसानों की सौदेबाजी क्षमता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

प्रमुख चुनौतियों में प्रमाणीकरण लागत, अपर्याप्त आधारभूत संरचना, सीमित प्रसंस्करण क्षमता, श्रम का प्रवासन और बिचौलियों द्वारा मूल्य का असमान अधिग्रहण शामिल हैं। अतः कृषक-केंद्रित जैविक मूल्य श्रृंखलाओं के माध्यम से उत्पादन को प्रसंस्करण, ब्रांडिंग, गुणवत्ता आश्वासन और बाजारों से जोड़ना आवश्यक है। इससे किसानों की आय, ग्रामीण रोजगार, उद्यमिता और स्थानीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करते हुए समावेशी एवं सतत ग्रामीण विकास को बढ़ावा दिया जा सकता है।

कुंजी शब्द: उत्तराखंड; जैविक मूल्य श्रृंखलाएँ; स्थानीय आर्थिक विकास; लघु कृषक; कृषक उत्पादक संगठन (एफ. पी. ओ.); प्रमाणीकरण की तैयारी; सुगंधित चावल/बासमती; मोटे अनाज; ब्रांड निर्माण एवं बाजार संपर्क; ग्रामीण रोजगार

प्रस्तावना

उत्तराखंड की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का कृषि से गहरा संबंध है। हिमालयी परिस्थितियों के अनुरूप विकसित लघु एवं सीमांत कृषक-आधारित कृषि प्रणालियाँ ग्रामीण आजीविका का महत्वपूर्ण आधार हैं। छोटी एवं विखंडित जोतें, वर्षा पर निर्भरता, दुर्गम भू-भाग तथा मौसमी एवं जलवायवीय परिवर्तनशीलता कृषि उत्पादन और कृषक आय की स्थिरता को प्रभावित करती हैं। कृषि यहाँ केवल आय का साधन नहीं, बल्कि खाद्य सुरक्षा, पारंपरिक ज्ञान, सांस्कृतिक परंपराओं, स्थानीय संसाधन प्रबंधन और सामुदायिक जीवन से भी जुड़ी है।

उत्तराखंड की पारंपरिक कृषि में स्थानीय संसाधनों का उपयोग, फसल विविधता का संरक्षण, जैविक पदार्थों का पुनर्चक्रण तथा बाहरी कृषि निवेशों पर कम निर्भरता जैसी पद्धतियाँ रही हैं। Nicolaysen et al. (2014) ने राज्य की वर्षा-आधारित पर्वतीय कृषि के एक हिस्से को "organic by default" (स्वाभाविक रूप से जैविक) बताया है। हालांकि, पारंपरिक निम्न-इनपुट कृषि और औपचारिक जैविक बाजार में भागीदारी अलग-अलग हैं। बाजारोन्मुख जैविक उत्पादन के लिए प्रमाणीकरण, अभिलेख संधारण, ट्रेसबिलिटी, गुणवत्ता मानकों तथा विश्वसनीय बाजार संपर्क आवश्यक हैं।

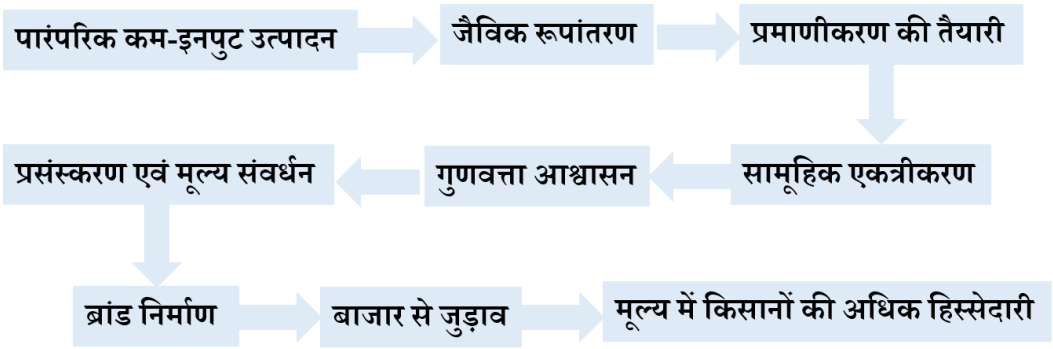
इसी संदर्भ में जैविक मूल्य श्रृंखला महत्वपूर्ण है, जो उत्पादन को सामूहिकीकरण, गुणवत्ता प्रबंधन, प्राथमिक प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन, पैकेजिंग, ब्रांडिंग, ट्रेसबिलिटी और विपणन से जोड़ती है। *Mission Organic Value Chain Development for North Eastern Region (MOVCDNER)* का अनुभव दर्शाता है कि जैविक उत्पादन को प्रमाणीकरण, संग्रहण, प्रसंस्करण और बाजार से जोड़ने वाला समेकित दृष्टिकोण किसानों के लिए अधिक मूल्य सृजित कर सकता है (Reddy, 2018)।

हालाँकि उत्तराखंड की भौगोलिक परिस्थितियाँ, छोटी जोतें, बिखरी बस्तियाँ, प्रवासन, परिवहन कठिनाइयाँ और बाजार असमानताएँ स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप रणनीति की आवश्यकता बताती हैं। अतः किसान उत्पादक संगठनों (एफ. पी. ओ.) और स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से जैविक उत्पादों को प्रसंस्करण, ब्रांडिंग और विश्वसनीय बाजारों से जोड़ना आवश्यक है। विशेष रूप से सुगंधित एवं जैविक चावल, मिलेट्स तथा औषधीय एवं सुगंधित पौधों की मूल्य श्रृंखलाएँ किसानों की आय, ग्रामीण रोजगार, उद्यमिता और स्थानीय आर्थिक विकास को सुदृढ़ करने की महत्वपूर्ण क्षमता रखती हैं।

2. बाजारोन्मुख जैविक कृषि

उत्तराखंड की पारंपरिक पर्वतीय कृषि में स्थानीय संसाधनों, पारंपरिक ज्ञान, फसल विविधता और जैविक संसाधनों के पुनर्चक्रण पर आधारित निम्न-बाह्य-निवेश वाली पद्धतियाँ लंबे समय से प्रचलित हैं। इसी संदर्भ में "स्वाभाविक रूप से जैविक (Organic by Default)" की अवधारणा राज्य की कृषि प्रणालियों को समझने का महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती है। हालाँकि, पारंपरिक कम-इनपुट कृषि और औपचारिक जैविक बाजार में आर्थिक लाभ प्राप्त करना अलग-अलग प्रक्रियाएँ हैं। जैविक उत्पादन को बाजारोन्मुख बनाने के लिए किसानों को जैविक मानकों की जानकारी, तकनीकी मार्गदर्शन, अभिलेख संधारण, आंतरिक निगरानी, प्रमाणीकरण सहायता तथा उपयुक्त बाजार संपर्क की आवश्यकता होती है। साथ ही, खरीदारों की आवश्यकताओं के अनुरूप पर्याप्त मात्रा और एकरूप गुणवत्ता वाले उत्पाद उपलब्ध कराना भी आवश्यक है। इस स्थिति से "बाजार-तत्परता अंतराल (Market-readiness Gap)" उत्पन्न होता है। किसानों के पास जैविक उत्पादन का अनुभव होने के बावजूद सामूहिकीकरण, संस्थागत सहयोग, तकनीकी सहायता और बाजार अवसंरचना के अभाव में वे अपने उत्पाद को उच्च-मूल्य वाले बाजारों से नहीं जोड़ पाते। परिणामस्वरूप, जैविक कृषि की आर्थिक क्षमता उत्पादन स्तर तक सीमित रह सकती है। Maikhuri et al. (2015) ने जैविक कृषि की दीर्घकालिक आर्थिक व्यवहार्यता के लिए संस्थागत क्षमता और तकनीकी दक्षता के विकास पर बल दिया है। अतः केवल उत्पादन-आधारित प्रोत्साहन

पर्याप्त नहीं हैं; किसानों की बाजार भागीदारी, मूल्य संवर्धन और संस्थागत क्षमता को मजबूत करने वाली समग्र प्रणालियों का विकास भी आवश्यक है। जैविक कृषि की सतत एवं बाजारोन्मुख संक्रमण प्रक्रिया को निम्नलिखित क्रम के माध्यम से समझा जा सकता है:



चित्र 1. जैविक कृषि की सतत एवं बाजारोन्मुख संक्रमण प्रक्रिया

इस क्रम का उद्देश्य यह नहीं है कि प्रत्येक किसान को इन सभी चरणों को व्यक्तिगत रूप से पूरा करना आवश्यक हो। इसके विपरीत, **किसान उत्पादक संगठन (Farmer Producer Organizations- FPOs)** जैसे सामूहिक संस्थान किसानों के समूहों की ओर से इन विभिन्न कार्यों का समन्वय कर सकते हैं। इस प्रकार एफ. पी. ओ. छोटे और बिखरे हुए किसानों को सामूहिक उत्पादन, गुणवत्ता प्रबंधन, प्रमाणीकरण, प्रसंस्करण, ब्रांडिंग तथा बाजार संपर्क से जोड़कर उत्पादन से बाजार तक एकीकृत जैविक मूल्य श्रृंखला के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

जैविक मूल्य श्रृंखलाएँ और स्थानीय आर्थिक विकास

जैविक मूल्य श्रृंखलाएँ स्थानीय अर्थव्यवस्था को मुख्यतः किसानों की आय बढ़ाने, ग्रामीण क्षेत्रों में मूल्य बनाए रखने तथा रोजगार के अवसर सृजित करने के माध्यम से सुदृढ़ कर सकती हैं।

किसानों की आय में वृद्धि: जैविक एवं विशिष्ट कृषि उत्पाद गुणवत्ता, भौगोलिक उत्पत्ति, पोषण तथा पारिस्थितिक विशेषताओं के आधार पर प्रीमियम बाजार प्राप्त कर सकते हैं। हालांकि, अंतिम उपभोक्ता मूल्य का लाभ किसानों तक समान रूप से पहुँचना आवश्यक नहीं है। एकत्रीकरण, परिवहन, प्रसंस्करण, पैकेजिंग, विपणन और खुदरा जैसे चरणों में मूल्य का वितरण होता है। सीमित सौदेबाजी क्षमता और बाजार जानकारी के अभाव में किसानों की हिस्सेदारी कम रह सकती है। इसलिए किसान उत्पादक संगठन (एफ. पी. ओ.) और सामूहिक कार्रवाई महत्वपूर्ण हैं। इनके माध्यम से किसान उपज का सामूहिकीकरण, बेहतर मूल्य के लिए बातचीत, लेन-देन लागत में कमी तथा खरीदारों से प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित कर सकते हैं। इससे उनकी सौदेबाजी क्षमता और मूल्य प्राप्ति दोनों बेहतर हो सकती हैं।

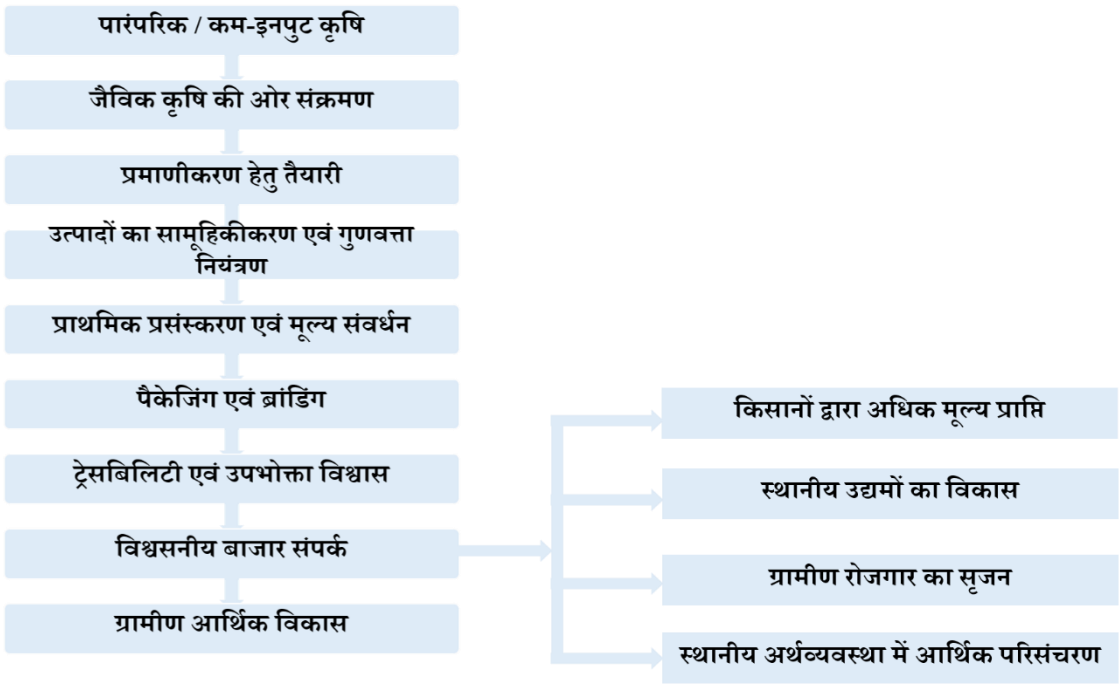
ग्रामीण क्षेत्रों में मूल्य संरक्षण: स्थानीय मूल्य संरक्षण जैविक मूल्य श्रृंखलाओं का दूसरा महत्वपूर्ण लाभ है। यदि कृषि उत्पाद बिना प्रसंस्करण के बाहर भेज दिए जाते हैं, तो मिलिंग, ग्रेडिंग, प्रसंस्करण, पैकेजिंग, ब्रांडिंग, लॉजिस्टिक्स और विपणन से उत्पन्न अतिरिक्त मूल्य भी स्थानीय अर्थव्यवस्था से बाहर चला जाता है। इन गतिविधियों को स्थानीय या निकटवर्ती क्षेत्रों में व्यवहार्य रूप से संचालित करने से ग्रामीण उद्यमिता और स्थानीय धन के परिसंचरण को बढ़ावा मिल सकता है। उत्तराखंड में यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, जहाँ

पर्वतीय क्षेत्रों में भौगोलिक दुर्गमता और सीमित रोजगार अवसर आर्थिक दबाव उत्पन्न करते हैं। स्थानीय मूल्य संवर्धन से एफ. पी. ओ. स्वयं सहायता समूहों, लघु उद्यमों और युवा उद्यमियों के लिए नए अवसर विकसित हो सकते हैं। हालांकि, सभी गतिविधियों को स्थानीय स्तर पर करना आवश्यक नहीं; प्राथमिकता आर्थिक एवं तकनीकी रूप से व्यवहार्य गतिविधियों को स्थानीय या निकटवर्ती क्षेत्रों में संचालित करने की होनी चाहिए।

ग्रामीण रोजगार का सृजन: जैविक मूल्य श्रृंखलाएँ कृषि से आगे बढ़कर एकत्रीकरण, छंटाई, ग्रेडिंग, प्रसंस्करण, पैकेजिंग, परिवहन, गुणवत्ता प्रबंधन, डिजिटल विपणन और उद्यम प्रबंधन में रोजगार उत्पन्न कर सकती हैं। यह विशेष रूप से उन क्षेत्रों में महत्वपूर्ण है जहाँ श्रम एवं जनसंख्या का बाह्य प्रवासन एक चुनौती है। यद्यपि जैविक मूल्य श्रृंखलाएँ प्रवासन के सभी कारणों का समाधान नहीं कर सकतीं, लेकिन व्यवहार्य कृषि-आधारित उद्यम अतिरिक्त आजीविका और स्थानीय रोजगार के अवसर बढ़ा सकते हैं। अतः जैविक मूल्य श्रृंखला को केवल कृषि उत्पाद के विपणन की व्यवस्था न मानकर आय सृजन, मूल्य संवर्धन, उद्यमिता और रोजगार निर्माण की समग्र स्थानीय आर्थिक प्रणाली के रूप में देखना अधिक उपयुक्त है।

जैविक मूल्य श्रृंखला का वैचारिक ढाँचा

इसकी केंद्रीय अवधारणा यह है कि जैविक उत्पादन को एक समेकित एवं सुव्यवस्थित मूल्य श्रृंखला प्रणाली के अंतर्गत विकसित किया जाना चाहिए। केवल जैविक उत्पादन को बढ़ावा देना पर्याप्त नहीं है; उत्पादन से लेकर अंतिम उपभोक्ता तक प्रत्येक चरण को आपस में जोड़ना आवश्यक है, ताकि कृषि उत्पाद का मूल्य संवर्धन हो और उसका अधिकाधिक आर्थिक लाभ किसानों तथा स्थानीय समुदायों तक पहुँच सके।



चित्र 2. जैविक उत्पादन से स्थानीय आर्थिक विकास तक की वैचारिक प्रक्रिया

यह वैचारिक ढाँचा मूल्य श्रृंखला के विभिन्न चरणों के बीच परस्पर निर्भरता को स्पष्ट करता है। उदाहरण के लिए, यदि बाजार उपलब्ध नहीं है, तो केवल प्रमाणीकरण किसानों पर अतिरिक्त लागत का भार डाल सकता है, जबकि उससे अपेक्षित आर्थिक लाभ प्राप्त नहीं हो पाएगा। इसी प्रकार, यदि गुणवत्ता प्रबंधन की प्रभावी व्यवस्था नहीं है, तो केवल उत्पादों का सामूहिकीकरण खरीदारों की गुणवत्ता संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने में पर्याप्त नहीं होगा। पर्याप्त कच्चे माल अथवा बाजार मांग के अभाव में स्थापित प्रसंस्करण अवसंरचना का उपयोग भी सीमित रह सकता है। इसी प्रकार, ट्रेसबिलिटी और निरंतर एवं एकरूप गुणवत्ता सुनिश्चित किए बिना केवल ब्रांडिंग उपभोक्ताओं का दीर्घकालिक विश्वास स्थापित करने में सफल नहीं हो सकती।

अतः जैविक मूल्य श्रृंखला का विकास स्वतंत्र एवं पृथक हस्तक्षेपों के समूह के रूप में नहीं, बल्कि एक समन्वित और परस्पर संबद्ध प्रक्रिया के रूप में समझा जाना चाहिए। प्रत्येक चरण की प्रभावशीलता अगले चरण से उसके समुचित जुड़ाव पर निर्भर करती है। उत्पादन, प्रमाणीकरण, सामूहिकीकरण, गुणवत्ता नियंत्रण, प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन, ब्रांडिंग और बाजार संपर्क को एकीकृत करने से ही जैविक कृषि को किसानों की आय वृद्धि, स्थानीय उद्यम विकास, रोजगार सृजन तथा ग्रामीण आर्थिक विकास के प्रभावी माध्यम में परिवर्तित किया जा सकता है।

भारत में जैविक मूल्य श्रृंखला से सीख

भारत के विभिन्न क्षेत्रों के अनुभव बताते हैं कि जैविक कृषि की आर्थिक सफलता के लिए सामूहिक संस्थाएँ, बाजार संपर्क, प्रसंस्करण और प्रभावी मूल्य श्रृंखला प्रबंधन महत्वपूर्ण हैं। किसानों को केवल उत्पादन तक सीमित सहायता देने के बजाय उत्पादन से बाजार तक की पूरी प्रक्रिया से जोड़ना आवश्यक है।

उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में जैविक मूल्य श्रृंखला विकास: उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के लिए मिशन ऑर्गेनिक वैल्यू चेन डेवलपमेंट (MOVCDNER) एकीकृत जैविक मूल्य श्रृंखला का महत्वपूर्ण उदाहरण है। इसमें उत्पादन सहायता, बीज, प्रमाणीकरण, संग्रहण, सामूहिकीकरण, प्रसंस्करण, विपणन और ब्रांड विकास को एक ही मूल्य श्रृंखला से जोड़ने का प्रयास किया गया (Reddy, 2018)। यह अनुभव दर्शाता है कि केवल जैविक उत्पादन से बाजार मूल्य सुनिश्चित नहीं होता; किसानों को तकनीकी, संस्थागत और विपणन सहायता भी आवश्यक है। उत्तराखंड में छोटी एवं बिखरी उत्पादन इकाइयों को देखते हुए सामूहिक संस्थाएँ प्रमाणीकरण, प्रसंस्करण और संगठित विपणन को अधिक व्यवहार्य बना सकती हैं।

उत्पादक संगठन एवं सामूहिक कार्रवाई: उत्पादक संगठन छोटे किसानों की सामूहिक क्षमता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। असम के जैविक चाय उत्पादकों के संदर्भ में Deka and Goswami (2022) ने उत्पादक संगठनों, संस्थागत शासन और मूल्य नेटवर्क के महत्व को रेखांकित किया है। इसी प्रकार, JosephSatish and Prasad (2012) ने सहकारी उद्यमों को खरीद, प्रसंस्करण और विपणन में किसानों की भागीदारी बढ़ाने तथा कम कीमत पर बिक्री की स्थिति को कम करने में उपयोगी बताया है। इसलिए उत्पादक संगठनों की भूमिका केवल सामूहिकीकरण तक सीमित नहीं होनी चाहिए। वे गुणवत्ता प्रबंधन, प्रमाणीकरण, प्रसंस्करण, बाजार सूचना, ब्रांड निर्माण और सामूहिक मूल्य-वार्ता में भी महत्वपूर्ण संस्थागत कड़ी बन सकते हैं।

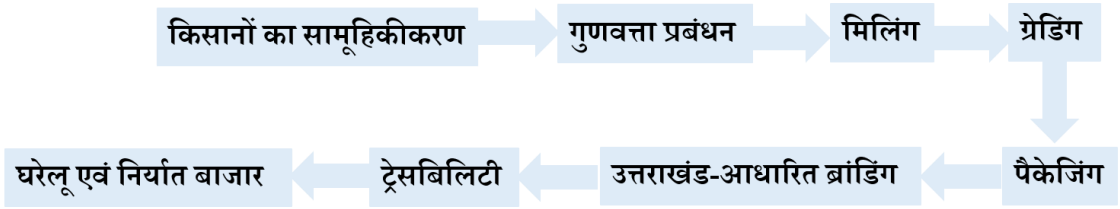
कृषि उत्पादों में मूल्य वितरण: Bhavani et al. (2025) के अनुसार, उत्पादन से बाजार तक लागत और मूल्य का वितरण उत्पाद की प्रकृति तथा प्रसंस्करण व्यवस्था के अनुसार भिन्न होता है। इसलिए उत्तराखंड में साझा संस्थागत ढाँचे के साथ-साथ उत्पाद-विशिष्ट मूल्य श्रृंखला रणनीतियाँ विकसित करना आवश्यक है। सुगंधित चावल, मिलेट्स तथा औषधीय एवं सुगंधित पौधों की उत्पादन, प्रसंस्करण और विपणन आवश्यकताएँ अलग-अलग होती हैं। अतः "एक मॉडल सभी उत्पादों के लिए" दृष्टिकोण के बजाय स्थानीय संसाधनों, उत्पादन प्रणालियों, प्रसंस्करण क्षमता, बाजार मांग और उपभोक्ता प्राथमिकताओं के आधार पर उत्पाद-विशिष्ट एवं क्षेत्र-विशिष्ट रणनीतियाँ अधिक प्रभावी हो सकती हैं।

उत्तराखंड में जैविक मूल्य श्रृंखला के अवसर

उत्तराखंड की विविध कृषि-पारिस्थितिक परिस्थितियाँ ऐसे अनेक कृषि उत्पादों के विकास की संभावनाएँ प्रस्तुत करती हैं, जिनमें विशिष्टता, पोषण, पारंपरिक ज्ञान, भौगोलिक पहचान तथा जैविक उत्पादन पद्धतियों के आधार पर अतिरिक्त बाजार मूल्य सृजित किया जा सकता है। सुगंधित एवं जैविक चावल, मिलेट्स तथा औषधीय एवं सुगंधित पौधे इस दृष्टि से विशेष महत्व रखते हैं। इन उत्पादों की आर्थिक क्षमता केवल इनके उत्पादन पर निर्भर नहीं करती, बल्कि संगठित मूल्य श्रृंखला, स्थानीय मूल्य संवर्धन, गुणवत्ता आश्वासन, ब्रांडिंग और बाजार संपर्क की प्रभावशीलता पर भी निर्भर करती है।

सुगंधित एवं जैविक चावल: उत्तराखंड के सुगंधित एवं विशिष्ट चावल में उत्पाद विभेदीकरण और प्रीमियम बाजार की पर्याप्त संभावनाएँ हैं। इनकी बाजार पहचान केवल चावल की सामान्य गुणवत्ता तक सीमित नहीं होती, बल्कि इसकी विशिष्ट सुगंध, दाने की गुणवत्ता, भौगोलिक उत्पत्ति, पारंपरिक कृषि पद्धतियों, स्थानीय ज्ञान तथा उत्पादन परिस्थितियों से भी जुड़ी होती है। इस प्रकार, ऐसे चावल को सामान्य खाद्यान्न के बजाय एक विशिष्ट एवं उच्च-मूल्य कृषि उत्पाद के रूप में विकसित किया जा सकता है। Saxena et al. (2023) ने उत्तराखंड के जैविक बासमती चावल की निर्यात प्रतिस्पर्धात्मकता का अध्ययन करते हुए इसकी बाजार पहचान और प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता को सुदृढ़ करने में सरकारी सहयोग प्राप्त संस्थाओं तथा राज्य-स्तरीय ब्रांडिंग के महत्व को रेखांकित किया है। हालाँकि, किसी उत्पाद की प्रतिस्पर्धात्मकता का आकलन केवल निर्यात बाजार में उसकी स्थिति के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए। स्थानीय आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से यह भी महत्वपूर्ण है कि उत्पाद से उत्पन्न मूल्य का सृजन किन चरणों में होता है और उस मूल्य का कितना हिस्सा किसानों तथा स्थानीय अर्थव्यवस्था के पास रहता है।

उदाहरण के लिए, यदि किसान धान को प्राथमिक कृषि उपज के रूप में बेच देते हैं और उसके बाद की गतिविधियाँ जैसे मिलिंग, ग्रेडिंग, पैकेजिंग, ब्रांडिंग और विपणन राज्य के बाहर संचालित होती हैं, तो उत्पाद के संभावित मूल्य संवर्धन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा उत्तराखंड की ग्रामीण अर्थव्यवस्था से बाहर चला जाता है। इसके विपरीत, यदि इन गतिविधियों में से आर्थिक एवं तकनीकी रूप से व्यवहार्य चरणों को उत्पादन क्षेत्र के भीतर अथवा उसके निकट विकसित किया जाए, तो स्थानीय स्तर पर अधिक मूल्य सृजित और संरक्षित किया जा सकता है। इस दृष्टि से सुगंधित चावल की एक स्थानीय रूप से एकीकृत मूल्य श्रृंखला को निम्नलिखित क्रम में विकसित किया जा सकता है:



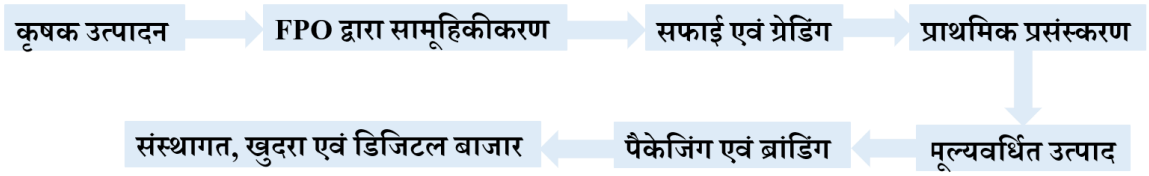
चित्र 3. जैविक चावल का एकीकृत मूल्य श्रृंखला

ऐसी व्यवस्था किसानों और स्थानीय संस्थाओं को उत्पादन के बाद की अधिकाधिक गतिविधियों में भाग लेने का अवसर प्रदान करेगी। इससे केवल उत्पाद की बाजार पहचान ही मजबूत नहीं होगी, बल्कि किसानों की मूल्य प्राप्ति, स्थानीय उद्यमिता और ग्रामीण आर्थिक परिसंचरण को भी बढ़ावा मिल सकता है। Nayak et al. (2025) ने कालानमक चावल के संदर्भ में गुणवत्तापूर्ण बीज प्रणाली, किसान क्षमता निर्माण, बाजार नेटवर्क और गुणवत्ता प्रबंधन के महत्व को रेखांकित किया है। यद्यपि कालानमक चावल उत्तराखंड की विशिष्ट फसल नहीं है, लेकिन इसके मूल्य श्रृंखला विकास से जुड़े सिद्धांत राज्य के विशिष्ट एवं पारंपरिक चावल उत्पादों के लिए उपयोगी हैं। विशेष रूप से, यह अनुभव दर्शाता है कि किसी विशिष्ट कृषि उत्पाद की पहचान को आर्थिक मूल्य में परिवर्तित करने के लिए उत्पादन, गुणवत्ता, संस्थागत सहयोग और बाजार को एकीकृत करना आवश्यक है।

मिलेट्स एवं पर्वतीय आजीविकाएँ: मिलेट्स उत्तराखंड की पारंपरिक पर्वतीय कृषि प्रणालियों का महत्वपूर्ण हिस्सा रहे हैं और राज्य की जलवायु-अनुकूल तथा संसाधन-कुशल कृषि के संदर्भ में इनका विशेष महत्व है। अपेक्षाकृत चुनौतीपूर्ण कृषि-पारिस्थितिक परिस्थितियों में उत्पादन की क्षमता, पारंपरिक खाद्य प्रणालियों से इनका संबंध तथा इनके पोषण संबंधी गुण मिलेट्स को वर्तमान समय में पुनः महत्वपूर्ण बना रहे हैं। पारंपरिक एवं पोषक अनाजों के प्रति बढ़ती उपभोक्ता रुचि इनके लिए नए बाजार अवसर भी उत्पन्न कर रही है। फिर भी, मिलेट उत्पादन की निरंतरता के सामने कई संरचनात्मक चुनौतियाँ हैं। इनमें श्रम की कमी, ग्रामीण जनसंख्या का बाह्य प्रवासन, बदलती खाद्य आदतें, कृषि भूमि का परित्याग तथा सीमित बाजार प्रोत्साहन प्रमुख हैं। Sati et al. (2025) ने उत्तराखंड के पर्वतीय जिलों में मिलेट उत्पादन एवं उत्पादकता का अध्ययन करते हुए इनके आर्थिक महत्व को बढ़ाने में बाजार विकास और उद्यमिता की आवश्यकता पर बल दिया है।

मिलेट्स के मामले में केवल उत्पादन बढ़ाना पर्याप्त नहीं होगा। इनकी आर्थिक क्षमता को वास्तविक आय में परिवर्तित करने के लिए मूल्य संवर्धन और उत्पाद विविधीकरण आवश्यक है। उदाहरण के लिए, मिलेट्स को कच्चे अनाज के रूप में बेचने के बजाय उनकी सफाई, ग्रेडिंग, भूसी हटाने, आटा निर्माण, रेडी-टू-कुक उत्पाद, पारंपरिक खाद्य पदार्थ तथा अन्य मूल्यवर्धित खाद्य उत्पादों के रूप में विपणन किया जा सकता है। इससे उत्पाद का बाजार मूल्य बढ़ने के साथ-साथ प्रसंस्करण और विपणन से जुड़े स्थानीय उद्यमों के लिए भी अवसर उत्पन्न होंगे। Sangappa et al. (2023) ने मिलेट मूल्य श्रृंखलाओं को सुदृढ़ करने में किसान उत्पादक संगठनों (एफ. पी. ओ.) की भूमिका पर बल दिया है, विशेष रूप से उत्पादों के सामूहिकीकरण, प्राथमिक प्रसंस्करण और बाजार संपर्क के संदर्भ में।

उत्तराखंड में भी एफ. पी. ओ. इस प्रकार की गतिविधियों को समन्वित कर छोटे और बिखरे हुए उत्पादकों को संगठित बाजार से जोड़ सकते हैं। उत्तराखंड में मिलेट मूल्य श्रृंखला को निम्नलिखित रूप में विकसित किया जा सकता है:



चित्र 4. मिलेट मूल्य श्रृंखला

हालाँकि, इस प्रक्रिया में बाजार व्यवहार्यता को केंद्रीय महत्व दिया जाना चाहिए। केवल सरकारी योजना के अंतर्गत प्रसंस्करण इकाइयों की स्थापना कर देना पर्याप्त नहीं है। प्रसंस्करण अवसंरचना का विकास वास्तविक बाजार मांग, कच्चे माल की नियमित उपलब्धता, तकनीकी क्षमता और व्यावसायिक व्यवहार्यता के आकलन के साथ किया जाना चाहिए। इससे ऐसी परिसंपत्तियों के निर्माण की संभावना कम होगी जो पर्याप्त उपयोग या बाजार मांग के अभाव में निष्क्रिय रह जाएँ। इस प्रकार, मिलेट मूल्य श्रृंखला को केवल खाद्य प्रसंस्करण की गतिविधि के रूप में नहीं, बल्कि पर्वतीय आजीविका, पोषण सुरक्षा, स्थानीय उद्यमिता और ग्रामीण आर्थिक सुदृढ़ीकरण के एक संभावित माध्यम के रूप में देखा जा सकता है।

औषधीय एवं सुगंधित पौधे: औषधीय एवं सुगंधित पौधे उत्तराखंड की जैविक विविधता, पारंपरिक ज्ञान और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी का निर्माण करते हैं। इन संसाधनों का महत्व केवल इनके बाजार मूल्य तक सीमित नहीं है; ये स्थानीय पारिस्थितिक ज्ञान, पारंपरिक उपयोग, जैव विविधता संरक्षण और ग्रामीण आजीविका से भी जुड़े हुए हैं। इनके विविध उपयोगों के कारण इनसे संबंधित उत्पादों के लिए स्थानीय, राष्ट्रीय और विशिष्ट बाजारों में संभावनाएँ मौजूद हैं। Chandra and Kumar (2021) ने उत्तराखंड में औषधीय एवं सुगंधित पौधों की मूल्य श्रृंखला का अध्ययन करते हुए उत्पादकों, मध्यस्थों तथा अन्य बाजार हितधारकों की भूमिका और मूल्य वितरण पर उनके प्रभाव को रेखांकित किया है।

औषधीय एवं सुगंधित पौधों की मूल्य श्रृंखला सामान्य कृषि उत्पादों की तुलना में अधिक जटिल हो सकती है। संग्रहण या उत्पादन के बाद एकत्रीकरण, प्राथमिक प्रसंस्करण, सुखाने, ग्रेडिंग, गुणवत्ता परीक्षण, भंडारण, परिवहन, पैकेजिंग, ब्रांडिंग और विपणन जैसी गतिविधियाँ उत्पाद के आर्थिक मूल्य को प्रभावित करती हैं। यदि इन गतिविधियों के लिए स्थानीय संस्थागत एवं तकनीकी क्षमता विकसित की जाए, तो उत्पादकों के लिए अधिक मूल्य प्राप्ति तथा स्थानीय उद्यम विकास की संभावनाएँ बढ़ सकती हैं। हालाँकि, इस क्षेत्र में एक प्रमुख चुनौती बाजार एवं मूल्य संबंधी सूचनाओं तक किसानों की असमान पहुँच है। बाजार मूल्यों, गुणवत्ता मानकों, खरीदारों की अपेक्षाओं तथा अंतिम उत्पाद के मूल्य से संबंधित पर्याप्त और समयबद्ध जानकारी के अभाव में किसान मूल्य-वार्ता में प्रभावी रूप से भाग नहीं ले पाते। इससे मूल्य श्रृंखला में उनकी स्थिति कमजोर हो सकती है और उत्पाद से सृजित कुल आर्थिक मूल्य का अपेक्षाकृत सीमित हिस्सा ही किसानों तक पहुँच पाता है। इसलिए औषधीय एवं सुगंधित पौधों की मूल्य श्रृंखला को सुदृढ़ करने के

लिए उत्पादक संगठनों का विकास, बाजार सूचना की पारदर्शिता, गुणवत्ता मानकों का निर्धारण, वैज्ञानिक प्रसंस्करण सुविधाओं का विकास, गुणवत्ता परीक्षण की व्यवस्था तथा विश्वसनीय खरीदारों के साथ प्रत्यक्ष बाजार संपर्क आवश्यक हैं। साथ ही, जहाँ संभव हो, स्थानीय स्तर पर प्राथमिक प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इस प्रकार, औषधीय एवं सुगंधित पौधों की मूल्य श्रृंखला उत्तराखंड में स्थानीय संसाधनों को आर्थिक अवसरों में परिवर्तित करने की महत्वपूर्ण क्षमता रखती है। इसके लिए पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक वैज्ञानिक एवं बाजार प्रणालियों के बीच प्रभावी समन्वय आवश्यक होगा। विशेष रूप से, संसाधन संरक्षण, गुणवत्ता आश्वासन और बाजारोन्मुख मूल्य संवर्धन के बीच संतुलन स्थापित करना इस क्षेत्र की दीर्घकालिक स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण होगा।

समग्र दृष्टिकोण

इन तीनों उत्पाद समूहों से यह स्पष्ट होता है कि उत्तराखंड में जैविक मूल्य श्रृंखला के अवसर केवल उत्पादन बढ़ाने में नहीं, बल्कि उत्पादन को गुणवत्ता, प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन, ब्रांडिंग और विश्वसनीय बाजारों से जोड़ने में निहित हैं। प्रत्येक उत्पाद की अपनी विशिष्ट उत्पादन प्रणाली और बाजार विशेषताएँ हैं; इसलिए उत्पाद-विशिष्ट तथा क्षेत्र-विशिष्ट मूल्य श्रृंखला रणनीतियाँ अधिक प्रभावी हो सकती हैं। एफ. पी. ओ., स्थानीय उद्यमों, स्वयं सहायता समूहों, तकनीकी संस्थानों और बाजार संस्थाओं के बीच समन्वय इस प्रक्रिया को अधिक समावेशी और आर्थिक रूप से टिकाऊ बना सकता है।

किसान उत्पादक संगठनों की भूमिका

उत्तराखंड में छोटी एवं विखंडित कृषि जोतों को देखते हुए सामूहिक संस्थाओं की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। व्यक्तिगत किसानों के लिए पर्याप्त मात्रा में उत्पाद उपलब्ध कराना, जैविक प्रमाणीकरण के अभिलेख रखना, प्रसंस्करण सुविधाओं तक पहुँच बनाना, बेहतर कीमतों के लिए बातचीत करना तथा प्रभावी ब्रांड विकसित करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है। किसान उत्पादक संगठन (एफ. पी. ओ.) उत्पादन एवं सेवाओं के सामूहिकीकरण के माध्यम से इन बाधाओं को कम कर सकते हैं।

तालिका 1. जैविक मूल्य श्रृंखला में एफ. पी. ओ. के संभावित कार्य

मूल्य श्रृंखला का चरण	एफ. पी. ओ. का संभावित कार्य	अपेक्षित लाभ
उत्पादन	किसानों का संगठन एवं उत्पादन योजना	आपूर्ति में निरंतरता
प्रमाणीकरण	दस्तावेजीकरण एवं मानकों के अनुपालन में सहायता	प्रशासनिक एवं लेन-देन बोझ में कमी
सामूहिकीकरण	उपज का संग्रहण एवं थोक प्रबंधन	बाजार योग्य मात्रा में वृद्धि
गुणवत्ता प्रबंधन	छंटाई, ग्रेडिंग एवं गुणवत्ता मानकों का अनुपालन	खरीदारों का विश्वास बढ़ना
प्रसंस्करण	प्राथमिक प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन	स्थानीय स्तर पर अधिक मूल्य का संरक्षण
पैकेजिंग	मानकीकृत पैकेजिंग एवं लेबलिंग	बाजार स्वीकार्यता में सुधार

ब्रांडिंग	सामूहिक उत्पाद पहचान एवं ब्रांड निर्माण	उत्पाद का बाजार विभेदीकरण
विपणन	मूल्य-वार्ता एवं बाजार संबंधी जानकारी	किसानों की बेहतर मूल्य-प्राप्ति क्षमता
डिजिटल बाजार	ई-कॉमर्स एवं संस्थागत बाजारों से संपर्क	व्यापक बाजार तक पहुँच
ट्रेसबिलिटी	अभिलेख एवं उत्पाद की उत्पत्ति/आवागमन की निगरानी	उपभोक्ता विश्वास में वृद्धि

एफ. पी. ओ. की भूमिका केवल उत्पादों के सामूहिकीकरण तक सीमित नहीं होनी चाहिए। प्रभावी एफ. पी. ओ.-आधारित जैविक मूल्य श्रृंखला के लिए संगठनात्मक शासन, वित्तीय प्रबंधन, प्रमाणीकरण, गुणवत्ता प्रबंधन, व्यावसायिक योजना, प्रसंस्करण, ब्रांड निर्माण, डिजिटल विपणन तथा खरीदारों के साथ दीर्घकालिक संबंध जैसी क्षमताओं का विकास आवश्यक है। विशेष रूप से उत्तराखंड जैसी पर्वतीय परिस्थितियों में, जहाँ छोटी जोतें, बिखरे उत्पादन क्षेत्र और परिवहन संबंधी कठिनाइयाँ मूल्य श्रृंखला की लागत बढ़ाती हैं, एफ. पी. ओ. सामूहिक दक्षता और बाजार पहुँच के महत्वपूर्ण माध्यम बन सकते हैं। Nicolaysen et al. (2014) ने टिकाऊ एवं जैव विविधता-उन्मुख कृषि की दिशा में किसानों को सहयोग देने में स्थानीय संगठनों के महत्व को रेखांकित किया है। ये संस्थाएँ किसानों और बाहरी संस्थागत तंत्र के बीच सेतु बनकर तकनीकी जानकारी, सरकारी योजनाओं, प्रमाणीकरण प्रक्रियाओं और बाजार अवसरों को स्थानीय स्तर तक पहुँचा सकती हैं। अतः उत्तराखंड में एफ. पी. ओ., स्वयं सहायता समूहों, सहकारी संस्थाओं, स्थानीय उद्यमों तथा तकनीकी संस्थानों के बीच समन्वित व्यवस्था विकसित करना उपयोगी होगा। इससे बाजार भागीदारी के साथ-साथ स्थानीय मूल्य संवर्धन, ग्रामीण उद्यमिता, रोजगार और स्थानीय अर्थव्यवस्था में मूल्य संरक्षण को बढ़ावा मिल सकता है।

प्रमाणीकरण, गुणवत्ता एवं ट्रेसबिलिटी

बाजारोन्मुख जैविक कृषि में जैविक प्रमाणीकरण महत्वपूर्ण है, लेकिन इसे अंतिम लक्ष्य के बजाय जैविक दावों की विश्वसनीयता स्थापित करने और प्रीमियम बाजारों तक पहुँच का माध्यम माना जाना चाहिए। लघु एवं सीमांत किसानों के लिए प्रमाणीकरण में दस्तावेजीकरण, निरीक्षण, अभिलेख-संधारण, ट्रेसबिलिटी और निर्धारित उत्पादन मानकों का अनुपालन शामिल होता है। सीमित तकनीकी, प्रशासनिक और वित्तीय क्षमता के कारण ये प्रक्रियाएँ किसानों पर अतिरिक्त लेन-देन एवं अनुपालन संबंधी बोझ डाल सकती हैं। सामूहिक संस्थाएँ इन चुनौतियों को कम कर सकती हैं। एफ. पी. ओ. और स्थानीय संगठन किसानों को अभिलेख-संधारण, जैविक मानकों की समझ, आंतरिक निगरानी तथा प्रमाणीकरण एजेंसियों के साथ समन्वय में सहायता दे सकते हैं। इससे प्रमाणीकरण प्रक्रिया छोटे किसानों के लिए अधिक व्यवस्थित और सुलभ बन सकती है।इस संदर्भ में "प्रमाणीकरण-तत्परता (Certification Preparedness)" महत्वपूर्ण है। इसका अर्थ औपचारिक प्रमाणीकरण से पहले किसानों और संगठनों में आवश्यक तकनीकी, प्रशासनिक एवं संस्थागत क्षमताओं का विकास करना है। इस प्रकार प्रमाणीकरण को एक बार पूरी की जाने वाली प्रक्रिया के बजाय निरंतर अनुपालन और गुणवत्ता प्रबंधन की व्यवस्था के रूप में देखा जाना चाहिए। गुणवत्ता आश्वासन भी आवश्यक है। केवल जैविक

प्रमाणीकरण नमी, स्वच्छता, ग्रेड, सुगंध, प्रसंस्करण गुणवत्ता और पैकेजिंग जैसी उत्पाद विशेषताओं की स्वतः गारंटी नहीं देता। इसलिए जैविक प्रमाणीकरण को निम्न घटकों के साथ एकीकृत करना आवश्यक है:

1. गुणवत्ता आश्वासन
2. ट्रेसबिलिटी
3. एकरूप प्रसंस्करण
4. विश्वसनीय ब्रांडिंग

दीर्घकालिक बाजार विश्वास तभी विकसित होगा जब उपभोक्ताओं और खरीदारों को यह भरोसा हो कि दावा की गई जैविक गुणवत्ता और उत्पाद विशेषताएँ मूल्य श्रृंखला के सभी प्रमुख चरणों में निरंतर बनी हुई हैं।

स्थानीय प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन एवं ब्रांडिंग

स्थानीय प्रसंस्करण जैविक कृषि को ग्रामीण आर्थिक विकास से जोड़ने का महत्वपूर्ण माध्यम है। यदि कृषि उपज को कच्चे रूप में बेचने के बजाय मिलिंग, सफाई, ग्रेडिंग, प्रसंस्करण, पैकेजिंग और ब्रांडिंग जैसी गतिविधियाँ उत्पादन क्षेत्र में या उसके निकट की जाएँ, तो स्थानीय स्तर पर अधिक आर्थिक मूल्य बनाए रखा जा सकता है। इससे किसानों के साथ-साथ प्रसंस्करण, पैकेजिंग, परिवहन और विपणन से जुड़े ग्रामीण उद्यमों के लिए अवसर विकसित हो सकते हैं।

उत्तराखंड में उत्पाद-विशिष्ट प्रसंस्करण की संभावनाएँ निम्न हैं:

उत्पाद	प्रमुख मूल्य संवर्धन गतिविधियाँ
सुगंधित/जैविक चावल	मिलिंग, ग्रेडिंग, पैकेजिंग एवं ब्रांडिंग
मिलेट्स	सफाई, डीहस्किंग, आटा एवं रेडी-टू-कुक उत्पाद
औषधीय एवं सुगंधित पौधे	सुखाना, ग्रेडिंग, गुणवत्ता परीक्षण एवं प्राथमिक प्रसंस्करण

हालाँकि, केवल प्रसंस्करण इकाइयाँ स्थापित करना पर्याप्त नहीं है। उनकी आर्थिक व्यवहार्यता के लिए नियमित कच्चा माल, तकनीकी दक्षता, वित्तीय प्रबंधन और बाजार मांग आवश्यक हैं। इसलिए स्थानीय प्रसंस्करण को उपलब्ध उत्पादन और सुनिश्चित बाजार से जोड़कर विकसित किया जाना चाहिए। इसी के साथ ब्रांडिंग स्थानीय उत्पादों को विशिष्ट बाजार पहचान देने में सहायक हो सकती है। उत्तराखंड के उत्पादों की हिमालयी उत्पत्ति, पारंपरिक ज्ञान और विशिष्ट कृषि विशेषताओं को उनकी पहचान के साथ जोड़ा जा सकता है। हालांकि, प्रभावी ब्रांड केवल आकर्षक पैकेजिंग पर निर्भर नहीं करता; इसके लिए एकरूप गुणवत्ता, विश्वसनीय उत्पाद दावे, ट्रेसबिलिटी और निरंतर आपूर्ति आवश्यक हैं।

बाजार संपर्क एवं उपभोक्ता विश्वास

जैविक उत्पादों के लिए उपभोक्ता विश्वास और विविध बाजार संपर्क दीर्घकालिक आर्थिक सफलता के महत्वपूर्ण आधार हैं। संस्थागत खरीद, प्रीमियम खुदरा बाजार, प्रत्यक्ष उत्पादक–उपभोक्ता विपणन, ई-कॉमर्स, हॉस्पिटैलिटी तथा निर्यात जैसे विभिन्न चैनलों का उपयोग उत्पाद की प्रकृति और मांग के अनुसार किया जा सकता है। बाजार विविधीकरण से किसी एक खरीदार पर निर्भरता कम हो सकती है। साथ ही, प्रमाणित गुणवत्ता, ट्रेसबिलिटी और स्पष्ट उत्पाद पहचान उपभोक्ता विश्वास को मजबूत कर सकती है। इस प्रकार ब्रांडिंग, गुणवत्ता और बाजार संपर्क को अलग-अलग गतिविधियों के बजाय एक-दूसरे से जुड़े घटकों के रूप में विकसित करना अधिक प्रभावी होगा।

जैविक मूल्य श्रृंखलाओं की प्रमुख चुनौतियाँ

जैविक मूल्य श्रृंखलाओं के विकास में कई वित्तीय, अवसंरचनात्मक, श्रम, बाजार और संस्थागत चुनौतियाँ बाधा बन सकती हैं।

प्रमाणीकरण एवं अनुपालन लागत: छोटे और सीमांत किसानों के लिए प्रमाणीकरण से जुड़ी वित्तीय एवं प्रशासनिक आवश्यकताएँ चुनौतीपूर्ण हो सकती हैं। इसलिए सामूहिक सहायता, तकनीकी मार्गदर्शन और स्पष्ट बाजार अवसरों के साथ प्रमाणीकरण व्यवस्था विकसित करना आवश्यक है।

अवसंरचना एवं प्रसंस्करण की कमी: पर्वतीय क्षेत्रों में सड़क संपर्क, भंडारण, प्रसंस्करण, पैकेजिंग, गुणवत्ता परीक्षण और डिजिटल कनेक्टिविटी की सीमाएँ परिवहन एवं लेन-देन लागत बढ़ा सकती हैं। स्थानीय प्रसंस्करण सुविधाओं का विकास तभी प्रभावी होगा जब उन्हें कच्चे माल, तकनीकी विशेषज्ञता और बाजार मांग से जोड़ा जाए।

प्रवासन एवं श्रम उपलब्धता: ग्रामीण क्षेत्रों से बाह्य प्रवासन कृषि तथा प्रसंस्करण गतिविधियों के लिए श्रम उपलब्धता को प्रभावित कर सकता है। इसलिए जैविक मूल्य श्रृंखलाओं को स्थानीय रोजगार और उद्यमिता के अवसरों से जोड़ना आवश्यक है।

मूल्य वितरण एवं बाजार सूचना: मध्यस्थ सामूहिकीकरण, परिवहन और बाजार संपर्क जैसी उपयोगी सेवाएँ प्रदान कर सकते हैं, लेकिन बाजार सूचना की असमानता के कारण मूल्य का वितरण किसानों के पक्ष में पर्याप्त न हो सकता है। औषधीय एवं सुगंधित पौधों के क्षेत्र में यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है (Chandra & Kumar, 2021)। अतः पारदर्शी बाजार सूचना और प्रत्यक्ष खरीदार संपर्क को मजबूत करना आवश्यक है।

संस्थागत क्षमता: एफ. पी. ओ. की सफलता केवल उनके गठन पर निर्भर नहीं करती। पेशेवर प्रबंधन, वित्तीय स्थिरता, तकनीकी क्षमता, पारदर्शिता और बाजार संबंध उनकी प्रभावशीलता के लिए आवश्यक हैं। जैविक मूल्य श्रृंखलाओं में इन संगठनों को प्रमाणीकरण, गुणवत्ता, प्रसंस्करण और विपणन जैसी जटिल गतिविधियों का प्रबंधन करना पड़ सकता है।

उत्तराखंड के लिए प्रस्तावित हस्तक्षेप एवं रणनीतिक दिशा

उत्तराखंड में जैविक मूल्य श्रृंखला के विकास के लिए चरणबद्ध और परस्पर जुड़े हस्तक्षेपों की आवश्यकता है। प्रमुख प्राथमिकताएँ निम्न हो सकती हैं:

तालिका 2. जैविक मूल्य श्रृंखला विकास के लिए रणनीतिक हस्तक्षेप

रणनीतिक क्षेत्र	प्राथमिक हस्तक्षेप	अपेक्षित परिणाम
जैविक संक्रमण	प्रशिक्षण एवं प्रमाणीकरण-तत्परता	बाजार-तैयार उत्पादन
एफ. पी. ओ. क्षमता	प्रबंधन एवं वित्तीय क्षमता निर्माण	बेहतर संस्थागत कार्यक्षमता
प्रसंस्करण	उत्पाद-विशिष्ट स्थानीय इकाइयाँ	अधिक स्थानीय मूल्य संवर्धन
ब्रांडिंग	उत्तराखंड-आधारित उत्पाद पहचान	बाजार विभेदीकरण
ट्रेसबिलिटी	खेत से बाजार तक अभिलेखन	उपभोक्ता विश्वास
बाजार पहुँच	संस्थागत, खुदरा एवं डिजिटल चैनल	बाजार विविधीकरण
उद्यम विकास	ग्रामीण प्रसंस्करण एवं सेवा उद्यम	रोजगार सृजन
वित्तीय सहायता	कार्यशील पूंजी एवं उद्यम सहायता	आर्थिक स्थिरता

इन हस्तक्षेपों को अलग-अलग संचालित करने के बजाय एकीकृत मूल्य श्रृंखला प्रणाली के रूप में विकसित किया जाना चाहिए। विशेष रूप से एफ. पी. ओ. क्षमता, प्रसंस्करण, बाजार सूचना और कार्यशील पूंजी को एक-दूसरे से जोड़ना आवश्यक होगा।

उत्पाद-विशिष्ट मूल्य श्रृंखला रणनीतियाँ

सभी जैविक उत्पादों के लिए एक समान मूल्य श्रृंखला मॉडल उपयुक्त नहीं होगा। उत्पाद की प्रकृति, उत्पादन मात्रा, प्रसंस्करण आवश्यकताओं और बाजार मांग के आधार पर उत्पाद-विशिष्ट रणनीतियाँ विकसित करना अधिक प्रभावी होगा।

तालिका 3. चयनित उत्पादों के लिए मूल्य श्रृंखला प्राथमिकताएँ

उत्पाद	प्रमुख अवसर	प्राथमिक मूल्य संवर्धन	बाजार
सुगंधित/जैविक चावल	गुणवत्ता एवं विशिष्ट पहचान	मिलिंग, ग्रेडिंग, पैकेजिंग, ब्रांडिंग	प्रीमियम घरेलू/निर्यात
मिलेट्स	पोषण एवं पारंपरिक पहचान	डीहस्किंग, आटा, रेडी-टू-कुक	खुदरा/संस्थागत
औषधीय पौधे	उच्च-मूल्य उत्पाद	सुखाना, ग्रेडिंग, प्रसंस्करण	विशिष्ट/औद्योगिक
सुगंधित पौधे	विशिष्ट उत्पाद पहचान	प्रसंस्करण, पैकेजिंग	विशिष्ट घरेलू बाजार

कम उत्पादन वाले क्षेत्रों में क्लस्टर-आधारित संग्रहण एवं निकटवर्ती प्रसंस्करण केंद्र अधिक व्यवहार्य हो सकते हैं, जबकि पर्याप्त उत्पादन वाले क्षेत्रों में स्थानीय प्रसंस्करण और ब्रांडिंग को प्राथमिकता दी जा सकती है।

स्थानीय आर्थिक परिणामों की निगरानी

जैविक मूल्य श्रृंखला की सफलता को केवल जैविक क्षेत्रफल या किसानों की संख्या से नहीं मापा जाना चाहिए। अधिक महत्वपूर्ण यह है कि इससे किसानों की आय, मूल्य-प्राप्ति, स्थानीय प्रसंस्करण, रोजगार और ग्रामीण उद्यमिता में कितना वास्तविक परिवर्तन आया।

तालिका 4. प्रमुख निगरानी संकेतक

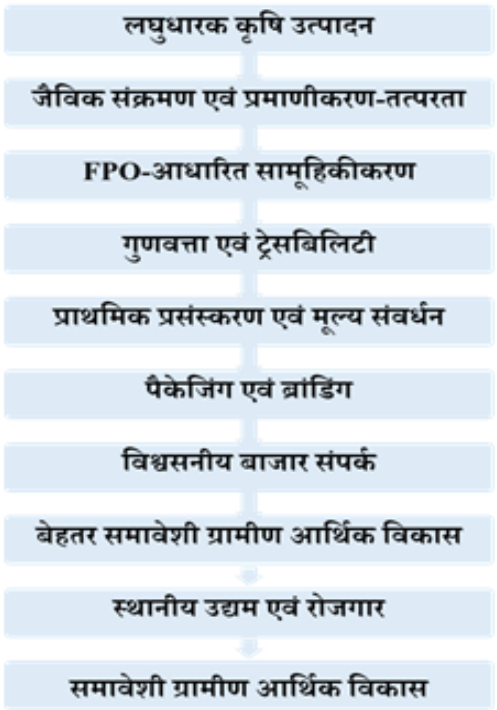
आयाम	प्रमुख संकेतक
जैविक संक्रमण	किसान संख्या एवं क्षेत्रफल
प्रमाणीकरण	प्रमाणित/प्रमाणीकरण-तैयार समूह
प्रसंस्करण	स्थानीय रूप से प्रसंस्कृत उपज
मूल्य संवर्धन	मूल्यवर्धित उत्पादों का अनुपात
बाजार	सक्रिय एवं विविध बाजार चैनल
किसान प्राप्ति	खेत-स्तरीय मूल्य एवं शुद्ध आय
मूल्य हिस्सेदारी	अंतिम मूल्य में किसान का हिस्सा
रोजगार	प्रसंस्करण, पैकेजिंग एवं विपणन से रोजगार
उद्यम	व्यवहार्य ग्रामीण उद्यमों की संख्या

इस प्रकार निगरानी प्रणाली को केवल उत्पादन के विस्तार के बजाय आय और स्थानीय आर्थिक प्रभाव पर केंद्रित करना चाहिए। यदि जैविक उत्पादन बढ़ने के साथ किसान की आय, मूल्य हिस्सेदारी और स्थानीय आर्थिक गतिविधियाँ भी बढ़ती हैं, तभी इसे प्रभावी मूल्य श्रृंखला विकास का संकेत माना जा सकता है।

ग्रामीण समृद्धि का समग्र मॉडल

उत्तराखंड में जैविक कृषि को ग्रामीण आर्थिक विकास से जोड़ने के लिए निम्न समेकित मूल्य श्रृंखला मॉडल अपनाया जा सकता है:

इस मॉडल की विशेषता इसकी अंतःसंबद्धता है। पर्याप्त सामूहिकीकरण प्रसंस्करण को व्यवहार्य बना सकता है; प्रसंस्करण मूल्य संवर्धन करता है; ब्रांडिंग बाजार पहचान मजबूत करती है और ट्रेसबिलिटी विश्वास बढ़ाती है। स्थिर बाजार उपलब्ध होने पर स्थानीय उद्यमों की आर्थिक व्यवहार्यता और रोजगार के अवसर भी बढ़ सकते हैं। इसलिए उत्तराखंड में जैविक कृषि को केवल रासायनिक इनपुट के विकल्प के रूप में नहीं, बल्कि स्थानीय उत्पादन, मूल्य संवर्धन, बाजार संपर्क, उद्यमिता और किसान-केंद्रित मूल्य-प्राप्ति को जोड़ने वाली ग्रामीण आर्थिक प्रणाली के रूप में विकसित करना अधिक उपयुक्त होगा।



चित्र 5. समेकित मूल्य श्रृंखला मॉडल

निष्कर्ष

जैविक कृषि उत्तराखंड की समृद्ध कृषि विरासत, जैव-पारिस्थितिक विविधता, पारंपरिक ज्ञान और विशिष्ट कृषि उत्पादों को उभरते बाजारों से जोड़ने का महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करती है। हालांकि, केवल जैविक उत्पादन से किसानों की आय या ग्रामीण समृद्धि सुनिश्चित नहीं होती। इसके लिए उत्पादन को प्रमाणीकरण, सामूहिकीकरण, गुणवत्ता प्रबंधन, प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन, ब्रांडिंग, ट्रेसबिलिटी और विश्वसनीय बाजार संपर्क से जोड़ना आवश्यक है। एफ. पी. ओ. छोटे किसानों और संगठित बाजारों के बीच महत्वपूर्ण सेतु बन सकते हैं। वे सामूहिकीकरण, प्रमाणीकरण, गुणवत्ता प्रबंधन, प्रसंस्करण और विपणन में सहायता कर सकते हैं, लेकिन उनकी सफलता के लिए निरंतर तकनीकी, प्रबंधकीय, संस्थागत और वित्तीय सहयोग आवश्यक है।

उत्तराखंड के सुगंधित एवं जैविक चावल, मिलेट्स तथा औषधीय एवं सुगंधित पौधों में उत्पाद-विशिष्ट मूल्य संवर्धन की पर्याप्त संभावनाएँ हैं। स्थानीय स्तर पर मिलिंग, ग्रेडिंग, प्रसंस्करण, पैकेजिंग और ब्रांडिंग को बढ़ावा देने से ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक आर्थिक मूल्य बनाए रखने तथा रोजगार एवं उद्यमिता के अवसर बढ़ाने में सहायता मिल सकती है। हालाँकि, प्रमाणीकरण लागत, कमजोर अवसंरचना, प्रसंस्करण सुविधाओं की कमी, बाह्य प्रवासन, सीमित बाजार सूचना तथा एफ. पी. ओ. की संस्थागत क्षमता जैसी चुनौतियों का समाधान आवश्यक है। इसलिए रणनीतिक प्राथमिकता केवल जैविक उत्पादन बढ़ाने के बजाय एक किसान-केंद्रित, समग्र और अंत-से-अंत जैविक मूल्य श्रृंखला विकसित करने की होनी चाहिए। अंततः जैविक कृषि की सफलता का आकलन केवल उत्पादन की मात्रा से नहीं, बल्कि किसानों की आय, स्थानीय मूल्य संरक्षण, रोजगार, ग्रामीण उद्यमिता और बाजार स्थिरता से किया जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण से जैविक मूल्य श्रृंखलाएँ उत्तराखंड में कृषि विकास से आगे बढ़कर समावेशी स्थानीय आर्थिक सशक्तीकरण का प्रभावी माध्यम बन सकती हैं।

संदर्भ

1. भावानी, बी., सिस्तला, पी. एस. पी., श्रीलता, सी. एच., एवं मीना, ए. (2025)। जैविक खाद्य उत्पादों में लागत एवं मूल्य का अनुशीलन: मेडक की खेत से बाजार तक की श्रृंखला का अध्ययन। *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एग्रीकल्चर एक्सटेंशन एंड सोशल डेवलपमेंट, 8*(12), 524–527। https://doi.org/10.33545/26180723.2025.v8.i12g.2805
2. चंद्रा, पी., एवं कुमार, जे. (2021)। औषधीय एवं सुगंधित पौधों के व्यवसाय को सतत संसाधन प्रबंधन एवं आर्थिक समृद्धि से जोड़ना: एक मूल्य श्रृंखला विश्लेषण। *एरिया डेवलपमेंट एंड पॉलिसी, 6*(1), 1–13। https://doi.org/10.1080/23792949.2020.1870409
3. डेका, एन., एवं गोस्वामी, के. (2022)। छोटे चाय उत्पादकों के लिए जैविक खेती एवं सतत मूल्य श्रृंखला विकास: असम, भारत से प्राप्त निष्कर्ष। *सस्टेनेबल प्रोडक्शन एंड कंजम्पशन, 32*, 562–579। https://doi.org/10.1016/j.spc.2022.05.004

4. फ्लैक्स, ए., एवं पनुगांती, एस. (2019)। दक्षिण भारत में जैविक कृषि की आकांक्षाएँ। *इकोनॉमिक एंथ्रोपोलॉजी, 7*(1), 38–50। https://doi.org/10.1002/sea2.12158

5. जोसेफसतीश, वी., एवं प्रसाद, सी. (2012)। *सतत कृषि के माध्यम से किसानों के लिए समावेशी बाजारों का निर्माण: धरनी एफएएम कोऑप लिमिटेड से सीख।*

6. क्लॉचको-गायेव्स्का, ए., मलाक-राव्लिकोव्स्का, ए., माजेव्स्की, ई., विल्किन्सन, ए., गॉर्टन, एम., टोको, बी., वॉस, ए., सईदी, एम., टोरोख, ए., एवं वेनेज़ियानी, एम. (2024)। लघु खाद्य आपूर्ति श्रृंखलाओं के आर्थिक प्रभाव क्या हैं? स्थानीय गुणक प्रभाव (एलएम3) का मूल्यांकन। *यूरोपियन अर्बन एंड रीजनल स्टडीज, 31*(3), 281–301। https://doi.org/10.1177/09697764231201572

7. लॉबली, एम., बटलर, ए., एवं रीड, एम. (2009)। ग्रामीण विकास में जैविक कृषि का योगदान: इंग्लैंड में जैविक एवं गैर-जैविक कृषि के सामाजिक-आर्थिक संबंधों का अध्ययन। *लैंड यूज़ पॉलिसी, 26*, 723–735। https://doi.org/10.1016/j.landusepol.2008.09.007

8. मैखुरी, आर. के., रावत, एल. एस., सेमवाल, आर. एल., राव, के. एस., एवं सक्सेना, के. जी. (2015)। उत्तराखंड हिमालय, भारत में जैविक कृषि। *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इकोलॉजी एंड एनवायरनमेंटल साइंसेज, 41*(3–4), 161–176।

9. नायक, एस., नाथ, ए., शुक्ला, एस., हुसैन, एस. एम., एवं बडोनी, एस. (2025)। स्थानीय ज्ञान को बीज प्रणाली एवं बाजारों से जोड़कर भारत में कलानमक चावल किसानों की सुदृढ़ता एवं लाभप्रदता को बढ़ावा देना। *फ्रंटियर्स इन सस्टेनेबल फूड सिस्टम्स, 9*। https://doi.org/10.3389/fsufs.2025.1647732

10. निकोलेसन, ए. एम., फ्रांसिस, सी., एवं लीबलिन, जी. (2014)। उत्तराखंड, भारत में कृषक-समर्थित जैव विविधता संरक्षण। *11वीं यूरोपीय आईएफएसए संगोष्ठी की कार्यवाही*। बर्लिन, जर्मनी।

11. रेड्डी, ए. ए. (2018)। *उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के लिए मिशन ऑर्गेनिक वैल्यू चेन डेवलपमेंट (एमओवीसीडीएनईआर) का प्रभाव मूल्यांकन अध्ययन*। एसएसआरएन इलेक्ट्रॉनिक जर्नल। https://doi.org/10.2139/ssrn.3249958

12. रेंटिंग, एच., मार्सडेन, टी. के., एवं बैंक्स, जे. (2003)। वैकल्पिक खाद्य नेटवर्क को समझना: ग्रामीण विकास में लघु खाद्य आपूर्ति श्रृंखलाओं की भूमिका का अन्वेषण। *एनवायरनमेंट एंड प्लानिंग ए, 35*(3), 393–411। https://doi.org/10.1068/a3510

13. साहू, आर. एस., एवं तिवारी, एम. (2024)। जैविक कृषि के माध्यम से भारतीय लघुधारक किसानों की सतत आजीविका एवं समावेशी विकास सुनिश्चित करना: एक व्यवस्थित साहित्य समीक्षा। *सोशियो-इकोलॉजिकल प्रैक्टिस रिसर्च*। https://doi.org/10.1007/s42532-024-00190-0

14. संगप्पा, एस., रफी, डी., लक्ष्मी, बी., चारिश्मा, ई., एवं बाबू, के. एस. (2023)। किसान उत्पादक संगठनों के माध्यम से मिलेट मूल्य श्रृंखला को सुदृढ़ करना। *इंडियन जर्नल ऑफ एक्सटेंशन एजुकेशन, 59*(3), 26–31। https://doi.org/10.48165/IJEE.2023.59305

15. सती, ए., पुरोहित, वी. के., एवं सती, एम. सी. (2025)। आजीविका एवं पर्यावरणीय स्थिरता के लिए मिलेट्स: उत्तराखंड के पर्वतीय जिलों में मिलेट उत्पादन एवं उत्पादकता का आकलन। *जर्नल ऑफ माउंटेन रिसर्च, 20*(1), 379–387। https://doi.org/10.51220/jmr.v20-i1.40

16. सक्सेना, ए., गायत्री, डी., प्रसाद, आर., एवं सिंह, ए. (2023)। उत्तराखंड के जैविक बासमती चावल की निर्यात प्रतिस्पर्धात्मकता। *द फार्मा इनोवेशन, 12*(1), 332–341। https://doi.org/10.22271/tpi.2023.v12.i1d.18449

17. शर्मा, एम., शिजागुरुमायुम, एम., लक्ष्मीनारायण, एम. टी., एवं कृष्णमूर्ति, बी. (2021)। मिशन ऑर्गेनिक वैल्यू चेन डेवलपमेंट योजना के अंतर्गत उपलब्ध लाभों के संबंध में सुगंधित काले चावल उत्पादकों का ज्ञान। *एशियन जर्नल ऑफ एग्रीकल्चरल एक्सटेंशन, इकोनॉमिक्स एंड सोशियोलॉजी, 39*(7), 88–95। https://doi.org/10.9734/ajaees/2021/v39i730612

18. स्टेफानोविक, एल., एवं एग्बोलोसू-मेंसाह, ओ. ए. (2023)। ग्रामीण क्षेत्रों एवं समुदायों के पुनरोद्धार के साधन के रूप में जैव-जिले: सिलेंटो जैव-जिले से प्राप्त अनुभव। *फ्रंटियर्स इन सस्टेनेबल फूड सिस्टम्स, 7*। https://doi.org/10.3389/fsufs.2023.1267985

19. स्टोटेन, आर., बुई, एस., पुग्लीसी, पी., शेरमर, एम., एवं लामिन, सी. (2018)। क्षेत्रीय विकास के साधन के रूप में जैविक मूल्य-आधारित आपूर्ति श्रृंखलाएँ: तीन यूरोपीय जैविक क्षेत्रों का तुलनात्मक विश्लेषण। *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी ऑफ एग्रीकल्चर एंड फूड, 24*(1), 135–154। https://doi.org/10.48416/IJSAF.V24I1.120

20. स्टोटेन, आर., एवं फ्रोनिंग, पी. (2023)। जैविक कृषि पर आधारित क्षेत्रीय ग्रामीण विकास रणनीतियाँ: स्विट्जरलैंड के वालपोसियावो का उदाहरण। *फ्रंटियर्स इन सस्टेनेबल फूड सिस्टम्स, 7*। https://doi.org/10.3389/fsufs.2023.1182993

21. विचियानी, एम., एवं प्लाहे, जे. (2017)। भारत में लघु किसानों के लिए पारंपरिक खाद्य ज्ञान का नए विपणन संस्थानों तक विस्तार। *साउथ एशिया: जर्नल ऑफ साउथ एशियन स्टडीज*, 40, 645–668। https://doi.org/10.1080/00856401.2017.1342183

जैविक राज्य के रूप में उत्तराखण्डः संभावनाएँ और चुनौतियाँ

कीर्तिका पडलिया[1], पूजा जुयाल[1], प्रभा बी. ढौंडियाल[1], बीना तिवारी फुलारा[2], कृष्णा कुमार टम्टा[2], प्रीति पंत[2] और मनीष त्रिपाठी[3]

[1]वनस्पति विज्ञान विभाग, विज्ञान संकाय, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखंड 263139, भारत

[2]वानिकी एवं पर्यावरण विज्ञान विभाग, भौमिकी एवं पर्यावरण विज्ञान संकाय, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखंड 263139, भारत

[3]जी.बी. पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, हिमाचल प्रदेश क्षेत्रीय केंद्र, मोहल, कुल्लू, हिमाचल प्रदेश, भारत

Corresponding author: kirtika.padalia89@gmail.com

सार

उत्तराखण्ड हिमालयी क्षेत्र का एक विशिष्ट राज्य है, जो अपने समृद्ध प्राकृतिक संसाधनों, पारंपरिक कृषि प्रणालियों, विविध जलवायु परिस्थितियों तथा समृद्ध जैव विविधता के कारण जैविक कृषि के विकास हेतु अत्यंत अनुकूल माना जाता है। राज्य की अधिकांश कृषि छोटे एवं सीमांत कृषकों पर आधारित है, जिनकी आजीविका मुख्यतः वर्षा, स्थानीय परिस्थितियों और परंपरागत ज्ञान पर निर्भर करती है। रासायनिक कृषि के सीमित उपयोग, पहाड़ी भू–आकृति, कम औद्योगिक दबाव और ग्रामीण समाज में अब भी विद्यमान पारंपरिक कृषि संस्कृति ने उत्तराखण्ड को जैविक राज्य के रूप में विकसित करने की एक मजबूत आधारभूमि प्रदान की है। दूसरी ओर, खंडित कृषि जोतें, प्रमाणीकरण एवं विपणन व्यवस्था की सीमाएँ, श्रम की उपलब्धता में कमी, बढ़ता ग्रामीण पलायन, अपर्याप्त भंडारण एवं प्रसंस्करण सुविधाएँ, जलवायु परिवर्तन तथा प्राकृतिक आपदाएँ राज्य में जैविक कृषि के व्यापक विस्तार में महत्वपूर्ण बाधाएँ उत्पन्न करती हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में उत्तराखण्ड को जैविक राज्य के रूप में विकसित करने से संबंधित अवसरों, चुनौतियों, नीतिगत हस्तक्षेपों, सामाजिक–आर्थिक परिप्रेक्ष्य तथा भावी कार्यनीतियों का विस्तृत एवं समीक्षात्मक विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण, स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी, प्रभावी सरकारी नीतियों, सुदृढ़ संस्थागत सहयोग तथा कुशल विपणन एवं मूल्य संवर्धन तंत्र के समन्वित विकास के माध्यम से उत्तराखण्ड न केवल जैविक कृषि के क्षेत्र में अग्रणी राज्य के रूप में स्थापित हो सकता है, बल्कि सतत विकास, ग्रामीण आजीविका सुदृढ़ीकरण, पर्यावरणीय संरक्षण तथा जलवायु–अनुकूल कृषि का एक अनुकरणीय मॉडल भी प्रस्तुत कर सकता है ।

कुंजी शब्दः उत्तराखण्ड, जैविक कृषि, छोटे किसान, हिमालय, सतत विकास, मृदा स्वास्थ्य, जैव विविधता, विपणन, प्रमाणीकरण, ग्रामीण आजीविका

प्रस्तावना

उत्तराखण्ड अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति, पर्वतीय पारिस्थितिकी, समृद्ध सांस्कृतिक विरासत तथा प्राकृतिक संसाधनों की विविधता के कारण भारत के प्रमुख पर्वतीय राज्यों में एक विशिष्ट स्थान रखता है (उत्तराखंड जैव विविधता बोर्ड, 2025)। हिमालयी कृषि–परिस्थितिकी के परिप्रेक्ष्य में उत्तराखण्ड का विशेष महत्व है। राज्य की कृषि व्यवस्था परंपरागत रूप से स्थानीय संसाधनों, पारंपरिक कृषि ज्ञान तथा प्रकृति–संगत कृषि पद्धतियों पर आधारित रही है इसी कारण यहाँ जैविक कृषि के विकास की संभावनाएँ अन्य अनेक राज्यों की तुलना में अधिक प्रबल मानी जाती हैं।

यद्यपि आधुनिक कृषि विकास मॉडल ने खाद्यान्न उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि की, तथापि रासायनिक आदानों के बढ़ते उपयोग के कारण मृदा की उर्वरता, जल संसाधनों की गुणवत्ता, जैव विविधता तथा मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगे हैं। उत्तराखण्ड में दीर्घकालिक अनुभव से यह स्पष्ट हुआ है कि बाह्य निवेश–आधारित कृषि मॉडल स्थानीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था को स्थायित्व प्रदान करने के बजाय अनेक परिस्थितियों में उसकी संवेदनशीलता और निर्भरता को बढ़ा देता है। ऐसे परिप्रेक्ष्य में जैविक कृषि मात्र कृषि उत्पादन की एक तकनीक न होकर, आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरणीय आयामों को समाहित करने वाली समग्र विकास अवधारणा के रूप में स्थापित होती है ।

जैविक राज्य की अवधारणा रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के उपयोग में कमी तक सीमित नहीं है, बल्कि यह ऐसी कृषि व्यवस्था की स्थापना पर बल देती है जो प्राकृतिक संसाधनों, पारिस्थितिक तंत्र, मानव एवं पशुधन स्वास्थ्य तथा स्थानीय आजीविका के मध्य दीर्घकालिक संतुलन बनाए रखे। उत्तराखण्ड के संदर्भ में जैविक राज्य की अवधारणा विशेष महत्व रखती है, क्योंकि यहाँ की कृषि व्यवस्था का प्रत्यक्ष संबंध पर्वतीय पारिस्थितिकी, प्राकृतिक संसाधनों, ग्रामीण आजीविका, पर्यटन तथा स्थानीय सांस्कृतिक विरासत से जुड़ा हुआ है । इसलिए राज्य में जैविक कृषि का विकास केवल कृषि क्षेत्र तक सीमित न होकर पर्यावरणीय संरक्षण, जैव विविधता संवर्धन, ग्रामीण अर्थव्यवस्था तथा सांस्कृतिक पहचान के संरक्षण से भी गहराई से संबद्ध है। यदि प्रभावी नीतिगत समर्थन, वैज्ञानिक अनुसंधान एवं तकनीकी सहयोग, सुदृढ़ संस्थागत तंत्र तथा स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी पर आधारित रणनीतियों का समन्वित रूप से क्रियान्वयन किया जाए, तो जैविक कृषि उत्तराखण्ड में आर्थिक समृद्धि, पर्यावरणीय स्थिरता, ग्रामीण आजीविका सुदृढ़ीकरण तथा सामाजिक सशक्तिकरण का प्रभावी माध्यम सिद्ध हो सकती है ।

उत्तराखण्ड का कृषि परिदृश्य

उत्तराखण्ड में उच्च हिमालयी क्षेत्र, मध्य हिमालय, शिवालिक पहाड़ियाँ और तराई–भाभर क्षेत्र सम्मिलित हैं इस कारण जलवायु, मिट्टी, वर्षा, तापमान और कृषि–उपयुक्तता में भी काफी भिन्नता पाई जाती है । पर्वतीय क्षेत्रों में कृषि मुख्यतः लघु एवं सीढ़ीदार खेतों में की जाती है, जबकि तराई–भाभर क्षेत्र की समतल एवं अपेक्षाकृत उपजाऊ भूमि अधिक गहन कृषि एवं उच्च कृषि उत्पादकता के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करती है।

उत्तराखण्ड के कृषि परिदृश्य की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि यहाँ कृषि परिवारों की औसत जोत बहुत छोटी है तथा अधिकांश कृषक छोटे और सीमांत वर्ग में आते हैं । फलस्वरूप, बाह्य एवं रासायनिक आदानों पर आधारित कृषि प्रणाली का व्यापक स्तर पर क्रियान्वयन अधिकांश कृषकों के लिए आर्थिक रूप से चुनौतीपूर्ण सिद्ध होता है । पर्वतीय क्षेत्रों की कृषि प्रणाली परंपरागत रूप से बहुफसली एवं विविधतापूर्ण रही है, जिसमें धान, मंडुवा, झंगोरा, गहत, भट्ट, राजमा, आलू, चौलाई, अदरक, हल्दी, विभिन्न सब्जियाँ तथा औषधीय एवं सुगंधित पौधों की खेती प्रमुख रूप से की जाती है। इन फसलों की विशेषता यह है कि ये स्थानीय जलवायु के अनुरूप ढली हुई हैं और अपेक्षाकृत कम बाह्य निवेश में भी उत्पादन दे सकती हैं।

उत्तराखण्ड में पशुपालन, कृषि के साथ एकीकृत रूप में, ग्रामीण आजीविका एवं अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण आधार रहा है। स्थानीय कृषि परंपराओं में गोबर, गोमूत्र, वृक्षों की पत्तियाँ, तथा अन्य जैविक अवशेषों का पुनर्चक्रण कर उन्हें खाद, मल्च एवं अन्य जैविक कृषि आदानों के रूप में उपयोग करने की समृद्ध परंपरा रही है। यह एक ऐसी प्रणाली है जो स्वाभाविक रूप से जैविक खेती के सिद्धांतों के निकट है । इस प्रकार, उत्तराखण्ड की कृषि व्यवस्था में विद्यमान पारंपरिक ज्ञान, प्राकृतिक संसाधन तथा पर्यावरणीय अनुकूलताएँ आधुनिक जैविक कृषि के विकास हेतु एक सुदृढ़ आधार प्रदान करती हैं ।

उत्तराखण्ड में जैविक कृषि की अवधारणा एवं आवश्यकता

जैविक कृषि ऐसी उत्पादन प्रणाली है, जिसमें कृत्रिम रासायनिक उर्वरकों, हानिकारक कीटनाशकों, वृद्धि नियामकों तथा अन्य संश्लेषित कृषि आदानों के उपयोग से यथासंभव परहेज किया जाता है तथा मृदा, पौधों और पारिस्थितिकी की प्राकृतिक प्रक्रियाओं को प्राथमिकता दी जाती है। इसके स्थान पर प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और कृषि पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता सुनिश्चित करने हेतु हरी खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, जैव उर्वरकों, फसल चक्र, मिश्रित खेती, जैविक कीट एवं रोग प्रबंधन तथा स्थानीय बीजों के उपयोग एवं संरक्षण पर विशेष बल दिया जाता है। उत्तराखण्ड की भूमि संरचना और कृषि परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि अत्यधिक रासायनिक इनपुट का दीर्घकालीन लाभ सीमित है। चूँकि राज्य के अनेक क्षेत्रों में रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का उपयोग ऐतिहासिक रूप से सीमित रहा है, इसलिए इन क्षेत्रों में जैविक कृषि की ओर संक्रमण अपेक्षाकृत कम जटिल तथा अधिक व्यवहार्य माना जाता है। इसके अतिरिक्त, उत्तराखण्ड एक ऐसा राज्य है जहाँ पर्यावरण की शुद्धता, नदियों के स्रोत, पहाड़ी पारिस्थितिकी और पर्यटन की छवि जैविक पहचान से सीधे जुड़ी हुई है ।

उत्तराखण्ड के संदर्भ में जैविक कृषि मात्र खेत–आधारित तकनीक नहीं है, बल्कि यह जीवन शैली, स्थानीय आजीविका और आर्थिक पुनर्संरचना का एक व्यापक दृष्टिकोण है। यह स्थानीय बीजों के संरक्षण, महिला कृषकों की भूमिका, पशुधन आधारित कृषि, सूक्ष्म उद्यमों और ग्रामीण आत्मनिर्भरता को सशक्त बनाता है। जैविक खेती से मृदा में कार्बन बढ़ता है, सूक्ष्मजीव सक्रिय होते हैं, जलधारण क्षमता सुधरती है और पारिस्थितिक स्थिरता विकसित होती है। पर्वतीय क्षेत्रों में, जहाँ मिट्टी क्षरण और पोषक तत्वों की हानि एक बड़ी समस्या है, वहाँ जैविक प्रबंधन अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

उत्तराखण्ड को जैविक राज्य बनाने की पृष्ठभूमि

उत्तराखण्ड की जैविक यात्रा सामाजिक–राजनीतिक जागरूकता, पर्यावरण संरक्षण आंदोलनों तथा स्थानीय आजीविका के संरक्षण और सुदृढ़ीकरण की व्यापक चिंताओं के साथ विकसित हुई है। उत्तराखण्ड राज्य के गठन के पश्चात् यह स्पष्ट हुआ कि पारंपरिक मैदानी कृषि मॉडल पर्वतीय परिस्थितियों के लिए पूर्णतः उपयुक्त नहीं हैं, इसलिए कृषि नीतियों में पर्वतीय क्षेत्रों की विशिष्ट आवश्यकताओं को समुचित स्थान देना आवश्यक है। इसी संदर्भ में जैविक खेती को एक ऐसे विकल्प के रूप में देखा गया जो पर्वतीय कृषि की विशिष्ट समस्याओं का समाधान कर सकता है। यदि कृषक कम लागत में उत्पादन करें, तो उनकी आय में वृद्धि संभव है; यदि उत्पादन की ब्रांडिंग हो, तो उन्हें बेहतर मूल्य मिल सकता है; और यदि खेती पर्यावरण के अनुरूप हो, तो पारिस्थितिकी संरक्षण भी संभव होता है।

जैविक राज्य बनाने के लिए उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक पहचान भी महत्वपूर्ण है। लंबे समय से राज्य की अर्थव्यवस्था में धार्मिक पर्यटन, पारंपरिक खाद्य पदार्थ, स्थानीय अनाज, औषधीय पौधे और वन संसाधन शामिल हैं। वर्तमान उपभोक्ता भी प्राकृतिक, स्वास्थ्यवर्धक और पर्यावरण के अनुकूल उत्पादों की ओर आकर्षित हो रहे हैं। इस प्रकार, जैविक राज्य की कल्पना उत्तराखण्ड की अर्थव्यवस्था और संस्कृति से मेल खाती है ।

उत्तराखण्ड में जैविक कृषि की वर्तमान स्थिति

उत्तराखण्ड को भारत में जैविक कृषि के लिए सर्वाधिक उपयुक्त राज्यों में से एक माना जाता है। राज्य की भौगोलिक एवं पारिस्थितिक परिस्थितियाँ, सीमित कृषि योग्य भूमि, पारंपरिक कृषि प्रणालियाँ तथा रासायनिक कृषि आदानों का अपेक्षाकृत कम उपयोग जैविक खेती के विकास के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करते हैं (उत्तराखण्ड कृषि विभाग, 2024)। राज्य के अधिकांश पर्वतीय क्षेत्रों में आज भी कृषि मुख्यतः पारंपरिक पद्धतियों पर आधारित है (पडलिया एवं सहलेखक, 2017)। इन विशेषताओं के कारण उत्तराखण्ड में जैविक कृषि की आधारभूत संरचना स्वाभाविक रूप से विद्यमान है (सिंह एवं गुप्ता 2024)।

उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में खेत छोटे–छोटे तथा बिखरे हुए हैं, जिसके कारण बड़े पैमाने पर रासायनिक कृषि का विकास अपेक्षाकृत कम हुआ है। परिणामस्वरूप अनेक क्षेत्रों में कृषि उत्पादन आज भी लगभग जैविक स्वरूप का है (भारत सरकार, कृषि जनगणना, 2021)। राज्य सरकार ने उत्तराखण्ड को जैविक कृषि के क्षेत्र में अग्रणी बनाने के उद्देश्य से विभिन्न योजनाएँ संचालित की हैं। परंपरागत कृषि विकास योजना, राष्ट्रीय सतत् कृषि मिशन, राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम तथा भागीदारी गारंटी प्रणाली जैसी योजनाओं के माध्यम से किसानों को जैविक खेती अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है (कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, 2024)। अनेक स्थानों पर जैविक क्लस्टरों का गठन किया गया है, जहाँ किसानों को प्रशिक्षण, जैविक इनपुट, प्रमाणन तथा विपणन संबंधी सहायता प्रदान की जाती है।

यद्यपि राज्य में जैविक कृषि का क्षेत्रफल निरंतर बढ़ रहा है, फिर भी प्रमाणित जैविक क्षेत्र और वास्तविक रूप से जैविक पद्धतियों से की जाने वाली खेती के बीच अंतर देखा जाता है। अनेक किसान पारंपरिक रूप से जैविक खेती तो करते हैं, लेकिन प्रमाणन प्रक्रिया की जटिलता एवं लागत के कारण अपने उत्पादों को आधिकारिक रूप से जैविक उत्पाद के रूप में बाजार में प्रस्तुत नहीं कर पाते। इसलिए राज्य में जैविक कृषि के विस्तार के साथ–साथ प्रमाणन, प्रसंस्करण और विपणन व्यवस्था को मजबूत बनाना आवश्यक है।

उत्तराखण्ड की पारंपरिक कृषि एवं जैविक विरासत

उत्तराखण्ड की कृषि परंपरा मूलतः प्रकृति–संगत रही है। पहाड़ के किसान खेत, जंगल, पशुधन और जलस्रोतों को एक समन्वित प्रणाली के रूप में देखते रहे हैं। खेतों में गोबर की खाद, पत्तों की खाद, जंगल की जैव सामग्री, राख, जुताई के सीमित साधन और बीजों का स्थानीय संरक्षण आदि परंपरागत कृषि का हिस्सा रहा है (पडलिया एवं त्रिपाठी, 2024)। फसल चक्र, मिश्रित खेती, अंतरवर्तीय फसलें, सीढ़ीदार खेती और स्थानीय बीजों की विविधता ने इस व्यवस्था को स्थिर बनाए रखा। स्थानीय अनाज जैसे मंडुवा और झंगोरा केवल भोजन नहीं थे, बल्कि जलवायु–सहिष्णु खेती के प्रतीक थे। दलहन फसलें मिट्टी में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करती हैं । सब्जियाँ, मसाले, कंद और औषधीय पौधे घरेलू उपयोग तथा बाजार दोनों के लिए उगाए जाते थे। पशुपालन के साथ कृषि का संबंध इतना घनिष्ठ था कि खेत की उर्वरता और पशुधन की संख्या एक–दूसरे को प्रभावित करती थी।

जैविक कृषि की आधुनिक अवधारणा वास्तव में इन परंपराओं की वैज्ञानिक पुनर्व्याख्या है। आज जिन सिद्धांतों को जैविक कृषि के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, वे बहुत हद तक उत्तराखण्ड की पारंपरिक कृषि पद्धतियों में पहले से निहित थे। आवश्यकता केवल उनकी वैज्ञानिक व्याख्या, मानकीकरण, प्रशिक्षण और बाजार–संलग्नता की है। यह जैविक राज्य की अवधारणा को सांस्कृतिक वैधता प्रदान करता है।

जैविक राज्य के रूप में उत्तराखण्ड की प्रमुख संभावनाएँ

प्राकृतिक रूप से जैविक कृषि के अनुकूल परिस्थितियाँः उत्तराखण्ड अपनी प्राकृतिक और पारिस्थितिक विशेषताओं के कारण जैविक कृषि के विकास के लिए बेहद उपयुक्त है। इस राज्य का हिमालयी क्षेत्र 300 से 7000 मीटर की ऊँचाई तक फैला हुआ है, जहां विभिन्न कृषि–जलवायु क्षेत्र हैं, जो कई प्रकार की फसलों, फलदार वृक्षों, मसालों और औषधीय पौधों के उत्पादन के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करते हैं। यह विविधता कृषि प्रणाली को अधिक लचीला और स्थिर बनाती है और किसानों को स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप फसल चुनने की सुविधा मिलती है (एफएओ, 2022; उत्तराखण्ड कृषि विभाग, 2024)।

उत्तराखण्ड की कृषि व्यवस्था प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर है। यहाँ के कृषकों ने ऐतिहासिक रूप से कृषि का विकास करते हुए भूमि, जल, वन और पशुधन के बीच संतुलित संबंध बनाए रखे हैं। यह कृषि, वानिकी और पशुपालन क्षेत्रों का परस्पर पूरक स्वरूप एक समेकित उत्पादन प्रणाली का निर्माण करता है, जिसमें संसाधनों का स्वभाविक पुनर्चक्रण होता है। पशुओं से प्राप्त मूत्र और गोबर खेतों के लिए पोषक तत्वों का स्रोत हैं, जबकि कृषि अवशेषों और वन क्षेत्रों से प्राप्त जैविक पदार्थ खाद बनाने में उपयोग किए जाते हैं। यह चक्रीय व्यवस्था कृषि उत्पादन को पर्यावरणीय दृष्टि से अधिक टिकाऊ बनाती है और बाहरी आदानों पर निर्भरता को कम करती है।

राज्य की मृदाएँ कार्बनिक पदार्थों से भरपूर हैं। वनस्पति अवशेषों के निरंतर अपघटन से मृदा की संरचना, जलधारण क्षमता और पोषक तत्वों की उपलब्धता में सुधार होता है। ऐसी मृदाएँ सूक्ष्मजीवों के लिए अनुकूल वातावरण बनाती हैं, जो जैविक कृषि में पोषक तत्वों के प्राकृतिक चक्रण और मृदा उर्वरता को बनाए रखने के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं (पडलिया एवं सह लेखक, 2026) जैविक उत्पादन प्रणाली का आधार स्वस्थ मृदा है, और उत्तराखण्ड में कई कृषि भूमि इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं (लाल, 2020; एफएओ, 2022)।

जैविक उत्पादन के लिए राज्य की जलवायु परिस्थितियाँ महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करती हैं। मैदानी क्षेत्रों की तुलना में पर्वतीय क्षेत्रों में कीटों और रोगों का प्रकोप कम होता है क्योंकि वहाँ तापमान अपेक्षाकृत कम होता है और वायुमंडलीय आर्द्रता में मौसमी विविधता होती है। इससे फसलों को सुरक्षित रखने के लिए रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग कम हो जाता है। साथ ही, हिमालय से उद्गमित नदियाँ, प्राकृतिक झरने और जलस्रोत कृषि के लिए पर्याप्त स्वच्छ जल प्रदान करते हैं, जो जैविक उत्पादन की गुणवत्ता को बनाए रखने में सहायक होते हैं (आईपीसीसी, 2023)।

इसके अतिरिक्त, उत्तराखण्ड में अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ कृषि गतिविधियाँ अब भी अपेक्षाकृत कम व्यावसायिक दबाव के अंतर्गत संचालित होती हैं। इस कारण भूमि की उत्पादन क्षमता और पारिस्थितिक संतुलन पर अत्यधिक दोहन का प्रभाव सीमित रहा है। यह स्थिति जैविक प्रमाणन और जैविक रूपांतरण की प्रक्रिया को अपेक्षाकृत सरल बनाती है, क्योंकि कई क्षेत्रों में कृषि पहले से ही कम–इनपुट एवं प्रकृति–आधारित स्वरूप में संचालित हो रही है।

समृद्ध जैव विविधताः उत्तराखण्ड में आज भी कई स्थानीय कृषि प्रणालियाँ और फसल प्रजातियाँ सुरक्षित हैं। उत्तराखण्ड की प्रमुख पारंपरिक फसलों में मंडुवा (रागी), झंगोरा (बर्नयार्ड मिलेट), चौलाई (रामदाना), गहत, काला भट्ट, मुनस्यारी की सफेद राजमा तथा उत्तराखण्ड लाल चावल को भौगोलिक संकेतक टैग प्राप्त है। इसके अतिरिक्त जखिया, ओगल तथा अन्य स्थानीय धान एवं गेहूँ की किस्में अपनी विशिष्ट स्थानीय पहचान रखती हैं । ये फसलें स्थानीय जलवायु और मृदा के अनुरूप विकसित हुई हैं और प्रतिकूल पर्यावरणीय हालात में भी उत्पादन देने की क्षमता रखती हैं (राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण, 2023)। उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में अतीस, कुटकी, जटामांसी, काला जीरा, तेजपत्ता, चिरायता, अश्वगंधा, ब्राह्मी और कई सुगंधित घास की प्रजातियाँ पाई जाती हैं। आयुर्वेदिक, यूनानी तथा आधुनिक औषधि उद्योग इन पौधों का उपयोग करते हैं। राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड (2023), काफल, हिसालू, किल्मोड़ा, बेडू, मेहल, तिमला, मेहल और अन्य जंगली फल और पौधे स्थानीय लोगों के पोषण और आजीविका में योगदान देते हैं (राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड, 2023)। जैव विविधता संरक्षण का एक अच्छा उदाहरण उत्तराखण्ड की पारंपरिक कृषि प्रणालियाँ हैं, विशेषकर बारहनाजा प्रणाली। इस प्रणाली में एक ही खेत में कई प्रकार की फसलें उगाई जाती हैं, जिससे कीटों और रोगों का प्रकोप कम होता है, आनुवंशिक विविधता बनी रहती है और मृदा स्वास्थ्य में सुधार होता है (मैखुरी एवं सहलेखक, 1999)। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, भूमि उपयोग परिवर्तन तथा आधुनिक कृषि पद्धतियों के बढ़ते प्रभाव के कारण अनेक स्थानीय प्रजातियाँ विलुप्ति के खतरे का सामना कर रही हैं। ऐसे में जैविक कृषि स्थानीय फसलों, औषधीय पौधों और पारंपरिक कृषि तकनीक का संरक्षण करने के साथ–साथ पर्यावरण–अनुकूल उत्पादन प्रणाली भी प्रदान कर सकती है ।

पारंपरिक कृषि ज्ञानः उत्तराखण्ड के किसानों के पास पीढ़ियों से संचित विशाल पारंपरिक कृषि ज्ञान है, जो स्थानीय पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों के साथ काम करता है। बारहनाजा जैसी बहुफसली प्रणालियों, मिश्रित खेती, फसल चक्र, कृषि–वनीकरण

और पशुपालन आधारित कृषि यहाँ की प्रमुख विशेषताएँ हैं। किसान मृदा उर्वरता को बनाए रखने के लिए कम्पोस्ट, पत्तियों से बना खाद, गोबर की खाद और अन्य जैविक सामग्री का उपयोग करते हैं। साथ ही, स्थानीय बीजों का संरक्षण और वितरण कृषि जैव विविधता को बचाता है। जैविक कृषि के सिद्धांतों से मेल खाने के कारण यह पारंपरिक ज्ञान राज्य में जैविक खेती के विस्तार और सतत् कृषि विकास के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करता है (मैखुरी एवं सहलेखक, 1996)।

मोटे अनाजों की बढ़ती मांगः संयुक्त राष्ट्र द्वारा 2023 को "अंतरराष्ट्रीय मोटा अनाज वर्ष" घोषित किए जाने के बाद मोटे अनाजों की जागरूकता और मांग दुनिया भर में बढ़ी है। उत्तराखण्ड में पारंपरिक रूप से उगाए जाने वाले मंडुवा (रागी), झंगोरा (बर्नयार्ड मिलेट) और चौलाई अनाज प्रोटीन, आहार रेशा, कैल्शियम, आयरन और अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं। ये फसलें पर्वतीय क्षेत्रों में विशेष रूप से उपयुक्त हैं क्योंकि वे कम जल और कम संसाधनों में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती हैं। स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण जैविक मिलेट्स की मांग देश–विदेश में तेजी से बढ़ रही है। इससे उत्तराखण्ड के किसानों को बेहतर मूल्य, अधिक आय और स्थानीय कृषि अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के नए अवसर प्राप्त हो रहे हैं (एफएओ, 2023) ।

औषधीय एवं सुगंधित पौधों की संभावनाएँः उत्तराखण्ड में औषधीय एवं सुगंधित पौधों की बहुतायत है। राज्य में अश्वगंधा, कुटकी, जटामांसी, अतीस, चिरायता, काला जीरा, ब्राह्मी तथा सुगंधित पौधों जैसे लेमनग्रास, सिट्रोनेला, पामारोजा और मेंथा की खेती की व्यापक संभावनाएँ हैं। आयुर्वेद, हर्बल चिकित्सा, औषधि, प्राकृतिक सौंदर्य प्रसाधन और अरोमा क्षेत्र में जैविक कच्चे माल की मांग लगातार बढ़ रही है। इसके अलावा, इन फसलों का मूल्य संवर्धन, प्रसंस्करण और निर्यात करके किसानों को अधिक आय के अवसर भी मिल सकते हैं। पर्वतीय क्षेत्रों के किसानों की आजीविका को बढ़ाने के लिए ये फसलें कम जमीन पर अधिक आर्थिक लाभ दे सकती हैं (राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड, 2023)।

उच्च मूल्य प्राप्ति की संभावनाः वर्तमान समय में उपभोक्ताओं में स्वास्थ्य, पोषण और खाद्य सुरक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ने से जैविक उत्पादों की मांग लगातार बढ़ रही है। उत्तराखण्ड के जैविक मिलेट्स, राजमा, मसाले, फल, सब्जियाँ और औषधीय पौधे अपनी गुणवत्ता और विशिष्ट हिमालयी पहचान के कारण उच्च बाजार मूल्य प्राप्त कर सकते हैं। किसान अपने उत्पादों को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय बाजारों में प्रीमियम मूल्य पर बेच सकते हैं यदि उनके पास प्रभावी विपणन सुविधाएँ, जैविक प्रमाणन, ब्रांडिंग, प्रसंस्करण, पैकेजिंग और प्रसंस्करण की सुविधाएँ हैं। यह किसानों की आय को बढ़ा सकता है, ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत कर सकता है और कृषि को अधिक फायदेमंद और आकर्षक उद्यम बना सकता है (एपीडा, 2024) ।

जल, मृदा संरक्षण एवं जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलताः जैविक कृषि प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने की दिशा में एक प्रभावी एवं टिकाऊ कृषि प्रणाली मानी जाती है। इसमें जैविक खादों, फसल अवशेषों, मल्चिंग तथा विविध फसल प्रणालियों का उपयोग किया जाता है, जिससे मृदा की संरचना में सुधार होता है और उसकी जलधारण क्षमता बढ़ती है। जैविक कृषि मृदा में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ाकर उसे अधिक स्थिर और उपजाऊ बनाती है। कार्बनिक पदार्थ मिट्टी के कणों को बाँधने का कार्य करते हैं, जिससे कटाव कम होता है और भूमि की उत्पादकता लंबे समय तक बनी रहती है (एफएओ, 2022)। जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में भी जैविक कृषि का विशेष महत्व है। यह कृषि प्रणाली मृदा में कार्बन संचयन को बढ़ावा देती है, जिससे वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा कम करने में सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त, जैविक खेती में अपनाई जाने वाली बहुफसली एवं विविधीकृत कृषि प्रणालियाँ सूखा, अनियमित वर्षा, तापमान परिवर्तन तथा अन्य जलवायु संबंधी जोखिमों के प्रति अधिक सहनशील होती हैं (आईपीसीसी, 2023)।

जैविक राज्य बनने की प्रमुख चुनौतियाँ

यद्यपि उत्तराखण्ड में जैविक राज्य बनने की अपार संभावनाएँ विद्यमान हैं, तथापि इस लक्ष्य की प्राप्ति के मार्ग में अनेक संरचनात्मक, तकनीकी, आर्थिक तथा सामाजिक चुनौतियाँ भी मौजूद हैं। राज्य की भौगोलिक परिस्थितियाँ और पारंपरिक कृषि प्रणाली जैविक खेती के लिए अनुकूल अवश्य हैं, किन्तु केवल प्राकृतिक अनुकूलता पर्याप्त नहीं है। जैविक कृषि को व्यापक स्तर पर अपनाने तथा उसे आर्थिक रूप से व्यवहार्य बनाने के लिए अनेक बाधाओं का समाधान आवश्यक है (एपीडा, 2024)।

सबसे बड़ी चुनौती जैविक प्रमाणन की प्रक्रिया से संबंधित है। राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय बाजारों में जैविक उत्पादों को प्रीमियम मूल्य प्राप्त करने के लिए प्रमाणन आवश्यक होता है, किंतु इसकी प्रक्रिया जटिल, समयसाध्य और अपेक्षाकृत महंगी है। कई बार किसानों को प्रमाणन संबंधी तकनीकी जानकारी और दस्तावेजी प्रक्रियाओं की पर्याप्त जानकारी भी नहीं होती, जिससे वे जैविक उत्पादों का वास्तविक लाभ प्राप्त नहीं कर पाते। उत्पादन और उत्पादकता दूसरी महत्वपूर्ण चुनौती हैं। प्रारंभिक वर्षों में रासायनिक खेती से जैविक खेती की ओर बदलाव से फसल उत्पादन में कमी आ सकती है। यह स्थिति किसानों की आय को प्रभावित करती है, और बहुत से किसान आर्थिक खतरे के कारण जैविक खेती करने से बचते हैं (एफएओ, 2022)।

बाजार पहुँच की सीमाएँ और विपणन भी एक बड़ी समस्या हैं। उत्तराखण्ड के अधिकांश कृषि क्षेत्र दूरस्थ पर्वतीय क्षेत्रों में हैं, जहाँ से बड़े बाजारों तक उत्पादों को लाना मुश्किल और खर्चीला होता है। किसानों को अक्सर स्थानीय स्तर पर ही अपने उत्पाद बेचने पड़ते हैं, जहाँ जैविक और आम उत्पादों के मूल्य में पर्याप्त अंतर नहीं होता। किसानों की आय वृद्धि में बाधा डालने वाले अन्य कारकों में संगठित विपणन नेटवर्क, किसान उत्पादक संगठन, ब्रांडिंग और ई–कॉमर्स प्लेटफार्मों की सीमित उपलब्धता शामिल हैं (कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, 2024)।

राज्य में मूल्य संवर्धन, भंडारण और प्रसंस्करण सुविधाओं का अभाव भी जैविक कृषि के विकास को प्रभावित करता है। ठीक प्रसंस्करण और पैकेजिंग के अभाव में कई जैविक उत्पाद, विशेषकर फल, सब्जियाँ और औषधीय पौधे, कम मूल्य पर बिकते हैं। तकनीकी ज्ञान की कमी और प्रशिक्षण की कमी एक अन्य बड़ी चुनौती है। किसानों को जैव उर्वरकों, जैव कीटनाशकों, कम्पोस्ट निर्माण, कीट प्रबंधन और प्रमाणन प्रक्रियाओं के बारे में नियमित प्रशिक्षण और तकनीकी मार्गदर्शन की जरूरत है। वर्तमान में, विशेषज्ञ परामर्श और विस्तार सेवाओं की सीमित उपलब्धता इस दिशा में बाधा डालती है।

छोटे एवं बिखरे हुए कृषि जोत भी उत्तराखण्ड की कृषि की एक प्रमुख विशेषता और चुनौती हैं। अधिकांश किसानों के पास बहुत कम भूमि है, जो अलग–अलग स्थानों पर बिखरी हुई होती है। इससे उत्पादन, संग्रहण, प्रसंस्करण और विपणन की लागत बढ़ जाती है तथा बड़े पैमाने पर जैविक उत्पादों की आपूर्ति करना कठिन हो जाता है।

इसके अतिरिक्त, जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक आपदाएँ भी जैविक कृषि के लिए गंभीर चुनौती प्रस्तुत करती हैं। अनियमित वर्षा, सूखा, अतिवृष्टि, भूस्खलन, बादल फटना तथा तापमान में परिवर्तन जैसी घटनाएँ कृषि उत्पादन को प्रभावित कर रही हैं। पर्वतीय क्षेत्रों की संवेदनशील पारिस्थितिकी इन प्रभावों के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील है, जिससे किसानों की उत्पादन क्षमता और आय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है (आईपीसीसी, 2023)।

श्रम की कमी और ग्रामीण पलायन दो बड़े सामाजिक मुद्दों हैं। शिक्षा और नौकरी के बेहतर अवसरों की तलाश में युवा शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन कर रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप कृषि कार्यों के लिए श्रम की उपलब्धता कम हो रही है और बहुत सी कृषि भूमि बेकार छोड़ दी जाती है।

उत्तराखण्ड को पूर्ण जैविक राज्य बनाने के लिए केवल कृषि क्षेत्र में परिवर्तन पर्याप्त नहीं होगा, बल्कि प्रमाणन, अनुसंधान, प्रशिक्षण, आधारभूत संरचना, बाजार विकास, मूल्य संवर्धन तथा नीति समर्थन को एकीकृत रूप से सुदृढ़ करना होगा। सरकार, कृषि विश्वविद्यालयों, अनुसंधान संस्थानों, किसान संगठनों तथा निजी क्षेत्र के समन्वित प्रयासों से ही इन चुनौतियों का समाधान संभव है। तभी उत्तराखण्ड अपनी प्राकृतिक क्षमता का पूर्ण उपयोग करते हुए एक सफल, टिकाऊ और आर्थिक रूप से सशक्त जैविक राज्य के रूप में स्थापित हो सकेगा ।

प्रयास और पहल

उत्तराखण्ड को जैविक कृषि के क्षेत्र में अग्रणी राज्य के रूप में विकसित करने के लिए केंद्र एवं राज्य सरकार द्वारा अनेक महत्वपूर्ण प्रयास किए गए हैं। राज्य की पर्वतीय भौगोलिक परिस्थितियों, पारंपरिक कृषि प्रणालियों तथा कम रासायनिक आदानों पर आधारित खेती को ध्यान में रखते हुए जैविक कृषि को सतत् विकास, पर्यावरण संरक्षण और किसानों की आय वृद्धि के प्रभावी माध्यम के रूप में प्रोत्साहित किया जा रहा है। सरकार का उद्देश्य केवल जैविक उत्पादन बढ़ाना नहीं, बल्कि उत्पादन से लेकर प्रमाणन, प्रसंस्करण, ब्रांडिंग और विपणन तक संपूर्ण मूल्य श्रृंखला को सुदृढ़ बनाना है।

उत्तराखण्ड सरकार ने अपनी कृषि विकास नीतियों में जैविक कृषि को विशेष प्राथमिकता प्रदान की है। पर्वतीय क्षेत्रों में रासायनिक कृषि की सीमाओं और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की आवश्यकता को देखते हुए जैविक खेती को कृषि विकास की दीर्घकालिक रणनीति का महत्वपूर्ण हिस्सा बनाया गया है। इसी दिशा में केंद्र सरकार की परंपरागत कृषि विकास योजना राज्य में जैविक कृषि को बढ़ावा देने की प्रमुख योजनाओं में से एक है (कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, 2024)। इस योजना के अंतर्गत किसानों के समूहों एवं क्लस्टरों का गठन कर उन्हें जैविक खेती अपनाने के लिए वित्तीय सहायता, प्रशिक्षण, तकनीकी मार्गदर्शन तथा प्रमाणन संबंधी सहयोग प्रदान किया जाता है। क्लस्टर आधारित दृष्टिकोण के माध्यम से उत्पादन और विपणन को अधिक व्यवस्थित बनाने का प्रयास किया गया है।

जैविक उत्पादों के प्रमाणन की लागत और जटिलता को कम करने के लिए भागीदारी गारंटी प्रणाली (च्ळै) को भी प्रोत्साहित किया गया है (एपीडा, 2024)। यह प्रणाली विशेष रूप से छोटे और सीमांत किसानों के लिए लाभकारी है, क्योंकि इसके माध्यम से वे कम लागत में जैविक प्रमाणन प्राप्त कर अपने उत्पादों को जैविक उत्पाद के रूप में बाजार में प्रस्तुत कर सकते हैं। इससे किसानों को बेहतर मूल्य प्राप्त करने के अवसर बढ़े हैं और जैविक खेती के प्रति उनकी रुचि में वृद्धि हुई है।

किसानों की तकनीकी क्षमता बढ़ाने के लिए कृषि विभाग, कृषि विज्ञान केंद्रों, विश्वविद्यालयों तथा विभिन्न विकास संस्थाओं द्वारा नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं (भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, 2023)। इन कार्यक्रमों के माध्यम से किसानों को जैविक खाद निर्माण, वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन, जैव उर्वरकों एवं जैव कीटनाशकों के उपयोग, फसल विविधीकरण, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन तथा जैविक प्रमाणन प्रक्रियाओं की जानकारी प्रदान की जाती है। इससे किसानों को आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान और पारंपरिक कृषि अनुभवों के समन्वय का अवसर प्राप्त होता है।

राज्य सरकार ने जैविक कृषि को स्थानीय संसाधनों और पारंपरिक फसलों से जोड़ने पर भी विशेष बल दिया है। मंडुवा, झंगोरा, चौलाई, राजमा, गहत और भट्ट जैसी पारंपरिक फसलों के उत्पादन और विपणन को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र द्वारा वर्ष 2023 को अंतरराष्ट्रीय मोटा अनाज वर्ष घोषित किए जाने के बाद राज्य में मिलेट्स के उत्पादन और प्रसार को विशेष प्रोत्साहन मिला है (एफएओ, 2023)। इसके अतिरिक्त, औषधीय एवं सुगंधित पौधों जैसे अश्वगंधा, कुटकी, जटामांसी, लेमनग्रास और पामारोजा की खेती को बढ़ावा देने के लिए भी तकनीकी एवं वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जा रही है।

जैविक उत्पादों के प्रभावी विपणन हेतु किसान उत्पादक संगठनों, सहकारी समितियों तथा स्वयं सहायता समूहों को मजबूत करने के प्रयास किए गए हैं (कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, 2024)। इन संगठनों के माध्यम से किसानों को सामूहिक उत्पादन, संग्रहण, प्रसंस्करण और विपणन की सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं, जिससे उनकी बाजार तक पहुँच बेहतर होती है और उन्हें उत्पादों का उचित मूल्य प्राप्त होता है। साथ ही, जैविक उत्पादों की ब्रांडिंग, पैकेजिंग और मूल्य संवर्धन पर भी ध्यान दिया जा रहा है ताकि राज्य के उत्पाद राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय बाजारों में प्रतिस्पर्धी बन सकें।

अनुसंधान एवं विकास के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण पहल की गई हैं। कृषि विश्वविद्यालयों, अनुसंधान संस्थानों तथा कृषि विज्ञान केंद्रों द्वारा जैविक कृषि, मृदा स्वास्थ्य, जैव उर्वरकों, जैव कीटनाशकों, स्थानीय फसल किस्मों के संरक्षण तथा जलवायु–अनुकूल कृषि तकनीकों पर अनुसंधान कार्य किए जा रहे हैं। इन अनुसंधानों से प्राप्त निष्कर्षों को किसानों तक पहुँचाने का प्रयास किया जा रहा है, जिससे जैविक कृषि को अधिक वैज्ञानिक और प्रभावी बनाया जा सके (भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, 2023)।

इन सभी प्रयासों के बावजूद प्रमाणन, विपणन, प्रसंस्करण, परिवहन और बाजार संपर्क से संबंधित चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं। फिर भी सरकार द्वारा संचालित योजनाएँ और कार्यक्रम उत्तराखण्ड में जैविक कृषि के विस्तार के लिए एक मजबूत आधार तैयार कर रहे हैं। यदि इन पहलों को प्रभावी क्रियान्वयन, पर्याप्त वित्तीय सहायता तथा किसानों की सक्रिय भागीदारी के साथ आगे बढ़ाया जाए, तो उत्तराखण्ड को एक सफल, टिकाऊ और आर्थिक रूप से सशक्त जैविक राज्य के रूप में स्थापित किया जा सकता है।

सफल उदाहरण एवं अध्ययन

उत्तराखण्ड में अनेक स्थानों पर जैविक खेती के सफल उदाहरण देखने को मिलते हैं। कुछ किसानों ने स्थानीय अनाजों, मंडुवा, झंगोरा, राजमा, हल्दी, अदरक, सब्जियों और औषधीय पौधों की खेती से अच्छा बाजार पाया है। महिला समूहों द्वारा वर्मी कम्पोस्ट, हर्बल उत्पाद, मसाले और स्थानीय प्रसंस्कृत वस्तुओं का निर्माण भी उत्साहजनक है। कुछ क्षेत्रों में जैविक क्लस्टर और किसान समूहों ने सामूहिक प्रमाणन और विपणन की दिशा में कार्य किया है (एपीडा, 2024; ग्रामीण विकास विभाग 2025; कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय 2023) ।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि जैविक कृषि सफल हो सकती है, बशर्ते उसे सामुदायिक, तकनीकी और बाज़ार–संलग्न समर्थन मिले। जिन स्थानों पर किसानों को प्रशिक्षण, गुणवत्ता नियंत्रण, पैकेजिंग, परिवहन और बिक्री का भरोसा मिला है, वहाँ जैविक मॉडल अपेक्षाकृत टिकाऊ सिद्ध हुआ है। इसलिए राज्य स्तर पर सफल मॉडलों का दस्तावेजीकरण और विस्तार आवश्यक है।

उत्तराखण्ड में जैविक कृषि को सुदृढ़ बनाने हेतु रणनीतियाँ

उत्तराखण्ड को वास्तविक अर्थों में जैविक राज्य के रूप में स्थापित करने के लिए बहुआयामी एवं क्षेत्र–विशिष्ट रणनीतियों को अपनाना आवश्यक है। राज्य की भौगोलिक एवं कृषि–जलवायु विविधता को ध्यान में रखते हुए पहाड़ी, मध्यवर्ती तथा तराई क्षेत्रों के लिए पृथक–पृथक फसल–आधारित जैविक कृषि मॉडल एवं उपयुक्त जैविक पैकेज विकसित किए जाने चाहिए। किसानों की क्षमता संवर्धन के लिए उन्हें जैविक खाद निर्माण, गुणवत्तापूर्ण बीज उत्पादन एवं संरक्षण, जैविक कीट एवं रोग प्रबंधन तथा मृदा

स्वास्थ्य संरक्षण संबंधी तकनीकों का नियमित प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए। इसके साथ ही स्थानीय बीज बैंक, जैविक आदानों की उत्पादन इकाइयाँ, वर्मी कम्पोस्ट इकाइयाँ तथा सामुदायिक कम्पोस्ट केंद्रों की स्थापना कर आवश्यक संसाधनों की स्थानीय स्तर पर उपलब्धता सुनिश्चित की जानी चाहिए। जैविक प्रमाणन प्रक्रिया को सरल, पारदर्शी एवं सुलभ बनाते हुए किसानों की भागीदारी को बढ़ावा देना आवश्यक है। जैविक उत्पादों के प्रभावी विपणन हेतु ई–कॉमर्स प्लेटफॉर्म, स्थानीय हाट–बाजार, पर्यटन आधारित बाजार, सहकारी विपणन प्रणाली तथा क्षेत्रीय ब्रांडिंग को सुदृढ़ किया जाना चाहिए। साथ ही, कृषि प्रसंस्करण इकाइयों के विकास के माध्यम से उत्पादों की शेल्फ लाइफ एवं मूल्य संवर्धन को बढ़ावा दिया जा सकता है। महिला स्वयं सहायता समूहों तथा युवा उद्यमियों को विशेष प्रोत्साहन प्रदान कर जैविक कृषि को ग्रामीण रोजगार एवं उद्यमिता से जोड़ा जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, जैविक कृषि का एकीकरण पर्यटन, औषधीय एवं सुगंधित पौधों की खेती, पारंपरिक पर्वतीय खाद्य प्रणालियों तथा स्थानीय सांस्कृतिक विरासत के साथ किया जाना चाहिए, जिससे कृषि की आर्थिक व्यवहार्यता और आकर्षण दोनों में वृद्धि हो। फसलों को वन्यजीवों से होने वाली क्षति को कम करने के लिए प्रभावी वन्यजीव प्रबंधन एवं खेत सुरक्षा उपायों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। अंततः, वैज्ञानिक संस्थानों, विश्वविद्यालयों, कृषि विभागों, गैर–सरकारी संगठनों तथा स्थानीय समुदायों के मध्य सुदृढ़ समन्वय एवं साझेदारी स्थापित कर जैविक कृषि के सतत एवं समावेशी विकास का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है।

भविष्य की संभावनाएँ

वर्तमान समय में स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता, स्थानीय एवं पारंपरिक खाद्य पदार्थों की बढ़ती मांग, पर्यावरण संरक्षण के प्रति संवेदनशीलता तथा सतत विकास की वैश्विक अवधारणा ने जैविक उत्पादों के लिए एक अनुकूल बाजार और सामाजिक वातावरण तैयार किया है (एपीडा, 2024; एफएओ, 2024)। ऐसी परिस्थितियों में यदि उत्तराखण्ड अपने विशिष्ट पर्वतीय अनाजों, मसालों, औषधीय एवं सुगंधित पौधों, फलों तथा मूल्यवर्धित प्रसंस्कृत उत्पादों को प्रमाणित जैविक पहचान और प्रभावी ब्रांडिंग के साथ राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय बाजारों में स्थापित करने में सफल होता है, तो यह न केवल राज्य की कृषि अर्थव्यवस्था को नई दिशा देगा, बल्कि उसकी आर्थिक एवं सामाजिक पहचान को भी सुदृढ़ करेगा (एपीडा, 2024; उत्तराखण्ड कृषि विभाग, 2016)। भविष्य की दृष्टि से जैविक कृषि को केवल उत्पादन प्रणाली के रूप में नहीं, बल्कि एक समग्र ग्रामीण विकास मॉडल के रूप में विकसित करने की आवश्यकता है, जिसमें डिजिटल विपणन, उत्पाद ट्रेसबिलिटी, कृषि–पर्यटन, जलवायु–स्मार्ट कृषि पद्धतियाँ, सामुदायिक प्रसंस्करण, मूल्य श्रृंखला विकास तथा ग्रामीण उद्यमिता जैसे आयामों का समावेश हो (एफएओ, 2024; यूएनइपी 2024)। इन पहलों के माध्यम से उत्तराखण्ड जैविक नवाचार, हरित उद्यमिता तथा सतत पर्वतीय विकास का एक अग्रणी केंद्र बन सकता है। तथापि, इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि सरकारी नीतियाँ केवल घोषणाओं तक सीमित न रहें, बल्कि उनके प्रभावी क्रियान्वयन में स्थानीय समुदायों, किसानों, महिला समूहों, युवा उद्यमियों, अनुसंधान संस्थानों तथा अन्य हितधारकों की सक्रिय एवं सार्थक भागीदारी सुनिश्चित की जाए, जिससे जैविक कृषि राज्य के समावेशी, आत्मनिर्भर और दीर्घकालिक विकास का सशक्त आधार बन सके (एफएओ, 2024; उत्तराखण्ड कृषि विभाग, 2016)।

निष्कर्ष

उत्तराखण्ड को जैविक राज्य के रूप में विकसित करने की परिकल्पना यथार्थसंगत, आवश्यक और दूरदर्शी है। राज्य की भौगोलिक सीमाएँ, पारंपरिक कृषि विरासत, कम रासायनिक उपयोग, समृद्ध जैव विविधता और पर्यावरणीय संवेदनशीलता इसे जैविक कृषि के लिए अत्यंत उपयुक्त बनाती हैं। जैविक कृषि यहाँ केवल उत्पादन की विधि नहीं, बल्कि आजीविका, पर्यावरण संरक्षण, सांस्कृतिक पहचान और ग्रामीण पुनर्जागरण का माध्यम बन सकती है।

फिर भी, यह भी स्पष्ट है कि जैविक राज्य का लक्ष्य केवल नारे से प्राप्त नहीं होगा। इसके लिए मजबूत नीतिगत समर्थन, वैज्ञानिक प्रशिक्षण, प्रमाणन व्यवस्था, मूल्य संवर्धन, बाजार संपर्क, अवसंरचना विकास और समुदाय की सक्रिय भागीदारी आवश्यक है। यदि राज्य इन सभी पक्षों को समन्वित रूप से आगे बढ़ाता है, तो उत्तराखण्ड निस्संदेह जैविक कृषि का आदर्श मॉडल बन सकता है। ऐसा मॉडल न केवल राज्य के किसानों को लाभ पहुँचाएगा, बल्कि हिमालयी पारिस्थितिकी के संरक्षण, सतत विकास और आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित भविष्य की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण कदम सिद्ध होगा।

संदर्भ सूची

पडलिया, की., त्रिपाठी एम, जुयाल पी. (2026) सॉयल माइक्रोबियल बायोमासः अ प्रॉमिसिंग बायोइंडिकेटर फॉर असेसिंग सॉयल फर्टिलिटी इन द इंडियन हिमालयन माउंटेनस इकोसिस्टम। करंट ओपिनियन इन एनवायरनमेंटल सस्टेनेबिलिटी 83: 101690

उत्तराखंड जैव विविधता बोर्ड. (2025). उत्तराखंड सरकार ।

ग्रामीण विकास विभाग, उत्तराखण्ड शासन. (2025). सक्सेस स्टोरीज़ (महिला स्वयं सहायता समूह एवं आजीविका मॉडल)

एपीडा. (2024). राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम. नई दिल्ली।

फूड एंड एग्रीकल्चर ऑर्गेनाइजेशन ऑफ द यूनाइटेड नेशन्स. (2024). ऑर्गेनिक एग्रीकल्चर इन उत्तराखण्डः ए ग्रीन सोल्यूशन फॉर माउंटेन एग्रीकल्चर. रीजनल रिपोर्ट.

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय. (2024). परंपरागत कृषि विकास योजना (च्झ्नटल) दिशा–निर्देश. नई दिल्ली।

उत्तराखण्ड कृषि विभाग. (2024). वार्षिक प्रतिवेदन. देहरादून।

सिंह, एस., और गुप्ता, जे. पी. (2024). ऑर्गेनिक एग्रीकल्चर इन उत्तराखण्डः प्रोग्रेस, पोटेंशियल, एंड पॉलिसी पर्सपेक्टिव्स। जर्नल ऑफ माउंटेन रिसर्च, 19(2

पडलिया, की., त्रिपाठी एम, (2024) एग्रो–बायोडाइवर्सिटी ऑफ उत्तराखंड हिमालयाः नरचरिंग नेचर'स बाउंटी । हिम पर्यावरण, 37(2): 76–78

यूएनईपी (2024) यूनाइटेड नेशन्स एनवायरनमेंट प्रोग्राम. (2024). ऑर्गेनिक फार्मिंग एंड एग्रोफॉरेस्ट्री इन इंडियाः टीईईबीएग्रीफूड कंट्री इम्प्लीमेंटेशन.

राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण. (2023). वार्षिक प्रतिवेदन. चेन्नई।

राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड. (2023). औषधीय एवं सुगंधित पौधों पर वार्षिक प्रतिवेदन. नई दिल्ली।

एफएओ. (2023). अंतरराष्ट्रीय मोटा अनाज वर्ष 2023. रोम।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (प्ब्।त्). (2023). वार्षिक प्रतिवेदन. नई दिल्ली।

भारतीय वन सर्वेक्षण (2023). इंडिया स्टेट ऑफ फॉरेस्ट रिपोर्ट 2023. देहरादून।

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय. (2023). पीजीएस–इंडियाः परिचालन दिशा–निर्देश. भारत सरकार।

आईपीसीसी. (2023). जलवायु परिवर्तन 2023ः संश्लेषण प्रतिवेदन. जेनेवा।

एफएओ. (2022). द स्टेट ऑफ फूड एंड एग्रीकल्चर. रोम।

भारत सरकार. (2021). कृषि जनगणना 2015द्ध16 (चरण–2). कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय।

लाल, आर. (2020). साइल आर्गेनिक मटर एंड सस्टेनेबल एग्रीकल्चर. सी आर सी प्रेस ।

पडलिया, की., , बर्गली, कि., बर्गली एस. एस.(2017) प्रेज़ेंट सिनेरियो ऑफ एग्रीकल्चर एंड इट्स एलाइड ऑक्यूपेशन्स इन अ टाइपिकल हिल विलेज ऑफ सेंट्रल हिमालया, इंडिया। इंडियन जर्नल ऑफ एग्रीकल्चरल साइंसेज़, 87 (1): 132–141

मैखुरी, आर. के., राव, के. एस., सक्सेना, के. जी. और सेमवाल आर अल (1999). ट्रेडिशनल क्रॉप्स इन द सेंट्रल हिमालयाज। प्लांट जेनेटिक रिसोर्सेज नूस्लेटर , 120:1–7.

उत्तराखण्ड कृषि विभाग (2016). ऑर्गेनिक एंड नेचुरल फार्मिंग.

मैखुरी, आर. के., राव, के. एस., और सक्सेना, के. जी. (1996). ट्रेडिशनल क्रॉप डाइवर्सिटी फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेंट ऑफ़ सेंट्रल हिमालयन एग्रोईकोसिस्टम्स । इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ सस्टेनेबल डेवलपमेंट एंड वर्ल्ड इकोलॉजी, 3(3), 8–31.

प्राकृतिक एवं जैविक खेतीः नाजुक हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र की सुरक्षा का एक समाधान

बीना तिवारी फुलारा[1'], कृष्ण कुमार टम्टा[1], प्रीति पंत[1] , कीर्तिका पडलिया[2], पूजा जुयाल[2] और प्रभा बी. ढौंडियाल[2]

1 वानिकी और पर्यावरण विज्ञान विभाग, भौमिकी एवं पर्यावरण विज्ञान संकाय, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखंड 263139, भारत

2 वनस्पति विज्ञान विभाग, विज्ञान संकाय, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखंड 263139, भारत

Corresponding author==btewari@uou-ac-in

सारांश

हिमालय केवल एक पर्वत श्रृंखला नहीं है, बल्कि एक अत्यंत संवेदनशील और जीवंत प्राकृतिक तंत्र है, जो जल भंडारण, जलवायु नियंत्रण, जैव विविधता संरक्षण और लाखों लोगों की आजीविका का आधार है। इसकी तीव्र ढलानें, अस्थिर भूगर्भीय संरचना, पतली मृदा तथा तीव्र मानसूनी वर्षा इस क्षेत्र को पर्यावरणीय व्यवधानों, मृदा अपरदन और भूस्खलन के प्रति अत्यधिक संवेदनशील बनाती हैं। यह लेख इस बात का वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक परीक्षण करता है कि प्राकृतिक एवं जैविक कृषि पद्धतियाँ किस प्रकार रासायनिक अपवाह को रोककर, मृदा में जैविक पदार्थ का पुनर्निर्माण करके तथा जलधारण क्षमता बढ़ाकर संवेदनशील हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र के संरक्षण में सहायक हो सकती हैं।

लेख में सिक्किम, पूर्वी हिमालय, नेपाल, हिमाचल प्रदेश तथा पारंपरिक पर्वतीय कृषि प्रणालियों से प्राप्त अनुभवों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि केवल रासायनिक आदानों को हटा देना या बमतजपपिमक 'जैविक' लेबल प्राप्त कर लेना ही पूर्ण समाधान नहीं है। सिक्किम जैसे राज्यों के उदाहरण से जहाँ नीतिगत प्रतिबद्धता और व्यापक परिवर्तन के सकारात्मक परिणाम दिखे हैं, वहीं बाजार पहुँच, श्रम की कमी, कम आय और आपूर्ति श्रृंखला की चुनौतियाँ भी उजागर हुई हैं। यह अध्याय ढलान–विशिष्ट समोच्च खेती, सीढ़ीदार खेत, आच्छादन (मल्चिंग), दलहनी फसलों के समावेश, कृषि वानिकी, स्थानीय बीज संरक्षण और पशुधन के एकीकृत प्रबंधन से युक्त 'कृषि–पारिस्थितिकीय खेती' (Agroecological Farming) को इक्कीसवीं सदी में सतत हिमालयी विकास की मुख्य रणनीति के रूप में रेखांकित करता है।

मुख्य शब्दः हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र, प्राकृतिक एवं जैविक खेती, कृषि–पारिस्थितिकी, मृदा अपरदन नियंत्रण, कृषि वानिकी, जलवायु–सहिष्णुता, जैव विविधता संरक्षण।

प्रस्तावना

हिमालय केवल एक पर्वत श्रृंखला नहीं है। यह एक जीवंत प्राकृतिक तंत्र है, जो जल का भंडारण करता है, जलवायु को नियंत्रित करता है, असाधारण जैविक विविधता को संरक्षण प्रदान करता है तथा कृषि, पशुपालन, वनों, पर्यटन और व्यापार के माध्यम से लाखों लोगों की आजीविका का आधार है। इसकी तीव्र ढलानें, युवा एवं अस्थिर भूगर्भीय संरचना, तीव्र मानसूनी वर्षा, पतली मृदा तथा अत्यधिक विविध जलवायु इस क्षेत्र को उत्पादक तो बनाती हैं, लेकिन साथ ही इसे पर्यावरणीय व्यवधानों के प्रति अत्यंत संवेदनशील

भी बनाती हैं। किसी खेत की सीढ़ीनुमा कृषि भूमि पर लिया गया कृषि संबंधी निर्णय नीचे बहने वाली जलधारा को प्रभावित कर सकता है; इसी प्रकार मृदा प्रबंधन में किया गया परिवर्तन भूस्खलन के जोखिम, अवसादन, जल की गुणवत्ता तथा संपूर्ण जलग्रहण क्षेत्र की सहनशीलता को प्रभावित कर सकता है। (डाउन टू अर्थ. (2024), सीएबीआई.)

इसलिए कृषि एक ओर पर्यावरणीय दबाव का स्रोत है, तो दूसरी ओर संरक्षण का एक प्रभावी माध्यम भी हो सकती है। हिमालयी परिदृश्य के केवल एक छोटे भाग पर कृषि की जाती है, फिर भी कृषि भूमि मुख्यतः ढलानों, घाटियों के निचले भागों तथा मानव बस्तियों के आसपास केंद्रित होती है, जहाँ मृदा अपरदन और पोषक तत्वों की हानि गंभीर हो सकती है। इक्कीसवीं शताब्दी की प्रमुख चुनौती पर्वतीय क्षेत्रों से कृषि को समाप्त करना नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से ग्रामीण आजीविका प्रभावित होगी, बल्कि कृषि को हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र की पर्यावरणीय सीमाओं के अनुरूप बनाना है।(डाउन टू अर्थ. (2024), सीएबीआई.)

प्राकृतिक एवं जैविक खेती इस दिशा में एक महत्वपूर्ण मार्ग प्रस्तुत करती है। व्यापक रूप से देखें तो जैविक खेती में कृत्रिम उर्वरकों, कीटनाशकों, खरपतवारनाशकों तथा आनुवंशिक रूप से संशोधित उत्पादों के उपयोग से बचा जाता है और पारिस्थितिकीय प्रक्रियाओं, जैविक खादों, जैविक कीट प्रबंधन, फसल चक्र तथा विविधीकृत उत्पादन प्रणालियों पर निर्भरता रखी जाती है। प्राकृतिक खेती इससे संबंधित, लेकिन पूर्णतः समान नहीं, एक कृषि पद्धति है, जिसमें स्थानीय रूप से उपलब्ध जैविक आदानों, बाहरी संसाधनों पर न्यूनतम निर्भरता, मृदा आवरण, फसल विविधता, पशुपालन के एकीकरण तथा मृदा की प्राकृतिक प्रक्रियाओं के पुनर्जीवन पर विशेष बल दिया जाता है। हालांकि, इनमें से कोई भी पद्धति केवल अपने नाम के आधार पर स्थिरता की गारंटी नहीं देती। उदाहरण के लिए, किसी संवेदनशील ढलान पर प्रमाणित जैविक एकल फसल प्रणाली भी मृदा, जल अथवा जैव विविधता को नुकसान पहुँचा सकती है, यदि उसमें परिदृश्य आधारित प्रबंधन को ध्यान में नहीं रखा जाता। इसलिए अधिक उपयोगी लक्ष्य कृषि–पारिस्थितिकीय खेती हैकृअर्थात ऐसी उत्पादन प्रणालियाँ जो पर्वतीय पारिस्थितिकी के साथ सामंजस्य स्थापित करके कार्य करें, न कि उस पर नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास करें।(डाउन टू अर्थ. (2024), सीएबीआई.)

इस परिवर्तन की आवश्यकता पाँच परस्पर संबद्ध आधारों पर आधारित है। पहला, जैविक पदार्थ, पलवार, पौधों की जड़ें तथा वनस्पति मृदा अपरदन को कम करते हैं और जल धारण क्षमता में सुधार करते हैं। दूसरा, विविधीकृत कृषि प्रणालियाँ कृषि जैव विविधता के संरक्षण में सहायता करती हैं तथा किसी एक फसल अथवा बाहरी कृषि आदान पर निर्भरता को कम करती हैं। तीसरा, कृषि वानिकी तथा एकीकृत फसल–पशुधन प्रणालियाँ एक ही भूमि से खाद्य, चारा, ईंधन, आय तथा कार्बन संचयन जैसे अनेक लाभ प्रदान कर सकती हैं। चौथा, रासायनिक अपवाह में कमी आने से जलधाराओं, मृदा, परागणकर्ताओं तथा मानव स्वास्थ्य की सुरक्षा होती है। पाँचवाँ, स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप विकसित कृषि प्रणालियाँ जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के प्रति आजीविका की सहनशीलता को मजबूत कर सकती हैं। भारतीय तथा नेपाली हिमालय से प्राप्त प्रमाण इन सभी सिद्धांतों का समर्थन करते हैं, साथ ही यह भी दर्शाते हैं कि जैविक कृषि की ओर परिवर्तन के लिए बाजार व्यवस्था, बीज प्रणालियों, कृषि प्रसार सेवाओं, निगरानी तथा सार्वजनिक निवेश की आवश्यकता होती है।

यह लेख इस बात का परीक्षण करता है कि प्राकृतिक एवं जैविक खेती किस प्रकार संवेदनशील हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र के संरक्षण में सहायक हो सकती है। साथ ही, इसमें इस दृष्टिकोण की सीमाओं की पहचान की गई है तथा सिक्किम, पूर्वी हिमालय, नेपाल, हिमाचल प्रदेश और पारंपरिक पर्वतीय कृषि प्रणालियों से प्राप्त व्यावहारिक अनुभवों एवं महत्वपूर्ण सीखों को प्रस्तुत किया गया है।

हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्रः विशेषताएँ एवं संवेदनशीलता

हिमालय विश्व की सबसे युवा पर्वत श्रृंखलाओं में से एक है और यह पृथ्वी के कुछ अत्यंत संवेदनशील पारिस्थितिकी तंत्रों का आश्रय स्थल है। कवि इकबाल ने हिमालय को एक प्राकृतिक प्रयोगशाला के रूप में वर्णित किया है, जहाँ प्रकृति निरंतर रोचक प्रयोग करती रहती है तथा प्राकृतिक तत्वों के बीच परस्पर क्रियाएँ विभिन्न गति और स्तरों पर निरंतर संचालित होती रहती हैं। वैज्ञानिकों के लिए हिमालय अनुसंधान का एक अत्यंत आकर्षक क्षेत्र है, जो प्रकृति के अनेक रहस्यों को समझने और उजागर करने में सहायता करता है। प्राचीन काल से ही इन पर्वतों ने ऋषियों, संतों, यात्रियों और वैज्ञानिकों को आकर्षित किया है, जिन्होंने इसे ज्ञान, आत्मज्ञान, आध्यात्मिक शांति और बौद्धिक प्रेरणा के स्रोत के रूप में देखा है।

हिमालय की विशिष्ट भूवैज्ञानिक उत्पत्ति के परिणामस्वरूप यहाँ तीव्र ढलानें, अस्थिर भू–भाग, उथली मृदा तथा बार–बार होने वाले भूस्खलन पाए जाते हैं। ये विशेषताएँ इस क्षेत्र को पारिस्थितिकीय दृष्टि से अत्यंत संवेदनशील बनाती हैं तथा कृषि की स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण चुनौतियाँ उत्पन्न करती हैं। हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र ऊँचाई, जलवायु, वर्षा और वनस्पति में व्यापक विविधता के कारण उल्लेखनीय पारिस्थितिक विविधता से परिपूर्ण है। इसकी प्रमुख पारिस्थितिक विशेषताओं में समृद्ध जैव विविधता, विस्तृत वन क्षेत्र, अल्पाइन पारिस्थितिकी तंत्र, हिम एवं हिमनदों से पोषित नदियाँ, हिमनदीय झीलें, पर्वतीय आर्द्रभूमियाँ तथा पारंपरिक कृषि–पारिस्थितिकी तंत्र शामिल हैं। विस्तृत हिमालयी क्षेत्र विश्व स्तर पर महत्वपूर्ण जैव विविधता क्षेत्रों से भी संबंधित है, जो इसके अत्यधिक पारिस्थितिक महत्व को दर्शाता है।

प्रमुख पर्यावरणीय खतरे

अपनी समृद्ध पारिस्थितिकीय विशेषताओं के बावजूद, हिमालयी क्षेत्र अनेक परस्पर संबद्ध पर्यावरणीय खतरों का सामना कर रहा है। जलवायु परिवर्तन इनमें से सबसे महत्वपूर्ण चुनौतियों में से एक है, क्योंकि हिमालयी क्षेत्र में तापमान तेजी से बढ़ रहा है और इसका प्रभाव प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्रों तथा कृषि प्रणालियों दोनों पर पड़ रहा है। इसके प्रमुख परिणामों में हिमनदों का पीछे हटना, हिम आवरण में कमी, वर्षा के प्रतिरूपों में परिवर्तन, आकस्मिक बाढ़, बादल फटना तथा लंबे समय तक सूखे की परिस्थितियाँ शामिल हैं। इन परिवर्तनों के कारण जल की उपलब्धता और कृषि उत्पादन में अनिश्चितता लगातार बढ़ रही है।

मृदा क्षरण एक अन्य प्रमुख चिंता का विषय है, क्योंकि पर्वतीय क्षेत्रों की मृदा तीव्र ढलानों और संवेदनशील भूवैज्ञानिक परिस्थितियों के कारण अपरदन के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती है। सघन कृषि, वनों की कटाई, रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग, अतिचारण तथा सड़क निर्माण जैसी गतिविधियाँ मृदा अपरदन और पोषक तत्वों की हानि को और अधिक तीव्र करती हैं। मृदा संसाधनों का क्षरण अंततः कृषि उत्पादकता तथा ढलानों की स्थिरता को प्रभावित करता है।

जैव विविधता का ह्रास भी एक गंभीर पर्यावरणीय चिंता के रूप में उभरकर सामने आया है। आवासों का विखंडन तथा रासायनिक पदार्थों पर आधारित गहन कृषि पद्धतियों के कारण परागणकर्ताओं, केंचुओं, मृदा सूक्ष्मजीवों, स्थानीय फसल किस्मों तथा लाभकारी कीटों की संख्या में कमी आई है। इन जीवों की हानि से पारिस्थितिक संतुलन प्रभावित हो सकता है तथा परागण, पोषक तत्वों का चक्रण और मृदा उर्वरता जैसी महत्वपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँ कमजोर हो सकती हैं।

हिमालयी क्षेत्र में जल की कमी भी लगातार एक महत्वपूर्ण समस्या बनती जा रही है, विशेष रूप से प्राकृतिक स्रोतों और झरनों के जल प्रवाह में कमी के कारण। वन क्षरण, जलवायु परिवर्तन, मृदा का संघनन तथा भूजल स्तर में कमी जल की उपलब्धता को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों में शामिल हैं। चूँकि पर्वतीय समुदाय घरेलू उपयोग और कृषि के लिए मुख्य रूप से प्राकृतिक स्रोतों, झरनों तथा छोटे जल

स्रोतों पर निर्भर रहते हैं, इसलिए जल संसाधनों में कमी आजीविका और खाद्य सुरक्षा के लिए प्रत्यक्ष खतरा उत्पन्न करती है।

समग्र रूप से, हिमालयी क्षेत्र की प्रमुख पर्यावरणीय चुनौतियों में तीव्र ढलानों और सघन कृषि के कारण होने वाला मृदा अपरदन तथा उससे होने वाली पोषक तत्वों की हानि शामिल है। वनों की कटाई और प्राकृतिक आवासों के विनाश से भूस्खलन की घटनाएँ बढ़ती हैं। वैश्विक तापवृद्धि के कारण हिमनदों के पीछे हटने से जल असुरक्षा उत्पन्न हो रही है। आवासों के विखंडन के कारण जैव विविधता में कमी आ रही है, जिससे पारिस्थितिक संतुलन प्रभावित होता है। इसके अतिरिक्त, रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से होने वाला जल प्रदूषण जल की गुणवत्ता में गिरावट का कारण बन रहा है।

इसके साथ ही, बढ़ते ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन के कारण जलवायु में बढ़ती परिवर्तनशीलता कृषि तथा ग्रामीण आजीविका के लिए अत्यधिक अनिश्चितता उत्पन्न करती है। ये सभी परस्पर संबद्ध चुनौतियाँ इस संवेदनशील हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र में कृषि एवं प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन के लिए टिकाऊ, पर्यावरण–अनुकूल तथा पारिस्थितिकीय रूप से उपयुक्त दृष्टिकोण अपनाने की तत्काल आवश्यकता को स्पष्ट रूप से रेखांकित करती हैं।

यह क्षेत्र पर्यावरण की दृष्टि से काफी संवेदनशील है। यहाँ जमीन की ढलान अधिक है, मिट्टी की परत पतली है और बारिश कम समय में बहुत तेज होती है। जब पेड़–पौधों का आवरण हटा दिया जाता है या मिट्टी को खुला छोड़ दिया जाता है, तो बारिश का पानी जमीन में जाने के बजाय तेजी से बहने लगता है। तेजी से बहता हुआ पानी मिट्टी के छोटे कणों और पोषक तत्वों को अपने साथ बहाकर ढलान की ओर ले जाता है। इससे नदियों, नालों और जलधाराओं में मिट्टी और गाद जमा हो जाती है। इसका असर खेती पर भी पड़ता है और कृषि भूमि की उपज कम होने लगती है। इसलिए, जिस कृषि भूमि पर बार–बार जुताई की जाती है और जिसे बारिश के समय खुला छोड़ दिया जाता है, वहाँ मिट्टी का कटाव अधिक हो सकता है। ऐसी स्थिति में जमीन बारिश के पानी को सोखने के बजाय पानी के तेज बहाव और मिट्टी के कटाव का कारण बनती है (डाउन टू अर्थ, 2024; सीबीआई)।

सिक्किम में किए गए एक जलग्रहण क्षेत्र अध्ययन में पाया गया कि खुले कृषि क्षेत्रों से सतही प्रवाह, मृदा हानि और पोषक तत्वों की हानि अन्य भूमि उपयोगों की तुलना में कहीं अधिक थी। अध्ययन में होने वाली कुल पोषक तत्व हानि का 72 प्रतिशत से अधिक भाग कृषि भूमि उपयोग के कारण था। वनों तथा बड़ी इलायची आधारित कृषि वानिकी प्रणालियों में मृदा संरक्षण अधिक प्रभावी पाया गया, जबकि सीढ़ीनुमा खेतों के किनारों पर झाड़ू घास, नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले एल्बिज़िया वृक्ष तथा बागवानी वृक्षों के उपयोग से मृदा हानि में लगभग 22 प्रतिशत की कमी देखी गई (प्रताप, टी. (2020)।

इस निष्कर्ष का अर्थ यह नहीं है कि कृषि स्वाभाविक रूप से विनाशकारी है। यह दर्शाता है कि कृषि की पारिस्थितिकीय संरचनाकृअर्थात भूमि खुली है या वनस्पति से ढकी हुई, कृषि वार्षिक फसलों पर आधारित है या बहुवर्षीय फसलों पर, तथा प्रणाली सरल है या विविधीकृतकृउसके पर्यावरणीय प्रभाव को काफी हद तक निर्धारित करती है।

यह क्षेत्र तीव्र जलवायु एवं सामाजिक परिवर्तनों के प्रभावों का भी सामना कर रहा है। जलवायु–सहिष्णु पर्वतीय कृषि पर किए गए एक अध्ययन में भारतीय हिमालयी उच्चभूमियों में जनसंख्या वृद्धि और प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन के कारण पारिस्थितिकीय एवं सामाजिक परिवर्तन होने का उल्लेख किया गया है। अध्ययन में बताया गया कि समीक्षा अवधि के दौरान पर्वतीय क्षेत्रों में तापमान वैश्विक औसत की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ा तथा मृदा उर्वरता में कमी, वन संरचना में परिवर्तन, नए कीट एवं रोगों का प्रकोप तथा प्राकृतिक एवं मौसम संबंधी आपदाएँ खाद्य एवं चारा सुरक्षा के लिए प्रमुख खतरे हैं (शर्मा, जी. (2026))।

वर्तमान जलवायु संबंधी जोखिमों में अनियमित वर्षा, अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में तापमान वृद्धि, सूखे की अवधि, अत्यधिक वर्षा, ऋतुओं के समय में परिवर्तन, हिमनद एवं हिम आवरण में बदलाव तथा नए पारिस्थितिकीय क्षेत्रों में कीटों का प्रसार शामिल है।

कृषि का वनों के साथ भी गहरा संबंध है। अनेक पर्वतीय गाँवों में कृषि भूमि, वन, पशुधन और जल स्रोत मिलकर एक एकीकृत आजीविका प्रणाली का निर्माण करते हैं। किसान आसपास की वनस्पति से पत्ती कूड़ा, चारा, ईंधन लकड़ी और खाद बनाने की सामग्री प्राप्त करते हैं। पशुधन जैविक पदार्थ को गोबर एवं खाद में परिवर्तित करता है, वृक्ष सीढ़ीनुमा खेतों के किनारों को स्थिरता प्रदान करते हैं तथा फसल अवशेष पशुओं के चारे के रूप में उपयोग किए जाते हैं या पुनः मृदा में मिलाकर उसकी उर्वरता बढ़ाई जाती है। जब इस प्रणाली का कोई एक घटककृजैसे स्थानीय पशु नस्लें, देशी बीज या बहुउद्देशीय वृक्षकृ समाप्त हो जाता है, तो संपूर्ण कृषि प्रणाली खरीदे गए बाहरी आदानों पर अधिक निर्भर हो सकती है।

हिमालय पर्वत श्रृंखला लगभग 2,400 किलोमीटर तक फैली हुई है और आठ देशों में विस्तृत है। इसका कुल क्षेत्रफल लगभग 6 करोड़ हेक्टेयर है। हिमालय को विश्व स्तर पर सबसे समृद्ध जैव विविधता हॉटस्पॉट क्षेत्रों में से एक माना जाता है। यहाँ उपोष्णकटिबंधीय वनों से लेकर अल्पाइन घास के मैदानों तथा स्थायी हिम क्षेत्रों तक अत्यंत विविध पारिस्थितिकी तंत्र पाए जाते हैं। हिमालयी क्षेत्र में लगभग 10,000 वनस्पति प्रजातियाँ, सैकड़ों स्तनधारी प्रजातियाँ, हजारों कीट प्रजातियाँ तथा अनेक स्थानिक वनस्पति एवं जीव–जंतु पाए जाते हैं।

पारिस्थितिकीय महत्व के अतिरिक्त हिमालय उन लाखों लोगों को आवश्यक पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँ प्रदान करता है, जो इसके निचले क्षेत्रों में निवास करते हैं। गंगा, ब्रह्मपुत्र और सिंधु सहित एशिया की कई प्रमुख नदियों का उद्गम हिमालयी हिमनदों एवं हिम क्षेत्रों से होता है। ये नदियाँ विश्व की लगभग एक–चौथाई जनसंख्या को मीठे जल की आपूर्ति करती हैं।

अपने अत्यधिक पारिस्थितिकीय महत्व के बावजूद हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र निम्नलिखित कारणों से अत्यंत संवेदनशील हैः तीव्र पर्वतीय ढलानें, युवा एवं अस्थिर भूवैज्ञानिक संरचनाएँ, उच्च भूकंपीय गतिविधियाँ, अनियमित एवं अस्थिर वर्षा, हिमनदों की संवेदनशीलता, जलवायु परिवर्तनशीलता, सीमित कृषि योग्य भूमि, बढ़ता हुआ मानवजनित दबाव

हिमालयी ग्रामीण क्षेत्रों में 60 प्रतिशत से अधिक परिवारों के लिए कृषि आज भी आजीविका का प्रमुख साधन है। हालांकि, पिछले कुछ दशकों में कृषि के आधुनिकीकरण के कारण कृत्रिम उर्वरकों, कीटनाशकों, खरपतवारनाशकों तथा एकल फसल प्रणालियों पर निर्भरता बढ़ी है। यद्यपि इन पद्धतियों से प्रारंभिक चरण में फसल उत्पादन में वृद्धि हुई, लेकिन इनके कारण मृदा क्षरण, जल प्रदूषण, जैव विविधता में कमी तथा ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन की समस्याएँ भी बढ़ी हैं।

प्राकृतिक खेती और जैविक खेती पर्यावरणीय रूप से टिकाऊ विकल्पों के रूप में उभरकर सामने आई हैं, जिनमें कृषि उत्पादकता और पारिस्थितिकीय संरक्षण के बीच संतुलन स्थापित करने की क्षमता है। ये कृ षि प्रणालियाँ पारिस्थितिकीय सिद्धांतों, जैविक पोषक तत्व चक्रण, स्थानीय संसाधनों के उपयोग तथा प्राकृ तिक संसाधनों के संरक्षण पर आधारित हैं।

प्राकृतिक एवं जैविक खेती

प्राकृतिक खेती और जैविक खेती दोनों ही रासायनिक–आधारित गहन कृषि के कृषि–पारिस्थितिकीय विकल्प हैं, लेकिन बाहरी आदानों के उपयोग, कृषि प्रणाली की संरचना तथा प्रमाणन के संदर्भ में दोनों में अंतर है। प्राकृतिक खेती का उद्देश्य स्थानीय संसाधनों पर आधारित, अधिकतम सीमा तक आत्मनिर्भर कृषि पारिस्थितिकी तंत्र विकसित करना है, जबकि जैविक खेती निर्धारित मानकों का पालन करती है, जिनमें अधिकांश कृत्रिम आदानों का उपयोग प्रतिबंधित होता है, लेकिन कुछ अनुमोदित जैविक, जैविकीय तथा प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त बाहरी आदानों की अनुमति दी जा सकती है।

प्राकृतिक खेती

प्राकृतिक खेती एक रसायन–मुक्त तथा जैव विविधता पर आधारित कृषि पद्धति है, जिसका उद्देश्य एक खरीदे गए कृषि आदान के स्थान पर दूसरे आदान का उपयोग करना नहीं, बल्कि प्राकृतिक पारिस्थितिकीय प्रक्रियाओं के साथ सामंजस्य स्थापित करके खेती करना है। भारत में राष्ट्रीय प्राकृतिक खेती मिशन प्राकृतिक खेती को एक पारंपरिक, कृषि–पारिस्थितिकी आधारित तथा विविधीकृत कृषि प्रणाली के रूप में वर्णित करता है, जिसमें फसलें, वृक्ष और पशुधन एकीकृत होते हैं तथा कार्यात्मक जैव विविधता, संसाधनों के पुनर्चक्रण और खेत पर उपलब्ध संसाधनों के सर्वोत्तम उपयोग पर विशेष बल दिया जाता है।

यह पद्धति सामान्यतः भारतीय प्राकृतिक कृषि पद्धति (ठच्ज्ञच) तथा आंध्र प्रदेश सामुदायिक प्रबंधित प्राकृतिक खेती जैसी कृषि प्रणालियों से जुड़ी हुई है। इसका उद्देश्य खरीदे गए कृत्रिम उर्वरकों, कीटनाशकों, खरपतवारनाशकों तथा बाहरी स्रोतों से प्राप्त कृषि आदानों पर निर्भरता को कम करना अथवा समाप्त करना है। इसके स्थान पर स्थानीय रूप से उपलब्ध जैविक पदार्थ, फसल अवशेष, पशुओं का गोबर एवं मूत्र, हरी खाद, वनस्पति आधारित अर्क, लाभकारी सूक्ष्मजीव तथा फसल विविधता के माध्यम से मृदा और कृषि पारिस्थितिकी तंत्र की जैविक क्रियाशीलता में सुधार किया जाता है।

प्राकृतिक खेती हिमालयी क्षेत्रों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि अधिकांश पर्वतीय कृषि प्रणालियाँ छोटी जोतों, मिश्रित खेती तथा पशुधन से जुड़ी होती हैं। गोबर की खाद, पत्ती कूड़ा, चारा वृक्ष, फसल अवशेष, पारंपरिक मिश्रित फसलें तथा समुदाय द्वारा प्रबंधित जल संसाधन कम बाहरी आदानों पर आधारित कृषि प्रणाली के पारिस्थितिकीय आधार का निर्माण कर सकते हैं। हालांकि, प्राकृतिक खेती की सफलता जैविक पदार्थ की उपलब्धता, पशुधन संसाधनों, श्रम, नमी, किसानों के कौशल तथा एक व्यावहारिक कृषि परिवर्तन रणनीति पर निर्भर करती है।

प्राकृतिक खेती की प्रमुख पद्धतियाँ

भारत सरकार के प्राकृतिक खेती कार्यक्रम में निम्नलिखित प्रमुख पद्धतियों पर विशेष बल दिया गया है:

- ✓ **कृत्रिम रासायनिक आदानों का उपयोग नहीं:** कृत्रिम उर्वरकों, कीटनाशकों, खरपतवारनाशकों तथा अन्य खरीदे गए रासायनिक आदानों का उपयोग नहीं किया जाता।
- ✓ **स्थानीय पशुधन आधारित तैयारियाँ:** देशी गाय के गोबर एवं मूत्र का उपयोग करके बीजामृत, जीवामृत तथा घनजीवामृत जैसे जैविक घोल तैयार किए जाते हैं।
- ✓ **बीज उपचार:** बुवाई से पहले बीज अथवा रोपण सामग्री का उपचार बीजामृत से किया जाता है। इसका उद्देश्य बीज स्वास्थ्य को बढ़ावा देना तथा प्रारंभिक अवस्था में रोगों के जोखिम को कम करना है।
- ✓ **मृदा की जैविक सक्रियता को बढ़ाना:** जीवामृत अथवा अन्य संबंधित जैविक तैयारियों का उपयोग मृदा में सूक्ष्मजीवों की गतिविधि को बढ़ाने तथा पोषक तत्वों के प्राकृतिक चक्रण में सुधार के लिए किया जाता है।
- ✓ **पलवार अथवा आच्छादन:** सूखे जैविक पदार्थों से पलवार, जीवित पलवार तथा मृदा आवरण का उपयोग मृदा की सतह को सुरक्षित रखने, वाष्पीकरण को कम करने, तापमान नियंत्रित करने तथा मृदा में जैविक पदार्थ बढ़ाने के लिए किया जाता है।
- ✓ **वर्षभर हरित आवरण:** आवरण फसलें, अंतरफसलें तथा हरी खाद का उपयोग भूमि को लंबे समय तक खुला रहने से बचाता है और मृदा की जैविक गतिविधियों को बढ़ावा देता है।
- ✓ **मिश्रित खेती एवं जैव विविधता:** जोखिम को कम करने तथा परागणकर्ताओं एवं कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न फसलों, वृक्षों, पशुधन तथा पुष्पीय पौधों को एकीकृत किया जाता है।

- ✓ **वनस्पति आधारित पौध संरक्षणः** कीट एवं रोग प्रबंधन के लिए स्थानीय रूप से उपलब्ध पौधों, गोमूत्र तथा अन्य गैर–कृत्रिम पदार्थों से तैयार जैविक घोलों का उपयोग किया जाता है।
- ✓ **मृदा वातन अथवा वाफसाः** मृदा का प्रबंधन इस प्रकार किया जाता है कि जड़ क्षेत्र में पर्याप्त नमी और वायु दोनों उपलब्ध रहें तथा लंबे समय तक जलभराव अथवा अनावश्यक सिंचाई से बचा जा सके।

प्राकृतिक खेती के आधिकारिक ढाँचे में जैविक पदार्थों से पलवार, वर्षभर हरित आवरण, बहु–प्रजातीय हरी खाद, खेत पर तैयार की जाने वाली गो–आधारित जैविक तैयारियाँ, फसल विविधता एवं बहुफसली प्रणाली, वनस्पति आधारित अर्क तथा मृदा वातन को भारतीय प्राकृतिक कृषि पद्धति के प्रमुख घटकों के रूप में शामिल किया गया है। इसी प्रकार, आंध्र प्रदेश सामुदायिक प्रबंधित प्राकृतिक खेती में बीजामृत, जीवामृत, आच्छादन तथा वाफसा को चार प्रमुख पद्धतियों के रूप में माना गया है।

जैविक खेती

जैविक खेती एक समग्र उत्पादन एवं प्रबंधन प्रणाली है, जिसका उद्देश्य मृदा, पारिस्थितिकी तंत्र, पशुओं और मनुष्यों के स्वास्थ्य को बनाए रखना तथा उसमें सुधार करना है। इसमें उन कृषि आदानों के स्थान पर पारिस्थितिकीय प्रक्रियाओं, जैव विविधता, पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण तथा स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल प्रबंधन पद्धतियों का उपयोग किया जाता है, जो पर्यावरण अथवा मानव स्वास्थ्य को हानि पहुँचा सकते हैं।

आईएफओएएम (IFOAM) के अनुसार, जैविक कृषि एक ऐसी कृषि प्रणाली है जो "मृदा, पारिस्थितिकी तंत्र और लोगों के स्वास्थ्य को बनाए रखती है" तथा स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल पारिस्थितिकीय प्रक्रियाओं एवं जैव विविधता पर आधारित होती है।

जैविक खेती का अर्थ यह आवश्यक रूप से नहीं है कि किसी भी बाहरी कृषि आदान का उपयोग बिल्कुल नहीं किया जाता। इसमें कृत्रिम रासायनिक उर्वरकों, कृत्रिम कीटनाशकों, कृत्रिम खरपतवारनाशकों तथा आनुवंशिक रूप से संशोधित जीवों के उपयोग पर प्रतिबंध होता है, लेकिन जैविक मानकों के अनुरूप कुछ अनुमोदित आदानों के उपयोग की अनुमति दी जा सकती इन अनुमोदित आदानों में कम्पोस्ट, गोबर की खाद, वर्मीकम्पोस्ट, जैव उर्वरक, सूक्ष्मजीवी कल्चर, जैव कीटनाशक, नीम आधारित उत्पाद, गंधक, चूना, जिप्सम, रॉक फॉस्फेट अन्य प्राकृतिक स्रोतों अथवा अनुमोदित खनिज पदार्थों से प्राप्त आदान शामिल हो सकते हैं:

जैविक कृषि एक समग्र उत्पादन एवं प्रबंधन प्रणाली है, जो कृषि–पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ्य, जैव विविधता, जैविक चक्रों तथा मृदा की जैविक गतिविधियों को बढ़ावा देती है। इसमें कृत्रिम पदार्थों के स्थान पर कृषि वैज्ञानिक, जैविक तथा यांत्रिक विधियों को प्राथमिकता दी जाती है तथा यह स्वीकार किया जाता है कि विभिन्न स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार अनुकूलित कृषि प्रणालियों की आवश्यकता होती है।

भारत में जैविक खेती

भारत में जैविक उत्पादन मुख्य रूप से राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम (National Programme for Organic Production—NPOP) के अंतर्गत संचालित होता है। इसका प्रशासन मुख्यतः कृषि एवं प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण (APEDA) द्वारा किया जाता है, विशेषकर जैविक उत्पादों के प्रमाणन तथा निर्यातोन्मुख जैविक कृषि प्रणालियों के लिए।

जैविक कृषि मानकों में निम्नलिखित प्रावधान निर्धारित किए जाते हैं:

- ✓ अनुमत कृषि आदान

- ✓ प्रतिबंधित कृषि आदान, जिनके उपयोग से पहले सावधानीपूर्वक मूल्यांकन आवश्यक होता है।
- ✓ निषिद्ध कृषि आदान
- ✓ फसल उत्पादन, पशुधन उत्पादन, प्रसंस्करण, भंडारण, प्रबंधन, लेबलिंग एवं प्रमाणन से संबंधित आवश्यकताएँ
- ✓ उत्पादों की अनुरेखणीयता (Traceability) एवं अभिलेखीय दस्तावेजीकरण संबंधी आवश्यकताएँ

भारतीय जैविक मानकों के अंतर्गत यूरिया तथा सिंथेटिक नाइट्रोजनयुक्त उर्वरकों जैसे कृत्रिम उर्वरकों का प्रयोग प्रतिबंधित है। इसी प्रकार, सिंथेटिक शाकनाशी, कवकनाशी, कीटनाशी तथा अन्य कृत्रिम कीटनाशकों का उपयोग भी प्रतिबंधित है। जैविक कृषि प्रणालियों में मानकों के अंतर्गत अनुमत होने पर सूक्ष्मजीवी, पादप या पशु मूल के जैव–अवक्रमणीय इनपुट तथा कुछ निर्दिष्ट प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले खनिज स्रोतों का उपयोग किया जा सकता है। आनुवंशिक रूप से अभियांत्रित बीज, परागकण, ट्रांसजेनिक पौधे तथा रोपण सामग्री की अनुमति नहीं है।

अतः जैविक कृषि केवल एक उत्पादन प्रणाली ही नहीं, बल्कि एक विनियमित गुणवत्ता–आश्वासन प्रणाली भी है। कोई किसान पर्यावरणीय दृष्टि से उपयुक्त कृषि पद्धतियों को अपना सकता है, लेकिन उसके उत्पादों को किसी मान्यता प्राप्त प्रमाणीकरण प्रणाली के अंतर्गत तभी "जैविक" के रूप में विपणन किया जा सकता है, जब वे निर्धारित उत्पादन, निरीक्षण, अभिलेख–रखरखाव तथा अनुरेखण (traceability) संबंधी मानकों को पूरा करते हों।

जैविक कृषि के सिद्धांत

आईएफओएएम द्वारा मान्यता प्राप्त चार अंतरराष्ट्रीय सिद्धांत जैविक कृषि के नैतिक एवं पारिस्थितिक आधार प्रदान करते हैं। ये चार सिद्धांत हैंकृस्वास्थ्य, पारिस्थितिकी, निष्पक्षता तथा सावधानी।

1. स्वास्थ्य का सिद्धांत

जैविक कृषि का उद्देश्य मृदा, पौधों, पशुओं, मनुष्यों तथा पृथ्वी के स्वास्थ्य को एक परस्पर संबद्ध प्रणाली के रूप में बनाए रखना और उसमें सुधार करना होना चाहिए। स्वस्थ मृदा को स्वस्थ फसलों, पशुधन, खाद्य पदार्थों तथा स्वस्थ समुदायों का आधार माना जाता है। यह सिद्धांत हानिकारक रसायनों के संपर्क को कम करने, पौष्टिक खाद्य उत्पादन को बढ़ावा देने, पशु कल्याण सुनिश्चित करने तथा जैविक रूप से सक्रिय एवं स्वस्थ मृदा के संरक्षण पर बल देता है।

हिमालयी कृषि के संदर्भ में इसका अर्थ है कि मृदा में जैविक पदार्थ की मात्रा को पुनर्स्थापित किया जाए, जलस्रोतों एवं धाराओं को प्रदूषण से बचाया जाए, सुरक्षित कीट–प्रबंधन विधियों को अपनाया जाए तथा उन किसानों के स्वास्थ्य की रक्षा की जाए जो अन्यथा विषैले कृषि–रसायनों के सीधे संपर्क में आ सकते हैं।

2. पारिस्थितिकी का सिद्धांत

जैविक कृषि जीवित पारिस्थितिक तंत्रों तथा प्राकृतिक चक्रों पर आधारित होनी चाहिए। इसे प्राकृतिक प्रक्रियाओं के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए कार्य करना चाहिए तथा जहाँ उपयुक्त हो, वहाँ प्राकृतिक प्रक्रियाओं का अनुकरण करते हुए उनके संरक्षण में योगदान देना चाहिए। इसमें पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण, जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण, कम्पोस्ट निर्माण, फसल चक्र, मिश्रित फसल प्रणाली, कृषि वानिकी, परागणकों का संरक्षण तथा पशुधन का कृषि प्रणाली में एकीकरण शामिल हैं।

पर्वतीय क्षेत्रों में पारिस्थितिक सिद्धांत विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि कृषि उत्पादकता आसपास के वनों, मृदा जीवों, जलस्रोतों तथा वनस्पति आवरण पर निर्भर करती है। इसलिए जैविक कृषि प्रणालियों

का नियोजन केवल खेत के स्तर पर नहीं, बल्कि खेत एवं जलागम (जमतीमक) दोनों के स्तर पर किया जाना चाहिए।

3. निष्पक्षता का सिद्धांत

जैविक कृषि को मनुष्यों, पशुओं तथा पर्यावरण के बीच न्यायसंगत एवं समानतापूर्ण संबंधों को बढ़ावा देना चाहिए। इस सिद्धांत में उचित कार्य परिस्थितियाँ, संसाधनों तक समान एवं न्यायसंगत पहुँच, उत्पादकों को उचित एवं सम्मानजनक आय, पशुओं की जिम्मेदार देखभाल तथा ग्रामीण उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच निष्पक्ष संबंध शामिल हैं।

छोटे हिमालयी कृषकों के लिए निष्पक्षता का अर्थ केवल पर्यावरण–अनुकूल उत्पादन तक सीमित नहीं है। इसमें जैविक प्रमाणीकरण तक पहुँच, जैविक उत्पादों के लिए बेहतर मूल्य, स्थानीय प्रसंस्करण सुविधाएँ, परिवहन एवं भंडारण की व्यवस्था, ऋण एवं वित्तीय सहायता, महिलाओं के भूमि–अधिकार एवं निर्णय लेने में भागीदारी तथा पारदर्शी बाजार व्यवस्था भी शामिल हैं।

4. सावधानी का सिद्धांत

जैविक कृषि का प्रबंधन जिम्मेदारी एवं सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए, ताकि वर्तमान तथा भावी पीढ़ियों के स्वास्थ्य और कल्याण की रक्षा की जा सके। नई विधियों एवं प्रौद्योगिकियों को विशेष रूप से तब सावधानीपूर्वक परखा जाना चाहिए, जब उनके पारिस्थितिक या सामाजिक प्रभावों के संबंध में अनिश्चितता हो।

यह सिद्धांत निवारक कीट प्रबंधन, अनुमोदित कृषि–इनपुट के भी विवेकपूर्ण उपयोग, आनुवंशिक विविधता के संरक्षण, प्रदूषण एवं संदूषण की रोकथाम तथा मृदा, जल और जैव विविधता की दीर्घकालिक निगरानी का समर्थन करता है। साथ ही, इसका तात्पर्य यह भी है कि केवल किसी कृषि प्रणाली को "जैविक" कह देने से वह स्वतः सतत (नेजंपदंइसम) नहीं हो जाती। पोषक तत्वों की आवश्यकताओं, जैवभार के निष्कासन, जल के उपयोग तथा बाजार संबंधी दबावों का वैज्ञानिक एवं संतुलित ढंग से प्रबंधन किया जाना आवश्यक है।

प्राकृतिक कृषि बनाम जैविक कृषि

आधार	प्राकृतिक खेती	जैविक खेती
प्रमुख उद्देश्य	प्राकृतिक प्रक्रियाओं के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए एक आत्मनिर्भर कृषि पारिस्थितिकी तंत्र विकसित करना।	जैविक मानकों के अंतर्गत पारिस्थितिक प्रबंधन के माध्यम से खाद्य एवं अन्य कृषि उत्पादों का उत्पादन करना।
कृत्रिम इनपुट	कृत्रिम उर्वरकों, कीटनाशकों, शाकनाशियों तथा अन्य खरीदे गए सिंथेटिक रसायनों के प्रयोग से बचना।	कृत्रिम उर्वरकों, कीटनाशकों, शाकनाशियों तथा आनुवंशिक रूप से संशोधित जीवों ;GMOs) के प्रयोग पर प्रतिबंध।
बाहरी इनपुट	खरीदे गए बाहरी इनपुट पर न्यूनतम या लगभग शून्य निर्भरता का लक्ष्य, खेत पर उपलब्ध तथा स्थानीय संसाधनों को प्राथमिकता।	आवश्यकता होने पर मानकों के अंतर्गत अनुमत जैविक, जैविकीय तथा प्राकृतिक खनिज.आधारित बाहरी इनपुट के उपयोग की अनुमति।
पोषक तत्व प्रबंधन	मृदा की जैविक सक्रियता, फसल अवशेष, मल्च, हरी खाद, पशुधन.आधारित तैयारियों तथा खेत की जैव विविधता पर निर्भरता।	कम्पोस्ट, गोबर की खाद, फसल चक्र, हरी खाद, जैव उर्वरक तथा अनुमत खनिज या जैविक इनपुट का उपयोग।
कीट प्रबंधन	जैव विविधता, वनस्पति अर्क, जैविक संतुलन तथा निवारक प्रबंधन पर विशेष बल।	निवारक उपायों, जैविक नियंत्रण तथा अनुमोदित जैव. कीटनाशकों या अन्य अनुमत पदार्थों का उपयोग।
पशुधन की भूमिका	प्रायः महत्वपूर्ण, विशेषकर देशी गोवंश, जिनसे गोबर एवं मूत्र.आधारित कृषि तैयारियाँ बनाई जाती हैं।	महत्वपूर्ण, लेकिन अनिवार्य नहीं, यदि पोषक तत्वों के स्रोत निर्धारित मानकों को पूरा करते हैं, तो जैविक

		फसल फार्म पशुधन के बिना भी संचालित किए जा सकते हैं।
कृषि प्रणाली की संरचना	सामान्यतः मिश्रित फसल, वर्षभर भूमि आवरण, मल्चिंग, फसलदृवृक्षदृपशुधन एकीकरण तथा स्थानीय पारिस्थितिक संतुलन को बढ़ावा।	पारिस्थितिक विविधीकरण, फसल चक्र, मृदा स्वास्थ्य तथा जैव विविधता को बढ़ावा, हालांकि पद्धतियाँ मानकों तथा कृषि उद्यम के प्रकार के अनुसार भिन्न हो सकती हैं।
प्रमाणीकरण	तृतीय.पक्ष प्रमाणीकरण के बिना भी अपनाई जा सकती है, बाजार में दावे के लिए प्रमाणीकरण या सहभागी गारंटी प्रणाली ;PGS) का उपयोग किया जा सकता है।	सामान्यतः प्रमाणीकरण, निरीक्षण, अभिलेख.रखरखाव, अनुरेखण ;Traceability) तथा निर्धारित उत्पादन मानकों से जुड़ी होती है।
बाजार में पहचान	लागू लेबलिंग नियमों के अधीन स्थानीय स्तर पर प्राकृतिक रूप से उत्पादित या रसायन.मुक्त उत्पाद के रूप में बेची जा सकती है।	मान्यता प्राप्त मानकों, जैसे राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम ;NPOP), को पूरा करने पर प्रमाणित जैविक उत्पाद के रूप में विपणन किया जा सकता है।
इनपुट लागत पर प्रभाव	खरीदे गए इनपुट की लागत को काफी हद तक कम करने के उद्देश्य से विकसित।	रासायनिक इनपुट की लागत कम कर सकती है, लेकिन अनुमोदित इनपुट, प्रमाणीकरण, निरीक्षण तथा मानकों के अनुपालन पर अतिरिक्त खर्च हो सकता है।
मुख्य सीमाएँ	पर्याप्त जैवभार, किसान का तकनीकी ज्ञान, श्रम तथा सावधानीपूर्वक पोषक तत्व प्रबंधन की आवश्यकता।	दस्तावेजीकरण, प्रमाणीकरण तक पहुँच, बाजार में बेहतर मूल्य तथा अनुमत इनपुट से संबंधित नियमों का अनुपालन आवश्यक।

सबसे महत्वपूर्ण अंतर यह है कि प्राकृतिक कृषि सामान्यतः खरीदे गए बाहरी इनपुट से बचने पर अधिक जोर देती है और मुख्य रूप से खेत की आंतरिक पारिस्थितिक प्रक्रियाओं पर निर्भर करती है, जबकि जैविक कृषि एक विनियमित उत्पादन ढाँचे के अंतर्गत कुछ चयनित एवं अनुमोदित बाहरी इनपुट के उपयोग की अनुमति देती है। प्राकृतिक कृषि को कृषि–पारिस्थितिकी (groecology) पर आधारित कृषि का एक रूप माना जा सकता है, जबकि प्रमाणित जैविक कृषि एक ऐसी कृषि–पारिस्थितिक उत्पादन प्रणाली है जो स्पष्ट मानकों और सत्यापन प्रक्रियाओं द्वारा परिभाषित होती है।

हिमालयी कृषि के लिए प्रासंगिकता

नाजुक हिमालयी भू–दृश्यों के संदर्भ में, दोनों कृषि पद्धतियाँ रासायनिक इनपुट पर निर्भरता कम करने, मृदा स्वास्थ्य में सुधार करने, जैव विविधता के संरक्षण तथा जल एवं मृदा संसाधनों की रक्षा करने में योगदान दे सकती हैं। हालाँकि, इनका व्यावहारिक उपयोग स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप होना चाहिए।

- ✓ पशुधन–समृद्ध मिश्रित कृषि फार्मों में, प्राकृतिक कृषि के अंतर्गत गोबर की खाद, फसल अवशेष, पत्ती–कूड़ा, हरा जैवभार, चारा वृक्ष तथा पारंपरिक मिश्रित फसल प्रणालियों का उपयोग किया जा सकता है।
- ✓ बागवानी या व्यावसायिक कृषि फार्मों में, जैविक कृषि अधिक स्पष्ट प्रमाणीकरण तथा बाजार के अवसर उपलब्ध करा सकती है, विशेषकर सेब, सब्जियों, चाय, मसालों, शहद, औषधीय पौधों तथा मूल्यवर्धित उत्पादों के लिए।
- ✓ जल की कमी वाले क्षेत्रों में, किसी भी प्रणाली के अंतर्गत मल्चिंग, कम्पोस्ट, कृषि वानिकी, समोच्च वनस्पति (बवदजवनत अमहमजंजपवद) तथा वर्षाजल संचयन आवश्यक उपाय हैं।
- ✓ पोषक तत्वों की कमी या सीमित जैवभार वाले क्षेत्रों में, पोषक तत्वों का बजट तैयार किया जाना चाहिए, ताकि कृषि प्रणाली द्वारा मृदा से जितने पोषक तत्व बाहर निकाले जाएँ, उनकी तुलना में कम पोषक तत्व वापस न जोड़े जाएँ।

- ✓ लघु एवं सीमांत किसानों के लिए, समूह प्रमाणीकरण, सहभागी गारंटी प्रणाली (च्तजपबपचंजवतल ळनंतंदजमम ैलेजमउेकृच्ळै), किसान उत्पादक संगठन (थ्तउमत च्तवकनबमत व्तहंदपेंजपवदेकृथ्च्े) तथा स्थानीय प्रसंस्करण की व्यवस्था लेन–देन संबंधी लागत को कम करने और बाजार से प्राप्त आय में सुधार करने में सहायक हो सकती है।

किसी भी कृषि पद्धति को एकल एवं निश्चित पैकेज के रूप में नहीं अपनाया जाना चाहिए। सफल हिमालयी प्राकृतिक या जैविक कृषि के लिए वैज्ञानिक मृदा प्रबंधन, फसल विविधीकरण, जल संरक्षण, स्थानीय बीज प्रणालियाँ, एकीकृत पशुधन प्रबंधन, फसल कटाई के बाद की आधारभूत संरचना तथा विश्वसनीय बाजार व्यवस्था आवश्यक हैं।

प्राकृतिक एवं जैविक कृषि का योगदान

✓ मृदा में जैविक पदार्थ का पुनर्निर्माण

मृदा पर्वतीय कृषि की आधारशिला है। जैविक कृषि इस अवधारणा पर आधारित है कि मृदा को केवल एक ऐसे निष्क्रिय माध्यम के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, जिसमें घुलनशील पोषक तत्वों को बाहर से मिलाया जाता है, बल्कि इसे एक जीवित एवं सक्रिय पारिस्थितिक तंत्र के रूप में प्रबंधित किया जाना चाहिए। कम्पोस्ट, गोबर की खाद, हरी खाद, फसल अवशेष, पत्ती–कूड़ा, वर्मी–कम्पोस्ट, जैव उर्वरक तथा सावधानीपूर्वक तैयार किए गए वनस्पति–आधारित इनपुट मृदा जीवों को पोषण प्रदान करते हैं और मृदा में जैविक पदार्थ की मात्रा बढ़ाने में योगदान देते हैं।

जैविक पदार्थ मृदा के समुच्चयन में सुधार करता है। इसमें मृदा के छोटे–छोटे कण आपस में जुड़कर स्थिर कणिकाएँ बनाते हैं, जिससे जल का मृदा में प्रवेश बेहतर होता है और सतही अपवाह कम होता है। इससे मृदा की नमी बनाए रखने की क्षमता बढ़ सकती है, तापमान में होने वाले उतार–चढ़ाव का प्रभाव कम हो सकता है तथा पोषक तत्व ऐसे रूपों में संरक्षित रह सकते हैं, जिन्हें पौधे धीरे–धीरे ग्रहण कर सकते हैं। जड़ों और सूक्ष्मजीवी गतिविधियों से मृदा में जैविक संरचना तथा प्राकृतिक मार्गों का निर्माण होता है। ढलानदार भूमि पर ये परिवर्तन वर्षाजल के सतह पर बहने में लगने वाले समय को कम कर सकते हैं।

नेपाल के पर्वतीय कृषि–पारिस्थितिकी तंत्रों पर केंद्रित वर्ष 2024 की एक समीक्षा में कम्पोस्ट निर्माण, हरी खाद, जैव उर्वरक, कम जुताई, आवरण फसलें, मल्चिंग तथा कृषि वानिकी को मृदा स्वास्थ्य के संरक्षण के लिए व्यावहारिक जैविक कृषि उपायों के रूप में पहचाना गया है। इन उपायों को मृदा अपरदन नियंत्रण, जल धारण क्षमता में वृद्धि, उत्सर्जन में कमी, जैव विविधता संरक्षण तथा रासायनिक इनपुट पर निर्भरता में कमी से जोड़ा गया है (डाउन टू अर्थ (2024)। इन प्रमाणों की मजबूती विभिन्न प्रक्रियाओं के परस्पर सामंजस्य में निहित हैकृएक ही प्रकार की कृषि पद्धतियाँ जो मृदा को वर्षा की बूंदों के प्रत्यक्ष प्रभाव से बचाती हैं, वे मृदा में जैविक गतिविधि को भी बढ़ाती हैं और पोषक तत्वों के बह जाने को कम करती हैं।

जैविक पदार्थ का प्रबंधन विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि पर्वतीय मृदाओं में फसल कटाई के माध्यम से पोषक तत्वों के निष्कासन तथा मृदा अपरदन, दोनों के कारण उर्वरता में कमी आ सकती है। किसान कम गहराई वाली मृदाओं से फसल प्राप्त कर सकते हैं, जबकि मानसून के दौरान आने वाला एक तीव्र वर्षा–प्रवाह मृदा की सबसे महीन और सर्वाधिक उपजाऊ परत को बहा ले जा सकता है। इसलिए खेत में जैवभार को वापस मिलाना केवल मृदा उर्वरता बढ़ाने की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह मृदा अपरदन की रोकथाम तथा जलागम प्रबंधन का भी एक महत्वपूर्ण उपाय है। डाउन टू अर्थ (2024)

✓ मृदा अपरदन नियंत्रण एवं जल संरक्षण

सबसे उपयुक्त हिमालयी जैविक कृषि फार्म प्रायः एक समतल खेत नहीं होता, जिसमें केवल एक ही फसल लगाई जाए। इसके बजाय, इसे ढलान के अनुरूप सुव्यवस्थित कृषि प्रणाली के रूप में विकसित किया

जाना चाहिए। सीढ़ीदार खेत, समोच्च मेड़ें, घासयुक्त मेड़ें, वनस्पति पट्टियाँ, मल्च, आवरण फसलें, जल के अंतःप्रवाह के लिए खाइयाँ, पत्थर की मेड़ें, जल निकासी नालियाँ तथा कृषि वानिकीकृइन सभी को एकीकृत रूप से कार्य करना चाहिए। जैविक कृषि इस व्यवस्था में जैविक घटक प्रदान करती है, जिसमें जीवित जड़ें, सतह पर उपलब्ध फसल अवशेष तथा स्थायी या मौसमी भूमि आवरण शामिल हैं।

सिक्किम के एक जलागम क्षेत्र में स्वदेशी किसानों द्वारा सीढ़ीदार खेती, संरक्षण दीवारों, मेड़ों, जलमार्गों, मिश्रित फसल, फसल चक्र, मल्चिंग, कृषि वानिकी तथा गोबर की खाद का उपयोग किया जाता है। निम्न, मध्यम और उच्च ऊँचाई वाले क्षेत्रों में किए गए एक सर्वेक्षण में संरचनात्मक तथा जैविक, दोनों प्रकार की भूमि–प्रबंधन पद्धतियों का व्यापक उपयोग पाया गया तथा किसानों ने इन पीढ़ियों से चली आ रही तकनीकों के प्रति मजबूत विश्वास व्यक्त किया। (रविशंकर, एन., एट अल। (2025) हालाँकि, इस पारंपरिक ज्ञान को अत्यधिक आदर्श रूप में प्रस्तुत नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि पारंपरिक प्रणालियाँ भी श्रम की कमी, भूमि विखंडन, बाजार के दबाव तथा जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न व्यवधानों का सामना कर सकती हैं। फिर भी, यह स्थानीय कृषि–प्रबंधन के लिए एक उपयोगी आधार प्रदान करता है, जिसे आधुनिक कृषि विस्तार सेवाओं द्वारा समाप्त करने के बजाय और मजबूत किया जा सकता है।

सीढ़ीदार खेतों की मेड़ों पर उगाई जाने वाली वनस्पतियाँ विशेष रूप से उपयोगी होती हैं। बांस घास (ठतववउ हतें), चारा वृक्ष तथा नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाली प्रजातियाँ मृदा को यांत्रिक रूप से स्थिर करती हैं, जैवभार एवं चारा उपलब्ध कराती हैं तथा खेत और वन के बीच एक संक्रमण क्षेत्र का निर्माण करती हैं। बारहमासी पौधों की जड़ें वार्षिक फसलों की कटाई के बाद भी ढलान की रक्षा करती रहती हैं। इसी प्रकार, बड़ी इलायची आधारित कृषि वानिकी आय के स्रोत को वृक्ष–आवरण तथा मृदा संरक्षण के साथ जोड़ सकती है। सिक्किम के जलागम अध्ययन में बड़ी इलायची और बांस घास को मृदा एवं जल संरक्षण की दृष्टि से अत्यधिक उपयोगी पाया गया, जबकि नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाली ।सइप्रपं प्रजाति ने मृदा उर्वरता और उत्पादकता में योगदान दिया। (प्रताप, टी. (2020).)

मल्चिंग के अनेक लाभ हैं। यह मृदा को वर्षा की बूंदों के प्रत्यक्ष प्रभाव से बचाती है, वाष्पीकरण की गति को कम करती है, खरपतवारों को नियंत्रित करती है, मृदा के तापमान को संतुलित करती है तथा विघटित होने के दौरान जैविक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि करती है। विशेष रूप से दलहनी आवरण फसलें दो मुख्य नकदी फसलों के बीच की अवधि में मृदा में जड़ों की उपस्थिति बनाए रखती हैं। कम जुताई मृदा की संरचना को सुरक्षित रखने में सहायक होती है; हालांकि, ढलानदार भूमि पर जुताई का उचित स्तर फसल, मृदा के प्रकार, जल निकासी तथा स्थानीय श्रम उपलब्धता के आधार पर निर्धारित किया जाना चाहिए। इसलिए सभी क्षेत्रों के लिए एक समान कृषि–पद्धति निर्धारित करने की अपेक्षा ढलान–विशिष्ट कृषि प्रबंधन योजना अधिक उपयोगी है।

✓ <u>जैव विविधता एवं पारिस्थितिकीय कार्यों का संरक्षण</u>

जब किसी कृषि क्षेत्र में विभिन्न फसलें, उनकी अनेक किस्में, वृक्ष, पशुधन, जीवित बाड़ें, तालाब तथा गैर–कृषित क्षेत्र शामिल होते हैं, तो वह कृषि क्षेत्र जैव विविधता के एक महत्वपूर्ण भंडार के रूप में कार्य कर सकता है। जैव विविधता ऐसी अनेक पारिस्थितिकीय सेवाओं एवं प्रक्रियाओं को बनाए रखने में सहायता करती है, जिनका लाभ किसानों को बिना प्रत्यक्ष आर्थिक लागत के प्राप्त होता है। इनमें परागण, प्राकृतिक कीट नियंत्रण, पोषक तत्वों का चक्रण, अपघटन, मृदा निर्माण, जल नियमन तथा आनुवंशिक अनुकूलन प्रमुख हैं।

स्थानीय फसल किस्मों के लुप्त होने से कृषि का आनुवंशिक आधार संकीर्ण होता जाता है। कोई एक व्यावसायिक किस्म अनुकूल परिस्थितियों में उच्च उत्पादकता प्रदान कर सकती है, लेकिन सूखा, रोग, अत्यधिक ठंड अथवा बाजार में व्यवधान जैसी परिस्थितियों में असफल हो सकती है। इसके विपरीत, स्थानीय देशी किस्मों (संदकतंबमे) में ऐसे आनुवंशिक गुण पाए जा सकते हैं जो कृषि प्रणाली की प्रत्यास्थता,

स्वाद, भंडारण क्षमता, सांस्कृतिक पहचान तथा विभिन्न ऊँचाई वाले क्षेत्रों के अनुकूलन के लिए उपयोगी होते हैं। इसलिए बीज संरक्षण, सामुदायिक बीज बैंक, सहभागी पौध प्रजनन तथा किसान–से–किसान बीज एवं ज्ञान आदान–प्रदान पारिस्थितिकी तंत्र संरक्षण के महत्वपूर्ण घटक हैं।

सिक्किम की गृहवाटिकाओं (ीवउमेजमंके) में पाई जाने वाली कृषि–जैव विविधता विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। छोटी एवं सीमांत जोतों में गृहवाटिकाएँ भूमि के एक बड़े हिस्से पर स्थित हो सकती हैं और ये भोजन, पोषण, आजीविका संबंधी उत्पाद तथा पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान उपलब्ध कराती हैं। (रविशंकर, एन., एट अल। (2025) सब्जियों, फलदार वृक्षों, मुर्गीपालन, गाय–बैलों, सूअर, औषधीय पौधों, मसालों तथा कम्पोस्ट निर्माण से युक्त एक विविधीकृत गृहवाटिका, भले ही प्रत्येक व्यक्तिगत फसल की अधिकतम उत्पादकता प्राप्त न हो, फिर भी एकल–फसल वाले खेत की तुलना में प्रति इकाई भूमि अधिक पारिस्थितिक एवं पोषण संबंधी लाभ प्रदान कर सकती है।

प्राकृतिक कीट प्रबंधन भी इसी सिद्धांत पर आधारित है। फसल चक्र कीटों के जीवन–चक्र को बाधित करता है; मिश्रित खेती से कीटों के लिए पोषक या मेजबान पौधों को पहचानना कठिन हो जाता है; फूलदार पौधों की सीमाएँ एवं पट्टियाँ लाभकारी कीटों को भोजन उपलब्ध कराती हैं; पक्षियों तथा शिकारी कीटों के लिए उपयुक्त आवास की उपलब्धता कीटों का दबाव कम करती है; और आवश्यकता एवं उपयुक्तता के अनुसार वनस्पति–आधारित जैविक तैयारियों का उपयोग किया जा सकता है। जैविक कृषि का अर्थ यह नहीं है कि कीट पूरी तरह समाप्त हो जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि कीट प्रबंधन की शुरुआत रोकथाम एवं पारिस्थितिक संतुलन से होती है, न कि नियमित रासायनिक उपचार से।

✓ <u>वृक्षों, पशुधन एवं फसलों का एकीकरण</u>

कृषि वानिकी (Agroforestry) पर्वतीय परिदृश्यों के लिए सबसे प्रभावी रणनीतियों में से एक है, क्योंकि वृक्ष ऊर्ध्वाधर स्थान का उपयोग करते हुए एक साथ अनेक प्रकार के उत्पाद एवं पारिस्थितिकीय लाभ प्रदान करते हैं। फलदार वृक्ष, चारा वृक्ष, नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले वृक्ष, ईंधन–लकड़ी की प्रजातियाँ, इमारती लकड़ी के वृक्ष, बाँस तथा औषधीय पौधों को सीढ़ीदार खेतों, खेत की सीमाओं, गृहवाटिकाओं तथा चरागाहों के आसपास व्यवस्थित किया जा सकता है। इन वृक्षों की जड़ें मृदा को मजबूती प्रदान करती हैं; उनकी छत्रछाया वर्षा की बूंदों के सीधे प्रभाव को कम करती है; उनकी पत्तियों एवं अन्य जैविक अवशेषों से मृदा में जैविक पदार्थ की वृद्धि होती है; तथा उनसे प्राप्त विभिन्न उत्पाद किसानों की आय के स्रोतों में विविधता लाते हैं।

हिमालय में सतत भूमि प्रबंधन से संबंधित अनुसंधान में कृषि वानिकी, कृषि–वृक्ष–पशुधन आधारित प्रणालियाँ (हतवेपसअवचेंजवतंस ेलेजमउे), फसल विविधता तथा मृदा एवं जल संरक्षण को ऐसे उपायों के रूप में विशेष महत्व दिया गया है, जो प्राकृतिक संसाधनों के आधार को कमजोर किए बिना अनेक लाभ प्रदान कर सकते हैं। एक समेकित अध्ययन में पाया गया कि सतत मृदा प्रबंधन से छह वर्षों की अवधि में मृदा जैविक कार्बन का उल्लेखनीय संचय हुआ, जबकि कृषि वानिकी सहित विविधीकृत भूमि उपयोग प्रणालियों में कार्बन भंडारण एवं जलवायु अनुकूलन की पर्याप्त क्षमता दिखाई दी। ये निष्कर्ष ऐसे भूदृश्य–स्तरीय दृष्टिकोण (संदकेबंचम ंचचतवंबी) का समर्थन करते हैं, जिसमें कृषि उत्पादन और पारिस्थितिकी तंत्र का पुनर्स्थापन एक–दूसरे के विरोधी कार्य न होकर परस्पर पूरक माने जाते हैं।

पशुधन का कृषि प्रणाली में एकीकरण पोषक तत्वों के चक्र को बंद करने में सहायता करता है। गाय, भैंस, बकरी, भेड़, मुर्गी, सूअर, याक तथा अन्य पशु गोबर एवं अन्य जैविक अपशिष्ट प्रदान करते हैं और घास, चारा तथा फसल अवशेषों को भोजन एवं आय में परिवर्तित करने में सहायता करते हैं। हालांकि, पशुधन की संख्या क्षेत्र की वहन क्षमता (बंततलपदह बंचंबपजल) के अनुरूप होनी चाहिए। पशुओं की अत्यधिक संख्या से चरागाहों का क्षरण हो सकता है तथा मृदा अपरदन की गति बढ़ सकती है। इसलिए उद्देश्य केवल पशुओं की संख्या बढ़ाना नहीं होना चाहिए, बल्कि चराई प्रबंधन, चारा वृक्षों का विकास,

उपयुक्त परिस्थितियों में पशुओं को बाड़े में रखकर चारा देना, गोबर का उचित संग्रहण तथा चरागाहों का पुनर्जीवनकृइन सभी को एक समेकित प्रणाली के रूप में प्रबंधित करना होना चाहिए।

जलवायु परिवर्तन एवं जैविक कृषि की प्रत्यास्थता में भूमिका

जलवायु–प्रत्यास्थ कृषि (Climate&resilient agriculture) को एक साथ दो उद्देश्यों को पूरा करना आवश्यक हैकृपहला, वर्तमान में उत्पन्न हो रहे जलवायु संबंधी खतरों एवं जोखिमों के अनुकूल स्वयं को ढालना और दूसरा, खाद्य उत्पादन से जुड़े ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन तथा पारिस्थितिकीय क्षति को कम करना। जैविक एवं प्राकृतिक कृषि पद्धतियाँ इन दोनों उद्देश्यों की प्राप्ति में योगदान दे सकती हैं, लेकिन इनके परिणाम मुख्य रूप से कृषि प्रबंधन की गुणवत्ता एवं प्रभावशीलता पर निर्भर करते हैं।

अधिक मात्रा में जैविक पदार्थ वाली मृदा में सामान्यतः जल धारण क्षमता तथा जैविक गतिविधि बेहतर होती है। वर्षा रहित या शुष्क अवधि के दौरान ऐसी मृदा फसलों को अधिक समय तक उपलब्ध नमी प्रदान कर सकती है। दूसरी ओर, अत्यधिक वर्षा के दौरान मृदा संरचना में सुधार तथा सतही मृदा आवरण जल के अंतःप्रवाह को बढ़ा सकते हैं और मृदा अपरदन को कम कर सकते हैं। फसल विविधता विभिन्न प्रजातियों एवं अलग–अलग बुवाई अवधियों में जलवायु संबंधी जोखिमों को वितरित करती है। कृषि वानिकी से छाया उपलब्ध होती है, स्थानीय सूक्ष्म–जलवायु (microclimate) नियंत्रित होती है तथा किसी एक वार्षिक फसल के विफल होने की स्थिति में किसानों को वैकल्पिक आय प्राप्त हो सकती है। स्थानीय बीज प्रणालियाँ किसानों को बदलती जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल किस्मों का चयन करने में सक्षम बनाती हैं।

हिमालयी कृषि से संबंधित साहित्य में विविधीकरण को लगातार कृषि–प्रत्यास्थता का एक महत्वपूर्ण माध्यम माना गया है। सतत कृषि एवं भूमि प्रबंधन की एक समीक्षा में मृदा जैविक पदार्थ का प्रबंधन, कार्बन का अवशोषण एवं भंडारण (carbon sequestration), कृषि वानिकी तथा फसल विविधीकरण को जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन एवं शमन की रणनीतियों के रूप में पहचाना गया है।जलवायु संबंधी लाभ केवल मृदा या जैवभार में संग्रहित कार्बन की मात्रा तक सीमित नहीं हैं। इनमें मृदा अपरदन की रोकथाम, ऊर्जा–गहन कृषि–इनपुट पर निर्भरता में कमी तथा जल एवं तापमान को नियंत्रित करने वाले पारिस्थितिकी तंत्रों का संरक्षण भी शामिल है।

हालाँकि, प्रत्येक परिस्थिति में जैविक कृषि का ग्रीनहाउस गैस संतुलन स्वतः अनुकूल हो, यह आवश्यक नहीं है। यदि जैविक खाद या गोबर की खाद का भंडारण अथवा उपयोग उचित तरीके से नहीं किया जाए, तो इससे मीथेन तथा नाइट्रस ऑक्साइड का उत्सर्जन हो सकता है। कुछ परिस्थितियों में यदि उत्पादन का उचित प्रबंधन न किया जाए और उपज कम हो जाए, तो समान मात्रा में खाद्य उत्पादन के लिए अधिक भूमि की आवश्यकता पड़ सकती है। परिवहन, शीत भंडारण, पशुधन से होने वाला उत्सर्जन तथा भूमि उपयोग में परिवर्तन जैविक कृषि के संभावित जलवायु लाभों को कम या समाप्त कर सकते हैं।

इसलिए उचित प्रश्न केवल यह नहीं होना चाहिए कि "जैविक या पारंपरिक कृषि?" बल्कि यह होना चाहिए कि कौन–सी कृषि प्रणाली पर्याप्त खाद्य उत्पादन करते हुए मृदा कार्बन को बनाए रखती है, प्रदूषण को कम करती है, जैव विविधता का संरक्षण करती है तथा वनों और घासभूमियों पर कृषि विस्तार के दबाव को रोकती है?

हिमालयी परिस्थितियों में सबसे प्रभावी जलवायु रणनीति सामान्यतः कई उपायों के समन्वित पैकेज के रूप में विकसित की जानी चाहिए। इसमें स्थायी मृदा आवरण, कम्पोस्ट एवं जैविक खाद का उचित प्रबंधन, दलहनी फसलों का समावेशन, जहाँ संभव हो वहाँ कम जुताई, कृषि वानिकी, जल संचयन, फसल एवं पशुधन विविधता तथा वनों एवं आर्द्रभूमियों का संरक्षण शामिल होना चाहिए। प्रत्येक घटक एक अलग प्रकार के जोखिम का समाधान करता है और इन सभी उपायों के बीच होने वाली परस्पर क्रियाएँ किसी एक कृषि प्रणाली के लेबल की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण होती हैं।

हिमालय से उपयुक्त उदाहरण

✓ सिक्किमः राज्यव्यापी जैविक कृषि की ओर संक्रमण

सिक्किम सार्वजनिक नीति के माध्यम से जैविक कृषि की ओर संक्रमण का सबसे प्रमुख हिमालयी उदाहरण है। इस दिशा में राजनीतिक प्रतिबद्धता वर्ष 2003 में प्रारंभ हुई। इसके बाद कार्ययोजना, पायलट कार्यक्रम, सिक्किम ऑर्गेनिक मिशन, रासायनिक उर्वरकों पर दी जाने वाली सब्सिडी को चरणबद्ध रूप से समाप्त करना, क्षमता निर्माण, प्रमाणीकरण, बीज एवं मृदा संबंधी पहल तथा रासायनिक कृषि–इनपुट के उपयोग पर प्रतिबंध जैसे कदम उठाए गए। राज्य की नीति का उद्देश्य कुछ चुनिंदा प्रदर्शन फार्मों को जैविक बनाने के बजाय पूरे कृषि क्षेत्र को जैविक कृषि के अंतर्गत लाना था। (डाउन टू अर्थ (2024))

एक नीतिगत विवरण के अनुसार, सिक्किम विश्व का पहला ऐसा राज्य बना जहाँ पूरे कृषि क्षेत्र को प्रमाणित जैविक घोषित किया गया। इस संक्रमण से 66,000 से अधिक कृषक परिवार लाभान्वित हुए तथा राज्य में रासायनिक कीटनाशकों की बिक्री और उपयोग पर प्रतिबंध लगाया गया। यह संक्रमण केवल प्रतिबंध लगाने से संभव नहीं हुआ। जैव–ग्रामों (ठपव–अपससंहमे) के माध्यम से किसानों को कम्पोस्ट, जैविक उर्वरक तथा वनस्पति–आधारित कीटनाशक तैयार करने का प्रशिक्षण दिया गया। वर्मीकम्पोस्ट इकाइयाँ स्थापित की गईं, जैविक बीज एवं रोपण सामग्री की प्रणालियाँ विकसित की गईं, प्रशिक्षण केंद्र तथा प्रदर्शन फार्म स्थापित किए गए और समूह प्रमाणीकरण के माध्यम से छोटे किसानों पर पड़ने वाले आर्थिक एवं प्रशासनिक बोझ को कम किया गया।

इस नीति का पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण ऐसे पर्वतीय राज्य के लिए उपयुक्त था जहाँ ऐतिहासिक रूप से रासायनिक कृषि–इनपुट का उपयोग अपेक्षाकृत कम रहा था तथा कृषि पहले से ही मिश्रित कृषि प्रणालियों में समाहित थी। सिक्किम की रणनीति ने मृदा, स्वास्थ्य, ग्रामीण विकास, शिक्षा, पर्यटन एवं बाजार को एक–दूसरे से जोड़ा। राज्य की जैविक पहचान उसकी अर्थव्यवस्था एवं सामाजिक पहचान का भी हिस्सा बन गई। नीतिगत स्रोत के अनुसार, वर्ष 2014 से 2017 के बीच पर्यटकों की संख्या में 50þ से अधिक वृद्धि हुई, हालांकि पर्यटन में इस वृद्धि का श्रेय केवल जैविक कृषि को नहीं दिया जा सकता।

सिक्किम नीतिगत निरंतरता के महत्व को प्रदर्शित करता है। राज्यव्यापी लक्ष्य निर्धारित होने से कृषि विस्तार, प्रमाणीकरण, कृषि–इनपुट की उपलब्धता, जनसंचार तथा बाजार ब्रांडिंग को एकीकृत करना संभव हुआ। यह उदाहरण व्यापक स्तर पर समन्वित कार्रवाई के महत्व को भी दर्शाता है। अलग–अलग जैविक खेत पड़ोसी खेतों से होने वाले रासायनिक प्रदूषण से प्रभावित हो सकते हैं, उनकी बाजार में सौदेबाजी की क्षमता कम हो सकती है अथवा उन्हें प्रमाणीकरण प्राप्त करने में कठिनाई हो सकती है। समन्वित भूदृश्य–स्तरीय प्रबंधन इन समस्याओं को कम कर सकता है।

सिक्किमः मॉडल की सीमाएँ

सिक्किम को एक सरल एवं पूर्णतः सफल उदाहरण के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जाना चाहिए। वर्ष 2023 में किए गए एक क्षेत्रीय अध्ययन में कम कृषि आय, शहरों की ओर पलायन, पड़ोसी क्षेत्रों से आने वाले सस्ते कृषि उत्पादों से प्रतिस्पर्धा, आपूर्ति शृंखला संबंधी समस्याएँ, प्रमाणीकरण को लेकर अनिश्चितता तथा इस चिंता का उल्लेख किया गया कि केवल जैविक उत्पादन राज्य की पूरी आबादी की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता। ढकाल, एस., एट अल। (2024)रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि सिक्किम की कृषि प्रणाली मुख्यतः छोटी जोतों पर आधारित है। उद्धृत राज्य–केंद्रित दस्तावेजों के अनुसार, लगभग 79þ कृषि जोतों का औसत क्षेत्रफल लगभग 0.62 हेक्टेयर था। ढकाल, एस., एट अल। (2024)

ये समस्याएँ पर्यावरणीय संक्रमण और आजीविका संक्रमण के बीच के महत्वपूर्ण अंतर को स्पष्ट करती हैं। किसान रासायनिक कृषि–इनपुट पर प्रतिबंध को स्वीकार कर सकते हैं, लेकिन यदि श्रम, परिवहन, भंडारण,

उचित मूल्य, बीज तथा विश्वसनीय खरीदार पर्याप्त रूप से उपलब्ध नहीं हैं, तो वे कृषि छोड़ सकते हैं। जैविक प्रमाणीकरण तभी बाजार मूल्य उत्पन्न कर सकता है जब उपभोक्ताओं को प्रमाणन लेबल पर विश्वास हो और किसान स्वीकार्य लागत पर बाजार तक पहुँच सकें। मजबूत स्थानीय प्रसंस्करण एवं उत्पाद एकत्रीकरण व्यवस्था के अभाव में जैविक उत्पाद से मिलने वाला अतिरिक्त मूल्य (चतमउपनउ) उत्पादकों के बजाय बिचौलियों के पास जा सकता है।

रिपोर्ट में आर्थिक दबाव के कुछ ठोस उदाहरण भी दिए गए हैं। लगभग 0.40 हेक्टेयर भूमि पर खेती करने वाले एक किसान ने 50 किलोग्राम बीज से लगभग 200 किलोग्राम आलू उत्पादन तथा परिवार की कृषि गतिविधियों से लगभग ₹2000–3000 प्रति माह की आय की सूचना दी, जिसे अन्य कार्यों से प्राप्त आय द्वारा पूरक किया जाता था। (ढकाल, एस., एट अल। (2024)) दूसरी ओर, अधिक भूमि वाले एक अन्य किसान ने अदरक एवं संतरे का उत्पादन करने के बाद श्रम एवं परिवहन लागतों को ध्यान में रखते हुए कृषि को लाभकारी पाया। इससे स्पष्ट होता है कि कृषि के परिणाम फसल, जोत के आकार, बाजार तक पहुँच तथा प्रबंधन के आधार पर काफी भिन्न हो सकते हैं। (ढकाल, एस., एट अल। (2024))

खाद्य सुरक्षा भी एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। अध्ययन में वर्ष 2017 से 2020 के बीच कई फसलों के उत्पादन में कमी की सूचना दी गई तथा यह बताया गया कि कृषि योग्य भूमि एवं उत्पादन क्षमता सीमित होने के कारण सिक्किम बाहरी क्षेत्रों से खाद्य आपूर्ति पर निर्भर रहता है। यह तथ्य जैविक कृषि को गलत सिद्ध नहीं करता; बल्कि यह दर्शाता है कि किसी राज्य को ऐसी क्षेत्रीय खाद्य रणनीति की आवश्यकता हो सकती है जिसमें स्थानीय जैविक उत्पादन के साथ–साथ सुव्यवस्थित एवं विनियमित व्यापार, भंडारण, प्रसंस्करण तथा पोषण नियोजन को शामिल किया जाए।

इसलिए इक्कीसवीं सदी के लिए सिक्किम की मुख्य सीख यह नहीं है कि "हर जगह तुरंत रासायनिक कृषि–इनपुट पर प्रतिबंध लगा दिया जाए।" बल्कि सीख यह है कि एक विश्वसनीय संक्रमण मार्ग विकसित किया जाए, कृषि–इनपुट हटाने से पहले व्यवहार्य विकल्प तैयार किए जाएँ, संक्रमण अवधि के दौरान किसानों को सहायता प्रदान की जाए, स्थानीय बीजों का संरक्षण किया जाए, बाजार विकसित किए जाएँ तथा पारिस्थितिक एवं आजीविका संबंधी परिणामों की निरंतर निगरानी की जाए।

पूर्वी हिमालयः उठी हुई एवं धँसी हुई क्यारियों के साथ दीर्घकालिक जैविक कृषि

पूर्वी हिमालय में किए गए एक हालिया दीर्घकालिक प्रयोग में संशोधित भूमि विन्यास के साथ जैविक कृषि का अध्ययन किया गया। घाटी क्षेत्रों में एक सामान्य समस्या यह थी कि वर्षा ऋतु में धान की खेती के बाद आसपास की पहाड़ियों से आने वाला जल रिसाव खेतों में जमा रहता था। इसके कारण खेतों का उपयोग कम हो जाता था, उत्पादकता घटती थी तथा मृदा स्वास्थ्य प्रभावित होता था। शोधकर्ताओं ने उठी हुई क्यारियों (तंपेमक इमके) पर सब्जी–आधारित फसल क्रम तथा धँसी हुई क्यारियों (नदामद इमके) पर धान–आधारित फसल क्रम का परीक्षण किया।

इस अध्ययन के परिणाम नाजुक पर्वतीय पारिस्थितिक तंत्रों के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक हैं। अध्ययन में पाया गया कि दीर्घकालिक जैविक कृषि से मृदा के रासायनिक, भौतिक एवं जैविक गुणों में उल्लेखनीय सुधार हुआ। उठी हुई क्यारियों वाली प्रणालियों में गाजरदृभिंडी, आलूदृभिंडी तथा फ्रेंच बीनदृभिंडी फसल क्रम उत्पादक पाए गए, जबकि धँसी हुई क्यारियों में धानदृमटर फसल क्रम ने अच्छा प्रदर्शन किया। शोधकर्ताओं ने कुछ चयनित फसल क्रमों में ऊर्जा उपयोग दक्षता, ऊर्जा उत्पादकता तथा जल उत्पादकता में सुधार की भी सूचना दी। (शर्मा, ई., एट अल। (2019))

इस उदाहरण का महत्व कृषि विज्ञान (हतवदवउल) और जल विज्ञान (ीलकतवसवहल) के एकीकरण में निहित है। जैविक कृषि पद्धतियों को किसी सामान्य पैकेज के रूप में लागू नहीं किया गया, बल्कि उन्हें भूमि के स्वरूप एवं स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप अपनाया गया। उठी हुई क्यारियों ने जल निकासी में सुधार किया और सब्जी उत्पादन को संभव बनाया, जबकि धँसी हुई क्यारियों ने उपलब्ध नमी का

उपयोग धान एवं दलहनी फसलों के उत्पादन के लिए किया। हिमालय में इस प्रकार का स्थानीय अनुकूलन अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि शुष्क ऊपरी ढलान के लिए उपयुक्त कृषि सिफारिश नम घाटी के तल के लिए अनुपयुक्त हो सकती है।

नेपालः पर्वतीय कृषि–पारिस्थितिकी तंत्रों में मृदा स्वास्थ्य का संरक्षण

नेपाल एक पूरक एवं महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है, क्योंकि यहाँ की पर्वतीय कृषि मानसूनी मृदा अपरदन, छोटी जोतों, सीढ़ीदार खेती, श्रमिकों के पलायन तथा स्थानीय जैवभार पर निर्भरता से अत्यधिक प्रभावित होती है। नेपाल में जैविक कृषि पद्धतियों पर किए गए एक समीक्षा अध्ययन में कम्पोस्ट निर्माण, हरी खाद, जैव उर्वरक, कम जुताई, आवरण फसलें, मल्चिंग तथा कृषि वानिकी को महत्वपूर्ण उपायों के रूप में सुझाया गया है। अध्ययन में इन पद्धतियों को मृदा अपरदन नियंत्रण, मृदा में नमी के संरक्षण, उत्सर्जन में कमी, जैव विविधता संरक्षण तथा रासायनिक कृषि–इनपुट पर निर्भरता कम करने से जोड़ा गया है।

इसका व्यावहारिक मॉडल एक एकीकृत सीढ़ीदार कृषि प्रणाली है। सीढ़ियों के किनारों पर चारा देने वाले वृक्ष या घास लगाई जा सकती हैं; वार्षिक फसलों की क्यारियों में कम्पोस्ट एवं मल्च का उपयोग किया जा सकता है; फसल चक्र में दलहनी फसलों को शामिल किया जा सकता है; पशुधन से प्राप्त गोबर को एकत्रित करके कम्पोस्ट बनाया जा सकता है; तथा घरेलू अपशिष्ट जल का उचित प्रबंधन करके जल स्रोतों के प्रदूषण को रोका जा सकता है। किसान समूह बीज उत्पादन, प्रमाणीकरण, कृषि उत्पादों के संग्रहण तथा विपणन का समन्वय कर सकते हैं। इस प्रकार प्राप्त परिणाम केवल एक जैविक खेत तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह पर्वतीय परिस्थितियों के अनुकूल एक पोषक तत्त्व एवं जल प्रबंधन प्रणाली का रूप ले लेता है।

हिमाचल प्रदेशः स्वदेशी कृषि से सीख और संक्रमण की चुनौतियाँ

हिमाचल प्रदेश में कृषि एवं इससे संबद्ध गतिविधियाँ आज भी ग्रामीण जीवन का महत्वपूर्ण आधार हैं। स्थानीय समुदायों द्वारा ऐतिहासिक रूप से फसल चक्र, जैविक खाद, खेत से बाहर उपलब्ध जैविक अपशिष्ट तथा जैविक पोषक तत्त्व एवं कीट प्रबंधन जैसी पद्धतियों का उपयोग किया जाता रहा है। हिमाचल प्रदेश में जैविक कृषि पर किए गए एक समीक्षा अध्ययन में बताया गया है कि रासायनिक उर्वरक एवं कीटनाशक मृदा की उर्वरता तथा जल निकायों को प्रभावित कर सकते हैं और जैविक कृषि पद्धतियों को आजीविका सुरक्षा एवं पारिस्थितिक संरक्षण की दिशा में एक संभावित माध्यम के रूप में प्रस्तुत किया गया है। (आईएफओएएम – ऑर्गेनिक्स इंटरनेशनल (2019))

हिमाचल प्रदेश का उदाहरण यह भी स्पष्ट करता है कि कृषि संक्रमण को सामाजिक परिस्थितियों से जोड़कर देखना आवश्यक है। जैविक कृषि प्रणालियों के लिए पर्याप्त जैवभार, पशुधन अथवा कम्पोस्ट, तकनीकी ज्ञान, श्रम तथा कई बार कृषि कार्यों के समय में परिवर्तन की आवश्यकता होती है। यदि युवा आबादी रोजगार के लिए पलायन कर जाती है, तो हाथ से निराई–गुड़ाई, कम्पोस्ट निर्माण, कटाई तथा सीढ़ीदार खेतों के रखरखाव के लिए आवश्यक श्रम की कमी हो सकती है। इसलिए सार्वजनिक कार्यक्रमों में जैविक कृषि को केवल रासायनिक उर्वरक के ब्रांड में परिवर्तन के रूप में नहीं, बल्कि ग्रामीण रोजगार एवं पारंपरिक ज्ञान–आधारित कृषि प्रणाली के रूप में देखा जाना चाहिए।

सिक्किम और दार्जिलिंग में बड़ी इलायची एवं पारंपरिक कृषि वानिकी

बड़ी इलायची कृषि वानिकी में समाहित पर्वतीय फसल का एक उपयोगी उदाहरण है। इसकी खेती आंशिक छाया में की जा सकती है तथा इसे वृक्षों, पत्ती–कचरे और स्थानीय पोषक तत्त्व चक्रों के साथ एकीकृत किया जा सकता है। सिक्किम में किए गए जलागम अध्ययन में पाया गया कि वन एवं बड़ी इलायची आधारित कृषि वानिकी प्रणालियाँ खुले कृषि क्षेत्रों की तुलना में अधिक मृदा संरक्षण करती हैं तथा कृषि वानिकी आधारित हस्तक्षेप मृदा की उर्वरता एवं उत्पादकता में सुधार कर सकते हैं।

हालाँकि, यह प्रणाली जोखिमों से पूरी तरह मुक्त नहीं है। बड़ी इलायची का उत्पादन रोग प्रबंधन, छाया के उचित नियमन, बाजार मूल्यों तथा जलवायु परिस्थितियों पर निर्भर करता है। यदि खाद्य फसलों के स्थान पर केवल एक नकदी फसल को अत्यधिक प्राथमिकता दी जाए या वह किसी नए रोगजनक के प्रति संवेदनशील हो जाए, तो किसानों की आर्थिक एवं खाद्य सुरक्षा प्रभावित हो सकती है। इसलिए उपयुक्त सीख यह है कि बड़ी इलायची को पूरे क्षेत्र की एकमात्र फसल बनाने के बजाय विविधीकृत कृषि वानिकी परिदृश्य (diversified agroforestry mosaic) का हिस्सा बनाए रखा जाए।

हिमालयी परिस्थितियों के लिए उपयुक्त प्राकृतिक कृषि पद्धतियाँ

एक व्यावहारिक हिमालयी कृषि कार्यक्रम में किसी एक तकनीक को बढ़ावा देने के बजाय निम्नलिखित उपायों को समन्वित रूप से अपनाया जाना चाहिएः

1. समोच्च–आधारित भूमि विन्यास

क्यारियों, नालियों, झाड़ियों तथा जल निकासी की संरचनाओं को ढलान की दिशा एवं समोच्च रेखाओं के अनुरूप व्यवस्थित किया जाना चाहिए। कृषि उत्पादन को बढ़ाने से पहले सीढ़ीदार खेतों की मरम्मत एवं सुदृढ़ीकरण किया जाना आवश्यक है।

2. स्थायी मृदा आवरण

फसल अवशेष, पत्ती मल्च, आवरण फसलें, जीवित मल्च तथा घासयुक्त सीढ़ी–किनारों का उपयोग किया जाना चाहिए। मानसून से पहले मृदा को खुला एवं बिना आवरण के छोड़ने से बचना चाहिए।

3. कम्पोस्ट एवं जैविक खाद का प्रबंधन

गोबर की खाद, घरेलू जैविक अपशिष्ट तथा फसल अवशेषों से कम्पोस्ट तैयार किया जाना चाहिए, ताकि पोषक तत्त्व स्थिर रूप में उपलब्ध रहें तथा रोगजनकों एवं खरपतवार के बीजों की समस्या कम हो। पोषक तत्त्वों के नुकसान को कम करने के लिए गोबर एवं जैविक खाद को ढककर सुरक्षित स्थान पर संग्रहित किया जाना चाहिए।

4. दलहनी फसलों का समावेशन

फसल चक्र एवं मिश्रित खेती में सेम, मटर, मसूर, क्लोवर, लोबिया तथा अन्य स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल दलहनी फसलों को शामिल किया जाना चाहिए। ये फसलें आहार में विविधता लाने के साथ–साथ जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण में योगदान देती हैं।

5. कृषि वानिकी

खेतों की सीमाओं, सीढ़ीदार खेतों के किनारों तथा घर के आसपास उपयुक्त चारा वृक्ष, फलदार वृक्ष, नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले वृक्ष, ईंधन–लकड़ी देने वाले वृक्ष तथा मृदा को बाँधकर रखने वाले वृक्षों का रोपण किया जाना चाहिए। आक्रामक विदेशी प्रजातियों से बचना चाहिए तथा स्थानीय एवं देशज प्रजातियों के प्राकृतिक पुनर्जनन को संरक्षण दिया जाना चाहिए।

6. जल संचयन एवं जल निकासी

खेत तालाब, छोटी जल–संग्रहण संरचनाएँ, जल अंतःप्रवेशन गड्ढे, समोच्च खाइयाँ तथा सुरक्षित जल निकासी मार्ग विकसित किए जाने चाहिए। जल संरक्षण के साथ उचित जल निकासी भी आवश्यक है, ताकि जल से संतृप्त ढलानों के अस्थिर होने तथा भूस्खलन का जोखिम न बढ़े।

7. बीज संप्रभुता एवं स्थानीय बीज संरक्षण

सामुदायिक बीज बैंक स्थापित एवं संचालित किए जाने चाहिए, स्थानीय किस्मों का दस्तावेजीकरण किया जाना चाहिए, बीज की गुणवत्ता का परीक्षण किया जाना चाहिए तथा किसानों द्वारा उपयुक्त बीजों के चयन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। विश्वसनीय स्थानीय बीज प्रणाली के अभाव में जैविक कृषि स्थानीय परिस्थितियों के लिए अनुपयुक्त बाहरी किस्मों पर निर्भरता बढ़ा सकती है।

8. जैविक कीट प्रबंधन

कीट प्रबंधन की शुरुआत प्रतिरोधी किस्मों, फसल चक्र, आवासीय एवं जैव विविधता प्रबंधन, स्वच्छता तथा नियमित निगरानी से की जानी चाहिए। जहाँ वैज्ञानिक प्रमाण एवं स्थानीय नियम इसकी अनुमति देते हों, वहाँ वनस्पति–आधारित या सूक्ष्मजीव–आधारित उत्पादों का उपयोग किया जा सकता है।

9. पशुधन का एकीकरण

पशुओं की संख्या को उपलब्ध चारे तथा क्षेत्र की वहन क्षमता के अनुरूप रखा जाना चाहिए। गोबर के उचित संग्रहण, जहाँ उपयुक्त हो वहाँ बाड़े में पशुपालन (जंसस मिमकपदह), चरागाहों का क्रमिक उपयोग तथा पशु चिकित्सा सेवाओं में सुधार किया जाना चाहिए।

10. कटाई–पश्चात प्रबंधन प्रणाली

स्थानीय स्तर पर ग्रेडिंग, भंडारण, सुखाने एवं प्रसंस्करण की सुविधाएँ विकसित की जानी चाहिए। जहाँ आवश्यक हो, वहाँ शीत–श्रृंखला (बवसक बींपद) की व्यवस्था तथा किसान उत्पादक संगठनों (थ्ंतउमत च्तवकनबमत व्तहंदप्रंजपवदेकृथ्च्ेे) को मजबूत किया जाना चाहिए, ताकि पर्यावरण–अनुकूल एवं जैविक उत्पादन से प्राप्त अतिरिक्त बाजार मूल्य का उचित लाभ किसानों तक पहुँच सके।

11. सहभागितापूर्ण कृषि विस्तार

प्रदर्शन फार्म, किसान क्षेत्र विद्यालय (थ्ंतउमत थ्पमसकै बीववसे), महिला समूह, युवा प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा स्थानीय पारिस्थितिक ज्ञान को कृषि पद्धतियों के विकास एवं अनुकूलन का आधार बनाया जाना चाहिए। कृषि तकनीकों का चयन ऊँचाई तथा जलागम क्षेत्र की स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार किया जाना चाहिए।

12. निगरानी एवं मूल्यांकन

केवल प्रमाणित जैविक कृषि के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रफल की निगरानी पर्याप्त नहीं है। इसके साथ मृदा जैविक कार्बन, जल अंतःप्रवेशन, मृदा अपरदन, जल गुणवत्ता, फसल उपज, जैव विविधता, कृषि आय, श्रम की आवश्यकता तथा ग्रामीण पलायन जैसे संकेतकों का भी नियमित रूप से आकलन किया जाना चाहिए। इन कृषि पद्धतियों को ऊँचाई के अनुसार अनुकूलित किया जाना आवश्यक है। अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में गहन बागवानी की तुलना में पशुपालन, चारा प्रबंधन, संरक्षित खेती तथा ठंड–सहिष्णु फसलों का अधिक महत्व हो सकता है। मध्य पर्वतीय क्षेत्रों में सीढ़ीदार खेती, कृषि वानिकी, मिश्रित कृषि तथा जल प्रबंधन प्रमुख भूमिका निभाते हैं। निम्न घाटी क्षेत्रों में धान–आधारित कृषि प्रणालियाँ, उठी हुई क्यारियाँ, सब्जी उत्पादन, फलोद्यान तथा बाजार तक पहुँच अधिक महत्वपूर्ण हो सकती है।

इस प्रकार, हिमालयी कृषि के लिए एक समान राज्यव्यापी कृषि पैकेज प्रभावी नहीं होगा, यदि उसमें विभिन्न ऊँचाई वाले क्षेत्रों की इस ऊर्ध्वाधर पारिस्थितिक विविधता (vertical diversity) को ध्यान में नहीं रखा जाता।

सफलता के लिए आर्थिक और संस्थागत परिस्थितियाँ

यदि कृषक परिवार सम्मानजनक आजीविका अर्जित करने में सक्षम नहीं होंगे, तो कृषि से प्राप्त पारिस्थितिकीय लाभ लंबे समय तक कायम नहीं रह सकते। प्राकृतिक एवं जैविक कृषि की सफल ओर संक्रमण के लिए निम्नलिखित संस्थागत सहयोग आवश्यक हैं।

- **निष्पक्ष बाजार और स्थानीय मूल्य संवर्धन**

जैविक प्रमाणीकरण उत्पादों को अन्य उत्पादों से अलग पहचान दिलाने में सहायक हो सकता है, लेकिन केवल प्रमाणीकरण से बाजार सुनिश्चित नहीं होता। किसानों को उत्पादों का सामूहिकीकरण, पारदर्शी श्रेणीकरण, विश्वसनीय खरीदार, भंडारण, प्रसंस्करण, ब्रांडिंग तथा परिवहन जैसी सुविधाओं की आवश्यकता होती है। अदरक को सुखाकर या प्रसंस्कृत करके अधिक मूल्य प्राप्त किया जा सकता है; फलों से जूस या संरक्षित उत्पाद (चतमेमतअमे) बनाए जा सकते हैं; दालों और मोटे अनाजों को साफ करके पैक किया जा सकता है; जबकि औषधीय एवं सुगंधित पौधों का गुणवत्ता नियंत्रण के अंतर्गत मूल्य संवर्धन किया जा सकता है। विद्यालयों, अस्पतालों और पर्यटन क्षेत्र के लिए सार्वजनिक खरीद की व्यवस्था स्थिर मांग उत्पन्न करने में सहायक हो सकती है।

- **संक्रमण अवधि के लिए वित्तीय सहायता**

कृषि प्रणाली में परिवर्तन के दौरान उत्पादन या बाजार तक पहुँच अनिश्चित हो सकती है, जबकि किसानों को श्रम और अन्य आवश्यक लागतों का वहन करना जारी रखना पड़ता है। पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं के लिए भुगतान (च्लउमदजे वित म्बवेलेजमउ ैमतअपबमे), अस्थायी संक्रमणकालीन सहायता, फसल बीमा, रियायती ऋण तथा कम्पोस्ट इकाइयों, सिंचाई, सीढ़ीदार खेतों और भंडारण सुविधाओं के लिए अनुदान किसानों के जोखिम को कम कर सकते हैं। सहायता केवल कागजी कार्यवाही के आधार पर नहीं, बल्कि मृदा अपरदन में कमी, मृदा गुणवत्ता में सुधार, पुनर्स्थापित सीढ़ीदार खेतों तथा जैव विविधता में वृद्धि जैसे मापनीय परिणामों को प्रोत्साहित करने वाली होनी चाहिए।

- **किसान संगठन**

छोटी और बिखरी हुई जोत किसानों की सौदेबाजी की क्षमता को कमजोर करती हैं। सहकारी समितियाँ तथा किसान उत्पादक संगठन (थ्ंतउमत च्तवकनबमत व्तहंदप्रंजपवदेकृथ्च्वे) प्रमाणीकरण, परिवहन, कृषि मशीनरी, प्रसंस्करण, बीज उत्पादन और विपणन जैसी गतिविधियों को साझा रूप से संचालित कर सकते हैं। यदि सदस्य निर्धारित मानकों को अच्छी तरह समझते हों और अभिलेख पारदर्शी रखे जाएँ, तो ये संगठन आंतरिक नियंत्रण प्रणालियों को भी अधिक प्रभावी ढंग से संचालित कर सकते हैं।

- **अनुसंधान और स्थानीय प्रमाण**

अनुसंधान केंद्रों को विभिन्न ऊँचाई, मृदा प्रकार, ढाल, वर्षा की स्थिति और फसलों के अनुसार कृषि पद्धतियों का परीक्षण करना चाहिए। दीर्घकालिक प्रयोग विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि मृदा कार्बन, जैव विविधता और मृदा अपरदन से संबंधित परिणाम स्पष्ट होने में कई वर्ष लग सकते हैं। पूर्वी हिमालय में किए गए उठे हुए एवं धँसे हुए क्यारियों (तंपेमक– ंदक ेनदामद इमके) के प्रयोग का महत्व इसी कारण है कि इसमें केवल एक मौसम के परिणामों के बजाय दीर्घकालिक प्रबंधन का अध्ययन किया गया है।. (शर्मा, ई., एट अल। (2019))

- **लैंगिक समानता और युवाओं की भागीदारी**

महिलाएँ अक्सर बीज चयन, पशुपालन, कम्पोस्ट तैयार करने, घरेलू बागवानी, कृषि उत्पादों के प्रसंस्करण तथा स्थानीय विपणन जैसी गतिविधियों का प्रबंधन करती हैं, जबकि पुरुषों का एक बड़ा हिस्सा मजदूरी

के लिए प्रवास कर सकता है। ऐसे कार्यक्रम, जो परिसंपत्तियों और आय पर महिलाओं के नियंत्रण को ध्यान में नहीं रखते, अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने में कमजोर साबित हो सकते हैं। युवाओं को पारिस्थितिकीय कृषि उत्पादन, कृषि सेवाओं, डिजिटल विपणन, प्रसंस्करण, पर्यटन तथा परिदृश्य पुनर्स्थापन जैसे क्षेत्रों में प्रशिक्षण प्रदान करने से कृषि को एक व्यवहार्य एवं सम्मानजनक व्यवसाय बनाया जा सकता है, न कि केवल वैकल्पिक या अवशिष्ट गतिविधि।

- **विश्वसनीय निगरानी और अनुपालन व्यवस्था**

किसी भी प्रमाण–पत्र या लेबल का वास्तविक अर्थ और विश्वसनीयता होना आवश्यक है। प्रमाणीकरण प्रणालियों में नियमित निरीक्षण, उत्पादों की स्रोत–आधारित पहचान एवं पता लगाने की व्यवस्था (जतंबमंइपसपजल), स्थानीय भाषा में अभिलेख, आवश्यकता के अनुसार मृदा एवं कृषि–निवेशों का परीक्षण तथा भ्रामक दावों के विरुद्ध प्रभावी कार्रवाई आवश्यक है। सिक्किम का अनुभव प्रमाणीकरण के महत्व और उसकी संवेदनशीलता दोनों को दर्शाता है। सामूहिक प्रमाणीकरण प्रणालियाँ लागत को कम कर सकती हैं, लेकिन कमजोर ऑडिट व्यवस्था या प्रभावी संचार के अभाव में किसानों और उपभोक्ताओं का विश्वास प्रभावित हो सकता है। इसलिए एक विश्वसनीय प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जो छोटे किसानों के लिए अनुपालन को असंभव बनाए बिना पर्याप्त रूप से कठोर और पारदर्शी हो।

जैविक कृषि अपने आप किन समस्याओं का समाधान नहीं कर सकती

जैविक एवं प्राकृतिक कृषि जलागम नियोजन, वन संरक्षण, सड़क निर्माण एवं नियमन, आपदा तैयारी अथवा जलवायु नीति का विकल्प नहीं हैं। कोई खेत जैविक हो सकता है, लेकिन यदि गलत तरीके से बनाई गई सड़क उसके प्राकृतिक जल निकासी मार्ग को काट देती है, कोई खदान या पत्थर की खदान ढलान को अस्थिर कर देती है, अथवा कोई नगर सिंचाई नहर में अपशिष्ट छोड़ता है, तो केवल जैविक कृषि उस समस्या का समाधान नहीं कर सकती। पारिस्थितिकी तंत्र के संरक्षण के लिए कृषि, वानिकी, ग्रामीण विकास, परिवहन, पर्यटन, ऊर्जा तथा आपदा प्रबंधन के बीच समन्वित प्रयास आवश्यक हैं।

जैविक कृषि अत्यधिक पशु चराई, वनों का रूपांतरण, अनियोजित निर्माण, खनन, आक्रामक प्रजातियों के प्रसार अथवा सिंचाई अवसंरचना के क्षरण की भरपाई भी नहीं कर सकती। यह उच्च आय की गारंटी भी नहीं देती। सिक्किम में बाजार, परिवहन, उत्पादन, प्रमाणीकरण तथा प्रतिस्पर्धा से जुड़ी कठिनाइयाँ इस तथ्य को स्पष्ट करती हैं।

इसी प्रकार, केवल "जैविक" लेबल किसी कृषि प्रणाली की पारिस्थितिक मजबूती की गारंटी नहीं देता। वृक्षों की छाया में उगाई जाने वाली निर्यात–उन्मुख फसल लाभकारी हो सकती है, जबकि ऐसी जैविक एकल–फसल प्रणाली, जो खाद्य फसलों को विस्थापित करती हो और जिसके लिए लंबी दूरी तक परिवहन की आवश्यकता होती हो, अपेक्षाकृत कम प्रत्यास्थ हो सकती है। प्राकृतिक इनपुट का भी अनुचित उपयोग किया जा सकता है; गोबर या जैविक खाद जल को प्रदूषित कर सकती है; वनस्पति–आधारित कीटनाशक गैर–लक्षित जीवों को नुकसान पहुँचा सकते हैं; तथा कम उत्पादन के कारण सीमांत एवं संवेदनशील ढलानों पर खेती का दबाव बढ़ सकता है। इसलिए समाधान प्रमाण–आधारित कृषि–पारिस्थितिकी (evidence&based agroecology) तथा परिणाम–आधारित निगरानी में निहित है।

अतः हिमालय में प्राकृतिक एवं जैविक कृषि के पक्ष में सबसे मजबूत तर्क यह नहीं है कि यह एक पूर्ण समाधान है। इसका महत्व इस बात में है कि यह किसानों एवं संस्थानों को उन जैविक एवं पारिस्थितिक प्रक्रियाओं को पुनर्स्थापित करने का एक व्यावहारिक ढाँचा प्रदान करती है, जिन पर पर्वतीय कृषि निर्भर करती है। इसका प्रभाव विशेष रूप से तब अधिक होता है जब इसे सीढ़ीदार खेती, कृषि वानिकी, फसल विविधता, स्थानीय बीज, पशुधन एकीकरण तथा जलागम प्रबंधन के साथ जोड़ा जाता है।

इक्कीसवीं सदी के लिए कार्य–योजना

आने वाले दशकों के लिए हिमालयी कृषि रणनीति को तीन स्तरों पर आगे बढ़ाया जाना चाहिए।

- **खेत के स्तर पर**

किसानों को स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप कृषि पैकेज उपलब्ध कराए जाने चाहिए, जिनमें मृदा आवरण, कम्पोस्ट, दलहनी फसलें, विविधीकृत फसलें, जल प्रबंधन, कृषि वानिकी तथा एकीकृत पशुधन प्रबंधन शामिल हों। कृषि विस्तार सेवाओं में केवल एकतरफा निर्देश देने के बजाय प्रदर्शन प्लॉट, किसान–आधारित प्रयोग तथा सहभागी सीखने को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

- **जलागम स्तर पर**

गाँवों को सामूहिक रूप से मृदा अपरदन के संवेदनशील क्षेत्रों, जलस्रोतों एवं झरनों, जल निकासी मार्गों, वनों, चरागाहों तथा कृषि योग्य ढलानों का मानचित्रण करना चाहिए। सामुदायिक कार्रवाई के माध्यम से सीढ़ीदार खेतों का रखरखाव, नदी एवं जलधारा के किनारे वनस्पति पट्टियों का संरक्षण, चराई का नियमन, जलस्रोतों एवं झरनों का पुनर्जीवन तथा कीट एवं बीज प्रबंधन का समन्वय किया जा सकता है। इन पारिस्थितिकीय कार्यों को बनाए रखने के लिए पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं के लिए भुगतान (चै) या सार्वजनिक कार्य कार्यक्रमों के माध्यम से स्थानीय समुदायों को आर्थिक प्रोत्साहन दिया जा सकता है।

- **नीति स्तर पर**

सरकारों को संक्रमण अवधि के लिए वित्तीय सहायता, अनुसंधान, प्रमाणीकरण, सामुदायिक बीज बैंक, बाजार अवसंरचना, जलवायु बीमा तथा सार्वजनिक खरीद व्यवस्था उपलब्ध करानी चाहिए। जोखिम के आधार पर हानिकारक कृषि–इनपुट तथा भूमि उपयोग को विनियमित किया जाना चाहिए, लेकिन प्रतिबंधों के साथ व्यवहार्य एवं सुलभ विकल्प भी उपलब्ध कराए जाने चाहिए।

सड़क एवं निर्माण संबंधी योजनाओं में ढलान की स्थिरता तथा जल निकासी को अनिवार्य रूप से शामिल किया जाना चाहिए। जैविक कृषि को केवल कृषि विभाग तक सीमित रखने के बजाय इसे जलवायु परिवर्तन अनुकूलन, जैव विविधता संरक्षण, पोषण सुरक्षा तथा ग्रामीण रोजगार से संबंधित नीतियों के साथ एकीकृत किया जाना चाहिए।

पूर्वी हिमालय में किए गए प्रयोग से यह स्पष्ट होता है कि जैविक कृषि की रणनीति निर्धारित करते समय भूमि के स्वरूप तथा जल की स्थिति को प्रमुख आधार बनाया जाना चाहिए। (शर्मा, ई., एट अल। (2019)) नेपाल तथा सिक्किम की पारंपरिक कृषि प्रणालियाँ यह दर्शाती हैं कि मृदा संरक्षण, कृषि वानिकी, मल्चिंग तथा मिश्रित कृषि पर्वतीय समुदायों पर थोपी गई बाहरी तकनीकें नहीं हैं; बल्कि ये ऐसी स्थानीय पद्धतियाँ हैं जिन्हें आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान एवं तकनीकों के माध्यम से और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। (लेयेक एट अल 2026)

निष्कर्ष

इक्कीसवीं सदी में प्राकृतिक एवं जैविक कृषि नाजुक हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र के संरक्षण के लिए एक महत्वपूर्ण समाधान बन सकती है, लेकिन तभी जब "जैविक" का अर्थ केवल सिंथेटिक रसायनों की अनुपस्थिति तक सीमित न हो। वास्तविक उद्देश्य ऐसी पुनर्योजी पर्वतीय कृषि विकसित करना होना चाहिए, जो मृदा को ढके रखे, जैवभार को पुनः मृदा में लौटाए, जल का संरक्षण करे, जैव विविधता की रक्षा करे, वृक्षों एवं पशुधन को कृषि प्रणाली में एकीकृत करे, स्थानीय बीजों का संरक्षण करे तथा किसानों के लिए विश्वसनीय एवं स्थायी आजीविका सुनिश्चित करे।

हिमालयी कृषि प्रणालियों से प्राप्त प्रमाण एक स्पष्ट दिशा की ओर संकेत करते हैं। खुले एवं असुरक्षित कृषि ढलानों से संरक्षित तथा विविधीकृत भूमि उपयोग प्रणालियों की तुलना में अधिक मात्रा में मृदा एवं पोषक तत्वों का क्षरण होता है। कृषि वानिकी, बाँस या झाड़ू घास (इतववउ हतें), सीढ़ीदार खेती, मल्चिंग, गोबर की खाद तथा आवरण फसलें मृदा अपरदन को कम करने और मृदा की कार्यक्षमता में सुधार करने में सहायक हो सकती हैं। विविधीकृत कृषि प्रणालियाँ एवं स्थानीय भू–प्रजातियाँ (संदकतंबमे) खाद्य एवं पारिस्थितिक सुरक्षा को मजबूत करती हैं। उपयुक्त उठी हुई एवं धँसी हुई क्यारियों के साथ दीर्घकालिक जैविक कृषि प्रणालियाँ मृदा स्वास्थ्य तथा संसाधन उपयोग दक्षता में सुधार कर सकती हैं। सिक्किम में राज्य स्तर पर किए गए प्रयास बड़े पैमाने पर कृषि संक्रमण की संभावना को प्रदर्शित करते हैं, जबकि वहाँ सामने आई आर्थिक एवं संस्थागत समस्याएँ यह चेतावनी देती हैं कि प्रमाणीकरण को प्रक्रिया का अंतिम लक्ष्य नहीं माना जाना चाहिए।

हिमालय का भविष्य संरक्षण और कृषि में से किसी एक को चुनने से सुरक्षित नहीं होगा। यह भविष्य तभी सुरक्षित होगा जब कृषि को संरक्षण के महत्वपूर्ण साधनों में से एक बनाया जाए। वे कृषि क्षेत्र जो ढलानों की रक्षा करते हैं, जल को संरक्षित रखते हैं, बीजों का संरक्षण करते हैं, परागणकर्ताओं को सहारा देते हैं, कार्बन का भंडारण करते हैं तथा पर्वतीय गाँवों में युवाओं के लिए आजीविका बनाए रखते हैं, उन्हें पारिस्थितिक अवसंरचना (मबवसवहपबंस पदतिंजतनबजनतम) के रूप में देखा जाना चाहिए। विज्ञान, स्वदेशी ज्ञान, न्यायसंगत बाजार व्यवस्था तथा मजबूत सार्वजनिक संस्थानों के सहयोग से प्राकृतिक एवं जैविक कृषि इस पारिस्थितिक अवसंरचना को आने वाली सदी के लिए व्यवहार्य एवं टिकाऊ बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है।

संदर्भ सूची

1. बजराचार्य, आर.एम., अत्रेया, के., राऊत, एन., श्रेष्ठ, एच.एल., गौतम, डी.के., और दहल, एन.आर. (2016)। हिमालय में विविधीकृत कृषि एवं भूमि प्रबंधनः जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन एवं शमन के लिए निहितार्थ। जर्नल ऑफ़ माउंटेन एरिया रिसर्च, 1, 40–52।

2. चक्रवर्ती, ए. (एन.डी.). भारत के प्रथम पूर्णतः जैविक राज्य संघ में जैविक कृषि की ओर बदलाव क्यों धीमा पड़ रहा है। इंडियास्पेंड।

3. ढकाल, एस., चौलागैन, बी., भट्टराई, आर.के., पंडित, ए., डांगी, बी., और दहल, आर. (2024)। नेपाल के पर्वतीय कृषि–समस्थितिकी तंत्र में गड़बड़ी, स्वास्थ्य के संरक्षण के लिए जैविक दृष्टिकोणः एक समीक्षा। कृषि विज्ञान में रुझान, 3(4), 329–343।

4. गुप्ता, पी., और शर्मा, वी. (2021)। हिमाचल में जैविक कृषिः अतीत एवं वर्तमान से प्राप्त सीख। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एग्रीकल्चर एंड न्यूट्रिशन, 3(1), 1–5

5. आईएफओएएम – ऑर्गेनिक्स इंटरनेशनल। (2019)। हिमालय पर विशेष ध्यानः भूटान, भारत एवं नेपाल में जैविक, कृषि संबंधी नीतियाँ।

6. लेयेक, जे., दास, ए., बिस्वाकर्मा, एन., रविशंकर, एन., रंगप्पा, के., सैकिया, आर., मकदोह, बी., बैसवार, पी., अंसारी, एम.ए., डे, पी., शर्मा, के., बराल, के., पांडे, ए., परमानिक, बी., सतपति, एस., डे, यू., और हजारिका, एस। (2026)। कृषि विविधीकरण एवं तंत्र सेवाओं में सुधार। फ्रंटियर्स इन सस्टेनेबल फूड सिस्टम्स, 10, लेख

7. मिश्रा, पी.के., और राय, एस.सी. (2013)। यूक्रेन में किसानों द्वारा स्वदेशी संरचना एवं जल संरक्षण पद्धतियों का उपयोग। इंडियन जर्नल ऑफ ट्रेडिशनल नॉलेज, 12(3), 454–464।

8. परिहार, एम., बिष्ट, जे.के., मीना, वी., यादव, आर.पी., एवं अन्य। (2019)। क्लाइमेट–लचीली कृषि उद्योगों के लिए पर्वतीय परिचय तंत्रः एक समीक्षा। जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय स्थिरता, 7(2), 125.

9. रविशंकर, एन., एट अल। (2025)। प्राकृतिक अनुसंधान कृषिः स्थिति एवं भविष्य की रणनीतियाँ। आईसीएआर–भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान।

10. शर्मा, ई., राय, एस.सी., और शर्मा, आर. (2001)। पर्वतीय कृषि तटबंध में तटबंध, जल एवं पोषक तत्वों का संरक्षणः हिमालय का एक अध्ययन। पर्यावरण प्रबंधन जर्नल, 61(2), 123–135।

11. शर्मा, जी., प्रताप, यू., शर्मा, ई., रसूल, जी., और अवस्थे, आर.के. (2016)। यूक्रेन में कृषि–जैव विविधताः सामाजिक–सांस्कृतिक महत्व, स्थिति, प्राथमिकताएँ एवं चुनौतियाँ। आईसीआईएमओडी वर्किंग पेपर 2016/5।

12. शर्मा, जी. (2026)। स्वदेशी उर्वरता के लिए स्वदेशी ज्ञान का उपयोगः हिमालय में पारंपरिक कृषि वानिकी–आधारित कृषि। इंडियन जर्नल ऑफ ट्रेडिशनल नॉलेज।

13. शर्मा, ई., एट अल। (2019)। लोकतंत्र में जैविक कृषि के लिए रणनीति के रूप में तंत्र सेवाओं एवं उद्यमों की स्थिरता। एकीकृत पर्वतीय विकास के लिए अंतर्राष्ट्रीय केंद्र।

14. डाउन टू अर्थ. (2024)। अनुकूलन कृषिः भारतीय किसानों को जैविक एवं प्राकृतिक कृषि की ओर जाने की आवश्यकता क्यों है।

15. सीएबीआई. (रा।)। कृषिः हिंदूकुश हिमाचली क्षेत्र में कृषि–जैव विविधता एवं सतत दृष्टिकोण। ब।ठप् डिजिटल लाइब्रेरी।

16. प्रताप, टी. (2020)। हिमाचली कृषि अर्थव्यवस्था का भविष्य। जी.बी. पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान।

17. पैनोरमा. (रा।)। प्लांट की बायोलॉजिकल एलेक्ट्रिकल एसोसिएटेड स्टेट नीति एवं प्लांट प्लांट मिशन, भारत।

उत्तराखंड की जैविक विरासत (मंडवा एवं झंगोरा): सतत आजीविका एवं पोषण सुरक्षा के लिए पारंपरिक मिलेट्स का संरक्षण

पूजा जुयाल[1] ', प्रभा बी. ढौंडियाल[1], कीर्तिका पडलिया[1], बीना तिवारी फुलारा[2], कृष्ण कुमार टम्टा[2], प्रीति पंत[2]

[1]वनस्पति विज्ञान विभाग, विज्ञान संकाय, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखंड 263139, भारत

[2]वानिकी और पर्यावरण विज्ञान विभाग, भौमिकी एवं पर्यावरण विज्ञान संकाय, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखंड 263139, भारत

सार

उत्तराखंड का हिमालयी क्षेत्र पारंपरिक खेती, जैविक कृषि विरासत और विस्तृत जैव विविधता के लिए जाना जाता है। यहाँ की खेती पारंपरिक ज्ञान, पशुपालन, मिश्रित खेती और स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रही है। इस कृषि प्रणाली में पारंपरिक मिलेट फसलें, जैसे मंडवा और झंगोरा, बहुत महत्वपूर्ण हैं। ये फसलें कम पानी, कम उर्वर भूमि और प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक उत्पादन देने में सक्षम हैं, जिससे वे जलवायु परिवर्तन में जलवायु–स्मार्ट फसलों के रूप में उभरकर सामने आई हैं (एफएओ, 2023; आईपीसीसी, 2022; आईसीआरआईएसएटी, 2022)।

झंगोरा उच्च फाइबर, आवश्यक खनिज तत्वों और कम ग्लाइसेमिक इंडेक्स वाला पौष्टिक अनाज है, जबकि मंडवा आहार रेशा, आयरन, प्रोटीन और कैल्शियम का एक अच्छा स्रोत है। नियमित रूप से इनका सेवन करना पोषण को सुरक्षित रखता है, मधुमेह को नियंत्रित करता है और जीवनशैली जनित रोगों की रोकथाम में सहायक माना गया है (भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद राष्ट्रीय पोषण संस्थान, 2020; आईसीएआर इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मिलेट्स रिसर्च, 2017)।

उत्तराखंड की सांस्कृतिक परंपराओं में इन फसलों का विशिष्ट स्थान है, और ग्रामीण महिलाओं, पारंपरिक कृषि समुदायों और स्थानीय बीज संरक्षण प्रणालियों ने इनके संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है (उत्तराखंड सरकार, 2020; वीपीकेएएस, 2021)। जैविक कृषि, स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता और संयुक्त राष्ट्र द्वारा वर्ष 2023 को "अंतरराष्ट्रीय श्री अन्न (मिलेट) वर्ष" घोषित करने से इन पारंपरिक फसलों के पुनर्जीवन की संभावनाएँ बढ़ गई हैं (संयुक्त राष्ट्र महासभा, 2021; भारत सरकार, 2023; एफएओ, 2023)।

मुख्य शब्दः उत्तराखंड, जैविक कृषि, मंडवा, झंगोरा, मिलेट्स, पारंपरिक कृषि, सतत आजीविका, पोषण सुरक्षा, जलवायु–अनुकूल कृषि

1. परिचय

उत्तराखंड का हिमालयी क्षेत्र भारत के सबसे महत्वपूर्ण कृषि क्षेत्रों में से एक है क्योंकि यह अपनी अलग भौगोलिक संरचना, विशाल जैव विविधता और पारंपरिक कृषि प्रौद्योगिकी के कारण है। राज्य का लगभग 86 प्रतिशत हिस्सा पहाड़ियों में है, जहां खेती मुख्यतः वर्षा पर आधारित है और छोटे, सीढ़ीनुमा खेत हैं। यहाँ के किसानों ने स्थानीय संसाधनों पर आधारित, पर्यावरणीय रूप से टिकाऊ कृषि प्रणाली विकसित की है. वे कम सिंचाई, मृदा अपरदन, कठिन भौगोलिक परिस्थितियाँ और जलवायु परिवर्तन जैसे चुनौतियों का सामना कर रहे हैं (नीति आयोग, 2018; उत्तराखंड सरकार, 2020)।

उत्तराखंड की पारंपरिक कृषि में मिश्रित खेती, फसल चक्र, गोबर और कम्पोस्ट आधारित जैविक पोषण प्रबंधन, पशुपालन आधारित कृषि और स्थानीय बीजों का संरक्षण महत्वपूर्ण हैं। खाद्यान्न उत्पादन के साथ–साथ यह प्रणाली कृषि जैव विविधता, मृदा स्वास्थ्य, जल संरक्षण और ग्रामीण आजीविका को भी बढ़ावा देती है (अल्टीएरी, 2018; वीपीकेएएस, 2021; उत्तराखंड सरकार, 2020)।

मंडवा और झंगोरा जैसे पारंपरिक मिलेट फसलें इस कृषि प्रणाली में बहुत महत्वपूर्ण हैं। ये फसलें कम वर्षा, कम कृषि निवेश और कम उपजाऊ जमीन में भी सफलतापूर्वक उत्पादन देती हैं। साथ ही, इनकी पोषणीय विशेषताओं और जलवायु

प्रतिक्रियाशीलता के कारण वे भविष्य में खाद्य सुरक्षा के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं (आईसीएआर इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मिलेट्स रिसर्च, 2017; आईसीआरआईएसएटी, 2022; एफओओ, 2023)।

संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा वर्ष 2023 को "अंतरराष्ट्रीय श्री अन्न (मिलेट) वर्ष" घोषित किए जाने के बाद मिलेट्स के पोषण, आर्थिक और पर्यावरणीय लाभ को पूरी दुनिया ने समझा। भारत, विश्व में मिलेट उत्पादक देशों में से एक, मिलेट आधारित कृषि, प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन तथा निर्यात को बढ़ावा देने के लिए इस अवसर का उपयोग कर रहा है (संयुक्त राष्ट्र महासभा, 2021; भारत सरकार, 2023; एफएओ, 2023)।

2. उत्तराखंड की जैविक विरासत

उत्तराखंड की कृषि परंपरा स्थानीय ज्ञान और प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग पर आधारित है। यहाँ की कृषि स्वाभाविक रूप से जैविक हो गई क्योंकि पर्वतीय क्षेत्रों में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का प्रयोग ऐतिहासिक रूप से सीमित रहा है। किसानों द्वारा गोबर की खाद, कम्पोस्ट, पत्तियों और पशु अपशिष्टों से निर्मित जैविक खाद का उपयोग किया जाता है, जिससे मृदा की उर्वरता, कार्बनिक पदार्थों की मात्रा और सूक्ष्मजीवों की विविधता बनी रहती है (उत्तराखंड सरकार, 2020; अल्टीएरी, 2018)।

बारहनाजा प्रणाली उत्तराखंड की जैविक विरासत का सबसे बड़ा उदाहरण है। मंडवा, झंगोरा, गहत, भट्ट, राजमा, चौलाई, तिल और अन्य स्थानीय फसलों को एक साथ उगाने पर यह बहुफसली कृषि प्रणाली आधारित है। इस प्रणाली से कृषि जैव विविधता में वृद्धि, मृदा स्वास्थ्य का संरक्षण, कीटों और रोगों का प्राकृतिक नियंत्रण और जलवायु जोखिम में कमी आती है। यह भी किसानों को विभिन्न प्रकार के खाद्यान्न और पोषक तत्व देकर उनकी पोषण सुरक्षा बढ़ाता है (वीपीकेएएस, 2021; अल्टीएरी, 2018; एफएओ, 2023)।

वन और पशुपालन भी पारंपरिक कृषि प्रणाली में महत्वपूर्ण हैं। पशुओं से प्राप्त गोबर और मूत्र जैविक उर्वरक का काम करते हैं, जबकि जंगलों से प्राप्त पत्तियाँ, घास और जैविक पदार्थ खाद बनाने में प्रयोग किए जाते हैं। इस तरह, पशुपालन, वन और कृषि एक दूसरे से मिलकर एक संतुलित पारिस्थितिक तंत्र बनाते हैं, जो कृषि को निरंतर बनाए रखता है (अल्टीएरी, 2018; उत्तराखंड सरकार, 2020)।

स्थानीय समुदायों की भूमिका

उत्तराखंड की जैविक विरासत में स्थानीय समुदायों की सांस्कृतिक धरोहर भी शामिल है, जो कृषि प्रौद्योगिकी से जुड़े हुए हैं। पीढ़ियों से ग्रामीण समुदाय ने बीज चयन, संरक्षण, मौसम की पहचान और फसल प्रबंधन का पारंपरिक ज्ञान विकसित किया है। कृषि जैव विविधता के संरक्षण और जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन में यह स्थानीय ज्ञान भी उपयोगी है (वीपीकेएएस, 2021; एफएओ, 2023)

महिलाओं का योगदान विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। वे कृषि ज्ञान के हस्तांतरण, खाद्य प्रसंस्करण, बीज संरक्षण और पारंपरिक व्यंजनों का उत्पादन करते हैं। आज भी कई पर्वतीय क्षेत्रों में महिलाओं ही स्थानीय बीजों का संरक्षण करती हैं, जो कृषि जैव विविधता और पारंपरिक खाद्य संस्कृति को बचाता है (उत्तराखंड सरकार, 2020; भारत सरकार, 2023; वीपीकेएएस, 2021)।

3. मंडवा एवं झंगोराः उत्तराखंड की पारंपरिक मिलेट विरासत

3.1 मंडवा

राज्य की सबसे बड़ी खरीफ फसल मंडवा *(एल्यूसीन कोराकाना)* है, जिसे उत्तराखंड के कुछ हिस्सों में "कोदा" या "रागी" के नाम से भी जाना जाता है। इसकी खेती प्रायः 800–2200 मीटर की ऊँचाई पर होती है। यह कम उपजाऊ भूमि, सीमित सिंचाई और वर्षा आधारित वातावरण में भी उत्पादन देने की क्षमता रखती है। इसलिए यह कम जोखिम वाली फसल है और छोटे और सीमांत किसानों के लिए सुरक्षित है (आईसीएआर इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मिलेट्स रिसर्च, 2017; आईसीआरआईएसएटी, 2022)।

मंडवा की जलवायु सहनशीलता उसकी सबसे बड़ी विशेषता है। यह कम वर्षा, सूखा और कम तापमान में भी उत्पादन बनाए रखती है। इसकी जड़ प्रणाली से मिट्टी मजबूत होती है, जिससे पर्वतीय इलाकों में मृदा अपरदन कम होता है। जैविक खेती में इसकी उपयुक्तता और दीर्घकालीन भंडारण क्षमता के कारण यह भविष्य की खाद्य सुरक्षा के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है (एफएओ, 2023; आईपीसीसी, 2022; आईसीएआर आईआईएमआर, 2017)।

मंडवा की प्रमुख विशेषताएँ

- सूखा सहनशील फसल।
- कम सिंचाई की आवश्यकता।
- कम उर्वर भूमि में भी उत्पादन।
- मृदा संरक्षण में सहायक।
- जैविक खेती के लिए उपयुक्त।
- दीर्घकालीन भंडारण क्षमता।
- जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूल।

इन्हीं गुणों के कारण एफएओ तथा आईसीआरआईएसएटी ने मंडवा को जलवायु–स्मार्ट कृषि प्रणाली के लिए उपयुक्त फसल माना है (एफएओ, 2023; आईसीआरआईएसएटी, 2022)।

3.2 झंगोरा

झंगोरा (*इकाइनोक्लोआ फ्रुमेन्टेसिया*) एक महत्वपूर्ण पारंपरिक मिलेट फसल है जो उत्तराखंड में पाई जाती है। इसकी खेती विशेष रूप से बर्फीले पर्वतीय क्षेत्रों में की जाती है। यह 90 से 100 दिनों में बन जाता है और कम वर्षा और कम कृषि निवेश में भी अच्छी उपज देता है। इसलिए किसानों ने इसे जलवायु परिवर्तन के दौरान एक सुरक्षित विकल्प के रूप में देखा है (आईसीआरआईएसएटी, 2022; एफएओ, 2023)।

झंगोरा की खेती में अपेक्षाकृत कम रासायनिक कीटनाशकों और उर्वरकों की आवश्यकता होती है, जिससे उत्पादन लागत कम होती है और पर्यावरणीय प्रभाव कम होता है। वर्तमान समय में इसके स्वास्थ्य लाभों के कारण शहरी बाजारों में इसकी मांग बढ़ रही है, हालांकि इसका उपयोग परंपरागत रूप से खीर, खिचड़ी, पुलाव तथा उपवास के भोजन में किया जाता रहा है (आईसीएआर इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मिलेट्स रिसर्च, 2017; भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद राष्ट्रीय पोषण संस्थान, 2020)।

झंगोरा की प्रमुख विशेषताएँ

- अल्प अवधि की फसल।
- सीमित सिंचाई में उत्पादन।
- कम लागत वाली खेती।
- कम कृषि निवेश।
- जलवायु परिवर्तन के प्रति सहनशील।
- उच्च पोषण मूल्य।
- जैविक खेती के लिए उपयुक्त।

3.3 उत्तराखंड की कृषि में मंडवा एवं झंगोरा का महत्व

उत्तराखंड की ग्रामीण अर्थव्यवस्था, कृषि और संस्कृति में मंडवा और झंगोरा महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये फसलें पर्वतीय क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उगाई जाती हैं जहाँ गेहूँ और धान जैसी पारंपरिक फसलों का उत्पादन कठिन होता है। इन्हें छोटे और सीमांत किसानों के लिए आर्थिक रूप से लाभकारी बनाने के लिए कम लागत, कम जल आवश्यकता और जैविक खेती में अनुकूलता है (उत्तराखंड सरकार, 2020; एफएओ, 2023)।

इन फसलों की खेती से कृषि में जोखिम कम होता है, खाद्य और पोषण सुरक्षा सुदृढ़ होती है, कृषि जैव विविधता सुरक्षित रहती है और किसानों को जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन करने की क्षमता बढ़ती है। यही कारण है कि उन्हें सतत कृषि एवं पोषण सुरक्षा की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है (आईपीसीसी, 2022; एफएओ, 2023; आईसीआरआईएसएटी, 2022)।

4. मंडवा एवं झंगोरा का पोषणीय महत्व

वर्तमान समय में खाद्य एवं पोषण सुरक्षा विश्व स्तर पर एक बड़ी चुनौती है। मधुमेह, मोटापा, हृदय रोग और सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी जैसी समस्याएँ बदलती जीवनशैली, परिष्कृत खाद्य पदार्थों के अत्यधिक सेवन और असंतुलित आहार के कारण बढ़ रही हैं। यही कारण है कि पारंपरिक मिलेट्स, जैसे मंडवा और झंगोरा, स्वस्थ और संतुलित भोजन के रूप में फिर से महत्वपूर्ण हो गए हैं (एफएओ, 2023; भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषददृराष्ट्रीय पोषण संस्थान, 2020)।

इन अनाजों में प्रोटीन, जटिल कार्बोहाइड्रेट, आहार रेशा, कैल्शियम, आयरन, मैग्नीशियम, फॉस्फोरस, पोटैशियम और कई जैव–सक्रिय पदार्थ हैं। नियमित रूप से इनका सेवन कुपोषण को रोकता है, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है और जीवनशैली जनित रोगों का खतरा कम करता है (आईसीएआर इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मिलेट्स रिसर्च, 2017; लोंगवाह एट अल., 2017)।

4.1 मंडवा का पोषणीय महत्व

मंडवा प्राकृतिक रूप से कैल्शियम से भरपूर अनाज है। यह आम अनाज की तुलना में अधिक कैल्शियम से भरपूर है, जो बच्चों, किशोरियों, गर्भवती महिलाओं और वृद्ध लोगों में हड्डियों और दाँतों के विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। नियमित भोजन भी ऑस्टियोपोरोसिस की रोकथाम में मदद कर सकता है (भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषददृराष्ट्रीय पोषण संस्थान, 2020; लोंगवाह एट अल., 2017)।

मंडवा में जटिल कार्बोहाइड्रेट और उच्च आहार रेशा होते हैं, जो रक्त में ग्लूकोज को नियंत्रित रखने में मदद करते हैं। इसे मधुमेह से पीड़ित लोगों के लिए बेहतर बनाता है, क्योंकि यह निम्नलिखित ग्लाइसेमिक इंडेक्स है। यह भी ग्लूटेन–मुक्त अनाज है, इसलिए यह ग्लूटेन असहिष्णुता और सीलिएक रोगियों के लिए सुरक्षित भोजन है (आईसीएआर इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मिलेट्स रिसर्च, 2017; एफएओ, 2023)।

4.2 झंगोरा का पोषणीय महत्व

झंगोरा एक अन्य पारंपरिक अनाज है जो बहुत पोषक है। इसमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, आहार रेशा और सभी आवश्यक खनिज तत्व हैं। इसका उच्च फाइबर स्तर पाचन को बेहतर बनाता है और लंबे समय तक तृप्त रहता है, जिससे वजन नियंत्रण में सहायता मिलती है (भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद राष्ट्रीय पोषण संस्थान, 2020)।

रक्त शर्करा को नियंत्रित करने में झंगोरा का निम्न ग्लाइसेमिक इंडेक्स मदद करता है। साथ ही, एंटीऑक्सीडेंट और जैव–सक्रिय यौगिक ऑक्सीडेटिव तनाव को कम करने और हृदय स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में योगदान देते हैं। इसलिए आज के पोषण विज्ञान में इसे "कार्यात्मक खाद्य" (फंक्शनल फूड) के रूप में भी मान्यता प्राप्त हो रही है (आईसीएआर इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मिलेट्स रिसर्च, 2017; आईसीआरआईएसएटी, 2022)।

तालिका 1: मंडवा एवं झंगोरा के प्रमुख पोषणीय लाभ

पोषणीय विशेषता	मंडवा	झंगोरा
कैल्शियम	अत्यधिक	मध्यम
आयरन	अधिक	मध्यम
आहार रेशा	अधिक	अधिक
ग्लाइसेमिक इंडेक्स	कम	कम
ग्लूटेन	अनुपस्थित	अनुपस्थित
प्रमुख स्वास्थ्य लाभ	हड्डियों का विकास, मधुमेह नियंत्रण, एनीमिया की रोकथाम	पाचन स्वास्थ्य, हृदय स्वास्थ्य, वजन नियंत्रण

स्रोतः भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषददृराष्ट्रीय पोषण संस्थान (2017, 2020); आईसीएआरदृइंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मिलेट्स रिसर्च (2017); दयाकर राव एट अल. (2017)।

5. मंडवा एवं झंगोरा का सांस्कृतिक महत्व

उत्तराखंड में मंडवा और झंगोरा केवल कृषि उत्पाद नहीं हैं; वे स्थानीय संस्कृति, पारंपरिक ज्ञान, सामाजिक जीवन और सामुदायिक पहचान का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। पर्वतीय लोगों के लिए भोजन केवल भोजन नहीं है; यह उनकी सांस्कृतिक विरासत, सामाजिक एकता और पारिवारिक परंपराओं का प्रतीक है। पीढ़ियों से स्थानीय भोजन में इन फसलों का उपयोग होता आया है, जिससे वे उत्तराखंड की लोक संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गए हैं (वीपीकेएएस, 2021; उत्तराखंड सरकार, 2020)।

इन फसलों का उत्पादन पारंपरिक कृषि प्रणाली में प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग और स्थानीय ज्ञान पर निर्भर था। मंडवा एवं झंगोरा से बने व्यंजनों का विशेष महत्व विभिन्न पर्वों, मेलों, धार्मिक अनुष्ठानों तथा सामुदायिक समारोहों में रहा है। इनके माध्यम से कृषि जैव विविधता और स्थानीय खाद्य परंपराओं का संरक्षण हुआ है (भारत सरकार, 2023; वीपीकेएएस, 2021)।

5.1 पारंपरिक व्यंजन

उत्तराखंड की पारंपरिक खाद्य संस्कृति में मंडवा और झंगोरा से कई स्वादिष्ट और पौष्टिक व्यंजन बनाए जाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी झंगोरे की खीर, झंगोरे की खिचड़ी, झंगोरे की रोटी, झंगोरे का हलवा, झंगोरे की पूरी, मिश्रित दलिया और झंगोरे का पुलाव बहुत लोकप्रिय हैं। आधुनिक खाद्य उद्योग ने इन पारंपरिक व्यंजनों को कुकीज़, पास्ता, नूडल्स, हेल्थ मिक्स तथा रेडी–टू–कुक उत्पादों के रूप में भी विकसित किया है, जिससे इनकी बाजार मांग लगातार बढ़ रही है (आईसीएआरदृ इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मिलेट्स रिसर्च, 2017; भारत सरकार, 2023)।

5.2 धार्मिक एवं सामाजिक महत्व

अनेक स्थानों में झंगोरा को उपवास के रूप में और धार्मिक अनुष्ठानों में उपयोग किया जाता है।यह एक सुपाच्य और सात्विक भोजन है। मंडवा विवाह, त्योहारों और सामुदायिक भोजों में भी महत्वपूर्ण स्थान है। इन अनाजों का उपयोग पर्वतीय समाजों में केवल भोजन के लिए नहीं होता; वे स्थानीय सांस्कृतिक पहचान और सामुदायिक सहभागिता का भी प्रतीक हैं (उत्तराखंड सरकार, 2020; वीपीकेएएस, 2021)।

5.3 पारंपरिक ज्ञान एवं महिलाओं की भूमिका

उत्तराखंड की कृषि प्रणाली में महिलाओं का महत्वपूर्ण योगदान है। महिलाएं बीज चयन, बीज संरक्षण, बुवाई, निराई–गुड़ाई, कटाई, भंडारण और खाद्य प्रसंस्करण का काम करती हैं। जैविक खेती, स्थानीय किस्मों, मौसम की पहचान और पारंपरिक खाद्य निर्माण का समृद्ध अनुभव उनके पास है, जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होता आया है (उत्तराखंड सरकार, 2020; भारत सरकार, 2023)।

महिलाओं द्वारा संरक्षित स्थानीय बीज जलवायु परिवर्तन के अनुकूल नई किस्मों के विकास के लिए भी महत्वपूर्ण आनुवंशिक संसाधन हो सकते हैं। इसलिए महिला किसानों की भूमिका केवल कृषि कार्य तक सीमित नहीं है, बल्कि कृषि जैव विविधता और पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण में भी महत्वपूर्ण है (एफएओ, 2023; वीपीकेएएस, 2021)।

6. मंडवा एवं झंगोरा का पारिस्थितिक महत्व

हिमालय क्षेत्र वर्तमान में जलवायु परिवर्तन, अनियमित वर्षा, मृदा अपरदन, जल संकट और प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण जैसे गंभीर पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना कर रहा है। मंडवा और झंगोरा जैसी पारंपरिक मिलेट फसलें ऐसी परिस्थितियों में पर्यावरण–अनुकूल और सतत कृषि प्रणाली का प्रभावी आधार प्रस्तुत करती हैं (आईपीसीसी, 2022; एफएओ, 2023)।

6.1 जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलता

मंडवा और झंगोरा दोनों सूखा सहनशील और कम जल की आवश्यकता वाली फसलें हैं। ये कम उपजाऊ भूमि, ऊँचाई वाले क्षेत्रों और कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उत्पादन देते हैं। यह गुण जलवायु परिवर्तन के बढ़ते प्रभावों के बीच किसानों के लिए जोखिम कम करती है तथा खाद्य सुरक्षा बनाए रखने में सहायता करती है (आईसीआरआईएसएटी, 2022; एफएओ, 2023; आईपीसीसी, 2022)।

6.2 मृदा एवं जल संरक्षण

मृदा अपरदन पर्वतीय ढालों पर कम होता है, क्योंकि इन फसलों की जड़ प्रणाली मिट्टी को मजबूत बनाती है। कम सिंचाई की आवश्यकता के कारण जल संसाधनों का संरक्षण भी संभव है। जैविक खेती के साथ इनका उत्पादन सूक्ष्मजीव गतिविधियों और मृदा में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा को बढ़ाता है, जिससे भूमि की उर्वरता लंबे समय तक बनी रहती है (अल्टीएरी, 2018; उत्तराखंड सरकार, 2020)।

6.3 कृषि जैव विविधता का संरक्षण

मंडवा और झंगोरा को उत्तराखंड की प्रसिद्ध बारहनाजा प्रणाली में अन्य स्थानीय दलहनी, तिलहनी और अनाज फसलों के साथ उगाया जाता है। यह बहुफसली प्रणाली कृषि जैव विविधता को बचाती है, कीटों और रोगों को प्राकृतिक रूप से नियंत्रित करती है और बहुत से पौष्टिक खाद्यान्न प्रदान करती है (वीपीकेएएस, 2021; एफएओ, 2023)

स्थानीय बीजों का संरक्षण पारंपरिक कृषि प्रणाली की स्थिरता को बनाए रखता है और भविष्य में जलवायु परिवर्तनों के अनुरूप नई किस्मों के विकास के लिए महत्वपूर्ण आनुवंशिक संसाधन प्रदान करता है (एफएओ, 2023)।

6.4 कार्बन उत्सर्जन में कमी

मंडवा और झंगोरा की खेती में बहुत कम रासायनिक उर्वरक, कीटनाशकों और सिंचाई की आवश्यकता होती है। इससे कृषि उत्पादन में कार्बन की तीव्रता कम होती है और ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन कम होता है। जैविक उत्पादन प्रणाली के साथ उनका समन्वय पर्यावरण संरक्षण, प्राकृतिक संसाधनों के सतत उपयोग और जलवायु परिवर्तन के शमन (मिटिगेशन) में महत्वपूर्ण योगदान देता है (अल्टीएरी, 2018; आईपीसीसी, 2022)।

तालिका 2: मंडवा एवं झंगोरा के प्रमुख पारिस्थितिक लाभ

विशेषता	प्रमुख योगदान
कम जल आवश्यकता	जल संरक्षण
सूखा सहनशीलता	जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन
कम रासायनिक निवेश	पर्यावरण संरक्षण
बहुफसली खेती	कृषि जैव विविधता संरक्षण
मजबूत जड़ प्रणाली	मृदा संरक्षण
जैविक खेती के अनुकूल	कार्बन उत्सर्जन में कमी

स्रोतः एफएओ (2023); आईपीसीसी (2022); अल्टिएरी (2018); वीपीकेएएस (2021).

7. मंडवा एवं झंगोरा का सामाजिक–आर्थिक महत्व

उत्तराखंड के पहाड़ी इलाकों में कृषि केवल खाद्यान्न उत्पादन का साधन नहीं है; यह ग्रामीण जीवन, सामाजिक संरचना और स्थानीय अर्थव्यवस्था का भी मूल है। जिनके पास सीमित कृषि भूमि है, अधिकांश किसान छोटे या सीमांत हैं। ऐसे में झंगोरा और मंडवा जैसी कम लागत वाली फसलें किसानों को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करती हैं और जोखिम कम करती हैं (नीति आयोग, 2018; उत्तराखंड सरकार, 2020)।

7.1 आजीविका एवं खाद्य सुरक्षा

मंडवा और झंगोरा को वर्षा आधारित कृषि क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इनकी खेती में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों की आवश्यकता कम होती है, जिससे उत्पादन लागत कम होती है और किसानों की शुद्ध आय बढ़ती है। साथ ही ये ग्रामीण परिवारों को वर्षभर पोषक तत्वों से भरपूर भोजन उपलब्ध कराकर खाद्य एवं पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करते हैं (एफएओ, 2023; राष्ट्रीय पोषण संस्थान, 2020)।

कृषि और पशुपालन पर आधारित एकीकृत कृषि प्रणाली को मजबूत करने और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को अधिक टिकाऊ बनाने के लिए इन फसलों के अवशेष पशुओं के चारे के रूप में भी प्रयोग किए जाते हैं (उत्तराखंड सरकार, 2020)।

7.2 महिला सशक्तिकरण

पुरुषों के पलायन के कारण उत्तराखंड में कृषि कार्यों की अधिकांश जिम्मेदारी महिलाओं पर है। वे बीज संरक्षण, खेती, कटाई, प्रसंस्करण और विपणन तक हर चरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं हैं। वर्तमान में महिला स्वयं सहायता समूह मंडवा और झंगोरा आधारित मूल्य संवर्धित उत्पादों का उत्पादन कर रहे हैं, जिससे वे स्वरोजगार प्राप्त कर रहे हैं और अधिक पैसे कमा रहे हैं (भारत सरकार, 2023; उत्तराखंड शासन, 2020)

7.3 मूल्य संवर्धन एवं ग्रामीण उद्यमिता

स्वास्थ्यवर्धक खाद्य पदार्थों की बढ़ती मांग के कारण मिलेट आधारित उद्योगों की संभावनाएँ लगातार बढ़ रही हैं। यदि स्थानीय स्तर पर प्रसंस्करण, पैकेजिंग, ब्रांडिंग और विपणन की सुविधाएँ विकसित की जाएँ, तो किसानों की आय में काफी वृद्धि हो सकती है। इससे महिला समूहों, किसान उत्पादक संगठनों और ग्रामीण युवा उद्यमीयों के लिए नए अवसर भी पैदा होंगे (आईसीआरआईएसएटी, 2022; भारत सरकार, 2023)।

तालिका 3: मंडवा एवं झंगोरा आधारित संभावित मूल्य संवर्धित उत्पाद

मंडवा आधारित उत्पाद	झंगोरा आधारित उत्पाद
आटा	झंगोरा आटा
बिस्कुट एवं कुकीज	इंस्टेंट खिचड़ी
नूडल्स	खीर मिश्रण
दलिया	हेल्थ मिक्स
रेडी–टू–कुक मिश्रण	स्नैक उत्पाद
बेकरी उत्पाद	ऊर्जा खाद्य (एनर्जी फूड्स)

स्रोतः आईसीएआरदृइंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मिलेट्स रिसर्च (2017); भारत सरकार (2023); आईसीआरआईएसएटी (2022).

8. सरकारी पहल एवं नीतिगत समर्थन

भारत सरकार और उत्तराखंड सरकार ने मिलेट्स के बढ़ते महत्व को देखते हुए कई योजनाओं को लागू किया है, जिनका उद्देश्य मूल्यवान कृषि उत्पादों के उत्पादन, संरक्षण, प्रसंस्करण, विपणन और निर्यात को बढ़ावा देना है। इन योजनाओं को वर्ष 2023 को अंतरराष्ट्रीय श्री अन्न (मिलेट) वर्ष घोषित किए जाने के बाद और अधिक गति मिली है (संयुक्त राष्ट्र महासभा, 2021; भारत सरकार, 2023; एफएओ, 2023)।

प्रमुख योजनाएँ

- अंतरराष्ट्रीय श्री अन्न (मिलेट) वर्ष 2023
- राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (एनएफएसएम)
- परंपरागत कृषि विकास योजना (पीकेवीवाई)
- सहभागी गारंटी प्रणाली (पीजीएस–इंडिया)
- किसान उत्पादक संगठन (एफपीओ)
- प्रधानमंत्री सूक्ष्म खाद्य उद्योग उन्नयन योजना (पीएमएफएमई)

इन योजनाओं के माध्यम से किसानों को तकनीकी सहायता, प्रशिक्षण, जैविक प्रमाणन, प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन, विपणन और गुणवत्तापूर्ण बीज मिल रहे हैं। पीजीएस छोटे किसानों को कम लागत वाली जैविक प्रमाणन प्रणाली देता है, जबकि एफपीओ सामूहिक विपणन और बेहतर मूल्य प्राप्त करने में मदद करते हैं (भारत सरकार, 2023; उत्तराखंड सरकार, 2020)।

उत्तराखंड सरकार ने जैविक कृषि को बढ़ावा देने, स्थानीय मिलेट उत्पादन को प्रोत्साहित करने और किसान उत्पादक संगठनों और स्वयं सहायता समूहों को मजबूत करने के लिए कई कार्यक्रम शुरू किए हैं। इससे कृषि आधारित उद्यमिता और स्थानीय किसानों की आय बढ़ रही है (उत्तराखंड सरकार, 2020; उत्तराखंड ऑर्गेनिक कमोडिटी बोर्ड, 2021)

9. प्रमुख चुनौतियाँ

यद्यपि वर्तमान में मिलेट्स के प्रति जागरूकता बढ़ी है, लेकिन इनके संरक्षण और विकास के समक्ष कई सामाजिक, आर्थिक तथा तकनीकी चुनौतियाँ हैं (एफएओ, 2023; आईसीआरआईएसएटी, 2022)।

प्रमुख चुनौतियाँ

1. पारंपरिक कृषि क्षेत्रफल में कमी।
2. गेहूँ एवं चावल पर बढ़ती निर्भरता।
3. ग्रामीण पलायन एवं कृषि श्रम की कमी।
4. स्थानीय बीजों का क्षरण।
5. प्रसंस्करण एवं भंडारण सुविधाओं का अभाव।
6. संगठित विपणन व्यवस्था का अभाव।
7. युवाओं का पारंपरिक कृषि से दूर होना।
8. जलवायु परिवर्तन से बढ़ती अनिश्चितताएँ।

किसानों की क्षमता बढ़ाने, स्थानीय बीज संरक्षण, आधुनिक प्रसंस्करण सुविधाएँ, जैविक प्रमाणन, प्रभावी विपणन तंत्र और वैज्ञानिक अनुसंधान पर विशेष ध्यान देना चाहिए ताकि इन चुनौतियों को हल किया जा सके। साथ ही, अनुसंधान संस्थानों, स्थानीय समुदायों और नीति–निर्माताओं के बीच समन्वय भी बहुत महत्वपूर्ण है (भारत सरकार, 2023; एफएओ, 2023; वीपीकेएएस, 2021)।

10. भविष्य की संभावनाएँ

विश्व भर में स्वास्थ्यवर्धक, जैविक और पर्यावरण–अनुकूल खाद्य पदार्थों की बढ़ती मांग ने मंडवा और झंगोरा जैसे पारंपरिक मिलेट्स के लिए नए अवसर पैदा किए हैं। भारत में भी श्री अन्न आधारित उत्पादों की मांग लगातार बढ़ रही है, जिससे उत्तराखंड जैसे पर्वतीय राज्यों के किसानों को आर्थिक लाभ मिलने की संभावना है (भारत सरकार, 2023; एफएओ, 2023)।

भविष्य की प्रमुख संभावनाएँ

- प्रमाणित जैविक मिलेट उत्पादन
- मिलेट आधारित खाद्य उद्योग
- ग्रामीण एवं खाद्य पर्यटन
- ई–कॉमर्स एवं डिजिटल विपणन
- निर्यात संभावनाएँ
- कृषि आधारित स्टार्टअप
- महिला एवं युवा उद्यमिता
- जलवायु–स्मार्ट कृषि मॉडल का विकास

भविष्य में इन फसलों की व्यावसायिक सफलता के लिए कृषि विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थानों द्वारा स्थानीय किस्मों का संरक्षण, उच्च गुणवत्ता वाले बीजों का विकास, मूल्य संवर्धन और प्रसंस्करण तकनीकों पर अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण होगा (जीबीपीयूएटी, 2021; आईसीएआरदृइंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मिलेट्स रिसर्च, 2017; आईसीआरआईएसएटी, 2022)।

11. सतत विकास लक्ष्यों (सडीजी) में योगदान

संयुक्त राष्ट्र के कई सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में मंडवा एवं झंगोरा का बचाव प्रत्यक्ष रूप से योगदान देता है। इन्हें सतत विकास का प्रभावी माध्यम बनाने में उनकी पोषणीय गुणवत्ता, जलवायु–अनुकूल प्रकृति, कृषि जैव विविधता संरक्षण और ग्रामीण आजीविका का योगदान है (संयुक्त राष्ट्र, 2015; एफएओ, 2023)।

तालिका 4: मंडवा एवं झंगोरा तथा सडीजी **का संबंध**

सडीजी	**योगदान**
सडीजी 2	खाद्य एवं पोषण सुरक्षा को सुदृढ़ करना (एफएओ, 2023; एनआईएन, 2020)
सडीजी 5	महिला स्वयं सहायता समूहों एवं महिला किसानों का आर्थिक सशक्तिकरण (भारत सरकार, 2023)
सडीजी 8	ग्रामीण रोजगार, मूल्य संवर्धन एवं उद्यमिता को बढ़ावा (भारत सरकार, 2023; आईसीआरआईएसएटी, 2022)
सडीजी 12	सतत उत्पादन एवं उत्तरदायी उपभोग को प्रोत्साहन (अल्टिएरी, 2018)
सडीजी 13	जलवायु–स्मार्ट कृषि एवं जलवायु अनुकूलन (आईपीसीसी, 2022; एफएओ, 2023)
सडीजी 15	कृषि जैव विविधता एवं पारिस्थितिकी संरक्षण (वीपीकेएएस, 2021; एफएओ, 2023)

इस प्रकार, मंडवा एवं झंगोरा न केवल स्थानीय स्तर पर किसानों की आय एवं पोषण सुरक्षा में सुधार करते हैं, बल्कि संयुक्त राष्ट्र के 2030 सतत विकास एजेंडा की प्राप्ति में भी महत्वपूर्ण योगदान देते हैं (संयुक्त राष्ट्र, 2015; संयुक्त राष्ट्र महासभा, 2021)।

12. संरक्षण एवं संवर्धन हेतु प्रमुख सुझाव

मंडवा एवं झंगोरा का दीर्घकालीन संरक्षण और व्यावसायिक विकास करने के लिए सरकार, अनुसंधान संस्थानों, कृषि विश्वविद्यालयों, किसान उत्पादक संगठनों और स्थानीय समुदायों को मिलकर काम करना चाहिए (उत्तराखंड सरकार, 2020; भारत सरकार, 2023)।

प्रमुख सुझाव

- ग्राम स्तर पर जैविक कृषि क्लस्टरों का विस्तार (पीकेवीवाई, 2023)
- स्थानीय सामुदायिक बीज बैंकों की स्थापना (वीपीकेएएस, 2021)
- आधुनिक प्रसंस्करण एवं पैकेजिंग इकाइयों की स्थापना (आईसीएआरदृआईआईएमआर, 2017)
- "हिमालयी ऑर्गेनिक मिलेट" जैसी क्षेत्रीय ब्रांडिंग तथा जीआई टैग को बढ़ावा (उत्तराखंड ऑर्गेनिक कमोडिटी बोर्ड, 2021)
- मध्याह्न भोजन, आंगनवाड़ी एवं सार्वजनिक वितरण प्रणाली में मिलेट्स का समावेश (भारत सरकार, 2023)
- महिला स्वयं सहायता समूहों को वित्तीय एवं तकनीकी सहायता (भारत सरकार, 2023)
- किसान उत्पादक संगठनों (एफपीओज़) को सुदृढ़ बनाना (एफपीओ गाइडलाइन्स, 2023)
- ई–कॉमर्स एवं डिजिटल विपणन को बढ़ावा
- कृषि विश्वविद्यालयों एवं अनुसंधान संस्थानों द्वारा स्थानीय किस्मों पर अनुसंधान (जीबीपीयूएटी, 2021; आईसीएआर आईआईएमआर, 2017)
- युवाओं को मिलेट आधारित स्टार्टअप एवं उद्यमिता से जोड़ना
- जलवायु–स्मार्ट कृषि तकनीकों का विस्तार (आईपीसीसी, 2022)
- उपभोक्ता जागरूकता एवं पोषण शिक्षा को बढ़ावा (एनआईएन, 2020)
- विभिन्न सरकारी योजनाओं का प्रभावी समन्वय (भारत सरकार, 2023)

13. निष्कर्ष

मंडवा और झंगोरा उत्तराखंड की सांस्कृतिक, जैविक और पारंपरिक कृषि व्यवस्था के महत्वपूर्ण प्रतीक हैं। ये फसलें केवल पोषणयुक्त खाद्यान्न ही नहीं, बल्कि कम लागत वाली, जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूल और पर्यावरण–अनुकूल कृषि प्रणाली का भी आधार हैं। भविष्य की कृषि के लिए ये बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे कम जल की जरूरत, सीमित संसाधनों में

उत्पादन क्षमता और उच्च पोषण मूल्य के साथ आते हैं (एफएओ, 2023; आईपीसीसी, 2022; आईसीएआर इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मिलेट्स रिसर्च, 2017)।

इन फसलों का स्थान उत्तराखंड की बारहनाजा प्रणाली में कृषि जैव विविधता, मृदा संरक्षण और प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित उपयोग का एक अच्छा उदाहरण है। साथ ही ये खाद्य सुरक्षा, ग्रामीण उद्यमिता, महिला सशक्तिकरण, छोटे और सीमांत किसानों की आजीविका को भी बढ़ावा देते हैं (वीपीकेएएस, 2021; उत्तराखंड सरकार, 2020)

यद्यपि कृषि क्षेत्र में कमी, ग्रामीण पलायन, प्रसंस्करण सुविधाओं का अभाव और बदलती खाद्य आदतें इनके संरक्षण के समक्ष प्रमुख चुनौतियों हैं, लेकिन सरकारी योजनाओं, वैज्ञानिक अनुसंधान, जैविक प्रमाणन, मूल्य संवर्धन और प्रभावी विपणन रणनीतियों के माध्यम से इन चुनौतियों का समाधान संभव है (भारत सरकार, 2023; आईसीआरआईएसएटी, 2022)।

मंडवा और झंगोरा का संरक्षण केवल पारंपरिक कृषि का संरक्षण नहीं है, बल्कि उत्तराखंड की जैविक विरासत, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, पोषण सुरक्षा और सतत विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। यदि इन पारंपरिक मिलेट्स को आधुनिक तकनीक, प्रभावी बाजार, मूल्य संवर्धन तथा नीति समर्थन से जोड़ा जाए, तो उत्तराखंड राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सतत, जैविक तथा जलवायु–अनुकूल कृषि मॉडल के रूप में स्थापित हो सकता है (संयुक्त राष्ट्र, 2015; एफएओ, 2023; उत्तराखंड सरकार, 2020)।

संदर्भ सूची

1. खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ). (2023). मिलेट्स और सतत खाद्य प्रणालियाँः पोषण, जलवायु सहनशीलता एवं सतत कृषि। रोमः संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन।
2. भारत सरकार, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय. (2023). अंतरराष्ट्रीय मिलेट वर्ष 2023ः दृष्टि दस्तावेज। नई दिल्लीः कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार।
3. कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय. (2023). वार्षिक रिपोर्ट 2022द्23। नई दिल्लीः भारत सरकार।
4. संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ). (2023). मिलेट्स की क्षमता का उपयोगः अंतरराष्ट्रीय मिलेट वर्ष 2023 पृष्ठभूमि दस्तावेज। रोमः एफएओ।
5. अंतरराष्ट्रीय अर्ध–शुष्क उष्णकटिबंधीय फसल अनुसंधान संस्थान (आईसीआरआईएसएटी). (2022). मिलेट्सः पोषण, स्वास्थ्य एवं जलवायु सहनशील कृषि के लिए संभावनाएँ। हैदराबादः आईसीआरआईएसएटी।
6. अंतरसरकारी जलवायु परिवर्तन पैनल (आईपीसीसी). (2022). जलवायु परिवर्तन 2022ः प्रभाव, अनुकूलन एवं संवेदनशीलता। कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय प्रेस।
7. शर्मा, आर., एवं सिंह, जी. (2021). हिमालयी क्षेत्र में जैविक कृषिः चुनौतियाँ एवं अवसर। ग्रामीण विकास पत्रिका।
8. उत्तराखंड सरकार. (2020). उत्तराखंड जैविक कृषि नीति। देहरादूनः कृषि विभाग, उत्तराखंड सरकार।
9. राष्ट्रीय पोषण संस्थान (एनआईएन). (2020). भारतीय खाद्य पदार्थों का पोषण मूल्य। हैदराबादः भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद (आईसीएमआर)।
10. सिंह, पी., एवं जोशी, एम. (2020). उत्तराखंड की पारंपरिक मिलेट आधारित कृषि प्रणालियाँ। भारतीय पारंपरिक ज्ञान पत्रिका।
11. खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ). (2019). खाद्य एवं कृषि की स्थितिः खाद्य हानि एवं अपव्यय में कमी की दिशा में आगे बढ़ना। रोमः एफएओ।
12. अल्टिएरी, एम. ए. (2018). कृषि पारिस्थितिकीः सतत कृषि का विज्ञान। बोका रेटोनः सीआरसी प्रेस।
13. नीति आयोग. (2018). न्यू इंडिया ⁄75 के लिए रणनीति। नई दिल्लीः भारत सरकार।
14. उपाध्याय, ए., एवं बिष्ट, जे. के. (2018). उत्तराखंड हिमालय की स्वदेशी कृषि प्रणालियाँ। जर्नल ऑफ माउंटेन साइंस।
15. कुमार, ए., तोमर, वी., कौर, ए., कुमार, वी., एवं गुप्ता, के. (2018). मिलेट्सः कृषि एवं पोषण संबंधी चुनौतियों का समाधान।
16. भारतीय मिलेट अनुसंधान संस्थान (आईआईएमआर). (2017). मिलेट्स के पोषण एवं स्वास्थ्य लाभ। हैदराबादः भारतीय मिलेट अनुसंधान संस्थान।
17. यादव, ओ. पी., राय, के. एन., गुप्ता, एस. के., एवं राजपुरोहित, बी. एस. (2016). खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के लिए मिलेट्स। इंडियन फार्मिंग।
18. संयुक्त राष्ट्र. (2015). हमारी दुनिया का रूपांतरणः सतत विकास के लिए 2030 एजेंडा। न्यूयॉर्कः संयुक्त राष्ट्र।

प्राकृतिक एवं जैविक कृषि: सुरक्षित एवं पौष्टिक भोजन की आधारशिला

प्रभा बी. ढौंडियाल[1*], कीर्तिका पडलिया[1], पूजा जुयाल[1], बीना तिवारी फुलारा[2], कृष्णा कुमार टम्टा[2] और प्रीति पंत[2]

[1]वनस्पति विज्ञान विभाग, विज्ञान संकाय, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखंड 263139, भारत
[2]वानिकी और पर्यावरण विज्ञान विभाग, भौमिकी एवं पर्यावरण विज्ञान संकाय, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखंड 263139, भारत

Corresponding author: prabhadhondiyal76127@gmail.com

सार

कृषि केवल खाद्य उत्पादन का साधन नहीं है; यह प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, पर्यावरणीय संतुलन, ग्रामीण अर्थव्यवस्था और मानव स्वास्थ्य से जुड़ी हुई है। आधुनिक कृषि में रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और अन्य बाह्य कृषि-निवेशों के उपयोग से खाद्यान उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है, लेकिन इनके अत्यधिक और असंतुलित प्रयोग से मृदा स्वास्थ्य में गिरावट, जैव विविधता का ह्रास, जल और मृदा प्रदूषण, कीटनाशी अवशेषों की समस्या तथा कृषि की बाह्य संसाधनों पर निर्भरता जैसी समस्याएं सामने आई हैं ऐसी परिस्थितियों में प्राकृतिक और जैविक कृषि वैकल्पिक कृषि प्रणालियों के रूप में विकसित हो रही हैं, जिनका लक्ष्य कृषि उत्पादन को प्राकृतिक पारिस्थितिक प्रक्रियाओं के साथ मिलाकर सुरक्षित, पौष्टिक और पर्यावरण-अनुकूल बनाना है। जैविक कृषि एक व्यवस्थित उत्पादन प्रणाली है जो मृदा उर्वरता, विविधता, पोषक-चक्रण और कीट नियंत्रण पर आधारित है। दूसरी ओर, प्राकृतिक कृषि स्थानीय संसाधनों, जैविक प्रक्रियाओं, फसल विविधता और कृषि में बाहरी निवेशों को कम करने पर अधिक बल देती है।

वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चलता है कि जैविक कृषि का उचित रूप से प्रबंधन होने पर यह मृदा स्वास्थ्य, जैव विविधता और कुछ कीटनाशी अवशेषों के जोखिम को कम कर सकती है. हालांकि, प्रत्येक जैविक खाद्य पदार्थ को स्वतः अधिक पौष्टिक या पूरी तरह से सुरक्षित मानना वैज्ञानिक रूप से उचित नहीं है। उत्तराखण्ड जैसे हिमालयी राज्य में प्राकृतिक एवं जैविक कृषि की विशेष संभावनाएँ हैं, जहाँ वर्षा-आधारित कृषि, पारंपरिक कृषि ज्ञान, स्थानीय फसल विविधता और पशुधन-आधारित कृषि प्रणालियाँ मौजूद हैं। मंडुवा, झंगोरा, गहत, राजमा, लाल चावल, काला भट्ट, चौलाई और पारंपरिक फल-सब्जियाँ इसके अच्छे उदाहरण हैं। यह अध्याय प्राकृतिक और जैविक कृषि के सिद्धांत, प्रमुख पद्धतियों, खाद्य सुरक्षा और पोषण में योगदान, पर्यावरणीय महत्व और उत्तराखण्ड में इसकी संभावनाओं और चुनौतियों का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत करता है।

कुंजी शब्द: प्राकृतिक कृषि, जैविक कृषि, सुरक्षित भोजन, पौष्टिक भोजन, मृदा स्वास्थ्य, जैव विविधता, सतत कृषि, उत्तराखण्ड, हिमालयी कृषि, पारंपरिक फसलें

प्रस्तावना

मानव सभ्यता का सबसे पुराना और सबसे महत्वपूर्ण कार्य कृषि है। जब मनुष्य ने पौधों को उगाना और पालना सीखा, तभी से उसका प्रकृति से गहरा संबंध विकसित हुआ। पारंपरिक कृषि प्रणालियाँ सिर्फ फसल उगाने की तकनीक नहीं थीं; वे स्थानीय जल, पौधों, पशुओं, वनस्पतियों, मृदा और संतुलन बनाए रखने की जीवन-पद्धति भी थीं। किसान उत्पादन में विविधता बनाए रखने के लिए खेत में

फसल अवशेषों को वापस मिलाते थे, पशुओं के गोबर का उपयोग करते थे, स्थानीय बीजों को संरक्षित करते थे और मिश्रित या बहुफसली खेती करते थे।

बीसवीं शताब्दी में उच्च उत्पादकता वाली किस्मों, सिंचाई, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और यंत्रीकरण का व्यापक उपयोग हुआ। इससे खाद्य उत्पादन में भारी वृद्धि हुई और खाद्य असुरक्षा को कई देशों में कम करने में सहायता मिली। हरित क्रांति ने भारत में भी खाद्यान्न उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। समय के साथ यह स्पष्ट हुआ कि कृषि उत्पादन में वृद्धि को केवल मात्रा के आधार पर नहीं देखा जा सकता बल्कि, उत्पादित भोजन की गुणवत्ता, मृदा, जल, जैव विविधता और मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव पर भी विचार करना अत्यंत आवश्यक है।

कृषि में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक या अनुचित उपयोग से मृदा जैविक पदार्थ में कमी, मृदा संरचना में परिवर्तन, लाभकारी जीवों की संख्या में कमी, जल प्रदूषण और कीटनाशी अवशेष जैसी समस्याएँ हो सकती हैं। इसलिए आज ऐसी कृषि प्रणालियों की जरूरत महसूस की जा रही है जो उत्पादन के साथ-साथ प्राकृतिक संसाधनों को लंबे समय तक सुरक्षित रख सकें।

यही कारण है कि प्राकृतिक कृषि और जैविक कृषि दोनों अधिक महत्वपूर्ण हो गए हैं। जैविक कृषि मृदा स्वास्थ्य, विविधता, प्राकृतिक पोषक-चक्रण और कीट नियंत्रण पर निर्भर करती है। इसके विपरीत, प्राकृतिक कृषि स्थानीय संसाधनों, जैविक प्रक्रियाओं, फसल विविधता और कृषि में बाहरी निवेशों को कम करने पर विशेष बल देती है। भारत सरकार ने प्राकृतिक कृषि को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय प्राकृतिक कृषि मिशन भी बनाया है (भारत सरकार, 2024) इसलिए, प्राकृतिक और जैविक कृषि को सिर्फ "रसायनों के बिना खेती" नहीं समझना चाहिए। यह कृषि को एक पारिस्थितिक तंत्र के रूप में देखता है, जहाँ मृदा, पौधे, सूक्ष्मजीव, पशु, जल और मानव परस्पर एक-दूसरे से जुड़े हैं।

प्राकृतिक एवं जैविक कृषि की अवधारणा

जैविक कृषि एक समग्र कृषि प्रणाली है जिसमें प्राकृतिक प्रक्रियाओं, जैविक पदार्थों और जैविक चक्रों का उपयोग किया जाता है ताकि मृदा की उर्वरता और कृषि पारिस्थितिकी तंत्र की उत्पादकता बरकरार रहें। कृत्रिम रासायनिक उर्वरकों और प्रतिबंधित कीटनाशकों के स्थान पर इसमें गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मी-कम्पोस्ट, हरी खाद, जैविक उर्वरक, फसल अवशेष और जैविक कीट नियंत्रण जैसी विधियों का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक पदार्थों का उपयोग न करना जैविक कृषि का एकमात्र लक्ष्य नहीं है। इसमें मृदा उर्वरता, फसल विविधता, पोषक तत्व पुनर्चक्रण, जल संरक्षण, जैव विविधता और प्राकृतिक शत्रुओं का नियंत्रण भी सम्मिलित हैं। एग्रीकल्चरल एंड प्रोसेस्ड फ़ूड प्रोडक्ट्स एक्सपोर्ट डेवलपमेंट अथॉरिटी (APEDA) द्वारा संचालित राष्ट्रीय कार्यक्रम जैविक उत्पादन (NPOP) भारत में जैविक उत्पादन के मानकों और प्रमाणन के लिए एक महत्वपूर्ण प्रणाली है (APEDA, 2024) ।

जैविक कृषि और प्राकृतिक कृषि कुछ हद तक एक दुसरे से मिलती जुलती है हालांकि इनकी अपनी अपनी विशेषताएँ हैं ।इन दोनों ही पद्धतियों में खेत की प्राकृतिक पारिस्थितिकी को बहाल करना, स्थानीय संसाधनों का उपयोग, जैव विविधता, फसल आवरण, पशुधन एकीकरण और बाहरी निवेशों पर निर्भरता कम करने पर विशेष बल दिया जाता है। भारत के सन्दर्भ में प्राकृतिक कृषि के अंतर्गत बीजामृत, जीवामृत, आच्छादन (mulching), मिश्रित खेती, फसल विविधीकरण और पशुधन आधारित संसाधनों के उपयोग जैसी पद्धतियाँ प्रचलित हैं।

प्रमाणित जैविक फसल और प्राकृतिक रूप से उत्पादित फसल सदैव समान नहीं होती है। प्राकृतिक कृषि मुख्यतः एक कृषि-दर्शन और प्रबंधन प्रणाली है, जबकि जैविक कृषि के लिए मानकों और प्रमाणन की व्यवस्था होती है। यही कारण है कि उपभोक्ता को खाद्य पदार्थ की वास्तविक उत्पादन प्रणाली और प्रमाणन स्थिति की जानकारी होना आवश्यक है।

स्वस्थ मृदा से स्वस्थ भोजन की ओर

स्वस्थ मृदा सतत कृषि का सबसे महत्वपूर्ण आधार है। मृदा एक जटिल जीवित पारिस्थितिक तंत्र है जो पौधों की जड़ों को सहारा देता है। इसमें बैक्टीरिया, कवक, एक्टिनोमाइसीट्स, प्रोटोजोआ, निमेटोड, केंचुए, पौधों की जड़ें, कार्बनिक पदार्थ, खनिज, जल और वायु आदि मिलकर कार्य करते हैं। मृदा में पर्याप्त जैविक पदार्थ होने पर सूक्ष्मजीव सक्रिय रहते हैं और पोषक तत्वों के चक्रण में सहायता करते हैं। जैविक कृषि में कम्पोस्ट, वर्मी-कम्पोस्ट, हरी खाद, गोबर की खाद और फसल अवशेषों के माध्यम से मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि की जाती है। फसल चक्र में दलहनी फसलों को सम्मिलित करने से जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सुधार होता है।

फसल चक्र, बहुफसली खेती और मिश्रित खेती पोषक तत्वों पर एकतरफा दबाव कम कर सकती हैं। फसल अवशेषों को जलाने के बजाय उनका पुनर्चक्रण मृदा में पोषक तत्वों और कार्बन को वापस लाने का एक प्रभावी उपाय है। रेगानोल्ड और वाचटर (2016) ने जैविक कृषि की समीक्षा करते हुए पाया कि उचित प्रबंधन के साथ जैविक कृषि मृदा स्वास्थ्य, जैव विविधता और कृषि पारिस्थितिकी तंत्र के कई पहलुओं के लिए फायदेमंद हो सकती है। इस प्रकार, "मृदा को पोषण देकर पौधे को पोषण देने" का विचार जैविक और प्राकृतिक कृषि को समझने का एक सरल लेकिन वैज्ञानिक आधार प्रदान करता है।

जैविक कृषि की प्रमुख पद्धतियाँ

जैविक खेती में पोषक तत्व प्रबंधन सबसे महत्वपूर्ण घटकों में से एक है। गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मी-कम्पोस्ट, हरी खाद और जैव उर्वरक मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता के साथ मृदा की जैविक और भौतिक गुणवत्ता में भी वृद्धि करते हैं। यद्यपि, जैविक खादों का उपयोग भी वैज्ञानिक आधार पर होना चाहिए। अतिरिक्त या अपरिपक्व जैविक खाद का प्रयोग पोषण असंतुलन और रोगजनक सूक्ष्मजीवों की समस्या का कारण हो सकता है । जैविक कृषि का एक महत्वपूर्ण उपाय फसल चक्र है। एक ही फसल को लगातार उगाने से कीटों और रोगों की संख्या में वृद्धि होती है और विशेष पोषक तत्वों की कमी हो जाती है। दलहन, तिलहन, अनाज और सब्जियों को क्रमिक रूप से उगाने पर खेत में जैविक विविधता बढ़ती है और कीट-रोग चक्र को रोका जा सकता है।

अंतरवर्ती खेती और मिश्रित खेती भी संसाधनों का बेहतर उपयोग करती हैं। उदाहरण के लिए, एक साथ अनाज और दलहन उगाने से प्रकाश, जल, भूमि और पोषक तत्वों का अधिक संतुलित उपयोग किया जा सकता है। ऐसी प्रणालियाँ उत्पादन जोखिम को कम करने के कारण पर्वतीय क्षेत्रों में विशेष रूप से फायदेमंद होती हैं । जैविक कीट प्रबंधन में कीटों को पूरी तरह समाप्त करने के बजाय उनकी संख्या को कम करने का प्रयास किया जाता है। इसके लिए जैव-नियंत्रण एजेंट, वनस्पति-आधारित पदार्थ, फेरोमोन ट्रैप, प्रकाश प्रपंच, प्रतिरोधी किस्में, फसल विविधीकरण और प्राकृतिक शत्रुओं से बचाव आदि पद्धतियाँ अपनाई जाती है।

खरपतवार प्रबंधन में फसल चक्र, मल्चिंग, समय पर निराई-गुड़ाई और यांत्रिक नियंत्रण महत्वपूर्ण हैं। यद्दपि खरपतवार फसल के लिए अत्यंत नुकसानदायक है किन्तु खरपतवार लाभकारी कीटों को आवास और भोजन भी प्रदान करते हैं। पर्वतीय कृषि में जल और मृदा संरक्षण बहुत महत्वपूर्ण है। मल्चिंग मृदा अपरदन को कम कर सकता है, लेकिन समोच्च खेती, घास की पट्टियाँ और जैविक अवरोध वाष्पीकरण को कम कर सकते हैं।

प्राकृतिक कृषि और पारिस्थितिक आत्मनिर्भरता

प्राकृतिक कृषि का मूल सिद्धांत यह है कि खेत में मौजूद प्राकृतिक संसाधनों और जैविक प्रक्रियाओं को इस प्रकार सक्रिय किया जाए कि खेत को बाहरी संसाधनों पर कम निर्भर बनाया जाए। इस प्रकार कृषि भूमि को एक जीवित पारिस्थितिक तंत्र माना गया है। भारत में पशुधन आधारित कृषि, स्थानीय संसाधनों से तैयार जैविक घोल, बीज उपचार, मल्चिंग, मिश्रित फसलें और जैविक घोल की विभिन्न प्रणालियों का महत्व है। राष्ट्रीय प्राकृतिक कृषि मिशन कृषि प्रणालियों को प्रोत्साहित करता है जो जलवायु सहनशीलता, जैव विविधता और मृदा स्वास्थ्य में सुधार करते हैं और किसानों की बाहरी कृषि निवेशों पर निर्भरता को कम करते हैं (भारत सरकार, 2024)।

प्राकृतिक कृषि का एक महत्वपूर्ण लाभ है कि किसान स्थानीय संसाधनों का उपयोग करके खेती की लागत को कम कर सकते हैं। जब बाजार से खरीदे जाने वाले महंगे कृषि निवेशों की कीमतों में उतार-चढ़ाव होता है, तो यह छोटे और सीमांत किसानों के लिए विशेष रूप से लाभकारी होता है क्योकिं यह उनकी आय को प्रभावित नहीं करता है। फिर भी प्राकृतिक कृषि की पद्धतियों को वैज्ञानिक परीक्षण से परे नहीं माना जाना चाहिए। किसी भी जैविक या प्राकृतिक घोल की प्रभावशीलता उसके निर्माण की विधि, कच्चे पदार्थ व उनकी मात्रा, मौसम, मृदा और फसल पर निर्भर कर सकती है। इसलिए परंपरागत ज्ञान और आधुनिक वैज्ञानिक परीक्षण का संतुलित समन्वय आवश्यक है।

प्राकृतिक एवं जैविक कृषि और सुरक्षित भोजन

खाद्य सुरक्षा खेत से शुरू होती है। भोजन केवल रसोई या खाद्य प्रसंस्करण में सुरक्षित नहीं है। जिस मिट्टी में फसल उगती है, जिस जल से उसकी सिंचाई होती है और जिस प्रकार के कीटनाशक और जैविक पदार्थों का उपयोग किया जाता है, वे सभी खाद्य की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं।

खाद्य फसलों में कीटनाशकों के अवशेषों के बने रहने की संभावना अधिक हो सकती है अगर उनका अत्यधिक, अनियंत्रित या अनुचित उपयोग किया जाता है। जैविक कृषि में कई कृत्रिम और रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग प्रतिबंधित है, इसलिए उपभोक्ताओं को ऐसे कीटनाशी अवशेषों के संपर्क में आने का जोखिम अपेक्षाकृत कम होता है। बारंसकी और उनके साथियों (2014) द्वारा इस संदर्भ में किए गए एक व्यवस्थित विश्लेषण में पाया गया कि जैविक रूप से उत्पादित कुछ फसलों में कुछ एंटीऑक्सीडेंट यौगिकों की मात्रा पारंपरिक रूप से उत्पादित फसलों की तुलना में अधिक थी, जबकि जैविक फसलों में कीटनाशी अवशेषों की मात्रा कम थी। ये निष्कर्ष बताते हैं कि खाद्य उत्पादन में रासायनिक अवशेषों के जोखिम को कम करने में जैविक कृषि प्रणालियों का योगदान हो सकता है। हालाँकि, जैविक कृषि को पूरी तरह से रासायनिक अवशेष-मुक्त मानना उचित नहीं है क्योंकि पर्यावरणीय प्रदूषण, पूर्ववर्ती कृषि प्रक्रियाओं, भंडारण और अन्य स्रोतों से भी कुछ अवशेष खाद्य पदार्थों में प्रवेश कर सकते हैं।

लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक जैविक खाद्य पदार्थ स्वयं पूर्णतः सुरक्षित है। कम्पोस्ट या गोबर की खाद से सूक्ष्मजीव संदूषण हो सकता है। मृदा या सिंचाई जल में भारी धातुओं या अन्य प्रदूषकों की उपस्थिति भी खाद्य की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकती है। इसलिए सुरक्षित भोजन के लिए स्वच्छ जल, स्वस्थ मृदा, सुरक्षित जैविक खाद, उचित फसल प्रबंधन, स्वच्छ कटाई एवं भंडारण और उचित खाद्य प्रसंस्करण आवश्यक हैं। अतः यह कहना अनुचित नहीं होगा कि सुरक्षित भोजन केवल एक कृषि पद्धति का परिणाम नहीं बल्कि खेत से लेकर उपभोक्ता तक पूरी खाद्य श्रृंखला में अपनाई गई वैज्ञानिक सावधानियों का परिणाम है।

जैविक कृषि और भोजन का पोषणात्मक महत्त्व

जैविक और प्राकृतिक कृषि का सबसे बड़ा लाभ यह नहीं है कि यह अधिक पौष्टिक भोजन प्रदान करता है, बल्कि यह सुरक्षित, विविध, पर्यावरण-अनुकूल और दीर्घकालिक रूप से टिकाऊ खाद्य प्रणालियों का निर्माण कर सकती है। जैविक कृषि से उत्पादित खाद्य पदार्थों के पोषणीय लाभ का मूल्यांकन मुख्य रूप से उनके पोषक तत्वों और जैव-सक्रिय घटकों के संदर्भ में किया जाता है। फल, सब्जियाँ, अनाज, दलहन तथा अन्य पादप-आधारित खाद्य पदार्थों में कई जैव-सक्रिय यौगिक, प्रोटीन, वसा, विटामिन, खनिज तत्व और कार्बोहाइड्रेट होते हैं। फसल की आनुवंशिक विशेषताओं, मृदा, जलवायु, परिपक्वता, कृषि प्रबंधन और भंडारण जैसी परिस्थितियों से इन घटकों की मात्रा और संरचना प्रभावित होती है। जैविक उत्पादन प्रणाली के पोषणीय प्रभाव को किसी एक पोषक तत्व पर निर्धारित करने की जगह खाद्य की पूरी पोषणीय संरचना को देखना बेहतर है (डैंगोर एवं सह लेखक 2009)।

जैविक कृषि से प्राप्त पादप खाद्य पदार्थों में द्वितीयक पादप-उत्पादों (secondary plant metabolites) का विशेष महत्व है। पौधों में प्राकृतिक रूप से उपस्थित फाइटोकेमिकल्स, जैसे पॉलीफेनॉल, फ्लेवोनॉयड और कैरोटेनॉयड, मानव आहार में जैव-सक्रिय घटकों के रूप में कार्य करते हैं। ये यौगिक पौधों की रंग, स्वाद और सुगंध जैसी विशेषताओं से भी जुड़े होते हैं। विभिन्न अध्ययनों ने पाया कि पारंपरिक रूप से उत्पादित फसलों की तुलना में जैविक रूप से उत्पादित कुछ फसलों में ऐसे यौगिकों की सांद्रता अधिक है। एंटीऑक्सीडेंट यौगिक जैविक खाद्य पदार्थों के पोषणीय अध्ययन का एक महत्वपूर्ण भाग है। एंटीऑक्सीडेंट क्षमता कई फेनोलिक योगिकों, विटामिन सी, विटामिन ई और कैरोटेनॉयड में पाई जाती है। शरीर की सामान्य जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं में इन यौगिकों की पर्याप्त मात्रा वाला विविध आहार लाभदायक है । किसी एक खाद्य पदार्थ को संपूर्ण पोषण का स्रोत नहीं माना जा सकता, इसलिए आहार में विभिन्न फलों, सब्जियों, साबुत अनाजों और दलहनों को सम्मिलित करना अधिक महत्वपूर्ण है (फाओरो एवं सह लेखक 2024, पूलिया एवं सह लेखक 2025)।

जैविक कृषि में उत्पादित अनाज और दलहन पोषण की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। साबुत अनाज जटिल कार्बोहाइड्रेट, आहार रेशा, विटामिन बी समूह और कई खनिजों को देते हैं, जबकि दलहन प्रोटीन, आहार रेशा, लौह, जिंक और अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों का महत्वपूर्ण स्रोत हैं। यदि इन खाद्य पदार्थों को स्थानीय और विविध कृषि प्रणालियों से बनाया जाता है, तो वे स्थानीय भोजन में पोषण विविधता को बढ़ा सकते हैं।

संतुलित आहार के लिए फलों और सब्जियों में विटामिन, खनिज, आहार रेशा और फाइटोकेमिकल्स का उपस्थित होना आवश्यक हैं। जैविक कृषि में इन खाद्य पदार्थों की महत्ता केवल उत्पादन प्रक्रिया से नहीं होती, बल्कि उनकी प्रजाति और किस्म, ताजगी, पकने की अवस्था, भंडारण और उपभोग से पहले के प्रसंस्करण पर भी निर्भर करती है। उदाहरण के लिए, लंबे समय तक भंडारण या अत्यधिक प्रसंस्करण कुछ संवेदनशील पोषक तत्वों की मात्रा को प्रभावित कर सकता है। इसलिए पूरी खाद्य श्रृंखला-खेत से उपभोक्ता तक-पोषणीय गुणवत्ता को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण है।

यह भी ध्यान रखना चाहिए कि सभी अध्ययनों ने पारंपरिक और जैविक खाद्य पदार्थों के बीच पोषणीय अंतर स्पष्ट नहीं किया है। स्मिथ-स्पैंगलर आदि (2012) की व्यवस्थित समीक्षा ने दिखाया कि वर्तमान अध्ययनों में पोषण संबंधी निष्कर्षों में काफी भिन्नता है। जैविक खाद्य पदार्थों को सार्वभौमिक रूप से अधिक पौष्टिक घोषित करने के बजाय यह कहना अधिक वैज्ञानिक है कि कुछ जैविक

फसलों में विशिष्ट पोषक तत्वों या जैव-सक्रिय घटकों की मात्रा में अंतर पाया जा सकता है, जबकि दोनों उत्पादन प्रणालियों में कई पोषक तत्वों के संबंध में कोई स्पष्ट अंतर नहीं है।

उत्तराखंड के संदर्भ में इस विषय को स्थानीय खाद्य जैव-विविधता से जोड़कर देखा जा सकता है। पर्वतीय क्षेत्रों की पारंपरिक खाद्य प्रणाली में मंडुवा, झंगोरा, विभिन्न दलहन, स्थानीय सब्जियाँ, फल और पारंपरिक खाद्य पौधे महत्वपूर्ण हैं। स्थानीय पोषण सुरक्षा को मजबूत करने के लिए इन खाद्य पदार्थों की रक्षा और एक संतुलित आहार का पालन करना आवश्यक है। जैविक कृषि स्थानीय कृषि-जैव विविधता को बनाए रखने वाली उत्पादन प्रणालियों के साथ मिलकर खाद्य गुणवत्ता और आहार विविधता को सुधार सकती है।

इस तरह, जैविक कृषि से प्राप्त खाद्य पदार्थों का पोषणीय लाभ किसी एक पोषक तत्व की अधिकता से निर्धारित नहीं है। इसका मूल्यांकन खाद्य विविधता, पोषक तत्वों, जैव-सक्रिय यौगिकों और समग्र आहार गुणवत्ता पर किया जाना चाहिए। वैज्ञानिक रूप से सबसे संतुलित निष्कर्ष यह है कि कुछ खाद्य पदार्थों की पोषणीय संरचना में सुधार के साथ जैविक उत्पादन का संबंध हो सकता है; हालांकि, इन प्रभावों की प्रकृति फसल और उत्पादन परिस्थितियों पर निर्भर करती है।

पर्यावरण संरक्षण में प्राकृतिक एवं जैविक कृषि की भूमिका

पर्यावरण और कृषि एक-दूसरे से भिन्न नहीं हैं। खेत में होने वाली गतिविधियाँ आसपास के जल, वनस्पति, जीव-जंतुओं और मृदा को प्रभावित करती हैं। जैविक और प्राकृतिक कृषि में जैव विविधता को महत्त्व देने के कारण खेत कई फायदेमंद जीवों का आवास हो सकते हैं । जैविक पदार्थों का उपयोग, मिश्रित खेती, फसल विविधीकरण और प्राकृतिक कीट शत्रुओं का संरक्षण कृषि पारिस्थितिकी को अधिक संतुलित बना सकता है। जैविक पदार्थों से समृद्ध मृदा की संरचना और जल धारण क्षमता में सुधार हो सकता है।

रेगानोल्ड और वाचटर (2016) ने जैविक कृषि को सामाजिक-आर्थिक लाभों, संसाधन उपयोग, जैव विविधता और पर्यावरणीय प्रभावों से जोड़ा है। हालांकि,उत्पादन क्षमता, जैविक कृषि के सामने एक बड़ी चुनौती है । सेयुफर्ट और उनके साथियों द्वारा 2012 में प्रकाशित शोध पत्र कॉम्पैरिंग द यील्ड्स ऑफ़ आर्गेनिक एंड कन्वेंशनल एग्रीकल्चर वैश्विक स्तर परपारंपरिक और जैविक कृषि की तुलना करता है जिसके अनुसार जैविक कृषि की पैदावार सामान्यतः पारंपरिक कृषि से कम होती है किन्तु यह फसल के प्रकार और प्रबंधन पर निर्भर करता है। अतः भविष्य में कृषि के लिए एक ऐसी प्रणाली विकसित करनी होगी जिसमे पारिस्थितिक स्थिरता और उत्पादकता दोनों का संतुलन बना रहे।

उत्तराखण्ड में प्राकृतिक एवं जैविक कृषि

उत्तराखण्डराज्य में प्राकृतिक एवं जैविक कृषि के लिए अपार सम्भावनायें है। हिमालयी भौगोलिक परिस्थितियाँ, विविध ऊँचाई, वर्षा-आधारित कृषि, पारंपरिक कृषि ज्ञान, स्थानीय फसल विविधता तथा कृषि-पशुपालन-वन संसाधनों के पारंपरिक संबंध इसे अन्य क्षेत्रों से अलग बनाते हैं। उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में लंबे समय से मंडुवा, झंगोरा, गहत, भट्ट, राजमा, पारंपरिक धान, चौलाई, तिलहन तथा विभिन्न स्थानीय सब्जियों और फलों की खेती की जाती रही है। ये फसलें केवल कृषि उत्पाद नहीं हैं, बल्कि पर्वतीय समाज की खाद्य संस्कृति, पोषण और जैव-सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा हैं। राज्य में जैविक एवं प्राकृतिक कृषि को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न सरकारी कार्यक्रम संचालित किए गए हैं। उत्तराखण्ड कृषि विभाग द्वारा जैविक एवं प्राकृतिक कृषि से संबंधित कार्यक्रमों में मृदा स्वास्थ्य, जैविक उत्पादन, प्रशिक्षण तथा प्रमाणन जैसी गतिविधियों पर बल दिया गया है (कृषि विभाग, उत्तराखंड)

एपेडा (APEDA) के उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार उत्तराखण्ड में जैविक खेती तथा रूपांतरण के अंतर्गत उल्लेखनीय क्षेत्र दर्ज किया गया है। वर्ष 2022–23 के लिए राज्य में लगभग 32,634 हेक्टेयर जैविक कृषि क्षेत्र तथा लगभग 65,760 हेक्टेयर रूपांतरण क्षेत्र दर्ज किया गया था। इसी अवधि में जैविक कृषि उत्पादन लगभग 43,955 टन रहा । वर्ष 2023–24 में जैविक उत्पादन लगभग 44,745 टन दर्ज किया गया (APEDA, 2024-25)।उत्तराखण्ड की विशिष्ट कृषि उपजों को राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाने के प्रयास भी किए जा रहे हैं। APEDA द्वारा राज्य से संबंधित कई उत्पादों में उत्तराखण्ड मंडुवा, उत्तराखण्ड झंगोरा, उत्तराखण्ड गहत, उत्तराखण्ड लाल चावल, उत्तराखण्ड काला भट्ट, उत्तराखण्ड माल्टा, उत्तराखण्ड चौलाई और उत्तराखण्ड पहाड़ी तूर दाल जैसे उत्पादों को सूचीबद्ध किया गया है (APEDA, 2024-25)। इन फसलों की विशेषता केवल उनका बाजार मूल्य नहीं है। ये पर्वतीय कृषि जैव विविधता को बनाए रखने और स्थानीय पोषण सुरक्षा को मजबूत करने में भी महत्वपूर्ण हैं।

उत्तराखण्ड की पारंपरिक फसलें: पोषण और जैव विविधता का आधार

मंडुवा उत्तराखण्ड में उगाई जाने वाली पारंपरिक फसलों में विशिष्ट है। यह आहार-रेशा, ऊर्जा और कई खनिज तत्वों का स्रोत है। लंबे समय से पहाड़ों में मंडुवे की रोटी पारंपरिक भोजन का हिस्सा रही है। इसी तरह, झंगोरा स्थानीय भोजन का एक पारंपरिक अनाज है। गहत और अन्य दलहन, प्रोटीन का एक महत्वपूर्ण वनस्पति स्रोत हैं। स्थानीय दलहन, काला भट्ट, पोषण के साथ साथ कृषि जैव विविधता के संरक्षण में भी सहायक हैं।

पारंपरिक धान की स्थानीय किस्में, खासकर लाल चावल, केवल खाद्य फसल नहीं हैं; वे स्थानीय कृषि संस्कृति और जैविक विविधता का भाग हैं। इन फसलों को प्राकृतिक और जैविक कृषि के साथ मिलाकर तीन महत्वपूर्ण लक्ष्यों को पूरा किया जा सकता है: पोषण सुरक्षा, जैव विविधता संरक्षण और किसानों की आय में वृद्धि।

उत्तराखण्ड में प्राकृतिक एवं जैविक कृषि की संभावनाएँ

उत्तराखण्ड में प्राकृतिक और जैविक कृषि की सबसे बड़ी संभावना स्थानीय संसाधनों और पारंपरिक कृषि प्रौद्योगिकी की उपलब्धता में निहित है। बहुत से पर्वतीय किसान पहले से ही सीमित मात्रा में बाहरी कृषि निवेशों का उपयोग करते हैं। यह परिस्थिति प्राकृतिक और जैविक कृषि की ओर प्रवृत्ति को आधार प्रदान करती है । किन्तु पर्वतीय कृषि के सामने भी कई चुनौतियाँ है। छोटे और बिखरे हुए खेत, सिंचाई की सीमित सुविधाएँ, कठिन परिवहन, वन्यजीवों से फसल क्षति, श्रम की कमी और ग्रामीण पलायन आदि समस्याएं कृषि की आर्थिक व्यवहार्यता को प्रभावित करती हैं।

इन परिस्थितियों में क्लस्टर आधारित जैविक खेती एक उपयोगी रणनीति हो सकती है। यदि किसान समूहों, सहकारी संस्थाओं या किसान उत्पादक संगठनों के माध्यम से सामूहिक रूप से उत्पादन, प्रमाणन, प्रसंस्करण और विपणन करते हैं तो लागत कम की जा सकती है और बाजार तक बेहतर पहुँच बनाई जा सकती है। उदाहरण के लिए, केवल मंडुवा बेचने की अपेक्षा मंडुवा आटा, तैयार खाद्य पदार्थ, मिश्रित मिलेट उत्पाद या पैकेज्ड स्थानीय खाद्य पदार्थ अधिक मूल्य प्रदान कर सकते हैं। इसी प्रकार गहत, भट्ट, राजमा और अन्य स्थानीय दलहनों को साफ करके, पैकेजिंग करके तथा प्रमाणित ब्रांड के रूप में बाजार में उतारा जा सकता है। मूल्य संवर्धन यहाँ बहुत महत्वपूर्ण है। इससे स्थानीय युवाओं और महिलाओं के लिए रोज़गार के अवसर भी बढ़ सकते हैं।

जैविक एवं प्राकृतिक कृषि की प्रमुख चुनौतियाँ

प्राकृतिक एवं जैविक कृषि की संभावनाओं के बावजूद इसके सामने अनेक व्यावहारिक चुनौतियाँ हैं। जैविक खेती में संक्रमण की प्रारंभिक अवधि में उत्पादन में कमी आ सकती है, क्योंकि मृदा की जैविक प्रक्रियाओं को पुनर्स्थापित होने में समय लगता है। पर्याप्त मात्रा में गुणवत्तापूर्ण जैविक खाद की उपलब्धता भी कई किसानों के लिए चुनौती है। वही प्रमाणन छोटे किसानों के लिए एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या है। व्यक्तिगत रूप से खेती करने वाले किसानों के लिए प्रमाणन की लागत और प्रशासनिक प्रक्रिया कठिन होती है। इसलिए समूह आधारित प्रमाणन, सामूहिक विपणन तथा सहभागी प्रणालियाँ छोटे किसानों के लिए अधिक उपयोगी हो सकती हैं।

बाजार भी एक महत्वपूर्ण पक्ष है। यदि किसान जैविक उत्पाद बनाता है लेकिन उपभोक्ता उसकी वास्तविकता को नहीं जान सकता, तो किसान को अधिक मूल्य नहीं मिलेगा। इसलिए पारदर्शी लेबलिंग, प्रमाणन और उत्पाद की अनुपयुक्तता आवश्यक हैं। उत्पादकता भी सबसे बड़ी चुनौती है। जैविक कृषि को सफल बनाने के लिए रासायनिक निवेश को हटाना पर्याप्त नहीं है। उत्पादकता को बनाए रखने के लिए बेहतर किस्में, उच्च गुणवत्ता वाले जैविक इनपुट, वैज्ञानिक पोषक तत्व प्रबंधन, जैविक कीट नियंत्रण और जल संरक्षण आवश्यक हैं।

प्राकृतिक एवं जैविक कृषि का भविष्य

विज्ञान और परंपरा का समन्वय प्राकृतिक और जैविक कृषि का भविष्य निर्धारित करने में सहायक सिद्ध होगा। पारंपरिक कृषि ज्ञान में स्थानीय फसलों, मौसम, मृदा और कृषि पारिस्थितिकी के बारे में बहुमूल्य जानकारी होती है। आधुनिक विज्ञान इस ज्ञान की वैज्ञानिक जाँच, सुधार और मानकीकरण में सहायता कर सकता है। उत्तराखण्ड में स्थानीय बीज संरक्षण, पारंपरिक फसलों का पुनरोद्धार, मृदा जैविक पदार्थ में वृद्धि, जैविक खाद की गुणवत्ता में सुधार, किसान प्रशिक्षण, समूह आधारित प्रमाणन और स्थानीय प्रसंस्करण संस्थाओं को बढ़ावा देना महत्वपूर्ण होगा।

इस मामले में भी डिजिटल तकनीक अतिउपयोगी हो सकती है। छोटे किसानों को बेहतर बाजार से जोड़ने में मौसम पूर्वानुमान, बाजार मूल्य, कृषि परामर्श, डिजिटल ट्रेसबिलिटी और ऑनलाइन विपणन सहायक हो सकते है। भारत सरकार द्वारा देश भर में प्राकृतिक कृषि के लिए बढ़ते प्रयास इस क्षेत्र को नई दिशा दे रहे हैं। राष्ट्रीय प्राकृतिक कृषि मिशन का लक्ष्य प्राकृतिक कृषि को बढ़ावा देना, मृदा स्वास्थ्य में सुधार करना, बाहरी निवेशों पर निर्भरता कम करना और कृषि को जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक सहनशील बनाना (भारत सरकार, 2024) है। यह अवसर उत्तराखण्ड के लिए खास महत्व रखता है क्योंकि यहाँ प्राकृतिक और जैविक कृषि को पोषण, पर्यावरण संरक्षण, ग्रामीण आजीविका, स्थानीय संस्कृति और कृषि जैव विविधता के साथ जोड़ा जा सकता है।

निष्कर्ष

जैविक और प्राकृतिक कृषि, कृषि को देखने के हमारे दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण बदलाव लाती हैं। इन प्रणालियों में खेत को एक जीवित पारिस्थितिक तंत्र के रूप में देखा जाता है, जहाँ मृदा, पौधे, सूक्ष्मजीव, पशु, जल, जैवविविधता और मानव एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और उत्पादन करते हैं। जैविक कृषि एक व्यवस्थित कृषि प्रणाली है जो मृदा स्वास्थ्य, पोषक-चक्रण, फसल विविधता और कीट प्रबंधन पर आधारित है। प्राकृतिक कृषि स्थानीय संसाधनों, पारिस्थितिक प्रक्रियाओं और बाहरी कृषि निवेशों को कम करती है। दोनों प्रणालियाँ कृषि को अधिक पर्यावरण-अनुकूल और टिकाऊ बनाने में महत्वपूर्ण हो सकती हैं।

इन कृषि प्रणालियों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखना चाहिए। यह उचित नहीं है कि प्रत्येक जैविक खाद्य पदार्थ स्वतः अधिक पौष्टिक या पूर्णतः सुरक्षित हो। इसी तरह, जैविक खेती की उत्पादकता से जुड़े मुद्दों को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता। ऐसा कृषि मॉडल बनाना वास्तविक समाधान है जिसमें उत्पादकता, खाद्य सुरक्षा, पोषण, पर्यावरण संरक्षण और किसानों की आर्थिक स्थिरता का संतुलन हो। उत्तराखण्ड में प्राकृतिक और जैविक खेती की अपार संभावनाएँ हैं। राज्य की कृषि और खाद्य संस्कृति में मंडुवा, झंगोरा, गहत, भट्ट, राजमा, लाल चावल, चौलाई और अन्य पारंपरिक फसलें महत्वपूर्ण हैं। इन फसलों को वैज्ञानिक प्राकृतिक और जैविक कृषि, प्रमाणन, मूल्य संवर्धन और प्रभावी विपणन से जोड़कर स्थानीय पोषण सुरक्षा और किसानों की आय दोनों को बढ़ाया जा सकता है।

अंततः किसी भी कृषि तकनीक से स्वस्थ और पौष्टिक भोजन नहीं बनाया जा सकता। इसके लिए गुणवत्ता पूर्ण बीज, स्वच्छ मृदा, स्वच्छ जल, संतुलित पोषण प्रबंधन, सुरक्षित कीट नियंत्रण, स्वच्छ कटाई, उचित भंडारण और जिम्मेदार खाद्य प्रसंस्करण चाहिए। जैविक और प्राकृतिक कृषि दोनों इस व्यापक खाद्य व्यवस्था का एक महत्व पूर्ण हिस्सा हो सकते हैं। इसलिए प्राकृतिक और जैविक कृषि को केवल "रसायन-मुक्त खेती" के रूप में नहीं समझना चाहिए; इसे एक निरंतर कृषि प्रणाली के रूप में समझना चाहिए जो मृदा, पौधों, मनुष्यों और प्रकृति के बीच संतुलित और सम्मानजनक संबंध बनाए रखती है। यही सोच आज की पीढ़ी को सुरक्षित और पौष्टिक भोजन दे सकती है और आने वाली पीढ़ियों के लिए स्वस्थ पर्यावरण की आधारशिला बन सकता है।

संदर्भ

1. उत्तराखंड ऑर्गेनिक कमोडिटी बोर्ड: ऑर्गेनिक एग्रीकल्चर, सर्टिफिकेशन, प्रोडक्शन एंड मार्केटिंग इनिशिएटिव्स इन उत्तराखंड**,** गवर्नमेंट ऑफ उत्तराखंड, देहरादून, इंडिया।
2. एपीडा (एग्रीकल्चरल एंड प्रोसेस्ड फूड प्रोडक्ट्स एक्सपोर्ट डेवलपमेंट अथॉरिटी): *ऑर्गेनिक एग्रीकल्चर एंड नेशनल प्रोग्राम फॉर ऑर्गेनिक प्रोडक्शन*, मिनिस्ट्री ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, न्यू दिल्ली, 2024.
3. एपीडा (एग्रीकल्चरल एंड प्रोसेस्ड फूड प्रोडक्ट्स एक्सपोर्ट डेवलपमेंट अथॉरिटी): *इंडिया ऑर्गेनिक प्रोडक्शन एंड एक्सपोर्ट स्टैटिस्टिक्स*, मिनिस्ट्री ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, न्यू दिल्ली, 2024–2025.
4. कृषि विभाग, उत्तराखंड: *जैविक एवं प्राकृतिक कृषि*, उत्तराखंड सरकार, देहरादून, उत्तराखंड, भारत।
5. डैंगोर, ए. डी., डोडहिया, एस. के., हेटर, ए., एलन, ई., लॉक, के., एवं उआउई, आर. (2009). न्यूट्रिशनल क्वालिटी ऑफ ऑर्गेनिक फूड्स: ए सिस्टेमैटिक रिव्यू**।** द *अमेरिकन जर्नल ऑफ क्लिनिकल न्यूट्रिशन*, 90(3), 680–685। https://doi.org/10.3945/ajcn.2009.28041
6. पूलिया, के.-ए., बाकालौदी, डी. आर., अलेविज़ू, एम., पापाकोन्स्टेंटिनौ, ई., ज़ाम्पेलस, ए., एवं चौर्दाकिस, एम. (2025)। इम्पैक्ट ऑफ ऑर्गेनिक फूड्स ऑन क्रॉनिक डिजीज़ एंड हेल्थ परसेप्शन: ए सिस्टेमैटिक रिव्यू ऑफ द एविडेंस। *यूरोपियन जर्नल ऑफ क्लिनिकल न्यूट्रिशन*, 79, 90–103
7. फाओरो, डी. टी. डी. ओ., आर्तुज़ो, एफ. डी., बोर्जेस, जे. ए. आर., फोगुएसात्तो, सी. आर., डेवेस, एच., एवं तालामिनी, ई. (2024). आर ऑर्गेनिक्स मोर न्यूट्रिशियस दैन कन्वेंशनल फूड्स? ए कम्प्रिहेन्सिव सिस्टेमैटिक रिव्यू। *हेलियॉन*, 10(7), e28288। https://doi.org/10.1016/j.heliyon.2024.e28288
8. बारांस्की एम., स्रेडनिका-टोबर डी., वोलाकाकिस एन., सील सी., सैंडरसन आर., स्टीवर्ट जी. बी., बेनब्रुक सी., बिवियाटी बी., मार्केल्लू ई., जियोटिस सी., ग्रोमाड्ज़का-ओस्ट्रोव्स्का जे., रेम्बियाल्कोव्स्का ई., स्क्वार्लो-सोंटा के., ताहवोनेन आर., जानोव्स्का डी., निग्ली यू., निकोट पी., लाइफर्ट सी. (2014). हायर एंटीऑक्सीडेंट एंड लोअर कैडमियम कॉन्सन्ट्रेशन्स एंड

लोअर इन्सिडेन्स ऑफ पेस्टिसाइड रेजिड्यूज़ इन ऑर्गेनिकली ग्रोन क्रॉप्स: ए सिस्टेमैटिक लिटरेचर रिव्यू एंड मेटा-एनालिसिस। *ब्रिटिश जर्नल ऑफ न्यूट्रिशन*. 112(5):794-811. doi: 10.1017/S0007114514001366.

9. भारत सरकार: प्राकृतिक कृषि पर राष्ट्रीय मिशन, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, नई दिल्ली, 2024।
10. भारत सरकार: *प्राकृतिक कृषि पर राष्ट्रीय मिशन: सतत एवं कम लागत वाली कृषि पद्धतियों का संवर्धन*, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, नई दिल्ली, 2025।
11. मीना, वी. एस. और शर्मा, एस. (2015). *ऑर्गेनिक फार्मिंग: ए केस स्टडी ऑफ उत्तराखंड ऑर्गेनिक कमोडिटी बोर्ड*, *जर्नल ऑफ इंडस्ट्रियल पॉल्यूशन कंट्रोल*, 31. 201-206
12. रेगनोल्ड, जे., वॉचर, जे. (2016).ऑर्गेनिक एग्रीकल्चर इन द ट्वेंटी-फर्स्ट सेंचुरी। *नेचर प्लांट्स*, 2, 15221, https://doi.org/10.1038/nplants.2015.221
13. सेफर्ट, वी., रामनकुट्टी, एन. और फोले, जे. ए. (2012). *कम्पेयरिंग द यील्ड्स ऑफ ऑर्गेनिक एंड कन्वेंशनल एग्रीकल्चर*, *नेचर*, 485, 229–232
14. स्मिथ-स्पैंगलर सी., ब्रैंडो एम. एल., हंटर जी. ई., बेविंजर जे. सी., पियर्सन एम., एशबाख पी. जे., सुंदरम वी., लियू एच., शिर्मर पी., स्टेव सी., ओल्किन आई. और ब्रावाटा डी. एम. (2012). आर ऑर्गेनिक फूड्स सेफर ऑर हेल्थियर दैन कन्वेंशनल अल्टरनेटिव्स?: ए सिस्टेमैटिक रिव्यू। *एनल्स ऑफ इंटरनल मेडिसिन*, 157(5): 348–366. doi: 10.7326/0003-4819-157-5-201209040-00007.

हिमालयी क्षेत्रों में सामुदायिक–आधारित पर्यटनः संभावनाएँ, बाधाएँ एवं संधारणीय भविष्य की रणनीति (उत्तराखंड के विशेष संदर्भ में)

सारांश

उत्तराखंड का हिमालयी क्षेत्र अपनी प्राकृतिक सुंदरता, समृद्ध संस्कृति और जैव विविधता के लिए जाना जाता है। लेकिन इसके साथ ही यह क्षेत्र आर्थिक और पर्यावरणीय चुनौतियों से भी जूझ रहा है। वर्ष 2025 के दौरान राज्य में छह करोड़ से अधिक पर्यटक और तीर्थयात्री पहुँचे। इसके बावजूद पर्यटन से होने वाला आर्थिक लाभ राज्य के कुछ ही प्रमुख क्षेत्रों तक सीमित रहा। दूसरी ओर, पर्वतीय जिलों से लोगों का पलायन लगातार जारी रहा। यह स्थिति एक महत्वपूर्ण प्रश्न सामने रखती है, यदि उत्तराखंड में इतनी बड़ी संख्या में पर्यटक आते हैं, तो इसका लाभ पर्वतीय गाँवों और वहाँ रहने वाले लोगों तक पर्याप्त रूप से क्यों नहीं पहुँच रहा है? इसी प्रश्न को केंद्र में रखते हुए यह अध्याय ''सामुदायिक–आधारित पर्यटन'' को पर्वतीय क्षेत्रों के विकास के एक व्यावहारिक माध्यम के रूप में समझने का प्रयास करता है। इस प्रकार के पर्यटन में स्थानीय लोगों की भागीदारी महत्वपूर्ण होती है। गाँव के लोग अपने क्षेत्र की प्राकृतिक और सांस्कृतिक विशेषताओं को पर्यटन से जोड़ते हैं और उससे मिलने वाली आय का लाभ स्थानीय समुदाय को मिलता है। अध्याय की शुरुआत सामुदायिक–आधारित पर्यटन की अवधारणा को समझाने से की गई है। इसके बाद उत्तराखंड की भौगोलिक स्थिति, जनसंख्या, गाँवों की परिस्थितियों और वर्तमान संस्थागत व्यवस्था पर चर्चा की गई है। उत्तराखंड के ''सरमोली–मुनस्यारी (पिथौरागढ़)'' में महिलाओं द्वारा संचालित 'माटी' संगठन का उदाहरण इस दिशा में महत्वपूर्ण है। इसी तरह जखोल, हर्षिल, गूंजी और सुपी जैसे राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त गाँवों के अनुभव भी यह समझने में मदद करते हैं कि स्थानीय समुदाय पर्यटन के माध्यम से अपने गाँवों में रोजगार और आय के नए अवसर कैसे विकसित कर सकते हैं। इसके साथ ही लद्दाख और सिक्किम में अपनाए गए कुछ सामुदायिक पर्यटन मॉडलों की भी चर्चा की गई है। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि उत्तराखंड में भी स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार ऐसे मॉडल विकसित किए जा सकते हैं। राज्य की ''वन पंचायत व्यवस्था'' इस दिशा में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। वन पंचायतों के माध्यम से स्थानीय समुदाय लंबे समय से अपने आसपास के वन संसाधनों के संरक्षण और उपयोग में भाग लेते रहे हैं। इसलिए सामुदायिक पर्यटन के विकास में यह व्यवस्था एक मजबूत आधार बन सकती है। अभी तक इस संभावना का पर्याप्त उपयोग नहीं किया गया है। अध्याय के अंत में सामुदायिक पर्यटन को गाँवों के विकास और पलायन को कम करने से जोड़ने के लिए एक ''तीन–स्तरीय कार्ययोजना'' प्रस्तुत की गई है। इसके साथ ही ग्राम पर्यटन सहकारिता, ग्राम संरक्षण कोष और विभिन्न योजनाओं को एक साथ जोड़कर काम करने जैसे उपाय सुझाए गए हैं। कुल बारह सुझावों के माध्यम से यह बताया गया है कि किस प्रकार पर्यटन को स्थानीय रोजगार, पर्यावरण संरक्षण और ग्रामीण विकास से जोड़ा जा सकता है। इस प्रकार, सामुदायिक–आधारित पर्यटन केवल पर्यटकों को गाँवों तक पहुँचाने का माध्यम नहीं है। यह स्थानीय लोगों को अपने ही क्षेत्र में रोजगार और आय के अवसर देने, प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक विरासत को बचाने और पर्वतीय क्षेत्रों से होने वाले पलायन को कम करने का एक प्रभावी माध्यम बन सकता है।

मुख्य शब्दः सामुदायिक–आधारित पर्यटन, पलायन, होमस्टे, वन पंचायत, सतत पर्वतीय विकास, उत्तराखंड, ग्राम पर्यटन

प्रस्तावना

उत्तराखंड को सामान्यतः दो अलग–अलग रूपों में देखा जाता है। एक ओर यह 'देवभूमि' है, जहाँ चार धाम, फूलों की घाटी, नंदा देवी जैव–मंडल तथा गंगा और यमुना जैसी नदियों के उद्गम स्थल हैं। दूसरी ओर, राज्य के अनेक पर्वतीय गाँव पलायन और घटती आबादी की समस्या से जूझ रहे हैं। कई गाँवों में घर खाली हैं और खेतों में खेती नहीं हो रही है। राज्य गठन के 25 वर्ष पूरे होने पर यह प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है कि जब उत्तराखंड में बड़ी संख्या में पर्यटक और तीर्थयात्री आते हैं, तब भी पर्वतीय क्षेत्रों के युवा रोजगार और बेहतर अवसरों की तलाश में गाँव छोड़कर मैदानों और शहरों की ओर क्यों जा रहे हैं?

इस समस्या का एक प्रमुख कारण उत्तराखंड में पर्यटन के विकास का वर्तमान तरीका है। यहाँ पर्यटन में स्थानीय लोगों की भागीदारी अभी भी सीमित है। पर्यटक बाहर से आते हैं, यात्रा की बुकिंग अक्सर बाहरी टूर ऑपरेटरों के माध्यम से करते हैं और कई बार बाहरी पूँजी से बने होटलों और अन्य सुविधाओं का उपयोग करते हैं। पर्यटन में इस्तेमाल होने वाली कई वस्तुएँ भी बाहर से आती हैं। ऐसे में स्थानीय लोगों को पर्यटन से मुख्य रूप से छोटे स्तर के रोजगार ही मिल पाते हैं। पर्यटन से होने वाली आय का एक बड़ा हिस्सा क्षेत्र से बाहर चला जाता है। दूसरी ओर, पर्यटन के कारण पैदा होने वाली समस्याओं, जैसे कचरा, पानी की अधिक खपत, अनियोजित निर्माण और यातायात का दबाव, का प्रभाव स्थानीय क्षेत्र और वहाँ रहने वाले लोगों पर पड़ता है।

इस स्थिति को बदलने के लिए सामुदायिक–आधारित पर्यटन एक महत्वपूर्ण विकल्प हो सकता है। इसमें पर्यटन से जुड़े कार्यों का स्वामित्व, संचालन और लाभ का वितरण मुख्य रूप से स्थानीय समुदाय की भागीदारी से होता है। पर्यटन से जुड़े महत्वपूर्ण निर्णय भी स्थानीय लोगों और उनकी सामूहिक संस्थाओं की भागीदारी से लिए जाते हैं (Goodwin & Santilli, 2009)। इसका उद्देश्य केवल स्थानीय लोगों की आय बढ़ाना नहीं है, बल्कि उन्हें पर्यटन की योजना बनाने और निर्णय लेने में भी सक्रिय भूमिका देना है।

हिमालयी क्षेत्रों में सामुदायिक–आधारित पर्यटन का महत्व कई स्तरों पर है। इससे स्थानीय स्तर पर रोजगार और आय के अवसर बढ़ाए जा सकते हैं। साथ ही, स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए लोगों को आर्थिक प्रोत्साहन मिल सकता है। इससे स्थानीय संस्कृति, परंपराओं और पारंपरिक ज्ञान को भी महत्व मिलेगा। इन्हें पिछड़ेपन की निशानी के रूप में देखने के बजाय क्षेत्र की महत्वपूर्ण संपत्ति के रूप में विकसित किया जा सकता है। इस अध्याय का उद्देश्य केवल सामुदायिक–आधारित पर्यटन की अवधारणा को समझाना नहीं है। इसका उद्देश्य उत्तराखंड और व्यापक हिमालयी क्षेत्र के लिए ऐसे व्यावहारिक मॉडल प्रस्तुत करना है, जिन्हें लागू किया जा सके, जिनके लिए वित्तीय सहायता की व्यवस्था की जा सके और जिन्हें आवश्यकता के अनुसार दूसरे क्षेत्रों में भी अपनाया जा सके। इन मॉडलों

का उद्देश्य स्थानीय समुदाय की भागीदारी बढ़ाना, रोजगार के अवसर पैदा करना तथा प्राकृतिक और सांस्कृतिक संसाधनों का संरक्षण सुनिश्चित करना है।

संकल्पनात्मक ढाँचा

पर्यटन में स्थानीय समुदाय की भूमिका को समझने की व्यवस्थित कोशिश मर्फी (Murphy, 1985) ने की। उन्होंने पर्यटन को एक ऐसे उद्योग के रूप में देखा जिसमें किसी पर्यटन स्थल के स्थानीय निवासी स्वयं पर्यटन का महत्वपूर्ण हिस्सा होते हैं। इसका अर्थ है, कि किसी स्थान का पर्यटन केवल वहाँ के प्राकृतिक या सांस्कृतिक आकर्षण पर निर्भर नहीं करता, बल्कि वहाँ रहने वाले लोगों की भूमिका भी उतनी ही महत्वपूर्ण होती है।

बटलर (Butler, 1980) के गंतव्य–जीवनचक्र सिद्धांत के अनुसार, किसी पर्यटन स्थल का विकास अलग–अलग चरणों से होकर गुजरता है। यदि पर्यटन का विकास बिना उचित योजना और नियंत्रण के होता है, तो एक समय के बाद पर्यटन स्थल पर अत्यधिक दबाव बढ़ सकता है। इसके बाद वह अपनी आकर्षण क्षमता खोने लगता है और पर्यटन में गिरावट आ सकती है। मसूरी, नैनीताल और वर्तमान में केदारघाटी में दिखाई देने वाले पर्यटन दबाव को इस दृष्टि से समझा जा सकता है।

शेवेन्स (Scheyvens, 1999) ने सामुदायिक पर्यटन की सफलता को समझने के लिए सशक्तीकरण के चार पक्षों पर जोर दिया, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और राजनीतिक। इसका अर्थ है, कि सामुदायिक पर्यटन की सफलता केवल इस बात से तय नहीं होनी चाहिए कि लोगों की आय कितनी बढ़ी। यह भी देखना जरूरी है कि क्या स्थानीय लोगों का आत्मविश्वास बढ़ा, क्या समुदाय में उनकी सामाजिक भूमिका मजबूत हुई और क्या उन्हें अपने क्षेत्र से जुड़े निर्णय लेने में वास्तविक अधिकार मिला?

वहीं, ब्लैकस्टॉक (Blackstock, 2005) और टोसुन (Tosun, 2000) ने सामुदायिक सहभागिता की सीमाओं की ओर ध्यान दिलाया है। कई बार किसी योजना में समुदाय की भागीदारी केवल औपचारिक रूप से दिखाई जाती है, जबकि वास्तविक निर्णय कुछ प्रभावशाली लोगों के हाथों में रहते हैं। ऐसी स्थिति में पर्यटन से मिलने वाले लाभ भी समुदाय के सभी लोगों तक समान रूप से नहीं पहुँचते। इसलिए सामुदायिक पर्यटन की योजना बनाते समय यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि निर्णय लेने और लाभ प्राप्त करने की प्रक्रिया में समाज के विभिन्न वर्गों की वास्तविक भागीदारी हो।

हिमालयी क्षेत्रों में पर्यटन के संदर्भ में नेपाल (Nepal, 2002) ने तीन महत्वपूर्ण बातों पर जोर दिया है। पहली, किसी क्षेत्र की प्राकृतिक और पर्यावरणीय क्षमता को ध्यान में रखते हुए ही पर्यटन का विकास होना चाहिए। दूसरा, पर्यटन से होने वाला आर्थिक लाभ अधिक से अधिक स्थानीय स्तर पर रहना चाहिए। तीसरी, प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन में स्थानीय समुदाय की सामूहिक भूमिका होनी चाहिए।

इस संदर्भ में ओस्ट्रोम (Ostrom, 1990) का सामूहिक संसाधन प्रबंधन का सिद्धांत भी महत्वपूर्ण है। इसके अनुसार, जब किसी प्राकृतिक संसाधन का उपयोग कई लोग मिलकर करते हैं, तो उसके उचित प्रबंधन के लिए स्पष्ट नियम, स्थानीय स्तर पर बनाए गए प्रावधान, निगरानी

की व्यवस्था और विवादों को सुलझाने की प्रक्रिया आवश्यक होती है। उत्तराखंड की वन पंचायत व्यवस्था में ऐसे कई तत्व पहले से मौजूद हैं (Agrawal, 2005)। वन पंचायतों के माध्यम से स्थानीय समुदाय लंबे समय से वन और अन्य प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन में भूमिका निभाता रहा है। इसलिए उत्तराखंड में सामुदायिक पर्यटन के लिए पूरी तरह नई संस्थागत व्यवस्था बनाने की आवश्यकता नहीं है। राज्य में मौजूद स्थानीय संस्थाओं और उनकी कार्यप्रणाली को पर्यटन से जोड़ा जा सकता है। वन पंचायत जैसी संस्थाओं को उनकी वर्तमान भूमिका के साथ–साथ स्थानीय पर्यटन के प्रबंधन में भी जोड़ा जाए, तो समुदाय की भागीदारी और स्थानीय संसाधनों के बेहतर उपयोग की दिशा में एक मजबूत व्यवस्था विकसित की जा सकती है।

उत्तराखंड की जमीनी वास्तविकता

भूगोल एवं भेद्यता

उत्तराखंड का लगभग 86 प्रतिशत क्षेत्र पर्वतीय है और 65 प्रतिशत से अधिक भूमि पर वन हैं। राज्य भूकंप के दृष्टिकोण से भी संवेदनशील है और इसका बड़ा हिस्सा भूकंपीय क्षेत्र चार और पाँच में आता है। इसके अलावा, राज्य में भूस्खलन, हिमस्खलन, बादल फटने और हिमनद झीलों के फटने से आने वाली बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं का खतरा बना रहता है। वर्ष 2013 की केदारनाथ आपदा और वर्ष 2023 में जोशीमठ में हुए भू–धँसाव ने यह दिखाया है कि पर्वतीय क्षेत्रों की प्राकृतिक क्षमता को ध्यान में रखे बिना बड़े स्तर पर निर्माण और पर्यटन का विकास गंभीर समस्याएँ पैदा कर सकता है। जब पहाड़ों की भौगोलिक और पर्यावरणीय सीमाओं की अनदेखी की जाती है, तो इसका नुकसान केवल स्थानीय लोगों और पर्यावरण को ही नहीं, बल्कि स्वयं पर्यटन को भी होता है। इसी कारण उत्तराखंड जैसे पर्वतीय राज्य में ऐसे पर्यटन मॉडल की आवश्यकता है जिसमें नए और बड़े निर्माण पर कम निर्भरता हो। सामुदायिक पर्यटन इस दिशा में एक उपयोगी विकल्प हो सकता है। इसमें पहले से मौजूद घरों और स्थानीय संसाधनों का उपयोग किया जा सकता है तथा नए निर्माण की आवश्यकता को कम किया जा सकता है। साथ ही, पर्यटकों को केवल कुछ प्रसिद्ध और अधिक भीड़ वाले पर्यटन केंद्रों तक सीमित रखने के बजाय आसपास के कम प्रसिद्ध गाँवों और क्षेत्रों तक पहुँचाया जा सकता है। इससे पर्यटन का दबाव अलग–अलग क्षेत्रों में बाँटा जा सकेगा और स्थानीय लोगों को भी पर्यटन से आय प्राप्त करने के अवसर मिलेंगे।

पलायनः संख्याओं में एक मौन संकट

उत्तराखंड में पलायन लंबे समय से एक गंभीर समस्या रही है। उत्तराखंड ग्राम्य विकास एवं पलायन निवारण आयोग की रिपोर्ट के अनुसार, वर्ष 2011 में राज्य के 1034 गाँव पूरी तरह खाली हो चुके थे। वर्ष 2018 तक ऐसे गाँवों की संख्या बढ़कर 1734 हो गई। लगभग 405 ऐसे गाँव भी चिन्हित किए गए जहाँ दस से कम लोग रह रहे थे। इसी रिपोर्ट में साढ़े तीन लाख से अधिक खाली मकानों का उल्लेख किया गया था। केवल पौड़ी जनपद में ही 300 से अधिक गाँव खाली हो चुके थे (ग्राम्य विकास एवं पलायन निवारण आयोग, 2018)। जनगणना के आँकड़े भी पर्वतीय और मैदानी क्षेत्रों के बीच जनसंख्या में अंतर को दिखाते हैं। वर्ष 2001 से 2011 के बीच पौड़ी गढ़वाल और अल्मोड़ा में जनसंख्या वृद्धि दर नकारात्मक

रही। इसके विपरीत, देहरादून, हरिद्वार, नैनीताल और ऊधमसिंह नगर जैसे जिलों में जनसंख्या वृद्धि अधिक रही। इससे स्पष्ट होता है कि राज्य के पर्वतीय क्षेत्रों से लोगों का मैदानी क्षेत्रों और शहरों की ओर जाने का क्रम जारी रहा है। पलायन को केवल आय की कमी से जोड़कर देखना पर्याप्त नहीं है। रोजगार के साथ–साथ यह भी महत्वपूर्ण है कि लोगों को अपने गाँव में सम्मानजनक और स्थायी आजीविका के अवसर मिलें। यदि किसी युवा को अपने गाँव में गाइड, प्रकृति–व्याख्याता, स्थानीय उद्यमी या आतिथ्य सेवा संचालक के रूप में काम करने का अवसर मिलता है, तो उसके लिए गाँव में रहना केवल कमाई का विषय नहीं रहता। इससे उसके आत्मसम्मान, सामाजिक पहचान और अपने क्षेत्र से जुड़े रहने की भावना भी मजबूत हो सकती है। सामुदायिक पर्यटन इस समस्या पर आर्थिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर काम कर सकता है। इससे गाँवों में रोजगार के नए अवसर पैदा किए जा सकते हैं और स्थानीय युवाओं को अपने क्षेत्र में ही काम करने का अवसर मिल सकता है।

पर्यटन का विरोधाभासः विशाल प्रवाह, सीमित वितरण

उत्तराखंड में हर वर्ष बड़ी संख्या में पर्यटक और तीर्थयात्री आते हैं। राज्य पर्यटन विभाग के आँकड़ों के अनुसार, वर्ष 2025 में उत्तराखंड में कुल 6,03,21,194 पर्यटक और तीर्थयात्री पहुँचे। इनमें 1,92,533 विदेशी पर्यटक थे। राज्य गठन के बाद यह पहली बार था जब पर्यटकों और तीर्थयात्रियों की कुल संख्या छह करोड़ से अधिक हुई (उत्तराखंड पर्यटन विभाग, 2026 में उद्धृत)। लेकिन इतनी बड़ी संख्या में पर्यटकों के आने के बावजूद पर्यटन का लाभ पूरे राज्य में समान रूप से नहीं पहुँचता। वर्ष 2025 में अकेले हरिद्वार में 3.42 करोड़ से अधिक, देहरादून में लगभग 67 लाख और टिहरी में लगभग 53 लाख आगंतुक पहुँचे। इसके विपरीत, पिथौरागढ़, बागेश्वर, चमोली और उत्तरकाशी के अंदरूनी क्षेत्रों में पर्यटकों की संख्या अपेक्षाकृत कम रही। इससे स्पष्ट होता है, कि उत्तराखंड में पर्यटन का प्रवाह बहुत बड़ा है, लेकिन उसका वितरण कुछ चुनिंदा क्षेत्रों तक अधिक सीमित है। चार धाम यात्रा इस स्थिति का एक प्रमुख उदाहरण है। यह राज्य की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देती है, लेकिन यात्रा के सबसे व्यस्त समय में कुछ ही सप्ताहों के दौरान बड़ी संख्या में लोग एक सीमित क्षेत्र में पहुँच जाते हैं। इससे सड़कों, पानी के स्रोतों, ठहरने की सुविधाओं और कचरा प्रबंधन जैसी व्यवस्थाओं पर बहुत अधिक दबाव पड़ता है। सती (Sati, 2018) के गंगोत्री क्षेत्र पर किए गए अध्ययन में भी यह सामने आया कि पर्यटन के सबसे व्यस्त समय में आगंतुकों की संख्या क्षेत्र की भौतिक और पर्यावरणीय क्षमता से अधिक हो जाती है। ऐसी स्थिति में समाधान केवल पर्यटकों की संख्या कम करना या यात्रा पर प्रतिबंध लगाना नहीं है। इसके साथ–साथ पर्यटन के प्रवाह को आसपास के कम प्रसिद्ध क्षेत्रों में बाँटना भी आवश्यक है। इसके लिए मुख्य पर्यटन मार्गों के आसपास स्थित गाँवों को 'उप–पर्यटन केंद्र' के रूप में विकसित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, मुख्य पर्यटन मार्ग से लगभग 20 से 40 किलोमीटर के क्षेत्र में स्थित गाँवों में स्थानीय लोगों की भागीदारी से ठहरने, भोजन, स्थानीय भ्रमण और अन्य पर्यटन सेवाओं की व्यवस्था विकसित की जा सकती है। इससे मुख्य पर्यटन केंद्रों पर दबाव कम होगा और आसपास के गाँवों को भी पर्यटन से आय प्राप्त करने का अवसर मिलेगा।

नीतिगत परिदृश्यः मौजूदा आधार

उत्तराखंड में सामुदायिक पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए कई नीतियाँ और योजनाएँ पहले से मौजूद हैं। इसलिए राज्य में सामुदायिक पर्यटन शुरू करने के लिए पूरी तरह नई नीतियाँ बनाने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि मौजूदा योजनाओं को आपस में जोड़कर उनका बेहतर उपयोग किया जाए। राज्य की 'दीनदयाल उपाध्याय गृह आवास (होमस्टे) विकास योजना' के तहत पर्वतीय क्षेत्रों में होमस्टे बनाने या पुराने घरों में सुधार करने के लिए आर्थिक सहायता दी जाती है। इसमें परियोजना की लागत का 33 प्रतिशत या अधिकतम 10 लाख रुपये तक की पूँजीगत सहायता का प्रावधान है। इसके अलावा, ऋण लेने पर पहले पाँच वर्षों तक ब्याज का 50 प्रतिशत या अधिकतम 1-5 लाख रुपये प्रतिवर्ष तक की सहायता दी जाती है। मैदानी क्षेत्रों के लिए यह सहायता परियोजना लागत का 25 प्रतिशत या अधिकतम 7-5 लाख रुपये तथा ब्याज सहायता अधिकतम 1 लाख रुपये प्रतिवर्ष तक है। योजना के प्रारंभिक वर्षों में होमस्टे से होने वाली आय पर एस.जी.एस.टी. की प्रतिपूर्ति का प्रावधान भी है (पर्यटन विभाग, उत्तराखंड सरकार)।

इसके अलावा, केंद्र और राज्य सरकार की कई अन्य योजनाएँ भी ग्रामीण और स्थानीय स्तर पर पर्यटन तथा आजीविका को बढ़ावा देने में मदद कर सकती हैं। इनमें 'वाइब्रेंट विलेजेज प्रोग्राम', ग्रामीण पर्यटन को प्रोत्साहित करने वाली 'सर्वश्रेष्ठ पर्यटन ग्राम' प्रतियोगिता, 'दीनदयाल अंत्योदय योजना-राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन' के अंतर्गत स्वयं सहायता समूह, 'एक जनपद-दो उत्पाद' और 'हाउस ऑफ हिमालयाज' जैसी पहलें शामिल हैं। इन योजनाओं को एक साथ जोड़ा जाए तो स्थानीय समुदायों के लिए पर्यटन और आजीविका के नए अवसर तैयार किए जा सकते हैं। इसलिए मुख्य समस्या नीतियों या योजनाओं की कमी नहीं है। समस्या यह है कि ये योजनाएँ अभी एक–दूसरे से पर्याप्त रूप से जुड़ी हुई नहीं हैं। उदाहरण के लिए, होमस्टे योजना मुख्य रूप से एक व्यक्ति या एक परिवार को सहायता देती है। इसमें पूरे गाँव या समुदाय को एक इकाई के रूप में विकसित करने की व्यवस्था सीमित है। इसका परिणाम यह हो सकता है कि किसी गाँव में केवल कुछ आर्थिक रूप से सक्षम परिवार ही योजना का लाभ उठा पाएँ, जबकि बाकी परिवार पर्यटन की गतिविधियों से बाहर रह जाएँ।

ऐसी स्थिति में पर्यटन से मिलने वाला लाभ पूरे समुदाय तक नहीं पहुँच पाता और स्थानीय स्तर पर असमानता बढ़ सकती है। यह वही स्थिति है जिसे टोसुन (2000) ने सामुदायिक सहभागिता की प्रमुख चुनौती के रूप में बताया है, जहाँ समुदाय के नाम पर शुरू की गई योजनाओं का वास्तविक लाभ कुछ प्रभावशाली लोगों तक सीमित हो जाता है। इसलिए उत्तराखंड में सामुदायिक पर्यटन को आगे बढ़ाने के लिए सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता सामुदायिक स्तर पर संगठित संस्था और सामूहिक व्यवस्था विकसित करने की है। मौजूदा सरकारी योजनाओं और आर्थिक सहायता को ऐसी संस्था के माध्यम से गाँव के अधिक लोगों तक पहुँचाया जा सकता है। इससे होमस्टे, स्थानीय उत्पाद, भोजन, हस्तशिल्प, गाइड सेवा

और अन्य पर्यटन गतिविधियों को एक साथ जोड़कर पूरे समुदाय के लिए आजीविका के अवसर विकसित किए जा सकते हैं।

साक्ष्य एवं केस–सामग्री

सरमोली–मुनस्यारीः महिला–नेतृत्व वाला प्रारूपः

पिथौरागढ़ जिले के मुनस्यारी के पास स्थित सरमोली गाँव उत्तराखंड में सामुदायिक पर्यटन का एक सफल उदाहरण है। यह गाँव पंचाचूली पर्वत श्रृंखला के सामने और भारत–नेपाल–तिब्बत के निकट स्थित है। यहाँ वर्ष 2004 में महिलाओं के स्वयं सहायता समूह 'माटी संगठन' के माध्यम से गृह–प्रवास की शुरुआत हुई। इस उदाहरण की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि माटी संगठन का गठन शुरू में पर्यटन के लिए नहीं हुआ था। महिलाओं ने इसे घरेलू हिंसा और शराब की समस्या के खिलाफ सामूहिक प्रयास के रूप में बनाया था। बाद में इसी संगठन के माध्यम से पर्यटन की गतिविधियाँ विकसित हुईं। इससे यह सीख मिलती है कि जहाँ किसी गाँव में पहले से ही लोगों के बीच सहयोग, विश्वास और सामूहिक काम करने की व्यवस्था होती है, वहाँ पर्यटन से जुड़े प्रयास अधिक टिकाऊ हो सकते हैं। सरमोली के गृह–प्रवास व्यक्तिगत परिवारों द्वारा चलाए जाते हैं, लेकिन वे गाँव के सामूहिक नियमों के अनुसार संचालित होते हैं। इससे आपसी प्रतिस्पर्धा और विवाद कम होते हैं तथा पर्यटकों की बुकिंग अलग–अलग परिवारों को बारी–बारी से मिलती है। इससे पर्यटन से होने वाली आय कुछ परिवारों तक सीमित नहीं रहती।

गाँव की वन पंचायत को भी पर्यटन गतिविधियों से जोड़ा गया है। इससे प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और पर्यटन से होने वाली आय के बीच संबंध स्थापित होता है। इसी तरह, 'हिमालयन आर्क' नामक स्थानीय उद्यम के माध्यम से स्थानीय युवा और महिलाएँ प्रकृति की जानकारी देने, बर्डवाचिंग और ट्रेकिंग में मार्गदर्शन जैसी सेवाएँ प्रदान करते हैं। इससे पर्यटन से होने वाली आय का अधिक हिस्सा गाँव में ही रहता है। 'हिमाल कलासूत्र' जैसे आयोजनों ने भी सरमोली को केवल ठहरने की जगह के बजाय पर्यटकों के लिए अनुभव और भागीदारी का केंद्र बनाया है। इसमें मैराथन, पक्षी–महोत्सव, तितली एवं शलभ महोत्सव, ऊन से जुड़े स्थानीय शिल्प, लोकगीत और वन–मेला जैसी गतिविधियाँ शामिल हैं (Kalpavriksh, 2017)। उपलब्ध विवरणों के अनुसार, गाँव में लगभग दो दर्जन गृह–प्रवास संचालित हैं। पर्यटकों के लिए भोजन का एक बड़ा हिस्सा स्थानीय घरों के रसोई–उद्यान और कृषि से आता है। इस प्रकार कृषि और पर्यटन एक–दूसरे को आर्थिक रूप से सहयोग देते हैं। शेवेन्स (Scheyvens, 1999) के सशक्तीकरण ढाँचे से देखें तो सरमोली का अनुभव सामुदायिक पर्यटन के चारों पक्षों को दिखाता है। इससे स्थानीय लोगों को आय मिली, पारंपरिक कौशल और ज्ञान को महत्व मिला, महिलाओं के लिए सामूहिक मंच मजबूत हुआ और प्राकृतिक संसाधनों से जुड़े निर्णयों में समुदाय की भूमिका बढ़ी।

राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त गाँवः जखोल, हर्षिल, गूंजी एवं सुपीः

वर्ष 2024 में भारत सरकार के पर्यटन मंत्रालय की 'सर्वश्रेष्ठ पर्यटन ग्राम' प्रतियोगिता में उत्तराखंड के चार गाँवों को सम्मानित किया गया। जखोल को साहसिक पर्यटन, हर्षिल और गूंजी को वाइब्रेंट विलेज तथा सुपी को कृषि–पर्यटन की श्रेणी में सम्मान मिला (पर्यटन मंत्रालय, भारत सरकार, 2024)। इन गाँवों के अनुभव सामुदायिक पर्यटन के विकास के लिए कई महत्वपूर्ण बातें सामने लाते हैं।

जखोलः यहाँ केदारकांठा और गंगोत्री हिमनद जैसे ट्रेक मार्गों के माध्यम से स्थानीय युवाओं ने साहसिक पर्यटन को रोजगार का साधन बनाया। गाँव में अपशिष्ट–संग्रह की समिति भी बनाई गई, जो ट्रेक मार्गों की सफाई और प्लास्टिक पर रोक लगाने का काम करती है। इससे पता चलता है कि यदि स्थानीय लोग स्वयं नियम बनाते और उनका पालन करते हैं, तो पर्यावरण संरक्षण अधिक प्रभावी हो सकता है।

हर्षिलः यहाँ स्थानीय ग्राम समिति लामाटॉप और क्यारकोटी जैसे छोटे ट्रेक मार्गों का संचालन करती है। इन मार्गों से मिलने वाला मार्गदर्शन शुल्क सीधे ग्राम–कोष में जाता है। साथ ही, पर्यटन से होने वाली आय स्थानीय सेब–बागवानी की आय का पूरक बनती है। इससे एक ही गाँव में कृषि और पर्यटन को साथ लेकर आजीविका के अवसर बढ़ाए जा सकते हैं।

सुपीः यहाँ केवल सात गृह–प्रवासों के आधार पर कृषि–पर्यटन विकसित किया गया है। पर्यटक केवल रहने और घूमने तक सीमित नहीं रहते, बल्कि खेती की गतिविधियों में भी भाग लेते हैं। यह उदाहरण बताता है कि सामुदायिक पर्यटन के लिए हमेशा बड़े निवेश की आवश्यकता नहीं होती। यदि स्थानीय अनुभव वास्तविक हो, साफ–सफाई अच्छी हो और पर्यटकों तक पहुँचने के लिए उचित प्रचार और विपणन हो, तो छोटे स्तर पर भी पर्यटन को सफल बनाया जा सकता है।

तुलनात्मक हिमालयी प्रारूपः लद्दाख एवं सिक्किम

उत्तराखंड के अनुभवों को बेहतर ढंग से समझने के लिए लद्दाख और सिक्किम के सामुदायिक पर्यटन मॉडल भी उपयोगी हैं।

लद्दाख में 'हिमालयन होमस्टेज' कार्यक्रम को स्नो लेपर्ड कॉन्जर्वेंसी इंडिया ट्रस्ट ने वर्ष 2002–03 में हेमिस राष्ट्रीय उद्यान के आसपास शुरू किया था। इसका उद्देश्य पर्यटन को वन्यजीव संरक्षण से जोड़ना था। हिम तेंदुए के कारण ग्रामीणों के पशुधन को होने वाले नुकसान से लोगों में इस वन्यजीव के प्रति नकारात्मक भावना पैदा होती थी। गृह–प्रवास से होने वाली आय ने ग्रामीणों को वन्यजीव संरक्षण से आर्थिक रूप से जोड़ने में मदद की। इस मॉडल की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि प्रत्येक गृह–प्रवास की आय का लगभग 10 से 15 प्रतिशत हिस्सा ग्राम संरक्षण कोष में जमा किया जाता है। इस राशि का उपयोग वृक्षारोपण, कचरा प्रबंधन, पशुओं को शिकारी जानवरों से बचाने वाले बाड़ों और पशुधन बीमा जैसे कार्यों में किया जाता है (ICIMOD, 2011; Snow Leopard Conservancy India Trust, n.d.)। बुकिंग को बारी–बारी से अलग–अलग परिवारों में बाँटने से यह भी सुनिश्चित किया जाता है कि पर्यटन का लाभ अधिक परिवारों तक पहुँचे। बाद में इसी अनुभव को लद्दाख की

होमस्टे नीति से जोड़ा गया। नए गृह–प्रवास संचालकों को सौर प्रकाश, बिस्तर, रसोई के उपकरण और संकेतक–पट्ट जैसी आवश्यक सुविधाओं के लिए एक मानक व्यवस्था तथा आतिथ्य से जुड़ा प्रशिक्षण उपलब्ध कराया गया। इस उदाहरण से पता चलता है कि पर्यटन से होने वाली आय को सीधे पर्यावरण संरक्षण से जोड़ा जा सकता है।

सिक्किम के युकसोम में 'खांगचेंदजोंगा कॉन्जर्वेशन कमेटी' ने स्थानीय युवाओं की पहल से ट्रेकिंग के दौरान होने वाले कचरे, पर्यटन की वहन–क्षमता और गृह–प्रवास के संचालन से जुड़े नियम विकसित किए। वर्ष 1997 में पंजीकृत इस समिति ने स्थानीय स्तर पर एक स्वैच्छिक आचार–संहिता बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वर्तमान में युकसोम में पंचायत के अंतर्गत पंजीकृत होटल, गृह–प्रवास और यात्रा एजेंसियाँ काम करती हैं। इनकी आजीविका क्षेत्र के प्राकृतिक पर्यावरण और खांगचेंदजोंगा क्षेत्र के संरक्षण से जुड़ी हुई है। युकसोम का अनुभव यह दिखाता है, कि जब स्थानीय संस्थाएँ पर्यटन के नियम बनाने में स्वयं शामिल होती हैं, तो नियमों को लागू करना आसान हो जाता है। लोगों के लिए नियम बाहरी आदेश नहीं रहते, बल्कि वे उन्हें अपनी सामूहिक व्यवस्था का हिस्सा मानते हैं।

वन पंचायतः उत्तराखंड की अप्रयुक्त संस्थागत पूँजीः

ऊपर दिए गए सरमोली, लद्दाख और सिक्किम के उदाहरणों में एक बात समान दिखाई देती है। इन सभी जगहों पर स्थानीय समुदाय के पास ऐसी संस्थाएँ हैं जो सामूहिक रूप से प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन करती हैं। उत्तराखंड में भी ऐसी संस्था पहले से मौजूद है, वन पंचायत। कुमाऊँ और गढ़वाल में वन पंचायतों की व्यवस्था लगभग एक शताब्दी से चली आ रही है। राज्य में इनकी संख्या 12000 से अधिक है और इन्हें सामुदायिक वन प्रबंधन की महत्वपूर्ण व्यवस्थाओं में गिना जाता है (Agrawal, 2005)। वन पंचायतों के पास अपने क्षेत्र की स्पष्ट सीमा, निर्वाचित सरपंच, स्थानीय नियम बनाने और नियमों का उल्लंघन होने पर कार्रवाई करने जैसी व्यवस्थाएँ हैं। इस कारण वे सामूहिक संसाधन प्रबंधन के लिए आवश्यक कई प्रमुख विशेषताओं को पहले से पूरा करती हैं। यदि वन पंचायतों को उनके क्षेत्र में

प्रकृति–पर्यटन से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण अधिकार दिए जाएँ, तो वे सामुदायिक पर्यटन के प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। उदाहरण के लिए, उन्हें ट्रेक मार्गों के उपयोग से मिलने वाले शुल्क के संग्रह, पर्यटन गतिविधियों के नियमन और ग्राम संरक्षण कोष के संचालन की जिम्मेदारी दी जा सकती है। इस व्यवस्था का सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि सामुदायिक पर्यटन के लिए हर गाँव में एक नई संस्था बनाने की आवश्यकता नहीं होगी। पहले से मौजूद स्थानीय संस्थाओं को पर्यटन से जोड़ा जा सकेगा। सरमोली का अनुभव दिखाता है कि स्थानीय संस्थाओं और पर्यटन के बीच ऐसा संबंध व्यवहार में बनाया जा सकता है। इस प्रकार, उत्तराखंड की वन पंचायतें सामुदायिक पर्यटन के लिए एक महत्वपूर्ण लेकिन अभी तक पर्याप्त रूप से उपयोग न की गई संस्थागत व्यवस्था हैं। यदि इन्हें उचित अधिकार, प्रशिक्षण और वित्तीय व्यवस्था के साथ पर्यटन से जोड़ा जाए, तो राज्य में स्थानीय समुदाय की भागीदारी पर आधारित पर्यटन का एक मजबूत मॉडल विकसित किया जा सकता है।

सामुदायिक पर्यटन का महत्व केवल प्रत्यावर्ती पलायन तक सीमित नहीं है। यह राज्यपाल महोदय के अन्य चार मिशनों से भी सीधे जुड़ सकता है।

महिला सशक्तीकरण एवं बालिका शिक्षाः सरमोली जैसे उदाहरण बताते हैं कि गृह–प्रवास और पर्यटन से जुड़ी गतिविधियों में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। जब पर्यटन से होने वाली आय और उससे जुड़े कार्यों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ती है, तो उनकी आर्थिक स्वतंत्रता और निर्णय लेने की क्षमता भी मजबूत हो सकती है। इस प्रकार सामुदायिक पर्यटन महिला सशक्तीकरण को बढ़ावा देने का माध्यम बन सकता है।

जैविक एवं प्राकृतिक कृषिः स्थानीय कृषि उत्पादों को पर्यटन से जोड़कर किसानों के लिए नया बाजार बनाया जा सकता है। मंडुवा, झंगोरा, राजमा, स्थानीय सब्जियाँ और अन्य पारंपरिक खाद्य पदार्थ सीधे पर्यटकों के भोजन का हिस्सा बन सकते हैं। इससे स्थानीय

कृषि उत्पादों की माँग बढ़ेगी और किसानों को अपने उत्पादों के लिए स्थानीय स्तर पर ही बेहतर बाजार मिल सकता है। इस प्रकार पर्यटन और कृषि एक–दूसरे के लिए सहायक बन सकते हैं।

वेलनेस और पर्यटन : उत्तराखंड का प्राकृतिक और सांस्कृतिक वातावरण वेलनेस पर्यटन के लिए उपयुक्त आधार प्रदान करता है। योग, आयुर्वेद, पंचकर्म, हिमालयी जड़ी–बूटियाँ और शांत ग्रामीण वातावरण को पर्यटन अनुभव से जोड़ा जा सकता है। यदि पर्यटकों को केवल कुछ घंटों के भ्रमण के बजाय कई दिनों तक गाँव में रहने और स्थानीय गतिविधियों में भाग लेने का अवसर दिया जाए, तो स्थानीय अर्थव्यवस्था को अधिक लाभ मिल सकता है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं प्रौद्योगिकीः आज पर्यटन का बड़ा हिस्सा डिजिटल माध्यमों से संचालित होता है। इसलिए दूरस्थ गाँवों को डिजिटल पर्यटन बाजार से जोड़ना आवश्यक है। नवंबर 2025 में राजभवन से शुरू किए गए 'उत्तराखंड ए.आई. मिशन 2025' के अंतर्गत विकसित की जा रही तकनीकें इस दिशा में उपयोगी हो सकती हैं। बहुभाषी बुकिंग सहायता, पर्यटकों की माँग का अनुमान, पर्यटन स्थलों पर भीड़ की निगरानी और आपदा की पूर्व चेतावनी जैसी तकनीकों का उपयोग दूरस्थ गाँवों में पर्यटन को बेहतर ढंग से संचालित करने के लिए किया जा सकता है। इस प्रकार सामुदायिक पर्यटन को केवल एक पर्यटन नीति के रूप में देखने के बजाय इसे राज्य के विभिन्न विकास लक्ष्यों को जोड़ने वाले माध्यम के रूप में देखा जा सकता है। यह पलायन को कम करने, महिलाओं को आर्थिक रूप से मजबूत बनाने, स्थानीय कृषि को बाजार देने, वेलनेस पर्यटन को बढ़ावा देने और दूरस्थ क्षेत्रों को डिजिटल बाजार से जोड़ने में एक साथ योगदान कर सकता है।

चुनौतियाँ

सामुदायिक पर्यटन को सफल बनाने के लिए केवल उसकी संभावनाओं को समझना पर्याप्त नहीं है। इसके सामने आने वाली समस्याओं को भी स्पष्ट रूप से समझना आवश्यक है। उत्तराखंड में सामुदायिक पर्यटन को लागू करते समय निम्नलिखित प्रमुख चुनौतियों पर ध्यान देना होगा।

- **लाभ कुछ परिवारों तक सीमित रह जाने का खतराः** यदि सरकारी सहायता और पर्यटन से जुड़े अवसर केवल व्यक्तिगत परिवारों को दिए जाते हैं, तो इसका लाभ मुख्य रूप से उन परिवारों को मिल सकता है जिनके पास पक्का मकान, बैंक से ऋण लेने की क्षमता और आवश्यक दस्तावेज उपलब्ध हैं। इसके कारण भूमिहीन, गरीब और अनुसूचित जाति के परिवार पर्यटन की गतिविधियों से बाहर रह सकते हैं। इसलिए यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि पर्यटन से मिलने वाले लाभ पूरे समुदाय तक पहुँचें।
- **पर्यटन का कुछ महीनों तक सीमित रहनाः** पर्वतीय क्षेत्रों में पर्यटन अक्सर साल के केवल चार या पाँच महीनों में अधिक होता है। बाकी समय पर्यटकों की संख्या बहुत कम रहती है। इससे स्थानीय लोगों की आय अस्थिर हो जाती है और उनके लिए लिए गए ऋण को चुकाना कठिन हो सकता है। सर्दियों में काम की कमी के कारण कुछ लोग फिर से रोजगार की तलाश में बाहर जाने के लिए मजबूर हो सकते हैं। इसलिए सामुदायिक पर्यटन को अन्य स्थानीय आजीविका गतिविधियों, जैसे कृषि, हस्तशिल्प और वेलनेस से जोड़ना आवश्यक है।
- **पूँजी और ऋण तक पहुँचः** पर्वतीय क्षेत्रों में कई बार जमीन और मकानों से जुड़े रिकॉर्ड स्पष्ट नहीं होते। इसके अलावा, ग्रामीण परिवारों के पास ऐसी संपत्ति भी कम होती है जिसे बैंक ऋण के लिए सुरक्षा के रूप में स्वीकार कर सके। इस कारण बैंक से ऋण प्राप्त करना कठिन हो जाता है। परिणामस्वरूप सरकारी सब्सिडी उपलब्ध होने के बावजूद कई परिवार उसका पूरा लाभ नहीं उठा पाते। इसलिए सामुदायिक पर्यटन के लिए सरल और स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल ऋण व्यवस्था की आवश्यकता है।
- **गुणवत्ता और आवश्यक सुविधाओं में अंतरः** अलग–अलग गृह–प्रवासों में स्वच्छता, शौचालय, पानी, भोजन और सुरक्षा जैसी सुविधाओं का स्तर अलग हो सकता है। यदि पर्यटकों को हर जगह अलग–अलग स्तर की सुविधाएँ मिलती हैं, तो उनके अनुभव में भी अंतर आएगा। इससे पर्यटकों के दोबारा आने और दूसरों को उस स्थान की सिफारिश करने की संभावना कम हो सकती है। इसलिए सामुदायिक पर्यटन में स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार कुछ न्यूनतम गुणवत्ता और स्वच्छता मानक तय करना जरूरी है।
- **विपणन और ऑनलाइन माध्यमों पर निर्भरताः** दूरस्थ गाँवों के लिए पर्यटकों तक सीधे पहुँचना एक बड़ी चुनौती है। ऑनलाइन बुकिंग मंचों पर अधिक कमीशन देना पड़ सकता है और उनकी व्यवस्था में दूरस्थ गाँवों को पर्याप्त दृश्यता मिलना भी कठिन हो सकता है। यदि ग्रामीण इकाइयाँ केवल बाहरी एजेंसियों या ऑनलाइन मंचों पर निर्भर रहती हैं, तो पर्यटन से होने वाली आय का एक हिस्सा फिर क्षेत्र से बाहर चला जाता है। इसलिए गाँवों के लिए सीधे बुकिंग, डिजिटल प्रचार और सामुदायिक स्तर के विपणन की व्यवस्था विकसित करना आवश्यक है।
- **आपदा का जोखिम और बीमा की कमीः** उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्र प्राकृतिक आपदाओं के प्रति संवेदनशील हैं। भूस्खलन, बादल फटना या सड़क बंद होने जैसी किसी एक

घटना से पूरे पर्यटन मौसम की आय प्रभावित हो सकती है। छोटे गृह–प्रवास और ग्रामीण पर्यटन इकाइयों के लिए उपयुक्त और आसानी से उपलब्ध बीमा व्यवस्था की कमी इस जोखिम को और बढ़ाती है। इसलिए सामुदायिक पर्यटन के साथ आपदा प्रबंधन और सरल बीमा व्यवस्था को भी जोड़ा जाना चाहिए।

- **संस्कृति और निजी जीवन पर पर्यटन का प्रभावः** यदि पर्यटन का विकास बिना किसी स्थानीय नियम के होता है, तो स्थानीय संस्कृति और परंपराएँ केवल पर्यटकों को दिखाने की वस्तु बन सकती हैं। इससे स्थानीय समुदाय में असहजता और सामाजिक तनाव पैदा हो सकते हैं। इसी तरह, लगातार पर्यटकों की मौजूदगी से ग्रामीण परिवारों के निजी जीवन पर भी प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए यह जरूरी है, कि समुदाय स्वयं तय करे कि कौन–सी सांस्कृतिक गतिविधियाँ पर्यटकों के साथ साझा की जाएँगी और उनके लिए किस प्रकार का आचार–व्यवहार अपेक्षित होगा।
- **पर्यावरण पर बढ़ता दबावः** यदि किसी गाँव में पर्यटकों की संख्या उसकी प्राकृतिक क्षमता से अधिक हो जाती है, तो पानी की कमी, कचरा, गंदे पानी की समस्या और वाहनों की संख्या में वृद्धि जैसी समस्याएँ पैदा हो सकती हैं। इसलिए प्रत्येक पर्यटन क्षेत्र के लिए उसकी वहन–क्षमता का आकलन करना आवश्यक है। पर्यटन को उस सीमा के भीतर ही बढ़ाया जाना चाहिए, जिसमें स्थानीय पर्यावरण और संसाधनों पर अनावश्यक दबाव न पड़े।
- **मानव–वन्यजीव संघर्ष और भाषा की समस्याः** पर्वतीय गाँवों में गुलदार और बंदरों जैसे वन्यजीवों के साथ संघर्ष भी पर्यटन गतिविधियों को प्रभावित कर सकता है। दूसरी ओर, विदेशी पर्यटकों के साथ संवाद करने में अंग्रेजी भाषा की कठिनाई कुछ ग्रामीण मेजबानों के आत्मविश्वास को प्रभावित कर सकती है। इसलिए मेजबानों को स्थानीय स्तर पर वन्यजीव–सुरक्षा, अतिथि–व्यवहार और बुनियादी भाषा एवं संचार का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

इन चुनौतियों से स्पष्ट है कि सामुदायिक पर्यटन केवल गृह–प्रवास खोलने या पर्यटकों की संख्या बढ़ाने का कार्यक्रम नहीं होना चाहिए। इसे समान लाभ–वितरण, स्थानीय निर्णय, गुणवत्ता, पर्यावरण संरक्षण, आपदा सुरक्षा और समुदाय की क्षमता–वृद्धि के साथ विकसित करना आवश्यक है।

उभरते अवसर

उत्तराखंड में सामुदायिक पर्यटन के सामने कई चुनौतियाँ हैं, लेकिन इसके विकास के लिए नए अवसर भी तेजी से सामने आ रहे हैं। हाल के वर्षों में पर्यटकों की पसंद में बदलाव आया है। अब कई पर्यटक भीड़–भाड़ वाले स्थानों के बजाय शांत, कम भीड़ वाले और स्थानीय जीवन एवं संस्कृति से जुड़े अनुभवों को अधिक पसंद कर रहे हैं। सामुदायिक पर्यटन इसी प्रकार के अनुभव उपलब्ध करा सकता है। दूरस्थ कार्य यानी वर्क फ्रॉम होम की बढ़ती प्रवृत्ति ने पर्यटन के एक नए रूप को बढ़ावा दिया है। लोग कुछ दिनों के बजाय कई सप्ताह तक किसी शांत स्थान पर रहकर अपना काम करने लगे हैं। इसे 'वर्केशन' कहा जाता है। उत्तराखंड के गाँव इस प्रकार के पर्यटकों के लिए उपयुक्त हो सकते हैं। लंबे समय तक

रहने वाले पर्यटकों से होने वाली आय पर्यटन को केवल कुछ महीनों तक सीमित रखने की समस्या को कम कर सकती है। इसके अलावा, ऐसे विशेष पर्यटन क्षेत्रों की भी अच्छी संभावनाएँ हैं जिनमें पर्यटकों की संख्या कम होती है, लेकिन वे अधिक समय और धन खर्च करते हैं। उदाहरण के लिए, पक्षी–अवलोकन, तितली और शलभ अवलोकन, हिमालयी वनस्पतियों का अध्ययन तथा तारों को देखने के लिए डार्क–स्काई पर्यटन विकसित किया जा सकता है। इस तरह का पर्यटन पर्वतीय क्षेत्रों के लिए अधिक उपयुक्त है, क्योंकि इसमें बड़ी संख्या में पर्यटकों की आवश्यकता नहीं होती और स्थानीय लोगों को विशेषज्ञ सेवाओं के माध्यम से अधिक आय मिल सकती है। स्थानीय भोजन और शिल्प भी सामुदायिक पर्यटन के महत्वपूर्ण अवसर हैं। अन्न (मिलेट) आधारित भोजन, ऐपण और रिंगाल शिल्प, भोटिया ऊन–बुनाई तथा स्थानीय लोक–संगीत को पर्यटन अनुभव का हिस्सा बनाया जा सकता है। इससे स्थानीय कलाकारों, कारीगरों और किसानों को सीधे बाजार मिल सकता है। इसी प्रकार शीतकालीन पर्यटन और हिम–क्रीड़ा से जुड़ी गतिविधियों को बढ़ावा देकर पर्यटन का मौसम कुछ और महीनों तक बढ़ाया जा सकता है। शैक्षणिक और शोध–पर्यटन भी उत्तराखंड के लिए एक महत्वपूर्ण, लेकिन अभी कम उपयोग किया गया अवसर है। विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के भूगोल, वानिकी, पर्यावरण विज्ञान और पर्यटन विभागों द्वारा किए जाने वाले क्षेत्रीय अध्ययन और शैक्षणिक भ्रमण को स्थानीय गृह–प्रवासों से जोड़ा जा सकता है। इससे गाँवों में पर्यटकों की ऐसी माँग पैदा हो सकती है जो केवल छुट्टियों या पर्यटन के मुख्य मौसम तक सीमित न हो।

संस्तुतियाँ एवं आगे की राह

सामुदायिक पर्यटन को प्रभावी बनाने के लिए ऐसी व्यवस्थाओं की आवश्यकता है जिन्हें मौजूदा सरकारी योजनाओं के साथ जोड़ा जा सके और जिनके लिए बहुत अधिक अतिरिक्त धन की आवश्यकता न हो। इसके लिए निम्नलिखित कदम उठाए जा सकते हैं:

- **ग्राम पर्यटन समिति या सहकारिता का गठन:** प्रत्येक सहभागी गाँव में एक ग्राम पर्यटन समिति या सहकारिता बनाई जाए। इसमें महिलाओं और वंचित वर्गों की कम से कम 50 प्रतिशत भागीदारी सुनिश्चित की जाए। होमस्टे के लिए मिलने वाली सरकारी सहायता को इस समिति की अनुशंसा से जोड़ा जा सकता है। इससे योजना का लाभ केवल व्यक्तिगत परिवारों तक सीमित न रहकर पूरे समुदाय तक पहुँच सकेगा।
- **वन पंचायतों को औपचारिक भूमिका देना:** वन पंचायतों को उनके क्षेत्र में ट्रेक मार्ग, प्रकृति भ्रमण और शिविर स्थलों के संचालन तथा नियमन में औपचारिक भूमिका दी जाए। उन्हें इन गतिविधियों से शुल्क लेने का अधिकार भी दिया जा सकता है। इस शुल्क का एक निश्चित हिस्सा ग्राम संरक्षण कोष में जमा किया जाए।
- **ग्राम संरक्षण कोष की स्थापना:** लद्दाख के अनुभव के आधार पर प्रत्येक सामुदायिक गृह–प्रवास की कुल आय का 10 प्रतिशत ग्राम संरक्षण कोष में जमा किया जा सकता है। इस राशि का उपयोग जल–स्रोतों के संरक्षण, कचरा प्रबंधन, चाल–खाल के

निर्माण और मानव–वन्यजीव संघर्ष को कम करने जैसे कार्यों में किया जाए। कोष की आय और व्यय का विवरण ग्राम सभा के सामने सार्वजनिक किया जाना चाहिए।

- **बुकिंग का चक्रीय वितरणः** एक गाँव या गाँवों के समूह के लिए एक साझा बुकिंग व्यवस्था बनाई जाए। इसके माध्यम से आने वाले पर्यटकों की बुकिंग अलग–अलग गृह–प्रवासों को बारी–बारी से दी जाए। इससे किसी एक परिवार के पास लगातार अधिक ग्राहक जाने की समस्या कम होगी और पर्यटन से होने वाली आय अधिक परिवारों तक पहुँच सकेगी।
- **पर्यटन की वहन–क्षमता तय करनाः** हर गाँव में पर्यटकों की अधिकतम संख्या पहले से तय की जाए। इसके लिए पानी की उपलब्धता, कचरा प्रबंधन, सड़क और अन्य स्थानीय सुविधाओं की क्षमता को ध्यान में रखा जाए। किसी गाँव में एक दिन में कितने पर्यटक ठहर सकते हैं, इसकी सीमा तय करना पर्यटन योजना की स्वीकृति का आवश्यक हिस्सा होना चाहिए। इसकी निगरानी डिजिटल रिकॉर्ड के माध्यम से की जा सकती है।
- **गाँवों को क्लस्टर के रूप में विकसित करनाः** अलग–अलग गाँवों को विकसित करने के बजाय 8 से 10 गाँवों को जोड़कर पर्यटन क्लस्टर बनाए जाएँ। इससे पर्यटक एक ही स्थान पर रुकने के बजाय कई गाँवों का भ्रमण कर सकेंगे और उनका ठहराव भी बढ़ सकता है। इससे पर्यटन से होने वाली आय अधिक परिवारों और गाँवों तक पहुँचेगी। चार धाम मार्ग से लगभग 20 से 40 किलोमीटर के दायरे में आने वाले गाँवों को प्राथमिकता दी जा सकती है। इससे मुख्य पर्यटन मार्गों पर भीड़ का दबाव कम करने में मदद मिलेगी।
- **कौशल विकास और प्रमाणनः** सामुदायिक पर्यटन से जुड़े लोगों के लिए छोटे और व्यावहारिक प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू किए जाएँ। इनमें आतिथ्य, भोजन की सुरक्षा, प्राथमिक उपचार, आपदा के समय सहायता, प्रकृति की जानकारी देने और संवाद–कौशल जैसे विषय शामिल हों। इन पाठ्यक्रमों को राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण परिषद (NCVET) के मानकों के अनुरूप बनाया जा सकता है। राज्य के मुक्त और दूरस्थ शिक्षा तंत्र के माध्यम से इन्हें हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में गाँवों तक पहुँचाया जा सकता है।
- **ग्रामीण परिस्थितियों के अनुसार ऋण और बीमाः** पर्वतीय क्षेत्रों में पर्यटन से होने वाली आय पूरे वर्ष समान नहीं रहती। इसलिए ऋण की किस्तों को पर्यटन के मौसम के अनुसार तय किया जाना चाहिए। स्वयं सहायता समूहों की सामूहिक गारंटी पर ऋण देने की व्यवस्था भी विकसित की जा सकती है। इसके साथ ऐसी छोटी बीमा योजनाएँ बनाई जाएँ जो आपदा या पर्यटन व्यवसाय के कुछ समय के लिए बंद होने से होने वाले आर्थिक नुकसान को कवर कर सकें।
- **एकीकृत डिजिटल मंचः** राज्य स्तर पर सामुदायिक गृह–प्रवासों के लिए एक कम या बिना कमीशन वाला डिजिटल मंच बनाया जा सकता है। इसमें गृह–प्रवास का सत्यापन, पर्यटकों की समीक्षा, उपलब्ध कमरों की जानकारी और किसी क्षेत्र में पर्यटकों की संख्या की निगरानी जैसी सुविधाएँ हों। बहुभाषी सहायता के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता

का उपयोग किया जा सकता है। दूरस्थ क्षेत्रों को ध्यान में रखते हुए यह मंच कमजोर इंटरनेट वाले क्षेत्रों में भी काम करने योग्य होना चाहिए।

- **विभिन्न विभागों के बीच समन्वयः** सामुदायिक पर्यटन को केवल पर्यटन विभाग की जिम्मेदारी न मानकर पर्यटन, ग्राम्य विकास, वन, कृषि, उद्यान, आयुष और कौशल विकास विभागों की संयुक्त प्राथमिकता बनाया जाए। प्रत्येक जिले में जिलाधिकारी की अध्यक्षता में एक समन्वय समिति बनाई जा सकती है, जो इन विभागों की योजनाओं को एक–दूसरे से जोड़कर लागू करे।
- **स्थानीय आगंतुक आचार–संहिताः** हर पर्यटन क्लस्टर के लिए स्थानीय समुदाय की भागीदारी से एक आगंतुक आचार–संहिता तैयार की जाए। इसमें फोटोग्राफी से जुड़े नियम, धार्मिक और पवित्र स्थलों के सम्मान, कचरा वापस ले जाने की जिम्मेदारी तथा ध्वनि की सीमा जैसे नियम शामिल हों। इसे पर्यटन स्थल के प्रवेश बिंदुओं पर हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में प्रदर्शित किया जाए।
- **स्वतंत्र प्रभाव–मूल्यांकनः** सामुदायिक पर्यटन योजनाओं की सफलता का नियमित मूल्यांकन किया जाना चाहिए। प्रत्येक तीन वर्ष में विश्वविद्यालयों या अन्य स्वतंत्र संस्थाओं के माध्यम से यह देखा जाए कि योजना से स्थानीय आय कितनी बढ़ी, महिलाओं की भागीदारी कितनी रही, क्या गाँवों में लोगों का वापस आना बढ़ा और पर्यावरण पर इसका क्या प्रभाव पड़ा। इससे भविष्य की नीतियों को वास्तविक आँकड़ों और अनुभवों के आधार पर बेहतर बनाया जा सकेगा।

इन सभी सुझावों को अलग–अलग योजनाओं के रूप में लागू करने के बजाय एक साझा कार्यक्रम के अंतर्गत जोड़ा जा सकता है। इसके लिए 'उत्तराखंड सामुदायिक पर्यटन मिशन' बनाया जा सकता है। इस मिशन के माध्यम से स्थानीय संस्थाओं, सरकारी विभागों, समुदायों और निजी क्षेत्र के बीच समन्वय स्थापित करते हुए सामुदायिक पर्यटन को चरणबद्ध तरीके से विकसित किया जा सकता है।

निष्कर्ष

उत्तराखंड में पर्यटन की समस्या पर्यटकों की कमी नहीं है। राज्य में हर वर्ष बड़ी संख्या में पर्यटक और तीर्थयात्री आते हैं। मुख्य प्रश्न यह है कि पर्यटन से होने वाली आय का कितना हिस्सा स्थानीय लोगों तक पहुँचता है? और पर्यटन के कारण होने वाले पर्यावरणीय नुकसान का भार किसे उठाना पड़ता है? वर्तमान व्यवस्था में पर्यटन से होने वाला आर्थिक लाभ कुछ क्षेत्रों और लोगों तक अधिक सीमित रहता है, जबकि पर्यावरण पर पड़ने वाला दबाव पूरे स्थानीय क्षेत्र को सहना पड़ता है। सामुदायिक–आधारित पर्यटन इस असंतुलन को कम करने का प्रयास करता है। सरमोली, जखोल, हर्षिल और सुपी जैसे उत्तराखंड के उदाहरण बताते हैं कि स्थानीय समुदाय की भागीदारी से पर्यटन को रोजगार और आजीविका का माध्यम बनाया जा सकता है। लद्दाख और सिक्किम के अनुभव यह भी दिखाते हैं कि इस प्रकार के पर्यटन को स्थानीय संस्थाओं और सरकारी नीतियों के माध्यम से लंबे समय तक चलाया जा सकता है। इससे स्पष्ट है कि सामुदायिक पर्यटन केवल एक विचार नहीं है, बल्कि इसे उत्तराखंड की परिस्थितियों के अनुसार व्यावहारिक रूप से लागू किया जा सकता है।

उत्तराखंड के पास इसके लिए आवश्यक कई महत्वपूर्ण संसाधन पहले से मौजूद हैं। राज्य की प्राकृतिक और सांस्कृतिक विविधता पर्यटन के लिए मजबूत आधार प्रदान करती है। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र और देश के बड़े शहरों से इसकी अपेक्षाकृत अच्छी पहुँच इसे एक बड़े पर्यटन बाजार से जोड़ती है। इसके अलावा, राज्य में वन पंचायत जैसी स्थानीय संस्थाएँ पहले से मौजूद हैं, जो प्राकृतिक संसाधनों के सामूहिक प्रबंधन का अनुभव रखती हैं। इसलिए आवश्यकता नई व्यवस्थाएँ बनाने की बजाय मौजूदा संसाधनों और संस्थाओं को एक–दूसरे से जोड़ने की है। सामुदायिक पर्यटन में व्यक्ति के बजाय समुदाय को मुख्य इकाई, पर्यटकों की संख्या के बजाय क्षेत्र की वहन–क्षमता को प्राथमिकता और बड़े निर्माण के बजाय स्थानीय लोगों की क्षमता और कौशल के विकास को महत्व दिया जाना चाहिए। यदि इस दिशा में योजनाबद्ध तरीके से काम किया जाए, तो सामुदायिक पर्यटन गाँवों में रोजगार और आय के अवसर पैदा कर सकता है तथा पलायन को कम करने में मदद कर सकता है। खाली पड़े घरों और कम उपयोग किए जा रहे स्थानीय संसाधनों को फिर से आर्थिक गतिविधियों से जोड़ा जा सकता है। साथ ही, स्थानीय संस्कृति और पर्यावरण के संरक्षण को भी पर्यटन के विकास के साथ जोड़ा जा सकता है। इस प्रकार, सामुदायिक पर्यटन को केवल पर्यटन बढ़ाने की योजना के रूप में नहीं, बल्कि स्थानीय आजीविका, पर्यावरण संरक्षण और प्रत्यावर्ती पलायन को एक साथ आगे बढ़ाने वाले विकास के माध्यम के रूप में देखा जाना चाहिए। उत्तराखंड के गाँवों में आर्थिक और सामाजिक जीवन को मजबूत करना ही इस प्रयास की वास्तविक सफलता होगी।

संदर्भ सूची

- Agrawal, A. (2005)- Environ mentality: Technologies of government and the making of subjects. Duke University Press.
- Anand, A., Chandan, P., & Singh, R. B. (2012). Homestays at Korzok: Supplementing rural livelihoods and supporting green tourism in the Indian Himalayas. Mountain Research and Development, 32(2), 126.136.
- Bhalla, P., Coghlan, A., & Bhattacharya, P. (2016). Homestays' contribution to community-based ecotourism in the Himalayan region of India. Tourism Recreation Research, 41(2), 213–228.
- Blackstock, K. (2005). A critical look at community-based tourism. Community Development Journal, 40(1), 39–49.
- Butler, R. W. (1980). The concept of a tourist area cycle of evolution: Implications for management of resources. The Canadian Geographer, 24(1), 5–12.
- Goodwin, H., & Santilli, R. (2009). Community-based tourism: A success? (ICRT Occasional Paper No. 11). International Centre for Responsible Tourism.
- International Centre for Integrated Mountain Development [ICIMOD]. (2011). Payment for ecosystem services in the Hindu Kush Himalaya. ICIMOD.
- Kalpavriksh. (2017). The Himal Kalasutra Bird Festival, Sarmoli village, above Munsiari, Uttarakhand. https://kalpavriksh.org
- Murphy, P. E. (1985). Tourism: A community approach. Methuen.
- Nepal, S. K. (2002). Mountain ecotourism and sustainable development: Ecology, economics, and ethics. Mountain Research and Development, 22(2), 104–109.

- Ostrom, E. (1990). Governing the commons: The evolution of institutions for collective action. Cambridge University Press.
- Sati, V. P. (2018). Carrying capacity analysis and destination development: A case study of Gangotri tourists/pilgrims circuit in India. Asia Pacific Journal of Tourism Research, 23(3), 312–322.
- Scheyvens, R. (1999). Ecotourism and the empowerment of local communities- Tourism Management, 20(2), 245–249.
- Snow Leopard Conservancy India Trust. (n.d.). Himalayan Homestays. https://snowleopardindia.org
- Tosun, C. (2000). Limits to community participation in the tourism development process in developing countries. Tourism Management, 21(6), 613–633.
- पर्यटन मंत्रालय, भारत सरकार. (2024). सर्वश्रेष्ठ पर्यटन ग्राम प्रतियोगिता 2024: पुरस्कार घोषणा. नई दिल्ली: भारत सरकार.
- पर्यटन विभाग, उत्तराखंड सरकार. (द.क.). दीनदयाल उपाध्याय गृह आवास (होमस्टे) विकास योजना: दिशा–निर्देश. देहरादून: उत्तराखंड शासन.
- राजभवन उत्तराखंड. (2025, 26 नवंबर). माननीय राज्यपाल द्वारा उत्तराखंड ए.आई. मिशन 2025 नीति का शुभारंभ ख्रेस विज्ञप्ति,. देहरादून.
- ग्राम्य विकास एवं पलायन निवारण आयोग, उत्तराखंड. (2018). अंतरिम रिपोर्ट: ग्रामीण पलायन की स्थिति एवं कारण. देहरादून: उत्तराखंड शासन.

सुश्री प्रिया बोरा उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय के पर्यटन एवं आतिथ्य प्रबंधन विभाग में सहायक प्राध्यापक के रूप में विगत पांच वर्षों से कार्यरत हैं। उन्होंने कुमाऊँ विश्वविद्यालय से पर्यटन में एमबीए तथा व्यवसाय प्रशासन में बीबीए की शिक्षा प्राप्त की है और राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा (NET) वर्ष 2020 उत्तीर्ण की है। उनका अकादमिक और शोध कार्य पर्यटन, सतत पर्यटन, ग्रामीण पर्यटन, आतिथ्य तथा उत्तराखंड के हिमालयी क्षेत्रों से संबंधित विषयों पर केंद्रित है। इन विषयों पर उनके शोध–पत्र विभिन्न समीक्षित शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं और उन्होंने राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में अपने शोध कार्य प्रस्तुत किए हैं। पर्यटन के अकादमिक अध्ययन के साथ–साथ उत्तराखंड की चित्रकला और लेखन उनके रचनात्मक एवं अकादमिक रुचि के प्रमुख क्षेत्र हैं। उनके द्वारा लोक कला नामक लघु उद्यम भी संचालित किया जा रहा है। पर्यटन और स्थानीय संस्कृति के बीच संबंधों को समझने में उनकी रुचि उनके शोध तथा लेखन में भी दिखाई देती है।

सतत विकास में वैलनेस पर्यटन की भूमिका

(पुस्तक - राज्यपाल का उत्तराखंड मिशन)

डॉ. मनोज कुमार पांडे

पर्यटन विभाग – उत्तराखंड मुक्त विश्वविध्यालय, हल्द्वानी

प्रस्तुत अध्याय सतत विकास की संकल्पना में वैलनेस पर्यटन की बढ़ती भूमिका का विश्लेषण करता है। वैलनेस पर्यटन केवल मनोरंजन अथवा भ्रमण तक सीमित नहीं है, अपितु यह शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य की पुनर्प्राप्ति से जुड़ी एक समग्र अवधारणा है। यह अध्याय उत्तराखंड जैसे हिमालयी राज्य के परिप्रेक्ष्य में इस प्रश्न की पड़ताल करता है कि किस प्रकार प्राकृतिक संपदा, पारंपरिक ज्ञान और स्थानीय समुदायों की सहभागिता से वैलनेस पर्यटन को आर्थिक समृद्धि, पर्यावरणीय संतुलन तथा सामाजिक सशक्तीकरण का माध्यम बनाया जा सकता है। साथ ही यह ग्रामीण पलायन को कम करने, ग्रामीण रोजगार के सृजन तथा महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने की दिशा में इसकी संभावनाओं को रेखांकित करता है। अध्ययन द्वितीयक स्रोतों, शासकीय नीति–दस्तावेजों, अंतरराष्ट्रीय संस्थागत प्रतिवेदनों तथा प्रकाशित शोध–साक्ष्यों के विश्लेषण पर आधारित है, तथा अंत में एक व्यावहारिक एवं प्रतिकृति योग्य नीतिगत प्रारूप प्रस्तुत करता है, जो अन्य हिमालयी राज्यों में भी अपनाया जा सकता है।

कुंजी–शब्दरू वैलनेस पर्यटन, सतत विकास, उत्तराखंड, हिमालयी पारिस्थितिकी, ग्रामीण आजीविका, ग्रामीण पलायन।

1. प्रस्तावना

पिछले डेढ़ दशक में स्वास्थ्य शब्द का सामाजिक अर्थ बदल रहा है। रोग हो जाने के बाद औषधि खोजने वाली पुरानी सोच अब रोग को होने ही न देने वाली सोच में परिवर्तित हो रही है अर्थात निवारक, समग्र तथा जीवन शैली आधारित स्वास्थ्य दृष्टि। कोविड–19 महामारी ने इस परिवर्तन को और तीव्र कर दिया, क्योंकि प्रतिरोधक क्षमता, मानसिक संतुलन, नींद, आहार तथा प्रकृति सान्निध्य जैसे विषय आम उपभोक्ता के यात्रा निर्णयों के केंद्र में आ गए। वैश्विक वैलनेस अर्थव्यवस्था वर्ष 2024 में 6.8 खरब अमेरिकी डॉलर तक पहुँच चुकी है, जिसमें अकेले वैलनेस पर्यटन का हिस्सा लगभग 894 अरब डॉलर आँका गया है, और यह वर्ष 2023 से 2024 के मध्य 13.8 प्रतिशत की दर से बढ़ा, जो संपूर्ण वैलनेस अर्थव्यवस्था के ग्यारह उप–क्षेत्रों में सर्वाधिक तीव्र वृद्धि वाले खंडों में से एक है (ग्लोबल वेलनेस इंस्टीट्यूट, 2025)।

इस वैश्विक परिवर्तन के बीच उत्तराखंड जैसे हिमालयी राज्य के लिए एक विशिष्ट अवसर उभरता है। यह राज्य एक साथ प्राकृतिक पूँजी, आध्यात्मिक सांस्कृतिक पूँजी तथा पारंपरिक ज्ञान पूँजी का धनी है। ऐसी तीन पूँजियाँ, जो वैलनेस पर्यटन की आधारशिला मानी जाती हैं। किंतु यही राज्य पलायन, ग्रामीण

अर्थव्यवस्था के क्षरण तथा पारिस्थितिक भंगुरता जैसी गंभीर चुनौतियों से भी जूझ रहा है। माननीय राज्यपाल महोदय के उत्तराखंड मिशन में परिकल्पित पाँच क्षेत्रों में से रिवर्स माइग्रेशन एवं महिला सशक्तीकरण, दोनों ही सीधे इस प्रश्न से जुड़ते हैं कि क्या वैलनेस एवं पर्यटन क्षेत्र इन दो यथार्थों, अवसर और संकट के बीच सेतु बन सकता है। प्रस्तुत अध्याय इसी प्रश्न की पड़ताल करता है, तथा द्वितीयक स्रोतों, नीति दस्तावेजों एवं क्षेत्रीय प्रकरण अध्ययनों के विश्लेषण के आधार पर एक व्यावहारिक दिशा प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।

2. वैलनेस पर्यटनरू अवधारणा एवं वैश्विक परिदृश्य

वैलनेस पर्यटन को साधारण भाषा में स्वास्थ्य को बनाए रखने अथवा बढ़ाने के उद्देश्य से की गई यात्रा कहा जा सकता है, किंतु यह चिकित्सा पर्यटन से भिन्न है। जहाँ चिकित्सा पर्यटन किसी विशिष्ट रोग के उपचार अथवा शल्य क्रिया पर केंद्रित होता है, वहीं वैलनेस पर्यटन शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक संतुलन की समग्र पुनर्प्राप्ति से जुड़ा है (स्मिथ एवं पुक्जको, 2014)। म्यूलर एवं कॉफमैन (2001) ने इसे और स्पष्ट करते हुए वैलनेस यात्रियों को दो वर्गों में विभाजित किया है "प्राथमिक वैलनेस यात्री" जो विशुद्ध रूप से स्वास्थ्य लाभ हेतु ही यात्रा करते हैं, और "द्वितीयक वैलनेस यात्री" जो किसी अन्य उद्देश्य से यात्रा करते हुए भी योग, स्पा अथवा प्राकृतिक चिकित्सा जैसी सुविधाओं का लाभ उठाते हैं। यह वर्गीकरण उत्तराखंड के लिए विशेष महत्व रखता है, क्योंकि यहाँ चारधाम एवं अन्य धार्मिक यात्राओं पर आने वाला विशाल पर्यटक स्वाभाविक रूप से "द्वितीयक वैलनेस यात्री" में परिवर्तित हो सकता है, यदि उपयुक्त अवसंरचना उपलब्ध कराई जाए।

ग्लोबल वेलनेस इंस्टीट्यूट (2025) के नवीनतम आकलन के अनुसार विश्व की समूची वैलनेस अर्थव्यवस्था के ग्यारह उप क्षेत्रों में से नौ क्षेत्र वर्ष 2019 के अपने पूर्व महामारी स्तर को पार कर चुके हैं, तथा वैलनेस पर्यटन, स्पा एवं खनिज जल स्रोत ये तीनों पर्यटन आधारित खंड सर्वाधिक तीव्र गति से पुनर्जीवित हुए हैं। संस्था यह भी रेखांकित करती है कि विश्व स्तर पर स्पाओं की संख्या वर्ष 2019 के 1,75,482 से बढ़कर 2024 में 2,01,861 हो गई है, जो शहरी केंद्रों के साथ–साथ दूरस्थ एवं प्रकृति आधारित गंतव्यों में भी इस उद्योग के विस्तार का प्रमाण है। यह वैश्विक रुझान इस बात की पुष्टि करता है कि उपभोक्ता अब पारंपरिक धूप सेंकना और आराम करना प्रकार के अवकाश से आगे बढ़कर सुनियोजित, दीर्घकालिक स्वास्थ्य लाभकारी अनुभवों की तलाश में हैं और यही प्रवृत्ति हिमालयी क्षेत्रों के लिए एक स्वाभाविक अवसर गढ़ती है, जहाँ स्वच्छ वायु, ऊँचाई, वनस्पति तथा मौन जैसे तत्व पहले से ही विद्यमान हैं।

3. सतत विकास एवं वैलनेस पर्यटन का अंतर्संबंध

संयुक्त राष्ट्र विश्व पर्यटन संगठन (यूएनडब्ल्यूटीओ) तथा संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) के संयुक्त प्रतिवेदन में यह प्रतिपादित किया गया है कि पर्यटन क्षेत्र, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से, सभी सत्रह सतत विकास लक्ष्यों में योगदान करने की क्षमता रखता है, तथा विशेष रूप से लक्ष्य 8 (सभ्य कार्य एवं आर्थिक संवृद्धि), लक्ष्य 12 (उत्तरदायी उपभोग एवं उत्पादन) तथा लक्ष्य 14 (जल संसाधनों का सतत

उपयोग) में इसे स्पष्ट लक्ष्यों के रूप में सम्मिलित किया गया है (यूएनडब्ल्यूटीओ एवं यूएनडीपी , 2017)। वर्ष 2018 में प्रकाशित पूरक प्रतिवेदन ने आगे बढ़कर यह स्पष्ट किया कि पर्यटन आर्थिक संवृद्धि, जीवन गुणवत्ता, पर्यावरण संरक्षण तथा सांस्कृतिक विविधता चारों आयामों में एक साथ योगदान कर सकता है, बशर्ते इसे नीति एवं व्यावसायिक व्यवहार में सचेत रूप से एकीकृत किया जाए (यूएनडब्ल्यूटीओ, 2018)। वैलनेस पर्यटन इस व्यापक ढाँचे के भीतर एक विशिष्ट स्थान रखता है, क्योंकि इसकी प्रकृति में ही सतत विकास के कई लक्ष्य अंतर्निहित हैं। यह लक्ष्य 3 (स्वस्थ जीवन) से सीधे जुड़ा है, क्योंकि इसका मूल उद्देश्य ही निवारक स्वास्थ्य है। यह लक्ष्य 5 (लैंगिक समानता) से भी जुड़ता है, क्योंकि विश्व भर के अनुभव दर्शाते हैं कि होम स्टे तथा छोटे वैलनेस उपक्रम प्रायः महिलाओं के नेतृत्व में संचालित होते हैं। यह लक्ष्य 8 (गरिमापूर्ण रोजगार) से भी संबद्ध है, क्योंकि यह श्रम प्रधान, स्थानीय कौशल आधारित रोजगार सृजित करता है। तथा यह लक्ष्य 15 (थल पारिस्थितिकी) से भी जुड़ता है, क्योंकि वन, जल स्रोत तथा जैव विविधता ही इसके कच्चे संसाधन हैं, जिनके संरक्षण में इस उद्योग का प्रत्यक्ष आर्थिक हित निहित हो जाता है। इस प्रकार वैलनेस पर्यटन को केवल एक आर्थिक गतिविधि के रूप में नहीं, अपितु सतत विकास के बहु आयामी उपकरण के रूप में देखा जाना चाहिए।

4. उत्तराखंडरू वैलनेस पर्यटन की स्वाभाविक भूमि

उत्तराखंड एक साथ तीन ऐसी पूँजियों का धनी है, जो वैलनेस पर्यटन की आधारशिला मानी जाती हैं। प्रथम, प्राकृतिक पूँजी , हिमालयी जलवायु, सघन वन, हिमानी जल स्रोत, तापीय झरने तथा औषधीय सुगंधीय वनस्पतियों की समृद्ध विविधता। द्वितीय, आध्यात्मिक सांस्कृतिक पूँजी गंगा एवं यमुना का उद्गम स्थल होने के साथ–साथ चारधाम यात्रा तथा ऋषिकेश की सुदीर्घ योग परंपरा, जिसे विश्व स्तर पर योग की वैश्विक राजधानी के रूप में मान्यता प्राप्त है। तृतीय, ज्ञान पूँजी , आयुर्वेद, प्राकृतिक चिकित्सा एवं लोक चिकित्सा की जीवंत तथा पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित परंपरा। इन तीनों पूँजियों का समवेत रूप में विद्यमान होना उत्तराखंड को देश के बहुत कम राज्यों में से एक बनाता है, जो वैलनेस पर्यटन के हर उपखंड योग एवं ध्यान, प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेद तथा स्पा एवं तापीय उपचार में एक साथ प्रतिस्पर्धी हो सकता है।

राज्य के पर्यटन विभाग के अनुसार वर्ष 2025 में छह करोड़ तीन लाख से अधिक पर्यटकों ने उत्तराखंड का भ्रमण किया, तथा वर्ष 2022–23 से 2024–25 के मध्य संचयी रूप से 23.46 करोड़ पर्यटक राज्य में आए (स्वदेश न्यूज, 2026)। अकेले चारधाम एवं हेमकुंड साहिब यात्रा में वर्ष 2024 में लगभग 48 लाख श्रद्धालुओं ने दर्शन किए (ईटीवी भारत, 2025)। यह विशाल संख्या राज्य की अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण है, किंतु इसका स्वरूप अब भी अत्यंत मौसमी, धार्मिक केंद्रित तथा कुछ गिने चुने गंतव्यों पर संकेंद्रित है। दूसरी ओर, यही राज्य पलायन के गंभीर संकट से जूझ रहा है। उत्तराखंड ग्राम्य विकास एवं पलायन निवारण आयोग की प्रथम रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2011 से 2018 के मध्य राज्य के 734 गाँव पूर्णतः निर्जन हो चुके थे, तथा इसी अवधि में 3,83,726 व्यक्ति एवं 1,18,981 परिवार पहाड़ी क्षेत्रों से पलायन कर चुके थे (उत्तराखंड ग्राम्य विकास एवं पलायन निवारण आयोग, 2018)। पलायन करने वाला वर्ग मुख्यतः युवा

है, जिसका सीधा प्रभाव स्थानीय कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। प्रश्न यही है कि क्या पर्यटन का यह विशाल किंतु असंतुलित प्रवाह जो अभी कुछ धार्मिक गंतव्यों तक सीमित है, वैलनेस केंद्रित विविधीकरण के माध्यम से उन्हीं दूरस्थ, पलायन प्रभावित घाटियों की ओर मोड़ा जा सकता है, जहाँ आज मकान खाली पड़े हैं, परंतु प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पूँजी अक्षुण्ण है।

5. नीतिगत ढाँचा एवं संस्थागत पहल

उत्तराखंड सरकार ने हाल के वर्षों में इस दिशा में कई ठोस नीतिगत कदम उठाए हैं, जो इस अध्याय के तर्क को नीतिगत आधार प्रदान करते हैं। सबसे महत्वपूर्ण पहल है उत्तराखंड योग नीति 2025, जिसे 28 मई 2025 को धामी मंत्रिमंडल की स्वीकृति मिली तथा जिसे अंतरराष्ट्रीय योग दिवस, 21 जून 2025 को, विधिवत रूप से लागू किया गया, यह देश की प्रथम योग नीति है (आयुष विभाग, उत्तराखंड शासन, 2025)। इस नीति के अंतर्गत पर्वतीय क्षेत्रों में नए योग एवं वैलनेस केंद्रों की स्थापना हेतु 20 लाख रुपये तक की सब्सिडी, योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा में शोध हेतु प्रति परियोजना 10 लाख रुपये तक का अनुदान (कुल एक करोड़ रुपये के शोध–कोष के भीतर), तथा प्रति वर्ष कुल पाँच करोड़ रुपये तक की सब्सिडी का प्रावधान रखा गया है। नीति में वर्ष 2030 तक पाँच नए योग हब, जागेश्वर, मुक्तेश्वर, व्यास घाटी, टिहरी झील तथा कोलीढेक झील विकसित करने का लक्ष्य भी निर्धारित किया गया है, तथा मार्च 2026 तक राज्य के समस्त आयुष स्वास्थ्य एवं वैलनेस केंद्रों में योग सेवाएँ सुलभ कराने तथा मार्च 2028 तक 15 से 20 राष्ट्रीय–अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के साथ भागीदारी विकसित करने के लक्ष्य रखे गए हैं।

इसके समानांतर, राज्य मंत्रिमंडल ने होम स्टे तथा बेड–एंड–ब्रेकफास्ट की पूर्व में प्रचलित दो अलग–अलग नियमावलियों का विलय करते हुए उत्तराखंड पर्यटन एवं यात्रा व्यवसाय पंजीकरण नियमावली 2026 को स्वीकृति दी है, जिसके अंतर्गत अब समूह बनाकर भी होम स्टे का संचालन किया जा सकता है तथा पंजीकरण के पश्चात 15 लाख रुपये तक की सब्सिडी उपलब्ध कराई जाएगी (अमर उजाला, 2026)। इससे पूर्व दीन दयाल उपाध्याय गृह आवास (होम स्टे) योजना के अंतर्गत भी ग्रामीणों को अपने घर को अतिथि–गृह के रूप में विकसित करने हेतु ऋण सुविधा उपलब्ध रही है (मोंगाबे–हिन्दी, 2021)। इन तीनों नीतिगत उपकरणों योग नीति, संशोधित पंजीकरण नियमावली तथा होम स्टे योजना का समवेत उपयोग किया जाए, तो ग्रामीण स्तर पर एक सुसंगत वैलनेस पर्यटन पारिस्थितिकी तंत्र खड़ा करना संभव है, जिसके लिए किसी नई योजना की आवश्यकता नहीं, केवल विद्यमान प्रावधानों के अभिसरण की आवश्यकता है।

6. आर्थिक, सामाजिक एवं पारिस्थितिक आयाम

आर्थिक दृष्टि से वैलनेस पर्यटन की एक विशेषता यह है कि इसके यात्री सामान्य अवकाश यात्रियों की तुलना में अधिक समय तक एक ही स्थान पर ठहरते हैं, क्योंकि योग, पंचकर्म अथवा प्राकृतिक चिकित्सा के सार्थक प्रभाव के लिए सामान्यतः सात से इक्कीस दिनों की अवधि आवश्यक मानी जाती है। इसका सीधा अर्थ है प्रति पर्यटक अधिक व्यय तथा प्रति पर्यटक अपेक्षाकृत कम पारिस्थितिक दबाव अर्थात कम भीड़, अधिक आय का समीकरण, जो चारधाम जैसे सघन मौसमी गंतव्यों से बिल्कुल भिन्न आर्थिक तर्क

प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त, होम स्टे आधारित मॉडल में पर्यटक व्यय सीधे स्थानीय परिवारों तक पहुँचता है, बजाय इसके कि वह बड़ी शृंखलाबद्ध होटल कंपनियों के माध्यम से क्षेत्र से बाहर चला जाए। सामाजिक आयाम पर, पिथौरागढ़ जनपद के मुनस्यारी के निकट स्थित सरमोली गाँव का अनुभव विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पर्यटन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा आयोजित श्रेष्ठ पर्यटन गाँव प्रतियोगिता में, जिसमें देश भर से 795 गाँवों ने आवेदन किया था, सरमोली को 27 सितंबर 2023 को विश्व पर्यटन दिवस के अवसर पर श्रेष्ठ पर्यटन गाँव के रूप में सम्मानित किया गया (पर्यटन मंत्रालय, भारत सरकार, 2023)। सामाजिक कार्यकर्ता मल्लिका विर्दी के नेतृत्व में गाँव की महिलाओं ने होम स्टे संचालन के साथ–साथ पारंपरिक बुनाई के कार्य को भी संगठित किया, जिससे एक पलायन प्रवण गाँव धीरे–धीरे रोजगार सृजक गाँव में परिवर्तित हुआ। पिथौरागढ़ के जिला पर्यटन विकास अधिकारी के अनुसार राज्य सरकार ने स्वयं सरमोली के इस मॉडल से प्रेरणा लेकर इको टूरिज्म को बढ़ावा देने की योजनाएँ बनाई हैं (मोंगाबे–हिन्दी, 2021)। यह उदाहरण दर्शाता है कि जब पर्यटन को स्थानीय महिला संगठन के साथ जोड़ा जाता है, तो महिलाओं की आर्थिक स्वायत्तता तथा गाँव में बने रहने का निर्णय अर्थात पलायन निवारण दोनों एक साथ सधते हैं।

पारिस्थितिक दृष्टि से, वैलनेस पर्यटन प्रकृति आधारित संसाधनों, स्वच्छ जल–स्रोत, वन आवरण तथा औषधीय वनस्पति के संरक्षण में समुदाय का प्रत्यक्ष आर्थिक हित उत्पन्न करता है, क्योंकि इन्हीं संसाधनों की गुणवत्ता पर वैलनेस उत्पाद की विश्वसनीयता निर्भर करती है। यह उच्च घनत्व, अल्प प्रवास वाले धार्मिक पर्यटन से एक महत्वपूर्ण अंतर है, जहाँ पारिस्थितिक दबाव तथा आर्थिक लाभ का यह सीधा संबंध उतनी स्पष्टता से स्थापित नहीं हो पाता।

7. चुनौतियाँ

तथापि इस संभावनाशील क्षेत्र के समक्ष अनेक ठोस चुनौतियाँ भी हैं। सर्वप्रथम, वहन क्षमता की समस्या। हिमालयी क्षेत्र से संबद्ध अध्ययनों के अनुमान के अनुसार भारतीय हिमालयी क्षेत्र में प्रतिवर्ष लगभग दस करोड़ पर्यटक पहुँचते हैं, तथा आने वाले वर्षों में यह संख्या तेजी से बढ़ने का अनुमान है (डाउन टू अर्थ हिंदी, 2024)। चारधाम मार्गों पर हुए एक विशिष्ट वहन क्षमता अध्ययन के अनुसार बद्रीनाथ की वास्तविक दैनिक वहन क्षमता लगभग 11,833 से 15,778 पर्यटकों के मध्य, तथा केदारनाथ की लगभग 9,833 से 13,111 पर्यटकों के मध्य होनी चाहिए, जबकि यमुनोत्री एवं गंगोत्री के लिए यह सीमा क्रमशः 6,133–8,178 तथा 4,620–6,160 आँकी गई है (डॉयचे वेले हिंदी, 2025)। व्यवहार में पीक सीजन के दौरान यह सीमाएँ नियमित रूप से लांघी जाती हैं। जनवरी 2023 का जोशीमठ भूधंसाव संकट जिसकी जाँच में वाडिया इंस्टीट्यूट ऑफ हिमालयन जियोलॉजी सहित आठ राष्ट्रीय संस्थाएँ सम्मिलित थीं। इस बात का कठोर स्मरण है कि अनियोजित निर्माण, पर्यटन दबाव तथा जलविद्युत एवं सड़क परियोजनाओं का संयुक्त भार हिमालयी भू–भाग की क्षमता से आगे निकल सकता है (डाउन टू अर्थ हिंदी, 2023)। वैलनेस पर्यटन का प्रस्ताव इसी कारण सघन गंतव्यों के स्थान पर उनके निकटवर्ती, अपेक्षाकृत कम भीड़ वाले उपग्रह गाँवों की ओर उन्मुख होना चाहिए।

द्वितीय चुनौती है ऋतु आधारित सीमितता अधिकांश उच्च हिमालयी गंतव्य वर्षभर में केवल छह से सात माह ही सुगमता से सुलभ रहते हैं, जिससे स्थायी रोजगार का सृजन कठिन होता है, जब तक कि निचले एवं मध्य हिमालयी क्षेत्रों में वर्षभर संचालन योग्य वैलनेस केंद्र विकसित न किए जाएँ। तृतीय, कौशल एवं गुणवत्ता का अभाव ग्रामीण होम स्टे संचालकों के पास प्रायः योग प्रशिक्षण, आतिथ्य मानक अथवा प्राथमिक चिकित्सा जैसे कौशलों का औपचारिक प्रशिक्षण उपलब्ध नहीं होता, जिससे सेवा गुणवत्ता में असमानता बनी रहती है। चतुर्थ, पूँजी एवं संपर्क अवसंरचना की कमी दूरस्थ क्षेत्रों में तापीय अथवा स्पा अवसंरचना हेतु आरंभिक निवेश तथा डिजिटल विपणन, दोनों ही व्यक्तिगत होम स्टे संचालकों की क्षमता से परे होते हैं, जब तक सामूहिक अथवा संस्थागत सहयोग न मिले।

8. संभावनाएँ एवं समाधान–एक प्रतिकृति योग्य प्रारूप

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर एक ऐसा प्रारूप प्रस्तावित किया जा सकता है, जो विद्यमान विधिक एवं वित्तीय ढाँचे के भीतर ही, बिना किसी नई योजना के, क्रियान्वित हो सके। इसे ग्राम केंद्रित वैलनेस गुच्छ मॉडल कहा जा सकता है, जिसके पाँच चरण हैं।

प्रथम चरण संस्थागत आधार। किसी भी गुच्छ का आरंभ पर्यटन से नहीं, संगठन से होना चाहिए। ग्राम पंचायत, वन पंचायत तथा महिला स्वयं सहायता समूहों के संयुक्त मंच के रूप में एक ग्राम वैलनेस समिति गठित की जाए, जिसमें न्यूनतम आधे सदस्य महिलाएँ हों सरमोली का अनुभव यही सिखाता है कि जहाँ सामाजिक संगठन पहले खड़ा होता है, वहाँ पर्यटन आय का वितरण अधिक न्यायसंगत रहता है।

द्वितीय चरण आवास। संशोधित 2026 नियमावली के समूह आधारित होम स्टे प्रावधान का उपयोग करते हुए आठ से दस पंजीकृत होम स्टे का एक गुच्छ बनाया जाए, जो तीन से छह निकटवर्ती गाँवों को समेटे, तथा शत प्रतिशत पंजीकरण को पूर्व शर्त बनाया जाए।

तृतीय चरण साझा वैलनेस केंद्र। गुच्छ के केंद्र में एक साझा सुविधा हो, जिसमें एक योग शाला, पंचकर्म हेतु दो कक्ष तथा स्थानीय आहार पर आधारित रसोई सम्मिलित हो। योग नीति 2025 के अंतर्गत उपलब्ध 20 लाख रुपये तक की सब्सिडी इसी केंद्र के लिए उपयोग की जा सकती है।

चतुर्थ चरण मूल्य शृंखला। गुच्छ के निकटवर्ती किसानों के साथ औषधीय सुगंधीय पादपों तथा मंडुआ झंगोरा जैसे परंपरागत अनाजों के लिए न्यूनतम क्रय अनुबंध किया जाए, ताकि पर्यटन की माँग सीधे कृषि आय से जुड़े।

पंचम चरण संरक्षण–अंशदान। प्रति अतिथि–रात्रि एक निश्चित राशि गुच्छ के संरक्षण कोष में जमा हो, जिसका उपयोग जल स्रोत पुनर्जीवन, पगडंडी रखरखाव तथा अपशिष्ट प्रबंधन में हो, तथा जिसका प्रबंधन वन पंचायत के माध्यम से किया जाए।

इस प्रारूप की मूल विशेषता यही है कि यह पर्यटन के प्रवाह को संतृप्त गंतव्यों से हटाकर उनके निकटवर्ती, पलायन प्रभावित उपग्रह गाँवों की ओर मोड़ता है, तथा दीर्घ प्रवास की प्रकृति के कारण प्रति पर्यटक आय बढ़ाते हुए प्रति पर्यटक पारिस्थितिक भार को घटाता है।

9. नीतिगत संस्तुतियाँ

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित संस्तुतियाँ प्रस्तुत की जाती हैं। प्रथम, योग नीति 2025, संशोधित पर्यटन पंजीकरण नियमावली 2026 तथा राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के अंतर्गत गठित महिला स्वयं सहायता समूहों इन तीनों को जिला स्तर पर एक ही खिड़की के माध्यम से अभिसरित किया जाए, ताकि लाभार्थी को अलग–अलग विभागों में भटकना न पड़े। द्वितीय, राज्य के मुक्त एवं पारंपरिक विश्वविद्यालयों के व्यावसायिक अध्ययन विभागों के माध्यम से ग्रामीण होम स्टे संचालकों हेतु योग प्रशिक्षण, आतिथ्य मानक तथा बुनियादी प्राथमिक चिकित्सा में लघु प्रमाण पत्र पाठ्यक्रम संचालित किए जाएँ, जिससे कौशल अंतराल की समस्या का समाधान हो। तृतीय, चारधाम जैसे सघन गंतव्यों की भीड़ को नियोजित रूप से निकटवर्ती मध्य हिमालयी घाटियों की ओर मोड़ने हेतु उपग्रह गंतव्य योजना बनाई जाए, जिसमें वहन क्षमता अध्ययनों के निष्कर्षों को नीति में औपचारिक रूप से समाहित किया जाए। चतुर्थ, प्रति अतिथि रात्रि संरक्षण अंशदान को राज्य स्तर पर एक मानकीकृत प्रावधान के रूप में अपनाया जाए, न कि केवल स्वैच्छिक पहल के रूप में। पंचम, होम स्टे संचालकों हेतु एक सामान्य डिजिटल विपणन एवं गुणवत्ता–प्रमाणन मंच विकसित किया जाए, जिससे व्यक्तिगत संचालकों को बड़े ऑनलाइन यात्रा मंचों पर निर्भर न रहना पड़े तथा सेवा मानक एकरूप बने रहें।

10. निष्कर्ष

वैलनेस पर्यटन उत्तराखंड के समक्ष विद्यमान दो प्रतीत होने वाली विपरीत वास्तविकताओं तीव्र पर्यटक वृद्धि तथा गंभीर ग्रामीण पलायन के बीच एक ठोस सेतु प्रस्तुत करता है। राज्य की प्राकृतिक, आध्यात्मिक सांस्कृतिक तथा ज्ञान संबंधी पूँजी पहले से विद्यमान हैय योग नीति 2025 तथा संशोधित पर्यटन पंजीकरण नियमावली 2026 के रूप में नीतिगत आधार भी अब उपलब्ध है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि इन विद्यमान संसाधनों तथा नीतियों को स्थानीय समुदाय केंद्रित, महिला नेतृत्व वाले संस्थागत ढाँचों के माध्यम से व्यवस्थित रूप से अभिसरित किया जाए जैसा कि सरमोली के अनुभव ने पहले ही प्रमाणित किया है। यदि यह अभिसरण नीति–स्तर पर सचेत रूप से किया जाए, तो वैलनेस पर्यटन न केवल आर्थिक समृद्धि तथा पर्यावरणीय संतुलन का, अपितु माननीय राज्यपाल महोदय के मिशन में निहित रिवर्स माइग्रेशन एवं महिला सशक्तीकरण के लक्ष्यों की प्राप्ति का भी एक सशक्त एवं प्रतिकृति योग्य माध्यम बन सकता है।

संदर्भ सूची (References)

Global Wellness Institute. (2025). Global Wellness Economy Monitor 2025. https://globalwellnessinstitute.org/industry-research/the-global-wellness-economy/

Global Wellness Institute. (n.d.). What is wellness tourism? https://globalwellnessinstitute.org/what-is-wellness/what-is-wellness-tourism/

Mueller, H., & Kaufmann, E. L. (2001). Wellness tourism: Market analysis of a special health tourism segment and implications for the hotel industry. Journal of Vacation Marketing, 7(1), 5–17.

Smith, M., & Puczkó, L. (2014). Health, tourism and hospitality: Spas, wellness and medical travel (2nd ed.). Routledge.

World Tourism Organization & UNDP. (2017). Tourism and the sustainable development goals – Journey to 2030. UNWTO.

World Tourism Organization. (2018). Tourism for development – Volume I: Key areas for action. UNWTO.

उत्तराखंड ग्राम्य विकास एवं पलायन निवारण आयोग। (2018). प्रथम रिपोर्ट। उत्तराखंड शासन, देहरादून। https://www.uttarakhandpalayanayog.com

डाउन टू अर्थ हिंदी। (2023, जनवरी 16). जोशीमठ भूधंसावरू विकास योजनाओं की फेहरिस्त। https://hindi.newslaundry.com/2023/01/16/list-of-joshimath-disaster-and-development-plans

डाउन टू अर्थ हिंदी। (2024, मई 2). आवरण कथा, खतरे में हिल स्टेशनरू क्या जोशीमठ के ष्सबकष् आ सकते हैं काम?

https://hindi.downtoearth.org.in/development/urbanisation/cover-story-hill-stations-in-danger-can-the-lessons-of-joshimath-be-useful-92580

डॉयचे वेले हिंदी। (2025, नवंबर 8). चार धाम यात्रा को बढ़ते पर्यटकों से खतरा। वेबदुनिया। https://hindi.webdunia.com/latest-deutsche-welle-news/strategic-planning-for-sustainable-tourism-practices-in-char-dham-yatra-125110800003_1.html

मोंगाबे–हिन्दी। (2021, जून 21). पलायन रोकने में कामयाब हो रहा मुनस्यारी का इकोटूरिज्म। https://hindi.mongabay.com/2021/06/21/ecotourism-in-uttarakhand/

स्वदेश न्यूज। (2026, फरवरी 4). उत्तराखंड पर्यटन ने रचा इतिहास, 2025 में 6 करोड़ से ज्यादा पर्यटक पहुंचे।

https://www.swadeshnews.in/india/uttarakhand-tourism-creates-history-more-than-6-crore-tourists-arrive-in-2025-978960

ईटीवी भारत। (2025, जुलाई 29). उत्तराखंड चारधाम यात्रा, 3 महीने में 41 लाख पहुंचा श्रद्धालुओं का आंकड़ा।

https://www.etvbharat.com/hi/!state/number-of-pilgrims-visiting-uttarakhand-chardham-yatra-2025-crossed-41-lakh-uttarakhand-news-uts25072904649

अमर उजाला। (2026, मई 13). उत्तराखंडरू अब समूह बना कर भी संचालित कर सकेंगे होमस्टे, पंजीकरण के बाद मिलेगी 15 लाख सब्सिडी।

https://www.amarujala.com/dehradun/uttarakhand-news-now-homestays-can-also-be-operated-collectively-as-a-group-after-cabinet-approved-rules-2026-05-13

आयुष विभाग, उत्तराखंड शासन। (2025). उत्तराखंड योग नीति 2025। उत्तराखंड शासन, देहरादून।

उत्तराखंड शासन, पर्यटन विभाग। (2026). उत्तराखंड पर्यटन एवं यात्रा व्यवसाय पंजीकरण नियमावली 2026। देहरादून।

पर्यटन मंत्रालय, भारत सरकार। (2023, सितंबर 27). श्रेष्ठ पर्यटन गाँव प्रतियोगिता 2023, परिणाम। नई दिल्ली।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समग्र स्वास्थ्य हेतु: योग की भूमिका

डॉ. दीपक कुमार
योग विभाग, स्वास्थ्य विज्ञान विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

सारांश- 21वीं सदी में मानव ने वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति से जीवन को अत्यधिक सरल एवं सुविधाजनक बना दिया है इस विकासशील जीवन में व्यक्ति अत्यधिक प्रतिस्पर्धा, मानसिक दबाव, तनाव तथा अनियमित जीवन शैली के कारण दिन-प्रतिदिन जीवन शैली से संबंधित रोगों एवं मनोविकारों से भी ग्रसित होता जा रहा है। आज शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ सामाजिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य की प्राप्ति करना व्यक्ति के लिए अत्यंत चुनौतीपूर्ण हो गया है। किंतु व्यक्ति का विकास एवं कल्याण पूर्णतः समग्र रूप से स्वस्थ रहने पर ही आधारित है जिसकी पुष्टि विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा भी की गई है। इस वैश्विक परिदृश्य में योग एक स्वस्थ जीवन जीने, समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति करने व रोगों के प्रबंधन हेतु एक उत्तम तथा प्रभावशाली अभ्यास के रूप में उभरा है। योग भारतीय परंपरा की प्राचीन पद्धति रही है इस विधा को अपनाकर प्राचीन योगियों द्वारा समग्र जीवन का विकास कर मोक्ष प्राप्ति भी की गई है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समग्र स्वास्थ्य को प्राप्त करने के लिए योग अब एक विकल्प मात्र नहीं, बल्कि एक अनिवार्य आवश्यकता बन चुका है। योग का अभ्यास केवल शरीर तथा मांसपेशियों को लचीला बनाना नहीं,अपितु मन की चंचलता को शांत व एकाग्र कर आत्मा की जागृति करना है। वर्तमान समय में योग स्वास्थ्य चिकित्सा व स्वास्थ्य संरक्षण की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हो गया है। इसके अभ्यास से प्राप्त होने वाले स्वास्थ्य लाभ व रोगों के उपचार से संबंधित कई वैज्ञानिक परीक्षण भी वर्तमान समय में किये जा रहे हैं। चिकित्सा जगत द्वारा योग को पूरक चिकित्सा के रूप में रोगों के उपचार हेतु महत्वपूर्ण माना जाने लगा है।

योग के अभ्यासों में षट्कर्म, आसन, प्राणयाम, ध्यान के साथ साथ कई ऐसे अभ्यास शामिल हैं जो शरीर, मन एवं विचारों को नई ऊर्जा प्रदान करते हैं तथा समग्र स्वस्थ की प्राप्ति में भी सहयक होते हैं। योग में आसनों के अभ्यास का प्रभाव समस्त तंत्रों जैसे पाचन तंत्र, उत्सर्जन तंत्र, रक्त परिसंचरण तंत्र आदि पर पड़ता है साथ ही प्राणायाम का दैनिक अभ्यास विशेष रूप से श्वसन तंत्र को स्वस्थ रखने एवं उसकी कार्यक्षमता को बढ़ाने में सहायक होता है। वर्तमान में प्राणयाम का अभ्यास अनेक शारीरिक एवं मानसिक रोगों के उपचार में सहायक सिद्ध हुआ है तथा इसके आश्चर्यजनक परिणाम भी देखे गए हैं। आसन एवं योग निद्रा जैसे विश्रान्तिकारक अभ्यास शारीरिक व मानसिक थकान को दूर करने के लिए लाभदायक हैं। योग के वैज्ञानिक प्रमाणों को देखते हुए आज योग को चिकित्सालयों एवं भारत सरकार के आयुष मंत्रालय द्वारा स्थापित आयुष केन्द्रों में भी उपचार हेतु पूरक चिकित्सा के रूप में अपनाया जा रहा है। प्रत्येक मनुष्य के स्वास्थ्य संवर्धन, रोगोपचार तथा जीवन विकास हेतु योग का व्यापक प्रचार एवं प्रसार किया जा रहा है ताकि प्रत्येक मनुष्य योग को अपनी जीवनशैली में अपनाकर तथा समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति कर परिवार, समाज व राष्ट्र के विकास में अपना योगदान देने में भी सक्षम हो सके।

शब्दकोष (Keyword): समग्र स्वास्थ्य, योग, वर्तमान चुनौतियाँ, रोग एवं योगाभ्यास , पूरक चिकित्सा

परिचय- योग' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की 'युज्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ "जोड़ना" या "मिलना" है। साधारण शब्दों में शरीर, मन और आत्मा का एकरूप होना ही योग है। अतः योग शब्द का व्यापक अर्थ आत्म तत्व का परमात्मा तत्व से मिलन है। यह प्राचीन भारत

द्वारा पूरे विश्व को दिया गया एक अमूल्य उपहार है। भारतीय वेदों, उपनिषदों में योग अभ्यास जैसे आसन, प्राणायाम, ध्यान आदि का वर्णन मिलता है। योग न केवल आध्यात्मिक यात्रा है अपितु यह व्यक्ति के जीवन विकास का एक महत्वपूर्ण साधन भी है। जीवन के चार पुरुषार्थों - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सार्थकता सिद्ध करने वाला यह एक महत्वपूर्ण सोपान है। योग पद्धति के मार्ग पर चलकर व्यक्ति स्वस्थ जीवन व्यतीत कर आत्म कल्याण तथा जीवन के उच्च आदर्श को स्थापित कर महान लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। योग के विभिन्न मार्ग व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व आध्यात्मिक स्वास्थ्य के संरक्षण एवं विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योकिं किसी भी कार्य को प्रारंभ करने हेतु जीवन में स्वस्थ शरीर एवं स्वस्थ मन की आवश्यकता होती है। मनुष्य जीवन के ये चारों पुरुषार्थ एक व्यवस्थित क्रम में हैं जिसमें धर्म और मोक्ष जीवन के आध्यात्मिक छोर हैं, जबकि अर्थ और काम सांसारिक छोर हैं। यदि व्यक्ति को स्वस्थ जीवन व्यतीत करना और सही मार्ग में चलाना है, तो 'अर्थ' और 'काम' को सदैव 'धर्म' के नियंत्रण में रखना होगा, तभी अंत में 'मोक्ष' की प्राप्ति संभव है और इसकी प्राप्ति तभी हो सकती है जब व्यक्ति समग्र रूप से स्वस्थ हो। स्वास्थ्य शब्द का सामान्य अर्थ स्व में स्थित होना है और योग स्वयं में स्थित होने तथा स्व कल्याण हेतु योग एक उत्तम मार्ग है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार स्वास्थ्य- स्वास्थ्य एक पूर्णत: शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक कल्याण की स्थिति है यह केवल रोग की अनुपस्थिति मात्र नहीं है। अतः स्वास्थ्य का सम्बन्ध केवल रोग मुक्त होना नहीं है अपितु समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति भी है जो व्यक्ति के जीवन को उन्नत व बेहतर बनाने के लिए आवश्यक है। इसलिए कहा भी जाता है कि जीवन का पहला सुख निरोगी काया है अर्थात् स्वस्थ रहना है। योग क्रियाओं में आसन के अभ्यास से आरोग्यता की प्राप्ति बताई गयी है और वर्तमान में योगासन तथा प्राणायाम के नियमित अभ्यास करने से अनेक व्यक्तियों द्वारा आरोग्यता की प्राप्ति की जा रही है साथ ही रोगों के उपचार के लिए भी इनका नियमित अभ्यास किया जा रहा है। योग के अभ्यासों का प्रभाव न केवल शरीर के विकारों को दूर करता है बल्कि यह मन के विकारों के उपचार में भी सहायक होता है, नियमित अभ्यास करने से प्राण ऊर्जा में वृद्धि होती है। यदि नकारात्मक ऊर्जा या तनाव से ग्रसित व्यक्ति योग का अभ्यास करता है तो वह निश्चित ही स्वयं में सकारात्मक परिवर्तन अनुभव कर सकता है। भारतीय परंपराओं में इसके कई उदाहरण भी हैं जिन्होंने योग का मार्ग अपनाकर अपने जीवन को एक उच्च दिशा प्रदान की। भारत के महान पुरुषों में आदि शंकराचार्य, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी एवं पं. श्री राम शर्मा आचार्य आदि कई महापुरुष रहे हैं जिन्होंने योग के माध्यम से स्वयं का विकास किया तथा जनमानस हेतु भी एक आदर्श जीवन प्रस्तुत किया। एक आदर्श व्यक्ति न केवल समाज अपितु राष्ट्र के लिए भी महान कार्य करता है।

अतः योग पद्धति सदैव भारत की प्राचीन परंपरा रही है। इन परम्पराओं में आध्यात्म की दृष्टि से योग साधना के लिए हिमालय क्षेत्र सदैव ही महत्वपूर्ण रहा है। भारत के उत्तरी राज्यों में योग पद्धति तथा योग चिकित्सा अधिक लोकप्रिय है। योग न केवल भारत अपितु अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी लोकप्रिय है, प्रत्येक वर्ष 21 जून को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस का आयोजन राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर किया जाता है। भारत सरकार के आयुष मंत्रालय द्वारा भी भारत में प्रत्येक राज्य व जिला स्तर पर आयुष मंत्रालय खोले जा चुके हैं जिसमें विविध भारतीय परंपरा का समावेश है, इन पद्धतियों में योग भी एक महत्त्वपूर्ण चिकित्सा पद्धति है तथा इसके द्वारा जन-जन को स्वास्थ्य लाभ प्रदान किया जा रहा है। भारत में स्थित उत्तराखण्ड राज्य योग का मुख्य केंद्र माना जाता है उत्तराखण्ड राज्य में स्थित ऋषिकेश नगरी को योग नगरी के नाम से भी जाना जाता है। उत्तराखण्ड का हिमालय एवं पर्वतीय क्षेत्र भी योग साधना के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है। साधना की दृष्टि से ध्यान के मुख्य केन्द्रों में अल्मोड़ा जिले में स्थित कसार देवी मंदिर भी विश्व भर में आकर्षण का केंद्र है। इस क्षेत्र की भूचुंबकीय ऊर्जा उच्च है जहां ध्यान जैसे अभ्यास व साधना करने से व्यक्ति अधिक परम शांति का आसानी से अनुभव कर सकता है यह स्थान साधना की दृष्टि से काफी प्रभावशाली माना जाता है। उत्तराखण्ड में भारतीय परंपरा व योग पर आधारित शोध संस्थानों में हरिद्वार में स्थित पतंजलि योग ग्राम तथा ब्रह्मवर्चस्व शोध संस्थान भी काफी प्रसिद्ध हैं। भारत सरकार द्वारा राज्यों में स्थित

आयुष केन्द्रों में भारतीय परंपरागत चिकित्सा के अंतर्गत योग, प्राकृतिक चिकित्सा, सिद्ध चिकित्सा व आयुर्वेद आदि को भी बढ़ावा दिया जा रहा है।

योग एवं स्वास्थ्य- मानव जीवन जिस प्रकार वैज्ञानिक व भौतिक स्तर में प्रगतिशील है उसी प्रकार उसके समक्ष स्वास्थ्य की चुनौतियाँ भी अधिक बढ़ती जा रही हैं। शारीरिक दुर्बलता व रोग, मानसिक विकार, नैतिक मूल्यों का पतन आदि व्यक्ति तथा समाज के लिए भी बड़ा खतरा बनते जा रहे हैं। आज केवल मध्य आयु एवं वृद्ध व्यक्ति ही नहीं अपितु युवा तथा बच्चे भी शारीरिक व मानसिक रोगों से ग्रसित हो रहे हैं। हिंसा, अपराध, अमानवीय कृत्य, आत्महत्या आदि इस विकृत स्वास्थ्य, विकृत मन व विकृत विचारों का ही परिणाम हैं। अतः वर्तमान में इस दृष्टि से व्यक्ति के शरीर तथा मन की विकृति को दूर करने के लिए योग को अपनाने व इसके प्रति सजग रहने की गंभीर आवश्यकता प्रतीत होती है। योग के विभिन्न अभ्यासों को अपनाकर जीवन को सकारात्मक दिशा की ओर परिवर्तित किया जा सकता है। योग एक वैज्ञानिक तथा पारंपरिक पद्धति है जो व्यक्ति को समग्र स्वास्थ्य प्रदान कर नई ऊर्जा का संचार करती है। हठयोग के ग्रंथों में भी योग के अभ्यासों में शारीरिक शुद्धि के लिए शोधन क्रियाओं का वर्णन है, शरीर को दृढ़ बनाने हेतु आसन, शरीर में ऊर्जा वृद्धि तथा हल्कापन लाने के लिए प्राणायाम, मन व इंद्रियों को संयमित या नियंत्रित करने हेतु प्रत्याहार तथा मन की एकाग्रता के लिए ध्यान व आत्म साक्षात्कार के लिए समाधि का वर्णन किया गया है।

आधुनिक जीवनशैली की चुनौतियाँ एवं योग की प्रासंगिकता-

अनियमित जीवनशैली तथा अतिरिक्त कार्यभार के तनाव आदि से विविध शारीरिक व मानसिक रोगों की उत्पत्ति हो रही है। हर आयु वर्ग का व्यक्ति अनियमित जीवन शैली एवं आहार के कारण जटिल रोगों से ग्रसित होता जा रहा है यदि इसका समय पर प्रबंधन न किया जाए तो यह रोग जीवन हेतु घातक हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त अव्यवस्थित जीवनशैली से वर्तमान समय में मानव द्वारा जिन चुनौतियों का सामना किया जा रहा है वह निम्न प्रकार हैं -

1.अनियमित दिनचर्या- आधुनिक समय में व्यक्ति की जीवन शैली बहुत अस्त-व्यस्त हो चुकी है। दिन व रात्रि में कार्यक्षेत्र में कार्य करना, आवश्यकता अनुसार विश्राम न करना एवं अत्यधिक कार्यभार के कारण भी व्यक्ति की स्वास्थ्य सबंधी समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं। कामकाजी महिलाओं द्वारा भी घर एवं कार्यक्षेत्र के कार्यों में सामंजस्य बनाने तथा अन्य जिम्मेदारियों को निभाने के कारण स्वयं के स्वास्थ्य को निरंतर नजरअंदाज किया जाता है जिस कारण उनमें हार्मोन का असंतुलन एवं अन्य शारीरिक व मानसिक समस्याएं उत्पन्न होती हैं। बच्चों में भी व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक एवं विद्यालयी स्तर पर होने वाली अपेक्षाओं के कारण उनमें चिंता व तनाव आदि की स्थिति निरंतर बनी रहती है।

2. डिजिटल एवं तकनीकी युग- स्क्रीन टाइम बढ़ने और सोशल मीडिया के अत्यधिक उपयोग से व्यक्ति की मानसिक एवं शारीरिक ऊर्जा का ह्रास होता है। तकनीकी सुविधाओं के परिणामस्वरूप निरंतर कंप्यूटर, मोबाइल फोन या अन्य उपकरणों के प्रयोग से व्यक्ति शारीरिक तथा मानसिक रूप से थकावट का अनुभव करता है। अत्यधिक डिजिटल सुविधाओं के प्रयोग से व्यक्ति निरंतर ऊर्जाहीन तथा चिड़चिड़ा रहता है। ऐसी स्थिति में प्राणायाम के अभ्यास के अंतर्गत 'भ्रामरी प्राणायाम' मस्तिष्क की तरंगों को शांत कर मानसिक शांति प्रदान करता है एवं नाड़ी शोधन तथा चंद्रभेदी प्राणायाम का अभ्यास परानुकंपी तंत्रिका तंत्र को भी सक्रिय करता है जो मानसिक थकान एवं तनाव को दूर करने में भी मदद करता है।

3. गतिहीन जीवन / शारीरिक निष्क्रियता- कोरोना संक्रमण के बाद वर्क फ्रॉम होम जैसे कार्यक्षेत्र की कार्यप्रणाली के कारण घंटों कंप्यूटर के सामने बैठने से कमर, गर्दन और जोड़ों में दर्द आदि की समस्याएं आम हो गयी हैं। वर्तमान समय की दिनचर्या एवं सुख

सुविधाओं के वशीभूत होकर शारीरिक सक्रियता में भी कही ना कही कमी आयी है। आज के युग में व्यक्ति अपने दैनिक कार्यों के लिए भी मशीनों पर निर्भर है उसे किसी भी कार्य को पूर्ण करने हेतु शारीरिक श्रम की आवश्यकता का अनुभव नहीं होता है। अतः ऐसी स्थिति में योग के अंतर्गत ताड़ासन, मार्जरीआसन, शशांकासन, भुजंगासन और मर्कटासन जैसे अभ्यास रीढ़ को लचीला और मजबूत बनाते हैं। अंगो की क्रियाशीलता को बढ़ाने में सूर्य नमस्कार, पश्चिमोत्तानासन, चक्रासन, चक्कीचालासन, नौकासंचालन तथा कतिचालासन जैसे अभ्यास भी सहायक होते हैं।

4. प्रतिस्पर्धात्मक जीवनशैली - आज के इस भौतिकतावादी समाज में प्रत्येक आयु वर्ग के व्यक्ति में प्रतिस्पर्धा का भाव विकसित हो रहा है। जहां विद्यार्थी अपनी कक्षा या विद्यालय में प्रतिस्पर्धा का भाव रखकर आगे बढ़ रहे हैं वहिं युवा वर्ग रोजगार पाने हेतु प्रतिस्पर्धा का सामना कर रहे हैं। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपने अन्य साथियों से केवल आगे बढ़ने की मंशा रखते हुए नकारात्मक विचार व व्यवहार की ओर अग्रसर हो रहे हैं जिससे उसके नैतिक मूल्यों का पतन एवं मानसिक ह्रास भी हो रहा है। इसी के परिणामस्वरूप उनमें तनाव, अवसाद, कुण्ठा आदि जैसे मनोविकार बढ़ते जा रहे हैं एवं व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य भी प्रभावित हो रहा है। व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के उन्नयन में तथा मनोविकारों के प्रबंधन हेतु योग के कुछ उपयोगी आसन, प्राणायाम, योगनिद्रा, ध्यान आदि का अभ्यास प्रभावशाली होता है। ये अभ्यास समग्र स्वास्थ्य के विकास में भी लाभकारी हैं।

5. प्रदूषण- विकासशील समाज में व्यक्ति न केवल स्वास्थ्य समस्याओं का सामना कर रहा है अपितु निरंतर प्रगति, तकनीकी उपकरणों, भवन व नगर आदि निर्माण से प्रदूषित वातावरण का भी सामना कर रहा है। प्रदूषित वातावरण से श्वसन रोगों, हृदय रोगों, कर्क रोग एवं अनेकों संक्रामक तथा गैर संक्रामक आदि भयंकर रोगों में भी वृद्धि हुई है। यदि व्यक्ति एलोपथी औषधि सेवन द्वारा उपचार करा भी लें तो औषधि के नकारात्मक प्रभाव के कारण उसके शरीर व अंग कमजोर हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में अंगों एवं शरीर की कार्यक्षमता को बढ़ाने एवं रोगों से बचने हेतु योग का अभ्यास पूरक चिकित्सा के रूप में अपनाया जा सकता है। आज कई शोध संस्थान इस चिकित्सा पद्धति पर शोध कार्य भी कर रहे हैं एवं प्रत्येक व्यक्ति को स्वास्थ्य संवर्धन हेतु योग करने की सलाह भी दे रहे हैं। कोरोना महामारी में भी पूरक चिकित्सा पद्धति में योग चिकित्सा ने अपनी सार्थकता एवं प्रामाणिकता सिद्ध की है।

समग्र स्वास्थ्य हेतु योग की प्रासंगिकता- समग्र स्वास्थ्य का सम्बन्ध शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर स्वस्थ्य रहने से है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का वास होता है। स्वस्थ एवं सुखी व्यक्ति अपने परिवार तथा समाज के प्रति सौहार्द पूर्ण व्यवहार रखता है साथ ही स्वयं के प्रति एवं अन्य व्यक्तियों के प्रति सकारात्मक भाव रखता है जो सुखी जीवन व विकसित समाज के विकास हेतु नितांत आवश्यक है। इन सभी स्तरों पर यदि व्यक्ति संतुष्ट है तभी वह आत्म - कल्याण हेतु अग्रसित हो सकता है। प्राचीन भारतीय पद्धति में ऋषि व मुनि योग अभ्यास द्वारा स्वास्थ्य संवर्धन तथा आरोग्य पूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। योग में वर्णित षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, ध्यान आदि सभी अभ्यास हठयोग का मार्ग प्रशस्त करते हैं जो साधना की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। यह शरीर मन, इंद्रिय तथा विचारों को भी प्रभावित करते हैं। वर्तमान में योग का अभ्यास रोग उपचार हेतु भी किया जा रहा है। बड़े-बड़े चिकित्सालय तथा स्वास्थ्य केंद्रों में भी योग प्रशिक्षण तथा योग चिकित्सा विधि के प्रयोगों को अपनाया जा रहा है। जिससे आज व्यक्तियों में योग की लोकप्रियता स्वास्थ्य व मानव कल्याण हेतु पुनः बढ़ती जा रही है।

यदि भारतीय पारंपरिक चिकित्सा की दृष्टि से स्वास्थ्य को समझें तो आयुर्वेद में महर्षि चरक द्वारा बताया गया है कि एक स्वस्थ व्यक्ति वही है जिसके त्रिदोष अर्थात् वात, पित्त एवं कफ संतुलित हो, पाचन आदि अग्नि संतुलित हो, सभी धातुएं संतुलित अवस्था में हो, मल क्रिया का निष्कासन शरीर में ठीक प्रकार से हो और सभी इंद्रियां व मन प्रसन्न अवस्था में हो, यही स्वास्थ्य की स्थिति को दर्शाता है। अतः इस प्रकार की अवस्था होने पर ही व्यक्ति स्वस्थ तथा सुखी हो सकता है। वर्तमान समय में यदि व्यक्ति शारीरिक रूप से स्वस्थ

दिखाई देता है तो शायद वह मानसिक रूप से अस्वस्थ हो सकता है। आज के इस भौतिकतावादी समय में सामाजिक स्वास्थ्य भी कहीं ना कहीं विकृत होता जा रहा है जिस पर प्रत्येक व्यक्ति को ध्यान देने की आवश्यकता है। समान्यतः शरीर के स्वस्थ होने को ही व्यक्ति स्वास्थ्य समझता है वह स्वास्थ्य को समग्र दृष्टि से ना समझ कर केवल यही मानता है कि निरोगी काया ही पूर्ण स्वास्थ्य है, किंतु व्यक्ति का पूर्ण स्वास्थ्य एवं विकास उसके समग्र रूप से अर्थात् शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर स्वस्थ्य रहने से ही संभव होता है।

शारीरिक स्वास्थ्य में योग का महत्व- वर्तमान समय में व्यक्ति के शारीरिक विकास हेतु पर्याप्त साधन उपलब्ध नहीं हैं जिसका कारण आधुनिकता, बढ़ती आबादी, नगरीकरण एवं व्यस्त जीवन शैली आदि हैं। वर्तमान में बच्चों का पूरा समय विद्यालय में तथा पाठन अभ्यासों में व्यतीत होता है, महिलाओं का पूरा दिन गृह कार्य आदि में व्यतीत हो जाता है तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा भी अपनी दिनचर्या में विशिष्ट शारीरिक क्रियाओं का उचित समावेश नहीं हो पाता है। इस आधुनिकतावादी जीवनशैली में व्यक्ति शारीरिक स्तर पर निष्क्रिय, थकावट, भारीपन, जकड़न, शरीर के अंगों एवं जोड़ों में दर्द आदि का प्रायः अनुभव करता है व मोटापे जैसी समस्याओं का भी सामना करता है। अतः ऐसी जीवनशैली में शारीरिक गतिविधि व अभ्यास हेतु आसनों का विशेष महत्व है। आसन के अभ्यास का प्रभाव केवल शरीर को नहीं बल्कि आतंरिक अंगों एवं उनकी कार्यक्षमता को भी प्रभावित करता है। नियमित आसनों के अभ्यास से व्यक्ति शारीरिक तथा मानसिक लाभ प्राप्त कर सकता है। आसनों में शिथिलता प्रदान करने वाले विश्रांतिकारक अभ्यास, शरीर संवर्धनात्मक अभ्यास, सूक्ष्म अभ्यास आदि शामिल हैं जिन्हें व्यक्ति अपनी शारीरिक स्थिति व आयु के अनुसार सहजता से कर सकता है। ग्रंथों में भी आसनों के अभ्यास करने से आरोग्यता शारीरिक दृढ़ता की प्राप्ति बतायी गयी है।

मानसिक स्वास्थ्य में योग का महत्व- आज व्यक्ति न केवल शारीरिक रोगों अपितु मानसिक विकारों तथा समस्याओं से ग्रसित होता जा रहा है। कोरोना संक्रमण काल के पश्चात् मनोविकारों में वृद्धि हुई है तथा शारीरिक स्वास्थ्य पर भी इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। मानसिक स्वास्थ्य को समृद्ध करने तथा मनोविकारों के प्रबंधन में योग एक सहायक साधन है। आज योग का अभ्यास बच्चों के शारीरिक व मानसिक विकास में जितना आवश्यक है उतना ही माता-पिता के लिए भी आवश्यक हो गया है जिससे समाज की महत्वपूर्ण इकाई परिवार एवं उसमें रहने वाले सभी सदस्य मानसिक रूप से भी स्वस्थ रह सकें। परिवार का सकारात्मक वातावरण व्यक्तित्व निर्माण का आधार है इसीलिए परिवार के सभी सदस्यों को मानसिक तथा भावनात्मक रूप से स्वस्थ रहकर आदर्श जीवन जीने का सतत् प्रयास करना चाहिए। योग के अभ्यास से व्यक्ति अपना मानसिक एवं भावनात्मक विकास कर सकता है क्योंकि यह शुद्ध रूप से एक आध्यात्मिक मार्ग है। वर्तमान में मनोविकारों के उपचार हेतु विविध आसन एवं प्राणायाम के अभ्यास द्वारा चिंता, तनाव, अवसाद, कुण्ठा, आक्रामकता आदि के प्रबंधन में मनोचिकित्सकों द्वारा भी योग करने की सलाह दी जा रही है। ऐम्स जैसे अस्पतालों में भी योग एक पूरक चिकित्सा के रूप में मनोरोग के उपचार व प्रबंधन में अपनाया जा रहा है एवं इसके उपचारात्मक तथा प्रभावशाली परिणाम भी प्राप्त हो रहे हैं।

सामाजिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य में योग का महत्व- व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है उसका कोई भी कार्य या व्यवहार न केवल स्वयं के बल्कि सम्पूर्ण समाज के व्यक्तियों को प्रभावित करता है। यदि कोई भी व्यक्ति अपराध करे तो उससे सम्पूर्ण समाज प्रभावित होता है और यदि कोई अच्छा कार्य करे तो भी उसका सकारात्मक प्रभाव समाज पर पड़ेगा। अतः किसी भी व्यक्ति विशेष के विचार, भावना, व्यवहार एवं कार्य तभी सृजनात्मक होंगे जब वह शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ होगा क्योंकि स्वस्थ शरीर एवं मन में ही स्वस्थ विचार तथा भावना विकसित होती है। रोगी व्यक्ति तो स्वतः ही चिंता, तनाव आदि मनोविकारों से ग्रसित हो जाता है। भारतीय समाज द्वारा सदैव ही योग मार्ग का अनुसरण कर स्व तथा समाज कल्याण के अनेकों कार्य किए गए। रामकृष्ण मिशन नामक चिकित्सालय, आर्य समाज संस्था, अखिल विश्व गायत्री परिवार जैसे कितनी संस्थाओं की स्थापना केवल जन कल्याण एवं विकसित समाज बनाने के

उद्देश्य से की गई। महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित अष्टांग योग का पालन ही योग के आधार बताया है। इसके अंतर्गत यम का पालन जिसमें जिसमें अहिंसा , सत्य, अस्तेय (चोरी ना करना) , ब्रह्मचर्य (ब्रह्म जैसा पवित्र आचरण करना), अपरिग्रह (आवश्यकता से अधिक वस्तु या धन का संचय ना करना) का पालन करना नैतिक मूल्यों के विकास के लिए अनिवार्य बताया है। यदि व्यक्ति द्वारा यमों का पालन किया जाता है तो यह सभी अभ्यास व्यक्तित्व निर्माण एवं आदर्श समाज की स्थापना करने में सहायक होते हैं। इसके साथ ही वर्तमान में बढ़ते हुए अपराध भी इन अंगों के पालन से कम हो सकते हैं। अष्टांग योग का दूसरा अंग नियम बताया है जिसमें शौच (शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक पवित्रता या शुद्धि रखना), संतोष का भाव, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान शामिल हैं। इन नियमों का पालन करने से व्यक्ति का शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य उन्नत बनता है। वर्तमान में व्यक्ति हर किसी से आगे बढ़ना चाहता है उसके भीतर संतोष की भावना का अभाव है, आज व्यक्ति न केवल भौतिक वस्तु अपितु प्राकृतिक संसाधनों का भी आवश्यकता से अधिक उपयोग कर रहा है जिसके दुष्परिणाम न केवल सामाजिक बल्कि वैश्विक स्तर पर भी पड़ रहे हैं। यदि व्यक्ति अपरिग्रह का पालन करें तो कई सामाजिक तथा पर्यावरणीय समस्याओं का स्वतः ही समाधान हो सकता है इसके अतिरिक्त ईश्वर पर विश्वास करने वाला व्यक्ति आशावादी होता है। मनोवैज्ञानिकों का यह भी मानना है कि एक आस्तिक व्यक्ति नास्तिक व्यक्ति की तुलना में अधिक सकारात्मक होता है तथा उसमें तनाव या अवसाद आदि की संभावना कम होती है। अष्टांग योग के इन आधार अंगों यम व नियम का व्यक्ति पालन करें तो वह स्वयं का विकास, सामाजिक विकास, आत्म विकास, आदर्श जीवन तथा उच्च लक्ष्य की प्राप्ति सरलता से कर सकता है।

योगाभ्यास हेतु वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं वैश्विक परिदृश्य-

षट्कर्म - यह छः प्रकार की शुद्धि क्रियाएं हैं जो शरीर की आतंरिक शुद्धि कर त्रिदोषों को संतुलित करती हैं योग अभ्यासों में षट्कर्मों द्वारा शरीर की आंतरिक स्तर पर सफाई की जाती है। अपच, कब्ज, तथा श्वास संबंधी समस्याओं में धौति क्रिया काफी लाभकारी अभ्यास है। सामान्य सर्दी जुकाम, साइनसाइटिस तथा एलर्जी आदि रोगों में जल नेति क्रिया का अभ्यास लाभकारी है। इसे वर्तमान में ई.एन.टी. से सम्बन्धित समस्त रोगों के उपचार में भी उपयोग किया जाता है। इसी प्रकार कपालभाति क्रिया आज मोटापे को कम करने तथा कफ रोगों को दूर करने में अत्यंत प्रभावशाली अभ्यास है।

आसन- शरीर रचना की दृष्टि से आसनों में तीन मुख्य प्रकार हैं – शरीर संवर्धनात्मक आसन , विश्रांति कारक आसन एवं ध्यानात्मक आसन। शरीर संवर्धनात्मक आसन का अभ्यास मांसपेशियों को लचीला बनाने तथा जोड़ों को मजबूत बनाने हेतु किया जाता है इन समूहों के आसनों में भुजंगासन, धनुरासन, चक्रासन, उष्ट्रासन आदि से मेरुदण्ड लचीला होता है व संतुलन बनाने वाले आसनों द्वारा मानसिक स्थिरता व मानसिक संतुलन उचित बना रहता है इनमें वृक्षासन, नटराज आसन, मयूरासन आदि शामिल हैं। विश्रांतिकारक आसनों द्वारा शारीरिक थकान व मानसिक तनाव कम होता है जो शिथिलता एवं शांति प्रदान करता है। ध्यानात्मक आसन भी प्राणायाम एवं ध्यान के अभ्यास में अधिक सहायक होते हैं। किशोरियों तथा महिलाओं के लिए भी योग में आसन का अभ्यास अत्यंत आवश्यक है। यह मासिक धर्म के दौरान होने वाली पीड़ा आदि लक्षणों को कम करने में सहायक होते हैं। महिलाओं में गर्भावस्था की प्रारंभिक तीन महीनों में भी सामान्य अभ्यास किया जा सकता है किंतु शारीरिक स्थिति तथा चिकित्सा के निर्देशन में ही अभ्यास की विशिष्ट सलाह दी जाती है। इसके अतिरिक्त बद्ध पद्मासन तथा उपविष्ट कोणासन आदि का अभ्यास प्रसव वेदना को कम करने में भी सहायक होता है।

प्राणायाम- प्राणायाम के नियमित अभ्यास से पाचन संस्थान, अंतःस्रावी तंत्र, श्वसन तंत्र, हृदय, मस्तिष्क, मांसपेशियां व सम्पूर्ण नाड़ी मण्डल सभी उचित प्रकार से कार्य निष्पादित करने में सक्षम हो पाते हैं। प्राण विद्या से मनुष्य की चेतना का विस्तार होता है जिससे व्यक्ति में मानसिक स्पष्टता होने पर वह जीवन की किसी भी परिस्थिति का सफलतापूर्वक सामना करने में सक्षम हो पाता है। प्राणायाम का लक्ष्य प्राण जागृति, शरीर, मन एवं स्वास्थ्य का संवर्धन करना है। आचार्य बालकृष्ण द्वारा केवल प्राणायाम के अभ्यास से हृदय रोग, क्षय रोग

व अन्य श्वसन तंत्र के रोग, गठिया तथा कैंसर जैसे रोगों का उपचार किया गया है। उत्तराखण्ड के हरिद्वार में स्थित पतंजलि योग ग्राम में भारत तथा बाहरी देशों से कई रोगी अपना उपचार करवा रहे हैं। इसके अतिरिक्त आयुष केन्द्रों तथा अन्य योग केन्द्रों द्वारा भी योग चिकित्सा द्वारा शारीरिक व मानसिक रोगों का प्रबंधन किया जा रहा है। प्राणायाम के अभ्यास से व्यक्ति शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक स्तर पर शांति अनुभव करता है। प्राणायाम का अभ्यास शारीरिक रूप से ऊर्जावान बनाता है साथ ही जीवनी शक्ति को प्रबल करता है तथा आंतरिक अंगों की कार्यक्षमता भी बढ़ाता है।।

मुद्रा एवं बंध- मुद्राओं का प्रभाव अंतःस्रावी ग्रंथियों की कार्य क्षमता को प्रभावित करता है तथा यह इंद्रियों की कार्य क्षमता को भी विकसित करता है। बंध के अभ्यास से रक्त वाहिनियों पर दबाव पड़ता है जिससे हृदय की धड़कन व रक्तचाप में भी कमी आती है। यह शरीर व मस्तिष्क को विश्राम प्रदान करता है। एक उचित अभ्यासी प्राणायाम के साथ बंधों का अभ्यास कर समग्र लाभ प्राप्त कर सकता है। मुद्रा व बंध के अभ्यास से मानसिक एवं आध्यात्मिक लाभ भी प्राप्त होते हैं तथा योग के ग्रंथों में भी ये अभ्यास साधना की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

व्यावहारिक अनुप्रयोग एवं चुनौतियाँ-

- योग के वैज्ञानिक प्रयोगों की पुष्टि हेतु शंकरप्पा व उनके साथियों द्वारा कुछ अभ्यासियों को 6 सप्ताह तक प्राणायाम का नियमित अभ्यास करवाया गया। इस अभ्यास के परिणामस्वरूप अभ्यास करने वाले व्यक्तियों की श्वसन पेशियों की कार्यक्षमता में सुधार हुआ एवं सबलता आयी। इससे सिद्ध हुआ कि यह अभ्यास अस्थमा, एलर्जी, ब्रोंकाइटिस, निमोनिया के पश्चात स्वास्थ्य के सुधार हेतु एक प्रभावशाली अभ्यास है।
- पांडिचेरी के जवाहरलाल नेहरू इंस्टिट्यूट ऑफ़ वेस्ट ग्रेजुएट मेडिकल एजुकेशन एंड रिसर्च के फिजियोलॉजी विभाग के डॉक्टर गोपाल एम. बटमैव व एस. लक्ष्मण द्वारा बंधों के अभ्यास का नाड़ियों, हृदय तथा रक्तचाप पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया गया। बंध के अभ्यास से रक्त वाहिनियों पर दबाव पड़ता है जिससे हृदय की धड़कन व रक्तचाप में भी कमी आती है। यह शरीर व मस्तिष्क को विश्राम प्रदान करता है। इसके साथ ही श्वास की गति में विशेष परिवर्तन से मन:स्थिति को भी बदला जा सकता है यदि स्वास्थ्य का दीर्घ अभ्यास किया जाए तो यह व्यक्तित्व की मूल प्रकृति, मनोशक्ति व संवेगिक स्थिरता में भी संतुलन स्थापित करता है।
- उत्तराखण्ड राज्य में भी ज्योति एवं अन्य द्वारा 2013 के दौरान आई केदारनाथ आपदा से प्रभावित उत्तरकाशी के लोगों में उस घटना के पश्चात् उत्पन्न तनाव विकृति देखी गयी तथा उनके तनाव प्रबंधन हेतु उन्हें एक माह तक योगाभ्यास कराया गया। एक माह तक प्रज्ञा योग, सर्वांगासन, शवासन, नाड़ी शोधन, ध्यान आदि का अभ्यास करने से उनके तनाव में कमी देखी गयी व योग का उनके जीवन में सकारात्मक प्रभाव भी देखा गया।

किंतु आज भी कई सामान्य समस्याओं जैसे - सामान्य कमर दर्द, जोड़ों में दर्द, कमजोरी, अपच व मनोविकार आदि के प्रबंधन में लोगों द्वारा आधुनिक चिकित्सा अपनाई जा रही है जिसका प्रबंधन केवल योग अभ्यास एवं जीवनशैली के परिवर्तन से संभव हो सकता है। अतः आज भी योग के महत्व व इसकी प्रभावकारिता सिद्ध करने हेतु ठोस वैज्ञानिक प्रमाण एवं प्रचार की आवश्यकता है। उचित प्रशिक्षण एवं मार्गदर्शन में ही योग का अभ्यास प्रभावकारी हो सकता है जिसमें योग आधारित नियमों का पालन भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके अतिरिक्त वर्तमान में भी कई शोध देश एवं विदेशों में किए जा रहे हैं। पूर्व शोधों से यह भी पुष्टि होती है कि योग के विभिन्न अंगों का नियमित अभ्यास करने से व्यक्ति समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति कर सकता है।

निष्कर्ष-

21वीं सदी मानव जीवन के लिए विज्ञान, तकनीकी और भौतिक सुविधाओं की दृष्टि से सबसे उन्नत काल है। परंतु इसी काल में मानव के समक्ष स्वास्थ्य समस्याएँ एक सबसे बड़ी चुनौती के रूप में उभरी हैं। अत्यधिक मानसिक तनाव, गतिहीन और अनियमित जीवनशैली से जुड़े गंभीर रोग आज सभी आयु वर्ग के लिए खतरा हैं। आज स्वास्थ्य का अर्थ केवल शारीरिक रूप से रोग मुक्त होना नहीं है, बल्कि इसमें मानसिक, भावनात्मक और आत्मिक कल्याण भी शामिल है, जिसे समग्र स्वास्थ्य कहते हैं। इस पृष्ठभूमि में, भारत की प्राचीन योग पद्धति आज वैश्विक स्तर पर समग्र स्वास्थ्य को बनाए रखने का सबसे सशक्त, प्राकृतिक और वैज्ञानिक माध्यम बनकर उभरी है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, स्वास्थ्य केवल रोग की अनुपस्थिति नहीं है, अपितु यह पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक कल्याण की स्थिति है। योग इसी परिभाषा को चरितार्थ करता है। महर्षि पतंजलि के अनुसार, योग का अर्थ केवल शारीरिक आसनों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मन की वृत्तियों को शांत करने और शरीर-मन-आत्मा के बीच पूर्ण सामंजस्य स्थापित करने का विज्ञान है। आज योग न केवल स्वस्थ जीवनशैली के लिए अनिवार्य है अपितु यह पूरक चिकित्सा के रूप में भी अपनाया जाने लगा है। कई व्यक्तियों द्वारा इसके चिकित्सात्मक पक्ष के लाभ प्राप्त कर रोगमुक्त जीवन व्यतीत किया जा रहा है साथ ही रोग लक्षणों के प्रबंधन में आसन, प्राणायाम, ध्यान आदि का अभ्यास भी जीवन में अपनाया जा रहा है। हमारी भारतीय परंपरा में भी इसके प्रमाण उपलब्ध हैं। भारत में सर्प्रथम योग के उपचारात्मक पक्षों का वैज्ञानिक अध्ययन कैवल्यधाम, लोनावाला में किया गया । यह चिकित्सा पद्धति न केवल भारतीय लोगों द्वारा अपितु विदेशी लोगों द्वारा भी अपनाई जा रही है। वर्तमान में असाध्य रोगों के उपचार हेतु भी पूरक चिकित्सा की महत्ता सिद्ध करने एवं इनके प्रभावों का अध्ययन करने हेतु अनेकों शोध राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर किये जा रहे हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

- अयंगर, बी० के० एस० (2009). *योगदीपिका*. ओरियन्ट ब्लैकवॉन प्राइवेट लिमिटेड.
- अयंगर, बी० के० एस० (2009). *प्राणायाम* (नवीन संस्करण). ओरियन्ट ब्लैकवॉन प्राइवेट लिमिटेड.
- गोयन्दका, एच० डी० (बिना तिथि). *पातंजल योग सूत्र*. गीता प्रेस.
- गोरे, एम. एम. (2016). *शरीर विज्ञान और योगाभ्यास*. डोलिया पुस्तक भंडार.
- दशोरा, एस० एन० एल०. (2009). *पातंजल योग सूत्र*. रणधीर प्रकाशन.
- नौटियाल, वी० (2018). *योग और वैकल्पिक चिकित्सा*. किताब महल प्रकाशन.
- राघव, आर० एस० (2009). *श्री घेरण्ड संहिता*. चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान.
- रामदेव, एस० (2005). *प्राणायाम रहस्य*. दिव्य प्रकाशन.
- वर्णवाल, एस० (2011). *योग और मानसिक स्वास्थ्य*. न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन.
- शर्मा, ए० एस० एन० (2006). *घेरण्ड संहिता*. चौखम्बा विद्याभवन.
- शर्मा, आर० के० (2011). *अष्टांग योग रहस्य*. रणधीर प्रकाशन.
- शास्त्री, एस० एस० डी० डी० (2009). *हठयोगप्रदीपिका*. चौखम्बा विद्याभवन.
- श्रीमाली, एम. (2001). *प्रज्ञा पुरुष का समग्र दर्शन*. अखंड ज्योति संस्थान.
- सरस्वती, एस० के० (2013). *रोग और योग*. योग पब्लिकेशन ट्रस्ट.

- सिंह, आर० (2007). *योग एवं यौगिक चिकित्सा*. चौखम्बा प्रकाशन.
- सिंह, आर. एस. (2016). *योग एवं यौगिक चिकित्सा* (पुनर्मुद्रित सं.). चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान.
- Department of AYUSH and AYUSH Education, Government of Uttarakhand. (2025). *Uttarakhand Yoga Policy, 2025*. Scribd. share.google
- Malvi, J., Pandya, C., & Barnwal, S. (2018). The effect of yoga package on posttraumatic stress disorder (PTSD) in the survivors of 2013 Uttarakhand flood disaster. *International Journal of Applied Research*, *4*(11), 179–183.
- Roy, A. (2021, September 11). The 'magnetic' pull of Uttarakhand's hilltop hamlet, Kasar Devi. *The New Indian Express*.
- Shankarappa, V., Prashanth, P., Annamalai, N., & Malhotra, V. (2012). The short term effect of pranayama on the lung parameters. *Journal of Clinical and Diagnostic Research*, *6*(1), 27–30
- World Health Organization. (1946, July 22). *Constitution of the World Health Organization*. https://www.who.int/about/governance/constitution

कृतिका त्रिवेदी

सहायक प्रोफेसर ए.सी

व्यावसायिक विभाग

लोकज्ञान की पगडंडी पर चलता सतत पर्यटन– लोककथाओं से पर्यटन नीति और सुशासन तक

लेखक के बारे



मैं कृतिका त्रिवेदी हूँ और नैनीताल, कुमाऊँ क्षेत्र, उत्तराखंड से आती हूँ। मैं एक स्वतंत्र सांस्कृतिक अध्ययन शोधकर्ता हूँ। मेरे शोध की शुरुआत इस अनुभव से हुई कि मैं कुमाऊँनी होते हुए भी स्वयं को पूरी तरह 'कुमाऊँनी' नहीं महसूस कर पाती थी। बचपन में ही मेरी मातृभाषा कुमाऊँनी का स्थान हिंदी ने ले लिया और हिंदी मेरी पहली भाषा बन गई, जबकि मेरी औपचारिक शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रही। भाषाई पहचान में आया यह व्यवधान मेरे जटिल कुमाऊँनी अस्मिता–बोध की शुरुआत था। मेरे लिए यह व्यक्तिगत अनुभव केवल पहचान का प्रश्न नहीं रहा, बल्कि मेरे दीर्घकालिक शोध–उद्देश्य की आधारभूमि बन गया। इसी अनुभव ने मुझे कुमाऊँ की लोकभाषाओं, लोकस्मृतियों, लोककथाओं और सांस्कृतिक परंपराओं के अध्ययन की ओर प्रेरित किया। वर्तमान में मैं उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय के व्यावसायिक विभाग में अंग्रेजी संचार के लिए सहायक प्राध्यापक और शैक्षणिक परामर्शदाता के रूप में कार्य कर रही हूँ।

वेलनेस और पर्यटन

लोकज्ञान की पगडंडी पर चलता सतत पर्यटन– लोककथाओं से पर्यटन नीति और सुशासन तक

सारांश

उत्तराखंड राज्य को पहले से ही अपने जल–जंगल–जमीन की सुंदरता के लिए जाना जाता है। इन वनों, नदियों और पर्वतों के पीछे कई लोक–कथाएं हैं जिनके गायन से यहां रह रहे लोगों ने अपने सांस्कृतिक जीवन और पर्यावरण, दोनों का संरक्षण किया। इसी सामाजिक स्मृति और सामूहिक भागीदारी से उत्तराखंड वासियों ने पुराने समय में एक प्रशासनिक व्यवस्था– 'गुड गवर्नेंस' का भी निर्माण किया। यह प्रशासनिक व्यवस्था एक मौखिक इतिहास की तरह थी जो पीढ़ी दर पीढ़ी यहां रह रही दादियों और नानियों द्वारा अपने पोते–पोतियों को अनुशासन और प्रेम भाव से रहना सिखाती थी। लोक कथाएं कोई मनगढ़ंत कहानियाँ नहीं। अगर गौर किया जाए तो आज के संयुक्त राष्ट्र के वह 17 सतत विकास लक्ष्य जिससे 2030 तक विश्व **'kkafr** बनाई जाने की बात कही जाती है, उन लक्ष्यों में जो नैतिक मूल्य निहित है वह पहले से ही हमारी लोक कथाओं में विद्यमान हैं। और लोक कथाएं स्वभाव से विश्वव्यापी होती हैं। इसका अर्थ है, भले ही कहानी के पात्र हर चार कोस में बदलते हों, किंतु उनका संदेश उन्हीं कुछ निहित मूल्यों पर आधारित होता है जो किसी भी मनुष्य को सादा जीवन उच्च विचार रखना सिखाते हैं। इसी तरह 'गुड गवर्नेंस मॉडल' के वैश्विक विकास ढांचे में इन्ही कुछ नैतिक मूल्यों को औपचारिक रूप दिया गया है। इस अध्ययन में लोक कथाओं को एक 'गुड गवर्नेंस मॉडल' के जीवित दस्तावेज की तरह पेश किया गया है। लोक कथा वह पगडंडी है जिस पर उत्तराखण्ड का आज का सतत टूरिज्म चलता है। इसलिए इस अध्ययन में हम उत्तराखंड के सतत पर्यटन को एक सांस्कृतिक नजरिया से परखेंगे इसे परखने का प्रमुख निष्कर्ष यह होगा कि स्थानीय सांस्कृतिक प्रतीकों को सरकारी नीतियों में जगह देने पर विचार किया जाएगा। सरकारी नीतियों में पारंपरिक प्रतीक नागरिक भागीदारी को बढ़ावा दे सकते हैं, क्योंकि स्थानीय प्रतीक प्रशासनिक भाषा को अधिक परिचित और सरल बना देते हैं। नागरिक भागीदारी के यह प्रतीक प्रशासन में बैठे शासक को भी पहले एक नागरिक के रूप में देखने के लिए मजबूर करते हैं। वह नागरिक जिसने उन्हीं लोक कथाओं का स्मरण कर उत्तराखंड के जल–जंगल–जमीन को संरक्षित करने में अपनी भागीदारी दी है। इससे प्रशासन और आम लोगों के बीच की दूरी कम होने की संभावना है। यह अध्याय लोक कथाओं को किताबों में संजोने के विपरीत लोगों के दैनिक जीवन में उपयोग होने पर बल देता है। यह अध्ययन तर्क देता है कि पारंपरिक और स्थानीय प्रतीकों को पर्यटन नीतियों में जगह देने से भूली हुई लोक कथाएँ फिर से जीवंत हो जाती हैं, गवर्नमेंट–टू–सिटीजन संबंध मजबूत होते हैं और सतत पर्यटन के बेहतरीन प्रचार–प्रसार का माध्यम बनते हैं।

कीवर्डस– गुड गवर्नेंस मॉडल, टूरिज्म एंड वैलनेस, उत्तराखंड लोक कथाएं, सतत विकास लक्ष्य, फोक

परिचय

सन् 1992 में वर्ल्ड बैंक ने अपनी रिपोर्ट 'शासन और विकास' में दुनिया को 'सुशासन' की एक परिभाषा दी। 'सुशासन' यानी 'गुड गवर्नेंस' को सामाजिक और आर्थिक संसाधनों की व्यवस्था में उपयोग होने वाली ताकत के रूप में परिभाषित किया गया। इस परिभाषा में 'गुड गवर्नेंस' की, प्रमुख आठ विशेषताएं बताई

गईं– सर्वसम्मिति, जवाबदेही, पारदर्शिता, प्रभुत्व, कुशलता, सहभागिता, न्यायसंगति और समावेशित होना। फिर 2030 में आए 'एस.डी.जीज' यानी 'सतत विकास लक्ष्य' जो की संयुक्त राष्ट्र द्वारा 2015 में अपनाए गए। यह 17 ऐसे लक्ष्य थे जो वैश्विक स्तर पर पृथ्वी की रक्षा और विश्व शांति लाने की योजना का हिस्सा बने। परंतु सुशासन का मतलब बताने से पूर्व या फिर पृथ्वी की रक्षा और विश्व शांति जैसी योजनाएं आने से पहले उत्तराखंड के पहाड़ों की लोक कथाएँ 'गुड गवर्नेंस मॉडल' का एक बेहतरीन उदाहरण बनी रहीं (वर्मा आदि, 2024)। इस अध्ययन का उद्देश्य उत्तराखंड के पहाड़ों से आई लोक कथाओं को प्रैक्टिकल 'गुड गवर्नेंस मॉडल' के रूप में पेश करना है। लोक गाथाओं में अक्सर कहानियाँ 'बहुत समय पहले की बात है' कहकर शुरू की जाती हैं। इस तरकीब से श्रोताओं के मन में यह विश्वास जगाया जाता है कि जो कथा सुनाई जा रही है वह आज या कल की बनाई कहानी नहीं बल्कि वर्षों से चली आ रही किसी परंपरा की तरह हैं (चौहान, 2023)। शब्दों के संसार से बनाई गई यह परंपराएं आम लोगों की दिनचर्या का अद्भुत व्याख्यान करतीं हैं ('अमूर्त विरासत का सहभागी शासन', 2023)। इस अध्ययन में लोक के मूल्यों के महत्व को बताते हुए एक 'गुड गवर्नेंस मॉडल' तैयार किया गया है जो सरकार की नीतियों और आमजन की भावनाओं को जोड़ता है। गुड गवर्नेंस मॉडल में शामिल आठ विशेषताएं लोकजीवन में भी दिखाई देती हैं (झू एंड मा, 2025)। किसी भी समाज में गाई जाने वाली लोक कथाएं सर्वसम्मति से चलती हैं। उनमें उपस्थित सदियों का अनुभव लोगों की भागीदारी और उत्तरदायित्व को प्रस्तुत करता है। लोक कथाओं में भले ही पूर्ण रूप से कुछ सही गलत ना हो लेकिन हर लोक कथा में जवाबदेही होती है। लोक कथाओं का यह पारदर्शी स्वभाव सिटीजन–टू–सिटीजन संबंध और गवर्नमेंट–टू–सिटीजन संबंध और प्रगाढ़ करता है। लेकिन सिर्फ यही आठ प्रमुख विशेषताएं नहीं बल्कि पहाड़ों की लोक कथाएँ पर्यावरण संरक्षण का एक प्रभावी मॉडल हैं (अंतवाल और अन्य, 2010)। क्योंकि स्थानीय जरूरत के अनुसार इनमें स्थानीय रिसोर्सेस का उपयुक्त इस्तेमाल सिखाया गया है। यही नहीं इन कथाओं में कई सारे अलग–अलग समुदायों की आवाजें भी समावेशित हैं (शलेवा और लोबाचेवा, 2021)। लोक की खास बात यह होती है कि उनमें कोई राजा या रंक नहीं। सभी प्राणी होते हैं। सभी में जान होती है। सभी का जीवन बहुमूल्य होता है। चाहे वह इंसान अलग–अलग समुदायों के हों या फिर पशु–पक्षी। लोक कथाएं सभी को प्रेम पूर्वक रहना सिखाती हैं। इसीलिए लोक कथा सुशासन का एक बेहतरीन मॉडल हैं (रूथ एट अल., 2025)। लोक कथाएं सामूहिक भावना का आदर करते हुए और लोक स्मृति को संजोए अपनी संस्कृति और जमीन से जुड़ने का संदेश देती हैं। इसीलिए इनमें भागीदारी केवल सांस्कृतिक नहीं अपितु भावनात्मक भी है (सिकाला, 2006)। ऐसी ही स्थानीय या पारंपरिक प्रतीकों को नीतियों में स्थान देने से लोगों में केवल विश्वास ही नहीं बल्कि भागीदारी भी बढ़ेगी। जिससे सतत टूरिज्म को बढ़ावा मिलेगा। इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य उत्तराखंड की लोककथाओं में समाहित सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों को सुशासन, सतत पर्यटन और वेलनेस के व्यापक संदर्भ में समझना है। शासन का अर्थ केवल कानूनों का निर्माण करना नहीं, बल्कि जनता के साथ एक जीवंत संवाद स्थापित करना भी है (विवियर और सांचेज–बेटनकोर्ट, 2023)। जब सरकारी नीतियां स्थानीय भाषा और संस्कृति को आत्मसात करती हैं, तो लोगों का उनसे जुड़ाव स्वतः ही बढ़ जाता है। यह अध्ययन मुख्य रूप से तीन बिंदुओं पर केंद्रित हैरू लोककथाओं में निहित सामाजिक और पर्यावरणीय मूल्यों की पहचान करना, इन मूल्यों का सुशासन और सतत विकास के साथ संबंध तलाशना, और यह देखना कि लोकभाषा व कहानियाँ सरकारी संदेशों को जन–जन तक पहुँचाने में कितनी सहायक हो सकती हैं (ली और अन्य, 2026)। इस विमर्श के केंद्र में कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न भी हैंकृक्या उत्तराखंड की लोककथाओं में सुशासन के मूल्य पहले से ही विद्यमान हैं? क्या ये मूल्य आज के सतत विकास लक्ष्यों से मेल खाते हैं?

और क्या स्थानीय लोक प्रतीकों के माध्यम से सरकारी योजनाओं में जन–भागीदारी को और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है?

पहली लोक कथा है– 'मेरी गंगा मेरे पास आएगी'। इस लोक कथा में हमें उत्तरदायी और आध्यात्मिक पर्यटन की एक बेहतरीन लोकदृष्टि मिलती है। यह लोक कथा धार्मिक आस्था के साथ–साथ उत्तराखंड के सतत पर्यटन को भी बढ़ावा देती है। ज्यादातर लोक कथाओं की तरह इस कथा की शुरुआत भी बहुत समय पुरानी बात है कहकर होती है। खास बात है कि कथा की शुरुआत किसी निश्चित पर्व से नहीं होती। यह लोक कथा बदलती जगह के अनुसार पर्व बदलती है। कहीं मकर संक्रांति बताई जाती है तो कहीं कुंभ का मेला। परंतु यह स्पष्ट है कि जिस दिन की बात हो रही है वह कोई पवित्र अवसर ही है। और इस दिन कई राजा हरिद्वार नगरी में गंगा मां को नमन करने आए हैं। पर्व की अनिश्चितता यह स्पष्ट करती है कि हरिद्वार के गंगा तट का जुड़ाव केवल किसी धार्मिक उत्सव से नहीं है, बल्कि लंबे समय से यह एक प्राकृतिक और आध्यात्मिक केंद्र भी रहा है। इस लोक कथा में बताया जाता है कि कैसे देश–देश के राजा सभी आकर एक पर्व के दिन यहां इकट्ठा होते हैं और गंगा नजदीक बैठने की जगह ढूंढते हैं। राजाओं के गंगा तट पर जगह तलाशने से यह स्पष्ट होता है कि पहले समय से ही गंगा तट काफी लोकप्रिय स्थल रहा है (वहन क्षमता और रणनीतिक योजना, 2025)। यहाँ सभी पुण्य कमाने और पाप धोने की बातें करते हैं। यह उत्तराखण्ड सतत टूरिज्म में नदी की दैवीय पवित्रता, स्वच्छता और प्राकृतिक संसाधनों के प्रति आदर को दर्शाता है। एक महत्वपूर्ण किरदार जो इस लोक कथा में आता है वह गढ़वाल का राजा मेदिनीशाह है। मेदिनीशाह का लोक कथा में गंगा किनारे जगह न ढूंढ पाना और फिर एक निर्जन वन में बैठकर गंगा का स्मरण करना एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है। वह यह कि किसी भी प्रकार की तीर्थ यात्रा मात्र भगवान को उनके स्थल में देखने या उस प्राकृतिक संसाधन के किनारे बैठकर उसे छूने से पूर्ण नहीं होती (शिंदे, 2012)। बल्कि तीर्थ पहुंचकर उस देवत्व का आदर करना ही सच्ची श्रद्धा है। कहानी में जब गढ़वाल के राजा को बैठने के लिए गंगा तट का किनारा नहीं मिलता तो वह निर्जन वन पर बैठ जाता है। इसे देख बाकी राजा और वहां उपस्थित लोग हंसने लगते हैं। किंतु गढ़वाली राजा का मुख ज्योति की तरह जलता रहता है। वह उन हंसी ठिठोलियों से घबराता नहीं। वह गंगा का स्मरण करता रहता है। परंपरा के अनुसार वह ब्रह्मकुंड में स्नान करना चाहता था। ऐसा न हो पाने पर उसे तीर्थ यात्रा अधूरी रहने का भय नहीं सताता। किसी खास जगह स्नान न करके, किसी निर्जन वन में बैठ जाना सुशासन की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है (एल्किन एट अल., 2018)। यह दिखाता है कि राजा स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ नहीं समझता बल्कि प्रजा के आदमी की तरह स्थिति को स्वीकार करके एसी जगह ढूंढता है जिस पर उसका अधिकार भी हो और जहाँ वह अपनी श्रद्धा का प्रदर्शन भी कर सके। लोक कथा में राजा बार–बार कहता है– 'मेरी गंगा होगी तो मेरे पास आएगी' यह कथन संदेश देता है कि अपना उत्तरदायित्व समझना और संसाधनों का न्यायपूर्वक इस्तेमाल करना ही पुण्य देता है। लोक कथा में राजा का कथन सत्य होते हुए दिखाई पड़ता है। जब रात को भीषण वर्षा होती है, तब सभी राजा जो गंगा किनारे खास जगह पर बैठे थे उन्हें अपनी जगह छोड़ सुरक्षित कोना तलाशना पड़ता है। वहीं दूसरी ओर गढ़वाल का राजा मेदिनीशाह जिस निर्जन वन में बैठा था उधर प्रतीकात्मक रूप से गंगा की एक धारा स्वयं भहकर आ जाती है। इससे कथा का संदेश स्पष्ट होता है कि सच्ची श्रद्धा स्थान की निकटता पर निर्भर नहीं करती। कथा में वर्षा का आना और गंगा की एक धारा का राजा की तरफ पहुंचाना आधुनिक संदर्भ में प्रकृति और मनुष्य के प्रगाढ़ संबंध को दर्शाता है (पोरया एट अल., 2026)। गंगा केवल पर्यटन की पृष्ठभूमि नहीं है वह एक प्राकृतिक संसाधन भी है जिसे स्वच्छ रखना मनुष्य का उत्तरदायित्व है। गंगा किनारे अनावश्यक प्रदूषण

रोकना उत्तराखंड के सतत टूरिज्म के नैतिक मूल्यों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह लोक कथा गंगा नदी को मां अर्थात जीवनदयानी मानती है। माँ का प्रतीक भावनात्मक रूप से मनुष्य–प्रकृति के संबंध को और मजबूत करता है। यह बताती है कि गंगा तट केवल धार्मिक कर्मकांड या मनोरंजन का तट नहीं। सच्ची श्रद्धा प्रकृति के प्रति जिम्मेदारी निभाने में है (पोरया एट अल., 2026)। लोक कथा, 'मेरी गंगा मेरे पास आएगी' पर्यटन, अध्यात्म और सुशासन को जोड़ती है। कथा एक सच्चे पर्यटक या यात्री को भी दर्शाती है। एक सच्चे पर्यटक में केवल उपभोग की भावना नहीं होती (बुदेनु, 2007)। वह पर्वतों की तरफ मात्र इसलिए नहीं आता क्योंकि वह अपने जीवन से भागना चाहता है। पहाड़ों पर आकर मनुष्य खुद को बहुत छोटा पता है। प्रकृति की शक्ति के सामने मनुष्य की समस्याएं खुद–ब–खुद ही छोटी लगने लगती हैं। यह कहानी उत्तराखंड के स्लो टूरिज्म के लिए विशेष महत्व रखती है। यह लोक कथा पर्यटन, समुदाय की भागीदारी और अतिथि का सम्मान प्रस्तुत करती है। यही कारण है कि आज उत्तराखंड की पर्यटन नीतियों में लोक कथाओं के प्रतीकों को स्थान देने की आवश्यकता है।

दूसरी लोक कथा का नाम है– 'पांच पकोड़े'। यह लोक कथा उत्तराखंड के ग्रामीण पर्यटन और पलायन पर लोकदृष्टि प्रस्तुत करती है (वर्मा और अन्य, 2024)। इस कहानी की शुरुआत उत्तराखंड के एक छोटे से गांव से होती है जहां मात्र छह परिवार रहते हैं। यहाँ परिवारों की संख्या उत्तराखंड के ग्रामीण जीवन की वास्तविकता दिखाती है, जहां पलायन आज भी एक बड़ी समस्या है (सिंह और अन्य, 2025)। पहली नजर में कहानी एक हास्यपूर्ण कथा प्रतीत हो सकती है, जिसमें दो वृद्ध मनुष्यों का प्रेम और त्याग दिखाया गया है। परंतु वृद्ध पति–पत्नी के आसपास का वातावरण और वहां रह रहे लोगों की दिनचर्या लोक कथाओं में पलायन के प्रतीकों के साक्षी हैं। यह लोक कथा उत्तराखंड के ग्राम जीवन और सामुदायिक संबंधों को बड़ी दिलचस्पी से पेश करती है। 'पांच पकोड़े' लोक कथा हमें ग्राम पर्यटन की अनेक संभावनाएं दिखती है। यहां वृद्ध पति–पत्नी कथा के मुख्य किरदार है। वही मुख्य किरदार जो शायद उनके खुद के बेटे–बहुएं पीछे छोड़ शहर चले गए हैं। इस कथा की प्रासंगिकता खाली होते गांव और उनके सांस्कृतिक संरक्षण मे है। वृद्ध दंपति का दिन आपसी बातचीत में ही गुजर जाता था। यह बातचीत या तो अपने बच्चों के बारे में होती या गांव वालों के बारे में। जब एक दिन ठंड बढ़ने लगी तो वृद्ध महिला को उसका पति पकोड़े बनाने के लिए कहता है। इस कथा में संख्या की खास भूमिका है। वृद्ध महिला केवल पांच पकौड़े बनाती है। इससे इस बात का भी पता चलता है कि संसाधन भी लोगों की तरह कम हैं। लोग और उनकी जरूरतें संख्या में गिनी जा सकती हैं। यह सस्टेनेबिलिटी का एक बेहतरीन उदाहरण है (पर्यटन और आजीविका स्थिरता, 2025)। पैर उतने ही पसारे जाते हैं जितनी चादर हो। वृद्ध व्यक्ति अपनी पत्नी से कहता है कि गांव की परंपरा का पालन करते हुए वह बनी हुई पकौड़ियां गांव के हर एक परिवार को भी दे। गांव में पांच ही परिवार थे और पकोड़े भी पांच ही थे। वृद्ध महिला असमंजस में पड़ जाती है, तब पति उसे याद दिलाता है कि भोला नाम के ग्रामीण ने जब गांव में आरसी नहीं बांटी तो गांव के लोगों को कितना बुरा लगा था। यह पहाड़ में रह रहे लोगों का आतिथ्य दिखाता है। गांव की परंपरा जैसे किसी भी नई चीज को आपस में बांटना इस बात का स्पष्टीकरण है कि कुछ परंपराएं और प्रथाएं आपस में मिलजुलकर और प्रेमभाव बनाए रखने के लिए गाई गई हैं (जाबुलिस एट अल., 2025)। क्योंकि यह कहानी हास्यपूर्ण तरीके से गाई जाती है इस कहानी में वृद्ध महिला पकोड़े गांव वालों को न देने का निर्णय लेकर आपस में ही बांटने को कहती है। परंतु यहां भी बांटने की दिक्कत आती है। दोनों वृद्ध पति–पत्नी में इतना प्रेम है कि कौन तीन पकोड़े खाएगा और कौन दो यह वह आपस में तय नहीं कर पाते। बार–बार कम संख्या का व्याख्यान और लोगों में प्रेमभाव आज की स्थिति में पलायन के कारण भूतहा गांव की ओर संकेत

करता है। ऐसे गांव जो निर्जन होते हैं और जहां मनुष्यों की अनुपस्थिति और सामुदायिक जीवन समाप्ति की ओर दिखाई देता है। यह कहानी ऐसे ही एक गांव का प्रतीक है। इसीलिए इस लोक कथा का आज ग्राम पर्यटन में विशेष महत्व है (कुमार और बेट्टाडा, 2022)। गृह–आवास योजना पर आधारित जो पर्यटन नीतियां आज उत्तराखंड में लागू की गई है वह इसी आतिथ्य और अपनी जड़ों से जुड़ने के महत्व को प्रकट करती हैं। पहाड़ को केवल खाली होता देखने के बजाय यह नीतियां इन लोक कथाओं से जुड़कर एक शक्तिशाली ग्राम पर्यटन प्रतीक बनाती हैं। कहानी में आगे दोनों वृद्ध पति–पत्नी यह तय करते हैं कि जो भी सो कर पहले उठेगा वही तीन पकौड़े खाएगा। परंतु उनमें इतना प्रेम है कि दोनों सुबह उठने को तैयार नहीं होते। जब गांव वाले यह देखते हैं कि हर दिन की तरह आज वह आपस में बातचीत नहीं कर रहे तो वह किवाड़ खोलकर घर के अंदर आ जाते हैं। यह दिखाता है कि गांव के हर एक व्यक्ति को दूसरे के लिए कितना प्रेम है। अंदर आकर जब वह उन्हें शांत पाते हैं तब वह सोचते हैं कि दोनों अब नहीं रहे। यह बातें सुनकर बूढ़ा आदमी उठाता है और कहता है चलो मैं ही तीन खा लूंगा तुम दो खा लेना। लोगों को लगता है कि वह अब भूत बन गए हैं और वह पकोड़े नहीं उन्हीं लोगों की बात कर रहे हैं। यह इस बात का संकेत है कि पहाड़ों पर जीवन कितनी जल्दी समाप्त हो सकता है। यह प्रश्न उठता है कि इस जीवन को जल्दी समाप्त होता देखने के बजाय यहां रह रहे लोगों को इसकी संस्कृति व स्मृतियों को संजोने व पुनर्जीवित करने का प्रयास करना चाहिए (हुआंग, 2025)। आज जब शहरों की थाकनभरी जिंदागी से भागकर लोग पहाड़ का जीवन अनुभव करने आते हैं तो वह अपनी आधुनिक और तेज गति वाली दिनचार्य से दूर थोड़ा धीमा होना चाहते हैं। इसीलिए पर्यटन नीतियों का उद्देश्य केवल पर्यटकों का सांस्कृतिक मनोरंजन करना नहीं अपितु उन्हें यहां के जीवन का अनुभव कराना होना चाहिए (क्लारिन एट अल., 2023)। गृह–आवास योजना इसी अनुभव के लिए बनाई गई है। जहां लोग स्लो टूरिज्म से स्थानीय गांव की आर्थिक मदद करते हैं और उसे सामाजिक लोकप्रियता का का अवसर देते हैं। यह एक सम्मानजनक आजीविका का स्रोत है। 'पांच पकोड़े' का शीर्षक एक व्यंजन के नाम पर है। लोक कथा में व्यंजन को आपस में बांटने की खास परंपरा इस बात को स्पष्ट करती है कि पहाड़ का जीवन सरल और प्रेमभाव से चलता है। भोजन बांटना और एक दूसरे को अधिक हिस्सा देने की चाहत रखना आज के स्वार्थी और सुख–सुविधाओं वाले जीवन के विपरीत है। पहाड़ में पर्यटक मानसिक शांति के लिए आते हैं (त्सौर एट अल., 2024)। उत्तराखंड का ग्रामीण पर्यटन लोकदृष्टि की नजर से इसी भावना को सुरक्षित और सुनिश्चित करता है। गांव में सभी पड़ोसियों का वृद्ध दंपति के घर आना और उनका हाल पूछना इस बात का भरोसा देता है कि पहाड़ में परिवार घर की चार दिवारी के बाहर भी है, जहाँ व्यक्ति को अकेला नहीं छोड़ा जाता। सुशासन में शामिल नैतिक मूल्य– सामुदायिक उत्तरदायित्व और जवाबदेही पलायन की समस्या और ग्रामीण पर्यटन जैसे समाधान की ओर इशारा करते हैं। कहानी का हास्यपूर्ण अंत है कि वृद्ध पति–पत्नी बाकी पांच परिवारों को पूरी कथा बताते हैं और सभी हंस कर अपने घर लौट जाते हैं। परंतु वह पांच पकोड़े कौन खाता है इसका उल्लेख कहानी नहीं करती। इस प्रकार के लेखन की यह कोशिश रहती है कि सुनने या पढ़ने वाला व्यक्ति स्वयं ही बंटवारे की संख्या को बंटने वाले लोगों में बराबर बांट दे। इस लोक कथा की आवश्यकता आज ग्राम विकास, ग्राम पुनर्जीवन और उत्तराखंड के गुड गवर्नेंस मॉडल में है।

तीसरी कथा है– रामी बहुरानी। यह कहानी सामुदायिक स्मृति और अपनी जड़ों से जुड़ने की लोक दृष्टि को प्रस्तुत करती है। प्रासंगिक संदर्भ में यह लोक भाषा, संस्कृति और स्मृतियों के संरक्षण के विषय में महत्वपूर्ण है। कहानी की शुरुआत एक बार फिर ष्बहुत पुरानी बात हैष् कहकर होती है। लोग न ही मुख्य किरदार के पिता का नाम जानते हैं, न ही उनके गाँव का, सिर्फ इतना जानते हैं कि वह एक सयाने

परिवार की वधू है। इस लोक कथा से यह मालूम होता है कि पहाड़ में रहने वाला सरल जीवन यहाँ रह रहे लोगों के लिए शायद इतना कठिन हो जाता है कि उन्हें शहर की सुख–सुविधाएं बुलाने लगती हैं (हॉफमैन एट अल, 2019)। इस कथा में भी रामी नाम की बहू जिस परिवार में आती है, उस परिवार में उसका पति कुछ ही दिनों में विदेश नौकरी ढूँढने के लिए चला जाता है और फिर 12 वर्ष तक उसका कोई पता नहीं रहता। वर्षों तक दूर रहने के बावजूद भी रामी का पति अपने गाँव को बहुत याद करता है। वह अपने परिवार को भी भूल नहीं पाता, परंतु अच्छी नौकरी की तलाश में वह घर नहीं लौट पाता है। रामी उसे जब विदेश जाने से रोकती है, तो उसका पति कहता है– सभी के पति जाते हैं, बादलों के साथ लौट आऊँगा। इससे यह दिखाई पड़ता है कि पहाड़ में घर के लड़कों का नौकरी की खोज में बाहर चले जाना पुराने समय से ही पलायन की समस्या को दिखाता है (कुमार और अन्य, 2025)। यह लोक कथा उत्तराखंड पर्यटन में सांस्कृतिक संरक्षण के नजरिए से महत्वपूर्ण है। गाँव के पहाड़, खेत और रास्ते रामी के पति को बार–बार घर खींचते हैं और अंततः 12 वर्ष बाद वह लौट आता है। लोक कथा में रामी के पति का वापस आना उत्तराखंड में रह रहे लोगों का विदेश जाकर अपनी जड़ों से जुड़ने का प्रयास दिखाता है। वापसी इस कथा का मर्म है। यह वापसी स्मृतियों की है, अपने मूल स्थान की है। उत्तराखंड में रह रहे लोग, जो किसी कारणवश बाहर बस गए, उनके लिए उनका मूल स्थान केवल एक घर नहीं परंतु उनकी पहचान भी है (कुमार और अन्य, 2025)। इसी पहचान को उत्तराखंड में पर्यटन का रूप देना इस पहचान का प्रचार है। इस तरह के प्रचार से जब बाहर बसा व्यक्ति, चाहे वह उत्तराखंड का रहने वाला हो या कोई पर्यटक, सभी पहाड़ों की तरफ खिंचे चले आते हैं। यह वापसी सिर्फ किसी घर की तरफ नहीं है, यह वापसी भारत की श्योग कैपिटलश या श्स्पिरिचुअल स्टेटश की तरफ इशारा करती है। सभी मनुष्य देश–विदेश से धार्मिक स्थलों, आश्रमों और योग की तरफ वापसी करते हुए दिखाई देते हैं। यह उत्तराखंड के आध्यात्मिक पर्यटन की ओर संकेत करता है। कथा में 12 वर्ष बाद रामी का पति घर जाने में कुछ सकुचाता है, तो वह साधु के रूप में लौटने का फैसला लेता है। रचनात्मकता योग की तलाश दिखती है। यह योग केवल किसी धार्मिक स्थल से जुड़ा हुआ नहीं है, यह आंतरिक शक्ति की खोज भी है। यह लोक कथा हमें यह भी दिखाती है कि उत्तराखंड में जब घरों से आदमी नौकरी की तलाश में विदेश जाते थे, तो पीछे रहकर महिलाएँ घर, खेत, बच्चे, परिवार–सभी का पालन–पोषण करती थीं (भंडारी और रेड्डी, 2015)। उत्तराखंड में महिलाओं की भूमिका स्थानीय उद्यमिता और सांस्कृतिक संरक्षण में बहुत महत्वपूर्ण है। वह होमस्टे योजना की वाहक के रूप में देखी जा सकती है। 12 वर्ष बाद जब रामी का पति साधु के भेष में लौटता है, तो उसे घर पर ठहरकर भोजन और विश्राम देना उत्तराखंड की आज की पर्यटन नीति को दर्शाता है (लखेरा और अन्य, 2025)। श्अतिथि देवो भवश जैसी लोकोक्ति इन्हीं लोक कथाओं से निकलती प्रतीत होती है। अंग्रेजी में इस वापसी को पहाड़ी नॉस्टैल्जिया के रूप में भी पढ़ा जा सकता है। आज की पर्यटन नीतियों को महिलाओं की भागीदारी की बहुत जरूरत है। उससे अधिक हमें यह भी समझना होगा कि लोक कथाएँ हमें यह संदेश देती हैं कि स्थानीय भागीदारी, विशेषकर युवाओं की कितनी जरूरत है। साधु के भेष में रामी के पति का लौटना और फिर उसे 12 साल न आ पाने का संदर्भ देना तथा फौजी का जिक्र दिखाता है कि उत्तराखंड में सैनिक सेवा से खास लगाव है। कहानी का अंत सुखद है जहाँ रामी का पति कभी बाहर न जाने का निर्णय लेता है और कहता है वह अब वहीं रहेगा जिससे उसे बहुत प्रेम है। ये रामी और पहाड़ की तरफ इशारा करते हैं। यह लोक कथा हमें उत्तराखंड की पर्यटन नीतियों में भावनात्मक और सांस्कृतिक संबंधों की पहचान की तरफ मार्गदर्शित करती है। इसीलिए पर्यटकों को उत्तराखंड बुलाने के प्रचार–प्रसार में केवल उन्हें पहाड़ बुलाने के बजाय, उन्हें पहाड़ से जोड़ने के प्रतीकों को महत्व देने की आवश्यकता है। यह लोक कथा हमें सांस्कृतिक वापसी और प्रतीक्षा की लोकदृष्टि देती है।

अनुशंसाएँ और आगे की दिशा

लोककथाओं को सुशासन और सतत पर्यटन के व्यावहारिक मॉडल में बदलना कोई सरल कार्य नहीं है। इसके मार्ग में कई चुनौतियां हैं– पहली, लोककथाओं का कोई एक निश्चित स्वरूप नहीं होता, क्षेत्रीय विविधताओं के कारण नीति निर्माण के लिए एक मानक तय करना कठिन हो जाता है। दूसरी, हर प्राचीन परंपरा न्यायपूर्ण नहीं होती, कुछ रीतियां सामाजिक असमानता को भी जीवित रख सकती हैं, इसलिए केवल पुराना होने के आधार पर किसी भी परंपरा को सही नहीं माना जा सकता। तीसरी चुनौती व्यावसायीकरण की है, जहाँ पर्यटन के दबाव में लोककथाओं का मूल सार खोने का डर रहता है– यही चेतावनी यूनेस्को ने भी दी है। लोक को बचाने के अलावा, हमें उससे सीखने की आवश्यकता है। जब लोकस्मृति, विज्ञान, तकनीक और नीति मिलकर काम करेंगे, तब उत्तराखंड का विकास अधिक स्थानीय, मानवीय और टिकाऊ बन पाएगा। हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि सरकार संस्कृति का ध्यान रखें, समुदायों को नीति निर्माण में शामिल करें, विज्ञान ज्ञान की खोज करे, और तकनीक इस ज्ञान को आगे बढ़ाने का माध्यम बने। तभी लोककथाएँ वास्तव में उत्तराखंड के सतत और सहभागी विकास का अभिन्न हिस्सा बन सकेंगी। एक नया दृष्टिकोण यह है कि लोककथा केवल संग्रहित करने की वस्तु नहीं होनी चाहिए, बल्कि इसे नीति के संदर्भ में शामिल किया जाना चाहिए। यदि किसी कहानी में जल संरक्षण का संदेश है, तो उसे जल नीति के प्रचार में इस्तेमाल किया जा सकता है। इसी तरह, यदि किसी परंपरा में सामूहिक जिम्मेदारी का भाव है, तो उसे सामुदायिक पर्यटन के विकास में समाहित किया जा सकता है। इस प्रकार, संस्कृति केवल अतीत की धरोहर नहीं रह जाएगी।

संदर्भ सूची

एल्किन, सी., रतन, एस., देवी, एस., एवं त्यागराजन, जी. (2018)। भारतीय संरक्षित क्षेत्रों में पवित्र स्थलों की धार्मिक तीर्थयात्रा का प्रबंधन। बी. वर्शूरेन एवं एस. ब्राउन (संपादक), *संरक्षित क्षेत्रों में प्रकृति का सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक महत्वरू शासन, प्रबंधन और नीति* (पृ. 208–221)।

एंथवाल, ए., गुप्ता, एन., शर्मा, ए., एंथवाल, एस., एवं किम, के.–एच. (2010)। उत्तराखंड हिमालय, भारत के पवित्र उपवनों में पारंपरिक मान्यताओं के माध्यम से जैव–विविधता का संरक्षण। *रिसोर्सेज, कंजर्वेशन एंड रीसाइक्लिंग, 54*(11), 962–971।

भंडारी, जी., एवं रेड्डी, बी. वी. सी. (2015)। उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में कृषि और महिलाओं के कार्यभार पर बाह्य–पलायन का प्रभावरू एक आर्थिक विश्लेषण। *इंडियन जर्नल ऑफ एग्रीकल्चरल इकोनॉमिक्स, 70*(3), 395–404।

बुदेआनु, ए. (2007)। सतत पर्यटक व्यवहाररू परिवर्तन के अवसरों पर एक विमर्श। *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कंज्यूमर स्टडीज, 31*(5), 499–508।

पश्चिमी हिमालय, भारत में चार धाम के लिए सतत पर्यटन प्रथाओं हेतु वहन क्षमता और रणनीतिक नियोजन। (2025)। *साइंटिफिक रिपोर्ट्स।*

चौहान, डी. एस. (2023)। उत्तराखंड में सांस्कृतिक विरासत और पर्यटनरू विकास, चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ। *क्वेस्टरू द जर्नल ऑफ यूजीसी–एचआरडीसी नैनीताल, 17*(1–3), 61–70।

चटक, जी. (1956) गदवाली लोकगीत। जुगल किशोर एंड कंपनी।

क्लारिन, ए., पार्क, ई., श्याओ, क्यू., एवं किम, एस. (2023)। क्या अब हमारे यात्रा करने के तरीके को बदलने का समय आ गया है? धीमे पर्यटन और यात्रा अनुसंधान के लिए एक वैचारिक रूपरेखा। *टूरिज्म मैनेजमेंट पर्सपेक्टिव्स, 46*, 101–100।

कुमार, एन., एवं बेट्टाडा, एम. एन. (2022)। उत्तराखंड के गढ़वाल क्षेत्र में सतत पारिस्थितिकी–पर्यटन प्रथाएँ और सामुदायिक विकास। *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ फूड एंड न्यूट्रिशनल साइंसेज, 11*(10), 5401–5409।

कुमार, एस., रॉय, सी., सती, वी. पी., पांडे, के., सरकार, टी., एवं सिंह, आर. (2025)। भारतीय हिमालयी क्षेत्र में बाह्य–पलायनरू सतत पर्वतीय विकास के लिए प्रेरक कारक, स्वरूप और नीतिगत निहितार्थ। *डिस्कवर सस्टेनेबिलिटी, 6*, 1381।

ली, जी., अब्द हलीम, एन., एवं लियू, एम. (2026)। सामुदायिक भागीदारी से उत्तरदायी शासन तकरू सांस्कृतिक विरासत पर्यटन में एक व्यवस्थित साहित्य समीक्षा। *जर्नल ऑफ नुसंतारा स्टडीज, 11*(2), 209–227।

लखेड़ा, के., कुमार, एस., एवं त्रिपाठी, आर. (2025)। हिमालयी राज्य उत्तराखंड, भारत में ग्रामीण आर्थिक विकास हेतु होमस्टे संबंधी सरकारी दिशानिर्देशों का विश्लेषण। *डिस्कवर सस्टेनेबिलिटी, 6,* 956।

ला पोबला दे सेगुर, स्पेन के लकड़ी–नाविकों के संदर्भ में सतत ग्रामीण पर्यटन के विकास हेतु अमूर्त विरासत का सहभागी शासन। (2023)। *जर्नल ऑफ हेरिटेज टूरिज्म, 18*(5)।

पोरिया, ए., चौधरी, एन., एवं अहिरवार, बी. (2026)। कल्याण पर्यटन में स्थान और कल्याण का संबंधरू उत्तराखंड, भारत के योग रिट्रीट केंद्रों से पर्यावरणीय, सांस्कृतिक और अनुभवात्मक अंतर्दृष्टियाँ। *टूरिज्म रिक्रिएशन रिसर्च।*

राउथ, आर., भावसार, डी., एवं पांड्या, पी. (2025)। भारतीय सांस्कृतिक विरासत में सहभागी शासन की खोजरू धारणाएँ, प्रथाएँ और चुनौतियाँ। *बिल्ट हेरिटेज, 9,* अनुच्छेद 55।

शालाएवा, एन. वी., एवं लोबाचेवा, जी. वी. (2021)। लोककथाओं में सत्ता का आद्यरूपरू रूसी तथा मोल्दोवन–रोमानियाई लोक कथाएँ। *यूरोपियन प्रोसीडिंग्स ऑफ सोशल एंड बिहेवियरल साइंसेज।*

सीकाला, ए.–एल. (2006)। लोककथा प्रदर्शन और अपनत्व की भावना। *एफएफ नेटवर्क, 31,* 2।

गढ़वाल हिमालय में पर्यटन और आजीविका की स्थिरता। (2025)। *डिस्कवर सस्टेनेबिलिटी।*

त्सौर, एस.–एच., येन, सी.–एच., एवं वांग, जे.–टी. (2024)। पर्वतीय पर्यटकों में सचेतनता और मनोवैज्ञानिक कल्याणरू आध्यात्मिकता और विस्मय के क्रमिक मध्यस्थ प्रभाव। *जर्नल ऑफ हॉस्पिटैलिटी एंड टूरिज्म मैनेजमेंट, 60*, 105–115।

वर्मा, के., रावत, ए., धोड़ी, आर. के., एवं धोड़ी, आर. (2024)। सतत पर्यटन विकास में सामुदायिक भागीदारीरू उत्तराखंड के गढ़वाल हिमालय में एमओए मॉडल का अनुप्रयोग। *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ टूरिज्म पॉलिसी, 14*(6), 545–561।

विवियर, ई. (2023)। सहभागी शासन और संलग्न होने की क्षमतारू एक प्रणालीगत दृष्टिकोण। *पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एंड डेवलपमेंट, 43*(3), 220–231।

झू, वाई., एवं मा, एक्स. (2025)। अमूर्त विरासत के माध्यम से संस्कृति का शासनरू समकालीन चीन में लोककथाओं का पुनर्संयोजन। *वेस्टर्न फोकलोर, 84*(4), 481–496।

जाबुलिस, एक्स., पार्टाराकिस, एन., जिडियानाकिस, ई., एवं कपलानिडी, डी. (2025)। सामाजिक प्रत्यास्थता और सामंजस्य के प्रेरक के रूप में अमूर्त सांस्कृतिक विरासत की भूमिका की आलोचनात्मक समीक्षा। *एन्साइक्लोपीडिया, 5*(4), 189।

उत्तराखण्ड में मानसिक स्वास्थ्य एवं कल्याण : स्थिति, चुनौती एवं समाधान

[1]डॉ.सीता, असिस्टेंट प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी
[2]निधि चन्द्रा, शोधार्थी, मनोविज्ञान विभाग, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
[3]जीवन चन्द्र परगाँई, शोधार्थी, लोक प्रशासन विभाग, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी

परिचय:

देवभूमि उत्तराखंड के बारे में विचार करते हुए अंतर्मन में सबसे पहले यही छवि उभरती है कि वह हिमालय, देवदार के वृक्ष, नदियाँ, घाटियाँ और शांत वातावरण युक्त हिमालयी राज्य है। यह विचार इतना गहरा होता है कि अक्सर हम यह मान बैठते हैं कि जहाँ प्रकृति से इतनी निकटता हो, वहाँ मानसिक शान्ति स्वाभाविक है। किंतु किसी प्रदेश का नैसर्गिक सौंदर्य उसके निवासियों के मानसिक स्वास्थ्य का प्रमाण हो यह संभव नहीं। पहाड़ों की चुप्पी हमेशा शांति नहीं होती; कभी-कभी उसमें समस्याएँ और अकेलापन भी छिपा होता है। उत्तराखंड में मानसिक स्वास्थ्य का प्रश्न इसी विरोधाभास की ओर प्रश्नचिह्न इंगित करता है कि जहां एक ओर प्रकृति, सामुदायिक जीवन और सांस्कृतिक जुड़ाव जैसी अनेक सकारात्मक वस्तुएँ हैं; वहीं दूसरी ओर भौगोलिक दुर्गमता, रोजगार के सीमित अवसर, परिवारों का बिखराव, युवाओं का पलायन, शिक्षा और प्रतियोगी परीक्षाओं का दबाव, आर्थिक असुरक्षा, नशे से जुड़ी समस्याएँ तथा मानसिक स्वास्थ्य के प्रति सामाजिक संकोच जैसी परिस्थितियाँ भी हैं। भौगोलिक दृष्टि से उत्तराखंड के मैदानी और पर्वतीय क्षेत्रों में पारिस्थितिकीय विभिन्नताएं हैं। देहरादून, हरिद्वार और हल्द्वानी जैसे अपेक्षाकृत शहरी क्षेत्रों में मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े प्रश्न शिक्षा, रोजगार, प्रतिस्पर्धा, संबंधों और बदलती जीवनशैली के साथ उभरते हैं, जबकि दूरस्थ पर्वतीय क्षेत्रों में किसी मानसिक विकार विशेषज्ञ तक पहुँचने के लिए भौगोलिक दूरी ही एक बड़ी बाधा बन जाती है। इसलिए उत्तराखंड के मानसिक स्वास्थ्य को समझना मानसिक विकारों से पीडितों की संख्या दर्ज करने का प्रश्न मात्र नहीं है बल्कि इस विषय को समझना अतिआवश्यक है कि यहां के निवासी किस सामाजिक और भौगोलिक परिस्थितियों में जीवन-यापन कर रहे हैं और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें सहायता कितने संघर्षों से उपलब्ध हो पाती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन मानसिक

स्वास्थ्य को ऐसी मानसिक कुशलता की अवस्था के रूप में इंगित करता है जिसमें व्यक्ति जीवन के सामान्य तनावों से सामना कर सके, अपनी क्षमताओं का उपयोग कर सके, सीख और काम कर सके तथा समुदाय में अपना योगदान सुनिश्चित कर सके। इस दृष्टि से मानसिक स्वास्थ्य केवल मानसिक रोग की अनुपस्थिति नहीं, बल्कि व्यक्ति के समग्र जीवन का एक आवश्यक आधार है। (World Health Organization [WHO], 2025) ।

यही दृष्टिकोण उत्तराखंड के संदर्भ में भी महत्वपूर्ण है। यहां मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ केवल यह नहीं कि किसी व्यक्ति को कोई मानसिक विकार नहीं है। इसका व्यापक अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में सुरक्षा, संबंध, उद्देश्य, सम्मान, सामाजिक जुड़ाव और आवश्यकता पड़ने पर सहायता प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हो।

भारत एवं उत्तराखण्ड में मानसिक स्वास्थ्य की स्थिति

भारत में मानसिक स्वास्थ्य की स्थिति समझने के लिए उपलब्ध सबसे महत्वपूर्ण राष्ट्रीय अध्ययनों में प्रकाशित राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण, 2015-16 का विशेष स्थान है। लेकिन किसी राज्य की मानसिक स्वास्थ्य स्थिति समझने के लिए केवल राष्ट्रीय औसत पर्याप्त नहीं होता। राज्य की भौगोलिक बनावट, जनसंख्या का वितरण, ग्रामीण और शहरी जीवन, आर्थिक परिस्थितियाँ, स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता तथा सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यताएँ मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं। इसलिए उत्तराखंड के लिए राज्य-विशिष्ट और समय-समय पर दोहराए जाने वाले व्यापक सर्वेक्षण की आवश्यकता स्पष्ट दिखाई देती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार एक लाख की आबादी पर न्यूनतम तीन मनोचिकित्सक होने चाहिए। राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण 2015-16 की रिपोर्ट के अनुसार देश में प्रति लाख की आबादी पर मात्र 0.75 मनोचिकित्सक उपलब्ध है। जनगणना 2011 के आंकड़ो में उत्तराखंड की कुल जनसांख्या 10,086,292 है। आगामी जनगणना में यह आंकडा डेढ़ करोड़ के करीब होने की संभावना है। इस लिहाज से विश्व स्वास्थ्य संगठन की निर्देशिका के अनुसार उत्तराखंड में न्यूनतम 450 मनोचिकित्सकों की आवश्यकता पड़ेगी। किंतु वर्ष 2024 तक राज्य में राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम के तहत मात्र 52 मनोचिकित्सक ही मानसिक स्वास्थ्य की दिशा में सेवाएं दे रहे थे एवं वर्तमान में भी यहां मनोचिकित्सकों की संख्या डब्ल्यूएचओ के मानकानुसार कम है। राज्य में मनोचिकित्सकों, नैदानिक मनोवैज्ञानिकों और मानसिक स्वास्थ्य परामर्शदाताओं की भारी कमी है। मानसिक रोग विशेषज्ञों की उपलब्धता अधिकांश देहरादून, हल्द्वानी या ऋषिकेश जैसे मैदानी शहरों तक सीमित हैं। राज्य में

मानसिक स्वास्थ्य को समर्पित देहरादून के सेलाकुई में स्थित मानसिक स्वास्थ्य संस्थान जैसे गिने-चुने संस्थान ही हैं। जिला स्तर के अस्पतालों में प्रायः मनोचिकित्सा वार्ड या तो नाममात्र के हैं या गैर-कार्यात्मक हैं। पहाड़ी समुदायों में मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं को विकार न मानकर ऊपरी हवा, देवी-देवताओं का प्रकोप या भूत-प्रेत का साया माना जाता है। मनोचिकित्सकीय उपचार के स्थान पर पीड़ित को झाड़-फूंक, अवैज्ञानिक एवं पारंपरिक अस्वस्थ प्रथाओं का सहारा लेकर ठीक करने का प्रयास किया जाता है। समाज में मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्ति को हेय दृष्टि से देखा जाता है, जिससे लोग अपनी समस्याओं को छुपाते हैं और समय पर इलाज करान से बचते हैं।

मानसिक स्वास्थ्य की दिशा में उत्तराखण्ड की पहल

राज्य मानसिक स्वास्थ्य प्राधिकरण - मानसिक स्वास्थ्य को गंभीरतापूर्वक लेते हुए उत्तराखण्ड राज्य ने महत्वपूर्ण निर्णय लिए हैं। राज्य में मानसिक स्वास्थ्य देखरेख अधिनियम, 2017 के तहत राज्य मानसिक स्वास्थ्य प्राधिकरण की स्थापना की गई। जिसमें राज्यपाल द्वारा एक अध्यक्ष एवं 15 सदस्यों की नियुक्त का प्रावधान है। यह प्राधिकरण मानसिक स्वास्थ्य की दिशा में सरकार के थिंक टैंक के रूप में कार्य करता है एवं मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए किए गए समस्त कृत्यों की वार्षिक रिपोर्ट तैयार कर सरकार को सौंपता है।

मानसिक स्वास्थ्य पुनर्विलोकन बोर्ड - वर्ष 2021 में मानसिक चिकित्सा को सुलभ एवं सहज बनाने की दृष्टि से राज्यपाल द्वारा हरिद्वार, देहरादून, रुद्रपुर, न्यू टिहरी, श्रीनगर, नैनीताल एवं पिथौरागढ़ में राज्य के समस्त जनपदों के लिए कुल सात मानसिक स्वास्थ्य पुनर्विलोकन बोर्ड स्थापित किए गए। इन बोर्ड्स के माध्यम से जनपद स्तर पर मानसिक स्वास्थ्य की उपलब्धता को सुनिश्चित किया जा सका।

जिला मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम- जनपद स्तर पर मानसिक स्वास्थ्य चिकित्सा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से जिला मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम के तहत वर्ष 2017 में देहरादून में एवं 2018 मे हरिद्वार व ऊधम सिंह नगर मनोचिकित्सकीय सुविधा सुनिश्चित की गई। इसके बाद अन्य जनपदों में भी इसे लागू किया गया। इन कार्यक्रम के माध्यम से जिला अस्पतालों में मानसिक स्वास्थ्य परामर्श सेवाओं के साथ प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों, सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों के चिकित्सकों, ए.एन.एम., आशा वर्कर्स को मानसिक बीमारियों की पहचान करने हेतु बुनियादी प्रशिक्षण दिया जाता है।

टेली-मानस मानसिक स्वास्थ्य हेल्पलाइन सेवा- उत्तराखंड का एक अधिकतम भाग पर्वतीय जनपदों से निर्मित है, यहां मैदानी जनपदों की तुलना में स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच अल्प है। अत: राज्य के पर्वतीय क्षेत्रों में दूरभाष और डिजिटल माध्यमों से मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच बढ़ाने की अपार संभावनाएं हैं। भारत सरकार की 'टेली मानस' सेवा इस दिशा में एक राष्ट्र स्तरीय प्रयास है। केंद्र सरकार की ओर से मानसिक स्वास्थ्य के लिए ऑनलाइन परामर्श की यह सेवा वर्ष 2022 में विश्वास मानसिक स्वास्थ्य दिवस के अवसर पर 10 अक्टूबर से प्रारंभ की गई। उत्तराखंड में भी इस पहल के माध्यम से मानसिक स्वास्थ्य सहायता प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त हुआ है। यह पहल विशेष रूप से उन लोगों के लिए उपयोगी साबित हुई है जिनके लिए मानसिक रोग विशेषज्ञ तक प्रत्यक्ष पहुँच कठिन है। हालाँकि दूरभाष आधारित सहायता को विशेषज्ञ उपचार का पूर्ण विकल्प नहीं माना जा सकता। गंभीर मानसिक स्वास्थ्य स्थितियों, औषधीय उपचार की आवश्यकता, आत्महत्या के जोखिम या लंबे समय तक पुनर्वास की आवश्यकता वाले मामलों में प्रत्यक्ष चिकित्सा एवं मनोवैज्ञानिक सेवाओं से जुड़ना आवश्यक रहता है। इसलिए उत्तराखंड के लिए दूरभाष आधारित सेवा का सबसे उपयोगी रूप वह होगा जिसमें प्रारंभिक सहायता के बाद आवश्यकता के अनुसार व्यक्ति को निकटतम उपयुक्त स्वास्थ्य केंद्र या विशेषज्ञ से जोड़ा जाए। दूसरे शब्दों में, तकनीक को गंतव्य नहीं, सेतु बनाया जाना चाहिए।

उत्तराखंड में मानसिक स्वास्थ्य की बदलती तस्वीर

सरकार के प्रयासों एवं जनसहभागिता से राज्य में मानसिक स्वास्थ्य के बारे में समझ सतत् रूप से बढ़ रही है। पहले मन से जुड़ी कठिनाइयों को अक्सर व्यक्तिगत कमजोरी, इच्छाशक्ति की कमी, पारिवारिक समस्या या चरित्र का दोष मान लिया जाता था लेकिन आज अवसाद, चिंता, घबराहट, आघात और परामर्श जैसे शब्द सार्वजनिक बातचीत का हिस्सा बन रहे हैं। फिर भी कहीं न कहीं जागरूकता और सहायता प्राप्त करने के बीच पर्याप्त दूरी बनी हुई है। उत्तराखंड में किए गए एक महत्वपूर्ण सामुदायिक अध्ययन ने इस दूरी को बहुत स्पष्ट रूप से सामने रखा। Mathias et al. (2015) ने देहरादून जिले के रायपुर और सहसपुर विकासखंडों में 960 वयस्कों का अध्ययन किया। अध्ययन में अवसाद की व्यापकता लगभग 6 प्रतिशत पाई गई और अध्ययन में शामिल अवसादग्रस्त व्यक्तियों में बड़ी संख्या ने सामान्य चिकित्सकीय सहायता प्राप्त की थी, लेकिन किसी ने भी बातचीत-आधारित मनोवैज्ञानिक उपचार नहीं लिया था और

केवल 3.3 प्रतिशत को अवसादरोधी औषधि प्राप्त हुई थी। यह स्थिति मानसिक स्वास्थ्य समस्या की पहचान और उपयुक्त मानसिक स्वास्थ्य उपचार के बीच मौजूद दूरी को दर्शाती है (Mathias et al., 2015). इस अध्ययन से ऐसी वास्तविकता सामने आती है कि कैसे कई लोग सहायता लेने के लिए स्वास्थ्य व्यवस्था तक पहुँचते हैं, लेकिन वहाँ पहुँचकर भी मानसिक स्वास्थ्य की उपयुक्त सेवा तक नहीं पहुँच पाते। यदि एक व्यक्ति लगातार उदास रहता है, नींद न आने या बेचैनी की शिकायत रखता है तो वह इसको मानसिक स्थिति की पहचान से नहीं जोड़ पाता है वह चिकित्सक के पास पहुंचकर बार-बार शारीरिक लक्षणों का उपचार कराता रहता है। दूसरी ओर, यदि परिवार मानसिक स्वास्थ्य को अभी भी "मन का मामला" समझकर टाल देता है, तो समस्या और गहरी हो जाति है। इसलिए मानसिक स्वास्थ्य की चुनौती केवल विशेषज्ञों की कमी नहीं है। चुनौती यह भी है कि किसी व्यक्ति की परेशानी को समय रहते पहचाना जाए और उसे सही सहायता तक पहुँचाया जाए।

वर्ष 2025 में मानसिक स्वास्थ्य की प्रगति पर बच्चों एवं किशोरों पर हुआ एक अन्य अध्ययन उत्तराखंड में इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट अध्ययन है। इस अध्ययन ने राज्य में बच्चों और किशोरों की मानसिक तथा विकासात्मक स्थितियों को समझने का प्रयास किया और चार जिलों (देहरादून, पौड़ी गढ़वाल, अल्मोड़ा और नैनीताल) में 802 प्रतिभागियों का अध्ययन किया। अध्ययन के आधार पर राज्य में विभिन्न मानसिक एवं विकासात्मक स्थितियों से प्रभावित बच्चों और किशोरों की संख्या का अनुमान लगभग 35,746 लगाया गया। इनमें बौद्धिक अक्षमता, विशिष्ट अधिगम अक्षमता, चिंता और अवसाद जैसी स्थितियाँ प्रमुख थीं (State Mental Health Authority, Uttarakhand et al., 2025)। इन आँकड़ों को पढ़ते समय एक बात स्पष्ट रखना आवश्यक है ये अनुमानित आँकड़े हैं, प्रत्येक बच्चे का व्यक्तिगत चिकित्सकीय निदान नहीं। फिर भी ये राज्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण संकेतक हैं क्योंकि वे बताते हैं कि बाल एवं किशोर मानसिक स्वास्थ्य को शिक्षा और स्वास्थ्य व्यवस्था से अलग करके नहीं देखा जा सकता। इस अध्ययन की एक और महत्वपूर्ण बात सामने आई कि बड़ी संख्या में प्रतिभागियों ने अवसाद के बारे में सुना था, लेकिन सरकारी सहायता योजनाओं तथा दिव्यांगता से संबंधित सुविधाओं की जानकारी बहुत सीमित थी (State Mental Health Authority, Uttarakhand et al., 2025)। यहाँ एक महत्वपूर्ण अंतर दिखाई देता है कि समस्या के नाम से परिचित होना और समाधान तक पहुँचना दो अलग बातें हैं। एक अभिभावक यह जान सकता है कि बच्चे को अधिगम संबंधी कठिनाई है, लेकिन उसे यह पता न हो कि आगे किस विशेषज्ञ से मिलना है। शिक्षक बच्चे के

व्यवहार या शैक्षिक प्रदर्शन में असामान्यता देख सकता है, लेकिन उसके पास उचित संदर्भण की पर्याप्त व्यवस्था नहीं होती। परिवार मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी सरकारी सुविधा से परिचित तो होता है किंतु हितधारक के रूप में उसका लाभ लेने के लिए उपचार की प्रक्रिया से परिचित नहीं होता। अतः जागरूकता अभियान की सार्थकता मनोविकार से पीड़ित को मानसिक स्वास्थ्य सेवा पहुँचानें के लिए आवश्यक है।

उत्तराखंड में मानसिक स्वास्थ्य के लिए चुनौतियां

मनोचिकितसक एवं मानसिक रोग विशेषज्ञों की कमी - राज्य निर्माण के बाद से ही पर्वतीय क्षेत्रों में बेहतर स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध कराना सरकार के लिए चुनौतीपूर्ण रहा है। हालांकि, बीते कुछ वर्षों में सरकार के अथक प्रयासों से इस दिशा में कई कीर्तिमान स्थापित हुए हैं। 'प्रोजेक्ट संजीवनी' के तहत 'हेली एंबुलेंस सेवा' की शुरुआत इसका हालिया उदाहरण है जोकि देश की उत्तराखंड ही नहीं बल्कि देश की पहली हवाई सेवा है। एम्स ऋषिकेश से शुरु हुई यह सेवा आपातकाल एवं प्रसव स्वास्थ्य के लिए संकटमोचन के रूप में उभर रही है। किंतु मानसिक स्वास्थ्य की दिशा में अभी भी तमाम चुनौतियां हैं। मानसिक विकार विशेषज्ञों का अभाव, पर्वतीय क्षेत्रों में सेवा देने की अनिच्छा, एवं महानगरों में निजी एवं स्वतंत्र रूप से मनोचिकित्सक के रूप में प्रैक्टिस से यश एवं अधिक धनार्जन की आकांक्षा राज्य के पर्वतीय अंचलों में मानसिक स्वास्थ्य के लिए बाधक बन रही है।

मानसिक चिकित्सा उपचार तक पहुंच का अभाव- राज्य में मनसिक स्वास्थ्य की दिशा में विशेषज्ञों की कमी होने के अतिरिक्त महत्वपूर्ण चुनौती मानसिक विकार से पीड़ित की मनोचिकित्सक तक पहुंच का अभाव है, अत: यह कहना कि राज्य में मनोचिकित्सक की कमी है तर्कसंगत तो है किंतु अधूरा है। यदि दूरस्थ पर्वतीय क्षेत्र में रहने वाले किसी व्यक्ति को मानसिक विकार की स्थिति में मनोवैज्ञानिक या मनोचिकित्सक से मिलने की आवश्यकता है एवं उसकी उपलब्धता केवल जिला मुख्यालय में स्थित जिला अस्पताल में ही है, तो वहाँ तक पहुँचने के लिए उसे कई मील की यात्रा करनी पड़ सकती है, जिसमें यात्रा का खर्च, काम से छुट्टी, परिवार के किसी सदस्य का साथ जाना और उपचार प्रक्रिया में कई बार दोहराव इत्यादि सभी कारक मानसिक स्वास्थ्य सेवा प्राप्त करने की वास्तविक लागत के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। अत: उत्तराखंड की भौगोलिक स्थिति एवं तहसीलदार, ग्राम सतर पर मनोचिकित्सक की अनुपलब्धता मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने में बड़ी चुनौती है।

मानसिक स्वास्थ्य उपचार के लिए बुनियादी ढांचे की कमी- मनोचिकित्सका के क्षेत्र में उत्तराखण्ड में बुनियादी ढांचा एवं प्रशिक्षित मानव संसाधन की भारी कमी है। प्राथमिक एवं द्वितीयक स्तर के चिकित्सालयों में अक्सर मनोचिकित्सक अथवा मनोवैज्ञानिक का अभाव दिखता है। जिसमे इस दिशा में मानकीय उपचार के अलावा समुदाय झाड़-फूक जैसे अवैज्ञानिक उपचार की ओर रुख करते हैं। जो न केवल मानसिक स्वास्थ्य के लिए घातक होता है बल्कि आर्थिक एवं सामाजिक ह्रास को भी बढ़ावा देता है। उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में कथित तौर पर ऐसी मान्यताएं होने के कारण मानसिक विकार को नजरअंदाज किया जाता है। इस ओर तहसील एवं ग्राम स्तर पर बुनियादी ढांचा स्थापित न होना मानसिक स्वास्थ्य की दिशा में राज्य सरकार के प्रयासों को भी प्रभावित करता है।

मानसिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता का अभाव- वर्ष 2026 की प्रथम छमाही में उत्तराखण्ड को 'पूर्ण साक्षर राज्य' होने का गौरव प्राप्त हुआ है। अर्थात राज्य के ग्रामीण अंचल में भी प्रत्येक व्यक्ति साक्षर है एवं अपने चारों ओर समस्या को समझ सकता है। किंतु वर्तमान में मानसिक स्वास्थ्य के लिहाज से साक्षर व्यक्तियों में भी जागरूकता का गहरा अभाव है। इसके प्रति जागरूकता फैलाने के लिए वर्तमान किए जा रहे प्रयास नाकाफी प्रतीत होते हैं। जागरूकता की कमी के कारण मानसिक विकार से पीड़ित व्यक्ति में शारीरिक विकार उत्पन्न होना का खतर भी बना रहता है। बच्चों एवं किशोरों को मानसिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूक करने के लिए विद्यालय प्रबंधन कमेटी, गैर सरकारी संगठनों के प्रयास सराहनीय हैं, किंतु घरेलु महिला, दैनिक मजदूर, समेत अन्य वयस्कों में मानसिक विकारों के प्रति जागरूक करने वाले सार्थक माध्यम का अभाव है। जिसके परिणामस्वरूप गृह-कलेश, मादक पदार्थों का सेवन, अंधविश्वास को बढ़ावा मिलता है। अत: मानसिक स्वास्थ्य की दिशा में जागरूकता का अभाव एकं गंभीर किंतु समाधान युक्त चुनौती है।

अन्य महत्वपूर्ण चुनौतियां- उत्तराखंड में मानसिक स्वास्थ्य के कारण अन्य देश के अन्य राज्यों की तुलना में भिन्न हैं। पलायन, आपदा, वन्य जीव एवं मानव संघर्ष इस हिमालयी राज्य में मानसिक विकार के प्रमुख कारणों में से एक है। उपलब्ध अध्ययनों और सरकारी आँकड़ों से ज्ञात होता है कि राज्य में मानसिक स्वास्थ्य का बुनियादी ढांचा स्थापित करने में अभी भी तमाम चुनौतियाँ हैं। राज्य में मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े व्यापक और नियमित आँकड़ों के रखरखाव अनुपलब्धता है एवं मानसिक विकार से प्रभावितों की आवश्यकता के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञों और सेवाओं को बढ़ाने की आवश्यकता प्रतीत होती है। पर्वतीय और दुर्गम क्षेत्रों में अस्पतालों और विशेषज्ञों तक पहुँच भी एक बड़ी

समस्या है। हालांकि मानसिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ रही है, फिर भी कई लोगों को यह जानकारी नहीं होती कि समस्या होने पर सहायता कहाँ और कैसे प्राप्त करें। विद्यालयों, स्वास्थ्य केंद्रों और समुदाय के स्तर पर मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं की समय पर पहचान और सहायता की व्यवस्था को मजबूत करना आवश्यक है। साथ ही, केवल एक बार उपचार प्राप्त करना पर्याप्त नहीं होता; नियमित अनुवर्ती देखभाल, परिवार का सहयोग और आवश्यकता के अनुसार मनोवैज्ञानिक एवं चिकित्सकीय उपचार भी महत्वपूर्ण हैं।

मानसिक स्वास्थ्य संबंधित चुनौतियों का समाधान

सरकार की भूमिका के रूप में- मानसिक स्वास्थ्य के लिए राज्य को केवल नए अस्पताल बनाने की नीति से आगे बढ़ना होगा। मानसिक स्वास्थ्य को सामान्य स्वास्थ्य व्यवस्था में अधिक गहराई से जोड़ा जाना आवश्यक है। विश्व स्वास्थ्य संगठन भी समुदाय-आधारित मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं, सामान्य स्वास्थ्य व्यवस्था में मानसिक स्वास्थ्य के एकीकरण और प्राथमिक स्तर पर प्रशिक्षित स्वास्थ्यकर्मियों की भागीदारी को महत्वपूर्ण मानता है (WHO, 2025)। उत्तराखंड में इस दिशा में सबसे पहले एक मजबूत राज्य-स्तरीय सूचना व्यवस्था विकसित की जानी चाहिए। यह नियमित रूप से बताए कि किन जिलों में किस प्रकार की मानसिक स्वास्थ्य आवश्यकता अधिक है, कौन-सी सेवाएँ उपलब्ध हैं और कहाँ विशेषज्ञों की कमी है। इसके साथ प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों और सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों में मानसिक स्वास्थ्य की प्रारंभिक पहचान और संदर्भण की व्यवस्था मजबूत की जानी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति का सीधे विशेषज्ञ तक पहुँचना संभव नहीं है, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति को यह अवसर मिलना चाहिए कि उसकी समस्या की पहचान हो और उसे उचित विशेषज्ञ तक पहुँचाया जा सके।

प्रशासनिक पहल के रूप में - उत्तराखंड की परिस्थितियों को देखते हुए मानसिक स्वास्थ्य के लिए एक ऐसी व्यवस्था अधिक उपयोगी हो सकती है जो ग्राम से जनपद और जनपद से मनोचिकित्सा केंद्र तक निरंतर जुड़ी हो। ग्राम स्तर पर राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के अंतर्गत आशा कार्यकर्ता, बाल विकास विभाग के अंतर्गत आंगनबाड़ी कार्यकर्ता, शिक्षकों एवं समुदाय के अन्य विश्वसनीय व्यक्तियों को मानसिक स्वास्थ्य की सामान्य पहचान और संदर्भण का प्राथमिक प्रशिक्षण दिया जाना इस दिशा में एक यथोचित प्रयास हो सकता है। प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र स्तर पर मानसिक स्वास्थ्य को सम्मिलित करते हुए मनोविकार से पीड़ित की पहचान कर प्रारंभिक मनोउपचार से जोड़ा जा सकता हैं। मनोविज्ञान

से परास्नातकों को वैकल्पिक व्यवस्था के तहत नियुक्त कर उनकी सेवाएं ली जाएं ताकि एक ओर विभाग को आसानी से प्रशिक्षित मनोचिकित्सक उपलब्ध हो पाए एवं दूसरी ओर परास्नातक डिग्रीधारी को व्यावहारिक अनुभव प्राप्त हो। तहसील स्तर पर जन-जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए जाएं जिसमें सनहसभागिता के साथ ही मानसिक स्वास्थ्य की दिशा में कार्य कर रहे बुद्धिजीवियों, शिक्षाविदों, शोधार्थियों की सहायक ली जाए। दूरभाष आधारित मानसिक स्वास्थ्य सेवा इन स्तरों के बीच संपर्क का माध्यम बन सकती है। ग्राम स्तर पर हेल्थ क्लब बनाकर यह सुनिश्चित किया जाए कि दूरस्थ क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को केवल संवाद की सुविधा के साथ ही प्रत्यक्ष सेवा तक पहुँच भी प्राप्त हो। इस प्रकार प्रशासनिक स्तर पर निर्मित व्यवस्था का लक्ष्य यह होना चाहिए कि किसी व्यक्ति को सहायता प्राप्त करने के लिए सहजता से विकल्प उपलब्ध कराना हो ताकि मानसिक विकार की समस्या को गंभीर होने से पूर्व ही उपचार के माध्यम से निवारित की जा सके।

समुदाय की भूमिका के रूप में- मानसिक स्वास्थ्य की जिम्मेदारी केवल सरकार और चिकित्सकों की नहीं हो सकती। किसी व्यक्ति के जीवन में पहला सहारा अक्सर परिवार होता है। यदि परिवार मानसिक परेशानी को कमजोरी, बहाना या अधिक सोचने का परिणाम मान ले, तो व्यक्ति अपनी कठिनाई छिपाना सीख सकता है। इसके विपरीत, यदि घर में यह प्रश्न किया जाए कि तुम्हारा मन कैसा है? और जवाब को गंभीरता से सुनने से सुनते हुए कुछ समय साथ व्यतीत किया जाए, तो यह पहल मानसिक उपचार की ओर पहली सीढ़ी वहीं बन सकती है। विद्यालय स्तर पर भी यह बात समान रूप से लागू होती है। यदि कोई छात्र लगातार चुप्पी साधे बैठा है, लिखने में असमर्थता जता रहा है, पढ़ाई में सामान्य दिनों की अपेक्षा कम रुचि ले रहा है अथवा असामान्य तरीके से बार-बार अनुशासनहीनता करता दिखाई दे रहा है तो प्रत्येक स्थिति को केवल अनुशासन की दृष्टि से देखना उचित नहीं है। इसके पीछे सतही रूप से कई कारण एवं कठिनाई मसलन, भावनात्मक तनाव, पारिवारिक माहौल या मानसिक अस्वस्थ्यता से जुड़ी समस्या भी हो सकती है। परिवार एवं समुदाय के स्तर पर मानसिक स्वास्थ्य पर चर्चा का वातावरण तैयार करना अत्यंत आवश्यक है। अत: जिस प्रकार ग्राम स्तर पर रक्तचाप, मधुमेह अथवा नेत्र परीक्षक लिए स्वास्थ्य शिविर का आयोजन किया जाता है, उसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य पर विमर्श एवं जानकारी साझा करने के लिए मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित गतिविधियों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। मानसिक स्वास्थ्य विकार को लेकर शर्म एवं असहजता कम करने का सबसे प्रभावी तरीका यही है कि उसे असामान्य विषय न मानकर स्वास्थ्य का सामान्य प्रक्रिया माना जाए।

सर्वांगीण विकास के रूप में- मानसिक स्वास्थ्य को केवल स्वास्थ्य विभाग का दायित्व मानना भी एक सीमा तक ही उपयोगी है। जिस युवा के पास रोजगार का अवसर नहीं है, उसके मानसिक स्वास्थ्य पर आर्थिक एवं सामाजिक असुरक्षा का प्रभाव पड़ना एक सामान्य घटना है। रोजगार एवं शिक्षा के बेहतर विकल्प की खोज में जिस परिवार के सदस्य पलायन कर गए हैं, उसके बुज़ुर्गों एवं अन्य आश्रित परिवारजनों के सदस्यों के जीवन पर मानसिक रूप से गहरा प्रभाव पड़ता है। जिस विद्यार्थी के लिए शिक्षा केवल सफलता और असफलता की कसौटी बन गई है, उसके लिए विद्यालय मानसिक विकास के स्थान पर लगातार दबाव का स्रोत बन सकता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन भी मानसिक स्वास्थ्य को गरीबी, असमानता, हिंसा, सुरक्षित आवास, शिक्षा, रोजगार और सामाजिक संबंधों जैसी व्यापक परिस्थितियों से जोड़ता है (WHO, 2025)। अत: उत्तराखंड में मानसिक स्वास्थ्य को सुधारने के लिए केवल मनोचिकित्सकों और मनोवैज्ञानिकों की संख्या बढ़ाना पर्याप्त नहीं बल्कि रोजगार, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा, विद्यालयी वातावरण, नशामुक्ति, महिलाओं की सुरक्षा, वृद्धजनों के सामाजिक जुड़ाव जैसे सार्वजनिक प्रयास एवं युवाओं की भागीदारी मानसिक स्वास्थ्य के लिए अघोषित नीति के रूप में काम करेगी।

सामूहिक जनसहभागिता के रूप में- जिला स्तर पर बहुविषयक विशेषज्ञों के ऐसे दलों को मजबूत करना आवश्यक है जिसमें मनोचिकित्सक, नैदानिक मनोवैज्ञानिक, मनोचिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता, नर्स तथा प्रशिक्षित परामर्शदाता सम्मिलित हो। इन सभी की भूमिकाएँ एक-दूसरे का स्थान लेने के लिए नहीं, बल्कि आपसी सामंजस्य स्थापित कर एक-दूसरे का पूरक बनकर इस मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने की हो। विद्यालयों को भी इस व्यवस्था के अभिन्न अंग के रूप में जोड़ते हुए बच्चों और किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य जागरूक किया जाना चाहिए। ताकि शिक्षकों की भूमिका, अभिभावकों की समझ, विशेष शैक्षिक सहायता, मानसिक विकार की पहचान, संदर्भण और अनुवर्ती देखभाल को सुनिश्चित किया जा सके।

निष्कर्ष

उत्तराखंड की मानसिक स्वास्थ्य स्थिति को किसी एक संख्या में सीमित करना संभव नहीं है। यह ऐसा राज्य नहीं है जिसे उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से रेखांकित किया जा सके। जहां एक ओर मानसिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता भी क्रमागत वृद्धि हुई है वहीं दूसरी ओर, विशेषज्ञ मानव संसाधन की सीमित उपलब्धता, पर्वतीय

क्षेत्रों में सेवाओं तक पहुंच की कठिनाई, मानसिक विकार की प्रारंभिक पहचान में कमी और राज्य-विशिष्ट व्यापक आंकड़ों का अभाव ऐसे प्रश्न हैं जिन्हें अनदेखा करना नीतिगत चूक हो सकता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उत्तराखंड में मानसिक स्वास्थ्य की कहानी केवल बीमारी की कहानी न होकर बदलते समाज की कहानी है। यह उस मां की कहानी है जो अपने बच्चे के बदलते व्यवहार को समझने का प्रयास करने में चूक जाती है। इसी प्रकार विद्यार्थी जो बेहतर अंकों की चाह में अपनी नींद खो देता है। मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में सबसे बड़ा परिवर्तन तब आएगा जब इसकी स्वीकार्यता का सामान्यीकरण किया जाएगा। यह तभी संभव है जब कोई व्यक्ति कहे मैं ठीक नहीं हूँ, तो उसे सलाह देने के बजाय सुनने के लिए तैयार रहा जाए। सहानुभूति के साथ-साथ सहायता के लिए भी प्रत्येक व्यक्ति अपने स्तर से प्रयास करे ताकि सहायता केवल राजधानी या बड़े शहर तक सीमित न हो। उत्तराखंड के लिए आवश्यकता केवल अधिक अस्पतालों की नहीं है। बल्कि इस दिशा में ऐसे सामूहिक प्रयास की है जिसमें मन की पीड़ा को भी उतनी ही गंभीरता से लिया जाए जितनी शरीर की पीड़ा को लिया जाता है। पहाड़ों ने सदियों से मनुष्य को कठिन रास्तों पर टिके रहना सिखाया है; अब समय है कि हम यह भी सुनिश्चित करें कि मानसिक स्वास्थ्य की पीड़ा से जूझ रहे प्रत्येक व्यक्ति को साथ लेकर उसके कठिन वक्त से निकालने में अपनी भागीदारी निभाएं। उत्तराखंड में मानसिक स्वास्थ्य का भविष्य इसी पहुंच, स्वीकार्यता और सामुदायिक सहारे में निहित है।

संदर्भ

- Mathias, K., Goicolea, I., Kermode, M., Singh, L., Shidhaye, R., & Sebastian, M. S. (2015). Cross-sectional study of depression and help-seeking in Uttarakhand, North India. *BMJ Open, 5*(11), e008992. https://doi.org/10.1136/bmjopen-2015-008992
- Ministry of Health and Family Welfare. (2016). *National Mental Health Survey of India, 2015–16:*
- State Mental Health Authority, Uttarakhand, National Institute of Mental Health and Neuro Sciences, & Government Doon Medical College. (2025). *Epidemiological study*

of mental health and developmental disorders among children and adolescents in Uttarakhand. Government of Uttarakhand.

- World Health Organization. (2025). *Mental health*. World Health Organization.
- Singh V. District Mental Health Program: Inception, Evolution and Challenges. Indian Journal of Behavioural Sciences. 2023;26(1): 4-11. doi: 10.55229/ijbs.v26i1.02
- Census of India 2011: Primary census abstract - Uttarakhand. Ministry of Home Affairs, Government of India. https://censusindia.gov.in
- DD India. (2026, July 9). Uttarakhand becomes India's sixth fully literate state under NEP 2020 and ULLAS programme. https://ddindia.co.in/2026/07/uttarakhand-becomes-indias-sixth-fully-literate-state-under-nep-2020-and-ullas-programme/
- राज्य मानसिक स्वास्थ्य प्राधिकरण, उत्तराखंड https://smha.uk.gov.in/mental-health-review-boards/
- चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग, उत्तराखंड https://health.uk.gov.in/